१९२५ में

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

२७

(मई-जुलाई १९२५)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

जुलाई १९६८ (आषाढ़ १८९०)

रु 10.00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली–६ द्वारा प्रकाशित
और शान्तिलाल हरजीवन शाह, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद–१४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

इस खण्डमें मईसे लेकर जुलाई, १९२५ तककी सामग्री संगृहीत है। इन तीन महीनोंकी अवधिमें गांधीजी बंगालके दौरेपर थे। इस अवधिकी सबसे प्रमुख घटना है १६ जूनको दार्जिलिंगमें चित्तरंजन दासका देहावसान। इस महान् शोक-प्रसंगकी छाया पूरे खण्डमें देखनेको मिलेगी। चूंकि गांधीजी इन दिनों बंगालमें थे, इसलिए खण्डमें शान्तिनिकेतन और खादी-प्रतिष्ठान-जैसी संस्थाओं तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी-जैसे महान् व्यक्तियोंकी चर्चाका बार-बार आना तो स्वाभाविक ही है। स्वदेशी, साम्प्रदायिक एकता और अस्पृश्यता-निवारणको उत्तेजन देनेके लिए उन दिनों सामान्य रूपसे जो देशव्यापी आन्दोलन चल रहा था, उसे स्थानीय परिस्थितियोंसे अलग-अलग छटाएँ और भंगिमाएँ मिलती रहती थीं। हम देखते हैं कि इस अवधिमें गांधीजीने राजनीतिक प्रश्नोंकी चर्चा बहुत कम और धीमे स्वरमें ही की और राजनीतिमें उन्होंने जितनी-कुछ रुचि ली, उसका सम्बन्ध अधिकांशतः स्वराज्यवादी दलकी राजनीतिसे ही रहा। उन्हें सबसे अधिक चिन्ता रचनात्मक कार्यक्रमको लागू करनेके साधनके रूपमें कांग्रेसके पुनर्गठन की थी। उनके स्वरमें तीव्रता तो इस अवधिके उन अन्तिम दिनोंमें आई, जब ब्रिटेनकी हठधर्मिता अपनी पराकाष्ठापर पहुँच गई। तब उनका यह बदला हुआ स्वर सविनय अवज्ञाको अपनानेकी सम्भावनाओंका स्पष्ट संकेत देने लगा।

राजनीतिक कार्यक्रम और रचनात्मक कार्यक्रम दोनोंको उपयोगी और आवश्यक मान लिया गया। स्वराज्यवादियोंने अपना ध्यान राजनीतिक कार्यक्रमपर केन्द्रित किया और स्वयं गांधीजी तन-मनसे रचनात्मक कार्यक्रमको सम्पन्न करनेमें जुटे रहे। यों दोनों पक्ष एक-दूसरेको ठीक-ठीक समझकर एक-दूसरेकी सहायता करनेका भी प्रयत्न करते रहे। इस अवधिमें रचनात्मक कार्यक्रमके सम्बन्धमें गांधीजीके विचार ज्यादा निखर कर सामने आये। उन्हें इस बातका पूरा विश्वास हो गया कि तत्कालीन स्वदेशी आन्दोलन १९०५-८के आन्दोलनकी तुलनामें अधिक ठोस आधारपर स्थित था। उनके लेखे, १९०५-८के आन्दोलनके पीछे यद्यपि एक भव्य कल्पना थी, किन्तु उसमें संगठनका लगभग अभाव था और वह आधारित था बम्बई तथा अहमदाबादकी मिलोंपर, जो अन्ततः बालूकी भीतें साबित हुईं। अब कताई विशिष्ट वर्गोको सर्वसाधारणसे जोड़नेवाला सूत्र बन गई और चरखेके माध्यमसे सबको यह प्रतीति होने लगी कि हम सब एक देशकी सन्तान हैं। गांधीजीको तो चरखेकी लगन लगी ही हुई थी, अब देशके अन्य लाखों लोगोंको भी उसकी लगन लग गई। उन्होंने चाहा कि उसे शान्तिनिकेतनमें भी और अधिक स्थान दिया जाये (पृष्ठ १८५)। उन्होंने देशबन्धु चित्तरंजन दाससे अनुरोध किया कि वे सूत कातना सीखें और निष्ठापूर्वक करोड़ों लोगोंकी खातिर ईश्वरके नामपर आधा घंटा अवश्य कातें (पृष्ठ २३६)।

राष्ट्रीय कांग्रेसके अपने भीतरी कार्यक्रमका उद्देश्य विभिन्न जातियोंके बीच एकता स्थापित करना था, और हिन्दू-मुस्लिम एकता इस वृहत्तर एकताका प्रतीक थी। अपने दौरोंमें उन्होंने जो-कुछ देखा, उससे उन्हें लगा कि दोनों बड़े समुदाय — हिन्दू और मुसलमान — एक-दूसरेको अविश्वासकी दृष्टिसे देखते हैं। १४ मईको नवाखलीमें बोलते हुए उन्होंने इस वैमनस्यके लिए दोनों पक्षोंको दोषी ठहराया और घोषणाकी कि यदि दोनों समुदायोंके लोग एक होकर रहनेके लिए कृतसंकल्प हो जायें तो संसार-की कोई भी शक्ति उन्हें अलग नहीं कर सकती। आंग्ल-भारतीयोंके एक प्रतिनिधिको उन्होंने स्पष्ट आश्वासन दिया कि बड़े समुदायोंका छोटे समुदायोंके प्रति यह एक पवित्र कर्त्तव्य है कि वे उन्हें सरक्षण दें (पृष्ठ १८७)। उन्होंने एक समुदाय द्वारा दूसरेको ठोस सहायता देनेकी सलाह देते हुए लोगोंसे बंगालके आदर्शका अनुकरण करनेको कहा, "जहाँ बाढ़के दिनोंमें मुख्य रूपसे मुसलमान बस्तियोंकी सहायता उन संगठनोंने की थी जिनमें हिन्दुओंकी प्रधानता थी" (पृष्ठ २०६)।

जब किसीने ताना कसते हुए उनसे यह कहा कि और जातियोंकी बात तो छोड़िए, खुद हिन्दुओंमें खान-पान, पूजा-पाठमें न जाने कितनी विभिन्नता है, तो गांधीजीने छूटते ही जवाब दिया: "मैं जिस ऐक्यके लिए लालायित हूँ, वह हृदयोंका ऐक्य है। यह सभी बन्धन-बाधाओंसे परे है तथा उनके होते हुए भी कायम रह सकता है" (पृष्ठ ३३०)। इस समस्याके प्रति अपने यथार्थवादी दृष्टिकोणका परिचय देते हुए उन्होंने साम्प्रदायिक मतभेदोंके बावजूद एनी बेसेंट-जैसे लोगों द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए किये जा रहे प्रयत्नोंकी सराहना की। उनके विचारसे उन दोनों ही तरहके लोगोंका प्रयत्न सही था — उनका भी जो मतभेदोंके बावजूद स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी कोशिश कर रहे थे और उनका भी जो स्वतन्त्रताका मार्ग प्रशस्त करनेके लिए मतभेदोंको मिटाना चाहते थे (पृष्ठ ४२३)।

अस्पृश्यताकी समस्या उनके हृदयको मथती रही। अस्पृश्योंको उन्होंने मनमें "बदला लेनेकी भावना" रखनेके बजाय "गरिमापूर्ण रुख" अपनानेकी सलाह दी (पृष्ठ १४)। उन्होंने दक्षिणके अन्त्यज संत नन्दका दृष्टान्त सामने रखकर उनसे उनका अनुकरण करनेको कहा। इस संतको उन्होंने "सत्याग्रहकी मूर्ति" कहा (पृष्ठ ७२)। दूसरी ओर उन्होंने सवर्ण हिन्दुओंसे इन तिरस्कृतोंका सत्कार करनेका अनुरोध किया (पृष्ठ २८४)। अस्पृश्यताके पीछे उन्हें घृणाका भाव दिखाई देता था; उन्होंने सवर्णों-से कहा कि इस भावको हर हालतमें त्याग देना चाहिए (पृष्ठ ३९९)। जो लोग इस सुधार-आन्दोलनकी धीमी प्रगतिसे अधीर हो रहे थे, उनका उचित कर्त्तव्य सम-झाते हुए उन्होंने कहा कि ऐसे सुधार ऊपरसे थोपे नहीं जाते; बल्कि वे भीतरसे उद्भूत होते हैं। किन्तु साथ ही उन्होंने स्पष्ट देखा कि अस्पृश्यताके "दुर्गकी नींव दिन-प्रतिदिन खोखली हो रही है।" (पृष्ठ २९९)। उन्होंने लोगोंको हिन्दू-धर्मकी अपनी यह कल्पना बार-बार समझाई कि वह अपने अनुयायियोंकी संख्याको गिनते रहनेवाला धर्म नहीं है (पृष्ठ ११०)। इस धर्मकी सम्भावनाएँ तो इतनी विस्तृत हैं कि किसी भी सच्चे हिन्दूको बौद्ध, जैन, ईसाई या मुसलमान, सभी अपने धर्मका अनुयायी मान सकते

हैं। स्वयं बुद्धका जीवन हिन्दू-धर्मकी भावनासे ओतप्रोत था। उनके लेखे बौद्धधर्म हिन्दू धर्मका ही ऐसा व्यावहारिक रूप था जिसका आचरण सर्वसाधारणके लिए आसान था। तथापि गांधीजी व्यक्तिके अपने पारम्परिक धर्मको उसके जीवन-मरणका सवाल मानते थे। उन्होंने कहा, आदमी जैसे अपनी पोशाक बदल लेता है, वह उसी प्रकार अपना धर्म परिवर्तन नहीं कर सकता। धर्म तो हृदयका विषय होता है (पृष्ठ १९३–९४)। ईसाई धर्मका प्रचार करनेवाली महिलाओंकी सभामें बोलते हुए उन्होंने राजनीतिक और धार्मिक बातोंका भेद पूछते हुए कहा, "क्या जीवनके ऐसे कोई एक-दूसरेसे बिलकुल ही अलग-थलग विभाग किये जा सकते हैं? . . . धर्म-विहीन राजनीतिसे दुर्गंध आती है और राजनीतिसे विच्छिन्न धर्म निरर्थक है" (पृष्ठ २०९)।

उनके कर्म-संकुल जीवनकी सभी कठिनाइयोंमें राम-नाम उनका ऐसा अचूक सम्बल था, जो बराबर उनकी रक्षा करता रहा। हम इसे उनकी आस्थाकी पुंजीभूत अभिव्यक्ति कह सकते हैं। एक लेखमें रामनामकी महिमा बताते हुए वे स्वीकार करते हैं: "मेरा निजी जीवन सार्वजनिक हो गया है। दुनियामें मेरे लिए एक भी ऐसी बात नहीं है जिसे मैं निजी बना कर रखूँ। मेरे प्रयोग आध्यात्मिक हैं।. . . इन प्रयोगोंका आधार बहुत-कुछ आत्मनिरीक्षण है। मैंने 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' की उक्तिके अनुसार प्रयोग किये हैं। इनके पीछे मेरी यह मान्यता है कि जो बात मेरे विषयमें सम्भव है वह दूसरोंके विषयमें भी सम्भव होगी" (पृष्ठ १११)। उनका विचार था कि धार्मिक व्यक्ति विनयशील तो होगा ही, इसलिए स्वयंको सुधारे बिना संसारको सुधारनेके लिए व्यग्र रहनेवाले सुधारक उन्हें नहीं रुचते थे। उनका खयाल था कि आध्यात्मिक प्रगति ईश्वरके नामपर की गई सेवाओं द्वारा फलित होती है। १६ जुलाईको च० राजगोपालाचारीको लिखे पत्रमें वे कहते हैं: "शारीरिक और बौद्धिक तौरसे जिस वातावरणमें मैं रहता हूँ, मुझपर उसका बिलकुल असर नहीं पड़ता।. . .आपकी साधना इसीमें है कि आप अपने क्षेत्रका विकास करें तथा हाथ-कताईके अपने सिद्धान्तको व्यावहारिक रूप दें" (पृष्ठ ३९९)।

अहिंसामें उनकी आस्था दृढ़तर होती चली गई और यह आस्था नित्य नूतन रूपोंमें अभिव्यक्त होती रही। उन्होंने १५ जूनको शरतचन्द्र बोसको लिखा: "अहिंसा तो प्रेम है। वह मौन और करीब-करीब गुप्त रूपसे अपना असर पैदा करती है।. . . मित्रों और सगे-सम्बन्धियोंके बीच प्रेमका कोई करिश्मा नहीं होता। वे एक-दूसरेको स्वार्थवश प्यार करते हैं; प्रबुद्धताके आधारपर नहीं। वह तो तथाकथित विरोधियोंके बीच ही अपना करिश्मा दिखाता है। इसलिए जरूरत इस बातकी है कि आदमी जितनी भी दयालुता और दानवीरता दिखा सकता है वह सारीकी-सारी अपने विरोधी या आततायीके प्रति दिखाई जाये" (पृष्ठ २४९-५०)। वे क्रान्तिकारियोंसे भी अपनी बात कहते रहे। उदाहरणके लिए हम "फिर वही" (पृष्ठ ४७–५२) और "कूदनेको तत्पर" (पृष्ठ १३५–४०) शीर्षक लेख ले सकते हैं। उन्होंने उनके साहस और आत्मबलिदानकी भावनाकी सराहना की, किन्तु साथ ही बड़े स्पष्ट शब्दोंमें उन्होंने अहिंसामें अपनी अडिग आस्थाकी घोषणा की। उनके विचारसे तबतक स्वयं

वे अथवा देश द्वैतभावसे ऊपर नहीं उठ पाया था। इसलिए उन्होंने सार्वजनिक अहिंसाका प्रचार तो नहीं किया, किन्तु क्रान्तिकारियोंको समझाते हुए उन्होंने कहा: "अपने पैर धरतीपर ही जमाये रखें और हिमालयके शिखरोंपर उड़ानें न भरें, जहाँ कि 'महाभारत'के कवि अर्जुन तथा दूसरे वीरोंको ले गये थे। . . .मेरे लिए भारतवर्षका मैदान ही काफी है" (पृष्ठ १४०)।

ईसाई धर्म-प्रचारकोंकी एक सभामें उन्होंने कहा: "मुझे आपसे पूरी नम्रताके साथ कहना होगा कि मैंने हिन्दू-धर्मको जिस रूपमें जाना है, उस रूपमें वह मेरी आत्माको पूरी शान्ति देता है; उससे मेरा समस्त अस्तित्व आप्लावित है और जो शान्ति मुझे 'भगवद्गीता' और उपनिषदोंको पढ़कर मिलती है, वह 'गिरि-प्रवचन'को पढ़कर भी नहीं मिलती। यह बात नहीं है कि मैं उसमें बताये गये आदर्शका मूल्य नहीं समझता, . . .किन्तु मुझे आपके सामने स्वीकार करना चाहिए कि जब मेरा मन शंकाओं और निराशाओंसे घिर जाता है और जहाँतक दृष्टि जाती है, मुझे प्रकाशकी एक किरण भी नहीं दिखाई देती, तब मैं 'भगवद्गीता'की शरण लेता हूँ, और उसमें मुझे कोई-न-कोई शान्तिदायी श्लोक मिल ही जाता है और तब मैं दारुण दुःखके बीच भी तत्काल मुस्करा उठता हूँ। मेरे जीवनमें सांसारिक दुःख और शोकके न जाने कितने प्रसंग आये हैं, और अगर वे मुझपर कोई खरोंच नहीं छोड़ पाये तो इसका कारण 'भगवद्गीता'की शिक्षा ही है" (पृष्ठ ४५१)। एक सत्यान्वेषीके नाते वे मौनकी अद्भुत क्षमताओंसे परिचित थे। दक्षिण आफ्रिकामें ट्रैपिस्ट मठमें आकर उन्होंने जो-कुछ देखा और अनुभव किया, उसे वे यावज्जीवन नहीं भूल पाये। वे कहते हैं: "यदि हम उस मूक और क्षीण स्वरको सुनना चाहते हैं जो हमारे भीतर सदा उठता रहता है, तो स्वयं लगातार बोलते रहकर उसे नहीं सुना जा सकता" (पृष्ठ ४५३)।

इस प्रकार राजनीतिक धूल-धक्कड़के बीच गांधीजीका मन निरन्तर अध्यात्मके धरातलपर विचरण करता रहता था। किन्तु, इसका मतलब यह नहीं है कि वे यथार्थके प्रति सजग नहीं थे या राजनीतिक प्रवृत्तियों और विचारोंके सही मूल्यांकन और दिशा-निर्देशनमें उन्होने कुछ कम रुचि ली। स्वराज्यवादी दलके नेता चित्तरंजन दास और मोतीलाल नेहरूके प्रति उन्होंने पुनः अपना विश्वास व्यक्त किया, और जब चित्तरंजन दासके निधनसे देश शोक-संतप्त हो उठा तो उन्होंने उनकी स्मृतिको उन उपायोंसे सम्मानित करनेका प्रयत्न किया जिनसे देशबन्धुकी परम आकांक्षा — अर्थात् सर्वसाधारणका कल्याण — सिद्ध हो सकती थी। स्वराज्यवादी दलके नेताओंमें उनको इतना अधिक विश्वास था कि उनकी स्वीकृतिके बिना वे कांग्रेसमें कुछ भी करनेको तैयार नहीं थे। भारत मन्त्री लॉर्ड बर्कनहेडके भ्रामक वक्तव्यके विषयमें १८ जुलाईको लिखते हुए उन्होंने घोषणा की कि एक ओर पण्डित मोतीलालजी विधानसभामें लड़ते हुए देशबन्धुकी जगह स्वराज्य दलका नेतृत्व करेंगे और दूसरी ओर मैं सत्याग्रहके लिए वातावरण तैयार करनेमें जुटा रहूँगा (पृष्ठ ४०६–७)। व्यक्तिशः रचनात्मक कार्य-क्रमको सर्वाधिक महत्त्व देते हुए भी स्वराज्यवादी दलकी खातिर कांग्रेसको प्रमुख रूपसे

एक राजनीतिक दल वना देनेपर उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। सच तो यह है कि वे कांग्रेसको पूर्ण रूपसे पं० मोतीलाल नेहरूके हाथों सौंप देनेके लिए तत्पर थे। किन्तु इस प्रकार प्रसंग आनेपर संघर्ष छेड़ देनेकी तैयारी करते हुए भी वे अंग्रेजोंके प्रति मैत्री-भाव रखनेकी नीतिपर दृढ़ वने हुए थे। इसके प्रमाण-रूपमें २८ जुलाईको फ्रेड ई० कैम्बेलको लिखे गये उनके पत्र और उससे कुछ ही दिन पूर्व एक यूरोपीय मित्रसे कही गई उनकी इस वातका उल्लेख किया जा सकता है कि "मैं अंग्रेजोंके साथ सहयोग करनेके लिए व्यग्र हूँ।" राजनीतिमें उन्होंने अपने आचरणका सार एक वाक्यमें रखते हुए कहा: "असहयोग किसी व्यक्तिके कृत्योंसे किया जाता है; खुद व्यक्तिसे नहीं" (पृष्ठ ८६)।

भारतीय राष्ट्रवादको सर्वथा सही परिप्रेक्ष्यमें प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा: "किसी व्यक्तिके लिए राष्ट्रवादी वने विना अन्तर्राष्ट्रवादी वनना असम्भव है। अन्तर्राष्ट्रवाद उसी अवस्थामें सफल होगा जब राष्ट्रवाद मजबूत होगा, अर्थात् जब भिन्न-भिन्न देशोंके लोग सुसंगठित होकर एक आदमीकी तरह मिलजुलकर सारे काम कर सकेंगे।. . .भारतका राष्ट्रधर्म. . .सारी मनुष्य-जातिकी हित-साधना और सेवाके लिए अपनेको सुसंगठित या पूर्ण रूपसे विकसित करना चाहता है। मुझे अपनी देशभक्ति या अपने राष्ट्रवादके विषयमें कोई सन्देह नहीं है। ईश्वरने मुझे भारतवर्षके लोगोंके वीच जन्म दिया है, इसलिए मैं उनकी सेवामें गफलत करूँ तो मैं अपने सिरजनहारका अपराधी वनूँगा। यदि मैं उनकी सेवा करना नहीं जानता तो मुझे मानव-जातिकी सेवा करना कभी नहीं आयेगा। और जवतक मैं अपने देशकी सेवा करता हुआ किसी दूसरे राष्ट्रको नुकसान नहीं पहुँचाता तवतक मैं पथभ्रष्ट नहीं हो सकता" (पृष्ठ २५७)। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि भारतका स्वतन्त्रता संग्राम एक ऐसे वृहत्तर विश्वव्यापी आन्दोलनका ही अंग था जो समस्त मानव-जातिके कल्याण और हित-साधनसे जुड़ा हुआ था।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, नई दिल्ली; राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया), नई दिल्ली; सार्वजनिक पुस्तकालय, इलाहाबाद; श्री काशीनाथ न० केलकर, पूना; श्री छगनलाल गांधी, अहमदाबाद; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्री पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास; श्री मीराबहन, गादेन, आस्ट्रिया; श्रीमती राधाबहन चौधरी, कलकत्ता; श्रीमती सुशीलकुमार रुद्र, इलाहाबाद; तथा 'बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने'; और 'बापुनी प्रसादी', इन पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा निम्नलिखित समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं : 'अमृतबाजार पत्रिका', 'आज', 'नवजीवन', 'फॉरवर्ड', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'सर्च-लाइट', 'स्टेट्समैन', 'हिन्दुस्तान टाइम्स', और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना और प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली; साबरमती संग्रहालय और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; तथा श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली और कागज-पत्रोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें सहायताके लिए सूचना और प्रसारण मन्त्रालयका फोटो विभाग, नई दिल्ली; हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

पाठकोंको सूचना

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करनेमें अनुवादको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही अनुवादकी भाषा सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद अनुवाद किया गया है और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। यह ध्यान रखा गया है कि नामोंको सामान्यतः जैसे बोला जाता है वैसे ही लिखा जाये। जिन नामोंके उच्चारण संदिग्ध हैं उनको वैसा ही लिखा गया है, जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीचमें चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजीने किसी लेख, भाषण, वक्तव्य आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि ऐसा कोई अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द, जो गांधीजीके कहे हुए नहीं है, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है, वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; परन्तु जहाँ वह उपलब्ध नहीं है, वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है और जहाँ आवश्यक हुआ, उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' के अनेक संस्करण होनेसे उनकी पृष्ठ संख्याएँ विभिन्न हैं; इसलिए हवाला देनेमें केवल उनके भाग और अध्यायका ही उल्लेख किया गया है।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागजपत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ सामग्री परिशिष्टोंमें दे दी गई है। साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ अन्तमें दी गई हैं।

विषय-सूची

पृष्ठ

भूमिका ५

आभार ११

पाठकोंको सूचना १३

चित्र-सूची २४

१. सन्देश: जनताके लिए (१–५–१९२५) १

२. भेंट: 'स्टेट्समैन' के प्रतिनिधिसे (१–५–१९२५) १

३. भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे (१–५–१९२५) ३

४. भाषण: कलकत्ताकी सार्वजनिक सभामें (१–५–१९२५) ४

५. भाषण: फरीदपुरकी औद्योगिक प्रदर्शनीमें (२–५–१९२५) ९

६. भाषण: अखिल बंगाल हिन्दू सम्मेलनमें (२–५–१९२५) १०

७. भाषण: बंगाल प्रान्तीय युवक सम्मेलनमें (२–५–१९२५) ११

८. अस्पृश्योंके साथ बातचीत (३–५–१९२५ या उससे पूर्व) १२

९. भाषण: मानपत्रके उत्तरमें (३–५–१९२५ या उससे पूर्व) १७

१०. गोरक्षा (३–५–१९२५) १९

११. टिप्पणियाँ: काठियावाड़का धन-संग्रह; जातिबन्धन; 'मूर्तिपूजक' और 'मूर्तिभंजक'; पेटलादके सत्याग्रहियोंका कर्त्तव्य; एक शिक्षककी कताई; वृद्धाका प्रमाणपत्र; खादीका प्रचार कैसे बढ़े?; कंचनलाल मोतीलाल वर्फीवाला (३–५–१९२५) २०

१२. पत्र: वृजकृष्ण चाँदीवालाको (३–५–१९२५) २६

१३. भाषण: फरीदपुरमें (३–५–१९२५) २६

१४. भाषण: बंगाल प्रान्तीय परिषद्‌में (३–५–१९२५) २८

१५. बंगालके संस्मरण (३–५–१९२५) ३६

१६. भाषण: प्रवर्तक आश्रम, चन्द्रनगरमें (५–५–१९२५) ४१

१७. भाषण: अष्टाङ्ग आयुर्वेद विद्यालयके शिलान्यास-समारोहमें (६–५–१९२५) ४२

१८. गो-रक्षा (७–५–१९२५) ४६

१९. फिर वही (७–५–१९२५) ४७

२०. टिप्पणियाँ: मुझे देवता न बनाइये; अस्पृश्य; खादी; बालकी खाल निकालना (७–५–१९२५) ५३

२१. बंगालके अनुभव (७–५–१९२५) ५४

२२. पत्र: रवीन्द्रनाथ ठाकुरको (७–५–१९२५) ५९

२३. भाषण: बुद्ध जयन्तीके अवसरपर (७–५–१९२५) ६०

२४. भाषण: लोहागंजमें (८–५–१९२५) ६४

२५. भाषण: मलिकन्दामें (८-५-१९२५) ६५
२६. बातचीतका अंश (८-५-१९२५) ६५
२७. भाषण: दिघीरपुरकी सार्वजनिक सभामें (९-५-१९२५) ६६
२८. भाषण: तालटोलाके कार्यकर्त्ताओंकी बैठकमें (९-५-१९२५) ६७
२९. भाषण: मलखानगरमें (९-५-१९२५) ६९
३०. भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे (९-५-१९२५) ७१
३१. अन्त्यज साधु नन्द (१०-५-१९२५) ७२
३२. पत्र: मगनलाल गांधीको (१०-५-१९२५) ७३
३३. भाषण: पूरनबाजारके व्यापारी संघमें (१०-५-१९२५) ७४
३४. भाषण: चाँदपुरमें (१०-५-१९२५) ७४
३५. भाषण: चाँदपुरकी राष्ट्रीय पाठशालामें (१०-५-१९२५) ७६
३६. भाषण: चाँदपुरकी सार्वजनिक सभामें (१०-५-१९२५) ७७
३७. पत्र: बृजकृष्ण चाँदीवालाको (१०-५-१९२५ या उसके पश्चात्) ७८
३८. एक कार्यकर्त्ताकी कठिनाई (११-५-१९२५) ७८
३९. भेंट: हरदयाल नागसे (१२-५-१९२५ से पूर्व) ८०
४०. पत्र: जी० बी० केतकरको (१२-५-१९२५) ८९
४१. भाषण: चटगाँवकी सार्वजनिक सभामें (१२-५-१९२५) ८९
४२. भाषण: विद्यार्थियोंके समक्ष, चटगाँवमें (१३-५-१९२५) ९३
४३. भाषण: व्यापारियोंकी सभा, चटगाँवमें (१३-५-१९२५) ९४
४४. कर्नाटकमें खद्दर (१४-५-१९२५) ९५
४५. टिप्पणियाँ: बुनकरोंकी शिकायत; हाथकरघा (१४-५-१९२५) ९५
४६. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको (१४-५-१९२५) ९८
४७. पत्र: वसुमती पण्डितको (१४-५-१९२५) ९८
४८. पत्र: मणिबहन पटेलको (१४-५-१९२५) ९९
४९. भाषण: नवाखलीकी सार्वजनिक सभामें (१४-५-१९२५) १००
५०. भेंट: जिला अध्यापक संघके प्रतिनिधियोंसे (१४-५-१९२५) १०१
५१. भाषण: नवाखलीमें (१४-५-१९२५) १०२
५२. भाषण: कोमिल्लाकी सार्वजनिक सभामें (१५-५-१९२५) १०२
५३. भाषण: विद्यार्थियोंके समक्ष (१५-५-१९२५) १०३
५४. भाषण: कोमिल्लामें (१५-५-१९२५) १०४
५५. विक्रमपुरके कार्यकर्त्ताओंसे बातचीत (१५-५-१९२५) १०६
५६. भेंट: एक मित्रसे (१५-५-१९२५ के पश्चात्) १०७
५७. एक मुसलमान सज्जनसे बातचीत (१५-५-१९२५ के पश्चात्) १०९
५८. भाषण: स्त्रियोंकी सभा, कोमिल्लामें (१६-५-१९२५) ११०
५९. रामनामकी महिमा (१७-५-१९२५) १११
६०. सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (१७-५-१९२५) ११६

६१. टिप्पणियाँ: सादगी बनाम अव्यवस्था; कातनेवालोंसे; अब कर्त्तव्य क्या है?; अकालमें मदद (१७–५–१९२५) ११९
६२. पत्र: देवदास गांधीको (१७–५–१९२५) १२२
६३. भाषण: ढाकाकी सार्वजनिक सभामें (१७–५–१९२५) १२३
६४. ढाकाके विद्यार्थियोंके साथ बातचीत (१७–५–१९२५) १२५
६५. भाषण: नेशनल कॉलेज, श्यामपुरमें (१७–५–१९२५) १२७
६६. पत्र: रवीन्द्रनाथ ठाकुरको (१८–५–१९२५) १२७
६७. पत्र: मुहम्मद अलीको (१८–५–१९२५) १२८
६८. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश (१८–५–१९२५) १२९
६९. भाषण: महिलाओंकी सभा, मैमनसिंहमें (१९–५–१९२५) १२९
७०. भाषण: अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें (१९–५–१९२५) १३०
७१. मैमनसिंहके जमींदारोंसे बातचीत (१९–५–१९२५) १३२
७२. एक असाधारण मानपत्र (२१–५–१९२५) १३२
७३. कूदनेको तत्पर (२१–५–१९२५) १३५
७४. टिप्पणियाँ: अभिनन्दन-पत्र देनेवाले ध्यान दें; औंधी छूतछात; एक पत्र-लेखककी दुविधा; जानवरोंके प्रति निर्दयता (२१–५–१९२५) १४१
७५. भाषण: दीनाजपुरके अस्पृश्योंके समक्ष (२१–५–१९२५) १४५
७६. भाषण: दीनाजपुरकी सार्वजनिक सभामें (२१–५–१९२५) १४५
७७. भाषण: दीनाजपुरके विद्यार्थियोंके समक्ष (२१–५–१९२५) १४६
७८. भेंट: दीनाजपुरके जमींदारसे (२१–५–१९२५) १४६
७९. भाषण: कार्यकर्त्ताओंके स्कूल, बोगूड़ामें (२२–५–१९२५) १४८
८०. भाषण: बोगूड़ाकी सार्वजनिक सभामें (२२–५–१९२५) १४९
८१. भाषण: तलोडामें (२२–५–१९२५) १५०
८२. पत्र: कल्याणजी मेहताको (२३–५–१९२५) १५१
८३. बंगालका त्याग (२४–५–१९२५) १५१
८४. टिप्पणियाँ: बहिष्कार हो तो?; देशी राज्य; एक जमींदारकी सेवाएँ; जैन मुनि और चरखा (२४–५–१९२५) १५३
८५. फिजूलखर्ची (२४–५–१९२५) १५५
८६. सन्देश: 'फॉरवर्ड'को (२५–५–१९२५) १५९
८७. पत्र: न० चि० केलकरको (२५–५–१९२५) १६०
८८. टिप्पणियाँ: ताजा विवरण (२८–५–१९२५) १६०
८९. किसानोंकी पुकार (२८–५–१९२५) १६२
९०. कुछ त्रुटियाँ (२८–५–१९२५) १६४
९१. राष्ट्रीय सेवा और वेतन (२८–५–१९२५) १६५
९२. टिप्पणियाँ: हकीम साहब; जुगल-जोड़ी; बैलगाड़ी और चरखा; शक्तिका अपव्यय; विकास और ह्रास; पतित बहनें और चरखा; मेरठमें कताई;

ईश्वरके नामपर चरखा; उदासीनता या नियमपालनका अभाव; भावुकता की बकवास; १०० वर्ष पुराना चरखा (२८-५-१९२५) १६६
९३. भाषण: कलकत्ताकी सार्वजनिक सभामें (२८-५-१९२५) १७३
९४. पत्र: पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको (२९-५-१९२५) १७५
९५. पत्र: जमनालाल बजाजको (२९-५-१९२५) १७६
९६. रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे बातचीत (३०-५-१९२५) १७७
९७. टिप्पणियाँ: काठियावाड़का चन्दा; कैदी प्रागजी देसाई; कराचीमें अन्त्यज शाला; कर्मचारियोंको छुट्टी; कताई-सदस्यताका मजाक (३१-५-१९२५) १७८
९८. ग्राम-प्रवेश (३१-५-१९२५) १८१
९९. बंगालमें कताई (३१-५-१९२५) १८३
१००. पत्र: देवचन्द पारेखको (३१-५-१९२५) १८४
१०१. पत्र: मणिबहन पटेलको (३१-५-१९२५) १८४
१०२. भाषण: शान्तिनिकेतनमें (३१-५-१९२५) १८५
१०३. भेंट: डॉ० एच० डब्ल्यू० बी० मोरेनोसे (३१-५-१९२५) १८६
१०४. पत्र: जी० वी० सुब्बारावको (१-६-१९२५) १९०
१०५. पत्र: जितेन्द्रनाथ कुशारीको (१-६-१९२५) १९०
१०६. पत्र: एस० ए० ब्रेलेको (१-६-१९२५) १९१
१०७. भाषण: भवानीपुर, कलकत्तामें (२-६-१९२५) १९२
१०८. वाइकोम (४-६-१९२५) १९२
१०९. खादी प्रतिष्ठान (४-६-१९२५) १९५
११०. टिप्पणियाँ: निराधार अभियोग; नीति-भ्रष्टता; चरखेसे फाँसी पसन्द; 'चीनसे भूमध्यसागरतक'; सिन्धकी उदासीनता; कुर्गमें खद्दर (४-६-१९२५) १९८
१११. बाढ़-संकट-निवारण (४-६-१९२५) २०४
११२. एनी बेसेंटको लिखे पत्रका मसविदा (४-६-१९२५) २०७
११३. पत्र: निशीथनाथ कुंडूको (६-६-१९२५) २०८
११४. पत्र: नारणदास गांधीको (६-६-१९२५) २०८
११५. भाषण: ईसाई धर्मप्रचारिकाओंके समक्ष (६-६-१९२५) २०९
११६. धर्मके नाम अन्धेर (७-६-१९२५) २१२
११७. बंगालमें (७-६-१९२५) २१५
११८. काठियावाड़में खादी (७-६-१९२५) २१९
११९. एक सलाह (७-६-१९२५) २२०
१२०. पत्र: 'वर्ल्ड'के सम्पादकको (८-६-१९२५) २२०
१२१. भाषण: जलपाईगुड़ीकी सार्वजनिक सभामें (१०-६-१९२५) २२१
१२२. जलपाईगुड़ीमें स्वयंसेवकोंसे बातचीत (१०-६-१९२५) २२१

१२३. टिप्पणियाँ: एक नई भरती; ग्यारह दिनकी प्रगति; प्रतियोगियोंका विश्लेषण; बहुत बड़ी फटकार; शालाओंमें कताई (११-६-१९२५) २२२
१२४. यह पुरुषोंका काम नहीं? (११-६-१९२५) २२६
१२५. आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली (११-६-१९२५) २२८
१२६. पत्र: जमनालाल बजाजको (११-६-१९२५) २३१
१२७. पत्र: वसुमती पण्डितको (११-६-१९२५) २३१
१२८. भाषण: नवाबगंजके विद्यार्थियोंके समक्ष (११-६-१९२५) २३२
१२९. सम्मति: दर्शक-पुस्तिकामें (१२-६-१९२५) २३२
१३०. पत्र: मणिबहन पटेलको (१२-६-१९२५) २३३
१३१. भाषण: सोनेश्वरकी सार्वजनिक सभामें (१२-६-१९२५) २३५
१३२. पत्र: चित्तरंजन दासको (१३-६-१९२५से पूर्व) २३६
१३३. भाषण: मदारीपुरकी सार्वजनिक सभामें (१३-६-१९२५) २३७
१३४. भाषण: मदारीपुरके सार्वजनिक पुस्तकालयमें (१३-६-१९२५) २३८
१३५. अन्त्यजोंके सम्बन्धमें (१४-६-१९२५) २३९
१३६. स्वयंसेवकके गुण (१४-६-१९२५) २४०
१३७. मेरा कर्तव्य (१४-६-१९२५) २४४
१३८. भाषण: बारीसालकी सार्वजनिक सभामें (१४-६-१९२५) २४६
१३९. सम्मति: फादर स्ट्रांगको (१४-६-१९२५) २४६
१४०. पत्र: राजा महेन्द्र प्रतापको (१५-६-१९२५ या उससे पूर्व) २४७
१४१. पत्र: मोतीलाल नेहरूको (१५-६-१९२५) २४७
१४२. पत्र: मदाम आंत्वानेत मिरबेलको (१५-६-१९२५) २४९
१४३. पत्र: शरतचन्द्र बोसको (१५-६-१९२५) २४९
१४४. एक पत्रके बारेमें (१६-६-१९२५से पूर्व) २५०
१४५. टिप्पणियाँ: दार्जिलिंगमें चरखा; मंत्री चाहिए; तिलक स्वराज्य-कोष; थैलियोंके विषयमें; अब कोई उपयोग नहीं; ग्वालोंको खिलाओ; राष्ट्रीयता बनाम अन्तर्राष्ट्रीयता; बंगालमें हिन्दी; तामिलनाड; वी० वी० एस० अय्यर (१६-६-१९२५ या उससे पूर्व) २५३
१४६. तार: मुहम्मद अलीको (१७-६-१९२५) २५९
१४७. तार: बासन्तीदेवी दासको (१७-६-१९२५) २५९
१४८. तार: सनकौड़ीपति रायको (१७-६-१९२५) २६०
१४९. तार: उर्मिला देवीको (१७-६-१९२५) २६०
१५०. तार: मोना दासको (१७-६-१९२५) २६१
१५१. तार: वल्लभभाई पटेलको (१७-६-१९२५) २६१
१५२. तार: सरोजिनी नायडूको (१७-६-१९२५) २६२
१५३. तार: शौकत अलीको (१७-६-१९२५) २६२
१५४. तार: वाइकोम सत्याग्रह आश्रमको (१७-६-१९२५) २६३

१५५. महान् शोक (१७–६–१९२५) २६३
१५६. एक अपील (१७–६–१९२५) २६४
१५७. भाषण: खुलनाकी सार्वजनिक सभामें (१७–६–१९२५) २६५
१५८. क्या हम तैयार हैं? (१८–६–१९२५) २६७
१५९. एक घरेलू प्रकरण (१८–६–१९२५) २७०
१६०. तार: मोतीलाल नेहरूको (१८–६–१९२५) २७३
१६१. तार: के० केलप्पन नायरको (१८–६–१९२५ या उसके पश्चात्) २७४
१६२. देशबन्धु जिन्दाबाद! (१९–६–१९२५) २७४
१६३. श्रद्धांजलि-सभाके सम्बन्धमें निर्देश (१९–६–१९२५) २७७
१६४. स्मरणांजलिके लिए निवेदन (१९–६–१९२५) २७८
१६५. चित्तरंजन दास (२०–६–१९२५) २७९
१६६. संरक्षणकी आवश्यकता (२१–६–१९२५) २८२
१६७. पावककी ज्वाला (२१–६–१९२५) २८४
१६८. अपील: देशबन्धु स्मारकके लिए (२२–६–१९२५) २८६
१६९. अपील: अखिल बंग देशबन्धु-स्मारक कोषके लिए (२२–६–१९२५) २८७
१७०. पत्र: देवचन्द पारेखको (२२–६–१९२५) २८८
१७१. पत्र: वसुमती पण्डितको (२२–६–१९२५) २८९
१७२. पत्र: नारणदास गांधीको (२२–६–१९२५) २८९
१७३. प्राप्त चन्देकी स्वीकृति (२३–६–१९२५) २९०
१७४. भेंट: 'स्टेट्समैन'के प्रतिनिधिसे (२४–६–१९२५से पूर्व) २९१
१७५. भेंट: 'सर्चलाइट'के प्रतिनिधिसे (२४–६–१९२५से पूर्व) २९३
१७६. तार: सुशीलकुमार रुद्रको (२४–६–१९२५) २९३
१७७. भेंट: 'इंग्लिशमैन'के प्रतिनिधिसे (२४–६–१९२५) २९४
१७८. टिप्पणियाँ: अन्याय इष्ट न था; माता-पितासे पहले संस्था; सम्बद्ध स्कूलोंमें कताई; एक गाँवका प्रयोग; 'कूदनेको तत्पर'; विजित अभिमान (२५–६–१९२५) २९५
१७९. नम्रताकी आवश्यकता (२५–६–१९२५) ३००
१८०. पतित बहनें (२५–६–१९२५) ३०३
१८१. तीन सवाल (२५–६–१९२५) ३०५
१८२. सत्याग्रहियोंका कर्त्तव्य (२५–६–१९२५) ३०६
१८३. पत्र: महाराजा वर्दवानको (२६–६–१९२५) ३०७
१८४. पत्र: शुएब कुरैशीको (२६–६–१९२५) ३०८
१८५. भाषण: कलकत्ताकी शोक-सभामें (२६–६–१९२५) ३०८
१८६. अपील: देशबन्धु श्रद्धांजलि-सभाके सम्बन्धमें (२७–६–१९२५) ३०९
१८७. पहली जुलाई (२८–६–१९२५) ३१०
१८८. कुछ संस्मरण (२८–६–१९२५) ३११

१८९. काठियावाड़का प्रयोग (२८–६–१९२५) ३१४
१९०. देशबन्धु चिरंजीव हों! (२८–६–१९२५) ३१४
१९१. गंगा-स्वरूप बासन्तीदेवी (२८–६–१९२५) ३१८
१९२. दोष किसका? (२८–६–१९२५) ३२१
१९३. पत्र: सी० एफ० एन्ड्र्यूजको (२९–६–१९२५) ३२२
१९४. पत्र: देवदास गांधीको (२९–६–१९२५) ३२३
१९५. पत्र: जमनालाल बजाजको (२९–६–१९२५) ३२३
१९६. पत्र: मणिबहन पटेलको (२९–६–१९२५) ३२४
१९७. तार: सुधीर रुद्रको (३०–६–१९२५) ३२४
१९८. भाषण: यूनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट, कलकत्तामें (३०–६–१९२५) ३२५
१९९. अपील: देशबन्धु-स्मारक कोषके लिए (१–७–१९२५) ३२६
२००. भाषण: देशबन्धुके श्राद्ध-दिवसपर (१–७–१९२५) ३२७
२०१. प्रश्न-माला (२–७–१९२५) ३३०
२०२. मेरी अक्षमता (२–७–१९२५) ३३२
२०३. टिप्पणियाँ: अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक; एक 'क्रान्तिकारी' का पत्र; एक गलती? क्रान्तिकारी बननेके लिए प्रयत्नशील; अस्पृश्यताके सम्बन्धमें एक प्राचीन मत; (२–७–१९२५) ३३६
२०४. देशबन्धु स्मारक-कोष (२–७–१९२५) ३४०
२०५. चूड़ियोंकी वर्षा (२–७–१९२५) ३४२
२०६. हिन्दुओंको सलाह (२–७–१९२५) ३४३
२०७. वक्तव्य: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको (२–७–१९२५) ३४३
२०८. भाषण: खड़गपुरकी सार्वजनिक सभामें (४–७–१९२५) ३४५
२०९. समस्याएँ (५–७–१९२५) ३४६
२१०. मनोरंजक शिक्षा (५–७–१९२५) ३४८
२११. टिप्पणियाँ: देशबन्धुकी महायात्रा; अखिल भारतीय स्मारक; कलकत्तेके गुजराती (५–७–१९२५) ३४९
२१२. पत्र: महादेव देसाईको (६–७–१९२५) ३५२
२१३. पत्र: महादेव देसाईको (७–७–१९२५) ३५३
२१४. भाषण: मिदनापुरके छात्रोंके समक्ष (७–७–१९२५) ३५३
२१५. भाषण: बाँकुड़ाकी सार्वजनिक सभामें (८–७–१९२५) ३५५
२१६. टिप्पणियाँ: दो कठिनाइयाँ; वैद्योंकी शिकायत; कताई-प्रस्ताव; कताई एक नई आदत (९–७–१९२५) ३५६
२१७. दुःखद जानकारी (९–७–१९२५) ३५८
२१८. त्यागका शास्त्र (९–७–१९२५) ३६१
२१९. एक खामोश समाजसेवी (९–७–१९२५) ३६३
२२०. सुलहका अवसर (९–७–१९२५) ३६५

२२१. दो प्रजातियाँ नहीं (९–७–१९२५) ३६६
२२२. पत्र: वसुमती पण्डितको (९–७–१९२६) ३६७
२२३. भाषण: स्वराज्यवादी पार्षदोंके समक्ष (९–७–१९२५) ३६८
२२४. दार्जिलिंगके संस्मरण (१०–७–१९२५) ३६९
२२५. पत्र: महादेव देसाईको (१०–७–१९२५) ३७६
२२६. गुरुद्वारा कानून (११–७–१९२५) ३७७
२२७. यह तो बलात् संयम है (१२–७–१९२५) ३७७
२२८. 'नवजीवन' बन्द करें (१२–७–१९२५) ३७९
२२९. खादी प्रतिष्ठान (१२–७–१९२५) ३८३
२३०. टिप्पणियाँ: कातनेवाले चेतें (१२–७–१९२५) ३८४
२३१. सम्मति: दर्शक-पुस्तिकामें (१२–७–१९२५) ३८५
२३२. भाषण: राजशाहीकी सार्वजनिक सभामें (१२–७–१९२५) ३८५
२३३. प्रश्नोंके उत्तर (१४–७–१९२५ या उससे पूर्व) ३८६
२३४. सत्यपर कायम रहो (१६–७–१९२५) ३८८
२३५. 'टमानी हॉल' क्या है? (१६–७–१९२५) ३९०
२३६. कलकत्ताके मेयर (१६–७–१९२५) ३९१
२३७. टिप्पणियाँ: स्मारकके सम्बन्धमें दौरा; गरीबीकी निशानी; मौन कार्यकर्त्ता; घरका क्या हो?; शंकालुओंसे; उत्साहप्रद नहीं? (१६–७–१९२५) ३९५
२३८. शंका-निवारण (१६–७–१९२५) ३९८
२३९. पत्र: चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (१६–७–१९२५) ३९९
२४०. पत्र: डब्ल्यू० एच० पिटको (१६–७–१९२५) ४००
२४१. पत्र: मणिबहन पटेलको (१६–७–१९२५) ४०१
२४२. प्रस्ताव: स्वराज्यदलकी बैठकमें (१६–७–१९२५) ४०१
२४३. भाषण: स्वराज्यदलकी बैठकमें (१६–७–१९२५) ४०२
२४४. भाषण: स्वराज्यदलकी बैठकमें (१७–७–१९२५) ४०३
२४५. वंचनासे भरा भाषण (१८–७–१९२५) ४०४
२४६. टिप्पणियाँ: चौर-नीति; सबके सब ब्रह्मचारी; दाहिना बनाम बाँयाँ (१९–७–१९२५) ४०७
२४७. उद्धार कब हो सकता है? (१९–७–१९२५) ४०९
२४८. राष्ट्रीय शिक्षा (१९–७–१९२५) ४११
२४९. पत्र: मोतीलाल नेहरूको (१९–७–१९२५) ४१२
२५०. पत्र: देवदास गांधीको (२०–७–१९२५) ४१३
२५१. पत्र: राजेन्द्रप्रसादको (२१–७–१९२५) ४१४
२५२. अखिल भारतीय स्मारक (२२–७–१९२५ या उससे पूर्व) ४१५
२५३. अपील: अखिल भारतीय देशबन्धु-स्मारकके लिए (२२–७–१९२५) ४१६

२५४. पत्र: शौकत अलीको (२२–७–१९२५) ४१८
२५५. पत्र: कृष्णदासको (२२–७–१९२५) ४१९
२५६. पत्र: निशीथनाथ कुण्डूको (२२–७–१९२५) ४२०
२५७. कताई-सदस्यता (२३–७–१९२५) ४२०
२५८. दमनका फल (२३–७–१९२५) ४२२
२५९. टिप्पणियाँ: अलवर हत्याकाण्ड; आंग्ल भारतीयोंके लिए; अनावश्यक अपव्यय (२३–७–१९२५) ४२३
२६०. भाषण: मारवाड़ी अग्रवाल सम्मेलन, कलकत्तामें (२४–७–१९२५ से पूर्व) ४२७
२६१. पत्र: मेडेलीन स्लेडको (२४–७–१९२५) ४३०
२६२. पत्र: कोण्डा वेंकटप्पैयाको (२४–७–१९२५) ४३१
२६३. भाषण: क्रिस्टोदास पालकी पुण्य तिथिपर (२४–७–१९२५) ४३२
२६४. भाषण: यूरोपीय संघकी बैठकमें (२४–७–१९२५) ४३४
२६५. मेरा धर्म (२६–७–१९२५) ४३७
२६६. अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक (२६–७–१९२५) ४४१
२६७. विविध: दृश्य सेवा बनाम अदृश्य सेवा; स्वयंसेवकका धर्म (२६–७–१९२५) ४४३
२६८. सन्देश: 'फॉरवर्ड'को (२७–७–१९२५) ४४४
२६९. पत्र: बनारसीदास चतुर्वेदीको (२७–७–१९२५) ४४५
२७०. पत्र: डॉ० हनुमन्तरावको (२८–७–१९२५) ४४५
२७१. पत्र: डब्ल्यू० एच० पिटको (२८–७–१९२५) ४४६
२७२. पत्र: च० राजगोपालाचारीको (२८–७–१९२५) ४४७
२७३. पत्र: के० केलप्पन नायरको (२८–७–१९२५) ४४८
२७४. पत्र: फ्रेड ई० कैम्बेलको (२८–७–१९२५) ४४८
२७५. भाषण: ईसाई धर्म प्रचारकोंके समक्ष (२८–७–१९२५) ४४९
२७६. अपील: अखिल बंगाल देशबन्धु-कोपके लिए (२९–७–१९२५) ४५६
२७७. पत्र: शौकत अलीको (२९–७–१९२५) ४५७
२७८. भाषण: आंग्ल-भारतीयोंकी सभामें (२९–७–१९२५) ४५८
२७९. टिप्पणियाँ: दादाभाई शताब्दी; चीनकी दुर्गति; अखिल भारतीय चरखा संघ; एक गलतफहमी; कांग्रेसमें भ्रष्टाचार; देशबन्धु और हाथ-कताई; बहुत महँगा; अपमान और चरखा (३०–७–१९२५) ४६६
२८०. कांग्रेस और राजनैतिक दल (३०–७–१९२५) ४७२
२८१. कांग्रेसमें बेकारी (३०–७–१९२५) ४७५
२८२. खेती बनाम खद्दर (३०–७–१९२५) ४७७
२८३. वक्तव्य: समाचारपत्रोंको (३०–७–१९२५) ४७८
२८४. पत्र: 'स्टेट्समैन'को (३१–७–१९२५) ४७९
२८५. भाषण: कलकत्ताकी सार्वजनिक सभामें (३१–७–१९२५) ४८२

परिशिष्ट

१. सरदार जोगेन्द्रसिंहका पत्र ४८४
२. बी० सी० चटर्जीका पत्र ४८८
३. डब्ल्यू० एच० पिटका पत्र ४९०
४. के० केलप्पनका पत्र ४९२
५. मोतीलाल नेहरूका पत्र ४९३
६. मेडेलिन स्लेडका पत्र ४९५
सामग्रीके साधन-सूत्र ४९७
तारीखवार जीवन-वृत्तान्त ४९८
शीर्षक-सांकेतिका ५०३
सांकेतिका ५०७

चित्र-सूची

१९२५ में मुखचित्र
एन्ड्रचूज और टैगोरके साथ पृष्ठ १७६ के सामने
देशबन्धु चित्तरंजन दास और महादेव देसाईके साथ „ १७७ „

१. सन्देश : जनताके लिए

मुझे आसमानपर चढ़ानेसे कोई लाभ नहीं। यदि आप सचमुच मुझे खुश करना चाहते हैं तो मेरी सलाहपर चलिए।

महिलाओं और पुरुषों, सभीसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप अपनी जेबके मुताबिक ज्यादासे-ज्यादा जितना भी बन पड़े उतना खद्दर खरीदें।

चन्द पैसे शायद आपके लिए बड़ी चीज नहीं हैं; किन्तु उन गरीब ग्रामीणोंके लिए तो वे बड़ी नियामत हैं।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १-५-१९२५

२. भेंट : 'स्टेट्समैन' के प्रतिनिधिसे

कलकत्ता

१ मई, १९२५

श्री गांधीसे सबसे पहले वर्तमान राजनीतिक परिस्थितिमें यूरोपीयों द्वारा अपनाये गये रुखके बारेमें उनके विचार और समय-समयपर राजनीतिक समस्याओंके हलके लिए जो तरह-तरहके रामबाण बतलाये जाते हैं, उनकी भूल-भुलैयाके बीच एक कोई स्पष्ट नीति निरूपित करनेमें अनेक लोगोंको जो कठिनाई महसूस होती है, उसके बारेमें उनकी राय पूछनेपर उन्होंने उत्तर दिया :

राजनीतिक चिन्तनमें लोगोंके पथ-प्रदर्शनके लिए कोई संगठन होना चाहिए और राष्ट्रीय कांग्रेसको राष्ट्रीय भावनाका प्रतिनिधित्व करना चाहिए। वर्तमान कार्यक्रमके दो पक्ष हैं — आन्तरिक और बाह्य। आन्तरिक पक्षका उद्देश्य भी जातियोंकी एकता सम्पादित करना, ('हिन्दू-मुस्लिम एकता' का अभिप्राय भी यही है), हिन्दुओं द्वारा अस्पृश्यता-निवारण, चरखा और खद्दर है।

बाह्य पक्षमें स्वराज्यवादी दल द्वारा कौंसिलोंमें किया जानेवाला काम आता है; यह दल राष्ट्रीय कांग्रेसका एक अविभाज्य अंग है। सारा राष्ट्रीय कार्यक्रम इतना ही है।

भारतकी आम राजनीतिक परिस्थितिके सम्बन्धमें विचार व्यक्त करनेके लिए कहनेपर, महात्मा गांधीने कहा :

निश्चय ही, मैं निराशावादी नहीं हूँ, किन्तु मुझे आशाके ज्यादा आसार नजर नहीं आते। जब कभी हमें अपने आन्तरिक कार्यक्रममें अर्थात् भारतकी सभी

जातियोंकी एकता, अस्पृश्यता-निवारण और चरखेके विकास तथा खद्दरके उपयोगके कार्यक्रममें कोई स्पष्ट सफलता दिखने लगेगी, तभी मुझको भी आशा दिखाई देने लगेगी।

"ब्रिटेनके घोषित मित्र" की हैसियतसे मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि मुझे उनके हृदय-परिवर्तनके कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ते।

यूरोपीय लोग कार्यक्रमके आन्तरिक तथा बाह्य दोनों ही पक्षोंको अपना सहयोग दे सकते हैं और मैं जो बार-बार कहता रहा हूँ, फिर उनसे वही कहता हूँ कि वे कार्यक्रमके दोनों पक्षोंपर इस दृष्टिसे विचार करके देखें। जहाँतक बाह्य पक्षका ताल्लुक है अगर उनको इस बातका भरोसा हो जाये कि हम जो कहते है वही करना भी चाहते हैं और सम्भव होनेपर भी हम अंग्रेजोंको देशसे बाहर निकाल देने या अंग्रेजोंसे नाता तोड़ देनेके लिए कतई उत्सुक नहीं हैं तो उनको हमारे साथ सहयोग करना चाहिए।

असहयोगके प्रश्नके बारेमें श्री गांधीने कहा:

जहाँतक राष्ट्रका सम्बन्ध है, असहयोगका कार्यक्रम स्थगित कर दिया गया है, किन्तु जहाँतक मेरा अपना सम्बन्ध है, यह स्थगित नहीं किया गया है; यद्यपि इसे वैयक्तिक रूपसे स्थगित करना आज कोई अधिक अर्थ नही रखता। मैं कभी कौन्सिलमें नहीं गया; किन्तु मेरे खयालसे कमसे-कम वर्तमान परिस्थितिमें इसे उचित मानना मेरी एक मजबूरी ही है। हालमें ही मुझे जेलकी जो सजा काटनी पड़ी थी, उसके कारण मैं चाहनेपर भी परिषद्में प्रवेश नही कर सकता। और वकालत मैंने बहुत दिन हुए छोड़ दी थी, किन्तु अब 'सोसाइटी ऑफ इनर टेम्पल'[1] ने मेरी सनद छीनकर मेरे प्रलोभनका अन्तिम सहारा भी मुझसे छीन लिया है।

इस तरह मेरा असहयोगका जो रूप अब रह गया है, वह श्री दासके शब्दोंमें एक "मन: स्थिति"-भर है। परन्तु यह एक ऐसी मनः स्थिति है जिसे मैं व्यक्तिगत तौरपर बड़ा महत्त्व देता हूँ, क्योंकि अब सक्रिय असहयोगी न रहनेपर मैं कहीं अधिक प्रभावशाली ढंगसे अंग्रेजोंसे बात कर सकता हूँ। मैं उनसे कह सकता हूँ कि मैं सचमुच उनका मित्र हूँ और मित्रके नाते बतलाना चाहता हूँ कि मुझे उनके हृदय-परिवर्तनके अभी कोई आसार दिखाई नहीं पड़ते।

मैं जन्मजात सहयोगी हूँ, किन्तु मेरे लिए असहयोग आवश्यक हो गया था। अब मैं उस अवसरकी प्रतीक्षामें हूँ जब मैं फिरसे हार्दिक सहयोगी बननेकी घोषणा कर सकूँ।

श्री गांधीने हिन्दू-मुस्लिम एकताका उल्लेख करते हुए कहा:

मैंने अपने दौरेमें देखा है कि दोनों सम्प्रदायोंमें परस्पर अविश्वास और भय है, किन्तु मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि निकट भविष्यमें दोनों सम्प्रदायोंमें एकता स्थापित हो जायेगी। दोनों ही पक्ष इसे एक राष्ट्रीय आवश्यकता मानते हैं।

१. लन्दनकी उन चार संस्थाओंमें से एक, जिन्हें लोगोंको बैरिस्टरी करनेकी सनद देनेका एकाधिकार प्राप्त है।

श्री गांधीने आगे कहा कि इस एकताकी स्थापनासे पहले, हो सकता है कि दोनोंमें टकराव भी हो; उनके टकरावके रूपमें आनेवाली विपत्ति टले चाहे न टले, इतना तो सर्वथा निश्चित है कि आखिरकार दोनोंमें एकता होकर रहेगी।

श्री दासके घोषणा-पत्र तथा समझौतेकी उनकी शर्तोंके बारेमें पूछे जानेपर, श्री गांधीने कहा:

मैं जबतक श्री दाससे परामर्श नहीं कर लेता तबतक मैं चाहूँगा कि मैं उसपर कुछ न कहूँ, मोटे तौरपर मैं इतना जरूर कह सकता हूँ कि समझौतेके अन्तर्गत और समझौता न होता तो भी मेरा कर्त्तव्य है कि मैं स्वराज्यवादी दलकी या व्यक्ति-गत रूपसे श्री दासकी राजनीतिक गतिविधियोंमें कोई अड़चन पैदा न करूँ।

परमश्रेष्ठ वाइसरायके[1] इंग्लैंड जानेके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करनेके लिए कहनेपर, श्री गांधीने कहा:

मैं नहीं जानता कि जो बातचीत चल रही है वह किस प्रकारकी है और मैं अखबारोंके विवरणोंके आधारपर कोई राय नहीं बनाना चाहता, विशेषकर ऐसे समय जब कि मुझे अखबारोंका एक उदासीन पाठक बननेपर विवश होना पड़ा है। बाजारोंमें चलनेवाली बहसोंमें मेरी कभी भी दिलचस्पी नहीं रही। मैं नहीं जानता कि लॉर्ड रीडिंगका उद्देश्य क्या है, मैं लॉर्ड बर्कनहेडके[2] भाषणका फलितार्थ भी नहीं समझा हूँ और परदेके पीछे क्या हो रहा है इसके बारेमें तो और भी कम जानता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

स्टेट्समैन, २-५-१९२५

३. भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे

कलकत्ता
१ मई, १९२५

एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिने आज दोपहर बाद महात्मा गांधीसे भेंट की। उस समय वे कताई कर रहे थे। दास-बर्कनहेडकी बातचीत का उल्लेख करते हुए, महात्माजीने कहा कि मैं तबतक कोई वक्तव्य नहीं दूँगा जबतक कि मैं खुद श्री दाससे मिल नहीं लेता। इस समय कोई वक्तव्य देकर मैं उनके मार्गमें कोई अड़चन पैदा नहीं करना चाहता।

मैं बंगालमें श्री दासके कार्यमें बाधा डालने नहीं बल्कि उन्हें यथाशक्ति सहायता पहुँचाने आया हूँ।

१. लॉर्ड रीडिंग (१८६०–१९३५); इंग्लैंडके मुख्य न्यायाधीश, १९१३–२१; भारतके वाइसराय और गवर्नर-जनरल, १९२१-६; विदेश मन्त्री, १९३१।

२. भारत-मन्त्री १९२४-२८।

बंगालके दौरेकी अवधि बढ़ा देनेके उद्देश्यके बारेमें पूछनेपर, श्री गांधीने कहा कि मैं बंगालमें खादीके प्रचारकी सम्भावनाओंका पता लगाने, अस्पृश्यताकी समस्याका अध्ययन करने और हिन्दू-मुसलमानोंके पारस्परिक सम्बन्धोंको समझनेके लिए आया हूँ। मैंने बहुत दिनोंसे बंगालके कुछ स्थानोंका दौरा करनेका वचन दे रखा था। दक्षिण भारतका दौरा समाप्त करनेके बाद जैसे ही मुझे अवसर मिला मैंने उसका उपयोग बंगाल आनेके लिए किया है। मैं अपनेको स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ और मुझे विश्वास है कि मैं बंगालका कार्यक्रम पूरा कर लूँगा।

प्रतिनिधिने पूछा कि यदि हस्तांतरित विभागोंको और अधिक शक्ति दे दी जाये और औपनिवेशिक स्वराज्यके लिए एक सम्भावित तिथिकी घोषणा कर दी जाये तो आपका क्या रुख होगा? श्री गांधीने मुस्कराते हुए उत्तर दिया:

जब मैं जानता हूँ कि कल ही मैं श्री दाससे मिल सकता हूँ और उनसे बात-चीत कर सकता हूँ, मुझे ठीक-ठीक स्थितिका पता चल सकता है, तब मैं मात्र अनुमानका सहारा क्यों लूँ?

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २-५-१९२५

४. भाषण: कलकत्ताकी सार्वजनिक सभामें[1]

१ मई, १९२५

मित्रो,

मैं हिन्दुस्तानीमें काफी बोल चुका हूँ और मुझे आशा है कि काफी श्रोताओंने मेरी टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी समझ भी ली है। मुझे इस बातसे हार्दिक वेदना होती है कि जब कभी मैं दक्षिणमें या बंगालमें आता हूँ तो मुझे शिक्षित भाइयोंको अपनी बात समझानेके लिए अंग्रेजीमें बोलनेपर मजबूर होना पड़ता है। मैं चाहता हूँ कि दक्षिण और बंगालके लोग आलस्य छोड़ दें और अपनी मातृभाषाके ज्ञानके साथ-साथ हिन्दी या हिन्दुस्तानीका भी अच्छा ज्ञान प्राप्त करनेका संकल्प कर डालें। हिन्दी, केवल हिन्दी ही भारतमें अन्तर्प्रान्तीय विनिमयकी भाषा बन सकती है। अंग्रेजीको, जैसा कि उसे होना चाहिए, अन्तर्राष्ट्रीय राजनयिक भाषा, और संसारके विभिन्न राष्ट्रोंकी पारस्परिक विचार-विनिमयकी भाषा रहने दिया जाये। किन्तु जो विशेष काम हिन्दी या हिन्दुस्तानीसे सध सकता है, वह अंग्रेजीसे कभी सम्भव नहीं है। आपको यह जानना चाहिए कि भारतके करीब २० करोड़ लोग मेरी टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी समझ लेते हैं। लोगोंको ऐसा कहनेका अवसर मत दीजिए कि भारतके १०

१. मिर्जापुर पार्कमें हुई इस सभामें करीब १० हजार लोग उपस्थित थे। सभाकी अध्यक्षता श्री प्रफुल्लचन्द्र रायने की थी।

करोड़ लोग भारतके ३० करोड़ लोगोंपर अपनी भाषा या अंग्रेजी भाषा लादना चाहते हैं।

मैंने अपने भाषणके प्रारम्भमें बताया है कि आज सुबह १४८, रसा रोडमें प्रवेश करते समय मुझे कितना दुःख हुआ। मैं जानता हूँ कि वह भवन अब देशबन्धु दासका नहीं रहा। मैं जानता था कि वे उस सुन्दर प्रासादको न्यासियोंको सौंपनेका विचार कर रहे हैं ताकि वे अपनी धन-सम्पदाके इस एक रहे-सहे चिह्नसे भी अपनेको मुक्त कर सकें। धन-सम्पदाके नामपर केवल यही उनके पास बचा था। लेकिन अभीतक दुनियामें रमे हुए मेरे जैसे दुनियादार आदमीने जब यह जानते हुए उस भवनमें कदम रखा कि उसके प्रख्यात स्वामीने स्वेच्छया उसके स्वामित्वसे अपने आपको वंचित कर लिया है तो मेरी आँखें भर आईं। मेरा मन यह सोचकर कसक उठा कि यह घर अब दासका नहीं है और जब मैंने यह सुना कि वे अभीतक अपने गिरे हुए स्वास्थ्यको सँभाल नहीं पाये हैं तो मुझे और अधिक पीड़ा हुई। उनका पैंसिलसे लिखा संक्षिप्त किन्तु सुन्दर और प्यार-भरा सन्देश पढ़कर तो मेरी पीड़ा कई गुनी बढ़ गई। उस सन्देशमें उन्होंने लिखा था कि दोगुना भार सहन करना उनके सामर्थ्यसे बाहर हो गया था, इसीलिए वे पहले ही फरीदपुर पहुँच गये थे। ईश्वर उन्हें इस देशकी सेवाके लिए, जिसे वे इतना अधिक प्यार करते हैं, स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन प्रदान करे।

आप मुझसे यह आशा नहीं करेंगे कि मैं राजनीतिक स्थितिके बारेमें कुछ कहूँ। एक समाचारपत्रके संवाददाताने मुझे बताया कि लॉर्ड बर्कनहेड और देशबन्धु दासके बीच वार्ता चल रही है। मुझे इस प्रकारकी किसी भी वार्ताकी कोई जानकारी नहीं है; किन्तु मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि देशमें आज एक ऐसी स्थिति है जिसे हम राजनीतिक स्थिति कह सकते हैं। किन्तु इस समय उस राजनीतिक स्थितिमें मुझे ज्यादा दिलचस्पी नहीं है। मैं अपने समयका बिलकुल ठीक-ठीक उपयोग करना चाहता हूँ। मैंने जान-बूझकर स्वराज्यवादी दलको अपनी आम मुख्तारी सौंप दी है। वह कांग्रेसका एक अभिन्न अंग है। कांग्रेसके राजनीतिक कार्यक्रमको चलानेकी जिम्मेदारी उसीपर है और चूँकि मुझे पूरा भरोसा है कि स्वराज्यवादी दल राजनीतिक स्थितिको सँभालनेकी योग्यता रखता है और चूँकि जहाँतक परिषद् सम्बन्धी कार्यक्रमका प्रश्न है, देशबन्धु और पण्डित मोतीलाल नेहरूकी विवेकबुद्धिपर मुझे पूरा भरोसा है, इसलिए जबतक वे खुद न चाहें तबतक उनके क्षेत्रमें दखल देना मेरी धृष्टता ही होगी। इस समय तो ऐसा कोई भी कारण दिखाई नहीं पड़ता कि वे [कौंसिलोंसे सम्बन्धित किसी बातमें] मेरा हस्तक्षेप चाहें या मेरी राय लें। जब कभी वे चाहेंगे मैं उनकी सेवामें हाजिर ही हूँ। किन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि जबतक मैं देशबन्धु दाससे बात नहीं कर लेता तबतक मैं राजनीतिक परिस्थितिके बारेमें अपनी कोई निश्चित राय नहीं दे सकता। मैं स्वराज्यवादी दल या देशबन्धु अथवा स्वराज्यवादी दलके किसी एक सदस्यके रास्तेमें अड़चन पैदा करनेके लिए बंगाल नहीं आया हूँ, और न इसके लिए सारे देशका दौरा कर रहा हूँ। मैंने ईश्वर-

को साक्षी मानकर संकल्प किया है कि मैं अपनी शक्ति-भर इस दलकी सहायता करूँगा। मैंने संकल्प किया है कि मैं इस दलके कार्यक्रममें हस्तक्षेप करनेकी बात मनमें भी नहीं आने दूंगा। मैंने अपना तन-मन इसके कार्यक्रममें नही लगा दिया है, इसका मात्र कारण यही है कि मेरी अपनी कुछ सीमाएँ हैं, और मैं इस दलकी नीतिसे पूर्णतया सहमत नहीं हूँ। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मुझे उनकी सहायता नहीं करनी चाहिए। इसका यह भी अर्थ नहीं कि उनकी नीति देशके लिए हानिकारक है। इसका इतना ही अर्थ है कि हममें, राजनीतिक कार्यक्रम और रचनात्मक कार्यक्रम इन दोनोंमें से किसे कितना महत्त्व दिया जाये और किसपर अपेक्षाकृत अधिक जोर दिया जाये — इस बातको लेकर मतभेद है। मेरी श्रद्धा तो रचनात्मक कार्यक्रमपर ही है। मैं जितना ही अधिक आत्म-विवेचन करता हूँ उतना ही अधिक यह महसूस करता हूँ कि इंग्लैंडके बेजोड़ राजनयिकोके साथ कूटनीतिक दाँव-पेच करनेकी अपेक्षा देशकी आत्म-शक्तिके विकासके लिए रचनात्मक कार्यक्रमको क्रियान्वित करनेके लिए ही मै अधिक उपयुक्त हूँ। मैं आपके सामने स्वीकार करता हूँ कि जबतक मुझे यह नहीं लगेगा कि हमारे अन्दर आत्मिक शक्ति मौजूद है, तबतक मुझे उनमें से किसी भी अधिकारीके साथ वार्ता चलानेमें बड़ा अटपटापन महसूस होगा। और मैं आपको यही बतलाने यहाँ आया हूँ कि आज हमारे अन्दर वह शक्ति नही रह गई है जो १९२१ में हम समझते थे कि हमारे अन्दर पर्याप्त मात्रामें मौजूद है। इसीलिए मैं अपनी समूची शक्ति और योग्यता इसी एक काममें, इसी रचनात्मक कार्यक्रममें लगा देना चाहता हूँ। यही देश और स्वराज्यवादीदल — दोनोंकी मेरी सर्वोत्तम सेवा होगी, यही मेरा सर्वोत्तम योगदान होगा। यदि आप, बंगालके नवयुवक और नवयुवतियाँ, चाहे आप किसी भी राजनीतिक दलसे सम्बद्ध क्यों न हों, मेरी सहायता करें, यदि आप कृपापूर्वक इस रचनात्मक कार्यक्रमको एक फलता-फूलता रूप प्रदान करनेमें मेरी सहायता करें तो हमारी बेड़ियाँ स्वयंमेव टूटकर गिर जायेंगी। यदि आप रचनात्मक कार्यक्रमको सफल बना सकें तो जिन लोगोंको हमारे विचारसे अन्यायपूर्वक जेलकी सजाएँ दी गई हैं और जिनको नजरबन्द रखा जा रहा है, जो आज मांडलेकी जेलोंमें यन्त्रणा पा रहे हैं, आप देखेंगे कि वे आपके कहे बिना ही मुक्त कर दिये जायेंगे। पर यह रचनात्मक कार्यक्रम जो मेरी टेक है, असलमें है क्या? मैं उन तीनों बातोंके बारेमें संक्षिप्तसे-संक्षिप्त रूपमें आपसे कुछ कहूँगा। हिन्दू-मुस्लिम एकताका अर्थ उन सभी जातियोंमें एकता स्थापित करना है जो हमारे इस सुन्दर देशमें बसती हैं। क्या हम इस कार्यक्रमको पूरा नहीं कर सकते? क्या यह कार्यक्रम अवांछनीय है? किन्तु मैंने इस सिलसिलेमें अपनी अक्षमता स्वीकार कर ली है। मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि मैं इस रोगके चिकित्सकके रूपमें पूरा नहीं उतरा हूँ। मुझे ऐसा नही लगा कि हिन्दू या मुसलमान कोई भी मेरे बतलाये इलाजको स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं। इसीलिए मैं आजकल सिर्फ सरसरी तौरपर ही इस समस्याका जिक्र करता हूँ। और इससे अधिक कुछ भी नही कहता कि यदि हम देशकी मुक्ति चाहते हैं तो हमें हिन्दुओं और मुसलमानोंको किसी-न-किसी दिन एक

होना ही पड़ेगा। यदि एक होनेसे पहले हमारे भाग्यमें एक-दूसरेका खून बहाना ही बदा है तो मेरा कहना है कि हम जितनी जल्दी ऐसा कर डालें उतना ही अच्छा रहेगा। यदि हम एक-दूसरेके सिर फोड़ना चाहते हैं तो ऐसा पुरुषोचित ढंगसे खुल्लम-खुल्ला करना चाहिए; हमें परस्पर हमदर्दीका केवल ढोंग नहीं करना चाहिए। आप यदि किसीके प्रति हमदर्दी नहीं दिखाना चाहते तो किसीसे अपने प्रति हमदर्दी जाहिर करनेके लिए भी न कहें। हिन्दू-मुस्लिम एकताके बारेमें मैं इतना ही कहना चाहता हूँ।

क्या हम हिन्दुओंके लिए अपने आपको अस्पृश्यताके अभिशापसे मुक्त कर लेना बड़ा ही समय-साध्य या असम्भव कार्यक्रम है? जबतक अस्पृश्यता हिन्दू धर्मको विकृत बनाये हुए है, तबतक मेरे विचारमें स्वराज्य प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है। मान लें कि ब्रिटिश सरकार भारतको उपहारके रूपमें स्वराज्य दे देगी; लेकिन अगर हम अपने-आपको इस अभिशापसे मुक्त नहीं कर पाये तो वह उपहार हमारे पवित्र देशके लिए एक अभिशाप ही सिद्ध होगा। अस्पृश्योंकी स्वतन्त्रताके बिना स्वराज्य एक बड़ा अभिशाप सिद्ध होगा। परन्तु अस्पृश्यता-निवारणका वास्तविक आशय क्या है, सो मैं सनातनी हिन्दुओंको भली-भाँति समझा देना चाहता हूँ; और यह इसलिए कि मैं सनातनी हिन्दू होनेका दावा करता हूँ। मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप किसीके साथ खान-पानका व्यवहार करें। मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप अस्पृश्योंके या किसी भी अन्य जातिके लोगोंके साथ बेटी-व्यवहार रखें, लेकिन मैं आपसे यह जरूर कहता हूँ कि आप अस्पृश्यताके अभिशापको दूर करें, ताकि ऐसा न हो कि आप उनकी सेवा करनेसे वंचित रह जायें। मेरे लिए अस्पृश्यता-निवारण उन लोगोंकी सेवा करनेके अपने अधिकारका दावा करना है, जिनको हमने धर्मके पवित्र नामपर गुलाम बना रखा है। कलकत्ताके सनातनी हिन्दू मेरी बातपर कान दें; यह हिन्दू-धर्मकी परीक्षाकी घड़ी है; उसके गुण-दोषोंको काँटेपर रखकर देखा जा रहा है। यदि आप अस्पृश्यताको दूर नहीं करेंगे तो इस धर्मके दोषोंका पलड़ा इतना भारी हो जायेगा कि यह रसातलको चला जायेगा। मैं अस्पृश्यताके बारेमें इतना ही कहूँगा।

इसके बाद आप अपने कार्यक्रमकी तीसरी मद — चरखे और खद्दर — को लें। मैं आपसे क्या चाहता हूँ? कलकत्ताके करोड़पतियो, बैरिस्टरो, और कलकत्तेके विधान-सभासदो तथा पार्षदो, मैं आपसे क्या चाहता हूँ? कलकत्ताकी महिलाओ, मैं आपसे क्या चाहता हूँ? मैं भारतकी विनष्ट होती और भूखों मरती हुई मानवताके लिए ईश्वरके नामपर नित्य आपका आधा घंटा चाहता हूँ। इस कामको करने अर्थात् गरीबोंके लिए आधा घंटा कातनेको देना क्या आपके लिए बहुत अधिक है? ऐसा करनेसे खद्दर सस्ता हो जायेगा और मैं बंगालके ग्रामीणोंसे कह सकूँगा कि करोड़पतियोंकी कन्याएँ और उनके पुत्र आपके लिए कताई कर रहे हैं। क्यों? क्यों आप नहीं कातेंगे? क्या आप जानते हैं कि ग्रामीणोंका हमपर से, स्वयं अपनेपर से और ईश्वरपर से विश्वास उठ गया है? क्योंकि वे देखते हैं, हम उनके पास अकसर जाया करते हैं, कभी एक कार्यक्रम और कभी दूसरे कार्यक्रमके लिए पैसा इकट्ठा करने। वे नहीं जानते कि हम उन्हें कहाँ ले जाना चाहते हैं, इसलिए वे हमपर विश्वास

नहीं करते; और जब हम अपनी नासमझीमें चरखा लेकर उनके घरोंमें जाते हैं तो वे हमपर मुस्कराते हैं, अविश्वास भरी होती है उनकी वह मुस्कराहट। वे यह नही कहते कि आपके इस उपकरणके बारेमें हम कुछ नहीं समझते। किन्तु चूँकि हम नही जानते कि चरखेका गूढ़ अर्थ या आशय क्या है और ग्रामीण लोग इसकी खूबीको, संजीवनी प्रदान करनेवाले इस चरखेके सौन्दर्यको भूल गये हैं, तब वे इसपर सहज ही विश्वास नहीं कर पाते। यदि आप चाहते हैं कि वे इस घरेलू धन्धेको सहज विश्वासके साथ अपनायें तो आपके लिए आवश्यक है कि आप स्वयं चरखा चलायें। और यह बात याद रखें कि जबतक आप स्वयं चरखा नहीं चलायेंगे तबतक आप इसमें आवश्यक सुधार नहीं कर सकेंगे, और जबतक आप इसमें आवश्यक सुधार नहीं करेंगे तबतक आप भारतके इस नष्टप्राय उद्योगकी पुनःस्थापना नही कर सकेंगे। अभीतक संसार-का कोई भी कृषिप्रधान देश ऐसा नही है जिसने कृषिके साथ कोई अनुपूरक उद्योग न रखा हो। मैं प्रत्येक भारतीयको, चाहे वह कितना ही प्रसिद्ध अर्थशास्त्री क्यों न हो, चुनौती देता हूँ कि वह भारतके करोड़ों लोगोंके लिए जो १९०० मील लम्बे तथा १५०० मील चौड़े तथा ७ लाख गाँवोंमें — जिनमें से बहुत-से गाँव रेलसे बहुत दूर है — बिखरे हुए हैं, कोई अन्य कारगर अनुपूरक उद्योग बताये। मैं किसी भी व्यक्तिको चुनौती देता हूँ कि वह किसी अन्य कारगर अनुपूरक उद्योगका प्रस्ताव रखे या सुझाये। किन्तु जबतक इसकी जगह ऐसा दूसरा कारगर उद्योग आपके सामने नहीं रखा जाता, तबतक आप अपना समय बेकार न खोयें, भारतकी गरीब पददलित मानवताको आधा घंटा समय देनेसे गुरेज न करें। मैं आपसे आधा घंटेकी माँग करता हूँ, कांग्रेस आधा घंटेकी माँग करती है। तब यदि आप चरखेको अपनाते हैं तो उसके उत्पादनका क्या होगा? चरखेकी आवश्यकता क्यों है? इसलिए कि हम मैंचेस्टर या जापानके बने कपड़े नही चाहते, न हम बम्बई या अहमदाबादमें बने कपड़े ही चाहते हैं। इन कपड़ोंने बंग-भंगके समय कोई मदद नही की थी। किन्तु हम चाहते हैं सुन्दर खद्दर, जो हमारे अपने गाँवके घरोंमें बनता है और जो सदैव हमारी मदद करता है। हम चाहते हैं कि हमारे ग्रामीण समृद्ध होकर मुस्करायें। हम चाहते हैं कि खुलनाके लोगोंको यदि फिरसे दुर्भिक्षका सामना करना पड़े तो वे समझ लें कि उन्हें डॉ० राय-जैसे किसी व्यक्ति द्वारा भीखमें दिये गये चावलोंपर नहीं रहना है, बल्कि मैं चाहता हूँ कि वे अनुभव करें कि उन्हे किसी रायकी सहायता-की भी आवश्यकता नही, क्योंकि उनके पास सहारेके लिए चरखा है। जब उनके हाथमें आजीविकाका एक उपकरण तैयार है, तब उन्हें भिखारी नहीं बनना चाहिए। यह उपकरण दुर्भिक्षके विरुद्ध गारंटी, स्थायी गारंटी होगी। इसीलिए तो मैं आपसे कहता हूँ कि आप चरखे और खद्दरको अपनायें। यही वह चीज है जिसके लिए मैं बंगाल आया हूँ।

आज मैं बंगाल या भारतकी राजनीतिमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। ऐसे व्यक्ति मौजूद ही हैं जो राजनीतिमें पर्याप्त रूपसे समर्थ हैं। मैं तो अपनेको चरखा-विशेषज्ञ, खद्दर-विशेषज्ञ समझता हूँ। मेरा विश्वास है कि मुझे प्रत्येक स्त्री और पुरुष-

से इस खद्दरके सन्देशके बारेमें कुछ-न-कुछ कहना है और इसलिए जबतक मैं जीवित हूँ, जबतक बंगाल मेरी बात सुननेके लिए तैयार और इच्छुक है, तबतक मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर अपना सन्देश आपको बार-बार देते रहना चाहता हूँ। मैं कहता हूँ कि यदि आप अपने देशके लिए स्वतन्त्रता चाहते है तो आप और जो-कुछ चाहे करें, किन्तु कमसे-कम उसके लिए एक दृढ़ तथा स्थायी नीव तो डालें ही जिसपर कि आप उपयुक्त और दृढ़ ढाँचा खड़ा कर सकें। इस बूढ़ेके शब्दोंको, जो आपसे कलकत्तामें बार-बार कह रहा है और जो बंगालके इस दौरेमें बार-बार कहता रहेगा, याद रखें कि यदि आपने पक्की नीव नही डाली तो आपको मिलनेवाला कोई भी सुधार और स्वतन्त्रता जिसे आप तो मिली हुई समझेंगे, बालूकी दीवार ही साबित होगी; वह हवाके पहले झोंकेके साथ ही ढह जायेगी। इसीलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस सन्देशपर, चरखे और खद्दरके सजीव सन्देशपर अमल करें। हिन्दुओ, आप इस अस्पृश्यताके अभिशापको दूर करें। हिन्दुओ और मुसलमानो, यदि यह आपके लिए सम्भव हो तो एक भी बूँद खून बहाये बिना आप एक हो जायें और भाईकी तरह एक-दूसरेको गले लगा लें।

आपने मेरा भाषण धैर्यसे सुना है। इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २-५-१९२५

५. भाषण : फरीदपुरकी औद्योगिक प्रदर्शनीमें

फरीदपुर
२ मई, १९२५

प्रदर्शनीका उद्‌घाटन करते हुए, श्री गांधीने कहा कि किसानका पुत्र होनेके नाते मैं खेती-बाड़ीके बारेमें थोड़ा-बहुत जानता हूँ। मुझे भारत तथा दक्षिण आफ्रिकाके किसानोंके बारेमें बहुत-कुछ जानकारी है। मैंने दक्षिण आफ्रिकामें अपने जीवनके २० से अधिक वर्ष बिताये हैं। मैं इन दोनों देशोंके कृषि-विभागोंका काम देख चुका हूँ। ये विभाग साधारण गरीब किसानोंको भी सहायता देनेके लिए उत्सुक रहते थे। दुर्भाग्यसे इस दिशामें व्यावहारिक रूपसे कुछ भी नहीं किया गया है। यह कहा गया है कि भारतके किसान आलसी होते हैं; मैं इससे सहमत नहीं हूँ। मैं इस बातको अवश्य स्वीकार करता हूँ कि वे वास्तवमें सालमें छः महीने खाली बैठे रहते हैं। यह इसलिए नहीं कि वे आलसी हैं, बल्कि इसलिए कि उनके पास करनेको कोई काम नहीं रहता। वे इन महीनोंमें कताईका काम अच्छी तरहसे कर सकते हैं और अपनी स्थिति सुधार सकते हैं। मैं अपनी पूरी शक्तिके साथ घोषणा करनेके लिए तैयार हूँ कि भारतको मुक्ति चरखेमें ही है। इसके बारेमें कोई मतभेद हो ही नहीं सकता।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३-५-१९२५

६. भाषण: अखिल बंगाल हिन्दू सम्मेलनमें[1]

फरीदपुर
२ मई, १९२५

अध्यक्षका अनुरोध है कि मैं आपके सामने तीन बातोंके बारेमें अपने विचार प्रकट करूँ। पहली है हिन्दू-मुस्लिम एकता। यह एक मार्मिक प्रश्न है। मैंने इसपर बहुत अधिक विचार किया है। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह हमें शान्ति, जिसके हम इतने इच्छुक हैं, प्रदान करे। इस समय हिन्दू और मुसलमान आपसमें लड़ रहे हैं और दोनोंमें बड़ी कटुता पैदा हो गई है। उनमें हृदयकी एकता नहीं है। मैंने एकता स्थापित करनेके लिए भरसक प्रयत्न किया; और मुझे यह स्वीकार करनेमें लज्जाका अनुभव नहीं होता कि मुझे उसमें सफलता नहीं मिली। मैं केवल यह चाहता था कि वे लड़ें तो पुरुषोचित ढंगसे, मर्दानगीके साथ लड़ें, न्यायालयोंकी शरणमें तो न जायें; तभी वे जान सकते हैं कि एक जाति दूसरी जातिको बिलकुल नष्ट नहीं कर सकती और न सारे भारतको हिन्दू धर्म या मुसलमान धर्म ही स्वीकार कराया जा सकता है। तब यह चिरवांछित एकता अपने-आप पैदा हो जायेगी।

अस्पृश्यताके सम्बन्धमें मेरे विचार सर्वविदित हैं; और मैं हजारों बार विभिन्न मंचोंसे उन्हें प्रकट कर चुका हूँ। मेरा विश्वास है कि जबतक हिन्दुओंमें अस्पृश्यता है तबतक उनका कुछ भी भला नहीं हो सकता। यह एक जबर्दस्त पाप है। इसके लिए धर्मकी कोई भी अनुमति नहीं है। यदि हिन्दू अपने लाखों भाइयोंको अस्पृश्य कहकर अपमानित करते हैं तो वे बड़े कैसे बन सकते हैं? इसलिए मैं यहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्तिसे अपील करता हूँ कि वे इस अस्पृश्यताके कलंकको दूर करें और दूसरोंको भी इसके लिए प्रेरित करें। अस्पृश्यता-निवारणका यह अर्थ कभी नहीं है कि वर्णाश्रम धर्मका उन्मूलन किया जाये। वह तो बड़ी ही सुन्दर और लाभप्रद वस्तु है, वह बुरी तो है ही नहीं। किन्तु मैं जानता हूँ कि आज वर्णाश्रम धर्मके नामपर बहुत-से गलत काम हो रहे हैं। उन्हें निश्चित रूपसे दूर कर देना होगा। इसका यह अर्थ भी नहीं है कि हम सबमें परस्पर रोटी-बेटीका व्यवहार हो? आपको अस्पृश्यता और वर्णाश्रम धर्मके बीचका भेद नहीं भूलना चाहिए।

चरखे और खद्दरके सम्बन्धमें मेरा कहना है कि चरखा भारतका जीवन है और मैंने इसकी तुलना सुदर्शनचक्र तथा कामधेनुसे की है। हिन्दुस्तानमें गरीबी चरखेके विनाशके साथ शुरू हुई; इसलिए गरीबी दूर करनेके लिए हमें पुनः चरखेको उसके स्थानपर स्थापित करना होगा। चरखेको हमारे घरोंमें पहला स्थान मिलना चाहिए। अपने भूखे भाइयोंकी मुक्तिके लिए आपको प्रत्येक घरमें ईश्वरके नामपर

१. अध्यक्ष आचार्य रायने गांधीजीसे प्रार्थना की कि वे देशके महत्त्वपूर्ण मौजूदा प्रश्नोंपर बोलें। गांधीजीने हिन्दीमें भाषण दिया था। मूल भाषण उपलब्ध नहीं है।

प्रतिदिन आधा घंटा चरखा चलाना चाहिए। इसे सबसे पहले शिक्षित लोगोंको अपनाना चाहिए ताकि अन्य लोग उनका अनुसरण कर सकें। सुबह जब मैंने औद्योगिक प्रदर्शनीका उद्घाटन किया तब मुझे चरखेकी बनावटमें बहुत-सी त्रुटियाँ नजर आईं। वे तभी दूर हो सकती हैं जब शिक्षित लोग उसमें अपना दिमाग लगायें। आप जानते हैं कि सुधरे हुए चरखोंने — मेरा मतलब मैंचेस्टरकी मिलोंसे है — भारतीय जनतामें तबाही मचा दी है, इसलिए मेरी इच्छा है कि कोई भी घर बिना चरखेका नहीं रहना चाहिए। मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप खद्दर पहनें। चार वर्ष पूर्व जब मैं ढाका गया था, मेरा हृदय ढाकाकी मलमलको देखकर दुखी हो गया था। वह अब उस विदेशी सूतसे बनती है जो इंग्लैंड या जापानसे आता है। जैसा खद्दर आपके प्रदेशमें तैयार किया जाता हो आप वैसा ही खद्दर पहनें। एक दिन एक बंगाली लड़की, जो अत्यन्त महीन सूत कात सकती थी, मेरे पास आई। उसका नाम अपर्णा देवी था। मैंने उससे मिलकर अपनेको भाग्यशाली माना। मैं बंगाली महिलाओंसे अपील करता हूँ कि वे ऐसा प्रयास करें कि अपने पतियों तथा पुत्रोंके पहननेके लिए स्वयं महीन खादी तैयार कर सकें।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३-५-१९२५

७. भाषण: बंगाल प्रान्तीय युवक सम्मेलनमें

२ मई, १९२५

अध्यक्षने[1] महात्माजीसे प्रार्थना की कि वे वहाँ एकत्र देशके आशावादी तरुणोंसे सलाहके तौरपर कुछ कहें। महात्माजी काफी देरतक भाषण देते रहे। अपने भाषणके दौरान उन्होंने बताया कि तरुणोंने देशके पुनरुत्थानमें क्या भाग लिया है। उन्होंने कहा कि मैं भाषणोंसे तंग आ गया हूँ, किन्तु मैं आप लोगोंके साथ दिल खोलकर बात करना चाहता हूँ। नवयुवकोंको अपने मनसे सारे बुरे विचार निकाल बाहर कर देने चाहिए। आपके जीवनका आदर्श सेवा होना चाहिए या एक शब्दमें कहूँ तो आपके जीवनकी अनिवार्य शर्त ब्रह्मचर्य होनी चाहिए। ब्रह्मचर्य केवल हिन्दू धर्मतक ही सीमित नहीं है — वास्तवमें यह सभी युगोंमें सभी धर्मोंका अनिवार्य आधार रहा है। इसके बाद, उन्होंने कुछ ऐसे प्रतिभाशाली नवयुवकोंके उदाहरण दिये जिन्होंने ब्रह्मचर्यके अभावमें अपना जीवन नष्ट कर दिया और कहा कि मैं आपमें से प्रत्येकसे इस बातका आश्वासन चाहता हूँ कि आप शुद्ध जीवन बितायेंगे।

फिर उन्होंने असहयोग आन्दोलनका उल्लेख करते हुए कहा कि यह आन्दोलन और कुछ नहीं, केवल आत्मशुद्धिका आन्दोलन है। आपको मेरी सलाह यह है कि

१. जितेन्द्र मोहन राय।

आप अपनेको ईश्वरकी इच्छापर छोड़ दें। अब मैं अपने शाश्वत सन्देशपर आता हूँ। वह सन्देश है — खद्दर, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुस्लिम एकता। मैं चरखेकी क्षमताके सम्बन्धमें जोर देकर कहता हूँ कि यह एकाग्रता और आत्म-शुद्धिका साधन है। और ये दोनों चीजें वर्तमान समयके लिए नितान्त आवश्यक हैं। मैं आप लोगोंको आशीर्वाद देता हूँ और ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको भारतकी उच्चादर्शपूर्ण परम्पराओंको कार्यरूपमें परिणत करनेकी क्षमता दे।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ८-५-१९२५

८. अस्पृश्योंके साथ बातचीत

फरीदपुर

[३ मई, १९२५ या उससे पूर्व][1]

गांधीजीने सबसे पहले बंगालमें अस्पृश्यताके बारेमें जानकारी माँगी। उन्हें बताया गया कि बंगालमें अछूतोंके विभिन्न तबके हैं — शाहा, कैवर्त, नामशूद्र तथा मेहतर — और इनमें भी छोटे-बड़ेकी भावनाके कलंकने घर कर लिया है। तब उन्होंने उन निर्योग्यताओंके बारेमें पूछा जिनका सामना उन्हें करना पड़ता है। एक सज्जनने स्वीकार किया कि बंगालमें उस प्रकारकी अस्पृश्यता नहीं है, जैसी हम पश्चिमी और दक्षिणी भारतमें देखते हैं, किन्तु छोटे-बड़ेकी भावना तो है ही। नामशूद्र उच्च हिन्दूके घरमें प्रवेश तो कर सकता है, किन्तु उन कमरोंमें नहीं जा सकता जहाँ पानी रखा हो। कोई भी हिन्दू उसके हाथका पानी नहीं पियेगा। उसे मन्दिरोंमें भी नहीं जाने दिया जाता। वह नाई और धोबीकी सेवाएँ प्राप्त नहीं कर सकता। एक सज्जनने पूछा कि साहब, हम इन निर्योग्यताओंको कैसे दूर कर सकते हैं?

यह आपने बड़ा अच्छा प्रश्न पूछा है। इसके बहुत-से तरीके हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो अत्याचारी पक्षके विरुद्ध हिंसाका प्रयोग करके बलपूर्वक उससे सुधार करायेंगे। मेरी भेंट ऐसे मित्रोंसे पूनामें हुई थी। वे मुझे एक मानपत्र भेंट करना चाहते थे। मानपत्र हिन्दी या मराठीमें नहीं, बल्कि अंग्रेजीमें था, क्योंकि इस समारोहका आयोजन एक अंग्रेजी जाननेवाले युवकने किया था। वह उनका नेता होनेका दावा करता था। मानपत्रमें धमकी दी गई थी कि यदि उच्च वर्णके लोग उनके प्रति अपना व्यवहार नहीं सुधारेंगे तो वे उनके विरुद्ध बलप्रयोग करके उन्हें सबक सिखा देंगे। यह भी एक तरीका है। मैंने उन्हें बताया कि यह विचारशील लोगोंकी सद्भावनाको खो देने तथा अपने उस उद्देश्यको — जिसे वे सिद्ध करना चाहते हैं — निष्फल बना

१. गांधीजी १ से ४ मईतक फरीदपुरमें थे। सोमवार, ४ मईको उनका मौनवार था। इसलिये यह वार्तालाप ३ मई या इससे पहले हुआ होगा।

देनेका एक निश्चित तरीका है। साथ ही इससे उन्हें सहायता देनेके सुधारकों द्वारा किये जानेवाले प्रयत्न भी व्यर्थ हो जायेंगे। एक और तरहके लोग भी हैं। मैं उनसे दक्षिणमें मिला। वे हिन्दू धर्मको छोड़कर ईसाई या मुसलमान बननेकी धमकी देते हैं। मैंने उनसे कहा कि यदि आप लोगोंमें कोई धर्म है तो उसकी अब परीक्षा हो रही है और यदि आप उसे इसलिए छोड़ना चाहते हैं कि आपके साथ दुर्व्यवहार होता है तो आपका धर्म ठीकरेके मोल भी महँगा है। मेरे इंग्लैंड जानेके कारण, मुझे जातिसे बहिष्कृत कर दिया गया था। मेरे विचारमें वैसा करना गलत था, किन्तु क्या उस कारण मुझे अपने धर्मका परित्याग कर देना चाहिए था? मेरे विचारमें तीसरा तरीका और एकमात्र शुद्ध तरीका आत्मशुद्धिका है अर्थात् वह तरीका ऐसा है जो आपपर लगाये जानेवाले सभी आरोपोंसे मुक्त है।

एक वकील मित्रने उत्तर दिया कि मैं समझता हूँ, हिंसा और धमकी: 'जिनका वर्णन आपने किया है, अच्छी चीजें नहीं हैं।'

हाँ, आत्मशुद्धि एक तरीका है। क्या आप मरे हुए पशुका मांस खाते हैं?

नहीं, हममें से बहुत ही कम लोग मांस खाते हैं। हममें जो लोग वैष्णव हैं, वे मांस बिलकुल नहीं खाते; हाँ, हम मछली जरूर खाते हैं।

अच्छा, तब आपको आत्मशुद्धिके लिए औरोंकी अपेक्षा कम प्रयत्न करना पड़ेगा। आप लोगोंमें जो अपने-आपको उच्च समझनेकी थोड़ी-सी भी भावना है तो उसे आपको छोड़ देना चाहिए। आप उन सारी बुराइयोंको दूर करनेका प्रयत्न करें जिनका आरोप कट्टरपन्थी हिन्दू आपपर, सम्भवतः किसी आधारपर, लगाते हैं। इस प्रकार आप उनके पूर्वग्रहोंपर विजय प्राप्त कर लेंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि बुराइयाँ उनमें नहीं हैं। लेकिन आपका यह काम नहीं कि आप उनसे नफरत करने लगें। हो सकता है कि यह लम्बी प्रक्रिया हो, किन्तु यही एक अचूक तरीका है। मैं जानता हूँ कि एकाध बार कड़ी कार्रवाई करके भी आप उनसे घुटने टिकवा सकते हैं। उदाहरणके लिए, कलकत्ता-जैसे नगरोंमें भंगी यदि इस बातपर हड़ताल कर दें कि आप हमारी निर्योग्यताओंको दूर नहीं करते तो हम काम नहीं करेंगे, तब मेरा विश्वास है कि वे सफल जरूर हो जायेंगे; किन्तु इससे विरोधी पक्षका हृदय नहीं बदलेगा। उनकी घृणा और भी बढ़ जायेगी। आपके लिए एकमात्र रास्ता यह है कि आप अपनेको इन सभी बुराइयोंसे ऊपर रखें; शेष सुधारकोंपर छोड़ दें। जैसा कि आप जानते हैं, मैं इस बुराईके विरुद्ध अपनी सारी शक्ति लगाकर संघर्ष कर रहा हूँ। यह मेरे लिए पूर्ण रूपसे धार्मिक प्रश्न है।

आप चाहते हैं कि हम सुधारकोंपर भरोसा करें। हम आपपर भरोसा करते हैं, लेकिन दूसरोंपर हम कैसे भरोसा कर सकते हैं। वे आज इसलिए अस्पृश्यताकी बातें करते हैं कि हम राजनीतिकी शतरंजमें उनके लिए उपयोगी मोहरे हैं। ज्यों-ही उनके राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध हुए, वे हमें मँझधारमें छोड़ देंगे। हम नहीं समझते कि वे हृदयसे यह विश्वास करते हैं कि यह उनके लिए आत्मशुद्धिका प्रश्न है या यह कि अस्पृश्यता-निवारणके बिना स्वराज्य निरर्थक है। यह मैं स्वीकार करता हूँ

कि डॉ० राय एक ऐसे व्यक्ति हैं जो हमारे लिए जबर्दस्त संघर्ष कर रहे हैं। उनके हृदयमें हमारे लिए गहरी सहानुभूति है। किन्तु मुझे दूसरोंपर ऐसा भरोसा नहीं। वस्तुतः देशबन्धु दास भी हैं, किन्तु वे भी जितना-कुछ कर सकते हैं, उतना नहीं कर रहे हैं।

लेकिन मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उन्हें आप लोगोंसे कोई शिकायत नहीं है और वे भी उतना ही सुधार चाहते हैं जितना कि मैं चाहता हूँ। क्या आप जानते हैं कि वे उतनी दिलचस्पी क्यों नहीं ले सकते, जितनी कि मैं लेता हूँ।

साहब, मैं जानता हूँ, उनको बहुत-से काम हैं और उनके पास इतना समय नहीं।

हाँ, यही बात है। एक और बात भी है। वे अनुभव करते हैं कि जबतक हम फौरन राजनीतिक कार्यवाही करके स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर लेते तबतक कोई दूसरा काम नहीं किया जा सकता। उनके और मेरे बीच यही एक भेद है। किन्तु वे इस समस्याको लेकर सचमुच बड़े चिन्तित हैं और वे भी उतनी ही जल्दी इस अभिशापको दूर करना चाहते हैं जितनी जल्दी कि आप और मैं।

मैं मानता हूँ। किन्तु तब क्या आप चाहते हैं कि हम केवल सुधारकोंपर निर्भर रहें? आप जानते हैं, हुआ ऐसा है कि जब भी हमने उनके विरुद्ध संघर्ष किया, वे झुक गये हैं; और जब भी हम हाथपर-हाथ धरे बैठे रहे, उन्होंने हमारी उपेक्षा की, . . .[1] कहते हैं कि हमें उनसे कोई भी सरोकार रखनेसे इनकार कर देना चाहिए। हमें उनसे सामाजिक मेल-मिलाप रखनेसे भी इनकार कर देना चाहिए। हमें उनसे उसी प्रकार जल लेनेसे इनकार कर देना चाहिए जैसे कि वे हमसे लेनेसे करते हैं।

आप जानते हैं, ऐसा कहनेवाला बदहवास है। आप ऐसा कोई काम न करें। आप सवर्ण हिन्दुओंको और भी कट्टर विरोधी बना लेंगे। आप उनके प्रति चाहे कोई प्रेम अनुभव न करें। किन्तु मेरा निश्चित विचार है कि आप उनके प्रति अपनी सारी घृणाको दूर कर सकते हैं। आप गरिमापूर्ण रुख अपनाइए। गरिमा ही ठीक रहेगी, बदला लेनेकी भावना नहीं।

हम इन परिस्थितियोंमें राष्ट्रीय कार्यक्रममें कैसे भाग ले सकते हैं?

क्यों नहीं? आजका राष्ट्रीय कार्यक्रम है क्या? हिन्दुओं द्वारा अस्पृश्यता-निवारण, खद्दर और हिन्दू-मुस्लिम एकता। मेरे विचारमें ये तीनों बातें आपकी कठिनाइयोंका हल निकालनेमें सहायक होंगी। यहाँतक कि हिन्दू-मुस्लिम एकताका अर्थ भी अस्पृश्यताके प्रश्नको थोड़ा-बहुत हल करना ही है। और खद्दर हमको इस प्रकार एक कर सकता है जिस प्रकार अन्य कोई वस्तु नहीं कर सकती। हाँ, यदि लोग स्वराज्यकी कोई ऐसी योजना लेकर आपके पास आयें जिसमें आपके लिए कोई व्यवस्था न हो और वे केवल तात्कालिक राजनीतिक दाँवपेचोंकी दृष्टिसे ही आपकी सहमति चाहते हों, अथवा यदि कोई धर्मप्रचारक तरह-तरहकी ऐसी योजनायें लेकर

१. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ दिया गया है।

आपके पास आयें जिनमें आपके लिए विशेषाधिकारोंकी माँग की गई हो तो आपको सतर्क रहना चाहिए। आपको दोनों ही को परे हटा देना चाहिए।

आप ठीक कहते हैं। मुझे ऐसे धर्म-प्रचारक मिले हैं। हमारी निर्योग्यतायें विभिन्न प्रकारकी हैं और हमें सभी स्थानोंपर कठिनाई झेलनी पड़ती है।

ये कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। इस क्षेत्रमें बहुतसे कार्यकर्त्ता काम कर रहे हैं। बहुतसे उच्चवर्णके हिन्दू अपना सारा समय इसी समस्याको हल करनेमें लगा रहे हैं। आपको उस भलमनसाहतपर भी भरोसा रखना पड़ेगा जो सहज ही मनुष्यके स्वभावमें रहती है। जब आप अपनेको शुद्ध कर लेंगे तब आपके विरोधी भी निश्चय ही अपने कर्त्तव्यके प्रति जागरूक हो जायेंगे। मुझे दक्षिण आफ्रिकामें यही निर्योग्यतायें भोगनी पड़ी थीं, जिनको आप भोग रहे हैं और मैं चाहता हूँ कि आप भी वैसा ही करें जैसा मैंने किया था। आप जानते हैं कि मैंने क्या किया था? यूरोपीय नाइयोंने मेरे बाल काटनेसे इनकार कर दिया था। मैं एक दिन सुबह एक कैंची ले आया और शीशेके सामने खड़े होकर अपने बाल काटने लगा। उसी समय एक यूरोपीय मित्र अन्दर आये और उन्होंने मुझे अपने बाल बनाते हुए देखा। उन्होंने पूछा—'आप क्या कर रहे हैं?' मैंने जवाब दिया—'यदि यूरोपीय नाई मेरी सेवा नहीं करते तो मैं स्वयं अपनी सेवा करूँगा।' इसके बाद उन्होंने कहा कि मैं आपके बाल काट दूँगा। और मेरे बाल बड़े ही मजेदार ढंगके कट गये; बालोंका एक गुच्छा यहाँ खड़ा था तो दूसरा वहाँ; बीचमें जगह खाली थी।[1] बच्चोंको स्कूल भेजनेमें भी मुझे यही कठिनाई उठानी पड़ी। उन्होंने कहा—'आपके बच्चोंके लिए विशेष रियायत की जायेगी और उन्हें अंग्रेजी स्कूलमें जाने दिया जायेगा।' मैंने जवाब दिया, 'नहीं, जबतक स्वच्छ रहनेवाले सभी भारतीय बच्चोंको अंग्रेजी स्कूलोंमें जानेकी छूट नहीं मिल जाती तबतक मैं अपने बच्चोंको वहाँ नहीं भेजूँगा।' और मैंने अपने बच्चोंको बिना स्कूली शिक्षाके ही रहने दिया। मुझपर यह भी आरोप लगाया जाता था कि मैं अपने बच्चोंकी शिक्षाकी उपेक्षा कर रहा हूँ। उफ! वहाँ बहुत-सी निर्योग्यतायें थी। कठिनाइयोंके बारेमें मैं भी आपके समान ही महसूस कर सकता हूँ, क्योंकि मुझे भी उनसे गुजरना पड़ा है। मैं एक बार एक बसमें चढ़ा और एक सीटपर बैठ गया। उस सीटसे, जो मुझे दी गई थी, उठनेको कहा गया और उठनेसे इनकार करनेपर मुझे लातोंसे मारा गया और मैं बर्बरतापूर्वक घायल कर दिया गया।[2] उस आदमीके बर्तावसे अन्य मुसाफिर इतने उद्विग्न हुए कि उन्होंने उसे बुरा-भला कहा और उसने शर्मके मारे ही अपना हाथ रोका। किन्तु आप जानते ही हैं कि मैंने बदला लेकर नहीं, स्वयं कष्ट सहन करके ही समय आनेपर इन पूर्वग्रहोंको दूर कर दिया। मेरा निश्चित रूपसे विश्वास है कि समुद्र-पारके हमारे देशवासियोंके साथ जो दुर्व्यवहार होता है वह इसी दुर्व्यवहारका प्रतिशोध है जो आपके साथ भारतमें होता है। जब मैं प्रत्येक व्यक्तिसे बार-बार यह कहता हूँ कि

१. देखिए आत्मकथा, भाग ३ अध्याय ९।
२. देखिए आत्मकथा, भाग २ अध्याय ९।

हमने अपनेको साम्राज्यमें 'पैरिया' बना दिया है तो मेरा मतलब यही है; और यदि हम समयपर सचेत होकर इस अभिशापसे मुक्त नहीं होते तो हिन्दू-धर्म संसारसे मिट जायेगा।

साहब, मैं जानता हूँ आपने यह कई बार कहा है और प्रत्येक व्यक्ति वैसा महसूस भी करता है। परन्तु अस्पृश्यता इतने लम्बे समयसे चली आ रही है। अब इसका कैसे उन्मूलन होगा?

क्यों? क्या भारतके कुछ भागोंमें मानव-भक्षण और सतीकी प्रथाएँ नहीं थीं? क्या आप सोचते हैं कि यदि वे प्रथाएँ क़ायम रहती तो हिन्दूधर्म उनको सहन कर सकता था? उन्हें तो मिटना ही था। विचारशील लोगोंने इन भयावह प्रथाओंके विरुद्ध विद्रोह किया और अब अस्पृश्यताकी भयावहताके विरुद्ध सभी स्थानोंपर लोगोंकी चेतना जाग्रत हो गई है; इसलिए यह भी निश्चित रूपसे मिट जायेगी। हममें से प्रत्येकमें यह चेतना जाग्रत होती जा रही है कि हिन्दू-धर्म आज कसौटीपर है। और यदि इसे उसपर खरा उतरना है तो यह जरूरी है कि वह अपने-आपको इस अभिशापसे मुक्त कर ले।

तब आपका विचार है कि हम कांग्रेसमें शामिल हो जायें?

आपको होना चाहिए और राष्ट्रीय कार्यक्रममें जितना आपसे हो सके, सहायता दें। राष्ट्रीय कार्योंमें लग जायें; चरखेको अपनायें, खद्दर पहनें, और अपनेको शुद्ध बनायें। और सबसे बड़ी बात तो यह कि चरित्रकी आन्तरिक शक्ति और उसके महात्म्यको भलीभाँति समझें। आपका चरित्र ही अन्ततोगत्वा आपके कामका परिणाम निश्चित करेगा।

सब लोगोंने जानेकी इजाजत माँगते हुए कहा कि हम सचमुच आपके अत्यन्त आभारी हैं और आपके सुझावोंपर अमल करनेका प्रयत्न करेंगे। कृपया इतनी राततक कष्ट देनेके लिए आप हमें क्षमा करें। गांधीजीने अत्यन्त नम्रताके साथ कहा:

नहीं, आपके साथका यह वार्तालाप मेरे लिए अत्यन्त आनन्ददायक रहा। अगर ऐसा नहीं होता तो मैं इतने विस्तारपूर्वक आपके साथ बात न करता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-५-१९२५

१. भाषण: मानपत्रके उत्तरमें[1]

[३ मई, १९२५ या उससे पूर्व]

आपने मुझे जो मानपत्र दिया है, उसके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ। आपने यहाँतक[2] आनेका जो कष्ट उठाया है मैं उसके लिए आपका और भी अधिक आभारी हूँ। मैंने आपको जो सन्देश भेजा था उसमें कुछ भावना मनोविनोदकी भी थी। असलमें मैं आपको सूत कातनेका पदार्थ-पाठ देना चाहता था और यह बताना चाहता था कि चरखा चलाना हिन्दुस्तानके उद्धारके लिए अनिवार्य धर्म है। आप केवल पूनीमें से तार निकलता देख रहे हैं; किन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस तारके निकलनेके साथ-साथ हिन्दुस्तानके भाग्यका निर्माण होता जा रहा है। हर तारके साथ मेरा यह विश्वास अधिकाधिक दृढ़ होता है कि चरखेके बिना हमारे देशका उद्धार न होगा। इसलिए मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप बातें करने, गप्पें मारने, खेलने-कूदने या बेकार घूमनेमें जो समय लगाते हैं उसमें से रोज केवल आधा घंटा निकालकर सूत काता करें।

हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यताके विकारके घुन आनेसे उसका तत्त्व और राष्ट्रीयताका मर्म अन्दरसे खोखला हुआ जा रहा है। यह छूत महामारीसे भी अधिक फैलती है। इसका पारसी, ईसाई और मुसलमानोंपर भी बुरा प्रभाव पड़ा है। फलतः हम सभी हिन्दुस्तानसे बाहरके देशोंमें अस्पृश्य हो गये हैं। यह बुराई कैसे दूर की जा सकती है? इस सम्बन्धमें जो सज्जन मुझसे मिले, मैंने उनसे कहा कि यह कार्य तो सवर्ण लोगोंके प्रयत्नोंसे ही सम्भव है। इसपर उन्होंने मुझसे सरल भावसे पूछा कि यदि आप हमें खेलमें केवल मुहरा बना डालें तो? शायद आप स्वराज्य मिलनेपर हमसे यह कह दें कि तुम अपने रास्ते जाओ और हम अपने रास्ते जाते हैं तब हमारा क्या होगा? उनकी इस आलोचनामें सत्य था। हमें इन लोगोंको विश्वास दिला देना चाहिए कि अन्त्यजोंके उत्थानकी प्रवृत्तिमें कोई भी राजनीतिक उद्देश्य नहीं है। हमारा हेतु केवल धार्मिक कर्त्तव्यका पालन करना और प्रायश्चित्त करना है। यदि हम इस ऋणको अदा न करेंगे तो हम ईश्वरके सम्मुख अपराधी ठहरेंगे। तब हम न हिन्दू रह जायेंगे और न मनुष्य ही।

एक युवकने मुझसे पूछा है कि यदि मैं अन्त्यजोंके उत्थानका कार्य करते हुए जातिसे बहिष्कृत कर दिया जाऊँ तो क्या होगा? मैंने कहा कि यदि जातिमें तुम्हारी

१. यह मानपत्र फरीदपुरके छात्र सम्मेलनमें आये हुए छात्रों द्वारा दिया गया था।

२. यह मानपत्र एक नाट्यशालामें, जहाँ छात्र-सम्मेलन हो रहा था, दिया जानेवाला था; किन्तु गांधीजीने श्री जे० बी० कृपलानीके हाथ सन्देश भेजा कि अपने शिविरमें ही, जहाँ वे उस समय चरखा चला रहे थे, मानपत्र लेना चाहते हैं। इसलिए छात्र गांधीजीके शिविरमें गये और वहाँ गांधीजीने सूत कातते-कातते उनके सम्मुख यह प्रवचन दिया था।

कुछ प्रतिष्ठा हो और तुम जातिसे वहिष्कृत कर दिये जाओ तो मुझे इससे प्रसन्नता होगी। किन्तु लोग इस तरहसे अपनी प्रतिष्ठा गँवानेके लिए तैयार नहीं हैं। मैं काठियावाड़में एक जगह गया था। वहाँ हजारों लोगोंने मुझपर यह छाप डाली कि वे अस्पृश्यताके विरुद्ध हैं। वहाँसे आते समय मैं एक अच्छे कार्यकर्त्ताको वहाँ जानेका निर्देश दे आया था। यह कार्यकर्त्ता ब्राह्मण है; किन्तु वह अपने साथ अपने कार्यमें सहायता लेनेके लिए एक हरिजन बालक रखता है। यदि आप उस बालकको देखें तो आप यह नहीं कह सकते कि उस बालकमें और आपके स्वच्छसे-स्वच्छ तरुणमें कोई भी अन्तर है। जब मैंने लोगोंसे उन दोनोंको वहाँ रखकर सेवा लेनेके लिए कहा तब उन लोगोंने प्रसन्नता व्यक्त की और कहा कि हमें अपने यहाँके अन्त्यजोंकी सेवाके निमित्त उनकी आवश्यकता है। किन्तु जब यह कार्यकर्त्ता और वह अन्त्यज बालक वहाँ गये तब जिस मनुष्यने उनको निमन्त्रित किया था वह डर गया और उनको वहाँ न रख सका। उस क्षण उस मनुष्यकी परीक्षा ही हुई और वह उसमें खरा नहीं उतर सका। वह गिर गया और उसने अपना हिन्दुत्व गँवा दिया। मैं आपसे ऐसे अवसरोंपर साहस दिखानेकी आशा करता हूँ।

इसके अतिरिक्त अस्पृश्यता-निवारणका अर्थ वर्णाश्रम धर्मका नाश नहीं है। किन्तु आपको यह बात समझनी चाहिए। मानव जातिकी सेवा करनेके लिए मुझे किसी मनुष्य विशेषके साथ खाने-पीनेकी अथवा किसी पुरुष विशेषको अपनी बेटी व्याहनेकी जरूरत नहीं पड़ती। एन्ड्रयूज् मेरे साथ नहीं खाते-पीते और न शौकत अली ही मेरे साथ खाते हैं। फिर भी मैं दोनोंको अपने सगे भाईसे भी अधिक मानता हूँ। मैं शौकत अलीके साथ बैठकर खा ही नहीं सकता, क्योंकि वे मांसाहारी हैं। यदि मैं कोई ऐसी चीज खाता होऊँ जो शौकत अलीके लिए जायज न हो तो वे भी मेरे साथ नहीं खायेंगे। किन्तु इससे मेरे प्रति उनके प्रेममें कोई अन्तर नहीं आयेगा। खानपान और विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्धोंसे सेवाकार्य करनेमें कोई बाधा नहीं आती। यदि किसी प्राणीकी सेवा करनेमें ईश्वर भी मेरे मार्गमें बाधक हो तो मैं उसका भी विरोध करूँगा। किन्तु मैं एक बातका खुलासा और कर दूँ। मैं यह नहीं चाहता कि आप अन्त्यज अथवा नामशूद्रोंके साथ खायें-पियें अथवा विवाह-सम्बन्ध करें, किन्तु आप जैसा व्यवहार शूद्रोंसे करें वैसा ही उनसे भी करें, यह मैं अवश्य चाहता हूँ। मैंने सुना है कि हिन्दू लोग नामशूद्रोंके हाथका पानी नहीं पीते। यदि आप शूद्रके हाथका पानी पीते हैं तो नामशूद्रके हाथका पानी न पीना अपराध है। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि धोबी नामशूद्रोंके कपड़े नहीं धोते और नाई उनके बाल नहीं काटते! यह मानव जातिके विरुद्ध अपराध है। किसी भी प्राणीकी सेवा करनेसे इनकार करना उच्च भावना कदापि नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-५-१९२५

१०. गोरक्षा

हम इस बीच एक कदम आगे बढ़े हैं। बम्बईकी सभाने[1] माधव बागमें उस संविधानको बहुमतसे स्वीकार किया है जो कि 'नवजीवन' में प्रकाशित हो चुका है। उसमें चार लोगोंने इसके खिलाफ हाथ उठाये थे। एक सज्जनने उसके एक नियमका विरोध करना चाहा था। मैं उन्हें इजाजत न दे सका। मैं सिर्फ इतनी ही सलाह दे सका कि यदि उनका मतभेद सिद्धान्तका हो तो उन्हें सारे संविधानका विरोध करना चाहिए; किन्तु यदि उनका मतभेद सिद्धान्तका न हो तो उन्हें संविधान स्वीकार करना चाहिए। मेरा नम्र मत है कि इस तरहकी सभाओंमें दूसरे प्रकारसे काम चलाया ही नहीं जा सकता। मैं चाहता हूँ कि मेरे इस निर्णयका कारण सब लोग समझ लें। यह सभा एक संस्थाका श्रीगणेश करनेके लिए बुलाई गई थी। यह सार्वजनिक सभा किए बिना भी किया जा सकता था; क्योंकि संविधान गोरक्षा परिषद्[2] द्वारा नियुक्त की हुई समितिने बनाया था और वह समिति उसे स्वीकार करके तुरन्त अ० भा० गोरक्षा सभाका श्रीगणेश कर सकती थी। परन्तु ऐसा करनेके बजाय संविधानको अधिक महत्त्व देनेके उद्देश्यसे उसे स्वीकार करनेके लिए सार्वजनिक सभा की गई। ऐसी सभामें किसी नियम-विशेषका विरोध व्यक्त नहीं किया जा सकता। पर हाँ, जो ऐसी संस्थाको न चाहता हो अथवा जिसे वह संविधान ही पसन्द न हो वह सारी संस्था या सारे संविधानके खिलाफ अपनी राय जाहिर करनेका हक रखता है और मैंने अध्यक्षकी हैसियतसे विरोध करनेवाले महाशयको यही हक दिया था।

मेरा भाषण अन्यत्र दिया गया है।[3] मैं उसकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। मेरे लिए गोरक्षा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मेरा यह मत है कि हमने गोरक्षा-जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर पूरी तरह विचार नहीं किया है। गोरक्षाके नामपर प्रचलित अधर्म किस तरह रोका जा सकता है? जब मैं इस सम्बन्धमें विचार करने बैठता हूँ तब मेरी बुद्धि चकरा जाती है। श्रद्धावान् हिन्दू गोरक्षाके नामपर लाखों रुपया देते हैं; किन्तु उससे गायोंकी रक्षा तो नहीं होती। जहाँ गोरक्षा धर्म माना जाता है, वहीं गायोंकी कमसे-कम रक्षा होती है — न गायोंका वध बन्द होता है और न गायपर होनेवाले अत्याचार। वधके लिए गायको बेचनेवाले भी हिन्दू हैं और उसपर अत्याचार करनेवाले भी हिन्दू हैं। रक्षाके अनेक उपाय

१. यह सभा गांधीजीकी अध्यक्षतामें २८ अप्रैल, १९२५ को हुई थी; देखिए खण्ड २६, पृष्ठ ५४९-५३।

२. यह परिषद् बेलगाँवमें गांधीजीकी अध्यक्षतामें २८ दिसम्बर, १९२४ को हुई थी; देखिए खण्ड २५ पृष्ठ, ५४९-५५।

३. देखिए खण्ड २६, पृष्ठ ५४९-५३।

तजवीज किये गये हैं, किन्तु उनमें से एक भी फलीभूत नहीं हुआ और एक भी ऐसा नही है जो फलीभूत होने लायक हो। इस स्थितिका क्या कारण है?

इस अ० भा० संस्थाको इस सम्बन्धमें विचार करना होगा। परन्तु विचार करेगा कौन? अध्यक्ष, मन्त्री, या समिति? विचारके लिए अध्ययनकी आवश्यकता है। गायोंकी कैसी दशा है? बैलोंकी कैसी दशा है? उनकी संख्या कितनी है? वे सचमुच भारतमें भाररूप हैं या उनका उपयोग होता है? उनके वधके कारण क्या हैं? उनकी दुर्बलताके कारण क्या हैं? हमें ऐसे अनेक प्रश्नोंपर विचार करना होगा।

इतना समय कौन दे? इसमें इतनी दिलचस्पी किसे है? बिना दिलचस्पीके काम किस तरह हो सकता है? इसीलिए मैंने कहा है कि गोरक्षाके लिए तप, संयम, अध्ययन आदिकी आवश्यकता है। इसलिए जो लोग, गो-सेवक होना चाहते हों उनसे मैं केवल धनकी ही आशा नहीं रखता, बल्कि विचार और अध्ययनकी भी आशा रखता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-५-१९२५

११. टिप्पणियाँ

काठियावाड़का धन-संग्रह

भाई मणिलाल कोठारी २०,००० रुपये इकट्ठे करनेके लिए काठियावाड़में घूम रहे हैं। उनके तारसे मालूम होता है कि उन्होंने निम्न राशियाँ और एकत्र की हैं:

माणावदरमें और चन्दा	१,१०० रुपये
चोरवाडमें भाई जीवनलालसे	२,५०० रुपये
चोरवाडमें अन्य लोगोंसे	२०० रुपये
वेरावलमें	२,५०० रुपये
कुल	६,३०० रुपये

मुझे आशा है कि काठियावाड़में निश्चित समयके भीतर पूरा रुपया इकट्ठा हो जायेगा। मैं बम्बईवासी काठियावाड़ियोंके दानकी राह देख रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि सब काठियावाड़ी इस बातको ध्यानमें रखें कि २०,००० रुपयेकी यह पूरी रकम काठियावाड़में ही काममें लाई जायेगी।

जातिबन्धन

मैंने जातिबन्धनको संयमकी वृद्धिमें सहायक मानकर स्वीकार किया है। परन्तु आजकल जाति संयममें सहायक नहीं है बल्कि केवल बन्धन बनकर रह गई दिखाई देती है। संयम मनुष्यको शोभा देता है और स्वतन्त्र बनाता है। बन्धन एक बेड़ीके

समान है और वह मनुष्यकी अवनति करता है। आजकल जातिका जो अर्थ होता है वह न वांछनीय है और न शास्त्रीय। आज जिस अर्थमें उसका प्रयोग होता है उस अर्थमें यह शब्द शास्त्रमें है ही नहीं। हां, वर्ण है; परन्तु वे चार ही हैं। अब तो अगणित जातियां हैं और उन जातियोंमें भी विभाग हो गये हैं और उनमें परस्पर बेटी-व्यवहार बन्द है। ये लक्षण उन्नतिके नहीं, अवनतिके हैं। नीचे दिये गये पत्रको[1] पढ़कर मेरे मनमें ये विचार आ रहे हैं।

यह बात यदि सच हो तो दुःखद है। अध्यक्षपद और मन्त्रिपदके लिए झगड़ा क्यों होना चाहिए? सूरती, आगरी, दमणी[2] इत्यादि भेद किसलिए? मैं जब लाड-युवक मण्डलकी सभामें गया था तब मुझपर उसकी अच्छी छाप पड़ी थी। अध्यक्ष-पद सेवाके लिए होना है, मानके लिए कदापि नहीं। मन्त्री तो समाजका नौकर होता है। यदि इन स्थानके लिए स्पर्धा हो भी तो वह मीठी होनी चाहिए। आशा है कि दोनों पक्ष आपसमें सद्भावसे यह झगड़ा मिटा लेंगे। वणिक्-मात्र मिलकर एक जाति क्यों न हों? ऐसा धर्म कहीं नहीं बताया गया है कि वणिक् जातिमें परस्पर कन्याका लेनदेन नहीं हो सकता। मैं अगर उपजातियोंको कुछ हदतक मानता हूँ तो उसका कारण केवल समाजकी सुविधा है। परन्तु जब पूर्वोक्त घटनाओंका अनुभव होता है तब यही इच्छा होती है कि ऐसे बन्धनोंको तोड़कर उनसे प्रयत्नपूर्वक मुक्ति करना और कराना चाहिए।

'मूर्तिपूजक' और 'मूर्तिभंजक'

प्रसंग आनेपर मैंने अपने एक भाषणमें कहा था कि मैं मूर्तिपूजक हूँ और मूर्तिभंजक भी हूँ। यह बात जिस भाषणमें मैंने कही थी यदि वह पूरा छापा गया होता तो इसका अर्थ अच्छी तरह समझमें आ गया होता। मैंने भाषणकी रिपोर्ट नहीं देखी है। एक सज्जन मेरे विचारोंको उद्धृत करते हुए लिखते हैं:

> "मुझ-जैसे लोगोंको जिनकी श्रद्धा मूर्तिपूजासे उड़ गई है, पर फिर भी जो ज्यादातर मूर्तिपूजाके रूपको (जिस तरह कि मृत पिताके चित्र या मृत मित्रके पत्रको) आदरकी दृष्टिसे देखते हैं।"
>
> आप इन शब्दोंका अर्थ समझाकर यदि मार्गदर्शन करेंगे तो बड़ा उपकार होगा।

यहां मूर्ति शब्दके अर्थ पृथक्-पृथक् है। यदि मूर्तिका अर्थ प्रतिमा लिया जाये तो मैं मूर्तिभंजक हूँ। यदि मूर्तिका अर्थ ध्यान करने अथवा श्रद्धा प्रकट करने या स्मरण करानेका साधन लिया जाये तो मैं मूर्तिपूजक हूँ। मूर्तिका अर्थ केवल आकृति नहीं है। जो व्यक्ति किसी पुस्तककी पूजा आँखें मूँदकर करता है वह भी मूर्तिपूजक अथवा बुतपरस्त है। बुद्धिका प्रयोग किये बिना, सारासारका विवेचन किये बिना,

१. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने कहा है कि उसकी 'लाड' जातिमें कई उपजातियाँ हैं और उनमें कभी-कभी इतना तीव्र मतभेद हो जाता है कि वे परस्पर लड़ बैठते हैं।

२. लाड जातिकी उपजातियाँ, जिनका सम्बन्ध क्रमशः सूरत, आगरा और दमनसे है।

अर्थकी छान-बीन किये बिना, 'वेद' में जो-कुछ लिखा है उस सबको मान लेना मूर्ति-पूजा है, बुतपरस्ती है, अतः त्याज्य है। जिस मूर्तिको देखकर तुलसीदास पुलकितगात होते थे, ईश्वरमय, राममय बनते थे, उसका पूजन करते हुए उनका रूप शुद्ध मूर्ति-पूजकका था और इसलिए वे वन्दनीय तथा अनुकरणीय हैं।

अन्धविश्वास मात्र बुतपरस्ती अथवा निन्द्य मूर्तिपूजा है, जो हर तरहके रिवाजको धर्म मान लेते हैं वे निन्द्य मूर्तिपूजक हैं। अतः ऐसी जगह मैं मूर्तिभंजक हूँ। कोई भी मुझसे शास्त्रके प्रमाण देकर असत्यको सत्य, कठोरताको दया और वैर-भावको प्रेम नहीं मनवा सकता। इसलिए और इस अर्थमें मैं मूर्तिभंजक हूँ। कोई मुझे द्वयर्थक या क्षेपक श्लोक उद्धृत करके अथवा धमकी देकर अन्त्यजोंका तिरस्कार या त्याग करना या उनको अस्पृश्य मानना नहीं सिखा सकता और इसलिए मैं अपनेको मूर्तिभंजक मानता हूँ। मैं माँ-बापकी अनीतिको भी अनीतिकी तरह देख पाता हूँ और इस देशपर अथाह प्रेम होते हुए भी इसके दोषोंको देखकर उन्हें सबके सामने रख सकता हूँ, और इसलिए मैं मूर्तिभंजक हूँ।

मेरे मनमें वेदादिके प्रति पूरा-पूरा और स्वाभाविक आदरभाव है। मैं पाषाण-में भी परमेश्वरको देख सकता हूँ। मेरा मस्तक साधु पुरुषोंकी प्रतिमाओंके प्रति अपने-आप झुक जाता है, इस अर्थमें अपनेको मूर्तिपूजक मानता हूँ।

इसका अर्थ यह है कि गुण-दोष विशेष-रूपसे बाह्य कार्यकी अपेक्षा आन्तरिक भावमें होता है। किसी भी कार्यकी परीक्षा कर्त्ताके भावको देखकर की जा सकती है। माताका सविकार स्पर्श पुत्रको नरकवास कराता है; और उसीका निर्विकार स्पर्श उसे स्वर्ग प्रदान करवाता है। द्वेषभावसे चलाई छुरी प्राण हर लेती है, प्रेमभावसे लगाई छुरी प्राणदान करती है। बिल्लीके वे ही दाँत चूहेके लिए घातक, परन्तु अपने बच्चोंके लिए रक्षक होते हैं।

दोष मूर्तिकी पूजामें नहीं है, दोष ज्ञानहीन पूजामें है।

पेटलादके सत्याग्रहियोंका कर्त्तव्य

जिस समय पेटलादके सत्याग्रहियोंके संघर्षका शुभ अन्त हुआ मैं उस समय सफरमें था, इसलिए मुझे उसके सम्बन्धमें कुछ भी मालूम नहीं हो पाया था। अब मुझे मालूम हुआ है कि सत्याग्रही नेताओंने जो प्रस्ताव स्वीकार किया है उसे अनेक सत्याग्रही सैनिक माननेसे इनकार करते हैं। यदि यह बात सत्य हो तो यह खेदजनक है। सिपाहगरीका पहला लक्षण यह है कि नेता जबतक ईमानदार है तबतक यदि भूल कर रहा हो तो भी सैनिकोंको चाहिए कि वे उसके कार्यको स्वीकार करें। जब नेताके सम्बन्धमें यह निश्चयपूर्वक कहा जा सके कि वह दगाबाज निकल गया है तभी सैनिकोंको उसे पदच्युत करने या उसके कार्यको माननेसे इनकार करनेका अधिकार होता है। यदि हम इस नियमको नहीं मानेंगे तो लोगोंकी संघशक्ति स्थिर या टिकाऊ नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, बल्कि इससे प्रजा अपने धर्मसे च्युत हो जायेगी। किन्तु मुझे इस मामलेमें तो नेताओंकी भूल कहीं भी दिखाई नहीं देती। वहाँ सत्याग्रह पैसेके लिए नहीं था, बल्कि सिद्धान्तके लिए किया गया था; सत्याग्रह

केवल आर्थिक लाभके निमित्त तो कभी नहीं किया जाता। उसके पीछे कोई-न-कोई सिद्धान्त होता है; इसलिए वह लोकहितार्थ किया जाता है। पेटलादके सत्याग्रहके सम्बन्धमें स्वीकार किया गया प्रस्ताव मेरे सम्मुख है। इससे मुझे मालूम हुआ है कि लोगोंकी मान्यताके अनुसार नया बन्दोबस्त कानूनके मुताबिक नहीं था और लोगोंकी माँग इतनी ही थी कि गायकवाड़ सरकार इस सम्बन्धमें जाँचके लिए अधिकारियोंकी एक समिति नियुक्त करे। समिति नियुक्त कर दी गई है और उसकी नियुक्ति होते ही जनताकी जीत हो गई। उस जीतपर खुशी भी मनाई गई थी। अब जो अन्तिम निर्णय किया गया है उसमें सिद्धान्तकी दृष्टिसे कहने योग्य कोई बात नहीं जान पड़ती। दीवान साहबने प्रतिनिधियोंको बुलानेकी शिष्टता भी दिखाई और अपना निर्णय उन्हें दिखा देनेके अनन्तर ही प्रकाशित किया। इस निर्णयमें आर्थिक लाभ बहुत नहीं दिखाई देता। वह भी रहा होता तो अधिक ठीक होता। किन्तु सिद्धान्तकी रक्षा हो जानेपर निस्सन्देह केवल आर्थिक लाभके लिए संघर्ष नहीं छेड़ा जा सकता। सत्याग्रहके प्रस्तावमें आर्थिक लाभकी तो माँगतक नहीं की गई थी; उसमें केवल न्यायकी माँग की गई थी। उस स्थितिमें सैनिकोंका प्रतिनिधियोंके स्वीकार किये हुए प्रस्तावको अंगीकार न करना उचित नहीं है। इसलिए मुझे आशा है कि जिन लोगोंने इस निर्णयको माननेसे इनकार करनेकी भूल की है, वे अपनी भूल समझेंगे और उसे सुधार लेंगे।

एक शिक्षककी कताई

बराडके राष्ट्रीय कुमारमन्दिरके आचार्य रा० झवेरभाईने एक पत्रमें[1] लिखा है:

मैं श्री झवेरभाई पटेलको इतने अधिक उत्साहके लिए धन्यवाद देता हूँ। दूसरे शिक्षकोंको उनका अनुकरण करना चाहिए। मुझे श्री झवेरभाईको एक सुझाव देनेकी इच्छा हो रही है। तीन लाख गज सूतका वजन १८ सेर हो तो इसका अर्थ हुआ छः अंकका सूत। वारडोलीकी रुई तो अच्छी होती है। फिर वह हाथसे ओटी और हाथसे धुनी हुई हो तो उससे बीस अंकका सूत सहज ही काता जा सकता है। सम्भव है कि बीस अंकका सूत कातनेमें अधिक सावधानीकी जरूरत हो और उतना सूत कातनेमें समय भी कुछ अधिक लगे। उसमें समय चाहे अधिक लगता हो, किन्तु २० अंकका सूत कातनेमें रुईकी बचत होती है। इतना ही नहीं, अब हमें गुजरातमें भी बारीक सूत कातना आरम्भ करनेकी जरूरत है। जो लोग प्रेम और लगनसे सूत कातते हैं, सबसे पहले उन्हींसे बारीक सूत कातनेकी आशा की जा सकती है। झवेरभाई-जैसे लगनसे कातनेवाले भाई और बहिन तो अब गुजरातमें काफी संख्यामें मिल जाते हैं। मैं उनका ध्यान बारीक सूत कातनेकी ओर खींचता हूँ। वे स्वयं मोटी खादी पहनना चाहें तो भले ही खरीद कर पहिनें और अपना काता हुआ बारीक सूत शौकीन भाइयों और बहनोंके लिए दे दें। मैं मानता हूँ कि खादी-मण्डल

१. यहाँ नहीं दिया गया है। लेखकने इसमें लिखा था, "मैंने स्वयं चार महीनेमें ७ मन कपास चुनी, ओटी, धुनी और उसकी पूनियाँ बनाईं। इसमें से लगभग १८ सेर (तीन लाख गज) सूत मैंने स्वयं काता है। मैं इस महीनेमें अपना अवकाशका सारा समय सूत कातनेमें ही लगाना चाहता हूँ।

बुनने योग्य बारीक सूत लेकर मोटे सूतकी खादी देनेका काम सहज ही कर सकता है। यदि ऐसा किया जाये तो बारीक सूत कातनेवाले मध्यम वर्गके लोग, जो स्वयं मोटी खादीसे सन्तुष्ट रहते हैं, बारीक खादी गुजरातमें ही तैयार करनेमें अच्छा योगदान दे सकते हैं।

वृद्धाका प्रमाणपत्र

मैं यह अंश[1] अमरेली खादी कार्यालयसे प्राप्त एक पत्रसे उद्धृत कर रहा हूँ:

यह भावना एक ही वृद्धाकी नहीं है, बल्कि बहुतोंकी है। मैंने कितनी ही वृद्धाओंके मुँहसे ये शब्द सुने हैं, 'चरखा तो बरकत देता है।' विधवाओंका तो यह "सहारा" ही है। बहुत-सी विधवाओंका कहना है कि दुखियोंका शरणदाता तो चरखा ही है। एक मित्रको जब क्रोध आता है तब वे चरखेको ढूंढ़ते हैं और उसकी शान्त-गतिसे उनकी आत्माको शान्ति मिलती है। ऐसा अनुभव सभीको नहीं होता, यह स्वाभाविक है। 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।'

खादीका प्रचार कैसे बढ़े?

नेलौर तमिल-तेलुगू प्रदेशका एक भाग है। वहाँके खादीप्रचारके सम्बन्धमें एक भाई लिखते हैं:[2]

जहाँ खेती करना बहुत लाभदायक है, वहाँ भी लोगोंको सूत कातनेके लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। वे मार्चसे अक्तूबरतक अर्थात् आठ महीने मजेमें कताई कर सकते हैं। और उससे प्रति मास ५ रुपयेके हिसाबसे आय हो सकती है। सूत कातनेवाली स्त्रियाँ विदेशी कपड़े पहनती हैं, यह बात दुःखजनक है। किन्तु इसका उपाय तो यह है कि जब सभ्य समझे जानेवाले लोग अपने हाथकते सूतका बना कपड़ा ही पहननेमें गौरव और प्रतिष्ठा समझने लगेंगे तब ये बेचारे गाँवोंके लोग भी, जो शहरी लोगोंका अनुकरण करनेवाले होते हैं, हाथकते सूतका कपड़ा पहननेमें अपनी प्रतिष्ठा मानने लगेंगे। असल बात यह है कि सूत कातनेवाली स्त्रियाँ सभी प्रदेशोंमें ऐसा नहीं करतीं। मैं जिन गाँवोंमें गया हूँ उनमें मैंने देखा है कि सूत कातनेवाली स्त्रियाँ अपने हाथसे काते सूतके बने कपड़ेके अलावा दूसरा कोई कपड़ा नहीं पहनतीं। जिन गाँवोंमें पैसा जरूरतसे ज्यादा है, यह बात वहाँकी स्त्रियोंपर लागू होती है।

ध्यान देने योग्य दूसरी बात यह है कि जहाँ स्त्रियाँ स्वयं ही सूत कातनेका आग्रह करती हैं वहाँ वे अच्छी पूनियाँ बनानेकी व्यवस्था कर लेती हैं। इस विवरणसे यह बात स्पष्ट होती है कि वे धुनिएको बुलाकर उससे सिर्फ धुनाईका काम करा लेती हैं। वे सामने खड़े होकर अपने सन्तोषके लायक काम करवा लेती हैं और फिर पूनियाँ बनानेका काम फुर्सतके वक्त स्वयं करती हैं। अच्छी पूनियाँ बनानेके लिए

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें कहा गया था कि आज सस्ती पूनियाँ खरीदनेके लिए लोगोंकी भीड़ उमड़ पड़ी थी। इसमें एक ६० सालकी वृद्धा भी थी। वह बेहद खुश थी, क्योंकि वह अब काम कर सकती थी और पराश्रित नहीं रहना चाहती थी।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

रुई अच्छी धुनी हुई होनी चाहिए, यह तो आवश्यक है ही, किन्तु पूनियाँ बनानेका काम भी सावधानीसे किया जाना चाहिए। यदि पूनियाँ बनानेमें रेशोंको सिर्फ घुमा-घुमा कर गोला बना दिया जाये तो अच्छी धुनी हुई रुई भी बेकार हो जाती है।

यदि चिकने पटरेपर रुई एक-सी बिछाकर उसपर सलाई रखकर पाँच या छः बार हाथसे घुमायें तो रेशे अच्छी तरह लम्बे होकर लिपट जाते हैं और बढ़िया पूनियाँ बनती हैं। ऐसी बनी हुई पूनियोंमें सूत कातनेमें कितना आनन्द आता है, यह तो सूत कातनेवाले ही जानते हैं। यदि हम हथेलीको उसपर दो-एक बार और फेर दें तो और भी अच्छी पूनी बन जाती है। इसके विपरीत यदि एक-दो बार हाथसे यों ही घुमाकर पूनियाँ बना ली जायें तो उससे काते हुए सूतमें सफाई नहीं आती और एकसार सूत आसानीसे नहीं कत सकता। ऐसी पूनियोंमें रेशे उलझकर लिपट जाते हैं जिससे एकसार सूत निकलनेमें कठिनाई होती है। नेलीर ताल्लुकेके आसपासकी सूत कातनेवाली बहनें यह बात जरूर जानती होंगी और इसीलिए वे पूनियाँ बनानेका काम धुनिएको नहीं सौंपती। यदि रुई ठीक धुनी हुई न हो तो यह दोष तुरन्त दिखाई दे जाता है और दूर किया जा सकता है। किन्तु यदि पूनियाँ लापरवाहीसे बनाई गई हों तो उन्हें बादमें सुधारना असम्भव होता है।

मुझे आशा है कि सूत कातनेके प्रेमी इन बातोंपर ध्यान रखेंगे।

कंचनलाल मोतीलाल बर्फीवाला

उक्त नामका युवक सूरतमें रहता है। उसकी आयु लगभग २१ वर्षकी है। उसके माता-पिताको १९८०की आषाढ़ सुदी ३से[1] उसका कोई पता नहीं है। वह खादी पहनता था और उसकी रुचि सार्वजनिक कार्यमें थी। वह चश्मा लगाता है। 'नवजीवन'का पाठक था। वह क्यों और कहाँ चला गया, यह उसके सम्बन्धी नहीं जानते। यदि 'नवजीवन'का यह अंक उसकी नजरमें पड़ जाये तो मेरी उससे प्रार्थना है कि वह तुरन्त अपने संरक्षकोंको अपना समाचार देकर उन्हें चिन्तामुक्त करे। ऐसा लगता है कि आजकल कुछ युवक किसीको बताये बिना अदृश्य हो जानेमें कोई बड़ाई या विशेषता मानते हैं। किन्तु वे यह अनुमान नहीं कर सकते कि इससे उनके सम्बन्धियोंको कितनी व्यथा होती है। यदि किसी पाठकको कंचनलालका पता लगे तो मैं उससे प्रार्थना करता हूँ कि वह उसकी खबर उसके माता-पिताको राणी तालाब, सूरतके पतेसे दे दे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-५-१९२५

1. तदनुसार ५-७-१९२४।

१२. पत्र : बृजकृष्ण चाँदीवालाको

फरीदपुर
वैशाख सुदी १०, रविवार
[३ मई, १९२५]

भाई ब्रजकृष्ण,

तुमारा खत मीला है। मेरा अभिप्राय है कि रु० ५,००० से कारखाना नहि चलेगा। और कितनी भी मूश्किल कर चलाया जाने तो भी उसमें से तात्कालिक लाभ उठानेकी आशा व्यर्थ समजता हुं। जो कोई मनुष्य धन देवे वह फायदेकी लालचसे न देवे। जो मनुष्य खद्दरके सब मद न जानता हो, सूतकी क्रियाओंको नहिं जानता है उससे सफलता मीलना असंभावित समजता हुं। इन सब बातोंको समझकर जो कुछ कार्य करना है कीया जावे। मेरा अभिप्राय है कि इस बारेमें भाई विट्ठलदास जेराजानी जो मुबईकी दूकान चलाते हैं उनकी राय ली जाय।

मैं मो० महमद अलीको एक मुसलमानको देनेका लीखता हुं। खद्दर सस्ती करनेका रास्ता आजकल तो कापुसकी भिक्षा मागना माना जाता है। गूजरातमें यही प्रयोग चल रहा है। छ हफता तक तो मैं बंगालमें हुं। साथमें महादेव और कृष्णदास है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

बंगालमें मेरा पता
१४८, रसा रोड, कलकत्ता

मूल पत्र (जी० एन० २३५६) की फोटो-नकलसे।

१३. भाषण : फरीदपुरमें[1]

३ मई, १९२५

महात्मा गांधीने कहा कि नगरपालिकाके कार्यकलापमें मेरी बड़ी रुचि है। जब भी मेरा ऐसे किसी व्यक्तिसे सम्पर्क हुआ जो नगरपालिकाकी सेवामें हो, मैंने उस सम्पर्कको अपना एक विशेषाधिकार ही माना। नगरपालिका वास्तवमें उस विस्तृत

१. टाउन हालके सामने नगर-निगमकी बैठकमें गांधीजी और चित्तरंजन दासको अभिनन्दन-पत्र दिये गये थे। चित्तरंजन दासके अनुरोधपर गांधीजीने इनका उत्तर दिया था।

राजनीतिक जीवनकी आधारशिला है, जिसके पीछे हम सभी पड़े हुए हैं। किन्तु जब-तक आधारशिला बिल्कुल समतल नहीं होगी और उसे पक्की तौरपर जमाया नहीं जायेगा, तबतक उसपर विशाल जीवनकी कोई इमारत खड़ी नहीं हो पायेगी। नगर-पालिकाका कार्य सेवाका कार्य है। आपको नागरिकोंके स्वास्थ्यकी देखभाल करनी है। आपको जल-वितरणकी देखभाल करनी है। यह बंगालके लिए एक बहुत बड़ी आवश्यकता है, विशेषकर पूर्वी बंगालके लिए।

मैं जानता हूँ कि अभिनन्दन-पत्रमें उल्लिखित मलेरिया-उन्मूलनके बारेमें उपचार-की आवश्यकता है, किन्तु मुझ-जैसे दुर्बलकाय अपूर्ण मानवके लिए कोई बना बनाया नुस्खा बताना असम्भव है। मैं कोई ऐसा डाक्टर या वैद्य तो नहीं हूँ जिसकी जेबमें बहुत-सी औषधियाँ पड़ी हों, जिनमें से किसी एकको वह जीवनकी सभी बीमारियोंके लिए रामबाणकी तरह दे दे। मैं जानता हूँ कि इनका उपचार नगरपालिकाके सेवा-कार्यके जरिये ही किया जा सकता है। आप इस सेवाको ऊपरसे शुरू नहीं कर सकते। यह नीचेसे ही प्रारम्भ करनी होगी। यही बात मैं समय-असमय चरखेके बारेमें भी कहता आया हूँ। यह आपके शहरोंमें गाँवों-जैसी सादगी ला रहा है और चरखेका यही सन्देश है। चूँकि गाँव ही नगरोंका भरण-पोषण कर रहे हैं, इसलिए गाँवोंके इस महान उपकारके बदले शहरोंके लोगोंको भी गाँवोंका कुछ भला तो करना चाहिए। मुझे आशा है कि आप चरखेकी ओर ध्यान देंगे। जैसा कि मैंने बताया है, चरखा ही आपके बृहत्तर राजनीतिक जीवनकी आधार-शिला है। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि उस बृहत्तर जीवनका क्रम आपके चलाये बिना स्वयं ही चलता रहेगा, पर स्वराज्य — जो मेरे जीवनका स्वप्न है — तबतक हासिल नहीं किया जा सकता जबतक कि आप इन साधारण-सी छोटी-छोटी चीजोंको स्वयं नहीं करेंगे। मुझे आशा है कि देहाती क्षेत्रोंसे आनेवाले सदस्य अपनी-अपनी नगरपालिकाओंके स्कूलोंमें चरखे शुरू करायेंगे और कताई करनेवाले दल तैयार करायेंगे। वे खद्दर पहनना अनिवार्य बना सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ८-५-१९२५

१४. भाषण : बंगाल प्रान्तीय परिषद्में

फरीदपुर
३ मई, १९२५

सभापति महोदय और मित्रो,

स्वागत समितिके अध्यक्ष तथा हमारे सुयोग्य सभापतिने मेरे बारेमें जो सौजन्य-पूर्ण और उदारतापूर्ण शब्द कहे हैं, उनके लिए धन्यवाद देना मेरा कर्त्तव्य है। सबसे पहले मैं विषय समितिको एक पूर्णतः सामंजस्यपूर्ण ढंगसे सारी चर्चा और कार्रवाई समाप्त करनेके लिए बधाई देता हूँ। सारी कार्रवाई खुले रूपसे हुई — आज तो राजनीतिके सम्बन्धमें हमारे पास रहस्य-जैसी कोई चीज रही ही नही है। इसीलिए हम खुशीसे खुफ़िया पुलिस तकको उपस्थित रहनेकी अनुमति देते आ रहे हैं; यहाँ-तक कि हम उन्हें आमन्त्रित भी करते हैं कि वे आकर हमारी नीतिमें, हमारे कार्योंमें, राष्ट्रनीतिके लिए या उससे बाहर किये जानेवाले हमारे कार्योंमें त्रुटियाँ निकाल सकें। किन्तु जैसा मैंने कहा है, अब यह भी एक खुला रहस्य है कि आज दोपहरके बाद सदनके सामने पेश किये जानेवाले प्रस्तावोंपर, कुछ वादविवाद, या मतभेद या विमतियाँ प्रकट की गई थी। किन्तु अन्त भला तो सब भला। मुझे तो याद नहीं पड़ता कि कोई ऐसी विषय-समिति कही रही है जिसमें थोड़े-बहुत मतभेद या वादविवाद न हुए हो। मेरा खयाल है कि चाहे भारतमें हो या अन्य देशोंमें, मतभेद अन्ततक हमारे साथ चलेंगे। यूरोपीय मन्त्रि-परिषदोंके भी अपने रहस्य होते हैं, किन्तु यदि हमें उनके तथा उनकी विषय-समितियोंके रहस्योंका पता लगानेकी अनुमति दी जाये, तो मेरा खयाल है कि उनके बारेमें भी उसी प्रकारकी बातें सुननेको मिलेंगी जिस प्रकारकी हमारे मतभेदों और विरोधोंके बारेमें मिलती हैं। इसलिए हमें इन मतभेदों और विरोधोंको आवश्यकतासे अधिक तूल नही देना चाहिए और अपने सामने सदा ही यह विचार बनाये रखना चाहिए कि जो भी हो, अन्तमें हम सब एक हो सकते है, और कुछ कर दिखानेके लिए एक हो सकते हैं। (खूब! खूब!)

मैंने देशबन्धुका भाषण पढ़ा। मुझे उसका अंग्रेजी अनुवाद पढ़नेका सुख और सौभाग्य मिला। मैं नहीं जानता कि मूल बंगला है या अंग्रेजी अनुवाद; बंगलाके विद्वानोंने मुझे बताया है कि बंगला पाठ भी अंग्रेजीके समान ही मधुर और वाक्पटुता-पूर्ण है। जो भी हो, जब मैं कलकत्तेमें था, मुझे अंग्रेजी भाषणकी यह अग्रिम प्रति देशबन्धुकी संक्षिप्त, प्रेमभरी, मधुर टिप्पणीके साथ कि यदि मैं कुछ मिनट निकाल सकूँ तो इस भाषणको पढ़ लूँ, उपलब्ध हुई थी। हाँ, तो मैं वह भाषण आरम्भसे लेकर अन्ततक पढ़ गया और मुझे लगा कि कही उन्होंने मेरी सभी भावनाएँ तो नहीं चुरा लीं। (हँसी)। पर मैंने देखा कि भाषा तो मेरी नहीं है। वह भाषा एक विद्वान्की है, ऐसे देहातीकी नहीं जो अपनेको कतैया, भंगी, बुनकर, किसान और

अब यहाँतक कि नामशूद्र कहनेमें भी प्रसन्न होता है। (हँसी)। और इस प्रकार मैंने देखा कि भाषा मेरी नहीं है, किन्तु मालूम पड़ता है कि विचार मेरे चुराये गये हैं, इसलिए मैंने तुरन्त अपने मनमें कहा, यदि वे मुझसे कहेंगे कि मैं इसपर अपनी स्वीकृति दूँ तो मुझे ऐसा करनेमें कोई संकोच नहीं होगा और शायद इसके लिए मुझे उसका एक भी शब्द या मुहावरा बदलनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। शायद आपमें-से कुछ लोग ऐसा सोचे कि यह और कुछ भी क्यों न हो, भाषणकी प्रशंसा नही है; बल्कि इसके विपरीत यह इस बातकी निश्चित गारंटी है कि वह भाषण पोखरके जलके समान नीरस होगा। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यह वैसा नीरस नहीं है। लेकिन किसलिए मैं आपको ऐसा आश्वासन दूं? आपने उसे सुना है, आपने उसे पढ़ा है। जो चीज पढ़नेमें नीरस न लगे, आप भरोसा कर सकते है कि उसमे दम होता है।

मैं मुहावरोंपर ध्यान नही देना चाहता; मै भाषाके बारेमें नही सोचना चाहता। मैं केवल उसमें निहित विचारोंपर और उसमें हमारे लिए जो सन्देश है, उसपर ध्यान देना चाहता हूँ। यदि हम अपने प्रति सच्चे है, यदि हम अपने राष्ट्रके प्रति सच्चे हैं, यदि हम उस नीतिके प्रति सच्चे हैं जो हमने पहली बार कलकत्तेमें १९२० में बहुत सोच-विचारके बाद घोषित की थी, तो हमें उस भाषणमें नुक्ताचीनी करने लायक कुछ भी नही मिलेगा। वह भाषण उस नीतिका पुनर्निरूपण, एक जोरदार और सुस्पष्ट पुनर्निरूपण है, जिसे कांग्रेसके इतिहासमें पहली बार १९२० में निर्धारित किया गया था। जब मैं यह कहता हूँ कि यह उस समय कांग्रेसके इतिहासमें पहली बार निर्धारित किया गया था, तब इसका मतलब यह नहीं है कि कांग्रेस कभी हिंसाकी नीतिपर भी विश्वास करती थी; और न यह मतलब है कि कांग्रेसका कभी ऐसा मत भी रहा है कि हम वैध और उचित तरीकोंके अलावा दूसरे तरीके भी अपनायें। मतलब सिर्फ इतना है कि कांग्रेसने इसकी पहले कभी घोषणा नहीं की थी। १९२० में हमने जान-बूझकर दुनियासे यह कहनेका निश्चय किया कि हमारा मंशा स्वराज्य प्राप्त करनेका है और उस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए हम ऐसे साधनोंका उपयोग करना चाहते हैं जो सर्वथा शान्तिपूर्ण और वैध है। और अब चूंकि मैंने इन दो शब्दों अथवा दो फिकरोंका अनुवाद "अहिंसा और सत्यमूलक" साधन किया है, इसलिए आप बतायें कि क्या यह अनुवाद अथवा यह व्याख्या आपको ठीक लगती है? क्या आप इसको मानते है? इन पाँच वर्षोंके दौरान देशबन्धु दास उन व्यक्तियोंमें से रहे हैं जिन्होंने इन दो शब्दोंके अनुसार राष्ट्रीय नीतिको ढालनेमें योग दिया है। आपको उनसे इसके अतिरिक्त और इससे अधिक किसी और कामकी आशा रखनेका कोई अधिकार नही है। मैं इससे अधिक इसलिए कहता हूँ कि हममें से कुछ भोजनमें नमक-मिर्च पसन्द करते हैं, चटखारापन चाहते हैं। इस कार्यक्रममें से फिलहाल चटखारेपन, उत्तेजना पैदा करनेवाले प्रचारादिको निकाल दिया गया है। हमने इस बातपर विचार किया है, प्रत्येक नेताने इसपर विचार किया है; अतः हमारे लिए नमक और मिर्च या आग और बारूदके जरिये स्वतन्त्रता प्राप्त करना सम्भव

नहीं है। हम अपना राष्ट्रीय पुनरुत्थान — कह सकते हैं कि राष्ट्रीय मुक्ति — केवल अहिंसात्मक तथा सत्यमूलक साधनोंसे प्राप्त कर सकते हैं। यह जरूरी नहीं है कि इसे हम अपना धर्म बना लें। यह हमारी नीति भी रहे, तो काफी है; यदि हम इसे किसी अन्य या उच्चतर उद्देश्यसे न सही, केवल कार्य-साधकताके उद्देश्यसे ही स्वीकार करते हैं तो भी काफी है।

हमें भारतमें ऐसी समस्याओंको हल करना है जो कि विश्वके किसी अन्य राष्ट्रके सामने नहीं रहीं। यदि हम हिन्दू हैं तो हमें अपने मुसलमान देशवासियों, ईसाई देशवासियों, पारसी देशवासियों, सिखों और हिन्दुओंके बहुत-से ऐसे सम्प्रदायों और उप-सम्प्रदायोंकी पटरी आपसमें बैठानी है जो हिन्दू धर्मसे अपना अलग अस्तित्व रखते हैं। ऐसे विभिन्नतामूलक तत्त्वोंके बीच एक सोद्देश्य एकता, कर्मकी एकता स्थापित करनेके लिए ऐसे ही साधन उपयुक्त रहेंगे जिनपर किसीको कोई आपत्ति न हो। ऐसे साधन अहिंसा और सत्याचरण ही हैं। हम अपने मुसलमान देशवासियोंसे या हिन्दू देशवासियोंके साथ अन्य किसी भी तरीकेसे पेश नहीं आ सकते। और इसके अतिरिक्त हममें प्रान्तीयता भी है। बंगाल सोचता है कि उसे सारे भारतपर हुकूमत करनी चाहिए और सारे भारतको इस छोटे-से प्रान्त बंगालमें समा देना चाहिए (हँसी), और गुजरात भी शायद ऐसा ही सोचता है। गुजरात — जो बंगालके मुकाबले केवल समुद्रमें एक बूँदके समान, है — सोचता है कि हमें सारे भारतपर हुकूमत करनी होगी और सारे भारतको गुजरातमें लीन कर देना होगा। इसके बाद आप बहादुर मराठोंको लें और उनकी हालकी परम्पराओंपर गौर करें। उन्हें भी क्यों नहीं सोचना चाहिए कि भारतके भाग्य तथा नीतिका निर्माण वे ही करें? मुसलमान अपनी अभी हालकी ही परम्पराओंके कारण सोचता है कि उसे मुस्लिम साम्राज्यकी स्थापना या पुनः स्थापना करनी चाहिए। इन विरोधी तत्त्वों तथा प्रान्तीयतासे बचनेका उपाय अहिंसक तथा सत्यमूलक साधनोंके अतिरिक्त और कोई नहीं है; कारण यह है कि अगर हम कोई दूसरा रास्ता अपनाते हैं तो समझ लीजिए कि हम ऐसी सुरंगपर बैठे हैं जिसमें किसी भी समय विस्फोट हो सकता है। यदि हमारी नीति जरा भी विकृत हुई तो हम शायद नष्ट ही हो जायेंगे। इसीलिए मैंने बार-बार ऐसी नीति अपनानेपर जोर दिया है जो धार्मिक नीति नहीं है, बल्कि अहिंसा और सचाईकी नीति है। अपने लक्ष्यको पूरा करनेके बाद आप अपने देशके साथ जो भी चाहें, कर सकते हैं।

अपने देशके सम्मानकी स्थापनाके लिए, आप किसी भी ऐसे साधनका उपयोग कर सकते हैं जिसे आप वैध और उचित समझते हों। किन्तु मैं अपने बारेमें तो कोई लाग-लपेट नहीं रखता, बिलकुल स्पष्ट कहता हूँ कि मेरे लिए यही पहला और अन्तिम अर्थात् एकमात्र साधन है। यही मेरा धर्म है। अहिंसा और सत्य-निष्ठा मेरी साँस है। मैं चाहता हूँ कि मैं अहिंसा और सत्यनिष्ठाके लिए यहाँ उपस्थित प्रत्येक नवयुवकमें वही उत्साह और वही भक्ति भर दूँ, जो मुझमें है।

मैं बहुत-से बंगाली नवयुवकोंको जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि उनमें अद्वितीय साहस है। वे अपने देशकी खातिर आज जिस प्रकार जी रहे हैं उसी प्रकार वे

उसकी स्वतन्त्रताकी खातिर मरनेके लिए भी लालायित है। यदि यह मेरी धृष्टता न समझी जाये तो मेरा दावा है कि जैसे आज मैं देशके लिए जी रहा हूँ उसी प्रकार मुझमें देशके लिए मरनेकी भी क्षमता है। किन्तु जैसा मै कह चुका हूँ कि यह जीवन मरणान्तक यन्त्रणाका जीवन है। फाँसीपर चढ़कर मरनेमें मुझे जरा भी भय नही लगता। मेरा विश्वास है कि यदि मैं निर्दोष हूँ तो मैं ओठोपर मुस्कराहट लिए फाँसीपर चढकर मर सकता हूँ। यदि मेरे हाथ और मेरा हृदय हिमके समान निष्कलंक और निर्दोप हैं तो मृत्यु मेरे लिए किसी प्रकार भी भयप्रद नही। बंगालके प्रत्येक नवयुवकके लिए मृत्यु ऐसी ही भयविहीन रहे। देशबन्धुने आपके लिए यही नीति पुर्ननिरूपित और पुनः प्रतिष्ठित कर दी है। क्या उन्होंने गयाके अपने सुन्दर भापणमें यही वात नहीं कही? मैंने वह भापण अभीतक नही पढ़ा, किन्तु मुझे उसकी खवर यरवदा जेलमें मिल गई थी। मैंने वह खबर चुपके-चुपके नही मँगाई थी। मै जेलकी सभी हिदायतोंका पालन करता था, किन्तु कभी-कभी जेलर और आनेवाले लोग मुझे वता देते थे कि जेलकी दीवारोंके वाहर क्या हो रहा है। इसी तरह मुझे पता चल गया था कि देशवन्धुने जोरदार शब्दोंमें अहिंसा और सचाईकी नीतिका पुर्ननिरूपण और पुनः प्रतिष्ठापन किया है। वे आपके लिए, मेरे लिए, अपने लिए और देशके लिए इसी प्रकार सोचते है। आप जानते ही है कि उनकी कितनी कटु आलोचना की गई है। उनके कटु आलोचकोंमें यूरोपीय ही नही, वल्कि हमारे अपने देशके लोग भी है। आलोचक उनके अपने शिविरमें भी हैं। तब वे क्या करें? क्या उन्हें तटस्थ रहना चाहिए? बेशक वे तटस्थ रह सकते थे, यदि उनके हृदयमें अपने देशका हित न होता, यदि वे अपने देशकी मुक्तिके स्वप्न न देखते और यदि वे अत्यन्त मधुर शैलीमें यह कहनेके लिए तैयार न होते कि गांधीजी, मै आपके लिए दीर्घायु होनेकी कामना नही कर सकता क्योंकि आपकी किस्मतमें लिखा हुआ है कि जिस क्षण हमें स्वराज्य मिलेगा उसी क्षण आप मर जायेंगे। आप स्वराज्यके लिए, केवल स्वराज्यके लिए जी रहे हैं; और चूँकि मै भारतके लिए तत्काल स्वराज्य चाहता हूँ, इसलिए मै ईश्वरसे यह प्रार्थना नही कर सकता कि महात्मा गांधी चिर-जीवी हों। उससे मेरे स्वराज्य आनेमें विलम्ब होगा। मै उनके इस विचारको वहु-मूल्य समझता हूँ और उस विचारमें, यद्यपि वह विनोदी भावसे प्रकट किया गया है, उन्होंने मुझे ऐसा सम्मान दिया है, जिससे वड़ा सम्मान मुझे वे या आप दे ही नहीं सकते, क्योंकि यही विलकुल सही और सच्चा सम्मान है।

मै स्वराज्यके लिए अत्यधिक अधीर हूँ; उतना ही अधीर जितना कि आपमें से कोई हो सकता है। किन्तु मैं जानता हूँ कि हमारे कर्तव्य क्या है, मै जानता हूँ कि हमें क्या करना है। यदि मादक उपायोंकी एकाध खुराकसे स्वराज्य पाना सम्भव होता तो मै आज ही शक्तिशाली ब्रिटिश सम्राट्के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला विद्रोह कर देता और कह देता कि आप यहाँसे चले जायें, मै आज ही स्वराज्य चाहता हूँ।' किन्तु वैसा सम्भव नहीं है। मै खुल्लमखुल्ला ऐसा विद्रोह कर सकनेकी अपनी अक्षमता स्वीकार करता हूँ। मैं अपने देशकी आजकी अक्षमताको स्वीकार करता हूँ। हाँ,

मैं चाहूँ तो कुछ अंग्रेजोंके सिर जरूर काट सकता हूँ; ऐसा तो कोई भी व्यक्ति कर सकता है। उसके लिए मजबूत बाजुओंकी जरूरत नहीं है। इसके लिए मजबूत हृदयकी जरूरत है। आपमें से कोई भी एक छोटा-सा तमंचा लेकर उन्हें निशाना बना सकता है; मैं भी वैसा ही कर सकता हूँ। किन्तु लॉर्ड रीडिंग,* लॉर्ड लिटन या किसी अन्य अंग्रेजके सिर काटनेसे लाभ क्या होगा? मैं उस सिरको घोड़ेपर घुमा कर यह तो नहीं कह सकता कि अब मेरा देश मुक्त हो गया। देशकी मुक्ति अपेक्षाकृत कठिन साधनोंसे प्राप्त होगी। हमें अपने भीतर न केवल मरनेकी क्षमताका विकास करना होगा, न केवल मारनेकी क्षमताका विकास करना होगा, बल्कि जैसा डाक्टर बेसेंटने एक बार कहा था कि जिन लोगोंको हम अपने निकटतम और अत्यन्त प्रिय समझते हैं, उनके विद्वेष, निन्दा, उपेक्षा और बहिष्कारके बीच रहनेके लिए भी एक तरहके साहसकी आवश्यकता होती है; [हमें उस तरहके साहसका अपने भीतर विकास करना होगा।] उन्होंने यह ठीक ही कहा था। मैं अपने जीवन-भर हर अवसरपर यही कहता आया हूँ कि इस प्रकारके तूफानों और संघर्षोंके बीच रहनेके लिए भी एक तरहका साहस दरकार है।

तब फिर देशकी स्वाधीनता प्राप्त करनेका उपाय क्या है? निश्चय ही मार-काट नहीं; वर्तमान परिस्थितिमें निश्चय ही अपनी कुर्बानी देकर भी नहीं, बल्कि निरन्तर जुटे रहकर। इसीलिए मैंने बड़ी विनम्रताके साथ आपके सामने तीन चीजें रखनेका साहस किया है। वे हैं: हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता-निवारण और चरखा। परन्तु हिन्दू-मुस्लिम एकताके काममें कोई भी युवक पूरे २४ घंटे नहीं खपा सकता। यह तो हमारा सिद्धान्त है। जिस प्रकार एक मुसलमान कलमा पढ़ता है और बात खत्म हो जाती है, फिर शेष सारा समय उसके लिए कल्मेके आदेशपर अमल करना ही रह जाता है। जिस प्रकार मैंने गायत्री पाठ किया और पाठ या जपकी बात वहीं खत्म हो गई; फिर उसे दिनमें ५ करोड़ बार पढ़नेकी आवश्यकता नहीं, केवल उसके आदेशपर चलना रह जाता है। इसलिए हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारण एक सिद्धान्त ही है। किन्तु हममें से प्रत्येकको कोई ऐसा काम भी कर सकना चाहिए, जो अधिक मूर्त, ठोस और व्यावहारिक हो। हममें से प्रत्येक चरखा चलानेमें अपने हाथोंका उपयोग कर सकता है। आप जो सूत कातते हैं उसके प्रत्येक गजके साथ आप भारतका एक गज भाग्य भी कातते हैं। मैं क्रान्तिके जितने रूप जानता हूँ उनमें इसीको भारतके लिए सर्वोत्तम समझता हूँ। मैं जानता हूँ, आपमें से कुछ लोग इसपर हँसते हैं — यह हँसी अविश्वासकी है। आपमें से कुछ लोग सोचेंगे कि यह मूर्ख आदमी है; समय-असमय चरखेकी रट लगाये रहता है। किन्तु मैं वचन देता हूँ; भविष्यवाणी करता हूँ कि एक दिन ऐसा आयेगा, और वह दिन बहुत दूर नहीं है, जब कोई भी मुझे मूर्ख नहीं कहेगा। इसके विपरीत, मुझे यह सर्वोत्कृष्ट प्रमाणपत्र दिया जायेगा कि गांधीने चरखेके चलनको पुनरुज्जीवित किया है। गांधीने जब हमसे कातनेके लिए कहा तो उसने हमें देहातोंका सरल सन्देश दिया; जब उसने चरखेका सन्देश दिया तब उसके ध्यानमें अपने देशके करोड़ों पद-

दलित लोगोंके लिए उपयोगी स्वराज्य था। मुझे अपनी भावी सफलताके बारेमें कोई सन्देह नहीं है। मेरी सफलता सुनिश्चित है। जबतक मैं चरखेपर डटा रहूँगा, तबतक मेरा भविष्य सुनिश्चित है। मैं आपसे वादा करता हूँ कि यदि यहाँ श्रोताओंमें से प्रत्येक, जिनमें देशबन्धु दास भी शामिल हैं, कहे कि "गांधी गलतीपर है, चरखा कुछ भी नहीं, यन्त्र और तेज गतिके इस युगमें यह एक मूर्खतापूर्ण वस्तु है", तब भी मैं अपने जीवनकी अन्तिम साँसतक यही कहूँगा: "मुझे चरखा दो और मैं भारतके लिए स्वराज्यका ताना-बाना कात दूंगा।"

आप अन्य किसी शर्तपर स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते। हमें कर्मवीरोंका राष्ट्र बनना होगा, बातें करनेवालों या आलसी लोगोंका नहीं। हम स्वभावसे आलसी नहीं हैं, किन्तु परिस्थितियोंके कारण हमारे देशके करोड़ों लोगोंको खाली बैठे रहनेपर विवश होना पड़ता है। आप शालों बैठी हुई इस जनताके बारेमें उतना नहीं जानते जितना मैं जानता हूँ। मैं चम्पारनके १७ लाख लोगोंके बीच छः महीने या उससे भी अधिक समयतक रहा हूँ और मैंने देखा है कि वे कुछ नहीं करते थे, बस मेरे चारों ओर चक्कर लगाते रहते थे। वे एक ऐसे व्यक्तिसे कुछ प्रेम पाकर सन्तुष्ट थे जिसे वे अपना सच्चा सेवक समझते थे, किन्तु वे काम कुछ नहीं करते थे। उस समय मेरे पास यह चरखा नहीं था, अन्यथा मैं इसे उनके सामने रख देता। वे फाके नहीं कर रहे थे, भूखों नहीं मर रहे थे, किन्तु वे अपने हाथ-पैरोंका उपयोग करना भूल गये थे। वे थोड़ी-सी जमीन जोतते, नील उगाते, उसे काटते और कमाते, किन्तु चरखा नहीं चलाते थे। उनके घरोंमें कोई उद्योग-धन्धा नहीं था। चूंकि उसे वे वर्षों पहले भूल चुके थे, इसलिए वे अब इसे बिलकुल बेकार समझते थे। इसीलिए तो मैं इसे जबरदस्ती थोपा गया आलस्य कहता हूँ। ईस्ट इंडिया कम्पनीने हमारे हाथ-पैर बेकार बना दिये थे। मैंने ब्रिटिश शासनपर जितने अपराधोंका आरोप लगाया है, उनमें यह अपराध जघन्यतम है। इसीलिए मैंने कहा है कि जबतक मैं अंग्रेजोंमें हृदय-परिवर्तन नहीं देखता, जबतक वे भारतीय जनताके बारेमें इस ढंगसे महसूस नहीं करने लगते और यह नहीं कहते, "हाँ, हमें पश्चात्ताप है, हमने भारतसे जो-कुछ छीना है उसे हमें वापस कर देना चाहिए", तबतक मैं उनकी ओर मैत्रीका हाथ नहीं बढ़ाऊँगा और कहता रहूँगा, "यदि आप मुझे अपना भाई नहीं कहते तो मैं आपसे हाथ नहीं मिला सकता।" जबतक वे भारतीय जनताके साथ हमदर्दी जाहिर नहीं करते, तबतक मैं हाथ नहीं बढ़ा सकता। शासन समय-समयपर हमदर्दीका एक छोटा-सा टुकड़ा उठाकर जनताके मुँहपर फेंकता है। मैं इसे काफी नहीं समझता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि अंग्रेज शासक जनताकी भावनाओंको समझें, जनताके आर्थिक संगठन और प्रणालीको समझें। इसे वे स्वयं अपनी आँखोंसे देखें-समझें, यूरोपीय अर्थशास्त्रियोंकी पुस्तकोंके माध्यमसे नहीं, चाहे वह कितना ही विख्यात अर्थशास्त्री क्यों न हो। उन्हें जनताको ध्यानमें रखकर सोचना चाहिए। जिस क्षणसे अंग्रेज जनताको ध्यानमें रखकर सोचने लगेगा उसी क्षण आप मुझे उसके चरणोंमें दण्डवत् पायेंगे, क्योंकि मैं उसके गुणोंको, उसकी क्षमताओंको जानता हूँ।

किन्तु जबतक वह सही दिशामें चलना शुरू नहीं करता तबतक मैं ऐसा नहीं कर सकता। इसलिए जबतक अंग्रेज सही दिशामें चलना शुरू नहीं करता तबतक मेरा उसके साथ बात करनेका भी क्या फायदा, क्योंकि उसने जघन्यतम अपराध किया है — उसने मेरे चरखेपर डाका डाला है।

किन्तु मैं उसपर आरोप किस मुँहसे लगाऊँ, जब कि मेरे देशवासी स्वयं आप लोग आधा घंटा भी चरखा चलानेसे इनकार करते हैं; जब आप ही सन्देश भेजते हैं या कभी-कभी लिखते हैं कि इस मूर्ख गांधीने हमारे ऊपर यह घृणित कताई सदस्यता थोप दी है; हमें इससे छुटकारा पाना चाहिए, क्योंकि इसने हमपर यह बेमतलबका भार डाल दिया है। किन्तु सवाल यह है कि जब वह ईश्वरके नामपर, देशके लिए कातनेको कहता है, चाहे वह आधा घंटा ही क्यों न हो, तब क्या वह आपसे कोई ऐसा अजूबा करतब करनेको कहता है जो आपके सामर्थ्यके बाहर हो? जब वह आपसे कहता है कि आप सिरसे पाँवतक हाथ-कते और हाथ-बुने कपड़े पहनें, तब क्या वह आपसे कोई ऐसा काम करनेको कहता है, जिसे आप नहीं कर सकते? यदि आप इस छोटी-सी व्यावहारिक चीजपर भी अमल नहीं कर सकते तो मैं आपसे क्या कहूँ, मैं आपके साथ कैसा व्यवहार करूँ, अथवा मैं अपना स्वराज्य कैसे प्राप्त करूँ? वे आपपर, बंगालियोंपर दोषारोपण करते हैं कि आपमें व्यावहारिकता नहीं है; और कुछ हदतक वे सच भी कहते हैं। हम सब-कुछ चाहते हैं, किन्तु चाहते हैं कि वह पर्याप्त श्रम किये बिना ही मिल जाये। हम किसी चीजके बारेमें बातें तो बहुत करते हैं, हम प्रस्ताव भी पास करते हैं, किन्तु उनपर अमल करनेका समय आते ही हम उससे कतरा जाते हैं। इसलिए वे जो राष्ट्रके लिए किये जानेवाले कामसे कतराते हैं, उन्हें याद रहे कि भारतका भाग्य बनानेमें, भारतके लिए स्वराज्य प्राप्त करनेमें उनका कोई हाथ नहीं रहेगा। इसलिए मेरा अनुरोध है कि इस सूतकी शर्तवाले मताधिकारको आप कायम रखेंगे। आप चाहें तो सूतकी मात्रा कुछ घटा सकते हैं। लेकिन यदि मात्रा घटाई जाये तो प्रत्येक स्त्री-पुरुषके लिए, प्रत्येक लड़की और लड़केके लिए यह अनिवार्य बना दें कि जो भी कांग्रेस-जैसे जीवन्त संगठनके जरिये भारतकी सेवा करना चाहता है, वह आधा घंटा सूत काते और खद्दर पहने। ऐसा केवल समारोहोंके अवसरोंपर नहीं, कांग्रेसके कामके लिए नहीं, बल्कि सभी कार्योंके लिए अनिवार्य बना दें। अपने घरोंमें भी आप खद्दरके सिवा और कुछ न पहनें। ऐसे वस्त्र पहननेकी अपेक्षा जिसका सूत घरमें आपकी बहनोंने न काता हो और जिसे आपके भाइयोंने न बुना हो, बल्कि जो कारखानेमें बुना गया हो, आपके लिए बिलकुल नंगा रहना ही ज्यादा अच्छा होगा। यही चरखेका सन्देश है। यही एक सरल, छोटी-सी माँग है। यह माँग मैं ऐसे प्रत्येक स्त्री और पुरुषसे करता हूँ जो भारतसे प्यार करता है और जो भारतकी स्वाधीनता चाहता है।

आपको मुझसे यह सुनकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि यदि आप माण्डलेकी जेलकी दीवारोंके अन्दर बन्द कैदियोंको छुड़ाना चाहते हैं, यदि आप सुभाषचन्द्र बोस तथा अन्य लोगोंकी रिहाई चाहते हैं तो आप चरखा कातें। बिना कर्मके यह असम्भव

है। यदि आप सम्मान और प्रतिष्ठाके साथ उनकी और उनके साथी कैदियोंकी रिहाई चाहते हैं तो मैं कहता हूँ कि आप चरखा अवश्य कातें।

मुझसे वादा कीजिये कि इसके बाद प्रत्येक बंगाली स्त्री-पुरुष केवल खद्दर, और सिवा खद्दरके और कुछ भी नहीं पहनेगा; प्रत्येक स्त्री-पुरुष चरखेके पास उसी आनन्दके साथ जायेगा जैसे कि भोजनके लिए जाता है या जैसे कि कोई नवयुवक प्रेमी अपनी प्रेमिकाके पास जाता है। उस हालतमें मैं उन नौजवानोंको तुरन्त मुक्ति दिलवानेका वादा करता हूँ।

आप देखेंगे कि यह अत्यन्त सीधी-सादी वस्तु जनताको मुक्ति दिला देगी, क्योंकि यह आपके इस दृढ़ संकल्पका प्रतीक होगी कि आप पारिश्रमिक की आशा किये बिना भारतके लिए काम करेंगे। मैंने भारतकी खातिर केवल आधा घंटेके नि.शुल्क श्रमकी माँग की है। मैंने आपसे यह कोई बहुत बड़ी चीज नहीं माँगी है। किन्तु आपमें विश्वासकी कमी है; क्योंकि आपको अपनी जनतापर कोई विश्वास नहीं है, क्योंकि आपको अपने-आपपर कोई विश्वास नहीं, क्योंकि आपको अपने देशपर कोई विश्वास नहीं है, इसीलिए आप कताईसे इनकार करते हैं, और फिर भी सोचते हैं कि देशबन्धु जेलकी कुंजी हासिल कर लेंगे, आपकी बेड़ियाँ तोड़ देंगे और दरवाजे खोल देंगे। उनके लिए ऐसा करना असम्भव है।

आपमें से कुछ लोग सोचते हैं कि वे गुप्त रूपसे सरकारके साथ बातचीत चला रहे हैं। जहाँतक मैं जानता हूँ उनके पास कोई रहस्य नहीं है। कांग्रेसकी राजनीतिमें किसी भी बातको गुप्त रखनेकी मनाही है। जब किसीने उनसे पूछा कि इस सबके पीछे क्या है तो उन्होंने उत्तर दिया कि इसके पीछे भी वही है जो इसके सामने दिख रहा है (हँसी)। लॉर्ड बर्कनहेडने उन्हें कोई गुप्त सन्देश नहीं भेजा। वे उनसे कोई गुप्त बातचीत नहीं चला रहे हैं। उन्हें जो-कुछ कहना है, उसे आप उनके सुन्दर अभिभाषणमें पायेंगे। आप उसे उनके लेखों, उनके भाषणोंमें पायेंगे। आप उसे उनके उस जीवनमें पायेंगे जिसे वे अपने घरके भीतरके छोटे-से कमरेमें बिताते हैं या जब वे इस विशाल पण्डालमें बैठे हुए होते हैं। यदि आप उनका दिल टटोलें तो भी मैं जानता हूँ कि वे आपको देशकी मुक्ति चाहनेवाले व्यक्तिके रूपमें ही दिखाई देंगे। यही वह कड़ी है जो मुझे उनसे जोड़े हुए है। यही वह कड़ी है जो श्रोताओंको उनसे जोड़ सकती है। यही एक कड़ी है जिसे आपके और उनके बीच सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

हो सकता है कि आप हमारे तर्कोंसे आश्वस्त न हों। किन्तु आप कह सकते हैं कि आप ठीक रास्तेपर हैं; इसलिए हमारा हृदय सन्तुष्ट है और हम सब तबतक आपकी सलाहपर चलते रहेंगे जबतक कि आप हमारे आदर्श बने रहेंगे। आपके लिए यही तरीका है। यही आपके लिए उन लोगोंके साथ व्यवहार करनेका तरीका है, जिन्हें आप प्यार करते हैं। आप सिपाहियों और सैनिकोंके समान हैं। इसलिए एक बार अपना नेता चुन लेनेके बाद फिर कोई शंका करना आपके लिए ठीक नहीं। यदि आपने अपने नेताका चुनाव नहीं किया है और आपको चुनाव करनेके लिए

कहा जाता है तो आप अपनी विवेक-बुद्धिका जितना उपयोग कर सकते हैं, करें। उम्मीदवारोंको सिरसे परतक खूब वारीकीसे परख लें। किन्तु, अपना चुनाव कर लेनेके बाद और गलेमें माला डाल देनेके बाद, सीताके समान आप अपने चुने हुए नेतासे कभी विमुख न हों, और सीताके समान आप उसके साथ आगके बीच गुजर जायें तब फिर आपके सभी काम सब जायेंगे। (तालियाँ)

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, ८-५-१९२५

१५. बंगालके संस्मरण

४ मई, १९२५

फरीदपुरसे लौटकर सोमवारको मैं ये संस्मरण देशबन्धु दासकी पुरानी कोठीकी छतपर बैठा हुआ लिख रहा हूँ। बंगालमें आये आज मुझे चार दिन हो गये हैं। परन्तु इस कोठीमें मेरे दिलको पहले-पहल जो चोट लगी उसकी कसक अभीतक नहीं गई है। मैं जानता था कि यह कोठी देशबन्धुने सार्वजनिक कार्यके लिए दान कर दी थी। मैं जानता था कि उनपर कर्ज है। परन्तु उसके साथ ही मैं यह भी जानता था कि वे यदि वकालत करें तो एक वर्षसे कम समयमें ही सारा कर्ज अदा करके कोठीके मालिक बन सकते थे। परन्तु उन्हें वकालत तो करनी नहीं थी या यों कहें कि वे तो बिना फीस लिए देशकी वकालत करना चाहते थे; इसलिए उन्होंने इस महल-जैसी कोठीको दान करनेका निश्चय किया और उसे न्यासियोंको सौंप दिया। परन्तु उनकी इच्छा थी कि मैं इस यात्राके दौरान कलकत्तेमें तो उनके इस पुराने मकानमें ही ठहरूँ। मैं इसीलिए यहाँ आकर ठहरा हूँ।

परन्तु जानना एक बात है, और देखना दूसरी बात। इस घरमें प्रवेश करते समय मेरा हृदय रो उठा। मेरी आँखोंमें आँसू भर आये। उसके मालिक और उसकी मालिकीके बिना मुझे वह मकान जेल-जैसा मालूम हुआ। मेरे लिए उसमें रहना मुश्किल हो गया और मेरे मनमें यह भाव अभीतक बना ही हुआ है।

मैं जानता हूँ कि यह मोह है। देशबन्धुने इस मकानका कब्जा देकर अपने सिरपर से एक बोझ उतारा है। इस दम्पतीके लिए इस मकानका, जिसमें वे खो जा सकते हैं, क्या उपयोग था? वे इच्छा करते ही झोंपड़ीको राजमहल बना सकते हैं। उन दोनोंने इसे स्वेच्छासे त्यागा है। इसमें खेद करनेकी बात ही क्या है? यह तो हुई ज्ञानकी बात। यदि मुझमें यह ज्ञान न हो तो मुझे आजसे ही महल बनानेका उद्यम आरम्भ करना पड़े।

परन्तु देहाध्यास कहीं जाता है? जैसा दासने किया, क्या संसार ऐसा करता है? दुनिया तो महल मिले तो महलको ही लेना चाहती है। परन्तु इस मनुष्यने उनका त्याग कर दिया। धन्य है यह मनुष्य! मेरे आँसू प्रेमके हैं। मुझे जो चोट

लगी है वह भी इस प्रेमके कारण ही। और क्या यह स्वार्थमूलक नहीं है? यदि देशबन्धुके साथ मेरा कुछ भी सम्बन्ध न होता और मैंने इस मकानमें उनके राज्य करनेकी बात न सुनी होती तो मुझे यह चोट न लगती। मैंने महल तो बहुत-से देखे हैं, जिनके मालिक उन्हें छोड़कर दुनियासे ही चले गये। परन्तु उनमें प्रवेश करते हुए मेरी आँखोंसे आँसू नहीं गिरे, इसलिए मेरा यह रोना स्वार्थमूलक भी है।

चित्तरंजन दासने महल-जैसी कोठीका त्याग करके ठीक ही किया है। क्योंकि इससे उनकी सेवाकी कीमत बढ़ गई है।

बंगाली लोग दीवाने हैं। जिस तरह दास दीवाने हैं उसी तरह प्रफुल्लचन्द्र राय भी दीवाने हैं। जब वे मंचपर आकर व्याख्यान देते हैं तब मानो नाचते हैं। तब कोई नहीं मान सकता कि वे ज्ञानी हैं। वे मेजपर हाथ मारते हैं और जमीन-पर पैर पटकते हैं। अपनी बंगलामें जब चाहते हैं अंग्रेजी भी मिला डालते हैं। जब बोलते हैं तब अपनेको भूल जाते हैं। वे अपने विचारोंके आवेगमें ही मग्न हो जाते हैं। दूसरे लोग हँसेंगे या क्या कहेंगे, उन्हें इस बातकी परवाह शायद ही होती है। हम जबतक उनकी बातें न सुनें और उनकी आँखोंसे अपनी आँखें न मिलावें तब-तक हमें उनकी महत्ताका कुछ भी पता नहीं लग सकता। मुझे एक घटना याद आती है। तब मैं कलकत्तामें गोखलेके साथ रहता था और आचार्य राय उनके पड़ोसमें रहते थे। एक बार हम तीनों स्टेशनपर गये। मेरे पास तो मेरा तीसरे दर्जेका टिकट था। वे दोनों मुझे पहुँचाने आये थे। तीसरे दर्जेके मुसाफिरको पहुँचानेके लिए आनेवाले तो भिखारी ही हो सकते हैं। परन्तु गोखलेका भरा हुआ चेहरा, रेशमी पगड़ी और रेशमी किनारीकी धोती, टिकट बाबूकी दृष्टिमें काफी थे। परन्तु इस अस्थिपंजर-जैसे ब्रह्मचारीको जो मैला-सा कुरता पहने दुबला-पतला भिखारी-जैसा दिखता था, बिना टिकट कौन अन्दर जाने देता? जहाँतक मुझे याद है, वे बिना दुःख अनुभव किये बाहर ही खड़े रहे। और गोखले उस खचाखच भरे डिब्बेमें किसी तरह मेरे घुस जानेपर मेरी हठधर्मीकी टीका करते हुए उनके पास लौटे। आचार्य राय असंख्य छात्रोंके हृदयपर राज्य क्यों करते हैं? वे भी त्यागी हैं; और अब तो वे खादीके दीवाने हो गये हैं। शिक्षा-विभागकी एक बंगालिन अधिष्ठात्रीसे यह कहते हुए उन्हें जरा भी संकोच नहीं हुआ था, 'आप खादी नहीं पहनतीं तो किस कामकी?' वे ऐसा न कहें तो उनके खुलनाके भिखारियोंकी बनाई खादीको कौन खरीदे?

हम उसी रात फरीदपुर रवाना हो गये। भाई शंकरलालने मेरे स्वास्थ्यके सम्बन्धमें सतीश बाबूको बहुत डरा दिया था; अतः वे मेरे लिए कोई कमी कैसे रख सकते थे? वे भी तो इन्हीं दीवानोंके दलमें हैं न? उन्होंने छोटी-छोटी बातें भी पूछ रखी थीं। मेरी पीठको आराम देनेके लिए जहाँ भी मैं बैठता वहाँ एक पीठिका तैयार रहती थी। उसे सादी और कीमती न होनेसे मैं बरदाश्त कर लेता था। परन्तु जब हम स्टेशनपर पहुँचे तो देखा कि मेरे लिए और मेरे साथियोंके लिए पहले दर्जेका डिब्बा तैयार है। इसमें फरीदपुरकी स्वागत समितिका भी हिस्सा था। अभी हाल ही में एक सज्जनने 'यंग इंडिया' में एक सवाल पूछा था कि आप

अमीर हूँ या गरीब? मुझे लगा मानो बंगालने इसका जवाब दे दिया है? मैंने पूछा कि दूसरा दर्जा मेरे आरामके लिए काफी नहीं समझा गया, क्या बंगालमें इसलिए इस पहले दर्जेके डिब्बेकी व्यवस्था की गई है? जवाब मिला कि हमने तो दूसरे दर्जेका किराया देकर पहला दर्जा हासिल किया है। किन्तु क्या मुझे इससे सन्तोष हो सकता था? मेरे सिद्धान्तके अनुसार तो कोई अनुचित वस्तु मुफ्त दे तो भी हम उसे इस्तेमाल नहीं कर सकते। यदि कोई ऐसा मूर्ख या दीवाना मिल जाये जो मुझे हीरेका हार मुफ्त पहनाये तो क्या मुझे वह पहनना चाहिए? क्या मेरे साथी भी जो मेरे लेखनका काम करते हैं और पाखाना भी साफ कर सकते हैं, मुझ-जैसे ही नाजुक हैं? इतने नाजुक हैं कि उनके लिए भी दूसरे दर्जेके किरायेमें पहले दर्जेकी व्यवस्था करनी जरूरी हो? फिर यह काम रेलविभागकी कृपादृष्टिके बिना सम्भव नहीं है। क्या हम ऐसा निजी एहसान ले सकते हैं? मुझे तो इसमें प्रेमका पागलपन या अतिरेक ही दिखाई दिया।

अब इसका मुझे उपाय करना है। हरि इच्छा बलीयसी।

परन्तु यह प्रेमका पागलपन एकतरफा न था। हम रातको फरीदपुरके लिए रवाना हुए। मैंने समझा था कि मुझे रास्तेमें पर्याप्त शान्ति मिलेगी और मैं अपनी नींदकी पिछली कमी पूरी कर सकूँगा। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। 'आलो आलो' तथा दूसरी आवाजोंसे नींद मुश्किलसे ही आ सकी। गाड़ी भी प्रायः हर स्टेशनपर रुकती थी। हर स्टेशनपर लोगोंकी भीड़। 'दर्शन' की पुकार। मैंने तो रातको 'दर्शन' न देनेका निश्चय कर रखा था सो मैं पड़ा तो रहा, परन्तु फायदा क्या हुआ? मेरे साथी भी लोगोंको बहुत समझाते थे। वे ज्यों-ज्यों समझाते थे, लोग त्यों-त्यों अधिक उत्सुक होते थे। 'वन्देमातरम्', 'महात्मा गांधीकी जय', 'आलो आलो' का घोष ऊँचा ही चढ़ता जाता था। 'आलो' कहते हैं बत्तीको। डिब्बेकी बत्ती बुझा दी गई थी। लोग बत्ती जलवाकर अन्ततः मुझे सोता हुआ ही देख लेना चाहते थे। फरीदपुर पहुँचनेतक हर स्टेशनपर यही हालत रही। मैं प्रार्थना करता रहा — 'हे ईश्वर! तू इस प्रेमसे मेरी रक्षा कर।'

फरीदपुर पहुँचे, वहाँ देखा कि भीड़ बहुत है। परन्तु वहाँ प्रबन्ध सामान्यतः अच्छा था। स्वागत समितिके अध्यक्ष बाबू सुरेन्द्र विश्वासने लोगोंसे कह रखा था कि वे शोरगुल और धक्का-मुक्की न करें। उन्होंने उतरनेकी जगह ही मोटर खड़ी कर रखी थी; इसलिए हम बिना दिक्कत नगरमें पहुँच गये।

प्रदर्शनी

मुझे ठहरनेके मुकामपर पहुँचनेसे पहले प्रदर्शनीके उद्घाटनकी रस्म पूरी करनी थी। प्रदर्शनीमें सरकारी कृषि-विभागसे अनाजके बीजों आदिकी सहायता ली गई थी। परन्तु मुख्य भाग खादीका ही था। विश्वास बाबूने निश्चय किया था कि हाथकते सूत, ऊन या रेशमसे बने कपड़ेके सिवा कोई दूसरा कपड़ा प्रदर्शनीमें न रखा जायेगा। इससे प्रदर्शनीके खादी-विभागको बहुत सहायता मिली। लोगोंका ध्यान उसकी तरफ ज्यादासे-ज्यादा गया और उन्हें मिलके कपड़ेसे उसका मुकाबला करनेका मौका नहीं

आया। खादीम महीन कपड़ा भी बहुत दिखाई दिया। महीन सूतका भी खासा बड़ा ढेर था। एक जगह दो मनुष्य कुर्सीपर बैठकर सूत कातते रहे थे। उन्हें सूत लपेटनेकी क्रिया करनेमें अलग समय नही देना पड़ता था। सूत जैसे-जैसे कतता जाता था वैसे-वैसे लिपटता जाता था। इस चरखेसे प्रति घंटा ज्यादा सूत कतता हुआ तो दिखाई नहीं दिया; परन्तु इतना अवश्य था कि इससे एक क्रिया कम करनी पड़ती थी और चूंकि उसका चक्र पांवसे चलता था, इसलिए दोनों हाथ खाली रहते थे।

सिरामपुरके सरकारी कारखानेसे इस शर्तपर करघे लाये गये थे कि उसमें ताने-बाने, दोनोंमें हाथका ही सूत काममें लाया जायेगा। और पूछताछसे मालूम हुआ कि आजकल उक्त कारखानेमें विद्यार्थियोंको हाथसे सूत कातनेकी क्रिया भी सिखाई जाती है। फटका करघे बहुतसे थे और उन सबमें हाथकते सूतका ताना लगाया जाता था। इस विभागमें सन और ऊन भी हाथसे काते जाते थे।

वहां चमड़ा रंगने और कमाने आदिकी क्रियाएँ भी दिखाई जाती थीं।

कताईकी प्रतियोगितामें अनेक स्त्री-पुरुष भाग ले रहे थे इसलिए दोनों विभाग जुदे-जुदे रखे गये थे। लगभग सब महीन सूत ही कातते थे। इससे मेरे मनपर तो यह छाप पड़ी है कि यदि बंगाल उत्साहपूर्वक काम करेगा तो खादीमें प्रथम स्थान प्राप्त कर लेगा। बंगालमें खादी न पहननेका हठ ठाननेवाले लोग कम देखे जाते हैं। कलाके प्रति रुचि बहुत है। सूत कातनेका कौशल भी बहुत है। मध्यम वर्गकी बहुत-सी स्त्रियां सुन्दर सूत कातती हैं और भावपूर्वक कातती हैं। मैं स्वागत समितिके अध्यक्षके घरमें ठहराया गया था। उनकी धर्मपत्नीने अपने परिवारके लिए बहुत सूत काता है। वे अपने घरके बाड़ेमें देव-कपास बोती हैं और रुईको धुने बिना ही सूत कातती हैं। मेरे लिए पूनियां तो इस भली बहनने ही बनाई थीं। पूनियां बहुत बढ़िया थीं। वे जरूरतके अनुसार कपासको हाथसे उतार कर व्यवस्थित रूपसे रखती जाती हैं और बातकी-बातमें पूनियोंका ढेर लगा देती हैं। लगता है कि बंगालमें स्वराज्यवादी बड़ी तादादमें चरखा चलाने लगे हैं। विश्वास बाबू खुद स्वराज्यवादी हैं। कलकत्ताकी एक कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष भी स्वराज्यवादी हैं। उन्होंने सार्वजनिक सभामें मेरे पास अपना काता हुआ सूत भेजा था। फरीदपुरमें तो बहुतसे लोग पूर्ण रूपसे खादी पहने हुए दिखाई दिये। स्त्रियोंकी एक खास सभा की गई थी। उसमें भी दूसरी और जगहोंसे—खासतौरसे गुजरातसे—ज्यादा स्त्रियां खादी पहने हुए थी। मैंने देखा कि बंगाली बहनें साड़ीमें चुन्नट नही रखती, इसलिए उनको इतनी लम्बी साड़ीकी जरूरत नही होती। किन्तु खादीकी साड़ी पहननेवाली बहनोंकी संख्या अधिक थी, इसका कारण यह नहीं था। यही कहा जा सकता है कि उनमें समझ अधिक है। हां, यह बात सच है कि कितनी ही स्त्रियों और पुरुषोंने खादी सिर्फ इसी अवसरके लिए पहनी थी।

यह तो फरीदपुरकी जो छाप मुझपर पड़ी, वही मैंने दी। मैं यह दौरा खादीके ही निमित्त कर रहा हूँ। इसलिए अभी तो मुझे बहुत अनुभव होगा। तमाम अनुभवों-का योगफल क्या होगा—सो तो पाठकोंको बादमें ही मालूम होगा। प्रदर्शनीमें प्रवेश शुल्क कुछ नही रखा गया था। इसलिए उससे हजारों लोगोंने लाभ उठाया। फरीद-

पुरसे रवाना होनेसे पहले दूसरे दिन खादीकी भिन्न-भिन्न क्रियाएँ करनेवालोंको इनाम बाँटा गया। पदक तथा पुरस्कार प्राप्त करनेवालोंमें स्त्रियों और पुरुषोंकी संख्या सम्भवतः बराबर थी। पदक पानेवालोंमें तीन मुसलमान थे। उत्तम पींजनेवालों, पूनियाँ बनानेवालों, कातनेवालों और बुननेवालोंको श्रेणीके अनुसार पदक और पुरस्कार दिये गये थे।

परिषद्‌में[1]

देशबन्धुका शरीर बहुत ही दुर्बल दिखाई दिया। उनकी आवाज मंद हो गई है। कमजोरी बहुत है। सच कहूँ तो अभी उनका स्वास्थ्य ऐसे कामोंमें भाग लेनेके योग्य नहीं हो पाया है। अभी तो डाक्टरोंने उन्हें सलाह दी है कि वे शक्ति प्राप्त करनेके लिए यूरोप या दार्जिलिंग जायें। परन्तु वे वहाँ मजबूरीमें ही जाना चाहते हैं।

परिषद्‌के लिए खास तौरपर खादीका मण्डप बनाया गया था। उसमें सादगी बहुत थी। बैठनेका इन्तजाम फर्शपर ही रखा गया था। कुर्सी एक भी नहीं थी। मण्डप बनानेका काम तम्बू बनानेवालोंके जिम्मे रखा गया था। वे कहते हैं कि उन्होंने वह शुद्ध खादीका बनाया है। पर हम सबको इसमें बहुत शक है कि वह सचमुच खादीका ही है। मैं जाँच कर रहा हूँ। पर मुख्य बात यह है कि व्यवस्थापकोंका मंशा शुद्ध खादीका ही मण्डप बनवानेका था और उन्होंने मान लिया था कि वह खादीका ही है।

देशबन्धुका भाषण संक्षिप्त और रोचक था। उनके प्रत्येक वाक्यमें अहिंसाकी गूँज थी। उन्होंने उस भाषणमें स्पष्ट बताया कि हिन्दुस्तानका उद्धार अहिंसात्मक संघर्षसे ही हो सकता है। यदि कोई मुझसे इस भाषणके नीचे सही करनेके लिए कहे तो मुझे शायद ही कोई वाक्य या शब्द बदलनेकी जरूरत होगी।

प्रस्तावोंका उनके भाषणके अनुसार होना स्वाभाविक ही था। इससे विषय-समितिमें खासा झगड़ा भी हुआ। यहाँतक नौबत आई कि देशबन्धुको इस्तीफा देनेकी बात कहनी पड़ी। परन्तु अन्तमें उनके प्रभावकी जय हुई और परिषद्‌के महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव निर्विघ्न पास हो गये।

अंजुमनकी सभा

मुसलमान भाइयोंने अलग सभाका[2] आयोजन किया था। उसमें हम दोनों निमन्त्रित थे। इसलिए देशबन्धु, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती वासन्ती देवी और मैं वहाँ गये थे। फरीदपुरमें कुछ कटुता फैल रही है। उसके लिए मैंने पंचसे फैसला करानेका सुझाव देकर मुसलमानोंको सलाह दी कि वे परिषद्‌में शरीक हो जायें। फलतः कोई १०० सज्जन रविवारको सायं परिषद्‌में आये थे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-५-१९२५

१. बंगाल प्रान्तीय कृषि परिषद्।

२. यह ३ मई सन् १९२५ को हुई थी।

१६. भाषण : प्रवर्तक आश्रम, चन्द्रनगरमें

५ मई, १९२५

महात्मा गांधीने कहा कि इस आश्रममें बहुत दिनोंसे आनेकी इच्छा थी, मुझे प्रसन्नता है कि अन्तमें वह पूरी हो गई। मैंने संघके आन्तरिक जीवन और इतिहासके बारेमें निर्मल बाबूसे[1] बहुत-कुछ सुना है। मैं इसके उच्च आदर्श और उद्देश्यकी हार्दिक सराहना करता हूँ। मुझे बताया गया है कि संघकी आधारशिला आध्यात्मिक जीवनपर रखी गई है। सदस्य आत्मिक ज्ञान और अन्तःप्रेरणाका अनुसरण करते हैं तथा सनातन धर्मके पुरातन अविकल आदर्शके अनुरूप आचरण करते हैं। उनका सिद्धान्त केवल त्याग नहीं है, वह केवल भौतिकताको नकारनेका दर्शन भी नहीं है, बल्कि सृष्टिके मूलमें ईश्वरका जो आशय है उसे चरितार्थ करनेके लिए जीवनको उसकी समग्रताके साथ स्वीकार करना भी उसमें शामिल है। यह वैदिक धर्म है और इसकी आधारशिला आत्मदर्शन या आध्यात्मिक आत्म-साक्षात्कार है। यह कहना सोलह आने सही नहीं है कि मेरे जीवनका आदर्श इससे सर्वथा भिन्न होनेके साथ-साथ अधिकांशतया राजनीतिक है। मैं जो-कुछ करता हूँ, मैं कहूँ तो उसमें मेरा आदर्श परमार्थ रहता है। मैं इस अर्थमें सच्चा मुमुक्षु या मोक्षार्थी हूँ कि मैं देश और मानवताकी सेवा और मुक्तिके द्वारा ही अपनी मुक्ति चाहता हूँ। मैं इस बातमें सचमुच ही अध्यात्मवादी हूँ, क्योंकि मेरा उद्देश्य आत्मोत्सर्ग है और मेरा सारा जीवन और कार्य पूरी तौरपर श्रीकृष्ण और भारतमाताके चरणोंमें अर्पित है। इसलिए मैं जोर देकर कहता हूँ कि मेरा आदर्श प्रवर्तक संघके आदर्शसे किसी प्रकार भी भिन्न नहीं है। अब मैं उस उत्कृष्ट प्रणालीके बारेमें कुछ कहना चाहता हूँ जिसके अन्तर्गत आश्रममें आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती है। मुझे इस बातसे प्रसन्नता है कि आपका आदर्श-वाक्य स्वावलम्बन है। मेरा विश्वास है कि आर्थिक नींवसे हीन आध्यात्मिकता लँगड़ी है। संघने आध्यात्मिक जीवन तथा आर्थिक तपस्याके बीच जो अद्वितीय सामञ्जस्य स्थापित किया है, मैं उसके लिए बधाई देता हूँ।

इसके बाद चरखा और खादीका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि जब मैं यह जान लूँगा कि संघने मिलावटी सूत का सर्वथा बहिष्कार कर दिया है तब मुझे और भी अधिक प्रसन्नता होगी। अब मैं जहाँ भी जाऊँगा लोगोंसे जिस प्रकार यह कहूँगा कि आप चन्द्रनगरके प्रवर्तक आश्रममें आध्यात्मिक संस्कृति तथा अनुकरणीय चरित्र-निर्माणके सम्बन्धमें होनेवाले उत्तम कार्यको देखनेके लिए जायें, उसी प्रकार मेरी यह कहनेकी भी लालसा है कि संघ एक आदर्श संस्थाके रूपमें केवल शुद्ध खादीका कार्य कर रहा है।

१. निर्मलकुमार बसु।

उन्होंने आगे बताया, जब मैं यह देखता हूँ कि भारतके करोड़ों पुत्र और पुत्रियाँ जिन्हें प्रतिदिन एक कौर भोजन भी उपलब्ध नहीं होता, नितान्त कष्ट भोग रहे हैं, तब मेरा हृदय उनके लिए भर-भर आता है। गरीबीके भारसे पीड़ित भारतके इन करोड़ों लोगोंके लिए तथा राष्ट्रव्यापी एकताके लिए मैं खद्दर, हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा अस्पृश्यता-निवारणके त्रिसूत्री धर्मका उपदेश देता हूँ। यही मेरे लिए व्यावहारिक वेदान्त है, क्योंकि मैं सब में व्याप्त एक आत्मामें विश्वास करता हूँ और अपने जीवनके लिए किसीको भी कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा। यही मेरे अहिंसाके आदर्शका सच्चा अर्थ है। मैं आप लोगोंसे आग्रह करता हूँ कि आप कातें, बुनें और खद्दर पहनें, क्योंकि भारतके करोड़ों लोगोंके लिए स्वराज्य प्राप्त करनेका एकमात्र साधन मुझे यही दीख पड़ा है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका; ८-५-१९२५

१७. भाषण: अष्टाङ्ग आयुर्वेद विद्यालयके शिलान्यास-समारोहमें

कलकत्ता
६ मई, १९२५

मित्रो,

मैंने इस महान संस्थाके शिलान्यासके निमन्त्रणको अत्यन्त संकोचके साथ स्वीकार किया है। आप जानते हैं कि कुछ वर्ष पहले मैंने तिब्बिया कालेजका[1] उद्घाटन किया था, जिसके कर्त्ता-धर्त्ता मेरे सम्मानित मित्र और बन्धु हकीम अजमलखाँ थे। उस अवसरपर मुझे काफी संकोच हुआ था। किन्तु मैं उस निमन्त्रणको अस्वीकार नहीं कर सका था, क्योंकि वह मुझे मेरे एक अन्तरंग मित्रने दिया था। इसी प्रकारका निमन्त्रण मेरे एक दूसरे अन्तरंग मित्रने जब मेरे पास भेजा, तो उसे भी मैं अस्वीकार नहीं कर सका। किन्तु यदि मैं चिकित्सा-पद्धतियोंके, खास तौरपर आयुर्वेदिक और यूनानी पद्धतियोंके, बारेमें और आम तौरपर चिकित्सकोंके पेशेके बारेमें अपने हार्दिक विचार व्यक्त न करूँ तो वह मेरे अपने साथ तथा यहाँ उपस्थित लोगोंके साथ ईमानदारी नहीं होगी। मैंने पहले-पहल १९०८ में इस चिकित्सा-पद्धति और पेशेके बारेमें अपने विचार व्यक्त किये थे।[2] मैंने उस समय जो-कुछ लिखा था उसमें इतने वर्ष बीत जानेपर भी, मैं एक शब्दतक नहीं बदल पा रहा हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि १९०८ में मैंने जो-कुछ लिखा था वह संक्षिप्त था। वह इस विषयका सरसरी तौरपर किया गया

१. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ३६०-३६२।
२. यहाँ १९०९ होना चाहिए। देखिए खण्ड १०, हिन्द स्वराज्य।

उल्लेख था। और वह बहुतसे अन्य विषयोंके साथ एक छोटी-सी पुस्तिकामें सम्मिलित किया गया था। उसके बाद मैं अपने उसी विचारका और अधिक विस्तार करता रहा हूँ। परन्तु मैंने जो विचार १९०८ में प्रकट किया था उसके तर्क-बलमें कोई कमी नहीं आने दी। जब भी मैं चिकित्सकोंके पास जाता हूँ और उनकी औषधियोंका उपयोग करता हूँ, मैं मनमें डरता रहता हूँ और मेरे बदनमें कँपकँपी छूटती है। और यह इस बातके बावजूद कि यरवदा जेलमें[1] मुझे एक ऐसे शल्य-चिकित्सकके तेज चाकूके सामने आत्म-समर्पण करना पड़ा जिससे मैं भली प्रकार परिचिततक न था। मनुष्य तथा मित्रके रूपमें मुझे कर्नल मैडॉकपर[2] पूरा-पूरा विश्वास था, लेकिन उनके तरीकों तथा उनकी बताई औषधियोंपर मुझे पूरा विश्वास नहीं था। यदि आज आप उनके पास जायें तो वे आपको दो प्रकारके प्रमाणपत्र देंगे — एक मेरे पक्षमें और दूसरा मेरे विपक्षमें। वे प्रमाण पत्र देंगे कि कुछ हदतक मैं उनकी बात माननेवाला और उनपर उनकी आशासे अधिक भरोसा रखनेवाला मरीज था। किन्तु वे यह भी कहेंगे और प्रमाणित करेंगे कि उन्हें जितने रोगियोंसे अबतक साबका पड़ा था उनमें वे मेरी गिनती सबसे मुश्किल किस्मके मरीजोंमें करते हैं। उनको मेरे निषेधोंसे निबटना पड़ता था। मैं कहा करता था मैं फलाँ चीज पिऊँगा, फलाँ नहीं। और मेरी स्वीकृतियोंकी अपेक्षा मेरे निषेध, संख्यामें अधिक होते थे। इसलिए जब कभी वे चाहते कि मेरा वजन कुछ बढ़ जाये, वे हमेशा मेरे पास परेशानमें आते, वे मुझे उन औषधियोंको लेनके लिए राजी करनेमें अत्यन्त कठिनाईसे ही सफल हो पाते, जिन्हें वे समझते थे कि मुझे लेनी ही चाहिए और मैं समझता था कि मुझे नहीं लेनी चाहिए (हँसी)। स्थिति ऐसी ही थी। मैंने इस पेशेके सम्बन्धमें अपने विचारोंका एक खाका ही आपके सामने रखा है, किन्तु अगर मैं आपको बतला दूँ कि मैं उच्चादर्शपूर्ण, वर्द्धमान किन्तु अभी मुट्ठीभर लोगोंतक ही सीमित उस विचारधाराका पोषक हूँ जो रोगकी चिकित्सा-की अपेक्षा उसके आमूल निवारणमें ज्यादा विश्वास करती है, जो यह मानती है कि प्रकृति अपने काम स्वयं पूरे कर लेती है और जो पीड़ित मानवताके लिए भी प्रकृतिको अपना काम स्वयं करने देनेमें विश्वास करती है तो आप मेरे विचारको ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे। जरूरत केवल इस बातकी है कि हम प्रकृतिको अपना काम करने दें। मैं उस विचार धाराका माननेवाला हूँ जिसके अनुसार डाक्टरों व वैद्यों और शल्य चिकित्सकोंकी ओरसे जितना ही कम हस्तक्षेप होगा उतना ही मानव-समाज और उसकी नैतिकताके लिए कल्याणकारी होगा। मैं उस चिकित्सक-वर्गका हूँ जो तेजीके साथ इस निष्कर्षपर पहुँच रहा है कि चिकित्सकोंका कर्त्तव्य केवल शारीरिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करना नहीं, बल्कि यह भी उनका धार्मिक कर्त्तव्य है कि वे शरीरके अन्दर रहनेवाली उस आत्माका भी खयाल करें जो आखिरकार अविनाशी, अजर-अमर है। मैं उन चिकित्सकोंकी विचार धाराका पोषक हूँ जो सोचते हैं कि वे शरीरके लिए ऐसा कुछ भी नहीं करेंगे, जिससे आत्माको, अन्तःकरणको, लेशमात्र भी

१. सन् १९२४ में, देखिए खण्ड २३।

२. ससून अस्पताल, पूनाके सबसे बड़े सर्जन, जिन्होंने गांधीजीका ऑपरेशन किया था।

हानि पहुँचती हो। जब मैं अपने कुछ प्रख्यात चिकित्सक मित्रोंको — जो सचमुच मेरे मित्र ही हैं — बहुधा यह बहस करते हुए सुनता हूँ कि क्या आत्मा नामकी कोई वस्तु है भी, यदि होती तो वह उनके तेज चाकूसे बचकर नहीं जा सकती थी, तब — आप मेरी बातपर विश्वास कीजिए — मुझे बहुत दुःख होता है। उनको इस बारेमें कुछ भी मालूम नहीं है। शल्य चिकित्सकका चाकू आत्माको कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकता और चीरफाड़ चाहे जितनी गहरी की जाये, चाकू आत्मातक नहीं पहुँच पाता (हँसी)। इसलिए मुझे इस समारोहमें सम्मिलित होते बड़ा संकोच हो रहा है।

क्या अन्य स्थानोंकी अपेक्षा किसी स्थान विशेषमें अस्पतालोंकी संख्याका अधिक होना उसकी अपेक्षाकृत उन्नत सभ्यताका सूचक माना जाना चाहिए? क्या सचमुच यह सभ्यताकी कसौटी है? औषधोंके सूचीपत्रमें और चिकित्सकोंकी निर्देशिकाओंकी यह जानकारी कि औषधियोंकी बिक्री और अस्पतालोंमें तथा दवाखानोंमें मरीजोंकी संख्यामें दिन दूनी, रात चौगुनी वृद्धि हो रही है, क्या वास्तविक प्रगतिका लक्षण है? मुझे इसमें सन्देह है। किन्तु मैं जानता हूँ कि इसका दूसरा पक्ष भी है। मैं इस प्रश्नके एक पक्षपर ही जोर देनेकी चेष्टा नहीं करना चाहता। किन्तु मैंने पूरी विनम्रताके साथ [ये बातें] उन लोगोंके सामने विचारके लिए रखी हैं जिनको इस महान संस्थाके प्रबन्धका दायित्व सौंपा गया है। मैंने अबतक चिकित्सा-पद्धति और शल्य चिकित्साके ही सम्बन्धमें सामान्य तौरपर कुछ बातें कही हैं, किन्तु जब मैं आयुर्वेदिक और यूनानी पद्धतियोंपर आता हूँ तो मुझे और भी सन्देह होने लगता है। आप शायद न जानते हों कि मैं अपने बचपनसे ही बहुतसे वैद्योंके सम्पर्कमें रहा हूँ। उनमें से कुछ तो अपनी बस्तियोंमें काफी प्रसिद्ध थे। एक ऐसा भी समय था जब मैं आयुर्वेदिक औषधियोंका बहुत बड़ा हामी था। और मैं पाश्चात्य औषधियोंका ही सेवन करनेवाले अपने मित्रोंको वैद्योंके पास जानेके लिए कहता था। किन्तु मुझे आपके सामने यह स्वीकार करते खेद होता है कि अब मेरा सारा भ्रम दूर हो चुका है। मैंने देखा है कि वैद्यों और हकीमोंमें विवेकशीलताका अभाव है। उनमें मानवीयताकी भी कमी है। विनयके बदले, मैंने उनमें यह अहंकार देखा है कि वे सब-कुछ जानते हैं (हँसी), और ऐसी कोई बीमारी नहीं जिसका वे इलाज नहीं कर सकते (पुनः हँसी)। मैंने देखा, उनका यह विश्वास है कि वे नाड़ी देखकर ही जान सकते हैं कि रोगी 'एपेंडिसाइटिस' या इसी प्रकारके अन्य किसी रोगसे पीड़ित है या नहीं। जब मैंने समझ लिया कि उनका निदान गलत, और अधिकतर मामलोंमें अपूर्ण होता है तब मेरे मनमें यह विचार आया कि यह तो पाखण्ड ही है। जब मैंने औषधियोंके विज्ञापनोंपर नजर डाली — मैं ऐसा नहीं कहता कि ये विज्ञापन कविराजोंके थे — वे हकीमों और वैद्यराजोंके थे — तब मुझे लज्जासे सिर झुका लेना पड़ा। ये विज्ञापन मनुष्यकी निम्नतम वासनाको उभारते हैं और हमारे समाचारपत्रों और पत्रिकाओंको विकृत बनाते हैं। मैंने इन्हें ऐसी पत्रिकाओंमें देखा है जो स्त्री-शिक्षासे सम्बन्धित हैं। मैंने इन्हें ऐसे पत्रोंमें भी देखा है जो नवयुवकोंकी शिक्षा और ज्ञान-वृद्धिसे सम्बन्धित

हैं। मैंने पाया है कि ये विज्ञापन मनको ललचानेवाले तो होते हैं और ऐसी निन्द्य वस्तुओंके विज्ञापन छपानेवालोंको इनसे निश्चय ही अर्थ-लाभ भी होता है, पर मैंने महसूस किया कि ये लोग पीड़ित मानवताके मर्मस्थलोंको गहरा आघात पहुँचा रहे हैं।

इसीलिए इस भव्य संस्थाका शिलान्यास करनेके साथ ही, और प्रार्थनापूर्ण हृदयसे इसकी सफलताकी कामना करनेके साथ ही मैं चाहता हूँ कि इसके आयोजनकर्त्ता मेरी मर्यादाओंको भी समझ लें और मेरी उस चेतावनीका अभिप्राय समझ लें जो मैंने उन लोगोंको दी है जिनसे संस्थाको आर्थिक सहायता देनेके लिए कहा गया है। मैं यह चेतावनी अत्यन्त विनम्रताके साथ दे रहा हूँ। ईश्वर करे यह संस्था उन लोगोंके लिए उपयोगी सिद्ध हो जो सचमुच पीड़ित हैं। ईश्वर करे यह संस्था न केवल शारीरिक आवश्यकताओंकी ओर ध्यान दे बल्कि उस अविनाशी आत्माकी ओर भी ध्यान दे जो शरीरमें वास करती है। ईश्वर करे, इस संस्थाके बारेमें कभी कोई ऐसा न कह पाये कि यह मानवकी निम्नतम प्रवृत्तिको उभारती है, यह बंगालके नवयुवकोंकी निम्नतम रुचियोंकी तुष्टि करती है। मैं बंगालके नवयुवकोंको जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि चिकित्सक औषधियाँ पिला-पिलाकर उनके सुन्दर जीवनको किस तरह खोखला बनाते जा रहे हैं। चिकित्सक भी ऐसे हैं, जो लॉर्ड जस्टिस स्टीफेनके शब्दोंमें, 'लोगोंके शरीरोंमें ऐसी औषधियाँ भरते जा रहे हैं जिनके बारेमें उनकी जानकारी बहुत ही थोड़ी है और लोगोंके शरीरके सम्बन्धमें उनका ज्ञान उतना भी नहीं है।'[1] इसलिए मैं वर्तमान व्यवस्थापकों और साथ ही भावी व्यवस्थापकोंसे उसी प्रकार आग्रहपूर्वक कहता हूँ जिस प्रकार कि मैंने मद्रासके इसी प्रकारके एक समारोहमें[2] कहा था कि वे विवेक, मानवीयता और सचाईसे काम लें और ईश्वरसे डरें। इन शब्दोंके साथ, मैं अपना भाषण समाप्त करता हूँ। आप लोग मुझे रास्ता दें तो मुझे उस स्थानपर जानेमें अत्यन्त प्रसन्नता होगी, जहाँ मुझे आधारशिला रखनी है। मुझे संस्थाकी सफलताके लिए प्रार्थना करनेमें भी उतनी ही प्रसन्नता होगी।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ८-५-१९२५

१. देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ४३०।
२. देखिए खण्ड २६, पृष्ठ ३८३-८४।

१८. गो-रक्षा

सही हो या गलत, मैंने बड़े हिचकते, डरते और कांपते मनसे अखिल भारतीय गो-रक्षा मण्डलके संचालनका भार अपने कन्धोंपर लिया है। इस मण्डलकी स्थापना गत मासकी २८ तारीखको बम्बईके माधव बागमें की गई थी।

यह एक बहुत बड़ा काम है जिसके लिए मैं सर्वथा अनुपयुक्त हूँ। मेरा खयाल है कि मैं रोगको समझता हूँ। मैं उसका उपचार भी जानता हूँ, किन्तु न तो मेरे पास समय है और न ऐसे आदमी ही हैं कि जो उन विचारोंको कार्यान्वित करें, जिनके अनुसार इस संस्थाको चलाना है।

गो-रक्षा मेरे लिए केवल गौओंकी रक्षा नही है। इसका अर्थ है संसारके समस्त असहाय और निर्बल प्राणियोंकी रक्षा करना। परन्तु अभी इस समय तो गो-रक्षाका अर्थ मुख्यतया गौ और उसकी सन्तति और व्युत्पत्तिके अनुसार सभी पशुओं, जैसे कि भैंसोंकी क्रूरता और वधसे रक्षा करना है।

संसारमें भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ २० करोड़से भी अधिक लोगोंके लिए गो-रक्षा एक धार्मिक कर्त्तव्य है। फिर भी भारतके मवेशी कृशकाय और दुर्बल है, उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है, उन्हें पेट भर खाना नहीं मिलता, उनसे बहुत अधिक काम लिया जाता है, उनकी नस्ल बिगड़ती जा रही है और उनके बारेमें यहाँतक कहा जाता है कि ये देशके लिए भार-स्वरूप हैं। अन्य किसी भी देशमें केवल इस कारण दूध देनेवाले मवेशियोंको बूचड़खानेमें नहीं ले जाया जाता कि वे समयसे बहुत पहले ही दूध देना बन्द कर देते हैं। कदाचित् अन्य किसी देशके मवेशी उनके घासचारे इत्यादिपर होनेवाले खर्चसे कम कीमतका दूध नही देते।

इस हालतको कैसे सुधारा जाये? निःसन्देह ऐसी गो-रक्षा समितियोंकी संख्या बढ़ानेसे नहीं जो अपने कर्त्तव्यको नहीं जानती; और निःसन्देह मुसलमानोंके साथ ऐसी बातोंके लिए झगड़नेसे भी नहीं जो यदि वे चाहें भी तो उनके वसमें नही हैं। यहाँ मै उन मुसलमानोंके बारेमें नहीं कह रहा हूँ जो हिन्दुओंकी भावनाको आघात पहुँचानेके खयालसे ही इरादतन अन्य पशुओंके सुलभ होते हुए भी, गोवध इस ढंगसे करते हैं मानो वे हिन्दुओंको दिखानेके लिए ही कर रहे हों। ऐसे उदाहरण अपवाद स्वरूप हैं। मैं मवेशी सम्बन्धी आय-व्ययकी बात सोच रहा हूँ। यदि हम उनकी देखभाल करें, तो शेष स्वयमेव ठीक हो जायेगा। यदि हमारे मवेशी आर्थिक रूपसे भार बने रहेंगे, और यदि यह दशा सुधारी नहीं जा सकती तो कोई भी उन्हें नष्ट होने तथा मारे जानसे कदापि नहीं बचा सकता। इसलिए इस समस्यापर शान्त भावसे, भावावेशमें आये विना, विचार करनेकी आवश्यकता है। यदि धर्मके पीछे विवेक और प्रबुद्धता न हो तो वह एक निरर्थक भावना बनकर रह जाता है और तत्त्वहीनता के कारण उसका विनाश अवश्यम्भावी हो जाता है। वह ज्ञान ही है जो अन्तमें मुक्ति प्रदान करता है। यदि गो-भक्तिके साथ ज्ञानका मेल न हो तो उसे अकाल मृत्युके मुँहमें

ढकेलनेका यह एक अचूक उपाय है। इसलिए जिस व्यक्तिको पशु समस्याका यथार्थ ज्ञान है, यदि उसके पास गायके प्रति दयाभाव है तो वह अपनेमें सभी वर्तमान और भावी गो-रक्षा समितियोंका प्रतिनिधित्व करता है। इस अखिल भारतीय मण्डलकी स्थापना इसी उद्देश्यको सामने रखकर ऐसे व्यक्तियोंको खोज-निकालनेके लिए की गई है जो पवित्र आचरणवाले हों, निर्मल हृदय हों, गोप्रेमी हों, शिक्षित हो और जो अपना सारा समय अनुसन्धान तथा प्रबन्धके कार्योंमें लगा सकें। इसलिए मैं ऐसा मन्त्री चाहता हूँ जिसकी योग्यताका उल्लेख मैंने अपने उद्घाटन भाषणमें किया है, जो इन्हीं पृष्ठोंमें अन्यत्र प्रकाशित है। कोषाध्यक्षकी अभी नियुक्ति करनी है। इस बीच प्रारम्भिक काम चलानेके लिए अस्थायी समिति, अस्थायी कोषाध्यक्ष तथा अस्थायी मन्त्रीकी नियुक्ति कर ली गई है। यह समिति किसी भी रूपमें सम्पूर्ण भारतका प्रतिनिधित्व नहीं करती क्योंकि समितिकी नियुक्ति उन्हीं लोगोंमें से करना जरूरी था जो उपस्थित थे। इस अस्थायी समितिके सदस्योंने मण्डलकी दूसरी बैठक होनेसे पहले अर्थात् अगले तीन मासके अन्ततक बारह सौ से अधिक सदस्य बनानेका काम अपने जिम्मे लिया है। यदि इस मण्डलको प्रतिनिधि संस्था बनाना है तो इसमें सभी प्रान्तोंके सदस्य होने चाहिए। अस्थायी मन्त्री बम्बई-निवासी श्रीयुत नगीनदास अमूलखराय हैं। और अस्थायी कोषाध्यक्ष झवेरी बाजार, बम्बईके श्रीयुत रेवाशंकर जगजीवन झवेरी[1] हैं। मुझे आशा है कि जो लोग गो-रक्षामें दिलचस्पी रखते हैं वे अपना चन्दा मन्त्री या कोषाध्यक्षके पास भेज देंगे। चन्दा ५ रुपया प्रतिवर्ष है जो पहले ही ले लिया जाता है, या रुपयोंके स्थानपर दो हजार गज हाथकता सूत प्रतिमास भेजा जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-५-१९२५

१९. फिर वही

उन क्रान्तिकारी महाशयने फिरसे पत्र लिखा है, परन्तु मैं उनसे यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इस पत्रको लिखनेमें उन्होंने इतने धैर्यसे काम नहीं लिया है जितना कि पिछले पत्रमें[2] लिया था। इसमें उन्होंने बहुत-सी असम्बद्ध बातें लिख मारी हैं और अपनी दलीलोंमें लापरवाहीसे काम लिया है। जहाँतक मैं देख पाया हूँ उनकी दलीलोंका भण्डार खाली हो चुका है और उनके पास कहनेके लिए कोई नई बात नहीं रह गई है। पर यदि वे फिर भी पत्र लिखना चाहें तो उसे कृपापूर्वक अधिक सावधानीके साथ लिखना और विचारोंको संक्षिप्त रूप देना बेहतर होगा। अबके उनका यह काम मैंने किया है। पर वे तो प्रकाश पानेके उत्सुक हैं; इसलिए उन्हें चाहिए कि वे मेरे लेखोंको ध्यानपूर्वक पढ़ें, शान्त चित्तसे उनपर विचार करें और तब जो लिखना हो साफ ढंगसे और संक्षेपमें लिख भेजें। यदि वे सिर्फ

१. डा० प्राणजीवन मेहताके भाई।

२. देखिए खण्ड २६, पृष्ठ १३४-३६, ४७८-८४।

प्रश्न पूछना चाहते हैं तो केवल प्रश्न ही लिख कर भेज दें — दलीलें देते हुए मुझे अपनी बातका कायल करनेकी कोशिश न करें। क्रान्तिकारी गतिविधिके सम्बन्धमें मैं सभी-कुछ जाननेकी डींग नहीं हाँकता; परन्तु चूँकि उसके सम्बन्धमें मुझे बहुत-कुछ विचार, अवलोकन और लेखन करना पड़ा है, अतएव पत्र-लेखकके पास मुझे बतानेके योग्य नई बातें बहुत नहीं हो सकतीं। इसलिए जहाँ मैं उनकी बातपर खुले दिलसे विचार करनेका वचन देता हूँ वहाँ मेरा उनसे यह भी अनुरोध होगा कि कृपया राष्ट्रके एक कार्यव्यस्त सेवक तथा क्रान्तिकारियोंके एक सच्चे हितैषीको उन सब बातोंको पढ़नेके परिश्रमसे बचाइए, जिनके पढ़नेकी जरूरत उसे है ही नहीं। मैं क्रान्तिकारियोंकी बातोंसे वाकिफ रहनेके सम्बन्धमें उत्सुक जरूर हूँ और उसके लिए यह साप्ताहिक ही मेरा साधन बन सकता है। उनके लिए मेरे हृदयमें सद्भाव और स्नेह है, क्योंकि एक चीज उनमें और मुझमें समान रूपसे मौजूद है और वह है कष्ट-सहनकी क्षमता। लेकिन चूँकि मैं विनम्रभावसे उन्हें गलतीपर तथा गुमराह मानता हूँ, मेरी अभिलाषा उन्हें उनकी गलतीसे विरत करने या खुद अपनी भूलको दुरुस्त करने की है।

मेरे क्रान्तिकारी मित्रका पहला प्रश्न है:

> "क्रान्तिकारियोंने देशकी प्रगतिमें बाधा पैदा कर दी है।" आपने खुद ही बंग-भंगके सिलसिलेमें जो लिखा था अब क्या आपका वह खयाल नहीं रहा? आपने लिखा था, "विभाजन होनेके बाद लोगोंने देखा कि प्रार्थनापत्रके पीछे बल चाहिए, लोगोंमें कष्ट उठानेकी शक्ति चाहिए। यह नई भावना ही विभाजनका मुख्य परिणाम मानी जायेगी।. . .जो बातें लोग डरते-डरते या लुके-छिपे करते थे, वे खुल्लम-खुल्ला कही और लिखी जाने लगीं।. . .पहले अंग्रेजोंको देखते ही छोटे-बड़े सब भाग जाते थे। अब उनका डर चला गया। लोगोंने मारे-पीटे जानेकी भी परवाह नहीं की। जेल जानेमें उन्होंने बुराई नहीं मानी और इस समय 'भारतके पुत्ररत्न' निर्वासित होकर [विदेशोंमें] विराजमान हैं।"[1] बंग-भंगके बाद वाला आन्दोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन ही था। अधिक सही तो यह कहना होगा कि उसे जनताके असन्तोषका मूर्तिमन्त रूप माना जाये — और वे 'भारतके पुत्ररत्न' जिनका आपने उल्लेख किया है अधिकांशमें क्रांतिकारी या अर्ध-क्रान्तिकारी थे। तब ये कथित अज्ञानी और गुमराह लोग देशकी भीरुता, यदि नष्ट नहीं तो कम कैसे कर पाये? क्या महज इसलिए कि क्रान्तिकारी लोग आपके विचित्र अहिंसा-सिद्धान्तको नहीं समझ पाते, आप उन्हें अज्ञानी कहेंगे?

'हिन्द स्वराज्य' में[2] व्यक्त किये गये मेरे विचारोंमें जिन्हें लेखकने उद्धृत किया है तथा मेरे आजके विचारोंमें कोई अन्तर नहीं है। जिन लोगोंने बंग-भंगके विरोधमें

१. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ १२।

२. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ६-६९।

उठाये गये आन्दोलनका नेतृत्व किया था, उन्होंने वे कोई भी और कैसे भी क्यों न रहे हों, निस्सन्देह लोगोके मनसे अंग्रेज लोगोंका डर दूर कर दिया था। यह देशकी स्पष्ट सेवा थी। परन्तु वीरता और आत्म-त्यागका अर्थ किसीको मार डालना नही है। ये क्रान्तिकारी महाशय याद रखें कि 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तिका, जैसा कि उस पुस्तिकासे स्पष्ट है, लिखी गई थी एक क्रान्तिकारीकी ही दलीलों और तरीकोंके उत्तरमें। पुस्तक लिखनेका अभिप्राय यह था कि क्रान्तिकारियोको उस चीजसे जो उनके पास है, कहीं अधिक उत्तम वस्तु दी जाये, और जिससे उनके अन्दरकी तमाम वीरता और आत्मत्यागके भाव भी बने रहें। मैं क्रान्तिकारियोंको केवल इसलिए अज्ञानी नही कहता कि वे मेरे साधनोंको नहीं समझते या उनकी कदर नही करते; बल्कि इसलिए कि वे मुझे युद्ध-कलाके ज्ञाता भी प्रतीत नही होते। जिन-जिन वीरोंका उल्लेख उन्होंने किया है वे युद्ध-कलाका ज्ञान रखते थे और उनके पास अपने आदमी भी थे।

दूसरा प्रश्न यह है—

> **क्या टेरेंस मैक्स्विनी जिसने ७१ दिनका उपवास करके प्राण त्यागे, हिंसा षड्यन्त्रादिसे नितान्त अनभिज्ञ कोई भोलाभाला व्यक्ति था? वह अन्ततक गुप्त षड्यन्त्रों, खूंरेजी और आतंकवादका हामी रहा और अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्वतन्त्रताके सिद्धान्त'में लिखित विचारोंका प्रतिपादन करता रहा। यदि आप मैक्स्विनीको भोलाभाला और स्वच्छ मतिवाला व्यक्ति कह सकते हैं तो क्या गोपोमोहन साहाके[1] लिए भी उन्हीं शब्दोंका प्रयोग करनेको तैयार न होंगे?**

खेद है कि मैं मैक्स्विनीका जीवन-चरित्र इतना नही जानता कि कोई राय दे सकूं। पर यदि उसने गुप्त षड्यन्त्र, खूंरेजी और आतंकवादकी हिमायत की हो तो उसके साधनोंपर भी वही आक्षेप किये जा सकते हैं जो मैं इन पृष्ठोंमें कर चुका हूँ। मैंने उन्हें कभी भोलाभाला और पाक-साफ नही माना। जब उनके उपवासकी बात प्रकाशित हुई थी, तभी मैंने उसपर अपनी यह राय प्रकट की थी कि मेरी दृष्टिमें उनकी यह भूल थी। मैं हर प्रकारके उपवासका समर्थन नही करता।

तीसरा सवाल इस प्रकार है—

> **आप वर्ण-व्यवस्थाको मानते हैं। इसलिए यह स्वयंसिद्ध है कि आप क्षत्रियोंको भी अन्य वर्णोंकी तरह उपयोगी मानते हैं। इस निःक्षत्रिय युगमें, भारतवर्षमें क्रान्तिकारी लोग क्षत्रिय होनेका दावा करते हैं। 'क्षतात् त्रायते इति क्षत्रियः'। मैं भारतको आज अभूतपूर्व क्षतकी अवस्थामें देखता हूँ और इसलिए वह समय आ गया है जब देशको क्षत्रियोंकी अत्यन्त आवश्यकता है। महान स्मृतिकार मनु महाराजने क्षत्रियोंके लिए चार साधनोंकी व्यवस्था की है—साम, दाम, दण्ड, भेद। इस सम्बन्धमें मैं स्वामी विवेकानन्दके ग्रन्थसे**

१. 'गोपीनाथ साहा' होना चाहिए; देखिए खण्ड २४, पृष्ठ २०५-६।

कुछ वाक्य उद्धृत करता हूँ। आशा है कि आप उनसे सब बातें बखूबी समझ जायेंगे।

सभी महान् आचार्योंने कहा है 'न पापे प्रति पापः स्यात्,' अर्थात् उन्होंने अप्रतिकारको सर्वोच्च नैतिक आदर्श माना है। किन्तु हम सब जानते हैं कि यदि संसारकी वर्तमान अवस्थामें लोग इस सिद्धान्तका पालन करने लगें तो समाज-व्यवस्था खण्ड-खण्ड हो जायेगी, समाजका विनाश हो जायेगा, हिंस्र और दुरात्मा लोग हमारे जन-धन और प्राणतक का हरण कर लेंगे। एक ही दिवसके ऐसे निष्क्रिय प्रतिरोधके परिणामस्वरूप देश तहस-नहस हो जायेगा। मुझे मालूम है कि असमंजसकी इस अवस्थामें आप क्या कहेंगे। आप उसका भिन्न अर्थ लगायेंगे। परन्तु आप देखेंगे कि उन्होंने इस प्रकारका अर्थ लगानेका अवसर ही नहीं दिया है, क्योंकि वे उसी स्थलपर कहते हैं: "आपमें से कुछ लोगोंने तो भगवद्गीताको पढ़ा होगा और आपमें से पश्चिमके बहुतसे लोगोंको पहले अध्यायमें यह देखकर ताज्जुब हुआ होगा कि श्रीकृष्णने अर्जुनको, जब वह अपने प्रतिपक्षियोंमें अपने गुरुजनों और सम्बन्धियोंको देखता है और अप्रतिकारको प्रेमका सर्वोच्च आदर्श बताता हुआ युद्ध करनेसे इनकार कर देता है, पाखण्डी और भीरु कहा है। इससे हम एक बड़ी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं — किसी भी बातके दोनों छोर एकसे ही हुआ करते हैं; आत्यन्तिक भाव और आत्यन्तिक अभाव दोनोंका स्वरूप सदा ही एक समान होता है; जब प्रकाशकी लहरोंका कम्पन बहुत कम होता है तब हम कुछ नहीं देख सकते और जब वे बहुत तेज होती हैं तब भी हम नहीं देख पाते। यही बात ध्वनिपर घटित है। जब वह बहुत धीमी होती है तब भी हम उसे नहीं सुन सकते और जब बहुत ऊँची होती है तब भी नहीं सुन सकते। यही बात प्रतिकार और अप्रतिकारपर घटित होती है।. . . सबसे पहले हमें यह समझनेकी कोशिश करनी चाहिए कि हमारे पास प्रतिकारकी शक्ति है भी या नहीं। पर यदि वह हमारे पास हो और फिर हम उसका प्रयोग न करें तो हमारा वह कृत्य महान् प्रेमका कृत्य होगा; परन्तु यदि हम मुकाबिला नहीं कर सकते और फिर भी हम यह दिखायें या अपने मनमें यह मान लें कि हम तो उच्च प्रेमभावसे प्रेरित होते हैं तो हम नीतिकी दृष्टिसे जो बात ठीक बैठती है उसके ठीक विपरीत आचरण करेंगे। अर्जुन अपने सामने सबल सेनाको देखकर भयभीत हो गया, उसका 'प्रेम' देश और राजाके प्रति अपने कर्त्तव्यको भुला देनेका कारण बन बैठा। इसीलिए श्रीकृष्णने उसे दम्भी कहा — 'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।' इसलिए 'उठ और युद्ध कर।' " अब मैं कुछ प्रश्न करनेके अलावा और कुछ नहीं कहना चाहता। क्या आपका खयाल है कि आपके ये पक्के शान्तिप्रेमी कहलानेवाले शिष्य इस विदेशी नौकरशाहीका

मुकाबिला भौतिक बल द्वारा कर सकते हैं? यदि हाँ, तो किस तरह? यदि नहीं तो फिर आपकी यह अहिंसा सबलका अस्त्र किस तरह है? इन प्रश्नोंका असन्दिग्ध उत्तर दीजिए, जिससे कि कोई उसका अन्य अर्थ न लगा सके।

इसके साथ ही मैं आपसे ये प्रश्न और पूछ रहा हूँ। इन प्रश्नोंका सीधा सम्बन्ध आपके वक्तव्यसे है। क्या आपके स्वराज्यमें सेनाके लिए कोई स्थान है? क्या आपकी स्वराज्य सरकार फौज रखेगी? यदि हाँ तो क्या वह लड़ेगी या वह अपने शत्रुओंके मुकाबिलेमें सत्याग्रह करेगी?

हाँ, मेरे जीवन-सिद्धान्तोंमें क्षत्रियोंके लिए स्थान जरूर है पर मैंने उनकी परिभाषा 'गीता' से प्राप्त की है। जो समरसे अर्थात् खतरेसे पलायन नहीं करता वह क्षत्रिय है। ज्यों-ज्यों संसार प्रगति करता जाता है, त्यों-त्यों पुराने शब्द नया मूल्य ग्रहण करते जाते हैं। मनु तथा अन्य स्मृतिकारोंने आचारके शाश्वत—सर्वकालीन सिद्धान्त निर्धारित नहीं किये थे। उन्होंने जीवनके कुछ शाश्वत सिद्धान्तोंका निरूपण किया और उन्हीं सिद्धान्तोंको सामने रखकर, उनको थोड़ा या बहुत आधार मान कर अपने युगके लिए आचार-नियमोंकी सृष्टि-रचना की। मैं स्वर्गमें प्रवेश पानेके लिए भी घूस और छल-कपटके साधनोंको अपनानेके लिए तैयार नहीं हूँ, फिर भारतकी स्वतन्त्रताकी तो बात ही क्या है? क्योंकि यदि ऐसे साधनोंसे स्वतन्त्रता या स्वर्ग मिला तो न वह आजादी आजादी होगी, न वह स्वर्ग स्वर्ग ही होगा।

स्वामी विवेकानन्दके जो वाक्य उद्धृत किये गये हैं उनकी पुष्टि मैंने नहीं की है। इस उद्धरणमें न तो वह ताजगी है न वह संक्षिप्तता ही जो उस महापुरुषकी अधिकांश रचनाओंमें पाई जाती है। पर वे चाहे उनके ग्रन्थोंसे लिये गये हों अथवा न लिये गये हों, उन्हें मेरा दिल गवारा नहीं कर रहा है। यदि बहु-संख्यक लोग अप्रतिकारके सिद्धान्तका पालन करने लगें तो संसारकी दशा वह न रहे जो आज है। जिन व्यक्तियोंने उसका पालन किया है उन्होंने गँवाया कुछ भी नहीं है। हिंसक व्यक्तियों और दुष्टात्माओंने उन्हें कत्ल नहीं कर डाला; बल्कि इसके विपरीत अहिंसा-प्रेमी और सौजन्यपूर्ण व्यक्तियोंके समक्ष उनकी हिंस्रभावना और दुष्टता दोनों दूर हो गई हैं।

'गीता' का अपना अर्थ मैं पहले ही प्रकट कर चुका हूँ। उसमें पुण्य और पापके शाश्वत युद्धका वर्णन है। और, जब पुण्य और पापकी विभाजक रेखा बहुत सूक्ष्म हो जाती है, और जब कर्त्तव्यका निर्णय इतना कठिन हो, तब अर्जुनकी तरह किसमें मोह उत्पन्न नहीं होता?

फिर भी मैं इस बातका हृदयसे समर्थन करता हूँ कि सच्चा अहिंसा-परायण व्यक्ति वही है जो कि प्रहार करनेकी क्षमता रखते हुए भी अहिंसात्मक बना रहता हो। इसलिए मैं यह दावा जरूर करता हूँ कि मेरा शिष्य (और मेरा शिष्य सिर्फ एक ही है—मैं स्वयं) प्रहार करनेकी काबलियत जरूर रखता है। हाँ, यह मैं मानता हूँ कि वह इसमें प्रवीण नहीं है और शायद कारगर तौरपर प्रहार न भी कर सके। पर उसे ऐसा करनेकी जरा भी अभिलाषा नहीं है। मेरे जीवनमें मुझे अपने प्रतिपक्षि-

योंको गोलीसे उड़ा देनेके और शहादतका ताज पहननेके कितने ही मौके आये; पर उनमें से किसीपर गोली चलानेको मेरा दिल तैयार न हुआ, क्योंकि मैं नही चाहता था कि वे मुझपर गोली चलायें — चाहे वे मेरे साधनोंको कितना ही नापसन्द क्यों न करते हो। मै तो यह चाहता था कि वे मुझे मेरी गलती समझा दें। मैं भी उन्हें उनकी गलती समझानेकी कोशिश कर रहा था। 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत्।'

अफसोस! आजके मेरे स्वराज्यमें सैनिकोंके लिए स्थान है। मेरे ये क्रान्तिकारी मित्र इस बातको जान ले कि मैंने अंग्रेजोंके द्वारा इस सारे देशके निःशस्त्रीकरणको और लोगोंमें तज्जनित पौरुषहीनताको अंग्रेजोंका महाजघन्य अपराध बताया है। मैं देशको सार्वत्रिक अहिंसाका उपदेश करनेकी क्षमता नही रखता। इसलिए मैं अहिंसाका सकुचित रूपमें ही उपदेश करता हूँ। वह देशकी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके उद्देश्य-तक और इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंको शान्तिमय साधनोंसे नियमित करनेके उद्देश्य-तक परिमित है। परन्तु यहाँ मेरी अक्षमताका कोई गलत अर्थ न समझे — उसे अहिंसा-सिद्धान्तकी अक्षमता न समझ लें। वह मुझे अपनी बुद्धि द्वारा ज्वलन्त दिखाई देता है। मेरा हृदय उसपर मुग्ध है; परन्तु अभी मैं अपने जीवनमें उसको इतना नही उतार सका हूँ जितना कि अहिंसाके सार्वत्रिक और सफल प्रचारके लिए आवश्यक है। इस महान् कार्यके लिए मेरी अभी आवश्यक प्रगति नहीं हो पाई है। अभी मेरे अन्दर क्रोध मौजूद है — अब भी मेरे अन्दर द्वैतभाव बना हुआ है। मैं क्रोध या विकारोंको नियन्त्रित कर सकता हूँ, उन्हें अपने अधीन रखता हूँ, परन्तु अहिंसाके सार्वत्रिक और सफल प्रचारके लिए मुझे विकारोसे पूर्णतः रहित हो जानेकी आवश्यकता है। मेरी स्थिति ऐसी हो जानी चाहिए कि मुझसे कोई पाप बने ही नही। इसलिए क्रान्तिकारी लोग मेरे साथ और मेरे लिए ईश्वरसे प्रार्थना करें कि मैं शीघ्र ही उस अवस्थाको पहुँच जाऊँ। परन्तु तबतक वे मेरे साथ एक कदम आगे बढ़ें जो मुझे सूर्यके प्रकाशके सदृश स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है; अर्थात् — भारतकी स्वाधीनता बिलकुल शान्तिमय उपायोसे प्राप्त करना। और स्वराज्य प्राप्त हो जानेपर जबतक मैं या और कोई देशके अन्दर शान्ति-सुव्यवस्था कायम रखने और बाहरी आक्रमणकारियोका मुकाबला करनेके लिए पुलिस-सेनासे कोई बेहतर उपाय नहीं सुझाता तबतक इन दायित्वोंका निर्वाह करनेके लिए स्वराज्यके अन्तर्गत भी मै और आप लोग शिक्षित, बुद्धिमान और अनुशासित पुलिस-सेना रखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-५-१९२५

२०. टिप्पणियाँ

मुझे देवता न बनाइये

डूंगरगढ़ स्टेशनपर एक मुस्लिम मित्रने कहा कि मुझे देवता-पदपर बैठानेकी कार्रवाई, खासकर गोंड लोगोंमें, जारी है। ऐसी बुतपरस्तीपर मै अपनी घोर व्यथा और जबरदस्त नापसन्दगी कई बार जाहिर कर चुका हूँ। मै तो एक मामूली मर्त्य प्राणी हूँ और मानवीय शरीरमें पाई जानेवाली तमाम कमजोरियाँ मुझमें हैं। गोंड लोग मुझे देवता-पदपर प्रतिष्ठित करनेकी मूर्खता करें, इसकी अपेक्षा उन लोगोंको मेरे सीधे-सादे पैगामका मतलब समझाया जाये तो कही ज्यादा अच्छा होगा। उनके ऐसा करनेसे न तो उन्हे ही लाभ होगा, और न मुझे ही; उलटा उनके सदृश भोले-भाले लोगोंका अंधविश्वासी स्वभाव बढ़ेगा। मै हर काग्रेसीसे इस बातमें सहायताकी याचना करता हूँ कि वे गोंडोंको इस भूलसे सावधान कर दें और उन्हें धोखेसे बचायें।

अस्पृश्य

कलकत्ता जाते हुए रास्तेमें एक स्टेशनपर कितने ही अस्पृश्योंको जमा हुए देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। उन्होने मुझे अपने हाथका कता-बुना खादीका थान भेंट किया। कार्यकर्त्ताओंने मुझे बताया कि ठोस और मजबूत काम तो वास्तवमें इन अस्पृश्योंके द्वारा ही हो रहा है। वे शराब पीना और मुरदार माँस खाना छोड़ रहे हैं और खादीको अपना रहे हैं। यदि मुझसे कोई यह नहीं कहता कि उस झार-सोगड़ा स्टेशनपर मिलनेवाले लोग अस्पृश्य हैं तो मै उन्हें उस जनसमूहमें पहचान ही न पाता।

खादी

मै यह सुनकर दंग रह गया कि रायगढ़में एक भी चरखा नहीं चल रहा है। जो लोग मुझसे मिलने आये थे उन्होंने मुझसे कहा कि हममें से बहुतेरे तो देहातोंसे गरीब भाइयों द्वारा लाया गया कपड़ा पहने हुए हैं। उन्होने बताया कि गाँवके लोगोंमें तो खादी बहुत प्रिय हो गई है और यदि उनके अन्दर प्रचार और ज्यादा दिलचस्पीसे किया जाये तो वह आसानीसे घर-घर पंहुँच सकती है। मध्यप्रान्त और छत्तीसगढ़के लोगोमें चरखे और करघोंपर काम करनेको विशेष योग्यता है, बस जरूरत है सिर्फ संगठनकी।

बालकी खाल निकालना

उस दिन एक प्रसिद्ध कांग्रेसी मुझसे मिले थे। मै उनको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ और वे तो अनुशासनके बडे कायल भी हैं। उनके बदनपर सब कपड़े खादीके नही थे। मैंने तो समझा था कि उनके तनपर सब कपड़े खादीके ही होंगे। पर जो लोग उन्हीके नगरमें रहते थे वे उनको ज्यादा जानते-बूझते थे। वे मुझसे

कहने लगे, 'गांधीजी! जरा इनको समझाइए कि ये कांग्रेसके प्रस्तावका तो पालन किया करें।' उन महाशयने साफ शब्दोंमें स्वीकार करते हुए कहा कि मेरे बंदनपर सब कपड़े खादीके नहीं हैं—पर दलील यह पेश की कि इस समय मैं आपसे मिलने आया हूँ—कांग्रेसके कामके लिए नहीं आया हूँ। यह बालकी खाल खींचना था। खासकर एक अनुशासनप्रिय मनुष्यके मुँहसे ऐसी बात सुननेकी आशा मैंने न की थी। उनके साथ मेरा कोई खानगी ताल्लुक न था। वे मुझसे सार्वजनिक मामलोंके बारेमें बातें करने आये थे और इसलिए मैंने सोचा कि मुझसे मिलनेके लिए आना कांग्रेसका या सार्वजनिक कार्य नहीं तो और क्या है? पर उन सज्जनने इसके खिलाफ कहा कि नहीं, मैं तो आपसे मिलनेके लिए आया हूँ, कांग्रेसके कामसे नहीं। तब मैंने उनसे कहा कि ऐसे बालकी खाल निकालनेसे स्वराज्य प्राप्त होनेमें देरी हो रही है। मेरी रायमें कांग्रेसका प्रस्ताव कांग्रेसके सदस्यको अवसर विशेषपर यह छूट देता है कि वह खादी न पहननेपर भी कांग्रेसका सदस्य बना रह सकता है। उसके द्वारा कोई सदस्य सदा खादी पहननेके दायित्वसे मुक्त नहीं हो सकता। यदि चोटीके लोग खादी न पहननेके पक्षमें ऐसे सूक्ष्म भेद-प्रभेद खोजने लगेंगे तो जनसाधारणके लिए खादी पहननेको तैयार होना तबतक असम्भव रहेगा जबतक वह विदेशी मल-मलसे भी सस्ती न हो जाये और आसानीसे न मिलने लगे। जनता उम्मीद तो यह रखती है कि हमारे नेता लोग उनसे की जानेवाली शत-प्रतिशत अपेक्षाएँ पूरी करें, ताकि जनता कमसे-कम पचीस फीसदी अपेक्षाएँ पूरी कर सके।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-५-१९२५

२१. बंगालके अनुभव

[७ मई, १९२५]

पहले दरजेका अपवाद

गुजरात समझता है कि वह और प्रान्तोंकी अपेक्षा मेरे शरीरकी ज्यादा चिन्ता रख सकता है। लेकिन जान पड़ता है बंगालका ख्याल इससे अलग है। बंगालका कहना है, "मुझको पहले दरजेके सैलूनमें यात्रा करनी चाहिए।" मेरी यात्राके लिए पहले दरजेके सैलूनके प्रबन्ध सम्बन्धी अपवादके बारेमें मैंने सतीश बाबूसे पूछा तो उन्होंने कहा, इसके लिए फरीदपुरकी स्वागत समिति जिम्मेवार है। उन्होंने दूसरा कारण यह बताया कि रातमें गाड़ी बदलनेकी दिक्कतसे बचनेके लिए पूरा डिब्बा ले लिया गया है और पूरे डिब्बेमें पहले दरजेका हिस्सा जरूर रहता है; फिर रेलवे अधिका-रियोंने उदारतापूर्वक पहले दरजेकी सीटोंके लिए किराया दूसरे दरजेके बराबर ही लिया है। पाठक इस बातको जान लें कि एक डिब्बेका मतलब है, दूसरे दरजेकी कमसे-कम १० टिकटोंका किराया देना। यह कहा गया है कि मेरे स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह सब

जरूरी है और मैं जबतक बंगालमें हूँ तबतक व्यवस्थापकोंकी किसी भूल-चूकसे मेरे स्वास्थ्यको कोई खतरा हर्गिज पैदा नही होना चाहिए।

लेकिन मेरी राय तो यह है कि यदि मै इस तरह गादी-गदैलोमें लिपटा रहा तो मेरी इस यात्रासे कुछ ज्यादा लाभ नही हो सकता। मुझे तो जहाँतक हो सके अपने लाखों गरीब भाई-बहनोंकी तरह रहना और घूमना-फिरना चाहिए या फिर लोकहितकी दृष्टिसे यात्रा करना बिलकुल बन्द कर देना चाहिए। मुझे इस बातका पूरा यकीन है कि जैसे वाइसराय शिमलाके अपने अगम्य भवनमें रहते हुए लाखों भारतवासियोंके हृदयपर अधिकार नही कर सकते, वैसे ही मै भी पहले दरजेका दुगुना ही नही, पँचगुना किराया खर्च करके अपना सन्देश लाखों लोगोंको प्रभावकारी रूपमें नहीं पहुँचा सकता। ज्यादासे-ज्यादा दूसरे दरजेकी एक सीटका किराया खर्च करनेकी बात तो सहन की जा सकती है। आरामदेह पहले दरजेमें यात्रा करते देखकर गरीब लोग मुझे अपने-जैसा नहीं मान सकते। इसलिए वे जब-जब डिब्बेके नजदीक आते थे, सहमे-सहमे झांकते थे। मुझे भी उन्हें देखकर बेचैनी मालूम होती थी। मेरे शरीरको चाहे ज्यादा आराम मिला हो, परन्तु मेरी आत्मा तो विकल थी। मुझे यकीन हो चुका है कि जबतक हम गरीबोंके साथ कष्ट सहन करना न सीखेंगे तबतक हम उनका स्नेह नहीं प्राप्त कर सकते। मैंने हमेशा यह पाया है कि मैं जब भी तीसरे दरजेमे सफरके लायक नही रहा या मैंने यह माना कि मै तीसरे दरजेमें सफर करने लायक नही हूँ तभी गरीबोंकी सेवा करनेकी मेरी आधी उपयोगिता चली गई। यदि मैंने तीसरे दरजेमें यात्रा न की होती तो मै कभी उनको न समझ पाता और न अपनेको गरीबों-जैसा महसूस कर पाता। मै अपने जीवनमें अपने तीसरे दरजेके सफरके अनुभवोंको निहायत कीमती मानता हूँ। अतः मुझे लगता है कि दूसरा दरजा मेरी हद है और मुझे उससे आगे नही जाना चाहिए। यदि मित्रगण चाहते हों कि मैं भ्रमण द्वारा देशकी सेवा करूँ तो वे मुझे इस हदसे आगे न ले जायें और न उसका लालच दें। जब मै दूसरे दरजेमें भी यात्रा करने लायक न रह जाऊँ तो मुझे यात्राके द्वारा सेवा करना बन्द कर देना चाहिए। परमेश्वर स्पष्ट चेतावनी नही देता। वह संकेत-मात्र देता है और जो लोग समझना चाहें वे उसे समझ सकते हैं। स्वागत समितिकी व्यवस्थामें तो मैं बहुत फेरफार नहीं कर रहा हूँ; परन्तु अबसे मै अपने मित्रोको नोटिस दे रहा हूँ कि वे अपने प्रेमकी अतिशयतासे मेरा दम न घोटें। वे उतनी ही सावधानी बरतें जो औचित्यकी सीमाको पार न कर जाये। किन्तु उन्हें कुछ बातें तो ईश्वरपर भी छोड़ देनी चाहिए। यदि ईश्वरकी इच्छा होगी कि मैं यात्रा न करूँ तो हमारी कोई भी सावधानी काम नही आ सकती और यदि वह चाहेगा कि मै भ्रमण करके कुछ सेवा करूँ तो सावधानी न बरतनेपर भी मै बीमार नही पड़ूँगा। मै उन्हे यह भी यकीन दिलाना चाहता हूँ कि मैं खुद ही अपने शरीरकी बहुत-कुछ चिन्ता रखता हूँ और आवश्यक शारीरिक जरूरतोंकी उपेक्षा नहीं करता। मैं यह बात भी कृतज्ञतापूर्वक कह देना चाहता हूँ कि किसी भी प्रान्तने — यहाँतक कि गुजरातने भी मेरे प्रति बंगालसे अधिक प्रेम प्रदर्शित नही किया है। यह मेरे लिए बड़े सौभाग्यकी बात है कि किसी भी प्रान्तमें मुझे परायेपनका अनुभव नही हुआ — बंगालमें तो बिलकुल ही नहीं।

उचित दण्ड

यद्यपि स्वागत समितिने मेरी सुख-सुविधाका बहुत अधिक ध्यान रखा था, फिर भी दैवेच्छा कुछ और ही थी, क्योंकि फरीदपुर जाते हुए रास्तेमें लगभग हर स्टेशनपर दर्शनार्थियोंकी भीड़ने रातभर नीदमें विघ्न डाला। मेरे साथियोंने इन अन्धभक्तोंको शान्त करनेके बहुत प्रयत्न किये; किन्तु वे सब व्यर्थ हुए। मेरे साथियोंने बहुत कहा कि मैं थकावटसे चूर-चूर हूँ, अतः मुझे आराम देनेकी जरूरत है, किन्तु उन्होंने उनकी बात नहीं सुनी। बत्ती, बत्ती — की जय' की आवाजोंसे आकाश गूँज उठता और सोते हुए मुसाफिरोंको बहुत कष्ट होता। भीड़को उनका भी कोई ख्याल नहीं था। मैं अटल रहा। यद्यपि इससे मेरे 'महात्मापन' के चले जानेका भय था किन्तु मैं अपने बिस्तरसे नहीं उठा। मैं ऐसे असंयत और अर्थहीन प्रेमकी माँग पूरी करना अपराध मानता था। इसमें कोई सन्देह नही है कि हमे अति कठोर अनुशासनकी आवश्यकता है। हमारा व्यक्तियों या देशके प्रति प्रेम सविवेक होना चाहिए। जबतक उसको संयत नहीं किया जाता तबतक यह व्यर्थ ही नष्ट होता रहेगा और अनजानमें प्रस्फुटित होकर कभी-कभी हानि भी पहुँचायेगा। हर गाँवमें मौन, विनयशील और समझदार कार्यकर्ता होने चाहिए जो लोगोंका नेतृत्व करें और उनके प्रेमको देशके लिए सच्ची शक्तिके रूपमें बदलें। 'जिसका कर्म शिव है, वही शिव है।' सच्चा प्रेम आधी रातके समय जयजयकार करनेमें नहीं है; बल्कि मौन रहकर राष्ट्रीय कार्य करनेमें है। यात्राके मध्य आनेवाले सब स्टेशनोंके लोग मुझे या अपनी श्रद्धाभक्तिके भाजन अन्य व्यक्तियोंको नहीं देख सकते। किन्तु वे सभी इन अवसरोंका उपयोग अपनी काहिलीको छोड़ने और अधिक राष्ट्रीय कार्य करनेमें कर सकते हैं।

पागल बंगाली

बंगाली पागल हैं। देशबन्धु चित्तरंजन दासने अपना महल-जैसा घर राष्ट्रीय कार्यके निमित्त न्यासियोंको दे दिया। मैं जानता हूँ कि इस इमारतपर कुछ कर्जा है। किन्तु यदि देशबन्धु चाहते तो अपनी शानदार वकालत फिर शुरू करके इसे एक सालमें ही चुका सकते थे। मैं जब इस इमारतमें घुसा तो मेरा मन उदास हो गया और मेरी आँखोंमें बरबस आँसू आ गये। उस बातपर विचार करूँ तो मैं देख सकता हूँ कि इस भवनका त्याग करके वे एक भारसे मुक्त ही हुए है। किन्तु एक संसारीके रूपमें मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसे लाखों लोग है जो ऐसा भार प्रसन्नतापूर्वक उठा लेंगे और ऐसी भारी-भरकम इमारतमें रहते हुए सुख अनुभव करेंगे। इसलिए जब मैंने घरमें प्रवेश किया और मुझे उसी कमरेमें ठहराया गया जिसमें कल तक भारतका महान देशभक्त रहता था तब मैं अपने आपको सँभाल न सका। किन्तु उनका पागलपन यही समाप्त नहीं हो सकता। वे बीमार है और कमजोर हैं। उन्हें बैठनेमें तकलीफ होती है और वे अपनी जगहसे तकलीफके साथ ही उठ सकते हैं। उनकी आवाजमें पहली-जैसी कड़क नही रही है। किन्तु वे फिर भी अध्यक्षता अवश्य करेंगे — यश कमानेके लिए नही, बल्कि सेवार्थ। वे विषय-समितिकी बैठकमे देरतक अवश्य बैठेंगे। वे उन लोगोंसे बहस भी करेंगे, जो यह समझना नही चाहते या

समझ नहीं सकते कि उनके लिए अपनी स्थितिका स्पष्टीकरण करना कितना आवश्यक है।

एक वे ही पागल बंगाली हों, यह बात भी नहीं है। महान् आचार्य राय भी तो हैं। वे जब मंचपर उछल-कूद करते हैं और कभी इस पैरको पटकते हैं और कभी उस पैरको, तब बिलकुल आत्मविस्मृत हो जाते हैं। बीच-बीचमें वे अपने बंगला-भाषी श्रोताओंके सम्मुख बिना जरूरत अंग्रेजी बोलने लगते हैं। दूसरे लोग उनके बारेमें क्या खयाल करेंगे, वे इसकी परवाह ही नहीं करते। वे अपने विषयमें लीन हो जाते हैं। क्या कोई ऐसा मनुष्य, जो उन्हें भली-भाँति नहीं जानता, उन्हें देखकर कभी सोच सकता है कि वे संसारके एक महान् वैज्ञानिक हैं? उन्हें अपने विज्ञान कालेजसे अब भी प्रेम है। उनके प्राण तो मानो उसीमें बसे हैं। किन्तु वे खादीके पीछे पागल हैं। उनका प्रेम विज्ञान और खादी दोनोंके बीच बँटा हुआ है। शायद वे खादीको वैज्ञानिक अनुसंधानकी सच्ची उपज मानते हैं। जो भी हो, जिस मनुष्यको प्रकृतिसे उसके मूल्यवान रहस्योंको छीननेके लिए अतिसूक्ष्म उपकरणोंके प्रयोगमें रत होना था, वह यदि अपने समयका उपयोग चरखा चलानेमें करता है तो वह अवश्य ही पागल होगा। मैं ऐसे अनेक पागल बंगालियोंके नाम गिना सकता हूँ। किन्तु पाठकोंको इन दो उज्ज्वल नररत्नोंके उदाहरणोंसे ही सन्तोष मानना चाहिए।

पीछे कुछ नहीं

मुझे देशबन्धुकी बात फिर उठानी ही होगी। कितने ही लोगोंने मुझसे पूछा: 'आखिर देशबन्धुके इस घोषणा-पत्रके पीछे क्या है?' मैंने प्रश्न करनेवालोंकी तरफसे यही बात उनसे पूछी थी। उन्होंने इसका जोरदार और अपने ही ढंगका उत्तर दिया:

> जितना सामने है, उतना ही उसके पीछे है। मेरा घोषणा-पत्र और मेरा भाषण यूरोपीय मित्रोंकी चुनौतीके जवाब हैं। मैंने उनसे बार-बार कहा है कि मैं हिंसासे घृणा करता हूँ। मैं मानता हूँ कि हिन्दुस्तानको आजादी अहिंसाके द्वारा ही मिल सकती है। तब उन्होंने मुझसे कहा, आप यही बात सर्वसाधारणमें दृढ़तापूर्वक स्पष्ट रूपसे कह दें। मुझे ऐसा करनेमें न तो कोई आपत्ति थी और न कोई हिचकिचाहट। मेरे घोषणा-पत्र और मेरे भाषणका सारा इतिहास यही है। उसमें मैंने क्रान्तिकारियोंके हिंसाभावकी और सरकारके दमनकी, जो कि हिंसाका ही दूसरा नाम है, दोनोंकी निन्दा की है। मैंने उनमें वे शर्तें भी पेश कर दी हैं जो मेरे जैसे एक स्वाभिमानी मनुष्यके सहयोगके लिए जरूरी हैं। कोई भी समझदार आदमी शान्त चित्तसे उनपर विचार करे और यदि उनमें या मेरी स्थिति सम्बन्धी वक्तव्यमें उसे दोष दिखाई दे तो वह मुझे बताये। अब आगे कार्रवाई करना यूरोपीयोंका और सरकारका काम है।

देशबन्धुका आशय जो मैंने समझा है, यही था। मैं उनके शब्दोंको देनेमें समर्थ नहीं हो पाया हूँ——मैंने तो सिर्फ उनके भावोंको——विचारोंको ही प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया है। उनका वक्तव्य बहुत ही संक्षिप्त, स्पष्ट और संयत है। उसमें

विचारपूर्वक इस बातका ध्यान रखा गया है कि उससे किसीका दिल न दुखे। उन्होंने हिंसाकी जो निन्दा की है वह मीन-मेखसे परे है। यदि मुझसे इसका समर्थन करनेके लिए कहा जाये तो शायद मैं इसमें एक भी शब्द-या वाक्यांश न बदलूँ। मेरी रायमें उन्होंने अंग्रेजों और हमारे बीच विद्यमान खाईको सुन्दर ढंगसे पाट दिया है। उसका लाभ उठाना अब उनका काम है।

प्रस्ताव

प्रस्ताव मुख्यतः भाषणसे निष्पन्न हैं। उनकी उपादेयताके सम्बन्धमें शंका की गई है, क्योंकि विषय समितिमें कुछ प्रस्तावोंके सम्बन्धमें मतभेद है। मतभेद तो थे; किन्तु मेरी रायमें इसी कारण इन प्रस्तावोंका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। ये प्रस्ताव पूरे विचार और विवेचनके बाद स्वीकृत किये गये हैं। मतभेद व्यक्त करना प्रगतिका शुभ लक्षण है, उनको अमलमें लानेकी असमर्थताका नहीं।

खद्दरके विकासकी सम्भावनाएँ

बंगालमें खादीके प्रचारके सम्बन्धमें जो नई बातें मालूम हुई हैं, मुझे इनकी आशा नहीं थी। फरीदपुरमें जो कृषि और उद्योग सम्बन्धी प्रदर्शनी हुई थी, उसे खद्दर प्रदर्शनी ही कहें तो ज्यादा ठीक होगा। प्रदर्शनीमें खद्दरको कोई मामूली स्थान नहीं दिया गया था। वह तो अन्य सभी प्रदर्शित वस्तुओंपर छाया हुआ था। प्रदर्शनीमें कई जुलाहे थे, उनमें से कुछ कलापूर्ण नमूने बुन रहे थे; किन्तु सभी हाथ-कता सूत या रेशम काममें ला रहे थे। श्रीरामपुरके सरकारी औद्योगिक संस्थानने भी अपने कार्यकर्त्ता भेजे थे। वे पटसनका धागा कातकर और उससे सम्बन्धित अन्य प्रक्रियाएँ करके दिखाते थे। पटसन बंगालमें एक बहुत बड़ा उद्योग है, अतः उससे बहुतसे लोगोंको घर बैठे सम्मानपूर्ण धन्धा मिल सकता है। इस समय पटसन खेतोंसे सीधा कारखानोंमें चला जाता है और उससे जूट-उत्पादक किसानोंको किसी भी तरह विशेष लाभ नहीं हो पाता। बंगालमें सामान्यतः जो सूत काता जाता है वह आन्ध्रमें कते सूतसे सम्भवतः अधिक अच्छा होता है। प्रदर्शनीमें जो कताई प्रतियोगिता की गई थी उससे स्वेच्छासे कातनेवाले लोगोंकी एक विशेष कुशलता व्यक्त होती थी जो कदाचित् कहीं अन्यत्र दिखाई नहीं देगी। खादीके नमूने आन्ध्रकी सर्वोत्कृष्ट खादीके नमूनोंसे अच्छे ही होंगे। यदि बंगालमें सूत कताईका काम सुसंगठित कर दिया जाये तो वहाँ सम्भवतः एक वर्षमें ही आन्ध्रसे अधिक बारीक सूत कताई होने लगे। इस मामलेमें कदाचित बंगालसे कोई अन्य प्रान्त स्पर्धा नहीं कर सकता।

फरीदपुरकी प्रदर्शनीकी तरह मिरजापुर पार्कमें भी खादी प्रतिष्ठानकी तरफसे एक प्रतियोगिताकी व्यवस्था की गई थी। नाकीपुरके एक प्रसिद्ध जमींदार राय यतीन्द्रनाथ चौधरी और एक नामी कवयित्री श्रीमती कामिनी रायने उसमें भाग लिया था। उसमें बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मन्त्री सतीश बाबू भी शामिल हुए थे; यहाँतक कि खुद आचार्य रायने भी भाग लिया था। वे इस समय भी कोई बारह अंकका अच्छा एकसार सूत कात लेते हैं। वे कहते हैं कि चरखा दिन-दिन उनके हृदयमें घर करता जाता है और उन्हें सूत कातनेमें बहुत

आनन्द आता है। इस चरखा-प्रतियोगितामें कोई १८० कातनेवालोंने भाग लिया होगा। मैं नहीं समझता कि भारतके दूसरे किसी प्रान्तमें उच्च मध्यम वर्गके इतने स्त्री-पुरुष ऐसी प्रदर्शनीमें भाग ले सकते हैं और ऐसी कुशलतासे सूत कात सकते हैं। यहाँ मैं यह बात भी कह देता हूँ कि बहुतसे स्वराज्यवादी भी खुद नियमपूर्वक और उमंगसे सूत कातते हैं। मैं फरीदपुरमें पक्के स्वराज्यवादी बाबू सुरेश बिश्वासकी पत्नीका अतिथि हूँ। वे बहुत बारीक सूत कातती हैं। वे और उनके बच्चे चरखेके बहुत प्रेमी हैं। वे अपना सारा फुरसतका वक्त सूत कातनेमें लगाती हैं। परन्तु मुझसे कहा गया है कि अभी मैं अपनी इस यात्रामें, जो वस्तुतः आज ही आरम्भ होती है (मैं ये टिप्पणियाँ कलकत्तामें ७ मईको लिख रहा हूँ), बंगालके खादीकार्यके और भी बढ़िया नमूने देखूँगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि बंगाल चाहे तो और अनेक बातोंकी तरह खादीमें भी सबसे आगे बढ़ सकता है। उसके पास बुद्धि है, उत्कृष्ट कल्पनाशक्ति है, कवित्व शक्ति है, उसका आत्मत्याग भी महान है, उसमें आवश्यक कौशल भी है और उसके पास साधन-सामग्री भी है। क्या वह इन सब गुणोंके साथ खादी-कार्य करनेकी इच्छाका भी योग करेगा? परमात्मा उसे ऐसी इच्छा दे।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-५-१९२५

२२. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

कलकत्ता

७ मई, १९२५

प्रिय गुरुदेव,

सुनीति देवी कहती हैं कि वे आपके ६४वें जन्म-दिवस समारोहमें भाग लेनेके लिए बोलपुर जा रही हैं। कल आपके स्वास्थ्य और दीर्घजीवनके लिए जो शुभ कामनाएँ और प्रार्थनाएँ आपको भेजी जायेंगी, उनमें मैं अपनी भी प्रार्थनाएँ जोड़ देना चाहता हूँ।

एन्ड्रयूजने अपने एक पत्रमें लिखा है कि आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। आशा है कि अब कमजोरी दूर हो गई होगी और आप पहलेसे अच्छे होंगे।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर
शान्तिनिकेतन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ४६२८) की फोटो-नकलसे।

१. इसके बादकी दो टिप्पणियाँ यहाँ उद्धृत नहीं की गई। देखिए "सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी", १७-५-१९२५।

२३. भाषण : बुद्ध जयन्तीके अवसरपर[1]

कलकत्ता
७ मई, १९२५

मित्रो,

इस सेवाको निभाना मेरे लिए अब एक सुखद कर्त्तव्य है। मैं इस सभामें पढ़े गये विवरणके बारेमें कुछ नहीं कहूँगा। डा० धर्मपालने[2] इस सेवा-कार्यको एक कारुणिक पुट दे दिया है। उन्होंने मेरे कन्धोंपर एक ऐसा भार डाल दिया है जिसे वहन करनेके लिए मैं अपने आपको अनुपयुक्त मानता हूँ। गत वर्ष जब मैं स्वास्थ्य-लाभ कर रहा था श्री नटराजनने मुझे जयन्ती समारोहके[3] अवसरपर अध्यक्षता करनेके लिए कहा था, तब मुझे संकोच हुआ था; परन्तु मैं श्री नटराजनका अनुरोध अस्वीकार न कर सका, क्योंकि उनसे मेरा अत्यधिक गहरा प्रेम है। मैंने तभी समझ लिया था कि प्रतिवर्ष भारतके किसी न किसी भागमें ऐसे समारोह होते ही रहते हैं और उनमें भाग लेनेके लिए सम्भवतः मुझे निमन्त्रित किया ही जायेगा। मैं कलकत्ता आया तो फिर वैसा ही हुआ। यह एक बहुत ही विचित्र बात है कि संसारके प्रायः सभी महान धर्मोंके मतावलम्बी कहते हैं कि मैं उनका अपना हूँ। जैन मुझे जैन समझनेकी भूल करते हैं। सैकड़ो बौद्ध भाई समझते हैं कि मैं बौद्ध हूँ। सैकड़ों ईसाई अब भी यही मानते हैं कि मैं ईसाई हूँ; और कुछ ईसाई मित्र तो परोक्ष रूपसे मुझपर कायर होनेका दोष मढ़ते भी नहीं हिचकते, वे कहते हैं, "हम जानते हैं कि आप ईसाई हैं, किन्तु आप यह स्वीकार करनेसे डरते हैं। आप साहसके साथ खुले आम यह क्यों नही कह देते कि आप ईसा और उसके द्वारा मुक्तिमें विश्वास रखते हैं? मेरे अनेक मुसलमान मित्रोंका खयाल है कि यद्यपि मैं अपनेको मुसलमान नहीं कहता फिर भी व्यवहारतः मैं मुसलमान हूँ। और कुछ मुसलमान मित्र सोचते हैं कि मैं इस्लाम अपनानेकी राहपर हूँ और इस्लामके बहुत ही निकट आ गया हूँ, हालाँकि अभी काफी कसर है। यह मेरे लिए बड़ी ही तारीफकी बात है और इसे मैं अपने प्रति उनके स्नेह और आदरभावका ही प्रतीक समझता हूँ। किन्तु मैं स्वयं अपनेको एक तुच्छतम हिन्दू समझता हूँ और मैं जितनी ही गहराईसे हिन्दूधर्मका अध्ययन करता हूँ उतना ही मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि हिन्दू धर्म विश्वके समान व्यापक है और संसारमें जो-जो बातें अच्छी हैं उन सबको वह अपने

१. यह भाषण महाबोधि सोसाइटीके तत्त्वावधानमें बौद्ध विहारमें आयोजित "बुद्ध जयन्ती" समारोहके अध्यक्षपदसे दिया गया था।

२. सोसाइटीके महामन्त्री; बुद्धके उपदेशों और बुद्धका कार्य बंगालमें किस प्रकार चलाया जा रहा है इसके सम्बन्धमें वे पहले बोल चुके थे।

३. देखिए खण्ड २४, पृष्ठ ८७–८९

भीतर ग्रहण किये हुए है। मैं इस्लाममें भी वे ही बातें पाता हूँ तथा इस्लामकी खूबियोंको समझ सकता हूँ और उसकी प्रशंसाके गीत गा सकता हूँ। वैसा ही भाव मैं अन्य धर्मोंके माननेवालोंके प्रति रखता हूँ। फिर भी मेरे अन्दर कोई कहता है कि मैं इन बहुतसे धर्मोंके प्रति जो इतना आदर-भाव व्यक्त करता हूँ, वह मेरे हिन्दू होनेका ही द्योतक है। इससे मेरे हिन्दुत्वमें किंचित भी कमी नहीं आती।

करीब ४० या ३८ वर्षोंकी बात है तब मैं किशोर था; इंग्लैंड गया था। मेरे हाथमें जो सबसे पहली धार्मिक पुस्तक रखी गई, वह थी 'लाइट ऑफ एशिया।' मैंने संसारके किसी भी धर्मके बारेमें कुछ भी नहीं पढ़ रखा था, इसलिए हिन्दू धर्मके बारेमें भी कुछ नहीं। मैं हिन्दू धर्मके बारेमे उतना ही जानता था जितना कि मेरे माता-पिताने मुझे सिखाया था, वह भी प्रत्यक्ष रूपसे नहीं बल्कि परोक्ष रूपसे, अर्थात् अपने आचरणसे। मुझे एक ब्राह्मणसे भी जिसके पास वे मुझे 'रामरक्षा स्तोत्र' पढ़नेके लिए भेजते थे, कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ था। इसी पूँजीके साथ मैं इंग्लैंडके लिए रवाना हुआ था। इसलिए 'लाइट ऑफ एशिया'को पाकर मैं उसे ध्यानसे पढ़ गया।

एक-एक पृष्ठ करके मैं उसे पढ़ता गया। मैं वास्तवमें साहित्यमें कोई रुचि नहीं लेता था। पर इस पुस्तकके प्रत्येक पृष्ठसे मुझे जो मिला उसके कारण और आगे पढ़ते जानेका लोभ मैं संवरण नहीं कर सका और पुस्तक समाप्त करते-करते उन उपदेशोंपर मेरी श्रद्धा बड़ी गहरी जम गई। सर एडविन आर्नोल्डने उनको बड़े ही सुन्दर ढंगसे सँजोया था। दक्षिण आफ्रिकामें अपनी वकालत प्रारम्भ करते समय मैंने उस पुस्तकको फिरसे पढ़ा। तबतक मैंने संसारके अन्य महान धर्मोंके बारेमें थोड़ा-बहुत पढ़ लिया था, किन्तु उस पुस्तकको दूसरी बार पढ़नेसे भी उसके प्रति मेरी श्रद्धामें कोई कमी नहीं आई। वस्तुतः बौद्ध धर्मसे मेरा इससे अधिक और कोई परिचय नहीं है। यरवदा जेलमें भी मुझे कुछ धर्मग्रन्थोंको पढ़नेका अवसर मिला, किन्तु मुझे इस प्रकारके समारोहोंमें अध्यक्षता करनेके लिए क्यों बुलाया जाता है, इसका कारण मैं जानता हूँ। समारोह चाहे बुद्धके सम्बन्धमें हों, चाहे महावीरके, या चाहे वे ईसामसीहके सम्बन्धमें हों, इनमें मुझे इसलिए बुलाया जाता है कि मैं उनके उन श्रेष्ठतम उपदेशोंके अनुसार चलनेका यथाशक्ति प्रयत्न करता हूँ जिन्हें मैं अपने सीमित ज्ञानके बलपर समझनेमें समर्थ होता हूँ। बहुतसे मित्रोंका विचार है कि मैं बुद्धके उपदेशोंको अपने जीवनमें उतार रहा हूँ। मैं उनके इस प्रमाणपत्रको स्वीकार करता हूँ, और निःसंकोच कहता हूँ कि मैं उन उपदेशोंका अनुसरण करनेका यथा-शक्य प्रयत्न कर रहा हूँ। बौद्ध आचार्यों तथा हिन्दू विद्यार्थियों — मैं विद्यार्थियोंके स्थानपर दार्शनिकोंको कहना चाहता था — की तरह मैं बौद्धधर्म और हिन्दूधर्मकी मूलभूत शिक्षाओं, उपदेशोंके बीच कोई भेद नहीं करता। मेरे विचारमें, बुद्धने अपने जीवनमें हिन्दू धर्मका ही अनुसरण किया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे अपने उस एक बड़े विकट युगके सुधारक थे। तात्पर्य यह है कि वे गहरी सत्य-निष्ठावाले सुधारक थे, और उन्होंने अपने आत्मिक विकास तथा अपनी शारीरिक मुक्तिके लिए जिस सुधारको अपरिहार्य समझा उसे पूरा करनेमें किसी भी त्याग या कष्टके सामने

हार नहीं मानी। यदि ऐतिहासिक अभिलेख सही है, तो उस कालके विवेकहीन ब्राह्मणोंने स्वार्थलोलुप होनेके कारण ही उनके सुधारोंको ठुकरा दिया था। किन्तु जनता तो दार्शनिक नहीं थी कि दार्शनिक व्याख्याओंमें अपना समय बर्बाद करती। जनता तो दर्शनको कर्ममें उतारनेमें विश्वास करती थी। उसकी व्यवहारबुद्धि बड़ी प्रबल थी; इसलिए उसने ब्राह्मणोंके गर्व अर्थात् उनकी स्वार्थपरताको एक ओर रखकर बुद्धको अपने धर्मका सच्चा व्याख्याता स्वीकार करनेमें जरा भी संकोच नहीं किया। इसलिए जनताका ही एक आदमी होने तथा उनके बीच रहनेके कारण, मुझे भी लगा कि बौद्ध धर्म उस हिन्दू धर्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है कि जिसे जनताके हितोंके अनुरूप ढाल दिया गया है। इसलिए कभी-कभी शिक्षित लोग बुद्धके अत्यन्त सरल उपदेशोंसे सन्तुष्ट नहीं होते। वे उन्हें अपने बौद्धिक सन्तोषके लिए पढ़ते हैं, और उनको निराश होना पड़ता है। धर्मका सम्बन्ध मुख्यतया हृदयसे है, इसलिए जो व्यक्ति बौद्धिक अहंके साथ उसके पास जाता है, उसे तो निराश ही होना पड़ेगा।

मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि बुद्ध नास्तिक नहीं थे। जो व्यक्ति या भक्त ईश्वरके पास अहं लेकर जाता है, वह उसे नहीं मिलता। वह ऐसे व्यक्तियोंका विश्वास नहीं करता जो प्रार्थनामें अपनी नाक जमीनपर रगड़ते हैं। वह नाकपर ऐसे निशान नहीं देखना चाहता। आपमें से कुछ लोग शायद यह जानते भी न हों कि बहुतसे मुसलमानोंके माथेपर वास्तवमें इस रगड़का चिह्न दीख पड़ता है, क्योंकि वे मस्जिदोंमें नमाजके समय रोज इस प्रकार अपने माथे रगड़ते हैं कि उनपर रुपयेके बराबर और कभी-कभी इससे भी बड़ा निशान पड़ जाता है। ईश्वर इन निशानोंको नहीं चाहता। वह तो मनुष्यके मर्मको, उसके समूचे अस्तित्वको आरपार देख लेता है। कोई व्यक्ति चाहे अपनी नाक काटकर रख दे और उसे जमीनपर रगड़ता रहे, पर ईश्वर ऐसे व्यक्तिको भक्तके रूपमें स्वीकार नहीं करता जो नाक रगड़कर भक्तिका प्रदर्शन न करनेवाले लोगोंकी उपेक्षा करता हो, जिसके हृदयमें व्यथा न हो और जिसका हृदय दूसरोंके लिए सहज ही सहानुभूतिसे न भर आता हो। चूंकि जनता अर्थात् साधारण जन अहंसे सर्वथा अपरिचित रहते हैं, इसलिए वे अत्यन्त विनम्रताके साथ उसके पास पहुँच जाते हैं और दार्शनिक विचारोंको कर्ममें परिणत कर देते हैं; और हम इसीलिए निःसंकोच होकर उनका अनुसरण कर सकते हैं। मेरे विचारमें बौद्धधर्मकी यही मूलभूत शिक्षा है। यह मुख्य रूपसे जनताका धर्म है। मुझे उसके पास जाकर निराशा नहीं होती। मैं एक क्षणके लिए भी यह नहीं मानता कि बौद्धधर्म भारतसे निर्वासित हो चुका है। मै देखता हूँ कि बौद्धधर्मकी प्रत्येक सारभूत विशेषताको बौद्धधर्मकी दुहाई देनेवाले देशों, चीन, लंका तथा जापानकी अपेक्षा, भारतमें ही अधिक व्यवहारमें लाया जा रहा है। मैं साहसके साथ कहता हूँ कि हम अपने बर्मी मित्रोंकी अपेक्षा भारतमें बहुत अधिक और बहुत अच्छे ढंगसे बौद्ध धर्मके अनुसार आचरण करते हैं। बुद्धको यहाँसे हटाना असम्भव है। आप ऐसा नहीं कह सकते कि वह भारतमें पैदा नहीं हुए थे। वे अपने जीवनमें ही अपना नाम अमर कर गये थे। वे आज लाखों व्यक्तियोंके जीवनमें बसते है।

एक छोटेसे मन्दिरमें जाकर उनकी प्रतिमा पूजने या उनका नाम लेने-न-लेनेसे क्या होता है। मेरा हिन्दूधर्म मुझे सिखाता है कि यदि मेरा हृदय शुद्ध है तो मैं चाहे श्रीरामकी जगह 'मरा' ही क्यों न कहूँ, फिर भी मैं उतने ही बलसे या उससे अधिक बलसे उसे रट सकता हूँ कि जितने बलसे शिक्षित ब्राह्मण रटते हैं। इसलिए मैं डा० धर्मपालसे कहता हूँ, उन्हें बहुतसे लोगोंका समर्थन मिले या न मिले, होनोलुलुकी कोई महिला एक बड़ी धनराशि दानमें दे या न दे, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। मेरा तो विनम्र मत यही है कि बुद्धने हमें सिखाया है कि जो व्यक्ति सत्यका अन्वेषण करता है उसके साथ लाखों लोगोंका होना कोई आवश्यक बात नहीं है।

प्रत्येक व्यक्तिको अपने-आपसे पूछना चाहिए कि जिस दया और करुणाका संदेश हमें बुद्धने सुनाया था उसे हमने किस हदतक अपने जीवनमें उतारा है और जिस हदतक हम उसे अपने जीवनमें उतार पाये हैं उतनी ही हदतक हम उस महान् विभूतिको श्रद्धांजलि चढ़ानेके अधिकारी हैं। मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि जबतक यह संसार रहेगा तबतक उनका दर्जा मानवताके महानतम शिक्षकोंमें रहेगा। बुद्धने लगभग २५०० वर्ष पूर्व जो विचार दिया था वह कभी नष्ट नहीं होगा। विचार यद्यपि मंद गतिसे आगे बढ़ते हैं फिर भी वे अपने निशान छोड़ जाते हैं। यद्यपि सम्भव है कि बौद्धधर्म भी अन्य सभी धर्मोंके समान ही इस समय पतनोन्मुख ही दिखाई पड़ता हो, पर वास्तवमें इसका बीज अंकुरित हो रहा है। मैं अब भी आशा करता हूँ कि हमारा दिन आ रहा है, वह दिन जब सभी महान् धर्मोंको कपट, पाखण्ड, असत्याचरण, अविश्वसनीयता अर्थात् "पतन" के साथ जुड़े हुए सभी लक्षणोंसे मुक्ति मिल सकेगी। वंचनासे मुक्ति पाकर वे शुद्ध हो जायेंगे और एक दिन आयेगा जब सीखनेके इच्छुक लोग सीख लेंगे कि सत्य और प्रेम एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। वही और केवल वही सिक्का खरा है, अन्य सभी खोटे हैं।

भगवान बुद्धने कई सौ वर्ष पूर्व जो सन्देश मानवताको दिया था, ईश्वर हमें उसका सत्य महसूस करनेकी शक्ति दे और हममें से प्रत्येक उसे अपने जीवनमें उतारनेका प्रयत्न करे, चाहे हम अपने-आपको हिन्दू कहें या न कहें।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ९-५-१९२५

२४. भाषण : लोहागंजमें[1]

८ मई, १९२५

श्री गांधीने अभिनन्दन-पत्र तथा थैली स्वीकार करते हुए एक छोटा-सा भाषण दिया और कहा कि मुझे दुःख है कि मैं अली भाइयोंको अपने साथ नहीं ला सका, वे अपने कार्यमें व्यस्त थे। यदि आप लोगोंको स्वराज्य चाहिए तो आपको अपना निश्चय पक्का कर लेना होगा। इसीलिए कांग्रेसने घोषणा की है कि स्वराज्य प्रेम और अहिंसाके जरिये ही प्राप्त करना है और उसने बार-बार लोगोंसे कहा है कि सभी लोगोंको, चाहे वे किसी भी धर्मके हों, इस कार्यमें मन लगाकर जुट जाना चाहिए। साथ ही, उसने अस्पृश्यताको मिटानेके लिए कहा है। आपका धर्म आपसे कहता है कि आप किसीसे भी घृणा न करें। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप प्रतिदिन कमसे-कम आधा घंटा सूत कातें और हाथका बुना खद्दर पहनें। मुझे यह कहते हुए दुःख हो रहा है कि इस समय भी बहुत कम लोग खद्दर पहनकर आये हैं। आपको अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए और चरखा चलाना चाहिए। इसके अतिरिक्त मैं आपसे यह भी आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि आप अपने लड़के-लड़कियोंको राष्ट्रीय-पाठशालाओंमें भेजें। भेंटमें मिली इस थैलीका उपयोग मैं अपने लिए नहीं करूँगा, बल्कि चरखों और करघोंके लिए करूँगा। इसलिए आपसे मेरा सविनय निवेदन है कि आपने जो धनराशि[2] देनेका वचन दिया है उसे पूरा करें। मुझे देखने और मेरे भाषण सुननेका कोई उपयोग नहीं है। आपने जो धन देनेका वादा किया है उससे आपको और देशको बहुत लाभ पहुँचेगा। मैं आशा करता हूँ और ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि मैंने जो हिदायतें दी हैं, उन्हें अमलमें लाया जाये।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ९-५-१९२५

१. यह भाषण विक्रमपुरके निवासियोंकी ओरसे दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें दिया गया था। ५,५०० रु० की एक थैली भी गांधीजीको भेंट की गई थी।

२. भाषणसे पूर्व डा० प्रफुल्लचन्द्र घोषने १५,००० रु० जमा करनेके लक्ष्यका उल्लेख किया था।

२५. भाषण : मल्लिकन्दामें[1]

८ मई, १९२५

भाषण देते हुए महात्माजीने कहा कि मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि आपमें से कुछ लोग खद्दर नहीं पहने हुए हैं। मैं आपसे तीन बातोंके बारेमें कहना चाहता हूँ और मुझे विश्वास है कि यदि आप मेरे सन्देशको क्रियान्वित करेंगे तो स्वराज्य आपको स्वयमेव मिल जायेगा। इस सम्बन्धमें पहली बात यह है कि हिन्दू और मुसलमान आपसमें पूरी तरह मेलजोलसे रहें। वे एक-दूसरेके प्रति सहिष्णु बनें और एक-दूसरेसे प्यार करें। मैं यह बात जोर देकर कहता हूँ कि अस्पृश्यताके अभिशापको मिटा देना चाहिए। मेरा आपसे आग्रहपूर्ण निवेदन है कि आप खद्दर पहनें और चरखा चलाएँ। हो सकता है कि आपको अपनी आजीविकाके लिए कातना आवश्यक न हो, किन्तु यदि आपको देशकी विशाल धनराशिको बाहर जाते रहनेसे बचाना है तो आपको प्रतिदिन कमसे-कम आधा घंटा सूत कातना चाहिए। मुझे आशा है कि आप डा० प्रफुल्लचन्द्रके कुशल पथ-प्रदर्शनमें शीघ्र ही कातना सीख लेंगे और विदेशी कपड़ा त्याग देंगे। मैंने सुना है कि यहाँ नाई लोग नामशूद्रोंकी हजामत नहीं बनाते और धोबी उनके कपड़े नहीं धोते। यह अस्पृश्यता है। हिन्दू धर्मका सार सत्य, अहिंसा और प्रेम है; नाइयों और धोबियोंका नामशूद्रोंकी सेवा न करना उनके प्रति प्रेम प्रदर्शित करना नहीं, बल्कि घृणा व्यक्त करना है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ९-५-१९२५

२६. बातचीतका अंश[2]

८ मई, १९२५

इन चरखोंको देखकर मेरे दिलको चोट पहुँची है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि हम यहाँ चरखेको लोकप्रिय नहीं बना पाये। अच्छा हुआ कि मैं यहाँ आ गया। नहीं तो मैं असफलता मिलनेपर गाँववालोंको ही दोष देता। अब मैं देखता हूँ कि सारी गलती हमारी ही है। जरा इन कमजोर चरखों और मोटे तकुओंकी

१. मल्लिकन्दामें खादी प्रदर्शनीका आयोजन किया गया था। गांधीजीने हिन्दीमें जो भाषण दिया था, वह उपलब्ध नहीं है।

२. गांधीजीने ये बातें दिघीरपुर राष्ट्रीय पाठशालाके प्रबन्धक, जतीन्द्रनाथ कुशारीसे कही थीं। बातचीतका विवरण महादेव देसाई द्वारा लिखित गांधीजीकी बंगाल-यात्राके विवरणसे उद्धृत है।

ओर देखिए। कातनेवालेको सूत कातनेके प्रयत्नमें चरखा बहुत ज्यादा घुमाना पड़ता होगा; और जरा इन चरखोंकी घरघराहटका मुलाहिजा तो कीजिए। यदि चरखेकी आवाज लड़कोंके गानेके साथ मेल न खाये तो वे कातते समय गा कैसे सकते हैं? सन्तोषकी बात केवल यह है कि लड़के कातना जानते हैं। उन्होंने इसे उसी प्रकार सुगमतासे अपना लिया है जैसे मछली पानीको अपनाती है। उनके पास अंगुलियोंका कौशल है और मैं देख रहा हूँ कि चरखोंकी हालत बुरी होनेपर भी वे अच्छा सूत कात रहे हैं। यदि चरखे अच्छे होते और तकुवे पतले होते तो वे इससे दुगुना सूत आसानीसे कात लेते। आप कहते हैं कि आपकी अधिकसे-अधिक गति ३०० गज प्रति घंटा है। मैं यकीन दिलाता हूँ कि जैसे ही आप इन चरखोंमें सुधार कर लेंगे, यह गति ६०० गज प्रति घंटा हो जायेगी। जिस दक्षतासे आपके यहाँके लड़के इन्हें चलाते हैं उससे आपको जान लेना चाहिए कि कताईकी सम्भावनाएँ कितनी बड़ी हैं। यदि आप आज चरखेकी कला और तकनीकको नहीं जानते तो आपको एक वर्षतक कठिन परिश्रम करके उसे अच्छी तरह सीख लेना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-५-१९२५

२७. भाषण: दिघीरपुरकी सार्वजनिक सभामें[1]

९ मई, १९२५

दस हजारसे अधिक लोगोंकी सभामें भाषण देते हुए गांधीजीने कहा कि मुझे दुःख है कि अस्पृश्यता-निवारणके लिए कांग्रेसी लोगों द्वारा किये गये प्रयत्न निष्फल रहे। अस्पृश्यताके सम्बन्धमें अपने दृष्टिकोणकी सफाई देते हुए उन्होंने कहा कि मैंने यह कदापि नहीं कहा है कि किसीको नामशूद्रोंके साथ एक ही थालीमें बैठकर खाना खाना चाहिए। उस पानीको जिसे मेरी माँने ही जूठा क्यों न किया हो, मैं कभी नहीं पिऊँगा, किन्तु यदि मेरी माँ या अन्य कोई व्यक्ति मुझे साफ बर्तनमें पानी दे तो मेरे लिये उसे लेनेसे इनकार करना पाप होगा। इसी प्रकार, यदि किसी स्थानके नाई और धोबी अपने नामशूद्र भाइयोंकी सेवा नहीं करते तो यह पाप माना जायेगा। मैं जोर देकर कहता हूँ कि हिन्दू धर्मका मतलब है — सेवा करना और सेवाका मतलब है — समानता और प्रेम। हिन्दू-मुस्लिम एकताके बिना स्वराज्य असम्भव है। इसीलिए मैं अपने दौरोंमें अली भाइयोंमें से किसी एकको अपने साथ रखता हूँ। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि इस स्थानपर चरखे और खद्दरके सम्बन्धमें कुछ काम हो रहा है। मैं हिन्दुस्तानसे गरीबी दूर करना चाहता हूँ, किन्तु मुझे यह देखकर दुःख

१. यह भाषण दिघीरपुरके संघ निकाय द्वारा स्थानीय जनताकी ओरसे दिये गये एक अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें दिया गया था।

होता है कि यहाँ बहुत कम लोग खद्दर पहने हुए हैं। मुझे प्रसन्नता है कि संघ निकाय (यूनियन बोर्ड)ने मेरे आनेके अवसरपर पाँच चरखे भेंट किये हैं।

अन्तमें गांधीजीने छात्रोंसे सानुरोध कहा कि आप अपने माता-पिताका सम्मान करें, अपने अध्यापकों तथा अपने परिवारके सभी सदस्योंसे प्रेम करें और अपने साथी छात्रोंके साथ सौहार्दपूर्वक रहें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ११-५-१९२५

२८. भाषण: तालटोलाके कार्यकर्त्ताओंकी बैठकमें[1]

९ मई, १९२५

सबसे पहले मैं आपसे यह कह देना चाहता हूँ कि हमारी मुक्तिका साधन केवल चरखा है, ऐसा मैंने कभी नहीं कहा। मैंने कहा है कि जनता चरखेके बिना स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकती। किन्तु मैं आज पहली बातका समर्थन करनेके लिए भी तैयार हूँ। मेरा आपसे निवेदन है कि आप अपनी कल्पनाशक्तिसे काम लें। जिस प्रकार आप हिमालयमें देवी-देवताओंकी कल्पना करते हैं, क्योंकि आपका मन पवित्रतासे परिपूर्ण है, उसी प्रकार यदि आप कताईके कार्यक्रमको सफलतापूर्वक कार्यान्वित करनेके बारेमें दत्तचित्त होकर विस्तारपूर्वक विचार करें तो आप कताईकी बड़ी-बड़ी सम्भावनाओंकी अनुभूति करने लगेंगे। जिस कार्यको हम कर रहे हैं, उसे चालू रखनेके लिए महान् प्रयत्नकी आवश्यकता है। लाखों लोगोंको सूत कतवानेके लिए तो और भी अधिक प्रयत्नकी आवश्यकता है। हममें से प्रत्येकको छोटीसे-छोटी बातोंकी ओर ध्यान देना और ठीक अनुशासनमें रहना होगा। कताईको सार्वभौम बना पानेका अर्थ है अन्य अनेक प्रश्नोंका स्वयमेव हल हो जाना। अस्पृश्यताकी समस्याको ही लीजिए। अस्पृश्यताकी समस्याका हल किये बिना चरखेका प्रयोग व्यापक करना असम्भव है। क्या आप नहीं जानते हैं कि जबतक अस्पृश्योंको नहीं अपनाया जाता, तबतक वे खद्दरसे कोई वास्ता न रखेंगे? वे कहेंगे, "जब हम अस्पृश्य माने जाते हैं, तब हम खद्दरका क्या करेंगे?" और जबतक उनका सहयोग नहीं मिलता तबतक आप खादीके कार्यक्रमको पूरी तरह सफल नहीं बना सकते। यही बात हिन्दू-

१. कार्यकर्ताओंकी एक बैठकका आयोजन किया गया था, किन्तु यह सोचकर कि नावमें बैठक कर लेना ज्यादा सुविधाजनक रहेगा, कार्यकर्ता गांधीजीके साथ नावसे नारायणगंजतक गये। डॉ० प्रफुल्लचन्द्र घोष गांधीजीके साथ थे। उन्होंने कहा कि 'कार्यकर्त्ताओंका विश्वास क्षीण होता जा रहा है। उनमें से बहुत-से लोग यह विश्वास नहीं करते कि चरखेमें ही हमारी मुक्ति है, यद्यपि वे उसकी आर्थिक उपयोगिता मानते हैं। किन्तु हममें से कुछ लोग महसूस करते हैं कि यह उपयोगिता किसी मंतव्य की नहीं है और कांग्रेसका सदस्य बनना अनावश्यक है। मेरी प्रार्थना है कि यदि हो सके तो आप हमारे सन्देहोंको दूर करके हमारे विश्वासको दृढ़ बनायें।' गांधीजीने इन सन्देहोंको ध्यानमें रखकर भाषण दिया।

मुस्लिम प्रश्नके वारेमें भी है। दोनों चीजें साथ-साथ चलती हैं। इस प्रकार आप देखेंगे कि केवल कताईसे स्वराज्य मिलना सम्भव है।

किन्तु मैं आपको कुछ और गहराईमें ले जाना चाहता हूँ। क्या आप जानते हैं कि वायलिनके वाजेका जो तार मेरे हाथमें है उसे छोड़कर शेष सभी तारोंपर सरकारकी अंगुलियाँ जमी हुई है? जो तार मेरे हाथमें है वह है अहिंसा। आप स्वराज्य केवल अहिंसासे प्राप्त कर सकते हैं, हिंसासे कभी नहीं। यदि आपका इस वातपर विश्वास जमता है तो आपकी समझमें शीघ्र ही आ जायेगा कि केवल कताईके जरिये आप स्वराज्य प्राप्त कर सकते है; क्योंकि अहिंसाको कार्यरूपमें परिणत करनेका केवल यही मार्ग है कि चरखेको घर-घरमें स्थान दिलानेके शान्तिपूर्ण कार्यक्रमको पूरा किया जाये। आप हिन्दू-मुस्लिम समस्याको किस प्रकार हल करेंगे? केवल इस प्रकार ही न कि हिन्दू लोग मुसलमानोंके लिए खादीका कार्य करें और मुसलमान लोग हिन्दुओंके लिए। और इस बातके लिए कि हिन्दू, मुसलमान तथा अछूत साथ-साथ मिलकर कार्य करने लग जायें, इसके लिए आप लोगोंको विश्वास और श्रद्धाके साथ अथक परिश्रम करते रहना होगा। सबसे आसान वातको ही पहले लीजिए, कठिन वात जाने दीजिए। कठिन बातके क्षेत्रमें आते हैं महाराजा, नवाब आदि। हमको देश-भरमें कुशल बुनकरों और कतैयोंका जाल-सा विछा देना चाहिए और चरखेको कार्यक्रमका केन्द्र बना लेना चाहिए। ऐसा मत कहिए कि वातावरण विगड़ा हुआ है। मतभेद हैं तो रहने दें। आप उनके रहते हुए भी कातना जारी रखें। आप देखेंगे कि एक दिन आयेगा जब आपके चारों ओर आप जैसे ही कातनेवाले पैदा हो जायेंगे। यदि आप साफ हैं तो एक दिन निश्चित रूपसे आपके इर्द-गिर्दके सब लोग सफाई अपना लेंगे। क्या मैं ब्रह्मचर्य, सत्य और अहिंसाको महज इसलिए त्याग दूं कि मेरे चारों ओर इनके विपरीत आचरण किया जा रहा है? नहीं, मुझे अपना कार्य इस विश्वासके साथ जारी रखना होगा कि मेरा तरीका सही है, भले ही इस तरीकेसे काम करनेवाला अकेला मैं ही क्यों न रह जाऊँ।

आप पूछते हैं कि कातनेवाले किस प्रकार स्वराज्य प्राप्त करायेंगे? मैं कहता हूँ कि यदि आपने चरखेको सार्वभौम बना लिया तो इसके बाद कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। तव आपके पास ऐसी शक्ति और ऐसा बल आ जायेगा जिसे हरएक शख्स खुद-ब-खुद मानने लगेगा।

किन्तु हो सकता है कि हमारा संघर्ष लम्बे अर्सेतक चले। परन्तु इससे छोटा कोई रास्ता है ही नहीं। मैं केवल १००० सच्चे कार्यकर्त्ताओंको लेकर कांग्रेसको एक जीवन्त संस्था बना सकता हूँ। दस लाख न कातनेवाले लोग, जो ४ आने चन्दा देनेमें अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझते हैं, वोझ ही नहीं, उससे भी बदतर होंगे। ईश्वरमें मेरा विश्वास है और इस बातमें भी कि वास्तवमें समय आनेपर उक्त थोड़े-से लोग ही काम कर दिखायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-५-१९२५

२९. भाषण : मलखानगरमें

९ मई, १९२५

पहली बात तो यह है कि कातनेसे ही स्वराज्य मिल सकता है, यह मैंने नही कहा, यद्यपि मेरा विश्वास यही है। सूत काते बिना स्वराज्य नही मिल सकता है, यह बात मैंने बार-बार कही है। मै ये दोनों बातें सिद्ध करके दिखानेके लिए तैयार हूँ। कातनेका अर्थ क्या है? कातनेका अर्थ यह है कि हमें कताईको सार्वजनिक बना देना है, अर्थात् लुढ़ाई, धुनाई और कताई यह सब क्रियाएँ हमें जान लेनी चाहिए और कते हुए सूतकी खादी बुनवा लेनी चाहिए। इन सब क्रियाओंको स्वयं कर सकने और करोड़ों लोगोंको सूत कातनेमें लगानेके लिए भगीरथ प्रयत्नकी आवश्यकता है। इसका अर्थ है समस्त देशमें एक सजीव तन्त्र स्थापित करना। जैसे बड़े जहाजमें कप्तानका हुक्म जहाजके सब लोग मानते हैं और यदि वे न मानें तो उसे उनको गोलीसे उड़ा देनेका अधिकार होता है, ऐसे तन्त्रकी व्यवस्था करना क्या कोई छोटा-मोटा काम है? यदि आप करोड़ों लोगोंको सूत कातनेमें लगा देंगे तो उससे अस्पृश्यता-निवारणका प्रश्न भी हल हो जायेगा और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यका भी। अस्पृश्यता इससे कैसे दूर हो सकती है? अस्पृश्य लोग आज खादीके काममें जो भाग लेते हैं सो मेरी खातिर। मद्रासमें अस्पृश्योंने मुझसे कहा कि जब लोग हमें अस्पृश्य मानते हैं तब हमें उनका काम करनेकी क्या जरूरत है? हम उनके लिए खादी क्यों बुनें? फिर भी वे मेरी खातिर उनकी खादी बुनते हैं। जब अस्पृश्यता मिट जायेगी तब वे स्वेच्छापूर्वक इस कार्यमें पूरा रस लेने लगेंगे और जब वे पूरा रस लेने लगेंगे तब अस्पृश्यता भी लुप्त हो जायेगी। जबतक हिन्दू और मुसलमान एक होकर काम नहीं करते तबतक क्या खादीके कार्यकी साधना पूरी हो सकती है? इस प्रकार सब जातियोंको सूत कातनेमें लगानेके लिए आपको ऐसी सीलनभरी जगहोंमें जीवन बिताना पड़ेगा।

किन्तु आप पूछेंगे कि कताईका अर्थ स्वराज्य कैसे है? मेरा उत्तर यह है कि यदि आप कताईका प्रचार सर्वत्र कर देंगे तो आज कांग्रेसके सम्मुख जो तीन जबरदस्त प्रश्न हैं — ये तीनों हल हो जायेंगे, और जब ये तीनों प्रश्न हल हो जायेंगे तब बाकी कौनसा प्रश्न रह जायेगा? जब ये तीनों काम पूरे हो जायेंगे तब हम अपनी निश्चित शर्तें पूरी करानेकी माँग पेश कर सकेंगे। उसके बाद यदि अंग्रेजोंको जाना हो तो वे चले जायें और यदि उन्हें हमारी शर्तोंपर रहना मंजूर हो तो वे रहें। अब आप प्रश्न करेंगे कि जिन अंग्रेजोंसे हम इतने लड़े और जिन्होंने हमपर इतने अत्याचार किये क्या आप उनसे सहयोग करेंगे? मेरा उत्तर है, हाँ, जरूर करूँगा, क्योंकि मुझे तो शत्रुको भी मित्र बनाना है।

कातनेसे ही स्वराज्य मिल सकता है, यह बात समझनेके लिए आपको एक बात भली-भाँति जान लेनी चाहिए। वह यह है कि आप किस उपायसे स्वराज्य

लेना चाहते हैं? यदि आप हिंसाके द्वारा स्वराज्य लेना चाहते हों तो आपको कताई-का विचार त्याग देना चाहिए किन्तु आप हिंसासे अंग्रेजोंको नही जीत सकते, यह मुझे प्रत्यक्ष दीख रहा है। आजके खेलमे सभी मुहरे उनके हाथमें हैं। मेरे हाथमें केवल एक मुहरा है -- वह है अहिंसाका। हम उन्हें इस अहिंसाके मुहरेसे ही जीत सकते हैं। यदि आप इस बातको मान लें तो आप यह समझ सकेंगे कि सूत काते बिना तो हमारा काम ही नही चलेगा, क्योंकि अहिंसाकी पद्धतिका केन्द्र ही चरखा है। कार्यक्रमकी अन्य बातें इसीके इर्द-गिर्द घूमती हैं।

वातावरण तो बिगड़ा हुआ नही है। सरकार उपद्रव चाहती है और उसे उपद्रवप्रिय लोग भी मिल जायेंगे; किन्तु आप तो यही कहेंगे कि चाहे जितनी ही विघ्न-बाधायें आयें, हम तो फिर भी कातते ही रहेंगे। दूसरे लोग कातना छोड़ दें, तब भी आप थोडे ही कातना छोड़ सकते हैं? दूसरे सब स्वच्छ रहना छोड़ दें, ब्रह्मचर्यका पालन छोड़ दें और अहिंसाका भी त्याग कर दें तो क्या इससे आप भी इनको छोड़ देंगे?

इस प्रकार जो सच्चे कातनेवाले हैं वे समय आनेपर जरूर आगे आ जायेंगे। कांग्रेसके न कातनेवाले ३ करोड़ सदस्य हों तो भी मैं उनसे कोई काम नही ले सकूंगा। किन्तु यदि ३०० सच्चे [कातनेवाले] सदस्य होंगे तो मैं उन्हींसे देशको जगा सकूंगा। आप पूछेंगे कि ये लोग समय आनेपर कैसे आगे आ जायेंगे तो मैं इसका उत्तर नही दे सकूंगा। मै तो सिर्फ इतना ही कहूँगा कि ईश्वर उन्हें आगे बढ़ायेगा। ईश्वरपर मेरा इतना विश्वास है कि मैं इसीपर निर्भर होकर बैठा हूँ कि अवसर आनेपर वह सबको जागृत कर देगा। ट्रान्सवालमें क्या हुआ था? आखिर वक्ततक किसीको [संघर्षमें आनेके लिए] नहीं कहा गया था, किन्तु जब कुलियोंने यह देखा कि हम सब जेल पहुँच गये हैं, तव तो वे भी मैदानमें आ गये। हरबत-सिंह[1] तो [गिरमिटसे] मुक्त हो चुके थे। उन्हें कर नही देना था, किन्तु उनको भी जोश आया। वे भी जेल गये और वहाँ मर गये। खानोंको ही जेल बना दिया गया। मजदूर उन्हींमें कैद कर दिये गये। उन्होंने वहाँ बहुत कष्ट झेले। मुझे इसका जरा भी अनुमान नहीं था कि यह सब होनेवाला है। किन्तु ईश्वरमें श्रद्धाकी बात ऐसी ही है। इसलिए जब लोग पूछते हैं कि मैं सविनय-अवज्ञा कब करूँगा तो मैं उनको कोई भी उत्तर नहीं देता। मैं यही कहता हूँ कि ईश्वर उस अवसरको प्रस्तुत करेगा।

मै अब इस प्रश्नपर आता हूँ कि कांग्रेसमें रहनेसे क्या लाभ? मैं मानता हूँ कि इससे अधिक लाभ नहीं है। किन्तु यदि हम कांग्रेसमें न रहें तो स्वराज्यवादियोंको नाहक ही दुःख होगा। इसका अर्थ यही होगा कि हम उनको अपनी सहानुभूति देनेके लिए भी तैयार नहीं हैं। इस वर्ष तो सदस्य बनकर जितना काम हो सके उतना करनेके अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग ही नही है। यदि अगले वर्ष उनको इसकी भी जरूरत न रहेगी तो देखा जायेगा। तब हम कातनेवालोंका संघ बना सकेंगे। किन्तु इस

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३१४-१५।

प्रकार वह संघ वर्षके कार्यका परिपक्व फल होगा। यदि आप यह मानते हों कि कांग्रेसमें रहनेसे कोई लाभ नहीं है तो उसमें हानि भी तो किसी तरहकी नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-५-१९२५

३०. भेंट : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे

९ मई, १९२५

श्री गांधीने स्वीकार किया कि जैसे श्री घोषने[1] बताया है विभिन्न बस्तियोंकी अपनी-अपनी विशिष्टता होती है और काम प्रत्येक बस्ती की विशिष्टताको देखते हुए ही आगे बढ़ाया जाना चाहिए। किन्तु मेरे विचारमें चरखा सभी जगहोंपर रचनात्मक कार्यका मुख्य भाग बन सकता है; प्रत्येक बस्तीकी परिस्थिति विशेषको देखकर अन्य बातें इसके साथ जोड़ी जा सकती हैं। प्रत्येक बस्तीमें चरखा घर-घर चलाया जाना चाहिए। इसके बाद श्री घोषने गांधीजीके फरीदपुरके भाषणका[2] उल्लेख किया जिसमें उन्होंने कहा था कि देशको मुक्त करानेके लिए मजबूत हृदयकी जरूरत है, मजबूत भुजाओंकी नहीं। इसपर श्री गांधीजीने कहा कि हम मजबूत हृदयसे स्वराज्य तो ले सकते हैं, लेकिन आन्तरिक शान्ति स्थापित करने तथा देशको बाहरी शत्रुओंसे बचानेके लिए मजबूत भुजाओंकी आवश्यकता पड़ेगी। श्री गांधीने कहा कि मैंने इस प्रश्नका उत्तर 'यंग इंडिया[3]' में दिया है और वहाँ मैंने ऐसा नहीं कहा है कि मजबूत भुजाओंकी आवश्यकता है ही नहीं। जब हम स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे तब तो देशकी रक्षाके लिए पुलिस और सेनाकी आवश्यकता होगी ही, परन्तु स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए सबसे पहले हमारे पास मजबूत हृदय होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १२-५-१९२५

१. कालिमोहन घोषने गांधीजीसे पूछा था कि क्या रचनात्मक कार्यके अंगके रूपमें चरखा अलग-अलग विशेषताएँ रखनेवाले सभी इलाकोंके लिए समान रूपसे उपयुक्त रहेगा यद्यपि सभी बस्तियोंकी अपनी-अपनी विशेषता हुआ करती है; और क्या संगठनात्मक कार्यमें इन विभिन्नताओंका विचार नहीं करना चाहिए।

२. देखिए "भाषण : बंगाल प्रान्तीय परिषद्में", ३-५-१९२५।

३. देखिए "फिर वही", ७-५-१९२५।

३१. अन्त्यज साधु नन्द

नन्दकी यह कथा दक्षिणके साहित्यसे महादेवभाईने साररूपमें ली है। मैं चाहता हूँ इसे सब लोग रुचिपूर्वक पढ़ें। कोई भी यह न माने कि यह कथा कपोल-कल्पना मात्र है। सम्भव है उसमें कुछ अत्युक्ति हो। परन्तु नन्द नामक एक साधुचरित अन्त्यज छ: सौ साल पहले दक्षिणमें हुआ है और उसने अपने चरित्र-बलसे मन्दिरोंमें जानेका अधिकार प्राप्त कर लिया था। उसकी पूजा हिन्दुओंमें आज भी अवतारी पुरुषके रूपमें की जाती है। इसपर तो सन्देह किया ही नहीं जा सकता। नन्दकी इस पवित्र कथासे हमें यह शिक्षा मिलती है कि यद्यपि जन्म कर्मका फल है, फिर भी विधाताने हमारे लिए पुरुषार्थ नामकी वस्तु भी बनाई है, और नन्द-जैसा अन्त्यज चरित्रके बलसे इसी जन्ममें पवित्र हुआ और पवित्र माना गया। ब्राह्मणोंने उसे प्रेमपूर्वक अपनाया। यदि नन्द इसी जन्ममें पवित्र हो सका तो हमें यह मानना ही होगा कि यह शक्ति सब लोगोंमें निहित है। इसलिए हर अन्त्यजको पूजाके लिए मन्दिरोंमें प्रवेश करनेका अधिकार दिया जाना चाहिए।

मैं आशा रखता हूँ कि कोई ऐसा तर्क न करेगा कि नन्दने तो अग्निमें प्रवेश किया था; अन्त्यज लोग ऐसा करके मन्दिरोंमें जाना चाहें तो जायें। अग्नि-प्रवेशकी बात काव्यकी अत्युक्ति है। यदि हम इसे सच मान लें तो भी नन्दने स्वेच्छासे ही वैसा किया था। बहुत-से ब्राह्मण नन्दको स्नान-मात्र कराकर मन्दिरमें दर्शनार्थ जाने देनेके लिए तैयार थे। इस कथाका सार हमें यही समझना चाहिए कि अन्त्यज अपने पुरुषार्थसे इसी जन्ममें पवित्र हो सकते हैं, अर्थात् जिस शर्तपर दूसरे हिन्दू मन्दिरमें जा सकते हैं उसी शर्तपर अन्त्यजोंको भी मन्दिरमें जानेकी छूट दी जानी चाहिए।

मैंने इतना तो कहा उच्च वर्णी कहे जानेवाले हिन्दुओंके लिए।

अन्त्यजोंको तो नन्दकी कथा प्रोत्साहन देनेवाली और पावन करनेवाली है ही। मैं चाहता हूँ कि इसका पाठ हर अन्त्यजके घरमें किया जाये। परन्तु वे केवल इसका पाठ करके ही सन्तुष्ट न हो जायें। जो-कुछ नन्दने किया है वह प्रत्येक अन्त्यजको करना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि सभी अन्त्यजोंमें नन्दकी-सी पवित्रता दिखाई दे और उसका धीरज, उसकी क्षमा, उसका सत्य और उसकी दृढ़ता भी आये। नन्द सत्याग्रहकी मूर्ति था। नन्दने नास्तिकोंको आस्तिक बनाया था। ईश्वर करे, प्रत्येक अन्त्यज नन्दका आख्यान पढ़कर अपने दोषोंको दूर करनेके लिए उत्सुक हो और उसमें समर्थ हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-५-१९२५

३२. पत्र : मगनलाल गांधीको

रविवार

बैसाख वदी २ [१० मई, १९२५][1]

चि० मगनलाल,

पुरैयाका पत्र तुमने वापस मांगा था; वह इसके साथ है। तुम देखोगे कि मैंने उसका उपयोग 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में कर लिया है।

मैं चि० रुखीके सम्बन्धमें तुमको लिख ही चुका हूँ। यहाँ खादी-कार्यका मुझे अच्छा अनुभव हो रहा है। उनका कुछ काम हमारे कामसे अच्छा है। हमारा कताई और पिंजाईका काम बहुत स्वच्छतासे और नियमपूर्वक चलता है न? मेरा स्वास्थ्य अभीतक तो बहुत अच्छा रहा है। भाई रमणीकलाल आ गये हों तो कहना कि चरित्रविजयजीका पत्र आया है। उन्होंने तो हर चीजसे इनकार किया है। वे जितने प्रमाण . . . और . . . के विषयमें इकट्ठे कर सकें, करें। मैं इन दोनों बातोंको भूला नहीं हूँ और भूलना चाहता भी नहीं। . . . के सम्बन्धमें तो तुम जानते ही हो? उनपर पैसा खाने और व्यभिचार करनेके आरोप हैं। जिसने मुझसे यह बात कही है वह इन आरोपोंके बारेमें दृढ़ है। यदि कोई बात तुमको या छगनलालको मालूम हुई हो तो मुझे सूचित करना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

बासे कहना कि मैं हरिलालसे मिला था, मैंने उससे तीन घंटे बातें कीं। हरिलालने खास तौरसे कहा है कि बा कलकत्ता न आये। वह इस समय अपने किसी मित्रके साथ रहता है।

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६२०६) से।
सौजन्य : राधाबहन चौधरी

१. विषय-वस्तुसे मालूम होता है कि गांधीजीने यह पत्र १९२५ में बंगालके दौरेके दिनोंमें लिखा होगा।

२. मगनलालकी पुत्री।

३. रमणीकलाल मोदी; साबरमती आश्रमके सदस्य।

४. सोनगढ़ (सौराष्ट्र) में खादी प्रचारके लिए छात्रों और अन्य लोगोंको प्रशिक्षित करनेके उद्देश्यसे खोले गये महावीर रत्न आश्रमके संस्थापक।

३३. भाषण: पूरनबाजारके व्यापारी संघमें

१० मई, १९२५

अभिनन्दन-पत्रका उत्तर देते हुए, गांधीजीने शुरूमें ही कहा कि मुझे अत्यन्त दुःख है कि मैं अली भाइयोंमें से किसी एकको भी अपने साथ नहीं ला सका। केवल मेरे गुणगान करनेसे कुछ नहीं होगा। मैं तो बस यही चाहता हूँ कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच पूर्ण रूपसे एकता स्थापित हो, अस्पृश्यता दूर हो। मैं मानता हूँ कि बंगालमें वैसी अस्पृश्यता नहीं, जैसी कि दक्षिण भारतमें है। किन्तु मैंने नामशूद्रोंसे सुना है कि उनके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार होता है। हिन्दुस्तानकी गरीबी दूर करनेके लिए आप सभीको चरखा अपनाना चाहिए और खद्दर पहनना चाहिए। मैं देशको सभी बुराइयोंसे मुक्त करना चाहता हूँ; इसमें मद्यपानकी बुराई भी शामिल है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जबतक आप मेरे द्वारा तैयार किये गये त्रिसूत्री कार्यक्रम-पर अमल नहीं करेंगे तबतक आपको स्वराज्य नहीं मिलनेका।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ११-५-१९२५

३४. भाषण: चाँदपुरमें[1]

१० मई, १९२५

महात्माजीने सबसे पहले स्वागत-समिति तथा नगरपालिकाको मानपत्रके लिए धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा कि यह मेरे प्रति आपका प्रेम ही है जिसके कारण मानपत्रोंमें आपने मेरे गुणोंका उल्लेख किया है। मैं आपका प्रेम स्वीकार करता हूँ और उन गुणोंको प्राप्त करनेके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करूँगा। अतएव मैं इस प्रशंसा-को आपके प्रेमके प्रतीकके रूपमें स्वीकार करता हूँ।

स्वागत-समिति द्वारा दिये गये मानपत्रमें कार्यके परिमाणके सम्बन्धमें व्यक्त की गई निराशाका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि यदि मनुष्य ईमानदारी, त्याग और विनम्रताके साथ काममें जुटा रहे तो निराश होनेकी कोई बात नहीं।

परमात्माका वचन है कि फलकी अपेक्षा किये बिना हमें निरन्तर अपना कर्त्तव्य करते रहना चाहिए।

१. यह भाषण जनता तथा नगरपालिकाकी ओरसे दिये गये मानपत्रके उत्तरमें दिया गया था। गांधीजीने उत्तर हिन्दीमें दिया था। मूल भाषण उपलब्ध नहीं है।

महात्माजीने उक्त कथनपर जोर देते हुए कहा कि हमारा धर्म हमें अपने कार्यमें रत रहनेकी शिक्षा देता है। आपके कार्यमें मन्द प्रगति होनेका क्या कारण है सो मैं समझता हूँ। यह इसलिए हुआ कि देश वास्तविक कर्मभूमिमें अभी हाल ही में उतरा है।

अबतक तो हमने कामके बारेमें केवल बातें की हैं, हमने गम्भीरतापूर्वक काम करना शुरू नहीं किया था। अब हम बातोंकी दुनियासे कामकी दुनियामें आ रहे हैं। चूँकि हम कर्मक्षेत्रमें पदार्पण कर चुके हैं, इसलिए हमें कर्मकी साधनाके जरिये आध्यात्मिक जीवनकी ओर बढ़ना है। हमने १० वर्ष पूर्व, उसी समय अपनी स्थितिको समझ लिया था जब भाषण, प्रशंसा और ताली बजाना ही राजनीतिके क्षेत्रमें एक फैशन बना हुआ था। तब हमारे पास हजारों कार्यकर्ता थे। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं कि आज चरखेपर काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओंकी संख्या उससे कम है।

महात्माजीने कहा कि कांग्रेसके सदस्योंमें असाधारण रूपसे कमी आ जाने और चरखोंकी संख्यामें वृद्धि न होनेके कारण मैं जरा भी निराश नहीं हूँ। मैं अनुभव करता हूँ कि इससे मुझे अधिक निश्चयके साथ काम करनेका बल मिला है। इसी कारण मैं अपने भाइयों और बहनोंसे कहता हूँ कि वे अपने कार्यमें विश्वास करें। मैं कांग्रेसके ऐसे एक करोड़ सदस्योंकी अपेक्षा जो सिर्फ चार आने चन्दा दें और कुछ भी न करें, उन तीस सदस्योंको अधिक मूल्यवान निधि समझूँगा जो कताई-सदस्यता, हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा अस्पृश्यता सम्बन्धी-शर्तोंको पूरा करते हों। पाँच या सात खरे और सच्चे सिक्के एक करोड़ खोटे सिक्कोंसे अधिक मूल्यवान होते हैं। खोटे सिक्कोंको तो नदीमें फेंक देना चाहिए, त्याग देना चाहिए।

इसलिए कांग्रेसका कताईकी शर्तवाला मताधिकार सच्चे कार्यकर्त्ता खोज निकालनेकी एक कसौटी है। इससे नकली मालके ढूँढ निकालनेमें सहायता मिलेगी। यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि उसे चरखेमें विश्वास नहीं है तो उसे चरखेको छोड़ देना चाहिए। किन्तु यदि आपको चरखेकी उपयोगितामें विश्वास है तो आपको इसलिए निराश नहीं होना चाहिए कि दूसरे लोग इसे नहीं अपनाते। आपको अपने कर्त्तव्यके प्रति जागरूक रहते हुए अपना काम करते रहना चाहिए।

महात्माजीने जोर देकर कहा कि यदि देशका एक व्यक्ति भी चरखेके पक्षमें न रहे तो भी मैं अकेला अपने घरमें रहकर प्रतिदिन ८ घंटे चुपचाप चरखा चलाता रहूँगा।

स्वागत-समितिके मानपत्रमें बताया गया था कि अन्नके अभावके कारण लोगोंकी कैसी दयनीय दशा हो गई है। इसका पुनः उल्लेख करके गांधीजीने कहा कि मैंने सुना है कि इस प्रदेशमें "वॉटर हायसिन्थ" नामके पौधे फैले हुए हैं। ये हर साल फसलोंको बहुत नुकसान पहुँचाते हैं।

मेरा खयाल ऐसा है कि हम अपने आलस्यके कारण ही दुःख भोग रहे हैं और इसी कारण बिना किसी रोक-थामके 'वॉटर हायसिन्थ' भी बढ़ते जा रहे हैं।

मैं भारतके लोगोंको विपत्तियों और संकटोंसे मुक्ति दिलानेके लिए ही चरखेका उपदेश दे रहा हूँ। चरखेके साथ-साथ हमारी मुक्तिके लिए अन्य जरूरी कार्योंको भी हाथमें लिया जा सकता है। चरखा निराशाके मध्य आशा बँधाता है। इन्सान अपना दुश्मन और अपना दोस्त आप होता है। जब आप कठिनाईमें हों, ईश्वरको याद करें। ईश्वर इतना निर्दयी है कि जबतक आप कर्त्तव्यपरायण नही होते, तबतक आप किसी भी कार्यमें उससे सहायताकी आशा नही कर सकते। मैं आग्रहपूर्वक सबसे कहता हूँ कि ईश्वरको याद रखें, और कार्य करते जायें।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १३-५-१९२५

३५. भाषण: चाँदपुरकी राष्ट्रीय पाठशालामें

१० मई, १९२५

महात्माजी राष्ट्रीय पाठशालामें छात्रोंसे मिले। वहाँकी कार्यवाही अत्यन्त दिलचस्प थी। उन्होंने पहले उन लड़कोंको बुलाया जो अपनेको सबसे अधिक दुष्ट मानते थे। पहले तो कोई भी आगे नहीं आया; बादमें कुछ लड़कोंने आगे आकर स्वीकार किया कि वे दुष्ट हैं। इसके बाद महात्माजीने उन लड़कोंको बुलाया जो अपन-आपको मूढ़ और बुद्धिहीन समझते थे। बहुत-से लड़के आगे आ गये। इसपर काफी हँसी हुई। इसके बाद महात्माजीने दुष्ट तथा अज्ञानी लड़कोंके गुणोंका वर्णन किया और उन्हें कुछ हिदायतें दीं, जिन्हें अत्यन्त ध्यानसे सुना गया। उन्होंने छात्रोंसे कहा कि आप देशकी बढ़ती हुई गरीबीको समझें। जो लड़के चरखा कातते हैं, वे इसका अनुभव कर सकते हैं। इसीलिए मैं आपसे आग्रह करता हूँ कि आप प्रतिदिन सूत कातनेकी पूरी कोशिश करें। जो लड़का अनेक निराशाओंके बावजूद अपने सामने कोई आदर्श नहीं रखता, वह नटखट लड़का है; और मूढ़ वह है जो खाली हाथ बैठे रहनेमें सन्तोष मानता है। जितना ही अधिक कोई छात्र सूत कातेगा उतना ही अधिक वह अनुभव करेगा कि उसने अपने कर्त्तव्यका पालन किया है। स्वराज्यके संघर्षमें ऐसे लड़कोंका दल अपरिहार्य है। अन्तमें मैं आपसे कहता हूँ कि आप अपने माता-पिताका आदर करें, अपने अध्यापकों तथा अपने परिवारके सभी सदस्योंके प्रति प्रेमभाव रखें और अपने साथियोंसे मित्रतापूर्ण व्यवहार करें। मेरा हार्दिक आशीर्वाद आपके साथ है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १३-५-१९२५

३६. भाषण : चाँदपुरकी सार्वजनिक सभामें[1]

१० मई, १९२५

गांधीजीने शुरूमें ही कहा कि चूंकि इस सभामें मुसलमानोंकी संख्या ज्यादा है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताके सम्बन्धमें अली भाइयोंसे हुई अपनी बातचीतके बारेमें आपको कुछ बतला दूं। उन्होंने निर्णय किया है कि हमें आपसमें फिर कभी नहीं लड़ना चाहिए। जबतक हम आपसमें मेलजोलसे नहीं रहेंगे तबतक स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव है। आप लोगोंको संकल्प कर लेना चाहिए कि आपसमें नहीं लड़ेंगे और आपको चरखा चलाना चाहिए। यहाँ हिन्दू या मुसलमान, कोई भी चरखा नहीं चला रहे हैं।

गांधीजीने प्रसंग उठनेपर कहा कि मुसलमान लोग कम संख्यामें खद्दर पहनते हैं और चरखा भी कम चलाते हैं। मैं आपसे सविनय निवेदन करता हूँ कि आप अधिक काम करें। आप लोगोंको याद रखना चाहिए कि पूर्वी बंगालकी बाढ़के समय प्रफुल्लचन्द्र रायने कितना शानदार काम किया था और किस प्रकार उन्होंने चरखेके जरिये बहुत-सी मुसलमान बहनोंकी सहायता की थी। मैं मुसलमान बहनोंसे भी चरखा चलानेके लिए कहता हूँ। करोड़ों हिन्दू भूखों मर रहे हैं। उनके लिए चरखा चलानेके सिवा और कोई विकल्प नहीं। इसी कारणसे मैं भारतका दौरा कर रहा हूँ और मैं उनसे चरखा चलानेके लिए कह रहा हूँ। तभी, केवल तभी आप लोग देशसे गरीबी दूर कर सकते हैं। जिससे भी मैंने कहा है उसने स्वीकार किया है कि कातना चाहिए और विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करना चाहिए। फिर भी वे स्वदेशी कपड़ेका उपयोग नहीं करते। इसका कारण यह है कि वे अपने देशको प्यार नहीं करते और दूसरी बात यह है कि उनके हृदयमें अपने देशके प्रति कोई सम्मान नहीं।

अस्पृश्यताका उल्लेख करते हुए, गांधीजीने कहा कि नामशूद्रोंको बहुत कष्ट उठाना पड़ रहा है, यद्यपि उतना अधिक नहीं जितना कि दक्षिण भारतमें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १२-५-१९२५

१. इसके बाद गांधीजीने महिलाओंकी एक सभामें भी भाषण दिया था।

३७. पत्र : बृजकृष्ण चाँदीवालाको

रविवार [१० मई, १९२५ या उसके पश्चात्][1]

भाई ब्रिजकिसन,

तुमारा पत्र मीला। मेरा तुमारे पर विश्वास है परंतु इस तरह् किसीके लीये द्रव्यकी सहाय मागना मेरे क्षेत्रके बाहर है। यदि मैं इस तरह धनिक मित्रोंसे व्यवहार रखुं तो मेरा संबंध अस्वच्छ बन जायगा। इस काममें तुमारे हि पुरुषार्थसे तुमारे संकटका इलाज कर लेना चाहिये।

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्र (जी० एन० २३७०) की फोटो-नकलसे।

३८. एक कार्यकर्त्ताकी कठिनाई

[११ मई, १९२५]

मेरी बंगालकी यात्राके बीच मुझे अनेक सुझाव दिये जा रहे हैं। मैं सबको कार्यान्वित भले ही न कर सकूँ; लेकिन मैं उन्हें पसन्द करता हूँ। एक सच्चे कार्यकर्त्ताका सुझाव है।[2]

मै ये टिप्पणियाँ अपने मौनवारको[3] लिख रहा हूँ। खादी प्रतिष्ठानके संचालक सतीश बाबू मेरे पास बैठे हैं। इसलिए मैंने कार्यकर्त्ताके सुझावको, जवाबके लिए उनके सुपुर्द कर दिया है, क्योंकि वे बंगालकी परिस्थितियोंको, जितना खुद मैं जाननेकी आशा कर सकता हूँ, उसकी अपेक्षा अधिक जानते हैं। उनका उत्तर यह है:

> पत्र-लेखकका खयाल है कि बंगालमें खादीके प्रचारकी वास्तविक कठिनाई रुईकी ऊँची कीमत है। जिस इलाजका सुझाव दिया गया है वह है कपासकी खेती शुरू करना तथा उसे प्रोत्साहन देना।
>
> बंगालमें निश्चित रूपसे यह कठिनाई है कि वहाँ कपास सभी जगह पैदा नहीं की जाती। लेकिन एकमात्र यही कठिनाई नहीं है और न ही यह कोई गम्भीर कठिनाई है। मैंचेस्टर अपने कारखानोंके लिए रुई अमरीका और बम्बईसे खरीदता है और उनका तैयार कपड़ा भारतको भेजता है। निश्चय ही बंगालको जितनी रुई चाहिए उतनी वह भारतकी किसी भी रुईकी मण्डीसे

१. लगता है कि यह पत्र ३ मई, १९२५ को चाँदीवालाको लिखे पत्रके बाद लिखा गया था; उसके बादका रविवार १० मईको पड़ा था।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

३. ११-५-१९२५।

खरीद सकता है। बंगालमें लाखों रुपयेकी कपास पैदा की जाती है तथा चटगाँव और कलकत्ताके बंदरगाहोंसे बाहर भेजी जाती है। बंगाल जितनी कपास पैदा करता है उसका एक हिस्सा भी घरोंमें सूत कातनेके लिए इस्तेमाल नहीं करता, वह अपनी चटगाँव और कोमिल्ला-रुई घरोंमें सूतकी कताईके लिए इस्तेमाल कर सकता है तथा उसके अलावा जितनी और आवश्यक हो, बिहार तथा उत्तर प्रदेशके बाजारोंसे खरीद सकता है।

खादीके प्रसारमें वास्तविक कठिनाई न तो रुईकी ऊँची कीमतें हैं और न कपासकी खेतीका न किया जाना। खादीके प्रसारके लिए आवश्यकता है सूत कातनेकी तथा खादीके इस्तेमालकी इच्छाकी तथा एक ऐसे संगठनकी जो इस इच्छाको बढ़ाये तथा उसकी पूर्ति करे।

वह आश्रम जहांसे लेखकने टिप्पणी भेजी है कपासको 'सस्ते' दामोंमें अर्थात् उचित बाजार-भावसे बेचनेका केन्द्र बनाया जा सकता है। आश्रम एक आदमीको कातने तथा धुननेका प्रशिक्षण देकर दक्ष बना सकता है तथा फिर पड़ोसकी बहनोंके सम्मुख इन कलाओंको प्रदर्शित करके यह बता सकता है कि अच्छी पूनियों तथा एक अच्छे चरखेसे सूत कातनेमें कितना आनन्द आता है। जब सूत कातना क्लेशप्रद हो जाता है तभी खादी-प्रसारकी काल्पनिक कठिनाइयाँ दिखाई पड़ती हैं।

यदि बंगालकी बहनोंको उन संस्थाओंकी सहायता मिले जिनके चरखा-विशेषज्ञ सेवा करनेमें रुचि रखते हैं तो फिर हर कठिनाई दूर हो जायेगी और फिर मैं किसानोंको बिना किसी प्रलोभनके कपासकी खेती करते भी देख सकता हूँ।

कातना एक मुख्य प्रक्रिया है। उसके पहले तथा बादमें दूसरे काम करने पड़ते हैं। कपासकी खेती करना, कपास ओटना तथा रुई धुनना पहले किये जाते हैं तथा सूत कातना और कपड़ा बुनना बादमें आते हैं। हमें अभी अपना ध्यान कुशलतापूर्वक धुनने, कातने, तथा बुननेतक सीमित रखना चाहिए। कुशल संस्थाओंके दृढ़ संकल्प कार्यकर्त्ताओं द्वारा किये गये गम्भीर प्रयत्नसे सभी कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी तथा बंगालमें सूत कातनेका प्रयोग सफल हो जायेगा। निकट भविष्यमें ही मैं ऐसा दिन देखनेकी आशा करता हूँ।

मैं इस उत्तरका पूर्ण समर्थन करता हूँ और साथ ही यह भी कहना चाहता हूँ कि सूत कातनेके लिए पुरुषोंमें भी उतने ही संगठनकी आवश्यकता है जितनी कि स्त्रियोंमें। बिना पुरुषोंके संगठनके स्त्रियोंसे सहयोग लेना अत्यन्त कठिन है। हम सूत कातनेवाली स्त्रियोंको पैसा लेकर सूत कातनेके लिए तभी संगठित कर सकते हैं जब हमारे पास स्वेच्छया सूत कातनेवालोंका दल हो। हम केवल उनके पतियों अथवा पिताओं अथवा भाइयोंके जरिये ही चरखेमें सुधारकी आशा कर सकते हैं। कार्यकर्त्ताओं-में ज्यादातर पुरुष हैं। अतः वे यह भी नहीं देख सकते कि स्त्रियाँ किस तरह कार्य

कर रही है। लेकिन कताईकी प्रदर्शनियोंको देखकर मैं कल्पना कर सकता हूँ कि पर्देके पीछे क्या हो रहा है। उनके चरखोंकी यदि सुचारु रूपसे देखभाल की जाये तो अबसे दुगुना सूत प्राप्त किया जा सकता है। इसका मतलब हुआ बहुत थोड़े ही प्रयाससे दूनी आमदनी। कभी-कभी कातनेवालोंको जर्जर चरखोंपर, जिनमें तकुओंके स्थानमें भारी छड़ें लगी हुई हैं, सूत कातते देखकर दुःख होता है। यदि चरखे मजबूत बनाये जायें तथा छड़ोंके स्थानपर उचित आकारके तकुए लगा दिये जायें तो तुरन्त दुगुना सूत मिलने लगे।

रही कपासकी बात, बंगालके सभी भाग इसके लिए उपयुक्त नहीं हैं। इसलिए किसी हदतक आयातकी जरूरत सदैव रहेगी। प्रत्येक नवीन उद्योगको संरक्षणकी जरूरत होती है। राज्यका संरक्षण हमें शायद अभी नहीं मिल सकता। इसलिए इसका उपाय केवल स्वेच्छया संरक्षण ही हो सकता है। और स्वेच्छया संरक्षणका एक तरीका पारिश्रमिकके रूपमें कुछ लिये बिना सूत कातना है। कांग्रेसकी कताई सदस्यताका एक यह भी ध्येय है। दूसरा तरीका रुई माँगना तथा गुजरातकी तरह पूनियाँ अथवा रुई आधी कीमतमें बेचना तथा उन लोगोंके सूतको आधी कीमतमें बुनवाना भी है जो अपनी आवश्यकताओं के लिए काफी सूत कात सकते हैं। मिलोंके साथ तुलना एक बेकारका कालाक्षेप है। कल्पना यह भी की जा सकती है कि जापान और मैन्चेस्टर हमारे पुनर्जीवित हो रहे घरेलू कताईके कुटीर उद्योगको नष्ट करनेके लिए अपना कपड़ा प्रायः मुफ्त दे दें। फिर भी ऐसे आदमी होंगे जो विदेशी अथवा मिलका कपड़ा मुफ्त लेना भी स्वीकार न करेंगे। ऐसे ही लोगोंके जरिये हम चरखेके प्रसारकी तथा उसे सफल बनानेकी आशा कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २१-५-१९२५

३९. भेंट : हरदयाल नागसे

चाँदपुर
[१२ मई, १९२५ से पूर्व]

गांधीजीसे बाबू हरदयाल नागने भेंट की और उन्होंने उनसे जो प्रश्न पूछे वे गांधीजी द्वारा दिये गये उत्तरोंके साथ इस प्रकार हैं:

प्रश्न : क्या आपका अब भी यही विश्वास है कि स्वराज्य बाहरसे नहीं आ सकता?

उत्तर : हाँ, यह मेरा पक्का विश्वास है।

तो फिर आपने दासके स्वराज्य-सम्बन्धी इस नये मतका खण्डन क्यों नहीं किया कि वह उपहारके रूपमें प्राप्त होगा और अनिवार्यतः साम्राज्यके अन्तर्गत ही रहेगा?

मैं नहीं समझता कि श्री दासने फरीदपुरके अपने अध्यक्षीय भाषणमें ऐसी कोई बात कही है। आपने उस भाषणका जो अर्थ समझा है, उससे बिलकुल ही भिन्न मैंने

समझा, क्योंकि देशबन्धु दास यह नहीं कहते कि स्वराज्यका ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत रहना अनिवार्य है। इसके विपरीत, वे इस सूत्रपर दृढ़ हैं कि 'स्वराज्य हो सके तो साम्राज्यके अन्तर्गत और यदि जरूरी हुआ तो उसके बाहर भी।'

क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि कुछ लोग केवल प्रशासनका बाहरी रूप-रंग बदलनेकी कोशिशमें हैं, वे उसका वास्तविक स्वरूप बदलनेकी कोशिश नहीं कर रहे हैं।

मैं जानता हूँ कि कुछ लोग केवल उसका रूप-रंग ही बदलना चाहते हैं, वास्तविक स्वरूप नहीं।

मेरा कुछ ऐसा खयाल है कि स्वराज्यवादी लोग ऊँचे पद हथियानेवाले वर्गोंमें एक और वर्ग जोड़ देनेकी कोशिश कर रहे हैं। इस नये वर्गको थोड़ी-बहुत सत्ता हस्तान्तरित कर दी जायेगी, जो वास्तवमें सत्ता होगी ही नहीं।

मुझे ऐसी आशंका नहीं है और न मेरा ऐसा विश्वास ही है। जहाँतक मैं देशबन्धु दास और पण्डित मोतीलाल नेहरूको जानता हूँ, मुझे पूरा यकीन है कि वे प्रशासनके ऊपरी रंग-रूप बदल दिये जानेसे सन्तुष्ट होनेवाले व्यक्ति नहीं हैं।

उदाहरणके तौरपर मैं कलकत्ता निगमका दृष्टान्त सामने रखता हूँ। यथासम्भव उसके प्रत्येक विभागमें स्वराज्यवादी ही भरे हुए हैं। मेरा खयाल है कि स्वराज्यवादी लोग प्रान्तीय और स्थानीय प्रशासनको महज इसलिए अपने दलके अधीन कर लेना चाहते हैं कि उसके सब पदोंपर वे स्वराज्यवादियोंको नियुक्त कर सकें।

मैं नहीं जानता कि कलकत्ता निगममें क्या हो रहा है।

मेरा तथा अन्य बहुतेरे लोगोंका खयाल है कि स्वराज्यका विकास देशके भीतरसे हो [और धीरे-धीरे] होना चाहिए और उसके निर्माणका आधार गाँव होने चाहिए एवं उसकी आधारशिला एकमात्र चरखा ही हो सकता है। क्या आप मेरे इस विचारसे सहमत हैं?

मैं आपके विचारका अक्षरशः अनुमोदन करता हूँ। लेकिन हमें लगता है कि स्वराज्यवादियोंकी असहानुभूतिके कारण हमारा काम बहुत कठिन हो गया है। बंगालमें प्रायः सभी कांग्रेसी संस्थाएँ उनके हाथमें हैं और वे चरखेकी उपयोगिताको मानते ही नहीं हैं। ऐसी परिस्थितिमें प्रान्तीय या जिला संगठनोंके अभावके फलस्वरूप चरखेको बड़ा नुकसान पहुँच रहा है।

क्या आप चरखा और खादी-आन्दोलनके हितकी दृष्टिसे कोई अलग संगठन खड़ा करनेके विचारको पसन्द करेंगे?

मुझे यदि पता चले कि स्वराज्यवादी लोग चरखेमें विश्वास नहीं रखते तो मुझे बहुत दुःख होगा। मैं यह तो जानता हूँ कि उनमें से कुछ लोगोंका चरखेपर उतना विश्वास नहीं है जितना आपको और मुझे है, लेकिन जहाँतक मुझे मालूम है, मुझे एक भी स्वराज्यवादी ऐसा नहीं मिला जिसने चरखेके प्रति अपनी अश्रद्धा व्यक्त की हो। मान लीजिये कि वे चरखेमें कतई विश्वास नहीं करते तो भी मैं आपके द्वारा निकाले

गये इस निष्कर्षको नही समझ पा रहा हूँ कि उनकी सहानुभूति आपकी अथवा मेरी प्रगतिमें बाधा कैसे डाल रही है। इसके विपरीत आपको और मुझको उनकी उदासीन मनोवृत्तिके कारण और अधिक प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए मैं चरखेके विकासके लिए अलगसे संगठन बनाना तबतक जरूरी नही समझता, जबतक स्वराज्यवादी लोग चरखेका विरोध नहीं करने लगते।

क्या आप इस तथ्यको स्वीकार करते हैं कि अपने-अपने कामकी हदतक कांग्रेस-दल और स्वराज्यवादी दल एक-दूसरेसे मिलकर नहीं चल रहे हैं?

मैं इसे सही नही मानता। लेकिन अगर दोनों परस्पर सद्भावनासे न चल रहे हों तो स्वराज्यवादियोंकी अपेक्षा मैं इसमें अपरिवर्तनवादियोंका दोष अधिक मानूँगा। केवल इसलिए कि गैर-स्वराज्यवादियोंको स्वराज्यवादियोंके रास्तेमें रोड़े अटकानेका कोई भी कारण नही है। मेरा खयाल है कि कमसे-कम उन्होंने तो अपना मार्ग अन्तिम रूपसे चुन लिया है। अब उन्हें चाहिए कि अपने फैसलेपर अडिग रहें और उसीके अनुसार कार्य करे।

लेकिन आप तो दोनों दलोंके विधिवत् मान्य नेता हैं। इस बातको ध्यानमें रखते हुए क्या आपका कर्त्तव्य इतनेसे ही पूरा हो जाता है कि आप किसी एक दलको दोषी ठहरा दें?

हाँ; अवश्य, क्योंकि भले ही मैं नामके लिए दोनों दलोंका प्रधान होऊँ, पर मैं स्वयं गैर-स्वराज्यवादी दलका व्यक्ति हूँ। इसलिए गैर-स्वराज्यवादियोंको अधिक दोषी ठहरानेका मुझे हक है।

निश्चय ही हममें से बहुतोंको व्यक्तिगत रूपसे स्वराज्य हासिल करनेके साधन रूपमें अहिंसात्मक असहयोगपर पूर्ण विश्वास है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि स्वराज्यवादी लोग केवल अपने वर्ग अथवा दलके हित साधनके विचारसे असहयोगकी निन्दा कर रहे हैं और वे सहयोगका अपना मंशा भी सूचित कर चुके हैं — हाँ, यह जरूर है कि उन्होंने सहयोगके लिए कुछ शर्तें लगाई हैं। परन्तु वे शर्तें ऐसी हैं जो देशके खयालसे महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इन हालतोंमें श्री दासने फरीदपुरमें अपना अध्यक्षीय भाषण देते हुए असहयोगको असफल बताया है; आपने अहिंसा और सत्यके पालनपर जोर तो दिया लेकिन देशबन्धु दासके प्रहारसे असहयोगकी रक्षा करनेके लिए एक भी शब्द नहीं कहा। क्या आप इस सम्बन्धमें कुछ प्रकाश डालेंगे?

श्री दासके भाषणमें मुझे असहयोगपर कोई प्रहार दिखाई नहीं दिया। इसलिए असहयोगपर कुछ कहना प्रस्तुत विषय नही था। इसके अलावा चूँकि असहयोगके स्थगन-का प्रस्ताव बेलगाँवमें मैंने ही रखा था, मैंने असहयोगके बारेमें कांग्रेसके मंचसे एक भी शब्द जान-बूझकर नही कहा है। लेकिन मेरी निजी राय सारे संसारको मालूम है और सहयोगसे मेरा अलग रहना मेरे विचारोंका स्पष्ट परिचायक है।

यह ठीक है कि फरीदपुरमें आपने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षकी हैसियतसे भाषण नहीं दिया था, अपने व्यक्तिगत रूपमें दिया था और आपने वहाँ

जिन शब्दोंका प्रयोग किया वे थे अहिंसा और सत्यनिष्ठा। लेकिन असहयोगके बारेमें आपने एक भी शब्द नहीं कहा। मेरे खयालसे अहिंसा असहयोगके बिना अर्थहीन है। कायरतामें भी तो अहिंसा रहती है। यदि अहिंसात्मक असहयोगपर आपका विश्वास दृढ़ है तो आप किसी स्वराज्यवादीके उसके विरुद्ध बोलनेका प्रतिवाद किये बिना कैसे रह सकते हैं ?

जैसा कि मैंने आपको बताया है, जहाँतक मुझे मालूम है, देशबन्धुके भाषणमें असहयोगके विरुद्ध एक शब्द भी न था। फिर हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मैं कांग्रेसके सिद्धान्तके सम्बन्धमें बोल रहा था। कांग्रेसके सिद्धान्तमें असहयोगका कोई जिक्र नहीं है। "शान्तिपूर्ण और वैध उपायों" का उल्लेख उसमें अवश्य है; मैंने अपने भाषणमें इतनी सावधानी अवश्य बरती थी कि अपना आशय इन दोनों शब्दोंके साथ अहिंसा और सत्याचरणका विशेषण जोड़कर प्रकट किया था।

आपने फरीदपुरमें घोषणा की थी कि आपने मोटे तौरपर देशबन्धु दासको अपना वकील मान लिया है और उन्हें अधिकार दे दिया है कि वे कौंसिलोंमें जो-कुछ करना चाहें कर सकते हैं। कोई भी व्यक्ति इसका यही निष्कर्ष निकाल सकता है कि कौंसिलमें वे जो-कुछ करते हैं मुख्यतया आपकी ओरसे करते हैं; और वे वहाँ केवल आपके मुख्तार हैं। मालिक और मुख्तारके दस्तूरके मुताबिक आपके कथनका ऐसा अर्थ निकालनेके लिए किसीको भी दोष नहीं दिया जा सकता। क्या बात ऐसी ही है ? देशबन्धु दास कौंसिलमें जो-कुछ भी करते हैं, क्या आप उसका समर्थन करते हैं ?

जब मैंने देशबन्धु दास या स्वराज्यवादियोंके 'एजेन्ट' होनेकी बात कही तब उस आयरिश व्यक्तिके लहजेमें कही थी जिसने अपनेको साम्राज्यका एक मालिक बताया था। मैंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस नामकी व्यावसायिक पेढ़ीके एक हिस्सेदारकी हैसियतसे वह बात की थी। चूंकि कांग्रेसने स्वराज्यवादियोंको अपना कौंसिल कार्यक्रम चलानेका अधिकार दे दिया है। इसलिए मैं समझता हूँ कि मेरा स्वराज्यवादियोंको कौंसिल सम्बन्धी काम करनेके लिए अपना मुख्तार बताना कोई अनुचित कार्य नहीं हुआ। किन्तु इस तर्कके आधारपर प्रान्तीय कौंसिलोंमें या विधान-परिषदोंमें बरती जानेवाली उनकी नीतिके हरएक नुक्तेका समर्थन करनेकी जरूरत नहीं है। एक बुद्धिमान और कार्यकुशल व्यक्तिकी तरह एक बार अपने मनपसन्द अभिकर्त्ताओंको मुख्तारनामा दे देनेके बाद, मैं इस बातकी व्यर्थ चिन्ता नहीं करता कि वे वहाँ क्या कर रहे हैं।

यदि स्वराज्यवादी लोग नौकरशाहीसे किसी समझौतेके आधारपर कुछ रियायत प्रानेमें सफल हो जाते हैं तो क्या आप उस समझौतेमें साझेदार होंगे ?

ओह ! जब नौकरशाहीके साथ हुए किसी समझौतेकी शर्तें सामने आयेंगी, तब मुझे उन शर्तोंपर विचार तो करना ही होगा। सरकारसे किसी भी प्रकारका समझौता करनेके लिए मैंने किसी भी व्यक्तिको मुख्तारनामा नहीं दे रखा है। इसलिए अन्य किसी कांग्रेसीकी तरह मैं भी राष्ट्रके सामने स्वीकृतिके लिए पेश किये जानेवाले समझौतेकी विवेचना स्वयं करनेका अधिकार अपने लिए सुरक्षित रखता हूँ।

क्या आप प्रान्तीय स्वायत्त-शासनसे देशबन्धु दासका जो अभिप्राय है, उसे समझते हैं?

मै अनुमान लगा सकता हूँ।

आपका अनुमान क्या है?

मै उसका वही अर्थ मानता हूँ जो कोषमे दिया हुआ है।

क्या इस मुद्देपर मैं आपसे एक स्पष्ट उत्तरकी आशा नहीं कर सकता?

यही इसका उत्तर है; क्योंकि मैंने फरीदपुरमे दिये गये देशबन्धुके भाषणका बहुत ही बारीकीसे अध्ययन किया है। वहाँ उन्होंने इस विषयकी विस्तारसे चर्चा नही की थी। इसलिए मुझे प्रान्तीय स्वायत्त-शासनका वही सामान्य अर्थ लगानेका अधिकार है जो अंग्रेजी भाषामें माना जाता है।

क्या फरीदपुरके भाषणका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि देशबन्धु दासने प्रान्तीय स्वायत्त-शासनके सम्बन्धमें अपने विचार बदल दिये हैं?

मै ऐसा नही समझता। निश्चय ही मुझे ऐसा नहीं लगा।

तो फिर वे अपने अध्यक्षीय भाषणमें उन शब्दोंके इस्तेमालसे कतराये क्यों?

क्या इस विषयपर अर्थात् प्रान्तीय स्वायत्त-शासनपर उन्होंने जोर दिया था? इसका वहाँ कोई अवसर ही नही था। उन्होंने तो स्वराज्यपर ही जोर दिया था; और स्वराज्य एक ऐसा शब्द है जो मेरी दृष्टिमें अधिक व्यापक है, क्योंकि उसमें प्रान्तीय स्वायत्त-शासनके अतिरिक्त और भी बातें आ जाती हैं।

लेकिन क्या आप हमें इसका कारण बतला सकते हैं कि जिस शब्दका प्रचार वे लगातार करते आये हैं उस शब्दको जबानपर न लानेके बारेमें उन्होंने इतनी सतर्कता क्यों बरती?

महज इसलिए कि वे उससे भी अधिक प्रचलित और व्यापक शब्दका प्रयोग कर रहे थे।

क्या आप अन्दाज लगा सकते है कि स्वराज्यवादियोंके कौंसिलोंमें किये जाने-वाले कार्यका अन्तिम फल क्या होगा?

मुझे अन्दाज लगानेकी जरूरत नही है, क्योकि जब कभी मैं यह जानना चाहूँगा कि उन्होंने क्या किया है तब मैं अपने पास रखी हुई समाचारपत्रोंकी फाइलें देख लूँगा। और फिर, ऐसे सारे कार्योंका मूल्य आँकनेके लिए मेरे पास अपना एक अलग मापदण्ड है। और मैं जानता हूँ कि उनके द्वारा कौंसिलोंमें किया गया कार्य उस कामसे किसी भी तरह कमोवेश न होगा जो हम और आप कौंसिलोंके बाहर रहकर गाँवोंमें कर रहे हैं। चूँकि जो लोग कौंसिलोंमें गये हैं उन्होने घोषणा की है, वह की भी जानी चाहिए थी कि उनका बल जनताके खुदके किये कामपर और उसके द्वारा स्वशासनके लिए पैदा की गई शक्तिपर निर्भर करता है। मेरा सुझाव है कि आप और अन्य सभी लोग इस मापदण्डको स्वीकार कर लें। उस हालतमें हमें समाचारपत्रोंकी फाइलें नही उलटनी पड़ेंगी और न अटकलबाजीके निरर्थक खेलमें समय बरबाद करना पड़ेगा।

क्या आप यह महसूस नहीं करते कि आपने स्वराज्यवादियोंको जो बहुत अधिक ढील दे रखी है, असहयोगको उसके कारण सबसे ज्यादा क्षति पहुँच रही है?

मैं ऐसा कतई नहीं समझता, मेरी धारणा तो यह है कि उसे क्षति पहुँचनेका कारण असहयोगियोंकी कमजोरी है।

क्या आपको मालूम है कि स्वराज्यवादियोंने अभीतक अपने तरीके नहीं बदले हैं?

कौनसे तरीके?

उनके अपने तरीके और काम करनेकी नीति। मैं इसका एक उदाहरण देता हूँ। क्या आप फरीदपुरमें बंगाल प्रान्तीय सभाके अध्यक्ष-पदपर प्रफुल्लचन्द्र रायके निर्वाचनके बावजूद किसी दूसरेको प्रतिष्ठित करनेके बारेमें कुछ जानते हैं?

मैं इसके बारेमें कुछ नहीं जानता। क्या हुआ था?

निर्वाचनके समय डॉ० राय दूसरे नम्बरपर और श्री बी० एम० सस्मल प्रथम निर्वाचित हुए थे। श्री सस्मलके त्याग-पत्र दे देनेपर, डॉ० रायका निर्वाचन एक तरफ रखकर श्री दासको निर्वाचित कर लिया गया था। क्या आपको इसके बारेमें कोई जानकारी है?

मैं इसके बारेमें कुछ नहीं जानता।

यदि मैं इसे स्वराज्यवादियोंके तौर-तरीकोंके एक दृष्टान्तके रूपमें पेश करूँ तो आप क्या कहेंगे?

मैं इसके बारेमें स्वराज्यवादियोंकी बात सुने बगैर और पूरे तथ्य जाने बगैर कोई राय नहीं दे सकता।

क्या आप तथ्योंकी जांच करनेको राजी हैं?

जो बात खत्म हो चुकी है उसपर मैं समय बरबाद नहीं करूँगा।

मैं यह मामला स्वराज्यवादियोंके तौर-तरीकोंके एक स्पष्ट उदाहरणके रूपमें आपकी जानकारीमें ला रहा हूँ। इसपर आपका क्या कहना है?

मैं उनके तौर-तरीकोंके बारेमें कुछ भी नहीं जानता। किसी मामलेकी जाँच किये बिना मैं कोई राय भी नहीं दे सकता; क्योंकि मैं स्वराज्यवादियोंके या किसीके भी बारेमें काजी नहीं बनना चाहता; खासकर वहाँ, जहाँ उसकी कोई जरूरत न हो।

जब आप देखते हैं कि स्वराज्यवादियोंने अभीतक अपने रंग-ढंग नहीं बदले हैं तो क्या आप विशुद्धिवादियोंको उनकी अक्षमताके लिए दोषी ठहरा सकते हैं?

पहली बात तो यह है कि आप यह माने ले रहे हैं कि स्वराज्यवादियोंके तौर-तरीके आपत्तिजनक हैं। इसलिए आपको इस बारेमें मुझे सन्तुष्ट करना है। दूसरे, जिन लोगोंको आपने विशुद्धिवादी कहा है, किस अधिकारसे कहा है, इसका पता मुझे नहीं है —उन्हें मैंने उनकी अक्षमताके लिए दोषी नहीं ठहराया है। लेकिन अपने उद्देश्यमें विश्वासके अभावका दोष उनपर मैंने जरूर लगाया है। और यदि तर्कके लिए ऐसा मान भी लें कि स्वराज्यवादियोंके तरीके आपत्तिजनक हैं तो उससे विशुद्धिवादियोंकी

शुद्धताको क्या लेना-देना है? यदि मेरे चारों ओर संसार अशुद्धिमय है तो क्या मुझे भी अशुद्ध हो जाना चाहिए। क्या ठीक वही समय हमारे लिए अपनी शुद्धताकी शक्ति-परीक्षाका नही है? मैं तो केवल इतना ही और कहना चाहूँगा कि विशुद्धि-वादियोंने अपने दावेके फलितार्थोको ठीकसे नहीं समझा है। यदि उन्हें अपने दावे सही सिद्ध करने हैं तो उन्हें शिकवा-शिकायत नहीं करनी चाहिए; उन्हें संसारके किसी भी व्यक्तिमें दोष नहीं खोजना चाहिए, फिर उनके साथ तो बिलकुल ही नही जिनके साथ वे अभीतक सहयोगीके रूपमें काम करते आये हैं। बल्कि उन्हें सामने आनेवाली बाधाओंका मुकाबिला शान्तिके साथ और दृढतापूर्वक करना चाहिए और परीक्षाकी घड़ीमें अधिकसे-अधिक तेजस्वी बनना चाहिए।

स्वराज्यवादियोंका वर्तमान रुख क्या खुली दुश्मनीके रुखसे भी ज्यादा बुरा नहीं है?

यदि चरखेके प्रति स्वराज्यवादियोके दिलोंमें सचमुच ही श्रद्धा नहीं है तो मैं यह ठीक मानता हूँ कि भीतर ही भीतर उसका विरोध करनेकी अपेक्षा खुले तौरपर विरोध करना कही बेहतर होगा।

यदि स्वराज्यवादी वास्तवमें चरखेके प्रति उपेक्षाभाव रखते हैं तो क्या चरखे और खद्दरके लिए एक पृथक् संगठनका होना उचित नहीं होगा?

हाँ, अवश्य।

यदि ऐसा है तो फिर क्या एक नये ही अखिल भारतीय असहयोग संगठनकी बात सोचनेका समय नहीं आ गया है?

मैं समझता हूँ कि अभी वह समय नही आया है। इस कामके बारेमें कोई निश्चित मत प्रकट करने या कोई निश्चित कदम उठानेसे पहले हमें यह पूरा वर्ष तो साथ-साथ काम करके देख ही लेना चाहिए।

बहुतेरे कट्टर असहयोगी स्वराज्यवादियोंके साथ काम करनेमें परेशानी महसूस करते हैं। क्या आप इसका कोई दूसरा हल सुझा सकते हैं?

किसी भी निष्ठावान् असहयोगीको स्वराज्यवादियोंके साथ काम करनेमें परेशानी महसूस नही करनी चाहिए, क्योकि यदि उसे उनके साथ कौंसिलमें काम नही करना है तो स्वराज्यवादीके साथ काम करनेका इसके सिवाय और क्या अर्थ है कि चरखेका काम साथ मिलकर किया जाये। मेरा खयाल है कि एक खरा असहयोगी वाइसराय तक के साथ काम करनेको तत्पर रहेगा बशर्ते कि वाइसराय महोदय बराय मेहरबानी चरखा चलाने बैठ जायें।

लेकिन महात्माजी, आप तथ्योंको अनदेखा नहीं कर सकते; वे अनुकूल नहीं हैं।

तो फिर मैं कहूँगा कि वे असहयोगी ही नहीं हैं, क्योंकि वे असहयोगके मर्मसे अपरिचित हैं। असहयोग किसी व्यक्तिकी कृतियोंसे किया जाता है, खुद व्यक्तिसे नहीं।

हम आपके विचारोंको समझते तो हैं परन्तु सचाई यह है कि हम (उनके साथ काम करनेमें) परेशानी महसूस करते हैं। वे हमारे काममें अड़चनें पैदा कर रहे हैं।

वे अड़चनें पैदा कर रहे हैं, उस आरोपका समर्थन करनेवाला एक भी वक्तव्य मेरी नजरसे नहीं गुजरा है। यदि वे सूत नहीं कात रहे हैं, तो यह कोई अड़चन नहीं है। अड़चन पैदा करना तो तब माना जायेगा, जब आप गांवोंमें जाकर जनतासे सूत कातनेको कहें कि सूत कातना बिलकुल बेकार है। लेकिन ऐसा आरोप किसी एक भी स्वराज्यवादीपर नहीं लगाया जा सकता।

क्या आप नहीं जानते कि उन्होंने गांवोंके पुनर्गठनके लिए जो योजना रखी है, उसमें चरखेको कोई स्थान नहीं दिया है।

मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि फरीदपुरमें खद्दरकी प्रदर्शनीकी व्यवस्था स्वराज्यवादियोंने ही की थी और वह शुद्ध चरखा प्रदर्शनी थी। देशबन्धु दासने अपने अध्यक्षीय भाषणमें कांग्रेसके अन्दर ऐसे रचनात्मक कार्यक्रमपर बल दिया है और कहा है कि उसके बिना हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते। मैं यह भी कह दूं कि मैं कमसे-कम एक ऐसे स्वराज्यवादी परिवारको जानता हूँ जो कताईके प्रति उतना ही निष्ठावान है, जितना कि मैं या आप।

आपने फरीदपुर परिषद्का जो उल्लेख किया है उससे मुझे स्वराज्यवादियोंके एक और आपत्तिजनक तरीकेकी याद आ गई। उन्होंने बंगालमें असहयोग आन्दोलन समाप्त करनेके लिए आपको आमन्त्रित किया था, लेकिन उन्हें निराशा हुई।

आप बहुत ही सन्देहशील, बहुत ही पस्तहिम्मत आदमी हैं।

लेकिन आदमीके मनमें कुछ होता है, और विधाताके मनमें कुछ और। श्री देसाईने दिल्लीमें मुझे लिखा कि महात्माजी अभी शीघ्र ही बंगाल नहीं जायेंगे। आपने जब फरीदपुर परिषद्में शरीक होनेका निमन्त्रण स्वीकार किया तब सम्मेलनके आयोजकोंने ऐसा नहीं सोचा था कि आप बंगालका दौरा भी करेंगे। लेकिन जब आपने हमारा निमन्त्रण स्वीकार कर लिया, तब वे चक्करमें पड़ गये। हमारे लिए तो वह भगवानकी देन थी। क्या आप नहीं जानते कि वे नहीं चाहते थे कि आप बंगालका दौरा करें?

मेरा खयाल है कि आप जरूरतसे कहीं ज्यादा सन्देहशील हैं।

हां, मेरी मनोवृत्ति ऐसी ही है।

आप बिलकुल ही गलत सोच रहे हैं; क्योंकि मेरे दौरेका प्रबन्ध स्वराज्यवादियों और गैर-स्वराज्यवादियों — दोनोंने मिलकर किया है। स्वराज्यवादी ही मुझे चटगांव और नवाखली ले जा रहे हैं, क्योंकि चटगांव और नवाखली सतीशबाबूके द्वारा बनाये गये कार्यक्रममें नहीं थे।

क्या आपने इस बातपर गौर नहीं किया कि फरीदपुरमें कट्टरपंथी असहयोगियों-की अनुपस्थितिकी ओर सबका ध्यान जाता था?

मैंने खयाल नहीं किया। वे शायद अनुपस्थित थे। किन्तु यदि ऐसा हुआ है तो यह उनका दोष है।

क्या आप इसका कोई कारण बता सकते हैं?

नहीं। इतना ही कह सकता हूँ कि यदि वे अनुपस्थित थे तो यह उनका ही दोष था।

मेरे खयालसे कि उनकी अनुपस्थितिका कारण यह है कि अपना अस्तित्व बनाये रखनेका उनके पास यही एक रास्ता रह गया था।

मेरा खयाल है कि यह मिथ्या आरोप लगाना है।

क्या आप महसूस करते हैं कि रचनात्मक कार्यमें विश्वास रखनेवाले और कौंसिल-प्रवेशके रास्तेमें अड़चन पैदा करनेमें कतई विश्वास न रखनेवाले लोगोंका यह अस्वाभाविक मेल जनताके मनमें एक राजनीतिक अविश्वास पैदा कर रहा है?

जनताका मन केवल कार्यसे प्रभावित होता है। ठोस कार्यके अतिरिक्त उसपर अन्य किसी भी चीजका प्रभाव नही पड़ता। ठोस काम और आत्मत्यागको देखते ही जनताका मन सहज ही प्रभावित हो जाता है; अन्यथा जनताका मन कुम्भकर्णकी तरह सो जाता है, वह कुछ भी नहीं सुनता।

क्या आपका विचार है कि जनताको शिक्षा देनेके लिए किसी राजनीतिक शिक्षाकी जरूरत है?

हाँ, और चरखा ही वह राजनीतिक शिक्षा है।

यदि ऐसा है तो वह शिक्षा देनेका काम किसे करना चाहिए?

निस्सन्देह उन ही लोगोंको जिनके मनमें उसके प्रति अभीतक जीवन्त आस्था बनी हुई है। ऐसे ही लोगोंको जनताको शिक्षित करनेका काम करना चाहिए।

क्या उनको इसके लिए किसी संगठनकी दरकार नहीं?

मैं अभी कलकत्तासे आ रहा हूँ। मैंने वहाँ देखा है कि दो नवयुवक आर्थिक या अन्य तरहकी किसी भी मददके बिना अपना काम बिलकुल ठीक-ठीक, कुशलतापूर्वक और व्यवस्थित रूपसे कर रहे हैं। उनको किसी संगठनकी जरूरत नही। चरखेकी यही खूबी है।

क्या अपनेको सिंहके गुणोंसे युक्त माननेवाले, हमारे शासकोंमें हृदय-परिवर्तन भी सम्भव है?

उनमें हृदय परिवर्तन सम्भव है, अन्यथा असहयोगका कोई उपयोग नही। पहले तो असहयोगियोंमें हृदय परिवर्तन होने दीजिए, फिर शासकोंके हृदयोंमें परिवर्तन होगा ही। मेरे मनमें इस सम्बन्धमें कोई संशय नही है।

मैं आपका ध्यान पशु-जगतकी ओर आकर्षित करता हूँ। क्या आप समझते है कि शेर और भेड़ सचमुच एक घाट पानी पी सकते है?

नही; लेकिन इस उदाहरणसे मानव-जगतके बारेमें कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता क्योंकि मानव तो आखिर मानव रहेगा, फिर चाहे वह सूत कातनेमें विश्वास करता हो या कौंसिलोंके काममें बाधाएँ पैदा करनेमें अथवा चाहे वह निरंकुश शासक और गुलामोंकी प्रथामें विश्वास करता हो, चाहे मानव समाजकी बन्धुत्व भावनामें।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १४-५-१९२५

मेरे खयालसे कि उनकी अनुपस्थितिका कारण यह है कि अपना अस्तित्व बनाये रखनेका उनके पास यही एक रास्ता रह गया था।

मेरा खयाल है कि यह मिथ्या आरोप लगाना है।

क्या आप महसूस करते हैं कि रचनात्मक कार्यमें विश्वास रखनेवाले और कौंसिल-प्रवेशके रास्तेमें अड़चन पैदा करनेमें कतई विश्वास न रखनेवाले लोगोंका यह अस्वाभाविक मेल जनताके मनमें एक राजनीतिक अविश्वास पैदा कर रहा है?

जनताका मन केवल कार्यसे प्रभावित होता है। ठोस कार्यके अतिरिक्त उसपर अन्य किसी भी चीजका प्रभाव नहीं पड़ता। ठोस काम और आत्मत्यागको देखते ही जनताका मन सहज ही प्रभावित हो जाता है; अन्यथा जनताका मन कुम्भकर्णकी तरह सो जाता है, वह कुछ भी नहीं सुनता।

क्या आपका विचार है कि जनताको शिक्षा देनेके लिए किसी राजनीतिक शिक्षाकी जरूरत है?

हाँ, और चरखा ही वह राजनीतिक शिक्षा है।

यदि ऐसा है तो वह शिक्षा देनेका काम किसे करना चाहिए?

निस्सन्देह उन ही लोगोंको जिनके मनमें उसके प्रति अभीतक जीवन्त आस्था बनी हुई है। ऐसे ही लोगोंको जनताको शिक्षित करनेका काम करना चाहिए।

क्या उनको इसके लिए किसी संगठनकी दरकार नहीं?

मैं अभी कलकत्तासे आ रहा हूँ। मैंने वहाँ देखा है कि दो नवयुवक आर्थिक या अन्य तरहकी किसी भी मददके बिना अपना काम बिलकुल ठीक-ठीक, कुशलतापूर्वक और व्यवस्थित रूपसे कर रहे हैं। उनको किसी संगठनकी जरूरत नहीं। चरखेकी यही खूबी है।

क्या अपनेको सिंहके गुणोंसे युक्त माननेवाले, हमारे शासकोंमें हृदय-परिवर्तन भी सम्भव है?

उनमें हृदय परिवर्तन सम्भव है, अन्यथा असहयोगका कोई उपयोग नहीं। पहले तो असहयोगियोंमें हृदय परिवर्तन होने दीजिए, फिर शासकोंके हृदयोंमें परिवर्तन होगा ही। मेरे मनमें इस सम्बन्धमें कोई संशय नहीं है।

मैं आपका ध्यान पशु-जगतकी ओर आकर्षित करता हूँ। क्या आप समझते हैं कि शेर और भेड़ सचमुच एक घाट पानी पी सकते हैं?

नहीं; लेकिन इस उदाहरणसे मानव-जगतके बारेमें कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता क्योंकि मानव तो आखिर मानव रहेगा, फिर चाहे वह सूत कातनेमें विश्वास करता हो या कौंसिलोंके काममें बाधाएँ पैदा करनेमें अथवा चाहे वह निरंकुश शासक और गुलामोंकी प्रथामें विश्वास करता हो, चाहे मानव समाजकी बन्धुत्व भावनामें।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १४-५-१९२५

विषयमें दो मत हैं। फिर भी मैं इस मामलेपर सावधानीके साथ विचार करूँगा। मैं नगरपालिकाको धन्यवाद देता हूँ कि उसने मद्यपानपर प्रतिबन्ध लगाया और अपने कर्मचारियोंको खद्दर पहननेके लिए कहा है। केवल खद्दर ही हमारे सब काम बना सकता है। खद्दरके बिना सविनय अवज्ञा असम्भव है। देशकी गरीबी दूर करनेके लिए चरखा चलाना आवश्यक है। यह आन्दोलन आत्मशुद्धिके लिए है। मैं ऐसी कोई बात नहीं कहूँगा जिसे मैं स्वयं नहीं करता।[1]

कुछ शब्द अंग्रेजीमें कहनेके लिए मुझसे अभी-अभी कहा गया। मैं जानता हूँ कि बंगालियोंको अंग्रेजीसे कितना मोह है। मैंने जो-कुछ कहा है उसके प्रत्येक शब्दका पर्याप्त रूपसे शुद्ध अनुवाद आपने अपनी मातृभाषा बंगलामें सुना है। मैं तो सोच भी नही सकता कि मैं एक ऐसी भाषाके माध्यमसे, जो आपके लिए भी उतनी ही विदेशी है जितनी कि मेरे लिए, आपको इससे अधिक आग्रहपूर्वक और स्पष्ट शब्दोंमें सत्यकी प्रतीति करा सकूँगा। किन्तु मुझे तो अपना काम करना है और यदि मैं अंग्रेजी भाषाके माध्यमसे ही कुछ लोगोंको खादी-भक्त बना सकूँ या कुछको, यदि वे पहलेसे ही अहिंसाकी शक्ति और मर्मके कायल नहीं हों और मैं उन्हें उसका कायल कर सकूँ तो मुझे जरूर ऐसा करना चाहिए। और इसलिए यदि मैं अब अंग्रेजीमें भाषण करके आपका समय लेता हूँ तो वह केवल उन लोगोंके सन्तोषके लिए जो चाहते हैं कि मैं अंग्रेजीमें बोलूँ। ऐसा करनेमें मेरा हेतु यह है कि यदि वे इस नितान्त सरल सत्यको जिसे मैं भारतकी जनताके सामने रखता आ रहा हूँ, किन्तु जिसे वह अबतक नहीं समझ सके हैं, उनको समझा सकूँ।

मेरे एक साथी कार्यकर्त्ताने कुछ वर्ष पूर्व चरखेके बारेमें लिखते हुए कहा था कि इसकी सादगीके कारण ही शिक्षित वर्ग इससे भयभीत है। उन्होंने यह बात कही थी और उनकी इस बातमें बहुत-कुछ सचाई है कि चरखेकी सादगीके कारण ही शिक्षित भारतीय उसके सौन्दर्य तथा उसके उदात्त अभिप्रायको समझनेमें असमर्थ हैं। चरखा यद्यपि एक इतनी सरल-सी चीज है, पर वर्षोंतक निरन्तर और गहराईसे विचार करनेके बाद मुझे इस बातका पूरा भरोसा हो गया है कि भारतके सामने अपने बहुतसे कष्टोंका निवारण करनेके लिए चरखा और खद्दरसे अधिक अचूक अन्य कोई उपाय नही।

हमारे प्यारे देशकी समस्याएँ इतनी विशाल और इतनी जटिल हैं कि वे एक अत्यन्त ही सरल उपचारके सिवा और किसी प्रकारसे हल नहीं होंगी। हमारी शिक्षा बड़ी ही पेचीदा और बेमेल किस्मकी रही है। इसके साथ हमें जो प्रशिक्षण मिला है उसने हमारे विचारोंको उलझाकर रख दिया है, हमारे मस्तिष्कको जड़ बना दिया है और जबतक हमारे सामने कोई भी चीज बड़ी गूढ़ बनाकर, जटिल रूपमें पेश नही की जाती तबतक उसमें निहित सत्यको हम देखनेके लिए तैयार नहीं होते।

१. यह अनुच्छेद १३-५-१९२५ के हिन्दूसे लिया गया है। बादका अंश १५-५-१९२५ के अमृत-बाजार पत्रिकामें दिये गये विवरणसे अनूदित है।

किन्तु यदि आप और गहराईसे सोचें, इससे भी अच्छा यह होगा कि आप अपने कमरेमें जायें और ईश्वरके सामने घुटने टेककर यह प्रार्थना करें कि वह आपका मार्गदर्शन करे तो वह आपको ठीक मार्गपर ले जायेगा और निश्चय ही आपको चरखेके पास बिठा देगा। हम बातें बहुत कर चुके हैं, हम भाषण दे चुके हैं, हम समाचारपत्रोंमें लिख चुके हैं, हम किताबें प्रकाशित कर चुके हैं, यहाँतक कि हम अनुसन्धान भी काफी कर चुके हैं; किन्तु बोलनेका युग, लिखनेका युग, भाषण देनेका युग लद गया है और वह अब लौटनेवाला नहीं है। कर्मका युग आ गया है। आपको भाषण देनेवाली कौमके विरुद्ध संघर्ष नहीं करना है, बल्कि जन्मजात कार्यकर्त्ताओंकी एक जातिके विरुद्ध संघर्ष करना है — ऐसी जाति जो झुकना नहीं जानती, ऐसी जाति जिसके पास दृढ़ निश्चय है और ऐसी जाति जो संसारके कुछ श्रेष्ठतम सैनिकोंसे बनी है। जो काम हम सबके सामने पड़ा है उसे किसी भी प्रकारकी कूटनीतिका सहारा लेकर नहीं किया जा सकता। आप जन-जागरण चाहते हैं, आप जनताका सहयोग चाहते हैं। आप चाहते हैं कि पार्षदगण अधिकारके साथ बोलें। इस समय उनके शब्दोंमें कोई शक्ति नहीं है; उनके प्रस्तावोंमें कोई बल नहीं है। इसका कारण यह नहीं है कि उनको बोलना नहीं आता। देशबन्धुने दिखा दिया है कि सरकारके प्रस्तावको और उसकी नीतिको गिराकर वे अपने बुद्धि-कौशलसे उसे किस प्रकार पराजित कर सकते हैं। किन्तु जबतक उनके पीछे जनताकी शक्ति न हो तबतक वे कुछ नहीं कर सकेंगे। आप और मैं, हममें से सभी तो कौंसिलोंमें नहीं जा सकते। मैंने बार-बार कहा है कि मैं कौंसिलोंमें विश्वास नहीं करता। लेकिन जो उनमें विश्वास रखते हैं, उनको मेरी ओरसे वहाँ जानेकी अनुमति है। मैं चाहता हूँ कि वे अधिकारयुक्त हों और सरकार उनकी बात आदर और ध्यानके साथ सुने और वे वहाँ जानेके पश्चात् अपनी हँसी न उड़वाएँ। ऐसा कैसे हो? ऐसा बड़ी-बड़ी सभाएँ करके नहीं होगा, प्रस्ताव पास करके नहीं होगा, प्रस्तावोंकी नीतिका समर्थन करके नहीं होगा, बल्कि ऐसा तभी होगा जबकि उन्हें कुछ शक्ति प्रदान की जाये। आप तबतक उन्हें शक्ति प्रदान नहीं कर सकते, जबतक कि आप स्वयं अपनेमें उस शक्तिका विकास नहीं कर लेते। हममें शक्ति नहीं है। जो व्यक्ति सरकारकी हिंसाका मुकाबला हिंसासे करनेका दम भरता हो, वह सामने आये। मैं कहता हूँ कि वह सरासर भूलपर है। दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें चाहे कुछ भी हुआ हो, लेकिन मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम हिंसाके जरिये स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते।

इसलिए मैंने अच्छी तरह सोच-समझकर ही अहिंसाका कार्यक्रम रखा है। मैंने ऐसा इस खयालसे नहीं किया कि यह एक धार्मिक कृत्य है, जैसा कि मैं उसे मानता हूँ, बल्कि इस खयालसे कि यह कार्य-साधक उपाय है। देशके लिए एकमात्र राजनीति यही है। जिसके पास जरा भी राजनीतिक समझदारी होगी वह इस नतीजेपर पहुँचे बिना न रहेगा कि हिंसाके साधनोंसे कोई काम सधनेवाला नहीं है। मैं उन लोगोंकी अधीरताको समझता हूँ, उनकी प्रशंसा भी करता हूँ जिनके हृदयोंमें देशको गुलामीकी बेड़ियोंसे मुक्त करनेकी तीव्र लालसा है किन्तु देशकी गुलामीकी बेड़ियोंको

काटनेके लिए मेरी आतुरता किसीसे भी कम नही है। किन्तु मैं अपनेको एक विवेकशील व्यक्ति मानता हूँ। मैं समझता हूँ कि मुझमें व्यावहारिक ज्ञान प्रचुर मात्रामें है। मै अपनेको एक ऐसा व्यक्ति मानता हूँ कि जिसने संसारको वहुत-कुछ देखा है। मैं अपनी किशोरावस्थासे ही संघर्ष करता आया हूँ — जन्मजात योद्धा हूँ। मैं लड़नेसे नही चूकता फिर चाहे मेरा वास्ता अपने भाई, मित्र, पत्नी, बच्चों या अपने सह-धर्मानुयायीसे ही क्यों न पड़ा हो; यदि किसी मुसलमानसे पड़ा तो उससे भी। किन्तु इस सम्पूर्ण अवधिमें मैंने यही देखा है कि इन तमाम लड़ाइयोंमें मेरा अस्त्र एक ही रहा है, अहिंसा।

मै अपनी पत्नीसे हिंसात्मक रीतिसे नहीं लड़ा, मैं अपने भाइयोंसे हिंसात्मक रीतिसे नहीं लड़ा, मैं मुसलमानोंसे हिंसात्मक ढंगसे लड़नेको तैयार नहीं हूँ और मै उन हिन्दुओंसे भी हिंसात्मक रीतिसे लड़नेका साहस नही करता जिनमें से कुछ अस्पृश्यताके प्रश्नपर मेरा विरोध कर रहे हैं। इसलिए मैं अनुभवकी इस निधिसे यह निष्कर्ष निकाल सकता हूँ कि हिंसाको अपनाकर मैं अंग्रेजोंसे भी नहीं लड़ूँगा। आपने मेरे किसी लेखमें पढ़ा होगा कि मेरे प्रयत्नोंके फलस्वरूप जितने अंग्रेज भारतके प्रति प्रेमभाव रखने लगे हैं उतने आजकी पीढ़ीके किसी भी अकेले व्यक्तिके प्रयत्नसे नही रख सके। मैं जानता हूँ कि यह एक वहुत वड़ा दावा है, यह गर्वोक्ति है, किन्तु यह एक विनयशील व्यक्तिका दावा है, और उसने यह दावा अत्यन्त विनम्रभावसे किया है। मै अनुभव करता हूँ कि यदि हमें अहिंसाके जरिये लड़ाई लड़नी है तो यह केवल शब्दोंके जरिये नहीं लड़ी जा सकती। अहिंसाको कार्यरूपमें परिणत करना होगा। भारतकी मुक्तिका एक ही उपाय है और वह है अनवरत कार्य। विना आरामके, विना विश्रामके, विना सुस्ताये, विना एक क्षणके लिए भी रुके, ठहरे, और इस वातमें दृढ़ विश्वास रखते हुए कि यह एक वहुत अचूक उपाय है। और यही एक उपाय है जिसे मैं उन छोटी-छोटी वालिकाओं, वालकों, वयस्क लोगों, कवियों और दार्शनिकों, संन्यासियों, राजनीतिज्ञों, विद्वान् प्राध्यापकों, भंगियों, महिलाओं, तथा स्वस्थ पुरुषोंके हाथोंमें सौप सकता हूँ। जो अति व्यापक एकमात्र उपचार आज मेरी समझमें आ रहा है, वह चरखा ही है। आप इस चरखेकी शक्तिको वढ़ाते जाइए और तवतक कातते जाइए जवतक ३० करोड़ व्यक्ति चरखा चलाने नहीं लग जाते। तव आप मुझे वतायें कि इसकी शक्ति कितनी होगी, और यह वतायें कि यह क्या नहीं कर सकेगा। क्या कोई ऐसी चीज नहीं है जिसके वारेमें हम यह दावा कर सकें कि यह हमारे लिए प्रतिष्ठाजनक है या हमारे सामर्थ्यके अन्दरकी चीज है। राजनीतिक जीवनके ४० वर्षोंके इस लम्वे और नीरस अर्सेमें हम दुनियाको एक भी काम पूर्णताके साथ सम्पन्न करके नहीं दिखा सके हैं। हमने अभीतक अपने सामने वहुतसे कार्यक्रम रखे। अव मैं राष्ट्रके सामने केवल एक ही कार्यक्रम रखता हूँ और उससे कहता हूँ कि वह पहले इस कार्यक्रमको पूरा कर दिखाये और इसके वाद ही अन्य किसी कार्यक्रमकी वात सोचे। मेरा कार्यक्रम यह है। चाहे खद्दर महँगा हो, चाहे खुरदरा और मोटा हो किन्तु हमें खद्दरके सिवा और कुछ नहीं पहनना

चाहिए। क्या यह कार्यक्रम असम्भव है? यदि खद्दर महँगा पड़ता है, तो इसके दो टुकड़े कर लें और आधेसे अपना तन ढँकें। आपका यह कृत्य जीवनकी बहीमें आपके जमा खातेमें लिखा जायेगा। यदि यह खुरदरा है, तो भारतकी खातिर उस खुरदरे कपड़ेको ही पहनिए। समझ लीजिए कि भारतकी गुलामी खुरदरेसे-खुरदरे खद्दरसे भी ज्यादा खुरदरी है, समझ लीजिए कि भारतकी कंगाली उस खुरदरेसे-खुरदरे खद्दरसे भी जो चटगाँवमें बनायी जा सकी है, कई-कई गुनी खुरदरी है। यदि आपके पास भारतके करोड़ों भूखे लोगोंके प्रति सहानुभूति है, यदि आपके पास कातनेकी इच्छा है, तो आप तबतक कातते जाइए जबतक आपके हाथ शक्तिहीन नहीं हो जाते और तबतक खद्दर ही पहनें जबतक कि आप मोटी खादीमें पसीने-पसीने नहीं हो जाते। यदि आप यह करेंगे तो आपको मालूम होगा कि मेरे स्वप्नका और आपके, स्वप्नका स्वराज्य क्षितिजपर उदय हो गया है और तब आप खुशीके मारे नाच उठेंगे।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १५-५-१९२५

४२. भाषण : विद्यार्थियोंके समक्ष, चटगाँवमें

१३ मई, १९२५

अच्छा, तब मेरा यही कहना है कि सच्ची राष्ट्रीय शिक्षाका आरम्भ कताईके शिक्षणसे होता है। जिस प्रकार इंग्लैंडमें प्रत्येक लड़का नाविकके कामकी शिक्षा लेता है, और बंगालमें आप लोगोंको स्वभावतः तैरना और पतवार चलाना आता है, उसी प्रकार हिन्दुस्तानके सात लाख गाँवोंकी रक्षाके लिए खेतीके अलावा सूत कातनेके धन्धेकी जरूरत है। अमरीकामें भी सहायक धन्धोंपर जोर दिया जाता है, यद्यपि वहाँ संयुक्त परिवारोंकी समस्या नहीं है और उनका अपना राज्य है। हिन्दुस्तानमें किसान खेतीके अतिरिक्त किसी दूसरे धन्धेसे थोड़ी कमाई किये बिना जीवित नहीं रह सकते और यह अतिरिक्त कमाई सूत कातनेसे ही हो सकती है। बुनाई अनुकूल नहीं आ सकती, क्योंकि उसमें बचा हुआ वक्त देनेसे ही काम नहीं चल सकता। मैं स्त्रियोंकी सभामें हो आया हूँ और उनको सूत कातनेकी व्यावहारिक शिक्षा दे आया हूँ। मेरा चरखा इस छोटी-सी थैलीमें है।[1] यह तकली आपको अधिक सुन्दर नहीं लगेगी। मेरे पास एक सुन्दर तकली थी, मैं उसे फरीदपुरमें कुमारी घोषको दे आया हूँ। वे वहाँके शिक्षा-विभागकी प्रधान हैं। उन्हें वह पसन्द आई है और उन्होंने मुझे यह लिखा है कि वे खुद सूत कातेंगी तथा अपने परिचितोंको भी कातना सिखायेंगी। आप जब गप्पें मारते हैं, मित्रोंसे मनोविनोद करते हैं और ज्यामिति सम्बन्धी प्रश्नोंपर विचार करते हैं तब भी इसको चला सकते हैं। हमारे यहाँ तो गडरिये इसे राह चलते-

१. यह उन्होंने अपनी तकली दिखाते हुए कहा।

चलते चलाते रहते हैं। उनकी निगाह अपनी भेड़ोंपर होती है और साथ ही तकली भी चलती रहती है। यदि आपकी समझमें मेरी दलील न आती हो तो आप सतीश बाबूसे पूछें। वे अपनी रासायनिक उद्योगशाला और उससे होनेवाली आमदनी छोड़कर इसमें पड़े हैं। वे आपको हिसाब लगाकर मेरी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह बता सकेंगे, क्योंकि उनका मस्तिष्क शोधशील है। यदि आपको यह लगता हो कि आपको अपने देशके भूखसे तड़पते हुए लोगोंकी खातिर यह दैनिक यज्ञ करना चाहिए तो आप इसे करनेमें लगें।

इतना कहनेके बाद गांधीजीने पूछा कि "बोलिये आपमें से कितनोंने मेरी बात समझी है?[1]" भाषण प्रारम्भ होनेसे पहले यह पूछनेपर कि कितनोंको कातना आता है, बहुत-से लोगोंने हाथ उठाये थे। और इस प्रश्नपर कि कितने कातते हैं, कोई हाथ नहीं उठा था। जब यह पूछा गया कि कितने लोग कातनेका वचन देते हैं, दस विद्यार्थियोंने ही हाथ उठाये। सप्रयोग भाषणके बाद यह पूछनेपर कि 'अब आपमें से कितने लोग कातनेका वचन देते हैं?' बीस-एक हाथ उठे। विद्यार्थियोंमें प्रामाणिकताकी चेतना कितनी बढ़ती जा रही है, इसका प्रमाण खोजने अन्यत्र जानेकी जरूरत नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २४-५-१९२५

४३. भाषण: व्यापारियोंकी सभा, चटगाँवमें

१३ मई, १९२५

व्यापारियोंसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमने हिन्दुस्तानको व्यापारियोंकी मार्फत खोया है और हम उसे उन्हींकी मार्फत वापस लेंगे। हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता शिक्षित वर्गकी मार्फत कभी नहीं मिलेगी। समस्त विश्वमें कहीं भी शिक्षित-वर्गकी मार्फत स्वतन्त्रताकी रक्षा हुई हो, यह हम नहीं जानते। देशकी रक्षा करनेवाले तो व्यापारी और सैनिक ही होते हैं। और फिर हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता लड़ाईसे नहीं गई है, केवल व्यापारसे ही गई है। इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ कि जब मुझे अपने काममें व्यापारियोंसे पूर्ण सहायता मिलेगी तब आप हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता मिली ही समझें। मेरी प्रार्थना है कि व्यापारी लोग खादी-प्रचारके सार्वजनिक सेवाकार्यमें पूरा योग दें। आप यज्ञके रूपमें आधा घंटा [नित्य] चरखा चलायें और शुद्ध खादी पहनें। मेरे एक दो करोड़पति मित्र खादी पहनते और सूत कातते हैं। आप भी ऐसा ही क्यों नहीं करते? आपसे तो मैं धन और बुद्धि दोनोंकी सहायता ले सकता हूँ। जो काम मैं कर रहा हूँ यदि उसे करनेका आप निश्चय करें तो आप

१. यहाँ ५०-६० विद्यार्थियोंने हाथ उठाये।

मुझसे अधिक काम कर सकते हैं। मेरी प्रार्थना है कि आप इस कार्यमें तन, मन और धन, तीनोंसे सहायता करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२५

४४. कर्नाटकमें खद्दर

बीजापुर जिलेमें खद्दर सस्ता करनेके लिए एक प्रयोग किया जा रहा है। उस प्रयोगके बारेमें श्रीयुत एच० एम० कौजलगीसे प्राप्त वर्णन मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ।[1]

[माँग-माँगकर] रुई इकट्ठा करनेका यह तरीका निश्चय ही सफल हो रहा है। श्री भरूचाने पूर्वीय खानदेशमें रुईके अच्छे परिमाणमें संग्रह किए जानेका समाचार भेजा है, वहाँ स्थानीय लोगोंके अतिरिक्त मारवाड़ियों और पारसियोंने भी रुई देनेमें हाथ बँटाया है। जिन अन्य स्थानोंमें इसी तरहके प्रयोग किए जा रहे हों, वहाँसे भी विवरण पाकर मुझे प्रसन्नता होगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-५-१९२५

४५. टिप्पणियाँ

बुनकरोंकी शिकायत

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी अहमदाबादके प्रस्तावको कार्यान्वित करनेके रूपमें जो सूत भेजा गया था उसके विषयमें एक कार्यकर्त्ता लिखते हैं:

> 'बुनकर इस बातकी शिकायत कर रहे हैं कि महीन सूतमें बट नहीं है। इसलिए ज्यादातर प्राप्त सूत बुनाईके कामका नहीं है। ऐसा लगता है कि कातनेवालोंके मनमें अच्छा सूत कातनेकी सावधानीकी अपेक्षा इस बातका श्रेय पानेकी इच्छा रही है कि उन्होंने सूत काता। मेरा खयाल है कि आपने वहाँ गुण्डियोंको जाँचा नहीं था। कुछ बुनकर तो तानेकी पाई कर लेनेके बाद भी ऐसे सूतको लौटा रहे हैं। उनकी दूसरी शिकायत गुण्डियोंके विभिन्न आकारोंके सम्बन्धमें है। बुनकरोंने मुझे बताया है कि इन परिहार्य दोषोंके कारण वे

[1] यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र लेखकने लिखा था कि उन्होंने लोगोंको साथ लेकर घर-घर जाकर माँगकर रुई इकट्ठी की। उसका सूत कतवाकर कपड़ा बुनवाया गया और लोगोंको सस्ते दामोंपर मुहैया किया गया।

दिन-भरमें एक गज भी नहीं बुन पा रहे हैं और इस तरह दो आना रोज भी कमानेमें असमर्थ हैं।

यह एक वाजिब शिकायत है। इन पृष्ठोंमें मैंने कहा है कि जो सूत आसानीसे बुना न जा सके, वह सूत कदापि नही है — जिस तरह जो रोटी खाई न जा सके, वह रोटी नही है। यह शिकायत सूत कातनवाले सदस्योंकी जबरदस्त असावधानी-का प्रमाण प्रस्तुत करती है। कभी-कभी खराब ढंगसे किया गया काम कुछ काम न करनेसे भी ज्यादा बुरा होता है। जो वकील अपने मुकदमेकी पैरवी कुशलतासे नहीं करता, वह अपने मुवक्किलका पैसा चुरानेवाला चोर है। जो डाक्टर अपने मरीजका इलाज लापरवाहीसे करता है, वह भी मरीजका पैसा ही चुराता है और मानव-हत्यातक का दोषी कहा जा सकता है। इसी तरह जो सूत कातनेवाला व्यक्ति कातनेमें लापरवाही बरतता है और उसकी मजबूतीकी जाँच किये बिना ही अपना सूत भेज देता है वह व्यक्ति अप्रामाणिक रूपसे सूत कातनेका श्रेय प्राप्त करनेका दोषी है।

स्वराज्यमें सरकारकी बागडोर हमारे ही हाथोंमें होगी। तब यदि अधिकारी-गण अपना काम इसी तरह लापरवाहीसे किया करेंगे, जैसा कदाचित् सूत कातनेवालोंने इस बार किया है तो फिर काम कैसे चलेगा? सूत कातना एक सरल कार्य है, लेकिन वह हमारी योग्यताकी कसौटी भी है। इस अर्थमें कोई अन्य कार्य भी निश्चय ही हमारे लिए कसौटीके रूपमें होंगे। लेकिन सूत कातनेका कार्य इसलिए चुना गया है कि देशमें इसकी सबसे ज्यादा जरूरत है। सार्वजनीन कसौटी एक ही हो सकती है। सार्वजनीन होनेके लिए काम सादे ढंगका हो, सीखनेमें आसान हो और जरूरी है कि उसमें हर व्यक्तिको कमसे-कम समय लगे, ताकि उस काममें लगे हुए लोग अन्य सार्वजनिक अथवा निजी कार्योंमें अपना समय और ध्यान दे सकें। सूत कातना ही ऐसी सार्वजनीन कसौटी है और यदि इस कार्यको अपनानेवाले लोग भी अपना काम लापरवाहीसे, बेमनसे या भद्दे ढंगसे करेंगे तो वे एक ऐसी कसौटीपर खरे उतरे हुए नहीं माने जाएँगे जो व्यावहारिक और इतनी सरल है कि जिससे अधिक सरल किसी कसौटीकी कल्पना भी नही की जा सकती। हो सकता है कि लोग सूत कातना पसन्द न करते हों या उसमें विश्वास न रखते हों, तब तो सबसे सीधा रास्ता यही होगा कि वे कातें ही नहीं। लेकिन बेमनसे कातना अपने-आपको और राष्ट्रको धोखा देना है।

हाथकरघा

वाणिज्य एवं उद्योग विभागके अधीन हाथकरघेकी बुनाईपर सूचना विभागके निदेशकने एक स्मरणपत्र जारी किया है। उस स्मरणपत्रका मुख्य अंश मैं नीचे प्रकाशित कर रहा हूँ:[1]

१. यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। स्मरणपत्रमें पिछले पन्द्रह वर्षोंमें हाथ करघेकी बुनाईमें की गई प्रगतिका ब्योरा दिया गया था। विभागने कृषिप्रधान क्षेत्रोंमें कुछ स्कूल खोले थे ताकि लोगोंको बुनाई और रंगाईमें प्रशिक्षण दिया जा सके।

यह बात पहलेसे ही निश्चित है कि खेतिहरोंके घरोंमें हाथकरघाका प्रचलन शुरू करानेके प्रयत्न असफल होंगे, क्या इस तथ्यकी ओर मैं विभागका ध्यान खींच सकता हूँ? कृषि जीवनका थोड़ा-सा ही ज्ञान हो जानेपर यह जाहिर हो जाएगा कि हाथकरघोंको इस तरहसे दाखिल करना अव्यावहारिक है। हाथसे बुनाई करना एक लम्बी प्रक्रिया है, जिसके लिए लगातार श्रम करना जरूरी है। उसके अन्तर्गत अनेक प्रक्रियाएँ हैं जिनमें एकाधिक लोगोंके एक ही साथ काम करनेकी जरूरत है। यह सब किसी कृषककी झोंपड़ीमें हो सकना असम्भव है। इसलिए पुरातन कालसे हाथकी बुनाई एक अलग पेशा और आजीविकाका एक स्वतन्त्र एवम् पूर्ण साधन रही है। कृषक कोई ऐसा पूरक धन्धा चाहता है, जिसे वह जब चाहे करे और जब चाहे न करे। करोड़ों लोगोंके लिए ऐसा काम हाथसे सूत कातना ही है। निस्सन्देह ऐसे और भी काम हैं जिनसे खाली समयका उपयोग किया जा सकता है। लेकिन करोड़ों आदमियों और औरतोंके लिए हाथसे सूत कातना ही एक समान काम हो सकता है। इसलिए यदि उद्योग विभाग अपने अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करना चाहता है और व्यक्तियोंके सोचनेके बजाय करोड़ों लोगोंके बारेमें सोचना चाहता है और इंग्लैंडके बजाय भारतकी बात सोचना चाहता है तो वह अपना ध्यान मुख्य रूपसे हाथकताईकी ओर लगायेगा, ग्रामीणोंमें कताईका संगठन करेगा और हाथसे कताईके विभिन्न तरीकोंमें सुधार करेगा। मुझे यह देखकर हर्ष होता है कि बंगालमें इसी प्रकारके विभागने हाथकताईकी ओर ध्यान देना शुरू किया है, हालाँकि अभी वह ढीलेढाले ढंगसे ही हो रहा है। सरकार यदि जरा भी सदाशयतासे काम ले तो हाथकताई ही एक ऐसा काम है जिसमें वह जनतासे सहयोग कर सकती है और उसे सफल बना सकती है। हमें बहुधा सरकारसे सहयोग करनेके लिए कहा जाता है, लेकिन स्वाभाविक और उचित तो यही है कि सरकार जनतासे सहयोग करे, उनकी जरूरतोंको पहलेसे ही समझे और उन्हें पूरी करनेका प्रबन्ध करे। मैं विभागका ध्यान इस तरफ भी दिलाना उचित समझता हूँ कि जबतक वह बुनाईके पूर्वकी सब प्रक्रियाओंपर नियन्त्रण नहीं रखेगा, हमारी रुई कच्चे मालके रूपमें मैंचेस्टर, जापान या बम्बई ही जाती रहेगी। विभागका काम यह है कि प्रत्येक ग्रामीणको इस बातका प्रशिक्षण दे कि वह अपने खेतोंमें पैदा होनेवाली सारी कपासको अपने ही घर या गाँवमें ओटे, धुने, काते और बुने ताकि उसके पास कई तरहके काम करनेके लिए हों और जब अकाल या बाढ़-जैसी विपत्ति आए और जब उसके खेतोंमें फसल न खड़ी हो और उसके पास कोई क़ाम न हो तो वह अपनेको बेकार और असहाय महसूस न करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-५-१९२५

४६. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

नवाखली
१४ मई, १९२५

मेरे प्यारे चार्ली,

तुम्हारा पत्र मिला। निश्चय ही हम लोग शान्तिनिकेतन जा रहे हैं, बर्दवान-में भेंट होगी।

तुमने श्री मैकमिलनके विषयमें जो लिखा है, उसपर मैंने गौर किया। अगर कोई व्यक्ति मृत्युके बाद मिलनेवाले दण्डके भयसे असत्यसे बचता है तो उससे क्या लाभ? फिर भी, यदि लोग जनमतके दबावके कारण ही नैतिक बंधनोंका पालन करते हों तो क्या उनके बने रहनेकी अपेक्षा उनके विनाशको हम अधिक पसन्द करेंगे? यदि कोई सज्जन सन्तति-नियमनकी हिमायत करते हैं, तो वे स्पष्टतः स्वीकार करते हैं कि उनका नैतिक बन्धनोंमें विश्वास नहीं है और वे वैवाहिक जीवनमें सम्भोगकी स्वच्छंदताको ही आदर्श स्थिति मानते हैं। इसपर मुझे हैरानी होती है।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज,
द्वारा श्री चालीहा
जोरहाट, असम

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९६६) की फोटो-नकलसे।

४७. पत्र : वसुमती पण्डितको

गुरुवार
वैशाख बदी ६ [१४ मई, १९२५][1]

चि० वसुमती,

आज तुम्हारा पत्र मुझे यहाँ मिला। सब-कुछ चला गया और जो घर बचा है वह भी चला जाये तो भी इससे क्या होता है? अभी तो तुम्हें नवीबन्दर[2]

१. देवदास १९२५ में नवीबन्दर गये थे। वैशाख बदी ६ उस वर्ष १४ मईको पड़ी थी। इस दिन गांधीजी नवाखलीमें थे।

२. सौराष्ट्रमें।

जाना चाहिए, क्योंकि वहाँ देवदास गया है। वह वहाँ अधिक तो क्या रहेगा? किन्तु वह स्थान है एकान्त। मैंने उसे देखा नहीं है; प्रशंसा सुनी है। आशा है, तुम स्वस्थ होगी। मुझे पत्र लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

चि० वसुमती धीमतराय
दौलतराय काशीरामकी कम्पनी

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४६२) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

४८. पत्र : मणिबहन पटेलको

वैशाख वदी ६, गुरुवार [१४ मई, १९२५][1]

चि० मणि,

तुम्हारा लम्बा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। स्त्रियोंमें काम करना मुश्किल तो है ही; मगर धीरजसे जितना हो सके तुम्हे उतना करते जाना चाहिए। डाह्याभाई आबू अथवा नवीबन्दर गये ही होंगे। अवश्य चूड़ियोंकी[2] बात मेरे ध्यानमें है। मैं लाना नहीं भूलूंगा। वे ढाकेमें मिलती हैं और मुझे वहाँ दो-तीन दिनमें ही जाना है। क्या बापू[3] हवा खानेके लिए कहीं जानेवाले हैं?

बापूके आशीर्वाद

चि० मणिबहन
द्वारा वल्लभभाई पटेल बैरिस्टर
अहमदाबाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने

१. साधन-सूत्रके अनुसार।
२. शंखकी चूड़ियाँ, जो मणिबहनने गांधीजीसे मँगवाई थीं।
३. वल्लभभाई पटेल।

४९. भाषण : नवाखलीकी सार्वजनिक सभामें[1]

१४ मई, १९२५

श्री गांधीने अभिनन्दन-पत्रोंका उत्तर देते हुए कहा कि जो अभिनन्दन-पत्र मुझे भेंट किये गये हैं उनके लिए मैं आप लोगोंको धन्यवाद देता हूँ। मुझे यह सुनकर दुःख हुआ कि श्रीयुत सत्येन्द्र मित्र यहाँ उपस्थित नहीं हैं, मांडलेकी जेलमें हैं। आशा है कि श्री मित्र थोड़े ही दिनोंमें वापस आ जायेंगे। हिन्दू-मुस्लिम एकताके बारेमें बोलते हुए उन्होंने कहा कि चूँकि अली बन्धुओंमें से एक भी यहाँ मौजूद नहीं है, इसलिए मेरी जिम्मेदारी दुगुनी हो गई है। वे अपने काममें व्यस्त हैं। मैंने तो सुना था कि आप लोगोंमें कोई अनबन नहीं है, लेकिन यहाँ मुझे वह नजर आ रही है। दोनोंमें से एक भी जाति मेरी सलाह माननेको तैयार नहीं है। मुझे जब कभी ऐसा प्रतीत हुआ है कि दोनों जातियोंमें अनबन है तब मैंने उसके लिए दोनोंको ही जिम्मेदार माना है। यदि दोनों एकताके लिए कृतसंकल्प हों तो संसारकी कोई भी शक्ति उन्हें अलग नहीं कर सकती और यदि दोनों समाज अपने-अपने मन साफ नहीं कर लेते तो इसका उत्तरदायित्व दोनोंपर ही होगा। अभीतक ये दोनों जातियाँ, मेल-मिलापसे रहती आई है।

अस्पृश्यताका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि जबतक छुआछूत कायम रहेगी तबतक भारतका प्रगति कर सकना असम्भव है। मैं सनातनी हिन्दू हूँ और कहता हूँ कि हिन्दूधर्ममें अस्पृश्यता-जैसी कोई चीज नहीं है। अछूत वर्गके उद्धारके लिए आपके द्वारा किये गये प्रयत्नोंके लिए आपको मैं धन्यवाद देता हूँ, लेकिन मुझे बताया गया है कि कुछ ब्राह्मण आपके रास्तेमें रोड़े डाल रहे हैं। लेकिन मुझे विश्वास है कि आप लोग अस्पृश्यता-निवारणके लिए दृढ़तापूर्वक कार्य करेंगे। मुझे आशा है कि नवाखलीके निवासी अस्पृश्यताको पूर्ण रूपसे मिटा देनेका यथासम्भव प्रयत्न करेंगे। मैं यह भी आशा करता हूँ कि आप लोग यह बात धोबियोंको समझा दें।

भाषण समाप्त करते हुए गांधीजीने कहा कि आप जानते हैं कि देशके बहुत-से लोगोंके पास सालमें चार महीने कुछ काम नहीं रहता है और इसके परिणामस्वरूप वे और भी गरीब होते जा रहे हैं। संसारके सभी देशोंमें किसान लोग खेतीके साथ-साथ और भी काम किया करते हैं। हिन्दुस्तानमें इस दृष्टिसे चरखे-जैसा दूसरा कोई उद्योग नहीं है। इसीलिए मैं चरखेको 'अन्नपूर्णा' कहता हूँ। खेतोंसे आप चावल पा सकते हैं, लेकिन अपनी हालत आप केवल चरखे द्वारा ही बेहतर कर सकते हैं।

१. कचहरीके अहातेमें आयोजित सभामें गांधीजीको चार अभिनन्दन-पत्र भेंट किये गये थे। सभामें २५,००० से अधिक लोग आये थे, जिनमें मुसलमान ही अधिक थे।

गांधीजीने मध्यम वर्गके लोगोंसे जोर देते हुए कहा कि आप लोग जहाँ-कहीं भी हों, कमसे-कम आधा घंटा प्रतिदिन चरखा जरूर चलायें। यदि आप गरीबोंकी खातिर चरखा चलायेंगे तो इससे बढ़कर और कोई काम नहीं है। इस बातपर जोर देनेके लिए मैं विभिन्न स्थानोंका दौरा करता रहता हूँ। इसके बाद गांधीजीने नवाखलीमें नदीके बहावके कारण जमीन कटनेका जिक्र किया।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १६-५-१९५५

५०. भेंट: जिला अध्यापक संघके प्रतिनिधियोंसे

नवाखली

१४ मई, १९२५

प्रतिनिधियोंने महात्माजीसे शिक्षाकी वर्तमान प्रणालीके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न किये और पूछा कि मौजूदा परिस्थितियोंमें अध्यापक अपने देशकी सच्ची सेवा किस तरह कर सकते हैं। महात्माजी मुस्कराये और बोले "कातो और खूब कातो।" आप अपने चरित्र और कार्यका उदाहरण प्रस्तुत करके बालकोंके मनपर, जो पूरी तरहसे आपके नियन्त्रणमें हैं, प्रभाव डालकर शिक्षा-संस्थाओंका साराका-सारा नैतिक वातावरण ही बदल डालिए। यदि अध्यापक सच्चे दिलसे प्रयत्न करें तो निरीक्षकों द्वारा सरकारके मनमाने हस्तक्षेपसे भी उनके उद्देश्य विफल नहीं हो सकते; क्योंकि अध्यापक सरकारी मुलाजिम नहीं है। यद्यपि बंगालके अध्यापकोंका और एक तरहसे समस्त भारतके अध्यापकोंका अलग ही वर्ग है फिर भी आज किसी सम्मिलित प्रयत्न-की आशा नहीं की जा सकती; लेकिन सच्ची लगनवाले शिक्षकोंको व्यक्तिगत रूपसे अपने हिस्सेका दायित्व साहसपूर्वक पूरा करना चाहिए। अन्तमें महात्माजीने कहा कि मैं अध्यापकोंके कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व पहले भी सूचित कर चुका हूँ; परन्तु यह काम अब 'यंग इंडिया' के स्तम्भोंमें लेख लिखकर और भी जोरके साथ और निश्चयात्मक ढंगसे करना चाहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २१-५-१९२५

५१. भाषण : नवाखलीमें[1]

१४ मई, १९२५

कौन कहता है कि स्त्रियाँ पराधीन हैं? शास्त्रोंमें कहीं नहीं लिखा है कि स्त्रियाँ पराधीन रहें। सीता रामकी अर्धांगिनी थीं और उनका रामके हृदयपर प्रभुत्व था। दमयन्ती पराधीन नही थी। महाभारतको पढ़ कर कौन ऐसा कह सकता है कि द्रौपदी पराधीन थी? जब पाण्डव उसकी रक्षा न कर सके तब कृष्णकी स्तुति करके अपनी रक्षा करनेवाली द्रौपदीको पराधीन कौन कहेगा? हमारे यहाँ सात सती नारियाँ प्रातः स्मरणीय मानी गई हैं, क्या वे पराधीन थीं? जिनमें पवित्र रहनेकी शक्ति है और जिनमें अपने शीलकी रक्षा करनेकी क्षमता है, उनको पराधीन कहना भाषाकी हत्या करना है — अधर्म है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३१-५-१९२५

५२. भाषण : कोमिल्लाकी सार्वजनिक सभामें[2]

१५ मई, १९२५

महात्माजीने समुचित उत्तर देते हुए कहा कि यह अभिनन्दन-पत्र बंगलामें दिया जा सकता था। भविष्यमें जो लोग मुझे अभिनन्दन-पत्र देना चाहें, वे यदि बंगला या हिन्दीमें देंगे तो मुझे अच्छा लगेगा। मुझे बताया गया है कि कोमिल्ला खादीके काममें आगे बढ़नेका इच्छुक है, लेकिन तथ्योंसे इस बातकी पुष्टि नहीं होती। मुझे इस बातका जरा भी खेद नहीं है कि कांग्रेसकी सदस्यताकी शर्तमें चरखेको रखनेमें मेरा मुख्य हाथ था। आप इस तथ्यको स्वीकार करते हैं कि आपका काम गाँवोंसे शुरू होना चाहिए; और आप किसी भी कार्यकर्त्तासे पूछिए, वह निस्संकोच यही जवाब देगा कि चरखा ही एकमात्र उपाय है — वही जनताकी बढ़ती हुई गरीबीको मिटानेका सबसे कारगर रास्ता है। इसके बाद महात्माजीने उस इलाकेके लोगोंको इस बातके लिए धन्यवाद दिया कि वे पूरे मेलजोलसे साथ-साथ रह रहे हैं। उन्होंने स्वराज्य हासिल करनेके लिए इसकी नितान्त आवश्यकतापर बल दिया।

उन्होंने इस बातपर दुःख प्रकट किया कि अलीबन्धु उनके साथ नहीं आये हैं। उन्होंने कहा कि मौलाना शौकत अली बम्बईका काम खतम करनेके पहले वहाँसे

१. यह भाषण स्त्रियों द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें दिया गया था।

२. यह भाषण नगरपालिका, जिला बोर्ड, व्यापारी संघ और शान्ति-सेनाकी ओरसे भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें दिया गया था।

आना नहीं चाहते थे; और मौलाना मुहम्मद अली इसलिए दिल्ली नहीं छोड़ सके कि उन्हें दो-दो अखबारोंका संचालन करना होता है। लेकिन मैं कोमिल्ला कुछ नई बातें बतानेके लिए नहीं आया हूँ। एक अभिनन्दन-पत्रमें निराशाकी ध्वनि है, लेकिन निराशाकी ध्वनि तो भारतमें सर्वत्र ही है। कांग्रेसकी सदस्यताके लिए मताधिकारकी शर्तके सम्बन्धमें मुझे कोई अफसोस नहीं है। मैं भारतके लिए चरखेके सिवाय दूसरा इलाज सोच ही नहीं सकता। मैं मध्यवर्गके लोगोंसे अपनी आजीविका चलानेके लिए चरखा अपनानेकी बात नहीं कहता, बल्कि उनसे गरीबोंके लिए दृष्टान्त रूप होने और हिन्दुस्तानके लिए कुर्बानी करनेकी दृष्टिसे चरखा चलानेको कहता हूँ। इसके अलावा हिन्दुओं और मुसलमानोंको अपने दिलोंसे द्वेषभाव मिटा ही देने होंगे; और प्रसन्नताकी बात है कि इसके बारेमें दोनों वर्गोंमें मतभेद नहीं है। भाषणके अन्तमें उन्होंने अस्पृश्यताके बारेमें भी अपने विचार व्यक्त किये।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १७-५-१९२५

५३. भाषण : विद्यार्थियोंके समक्ष[1]

कोमिल्ला
१५ मई, १९२५

महात्माजीने अपना भाषण अंग्रेजीमें दिया। उन्होंने विद्यार्थियोंको अपनी स्थिति साफ-साफ बता देनेके लिए धन्यवाद देते हुए कहा कि याद रखिये भारतका भविष्य आप नवयुवकोंपर ही निर्भर करता है। उन्होंने स्वराज्यके आदर्शको पुनः स्पष्ट रूपसे समझाते हुए कहा कि यह 'अधर्मराज्य' नहीं बल्कि 'धर्मराज्य' है। आप लोग ब्रह्मचर्यका पालन करें, देशके पुनर्निर्माणमें आप लोगोंको कितनी गम्भीर जिम्मेदारियाँ उठानी हैं, उन्हें समझें; आप लोग पुस्तकोंका अध्ययन जरूर करें परन्तु मेरे खयालसे पुस्तकोंका स्थान गौण होना चाहिए, क्योंकि मनुष्यका प्रथम कर्त्तव्य तो अपने चरित्रका निर्माण करना है; उसके बिना समस्त ज्ञान निरर्थक हो जाता है। इस बातको मजबूतीसे गाँठ बाँध लीजिए कि चरखा आपके चरित्र-निर्माणमें सहायक होगा।

चरखेकी उपेक्षाके कारणोंका विश्लेषण करते हुए महात्माजीने कहा कि इसका मुख्य कारण यह है कि आप लोग भारतमें बसनेवाले करोड़ों लोगोंकी भीषण गरीबीको

१. गांधीजीको विद्यार्थियोंकी ओरसे भेंट किये गये एक अभिनन्दन-पत्रमें कहा गया था कि २ प्रतिशत विद्यार्थी ही सूत कातते और शुद्ध खादी पहनते हैं। इस मन्द प्रतिक्रियाका कारण है विद्यार्थियोंका चरखेमें विश्वासका अभाव और आलस्य।

नहीं समझ पाये हैं। चरखा चलानेसे ठीक आमदनी नहीं होती, इस आपत्तिके सम्बन्धमें उन्होंने विद्यार्थियोंको हल्की-सी फटकार बताते हुए कहा कि इस प्रकारके तर्क उपस्थित करनेकी आदत बचपनसे ही डाल लेना और अपने भावी जीवनको नष्ट करना उचित नहीं है। आप लोग इस विषयपर विचार करते समय अधिक व्यापक दृष्टिकोणसे काम लें और चरखेमें विश्वास कायम रखें। आप अपने सुख-चैनकी बात न सोचें, बल्कि इस बातको समझनेकी कोशिश करें कि आपका काता हुआ एक-एक गज सूत भारतकी समस्याओंको सुलझानेमें सहायक होगा। उपाय आपके हाथोंमें है और मुझे आशा है कि आप मेरे कार्यक्रमके अनुसार कार्य करेंगे।

हिन्दू-मुस्लिम समस्याका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि जो बुजुर्ग लोग सरकारी नौकरीके बारेमें सोचते हैं, जो लोग कौंसिलोंमें जाना चाहते हैं, वे झगड़ें तो झगड़ें, लेकिन विद्यार्थियोंको न तो इससे कोई सरोकार होना चाहिए और न उनके पास इसके लिए समय ही है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १७-५-१९२५

५४. भाषण : कोमिल्लामें[1]

१५ मई, १९२५

इस मानपत्रके लिए आभार मानना शिष्टाचार-मात्र कहा जायेगा, क्योंकि इस आश्रमको अस्तित्वमें लानेमें मेरा भी हिस्सा है,[2] यह बात आपने स्वीकार की है। जब मैं बंगालमें आनेकी तैयारी कर रहा था तब मेरी आप-जैसे युवकोंसे मिलने और आपका काम देखनेकी प्रबल इच्छा थी। आप-जैसे युवकोंके स्वार्थत्यागसे मैं भली-भाँति परिचित हूँ। मैं जानता हूँ कि जबतक ऐसे स्वार्थत्यागी लोग हिन्दुस्तान-में पर्याप्त संख्यामें उत्पन्न नहीं हो जाते तबतक देशके स्वतन्त्र होनेकी आशा नहीं है। प्रत्येक युवकके लिए त्याग ही भोग होना चाहिए। मैंने त्यागको कभी दुःखकी अवस्था नहीं माना है और जो मनुष्य त्यागको दुःख मानता है, उसका त्याग सदा नहीं टिक सकता। इसलिए अपने भ्रमणमें जब-जब महान् त्यागके उदाहरण मेरे सामने आते हैं और मैं ५०० या १००० रुपये मासिक वेतन छोड़कर बहुत कम पैसे लेकर अपना गुजारा करनेवाले युवकोंको देखता हूँ तब मुझे कोई दुःख नहीं होता; प्रत्युत मुझे यह अनुभव होता है कि ऐसे युवकोंने खोया कुछ नहीं है, क्योंकि वे बहुत धन बटोरनेकी झंझटसे मुक्त हो गये हैं।

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत। यह आश्रमकी ओरसे दिये गये मानपत्रके उत्तरमें दिया गया था।

२. गांधीजी जब १९२० में बंगालका दौरा कर रहे थे तब उन्होंने इस आश्रमकी स्थापनाकी योजना स्वीकृत की थी।

किन्तु मैं एक बातपर पूरा जोर देना चाहता हूँ। हम जब सेवाके निमित्त किसी वस्तुका त्याग करते हैं तब किसी-न-किसी अन्य वस्तुको ग्रहण भी करते हैं। मैं जानता हूँ कि कुछ युवक यह मानते है कि किसी वस्तुका त्याग करना ही मानो सब-कुछ पा जाना है। ऐसा सोचना भारी भूल है। हमें त्यागके साथ उस कार्यका ज्ञान भी होना चाहिए जो हमें करना है; और तभी हमारा जीवन सन्तोषमय हो सकता है। इसका मतलब यह है कि हमें अपने समस्त कार्य विवेकपूर्वक करने चाहिए। मेरे विचारसे आज भारतकी सेवा करनेके लिए जो युवक तैयार है उनके सम्मुख एक ही आदर्श रहना चाहिए, वह यह है कि हम करोड़ों निरुद्यमी लोगोंको उद्यमी कैसे बनायें। अतः चरखेको इसके एकमात्र साधनके रूपमें स्वीकार किये बिना काम नहीं चलनेका। इसीलिए मैं यहाँकी चिकित्सा सम्बन्धी और [चिकित्सा] विद्यालय सम्बन्धी प्रवृत्तिको गौण मानता हूँ।[1] इन दोनों प्रवृत्तियोंको उसी हदतक स्थान दिया जा सकता है जिस हदतक ये चरखेकी प्रवृत्तिकी पूरक हों। इसलिए आपके विद्यालयमें भी चरखे और खादीकी प्रवृत्ति चलती है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। मेरी सलाह है कि इन विद्यालयके संचालक यह प्रतिज्ञा कर लें कि एक निश्चित तारीखके बाद विद्यालयमें खादी पहनकर न आनेवाले किसी लड़के या लड़कीको प्रवेश नहीं दिया जायेगा। सभी माता-पिताओंको सूचना भेज दी जानी चाहिए कि विद्यालयके लड़कों और लड़कियोंको अनिवार्य रूपसे सूत कातना होगा और खादी पहननी होगी। औषधालयके सम्बन्धमें भी यही नियम लागू होगा। मैं जिसकी चिकित्सा करता उसे भी खादी पहनानेकी बात मेरे मनमें जरूर आती। यों तो औषधालय बहुतेरे हैं। यह कोई नई प्रवृत्ति नहीं है, इसीलिए युवकोंमें इसे करनेकी क्षमता है। मैं आशा करता हूँ कि जिन्होंने सेवा और स्वार्थत्यागकी दीक्षा ली है वे देशमें ऐसी प्रवृत्तिमें भाग लेंगे जो कठिनसे-कठिन, व्यापकसे-व्यापक और अधिकसे-अधिक फलदायिनी हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-६-१९२४

१. भाषणसे पूर्व डॉ० सुरेश बनर्जीने कहा था कि हम, 'औषधालय ही नहीं, एक चिकित्सा-विद्यालय भी खोलना चाहते हैं।' गांधीजीने यह बात उसके उत्तरमें कही थी।

५५. विक्रमपुरके कार्यकर्त्ताओंसे बातचीत

कोमिल्ला
१५ मई, १९२५

विक्रमपुरके कुछ कार्यकर्त्ताओंसे बातचीतके दौरान गांधीजीने कताई-सदस्यताकी प्रस्तावित मंसूखीके बारेमें अपनी स्थिति स्पष्ट रूपसे समझाई। उन्होंने कहा :

अभी कांग्रेससे अलग हो जानेका समय नहीं आया है और न अखिल भारतीय कताई-संघकी स्थापनाका समय ही आया है। यदि कताई-सदस्यता समाप्त कर दी जाती है, तब किसी पृथक् संगठनके बारेमें सोचनेका समय आयेगा; लेकिन जिस प्रकार आज स्वराज्यवादियोंको कांग्रेसके एक अभिन्न अंगके रूपमें अपने कार्यक्रमपर अमल करनेकी छूट है, उसी प्रकार मुझे भी अलगसे अपने कार्यक्रमपर अमल करनेकी छूट मिली तो मैं पृथक् संगठन नहीं चाहूँगा। परन्तु यदि वह अनुमति न मिली तो मुझे अलग संगठन खड़ा करना ही होगा।

हिन्दुओं और मुसलमानोंमें पूर्ण एकताके सम्बन्धमें महात्माजीने कहा :

मैं हिन्दुओं और मुसलमानोंमें पूर्ण ऐक्यकी उम्मीद नहीं रखता; मैं सिर्फ स्वराज्य प्राप्त करनेके उद्देश्यसे, चाहे वह आज प्राप्त हो या सौ साल बाद, काम-चलाने लायक एकताकी आशा जरूर रखता हूँ। ऐसी काम चलाने योग्य एकता कायम होनी ही चाहिए। इस एकताका अभिप्राय सरकारसे कुछ सत्ता प्राप्त कर लेना नहीं है।

अस्पृश्यताके अर्थके सम्बन्धमें महात्माजीने कहा :

अस्पृश्यता तो स्वच्छतासे सम्बन्धित एक सवाल है। यदि कोई व्यक्ति साफ-सुथरा है तो मैं उसके हाथसे न केवल पानी ही ले सकता हूँ वरन् उसे अपना भोजन पकानेकी भी इजाजत दे सकता हूँ। लेकिन यह सहभोज नहीं है। यदि कोई व्यक्ति मेरी थाली ही में से मेरे साथ भोजन करता है तो उसे मैं सहभोज मानता हूँ। मैं अपनी थालीमें से अपनी पत्नीको भी नहीं खाने देता। वह एक हिन्दू पत्नी है और इसलिए प्रायः उसकी इच्छा मेरी थालीमें ही भोजन करनेकी हुआ करती है। लेकिन जैसे मैं हिन्दूधर्मकी हर बातको हमेशा नहीं ग्रहण करता; वैसे ही मैं पत्नीको अपनी थालीमें भोजन करनेकी अनुमति नहीं देता।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १७-५-१९२५

५६. भेंट : एक मित्रसे[1]

[१५ मई १९२५ के पश्चात्]

उस मित्रने कहा : "महात्माजी" हम अपनी पिछली भूलें फिर दोहरा रहे हैं। १९०५-१९०८ में हमने ताशके पत्तोंका एक घर बनाया था, वह खड़ा होते ही बिखर गया और अब फिर हम वही करने जा रहे हैं।

आप उस समयके स्वदेशी आन्दोलनकी मौजूदा आन्दोलनसे तुलना कर रहे हैं? आप भूलते हैं कि अब हमें दिखावटी काम नही करना है, खामोशीके साथ काम करना है।

श्रीमन्, मैं यह जानता हूँ, लेकिन कोई संगठन तो है नहीं।

क्षमा कीजिएगा, आपको वस्तुस्थितिका ज्ञान नही है। उदाहरणके लिए, क्या आप जानते हैं कि बंगालमें, तमिलनाडमें और गुजरातमें हमारे पास अच्छेसे-अच्छे संगठन हैं? क्या आप समझते हैं कि खादी प्रतिष्ठान और अभय आश्रम, कोमिल्ला-जैसी संस्थाएँ बन्द हो जानेवाली संस्थाएँ हैं?

लेकिन वे चलेंगी भी कैसे? हम गुजारे-भरका पैसा लेकर कार्य कर रहे हैं और अपने नौजवानोंसे उससे भी कममें ही गुजर कर लेनेको कहते हैं। यह कब तक चल सकता है?

कबतक? क्यों? हमारा पूरा इतिहास [ऐसे त्यागसे] भरा पड़ा है। क्या आप समझते हैं कि हमारे नौजवानोंमें धैर्य और साहस नही है? उन्होंने अच्छी तरह देखभाल कर इस काममें हाथ डाला है और वे उसे किसी भी हालतमें छोड़नेवाले नहीं हैं, अभय आश्रम, जिसे कुछ दिन पहले मैंने देखा था, एक रमणीक स्थानपर बसाया गया है। उनके पास साफ-सुथरी छोटी-छोटी कुटियाँ हैं, एक सुन्दर तालाब और अच्छी खासी खुली जमीन है। वे अपना भोजन स्वयं पकाते हैं, स्वयं ही सफाईका काम करते हैं और एक अस्पतालकी आमदनीसे अपना खर्च चलाते हैं। डॉ० सुरेश कोई बच्चे नहीं हैं। वे अपना काम समझते हैं और वे इस बातका ध्यान रखेंगे कि उनपर तथा उनके सहयोगियोंपर चाहे कुछ भी बीते उनका खद्दरका काम दिनोदिन प्रगति करता रहे। और खादी प्रतिष्ठानके पास, जिसके द्वारा तैयार किये गये मालकी दर आप बहुत ऊँची बताते हैं, अभी इतनी माँगें आई पड़ी हैं कि उन्हें वह पूरा नहीं कर पाता। सतीश बाबूका काम देखिए। क्या आप कभी बाढ़ग्रस्त क्षेत्रोंमें गये हैं? बाढ-पीड़ित सहायताके काममें अब वे स्थायी रूपसे जुट गये हैं। आपको मालूम होना चाहिए कि खादी प्रतिष्ठान गुजारा-मात्रकी आयमें विश्वास नहीं रखता। वह अपने कर्मचारियोंको बाजारके हिसाबसे वेतन देता है।

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

श्रीमन्, उनका व्यापार तो आपके दौरेके कारण ही चमका है।

नहीं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप चाहें तो इसे यों कह सकते हैं कि मेरे दौरेके कारण कुछ समयके लिए उनके व्यापारमें तेजी आ गई थी। किन्तु व्यापार फिर-से अपनी सामान्य अवस्थामें पहुँच जायेगा और वह सामान्य अवस्था पूर्णतः सन्तोषजनक है। सूतकी हाटमें जाइए। जहाँ पहले कुछ ही मन सूत बिकने आता था, आज सैकड़ों मन बिक रहा है। सैकड़ों परिवार यदि चरखेसे अपनी पूरी जीविका नहीं कमा रहे हैं तो अपनी आमदनी तो बढ़ा ही रहे हैं। हाटके दिन लोग कार्यकर्त्ताओंको किस तरह घेरते हैं और उनसे कताईके लिए रुई माँगते हैं, यह एक देखने लायक दृश्य होता है। आप पूछ सकते हैं कि यदि ये कार्यकर्त्ता अपने कार्य क्षेत्रसे हट जायें तो क्या होगा? लेकिन वे हट नहीं सकते। उन्होंने अच्छी आमदनीवाले अपने धन्धोंको यों ही नहीं त्यागा है। अभय आश्रमके लोगोंके धनुषमें तीन प्रत्यंचाएँ हैं। एक तो औषधालय, जिससे वे गुजर-बसरके लायक आमदनी कर लेते हैं। इसे सुरेश बाबू एक चिकित्सा विद्यालय खोलकर बढ़ाना भी चाहते हैं। उनमें चिकित्सा विषयक काफी प्रतिभा है। इस आश्रममें खादीके कामके अलावा, जो कि उसका मुख्य कार्य है, वे लड़कोंका एक काफी बड़ा स्कूल चला रहे हैं। वे इन लड़कोंके जरिये लोगोंको और ज्यादा प्रभावित करनेकी आशा करते हैं। और फिर प्रवर्त्तक संघके कार्यकर्त्ता भी हैं। मैं उनके कामसे परिचित नहीं हूँ, लेकिन इतना जानता हूँ कि उनकी संख्या २०० है और वे अनेक कठिनाइयोंके बावजूद काम कर रहे हैं।

लेकिन ऐसी केवल तीन ही संस्थाएँ है। प्रश्नकर्त्ताने अब भी अपना असन्तोष जाहिर करते हुए कहा।

बिलकुल नहीं; कई और संस्थाएँ हैं जो अपने विनम्र ढंगसे काम कर रही हैं और यदि वे केवल तीन ही होतीं, तो भी क्या था? जमनालालजी, राजगोपालाचारी, शंकरलाल बैंकर-जैसे लोग हैं, जो अपने चौबीसों घंटे इसी कामको देते है। वे पूरे मनोयोगसे और दृढ़तापूर्वक काम कर रहे हैं। वे इतने धैर्यके साथ काम कर रहे हैं कि सौ साल भी लगा रहना पड़े तो भी हटनेवाले नहीं। किन्तु साथ ही वे ऐसी मनोकामनासे काम कर रहे है कि सफलता कल ही मिल जाये। और क्या आप यह नहीं जानते कि १९०५-१९०८ का स्वदेशी आन्दोलन मौजूदा आन्दोलनसे भिन्न किस रूपमें है? वह आन्दोलन ऐसा था जिसकी अवधारणा तो बहुत सुन्दर थी, लेकिन उसके पीछे कोई ज्ञान या संगठन नहीं था। उसने विदेशी कपड़ोंके बहिष्कारको एक परिचायक संकेत शब्दके रूपमें रख छोड़ा था और बम्बई तथा अहमदाबादकी असमर्थ मिलोंपर भरोसा कर रखा था। आज आप उन सभी विपत्तियोंके प्रति सतर्क हैं जो पहलेवाले आन्दोलनपर आ पड़ी थीं। आज आप यह भली-भाँति दिखा देनेकी स्थितिमें हैं कि यदि भारतकी सभी मिलें जला दी जायें तो भी आप अपने कुटीर-स्थित कतैयों और बुनकरोंके बनाये कपड़ेसे सारे भारतको कपड़ा पहना सकते हैं।

हमें अत्यधिक आत्मविश्वास भी नहीं कर बैठना है। आप उन लोगोंकी बात जानते हैं जिन्हें उन दिनों कपड़ेकी कमीके कारण फंदेसे लटककर प्राण त्यागने पड़े थे।

मेरे मित्र, आप बाबा आदमके जमानेकी बात कर रहे हैं। उस समय बुनकरोंको बहकाकर यह विश्वास दिलाया दिया गया था कि वे मशीनके काते सूत या विदेशी सूतके सिवाय और किसी सूतसे बुनाई नहीं कर सकते। मैं आज इस पूरे संगठनसे यह कह रहा हूँ कि इसके प्रत्येक अंगकी व्यवस्था विवेकी और समझदार लोग करें। कोई भी आन्दोलन तबतक व्यापक नहीं बनाया जा सकता जबतक उसका प्रचार विदेशी माध्यमका जरा भी सहारा लिये बिना किया जा सके। लेकिन मेरा आपसे यही कहना है कि चीजोंका अध्ययन कीजिए। आन्दोलनके शुरूमें खद्दरके दामोंपर और आजके दामोंपर गौर कीजिए; खद्दरकी किस्म देखिए; जो सूत हम तैयार कर रहे हैं उसपर गौर कीजिए; संक्षेपमें चरखे और खद्दरके विकासका अध्ययन कीजिए और तब आपको जो भी कहना हो, कहिए।

क्या हम अपने मिल-उद्योगके विकासपर निर्भर नहीं रह सकते?

'यंग इंडिया' के पृष्ठोंके जरिये मैंने अकसर उन लोगोंकी भ्रान्तिपर प्रकाश डाला है जो मिलोंके पक्षमें दलीलें पेश किया करते हैं। उस मुद्देपर आज और कुछ कहना नहीं चाहता। मैं मिलोंका मोहताज नहीं बनना चाहता। मै चाहता हूँ कि मिलें मेरी मोहताज रहें। सार रूपमें मुझे इतना ही कहना है।

हम अपनी राष्ट्रीय मिलें तो खड़ी कर सकते हैं।

ठीक है, जो व्यक्ति इस प्रस्तावका सुझाव रखे, उसे स्वयं इस सुझावको कार्यान्वित करना चाहिए।

मैं नहीं जानता कि वे महाशय आश्वस्त होकर गये या नहीं, लेकिन उन्होंने गांधीजीको श्रमित कर देनेके लिए क्षमा माँगी। गांधीजीने उन्हें विश्वास दिलाया कि चरखेके बारेमें बात करते समय मैं थकनेवाला व्यक्ति नहीं हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-७-१९२५

५७. एक मुसलमान सज्जनसे बातचीत

[१५ मई, १९२५ के पश्चात्]

एक मुसलमान सज्जन शिकायतोंकी एक लम्बी सूची लेकर आये। पहली शिकायत हिन्दुओं द्वारा मुसलमानोंके प्रति बरती जानेवाली अस्पृश्यताकी थी। दूसरी-का सम्बन्ध गोहत्याके विषयमें मतभेदसे था। तीसरी थी, अपर्याप्त प्रतिनिधित्व; चौथीका सम्बन्ध इस्लामके खिलाफ छपी पुस्तकों और पर्चोंसे था। पाँचवीं शिकायत मुसलमानों द्वारा किये गये अपहरणों तथा ऐसे ही दूसरे अपराधोंके अखबारोंमें प्रकाशित समाचारोंके खिलाफ थी। छठी शिकायत नौकरियोंसे वंचित किये जानेके सम्बन्धमें थी। सातवीं महाजनों द्वारा [सूदके] अधिक पैसे ऐंठनेके बारेमें थी। आठवीं शिकायत काली पूजाके अवसरपर जमींदारों द्वारा लगाये गये अबवाबके खिलाफ थी। गांधीजीने उन महाशयको बताया कि उनके द्वारा प्रस्तुत कुछ शिकायतें तो

स्थानीय ही हैं, कुछ शिकायतें व्यक्तियोंसे सम्बन्धित हैं, और कुछ ऐसी हैं जो हिन्दू और मुसलमान, दोनोंको एक-दूसरेसे हैं; सच्ची शिकायत तो पहली शिकायत ही है। उन महाशयने स्वीकार किया कि वही मुख्य शिकायत है अन्य शिकायतें तो उसमें से ही निकलती हैं। उन्होंने कहा कि गांधीजी, हिन्दू दुकानदार तो हमारे हाथ मिठाई भी नहीं बेचते।

हाँ, मैं समझा। यह एक वास्तविक शिकायत है; लेकिन हर बातको बढ़ाचढ़ा कर शिकायतका रूप नहीं देना चाहिए, जैसा कि आपने शुरूमें किया था। उससे तो ऐसा लगता है मानो पूरी मुसलमान जाति उसका शिकार है। मैं हिन्दुओंसे कहता हूँ कि यदि वे हिन्दूधर्मकी रक्षा अस्पृश्यता सम्बन्धी किसी बृहत् आचारसंहिताके अनुसार कर रहे हैं, तो बेहतर होगा कि हिन्दूधर्म समाप्त हो जाये। आप भारतको जजीरत-उल-अरबमें नहीं बदल सकते। अतीतमें हिन्दुओंने सभी राष्ट्रोंके लोगोंको अपनेमें मिलाया था। मुझे विश्वास है कि हमें अपने छुआछूत सम्बन्धी नियमोंमें परिवर्तन करने होंगे और उन अनावश्यक प्रतिबन्धोंको, जो हिन्दूधर्मको बलशाली बनानेके बजाय उसका गला घोटते हैं; दूर करना होगा। हम अलग रहनेवाले कभी नहीं थे, हम सबसे मिलजुल कर रहनेवाले थे। हिन्दूधर्मकी खूबी है कि वह कभी इस्लाम या ईसाई धर्मकी तरह मिशनरी धर्म नहीं रहा, जो कि अनुयायियोंकी संख्या गिननेमें ही रहते हैं। यह धर्म एक तरहसे सहज सहविकास करता हुआ अनजाने ही लोगोंको अपनेमें मिलाता रहा है। मैं अपने हिन्दू मित्रोंसे पूछता हूँ कि जब किसी यूरोपीय व्यापारीसे चाकलेट इत्यादि खरीदनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं है तब हम अपने हलवाइयोंको मुसलमानोंके हाथ मिठाइयाँ बेचनेसे क्यों रोकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-७-१९२५

५८. भाषण: स्त्रियोंकी सभा कोमिल्लामें[1]

१६ मई, १९२५

महात्माजीने अभिनन्दन-पत्रके जवाबमें कहा कि इस अभिनन्दन-पत्रको लेते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। उस समय मुझे और भी प्रसन्नता होगी, जब सभी बहनें सूत कातने लगेंगी और खद्दर पहनने लगेंगी। आप लोग सीताके आदर्शका अनुकरण करें। सीताजीका आदर्श नितान्त शुचिताका आदर्श था। उस जमानेमें चरखेसे काते हुए सूतके बने कपड़ेका प्रयोग होता था और उस युगमें देशमें गरीबी थी ही नहीं। विदेशी कपड़ा अशुद्ध है; वह आपके शुद्ध शरीरपर पहनने योग्य वस्त्र नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि आप लोग विदेशी वस्त्र न पहननेकी शपथ लेंगी। आप लोगोंसे

१. सभामें भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें गांधीजीने हिन्दीमें भाषण दिया था। मूल भाषण उपलब्ध नहीं है।

मेरा सादर निवेदन है कि आप अस्पृश्यताका कलंक मिटा दें। जो लोग साथी मानवों को धर्मके तथाकथित आदेशके कारण तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं, वे एक अपवित्र और धर्मविहीन कार्य करते हैं। रामचन्द्र निषाद — एक चाण्डाल — को हृदयसे लगाकर और भी शुद्ध हुए।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १७-५-१९२५

५९. रामनामकी महिमा

एक भाई पूछते हैं:[1]

> आपने एक बार काठियावाड़में भाषण देते हुए कहा था, मैं जो तीन बहनोंके साथ पापमें लिप्त होनेसे बचा सो केवल रामनामके बलपर ही। इस बारेमें 'सौराष्ट्र' पत्रने कुछ ऐसी बातें लिखी हैं जो समझमें नहीं आतीं। इसका अधिक खुलासा करेंगे तो कृपा होगी।

इस पत्रके लेखकसे मेरा परिचय नहीं है। जब मैं बम्बईसे रवाना हुआ था तब उन्होंने यह पत्र अपने भाईके हाथ मेरे पास भेजा था। उससे उनकी तीव्र जिज्ञासा व्यक्त होती है। ऐसे प्रश्नोंकी चर्चा आमतौरपर सार्वजनिक रूपसे नहीं की जा सकती। यदि सर्वसाधारणजन मनुष्यके खानगी जीवनमें गहरे पैठनेका रिवाज डालें तो यह स्पष्ट है कि उसका परिणाम बुरा हुए बिना न रहेगा।

परन्तु मैं इस उचित अथवा अनुचित जिज्ञासासे नहीं बच सकता। मुझे इससे बचनेका अधिकार नहीं है और ऐसी मेरी इच्छा भी नहीं है। मेरा निजी जीवन सार्वजनिक हो गया है। दुनियामें मेरे लिए एक भी ऐसी बात नहीं है जिसे मैं निजी बनाकर रखूं। मेरे प्रयोग आध्यात्मिक हैं। उनमें से कुछ नये हैं। इन प्रयोगोंका आधार बहुत कुछ आत्म-निरीक्षण है। मैंने 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्ड' की उक्तिके अनुसार प्रयोग किये हैं। इनके पीछे मेरी यह मान्यता है कि जो बात मेरे विषयमें सम्भव है वह दूसरोंके विषयमें भी सम्भव होगी। इसलिए मुझे कुछ गुह्य प्रश्नोंके उत्तर देनेकी भी जरूरत पड़ जाती है।

फिर मुझे पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर देते हुए रामनामकी महिमा बतानेका अवसर भी अनायास ही मिलता है। उसे मैं हाथसे कैसे जाने दे सकता हूँ?

किन्तु इस प्रश्नकर्त्तासे और जो अन्य लोग बादमें प्रश्न करें उनसे भी मुझे यह कह देना जरूरी है कि यदि वे किसी अखबारके आधारपर कोई प्रश्न पूछें तो वे उस अखबारको मेरे पास अवश्य भेजें। मैं कई बार कह चुका हूँ कि मैं अखबार नहीं पढ़ता, क्योंकि मेरे लिए वह सम्भव नहीं है। 'सौराष्ट्र' में क्या लिखा है यह

१. अंशतः उद्धृत।

मैं नहीं जानता। मेरे भाषणोंकी रिपोर्ट लेना मुश्किल होता है। महादेव भाई रिपोर्ट लेते हैं, किन्तु मैं उसे भी सदा सही नहीं मानता, क्योंकि जहाँ सूक्ष्म अथवा नये विचार व्यक्त किये जाते हैं, वहाँ एक शब्दकी भी भूल होनेसे अनर्थ हो सकता है। अतः जहाँ मेरे विचारोंसे अपरिचित संवाददाता मेरे भाषणोंकी रिपोर्ट लेते हैं वहाँ उनकी रिपोर्ट कभी विश्वसनीय नही हो सकती। मैंने कई बार कहा है कि पाठक उनको पूरे तौरपर सही मानकर न चलें। जब उन्हें किसी बातपर सन्देह हो तो वे मुझे पत्र लिखकर पूछ लें और साथमें जिस पत्रमें मेरा वह भाषण पढ़ा हो मुझे उसका वह अंक भी भेजें।

इस प्रस्तावनाके पश्चात्, 'सौराष्ट्र' ने क्या लिखा है यह न जानते हुए भी मैं यह बताता हूँ कि मैं किस तरह इन तीनों प्रसंगोंमें ईश्वरकृपासे बच सका। ये तीनों प्रसंग वार-वधुओंसे सम्बन्ध रखते हैं। मुझे इनमें से दो के पास भिन्न-भिन्न अवसरों-पर मेरे मित्र ले गये थे।

पहले अवसरपर[1] मैं मित्रका झूठा लिहाज करके वहाँ पहुँच गया और यदि ईश्वरने न बचाया होता तो जरूर पतित हो जाता। इस मौकेपर मैं जिस वेश्याके कोठेपर ले जाया गया था, उस वेश्याने ही मुझे तिरस्कृत किया, क्योंकि मैं यह बिलकुल नहीं जानता था कि ऐसे अवसरपर किस तरह, क्या बोलना चाहिए और कैसा व्यवहार करना चाहिए। मैं इससे पहले ऐसी स्त्रियोंके पास बैठनातक लज्जा-जनक मानता था; इसलिए मैं इस घरमें दाखिल होते समय भी काँप रहा था। भीतर पहुँचनेपर उसके मुँहकी ओर भी न देख सका, अतः मुझे पता नहीं कि उसकी मुखाकृति कैसी थी। ऐसे मूढ़को वह चपला निकाल बाहर न करती तो और क्या करती? अतः उसने तो मुझे दो-चार खरी-खोटी सुनाकर चलता किया। मैं उस समय तो यह न समझ सका कि मुझे ईश्वरने बचाया है। मैं खिन्न होकर वहाँसे चला आया। मैं शर्मिन्दा हुआ और अपनी मूढ़तापर दुःखी भी हुआ। मुझे ऐसा लगा मानो मुझमें पौरुष ही नहीं है। मैं पीछे यह समझ सका कि मेरी मूढ़ता ही मेरी ढाल थी। ईश्वरने मुझे मूढ़ बनाकर उबार लिया, नहीं तो मैं बुरा काम करने-के विचारसे इस पापके आवासमें जाकर पतित होनेसे कैसे बच सकता था?

दूसरा प्रसंग इससे भी भयंकर था। इस बार मेरा मन जैसा विकाररहित पहले अवसरपर था वैसा विकाररहित न था, हालाँकि मैं जागरूक अधिक था। फिर मेरी पूज्य माताजीके सामने की हुई प्रतिज्ञाकी ढाल भी मेरे पास थी। परन्तु मैं इस अवसर-पर इंग्लैंडमें था। तब मैं पूर्ण युवक था। हम दो मित्र एक ही घरमें रहते थे और कुछ दिनोंके लिए ही उस शहरमें गये थे।[2] मकान-मालिकिन वेश्या-जैसी ही थी। हम दोनों उसके साथ ताश खेलने बैठे। मैं उन दिनों विशेष प्रसंग आनेपर ताश खेल लेता था। इंग्लैंडमें माँ-बेटा भी निर्दोष-भावसे ताश खेल सकते हैं और खेलते हैं। उस समय भी हम इसी तरह ताश खेलने बैठे थे। आरम्भ तो बिलकुल निर्दोष

१. देखिए आत्मकथा, भाग १, अध्याय ७।

२. देखिए आत्मकथा, भाग १, अध्याय २१।

था। मुझे यह पता नही था कि मकान-मालकिन वेश्यावृत्तिसे आजीविका कमाती है। पर ज्यों-ज्यों खेल जमने लगा त्यों-त्यों रंग भी वदलने लगा। उस स्त्रीने कटाक्ष आदि शुरू किये। मै अपने मित्रको ध्यानसे देख रहा था। उन्होंने मर्यादा छोड़ दी थी। मैं ललचा गया। मेरे चेहरेका रंग बदल गया। और उसपर काम-विकार उभर आया। मैं अधीर हो उठा था।

पर जिसे राम बचाता है, उसे कौन मार सकता है? उस समय मेरे मुखमें तो राम न था, पर मेरे हृदयमें अवश्य था। मेरे मुखमें तो वासनाको भड़कानेवाली भाषा थी। मेरे इस भले मित्रने मेरा रंग-ढंग देखा। हम एक-दूसरेसे अच्छी तरह परिचित थे। उन्हें ऐसे कठिन प्रसंगोंकी स्मृति थी जब मैं अपने संकल्पबलसे अपवित्र होनेसे बच सका था। परन्तु इस मित्रने देखा कि इस समय मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। उन्होने यह समझ लिया कि यदि यही हालत रही और अधिक रात बीती तो मै भी पतित हुए बिना न रहूँगा।

विषयी मनुष्योंमें भी सद्वृत्तियां होती है। इस बातकी अनुभूति मुझे इस मित्रके द्वारा पहले-पहल हुई। मेरी दीन दशा देखकर उन्हें दुःख हुआ। मै उनसे उम्रमें छोटा था। उनके माध्यमसे रामने मेरी सहायता की। उन्होंने प्रेमबाण छोड़े, "मोनिया, (मोहनदासका दुलारमें बनाया हुआ रूप। मेरे माता, पिता तथा हमारे कुटुम्बके सबसे बड़े चचेरे भाई, मुझे इसी नामसे पुकारते थे। इस नामसे पुकारनेवाले चौथे ये मित्र थे जो मेरे धर्म-भाई साबित हुए।) सावधान! मैं तो गिर चुका हूँ, यह बात तू जानता है। परन्तु मैं तुझे नही गिरने दूँगा। तू अपनी माँसे की हुई प्रतिज्ञा याद कर। यह काम तेरा नहीं है। तू भाग यहाँसे। जा, सो जा। नही जाता? रख पत्ते!"

मैंने कुछ जवाब दिया या नहीं, यह मुझे याद नही पड़ता। मैंने ताश रख दिये। एक क्षणके लिए दुःखी हुआ। मुझे लज्जा आई और मेरी छाती धड़कने लगी; फिर मैं उठ खड़ा हुआ और अपने बिस्तरपर जा लेटा।

मुझे नींद नही आई और मै रामनाम जपने लगा। मनमें कहने लगा, 'कैसा बचा, मुझे किसने बचाया? प्रतिज्ञाको धन्यवाद। माँको धन्यवाद। मित्रको धन्यवाद। रामको धन्यवाद।' मेरे लिए तो यह चमत्कार ही था। यदि मेरे मित्रने मुझपर रामबाण न छोड़ा होता तो मैं आज कहाँ होता?

राम-बाण वाग्यां रे होय ते जाणे
प्रेम-बाण वाग्यां रे होय ते जाणे?[1]

मेरे लिए तो यह अवसर ईश्वरके साक्षात्कारका था।

अब यदि मुझे सारा संसार कहे कि ईश्वर नही है, राम नहीं है तो मैं उसे झूठा कहूँगा। यदि उस भयंकर रातको मेरा पतन हो गया होता तो आज मै सत्याग्रहकी लड़ाइयाँ न लड़ता होता, अस्पृश्यताके मैलको न धोता होता, चरखेकी पवित्र

१. जिसे रामबाण लगा है, जिसके प्रेमबाण लगा है, वही जान सकता है कि वह क्या चीज है।

ध्वनि न गुंजारता होता; आज अपनेको करोड़ों स्त्रियोंके दर्शन करके पावन होनेका अधिकारी न मानता होता और मेरे आसपास लाखों स्त्रियाँ आज उस प्रकार निःशंक न बैठती होतीं, मानो वे एक बालकके आसपास बैठी हों। मैं उनसे दूर भागता होता और वे भी मुझसे दूर भागती होतीं और यह उचित भी था। मैं अपनी जिंदगीका सबसे अधिक भयंकर समय इस प्रसंगको मानता हूँ। मैंने असंयमकी ओर जाते हुए संयम सीखा। मुझे रामसे विमुख जाते हुए रामके दर्शन हुए। कैसा चमत्कार है यह!

रघुवर तुमको मेरी लाज!
हौं तो पतित पुरातन कहिए
पार उतारो जहाज!

तीसरा प्रसंग हास्यजनक है[1]। एक यात्रामें एक जहाजके कप्तानके साथ मेरा अच्छा मेल-जोल हो गया और एक अंग्रेज यात्रीके साथ भी। जहाँ-जहाँ जहाज लंगर डालता रहा वहाँ-वहाँ कप्तान और कुछ यात्री वेश्यालय खोजते। कप्तानने मुझे अपने साथ बन्दरगाह देखनेके लिए चलनेका न्योता दिया। मैं उसका अर्थ नहीं समझता था। हम एक वेश्याके घरके सामने जाकर खड़े हो गये। तब मैंने समझा कि बन्दरगाह देखनेके लिए जानेका अर्थ क्या है। हमारे सामने तीन स्त्रियाँ खड़ी कर दी गईं। मैं तो स्तब्ध ही रह गया। शर्मके मारे न कुछ बोल सका और न वहाँसे भाग सका। मुझे स्त्री-संगकी इच्छा तो जरा भी न थी। वे दो तो कमरोंमें दाखिल हो गये। तीसरी स्त्री मुझे अपने कमरेमें ले गई। मैं विचार कर ही रहा था कि क्या करूँ; इतनेमें वे दोनों बाहर आ गये। मैं नही कह सकता उस स्त्रीने मेरे सम्बन्धमें क्या ख्याल किया होगा। वह मेरे सामने मुसकरा रही थी। मेरे मनपर उसका कुछ असर न हुआ। हम दोनोंकी भाषाएँ भिन्न थी। सो उससे बातचीत करनेकी तो गुंजाइश थी ही नहीं। जब उन मित्रोंने मुझे पुकारा तो मैं बाहर निकल आया। मैं कुछ शरमाया तो जरूर। उन्होंने अब मुझे इस सम्बन्धमें मूर्ख मान लिया। उन्होंने आपसमें मेरी खिल्ली भी उड़ाई। उन्हें मुझपर तरस तो आया ही। मैं उसी दिनसे कप्तानकी निगाहमें दुनियाके मूर्खोंमें गिना जाने लगा। उसने मुझे फिर कभी बन्दरगाह देखनेके लिए चलनेका न्योता नही दिया। यदि मैं अधिक समय वहाँ रहता अथवा उस स्त्रीकी भाषा जानता होता तो मैं नहीं कह सकता, मेरी क्या हालत होती। पर मैंने इतना तो समझ लिया कि मैं उस दिन भी अपने पुरुषार्थके बलसे नही बचा था, बल्कि ईश्वरने ही मुझे इस सम्बन्धमें मूढ़ रखकर बचाया था।

उस भाषणके समय मेरे मनमें ये तीन ही प्रसंग थे। पाठक यह न समझें कि मेरे सम्मुख ऐसे और प्रसंग नही आये थे; किन्तु मैं यह जरूर कहना चाहता हूँ कि मैं हर अवसरपर रामनामके बलपर बचा हूँ। ईश्वर खाली हाथ जानेवाले निर्बलको ही बल देता है।

१. देखिए आत्मकथा, भाग २, अ० ६।

जब लग गज बल अपनों बरत्यौ
नेक सर्‌यो नहिं काम।
निर्बल ह्वै बल राम पुकार्‌यो
आये आधे नाम।

तब यह रामनाम है क्या चीज? क्या तोतेकी तरह रामनाम रटना? हरगिज नहीं। यदि ऐसा हो तो हम सब रामनाम रटकर पार हो जा सकते हैं। रामनामका उच्चारण तो हृदयसे ही किया जाना चाहिए। फिर उसका उच्चारण शुद्ध न हो तो हर्ज नहीं। हृदयकी तोतली बोली ईश्वरके दरबारमें कबूल होती है। हृदय भले ही 'मरा मरा' पुकारता रहे — फिर भी हृदयसे निकली पुकार जमा खातेमें लिखी जायेगी। परन्तु यदि मुख रामनामका शुद्ध उच्चारण करता रहे और हृदयका स्वामी रावण हो तो वह शुद्ध उच्चारण भी नामेकी ओर लिखा जायेगा।

तुलसीदासने 'मुखमें राम बगलमें छुरी' की उक्ति चरितार्थ करनेवाले बगला भगतके लिए रामनाम-महिमा नहीं गाई। उसके सीधे पासे भी उलटे पड़ेंगे। किन्तु जिसने रामको हृदयमें स्थान दिया है उसके उलटे पासे भी सीधे पड़ेंगे। 'बिगरी'का सुधारनेवाला राम ही है और इसीसे भक्त सूरदासने कहा है —

बिगरी कौन सुधारे?
राम बिन बिगरी कौन सुधारे रे।
बनी-बनीके सब कोई साथी,
बिगरीके नहिं कोई रे।

इसलिए पाठक खूब समझ लें कि रामनामके जपका सम्बन्ध हृदयसे है। जहाँ वाणी और मनमें एकता नहीं वहाँ वाणी केवल मिथ्या चीज है, दम्भ है, शब्दजाल है। ऐसे जपसे चाहे संसार भले धोखा खा जाये, पर वह अन्तर्यामी राम कहीं धोखा खा सकता है? हनुमानने सीताकी दी हुई मणिमालाके मनके फोड़ डाले — क्योंकि वे देखना चाहते थे कि उनके भीतर रामनाम अंकित है या नहीं? अपनेको समझदार समझनेवाले सुभटोंने उनसे पूछा, 'सीताजीकी मणिमालाका ऐसा अनादर क्यों?' हनुमानने उत्तर दिया, 'यदि उसके मनकोंमें रामनाम अंकित न हो तो वह सीताजीकी दी हुई होनेपर भी मेरे लिए भार-रूप ही होगी।' तब उन समझदार सुभटोंने मुँह बनाकर पूछा, 'क्या तुम्हारे भीतर रामनाम अंकित है।' हनुमानने तुरन्त छुरीसे अपना हृदय चीरकर दिखाया और कहा, 'देखो, इसमें रामनामके सिवा और कुछ हो तो मुझे बताओ।' सुभट लज्जित हुए। हनुमानपर पुष्पवृष्टि हुई और उस दिनसे रामकथाके समय हनुमानका आवाहन आरम्भ हुआ।

हो सकता है यह कथा हो या नाटककारकी मनगढन्त रचना हो, पर उसका सार नित्य सत्य है। जो हृदयमें है वही सच है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-५-१९२५

६०. सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका नाम कौन नहीं जानता? एक समय था जब वे बंगाल-के सिंह माने जाते थे। उन दिनों वे कांग्रेसके महान् नेताओंमें से एक थे। नवबंगाल उनकी पूजा करता था। उनका सिंहनाद सुननेके लिए हजारों युवक उत्कण्ठित रहते थे। जब सुरेन्द्रनाथ बोलनेके लिए खड़े होते थे तब लोग उनके भाषण सुनते-सुनते थकते ही नहीं थे। सन् १८९५में जब पूनामें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ था, तब सर सुरेन्द्रनाथ उसके अध्यक्ष थे। उनका पूरा भाषण अठन्नरक आकारके अस्सी पृष्ठोंकी पुस्तिकामें आया था। उन्होंने यह भाषण लिखकर तैयार किया था; किन्तु पूरा भाषण मौखिक ही दिया था और फिर भी छपे भाषण और मौखिक भाषणमें एक शब्दका भी अन्तर नहीं था। केवल कुछ आँकड़े पढ़नेके लिए उन्होंने अपना कागज उठाया था। भाषण देनेमें उन्हें तीन घंटे लगे थे। कहा जाता है कि लोगोंने तीन घंटेका यह भाषण ध्यानपूर्वक सुना था।

अब जमाना बदल गया है। आज तो लोग अच्छेसे-अच्छे वक्ताको एक घंटा भी देनेके लिए तैयार नहीं हैं। शानदार भाषणोंका मोह अब बहुत-कुछ चला गया लगता है।

किन्तु केवल उनकी चमत्कारी स्मरणशक्ति अथवा ऊँची वक्तृत्व कला ही सर सुरेन्द्रनाथके गुण न थे। उन्होंने सरकारसे जमकर लोहा भी लिया और वे जेल भी गये। वे उच्च कोटिके शिक्षक भी रह चुके हैं। उनकी सेवाएँ बहुमूल्य थीं। आज हम उनका उतना मूल्य नहीं मानते, इसमें दोष हमारा ही है। उन्होंने अपने समयमें जो काम किया, उसे कोई दूसरा शायद ही कर सकता था। समय बदल जानेके कारण पिछले जमानेके लोगोंके गुणोंको भूल जाना कृतघ्नता है। उन लोगोंकी सेवाका माप उस समयके मापदण्डसे ही करना चाहिए। यदि हम उनके लिए आजका माप-दण्ड काममें लेते हैं तो हम उनके और अपने, दोनोंके साथ अन्याय करते हैं। अपने साथ अन्याय इसलिए कि यदि हम अपनी अतीतकी पूँजीको भुला देंगे तो उस हद तक हमें हानि सहनी पड़ेगी। सर सुरेन्द्रनाथके और मेरे विचारोंमें बहुत कम साम्य है, फिर भी मेरे मनमें उनके प्रति जितना आदरभाव पहले था उतना ही आज भी है। उन्होंने देशकी जो सेवा की है, मैं तो उसे कदापि नहीं भूल सकता। इसलिए मैंने जब उनकी बीमारीकी खबर सुनी तो मैं उनके बंगलेपर उनके दर्शनार्थ गया।[1] मैंने उनका बंगला पहले कभी नहीं देखा था। वे कलकत्तेके एक शान्त उपनगर बैरक-पुरमें रहते हैं। उनका बंगला एक बड़ी जमीनमें सुन्दर उद्यानके बीचमें है। उसके सामने गंगा बहती है। एकान्तमें होनेसे बंगलेमें बहुत शान्ति है।

मेरा खयाल था कि वे मुझे चारपाईपर पड़े मिलेंगे, किन्तु वे तो पुस्तकोंसे लदी एक मेजके पास कुर्सीपर बैठे हुए थे। वे मुझे देखकर खड़े हो गये और बहुत

१. ६ मई, १९२५को।

प्रेमसे छातीसे लगा कर मिले। वे क्षीणकाय तो हो गये थे, किन्तु फिर भी सीधे खड़े थे। उनकी आवाजमें कोई कमजोरी नहीं थी। उनकी उम्र ७७ साल है, फिर भी वे हर बातकी चर्चा १७ वर्षीय नवयुवककी तरह दिलचस्पीसे करते थे। मैंने जब उनकी स्मरणशक्तिकी प्रशंसाकी तो उन्होंने कहा, 'मेरी स्मरणशक्ति तो आज भी ज्योंकी-त्यों है। मैं जब पाँच वर्षका था तबकी बातें भी मुझे इतनी अच्छी तरह याद हैं कि मैं उनका वर्णन हू-बहू कर सकता हूँ।' उन्होंने अपने संस्मरणोंकी पुस्तक अभी हालमें ही प्रकाशित की है। उसे लिखनेमें उनको नौ वर्ष लगे थे। उन्होंने जिन कापियोंमें ये संस्मरण लिखे थे वे मुझे दिखाईं। वे फुलस्केप आकारकी पाँच या सात कापियाँ थीं। उनकी लिखावट इतनी साफ और एकसार है कि उसको देखकर मुझे गर्वका अनुभव हुआ। लिखते समय उनका हाथ कहीं भी काँपता दिखाई नहीं दिया।

मैंने पूछा, 'इस समय आप क्या-क्या पढ़ रहे हैं?' उन्होंने हँसकर कहा, 'बताऊँ? मैं तो अपने संस्मरणोंको ही दूसरी आवृत्तिके लिए पढ़ रहा हूँ। मुझे उनमें कुछ संशोधन-परिवर्धन करना है। पुस्तक-विक्रेताओंने सूचित किया है कि एक वर्षके भीतर सब प्रतियाँ बिक जायेंगी; इसलिए मैं [दूसरी आवृत्तिके लिए] तैयार हो जाना चाहता हूँ।'

वे अपनी आसपासकी तमाम बातोंमें उत्साहसे दिलचस्पी लेते हैं। उन्होंने मुझसे यह वादा करा लिया है कि बंगाल छोड़नेसे पहले मैं उनसे एक बार फिर मिलूँ। उन्होंने कहा, 'यदि आपको बैरकपुर आनेका समय न मिले तो मैं खुद आपसे मिलने जरूर आऊँगा।' मैंने जवाब दिया, 'नहीं, मैं आपको तकलीफ नहीं देना चाहता, मैं लौटती बार आपसे मिलनेका वक्त जरूर निकालूँगा।"[1]

जब उनकी शारीरिक शक्तिकी बात आई तो उन्होंने कहा, 'मैं ९१ वर्षकी आयुतक जीऊँगा। मुझमें अभी भी इतना उत्साह है कि इतने वर्ष कोई अधिक नहीं लगते।'

भारतभूषण मालवीयजीने अपनी आयु सौ वर्ष नियत की है। इसलिए मैंने पूछा, 'आप मालवीयजीकी तरह अपनी आयु सौ वर्ष क्यों नहीं कूतते?' उन्होंने उत्तर दिया, 'मुझे नहीं लगता कि मैं इतनी आयुतक काम करने योग्य रहूँगा। और अशक्त हो जानेके बाद मैं जीना नहीं चाहता।'

उनका विश्वास है कि उनकी दीर्घायुका रहस्य उनका अखण्ड नियमपालन और विधिवत् काम करनेका अभ्यास है। मैं सुन चुका था और उन्होंने भी इस बातका समर्थन किया कि उन्होंने अपने इतने कार्यव्यस्त जीवनमें भी रातकी निश्चित गाड़ीसे नित्य बैरकपुर वापस आनेमें कभी नागा नहीं किया। उन्होंने कहा, लोकसेवा करते हुए मैंने काममें संलग्न रहनेकी जितनी आवश्यकता समझी थी उतनी ही आवश्यकता नियमित रूपसे आराम करनेकी भी। इसलिए मैं रातको आराम न करना सेवाच्युत होनेका पाप मानता हूँ।

१. यह अनुच्छेद यंग इंडियासे उद्धृत है।

महलसे झोंपड़ोमें

मैं जहाँ भी जाता हूँ वहाँ गरीब तो मेरे साथ होते ही हैं। मैं जहाँ भी जाऊँ वे मुझे ढूंढ़ निकालते हैं। मेरे बैरकपुर जानेकी खबर उनको किसीने नहीं दी थी। वहाँ आसपास मजदूरवर्गके लोगोंकी बस्ती है, यह मुझे मालूम न था। किन्तु मुझे सर सुरेन्द्रनाथके बंगलेपर पहुँचे थोड़ी ही देर हुई होगी कि उनके बगीचेमें आस-पाससे सौ-दो सौ गरीब लोग दौड़ कर आ गये। पता नहीं, क्षण-भरमें ही उनको मेरे आनेकी खबर कैसे लग गई। सामान्यतः तो ये लोग किसी बड़े आदमीके बंगलेमें इस प्रकार घुस आनेमें डरते हैं, संकोच करते हैं। किन्तु जहाँ मैं जाता हूँ वहाँ उनको भी घुस आनेका अधिकार है, यह मानकर वे निडर होकर भीतर चले आते हैं और उनको कोई रोकता भी नहीं है। इन गरीबोंमें एक दो बिहारी भी थे। वे मजदूरोंके मुहल्लेमें पढ़ानेका काम करते थे। बैरकपुर कुछ ऊँचाईपर स्थित है। वहाँ पानीका तालाब है। उसमें गंगाका पानी भर दिया जाता है और साफ भी किया जाता है। इस काममें वहाँ सैकड़ों मजदूर लगे हुए हैं। ये मजदूर बिहार और संयुक्त प्रान्तके जिलोंके हैं। एक बिहारी अध्यापकने मुझे अपने घर चलनेके लिए निमन्त्रित किया और कहा कि वहाँ चल कर मैं उनका कताईका काम और खादी भण्डार देखूँ। वे लोग ६ चरखोंपर काम करते हैं और बिहारसे खादी मँगाकर मजदूरोंको बेचते हैं। इस निमन्त्रणका तिरस्कार अथवा इनकार भला कैसे किया जा सकता था? हम वहाँ गये। मजदूर लोग हमारे इर्दगिर्द इकट्ठे हो गये। उस छोटेसे घरमें चरखे तो अवश्य थे। दूसरी ओर एक बेंचपर तीन या चार सौ रुपयेकी खादी सुन्दर ढंगसे सजी हुई रखी थी।

उसने कहा: 'इन चरखोंको मैं, मेरा भाई और कुछ मित्र चलाते हैं। हम पूनियाँ कलकत्तेसे ले आते हैं। हम इस खादीको कोई नफा लिये बिना मजदूरोंमें बेचते हैं। हम चार या पाँच लोग तो केवल खादी ही पहनते हैं। इसके खर्चके लिए पैसा चाहिए इसलिए मजदूर लोग मुझे अपनी कमाईमें से रुपये पीछे एक पैसा देते हैं। मैं उसमें से अपने लिए कुछ नहीं रखता। किन्तु खादीपर जो अधिक खर्च होता है, वह उसीसे निकलता है।' मैंने पूछा, 'आप बंगालमें बनी खादीका व्यवहार क्यों नहीं करते?' उन्होंने उत्तर दिया, 'हमें बिहारकी खादी बेचनी चाहिए, हम यहाँ बैठे जितनी सहायता कर सकते हैं, उतनी करते हैं।' इस प्रकार ये युवक गरीब मज-दूरोंमें सालमें लगभग २,५०० रुपयेकी खादी बेचते हैं। इस प्रकार चुपचाप प्रसिद्धि-की आशा या इच्छा किये बिना न मालूम कितने गरीब और निःस्वार्थी युवक खादी-का प्रचार कर रहे होंगे। इसकी गिनती कौन कर सकता है? सर सुरेन्द्रनाथ भी खादी या चरखेकी प्रवृत्तिसे सहमत हुए बिना नहीं रह सके। इस गरीब युवकने मुझे अपनी कुटियासे विदा करनेके पूर्व अपना बहीखाता दिखाया जिसमें इस खादीके क्रय-विक्रयका पूरा हिसाब सुन्दर अक्षरोंमें लिखा हुआ था।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-५-१९२५

६१. टिप्पणियाँ

सादगी बनाम अव्यवस्था

सार्वजनिक कार्यमें आनेवाली कठिनाइयोंकी चर्चा करते हुए एक नवयुवक लिखता है:[1]

'यह कहना कठिन है कि शिक्षित वर्गके लोग उन कठिनाइयोंके कारण सार्वजनिक काम हाथमें लेनेसे किस हदतक रुकते हैं। मेरी मान्यता तो यह है कि इन कठिनाइयोंसे कोई भी सच्चा सेवक सेवा करनेसे विरत नहीं होता। चाय पीनेवाले चाय पीते हैं और सेवाधर्मका पालन करते हैं। बहुतसे कार्यकर्त्ता दूसरे दर्जेमें रेलयात्रा करते हैं; किन्तु वे फिर भी देशसेवा कर रहे हैं। चाय पीना या दूसरे दर्जेमें रेलयात्रा करना मूलतः पाप नहीं। जो चायके बिना काम चला सके वह चलाये और दूसरे दर्जेमें रेलयात्राके बिना भी काम चला सके तो चला ले। किन्तु जिसका शरीर तीसरे दर्जेमें रेलयात्रा करने लायक न हो वह खुशीसे दूसरे दर्जेमें रेलयात्रा करके सेवाकार्य कर सकता है। यह बात ऐसी है जो स्पष्ट रूपसे समझमें आ सकती है। जो सादगीके नामपर अव्यवस्था और अनियमितता करते हैं, वे तो पाप ही करते हैं। सादगी अव्यवस्थाकी विरोधी वस्तु है, क्योंकि सादगी गुण है और अव्यवस्था अवगुण। आडम्बरमें भी अव्यवस्था दिखाई देती है। अव्यवस्थित मनुष्य सादा नहीं माना जा सकता। सादगी सीखनेसे आ सकती है। जिसे मेज-कुर्सी न मिल सके और वह उनके बिना काम चलाये तो वह सादा नहीं होता। उसे तो ज्यादाकी जरूरत होनेपर भी कमसे-कममें काम चलाना पड़ता है, इसलिए वह दुःखी होता है। सादा मनुष्य ज्यादा मिलनेपर भी कममें काम चलाकर सन्तुष्ट रहता है और ज्यादाका उपयोग करनेमें दुःख मानता है।

जो बात अव्यवस्था और अनियमितताके बारेमें ठीक है, वही अस्वच्छताके बारेमें भी ठीक है। सादा मनुष्य कभी अस्वच्छ रह ही नहीं सकता। फिर भी हम जानते हैं कि बहुतसे सादा दिखनेवाले मनुष्य बहुत अस्वच्छ रहते हैं और सादगीको बदनाम करते हैं। जो लोग खादी पहनते हैं, उनका धर्म है कि वे खादीके कपड़ेको सदा दूध-जैसा सफेद रखें। वे उसे नित्य धोयें और यदि वह फट जाये तो उसमें पैवन्द लगा लें। पैवन्द लगा लेना शर्मकी बात नहीं है, किन्तु फटा कपड़ा पहनना आलसी होनेका लक्षण है; अतः शर्मकी बात है। सादगीमें सफाई तो होनी ही चाहिए। परिग्रही रहकर स्वच्छता बरतनेकी कोशिश करें तो और भी परिग्रह करना पड़ता

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने लिखा था कि आप सार्वजनिक कार्यकर्ताओंको खान-पान और रहन-सहनमें सादगी रखनेका उपदेश देते हैं; इसका अर्थ बहुतोंने अनियमितता और अव्यवस्था मान रखा है।

है। इसीलिए तो मनुष्य सादगी अपनाता है। इसलिए सादगी अपनानेवालोंको चाहिए कि वे अव्यवस्था और अस्वच्छताको त्याग दें।

ऐसे गुणोंका विकास करनेके लिए थोड़ा-बहुत अवकाश तो अवश्य चाहिए। दुकान-कर्मचारियोंको प्रातःकालसे रात गयेतक दुकानोंमें बैठना ही पड़ता है। वे इसीलिए अस्वच्छता-जैसे दोषोंको त्यागनेका विचारतक नहीं कर सकते। उन्हें रूढ़िके कारण जितनी स्वच्छता रखनी पड़ती है वे उतनी स्वच्छता रखकर काम चला लेते हैं। वे सादगीके निमित्त सादगी नहीं रखते। वे मजबूरीके कारण साधु-जैसे लगते हैं। यदि वे धन कमा सकें तो शक्तिभर पूरा परिग्रह करें। फिर भी ऐसे लोगोंके लिए कामके घंटे कम करनेकी बेशक जरूरत है। वे अपने बचे हुए समयका दुरुपयोग करें, यह बिल्कुल सम्भव है; किन्तु यह जोखिम उठानेके ही योग्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसका उपाय स्वयं ये मुनीम आदि कर्मचारी ही कर सकते हैं। यदि उनमें आत्मसुधार करनेका उत्साह हो तो वे उसका मार्ग भी खोज निकाल सकते हैं। यदि मालिकोंके मनमें दया हो या वे अपना स्वार्थ समझते हों तो वे भी उपयुक्त सुधार कर सकते हैं।

कातनेवालोंसे

मैं कई बार लिख चुका हूँ कि सूत कातनेका मतलब ज्यों-त्यों करके तार निकालना नहीं है। आटेको किसी तरह गुमड़गुमड़ा कर जैसे-तैसे बेल-बाल कर चाहे जैसी आगपर कच्चा-पक्का सेक लें तो रोटी पकाना नहीं हो जाता और यदि उसे रोटी मानकर खाया जाये तो बदहजमी हो जाती है। इसी तरह चाहे जैसी रुई लेकर भली-बुरी धुनकर उसका मोटा-झोटा तार निकाल लें तो वह सूत नहीं होता। सूत तो वही होता है जो आसानीसे बुना जा सके। हमें इस बारेमें मिलके सूतको अपने लिए आदर्श मानना चाहिए। हम जबतक वैसा सूत नहीं कातने लगते तबतक यही माना जायेगा कि हममें खामी है। यह अनुभवसिद्ध है कि हम उतना अच्छा ही नहीं बल्कि उससे भी अच्छा सूत कात सकते हैं। मिलके अच्छे सूतसे हाथकता अच्छा सूत हमेशा ज्यादा अच्छा होता है। उसके बने कपड़ेमें जो मुलायमी होती है वह मिलके कपड़ेमें कभी नहीं आती। परन्तु जबतक हम उस स्तरपर नहीं पहुँच जाते तबतक खादीके खिलाफ शिकायतें आती रहेंगी और हर बुननेवालेको खादी बुननेके लिए तैयार करनेमें दिक्कत होगी। हालमें अ० भा० खादी बोर्डके पास एक खादी कार्यकर्त्ताका पत्र आया है। मुझे ये विचार उसके कारण लिखने पड़े हैं। कताई-सदस्यतासे पहले कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्यको अपना सूत अ० भा० खादी बोर्डको भेजना पड़ता था। उस सूतकी खादी बुनवानेमें जो-जो अनुभव हुए हैं वे बड़े कीमती माने जा सकते हैं। पूर्वोक्त रिपोर्ट इस अनुभवका ही एक परिणाम है। उसमें वे कार्यकर्त्ता लिखते हैं कि सूत इतना कच्चा-कमजोर था कि बुननेवाला उसे बुन नहीं सकता। फिर सूत ठीक तरह अटेरा नहीं गया है और अटेरनका माप हरएकने अपनी-अपनी मर्जीके मुताबिक रखा है। इससे बुनकरोंको कड़े भरनेमें बहुत समय लगाना पड़ता है। ये दोनों कठिनाइयाँ दूर की जानी चाहिए। कार्यसमितिके

सदस्य तो इस बारेमें सहज ही सावधानी रख सकते थे। परन्तु लगता है कि उन्होंने इसकी चिन्ता ही नहीं की। फलतः या तो ऐसे सूतकी बुनाई बन्द करनी पड़ेगी या उसे किसी मामूली काममें लेना पड़ेगा।

अब कर्त्तव्य क्या है?

अब तो कताई सदस्यतामें शामिल हो गई है। इससे कातनेवालोंकी संख्या तो बढ़नी चाहिए। इसलिए पूर्वोक्त बात हर कातनेवालेको समझ लेनी चाहिए। हरएक कातनेवाला इन दो बातोंको याद रखे:

१. सूत बटदार और एक-सा काता जाये।

२. सूत चार-फुटे अटेरनपर अटेरा जाये और उसमें हर १०० गजपर बन्द लगाया जाये।

ये दो बातें न हों तो वह सूत, सूत माने जाने लायक नहीं है। अधिक सावधान कातनेवाले रुई देखकर उसकी किस्मको पहचान लें, उसे भली-भांति चुनें या चुनवाएँ और उससे जितने अंकका सूत निकल सके उतने अंकका सूत कातें तथा हर वक्त सूतपर अटेरनेसे पहले पानीके छींटे दें। इतना करनेपर कहना चाहिए कि उसने अपने प्रति तथा देशके प्रति अपना कर्त्तव्य निभाया है। कह सकते हैं कि ऐसा व्यक्ति रुईसे जितना ले सकता है उतना लेता है और सूतके अर्थशास्त्रको समझता है। यदि हम आम तौरपर २० अंकका सूत कातने लगें तो खादी बहुत सस्ती हो सकती है और स्त्रियाँ इसका जो विरोध करती हैं वह विरोध बन्द हो सकता है।

मताधिकारी अपने धर्मको समझ लें तो हमें अच्छेसे-अच्छा सूत रुईके दामों मिल सकता है। यदि हम इतना कर सकें तो खादी-सम्बन्धी तमाम कठिनाइयाँ अपने-आप दूर हो जायेंगी। मताधिकारियोंका प्रामाणिक परिश्रम खादीकी रक्षा है, सहायता है, राज्याश्रय है।

क्या मताधिकारी — कातनेवाले भाई और बहन — मेरी इस प्रार्थनापर ध्यान देंगे?

अकालमें मदद

अकालके समयमें चरखा क्या काम कर सकता है इसकी एक मिसाल पंजाबसे इस तरह मिली है:[1]

मैंने यह अंश अ० भा० खादी बोर्डको मिली रिपोर्टसे लिया है। उसके सम्बन्ध-में जानने योग्य बात तो यह है कि जहाँ पहले लोगोंको अनाज दिया जाता था वहाँ अब उनसे काम लेकर उन्हें पैसे दिये जाते हैं। हम यह भी देखते हैं कि काम कराके पैसे देनेसे काम करनेवालेको काम सीखना पड़ता है। यदि व्यवस्थापक सूतकी किस्मके विषयमें सावधान रहें तो जो बिना सूतकी किस्म देखे सबको एक ही दरसे दाम दे दिये जाते हैं, वे न दिये जायें, संस्थाका जो पैसा नाहक खर्च होता है, वह न हो और गरीबोंके साथ जो अन्याय अभी होता है, वह न होने पाये।

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

फिर ऐसे कामोंमें हिसाब-किताब तो साफ रखना ही चाहिए। पर हम देखते हैं कि वह नहीं रहता। इसका कारण अप्रामाणिकता नहीं बल्कि अनुभवकी कमी और व्यवस्था-विभागकी लापरवाही मालूम होती है। दो पैसे ज्यादा देकर भी कामकी अच्छाई कायम रखी जा सके तो ऐसे काम अधिकांशमें अवश्य ही स्वावलम्बी बनाये जा सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-५-१९२५

६२. पत्र: देवदास गांधीको

मौनवार

वैशाख वदी १० [१७ मई, १९२५][1]

चि० देवदास,

मैं तुम्हारे सम्बन्धमें निर्भय रहता हूँ, इसलिए पत्र नहीं लिखता। फिर मैं जानता हूँ कि तुमको मेरे समाचार तो मिलते रहते हैं। मुझे तुम्हारा नवी जाना ठीक लगा है। दूसरोंको भी कुछ ठंडक मिलेगी। करोड़ों लोगोंको तो सर्दी और गर्मी दोनों समान रूपसे सहनी ही होती है। हम उस तरह नहीं सहते; यह मैं चाहता हूँ कि हम भी उनके जैसे रहते। किन्तु हमारा जीवन जिस तरहका बन गया है, वह जल्दी कैसे बदल सकता है।

मैं तो प्रसन्न हूँ। सतीश बाबूकी व्यवस्थाके बारेमें तो कुछ कहनेकी जरूरत ही क्या हो सकती है। क्रिस्टोदासको[2] एक दिन ज्वर आ गया था। सब बच्चों और बच्चियोंको आशीर्वाद।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २०४६) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रपर डाककी मुहर १८-५-१९२५ की है; वैशाख वदी दशमी १७ मईको थी।
२. गांधीजीके सचिव।

६३. भाषण: ढाकाकी सार्वजनिक सभामें[1]

१७ मई, १९२५

मित्रो,

मेरा आम नियम है कि मैं अभिनन्दन-पत्रोंका उत्तर हिन्दुस्तानीमें ही देता हूँ। पर इस नियमको मैं मुख्यतः जिला बोर्डका अभिनन्दन-पत्र पढ़नेवाले उन सज्जनके खयालसे तोड़ रहा हूँ,[2] जो अभिनन्दन-पत्र पढ़नेके बजाय उसे जबानी ही जैसाका तैसा सुना गये। उससे मुझे सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके उन दिनों पूनामें दिये गये एक भाषणकी याद आ जाती है जब उन्हें नाइटका खिताब नहीं दिया गया था। मैं तो तब किशोर ही था; किन्तु वहां उपस्थित लोगोंने मुझे बताया कि उन्होंने अठबरक आकारके लगभग ८० पृष्ठोंका अपना वह भाषण, एक भी शब्द इधर-उधर किये बिना, मुँहजबानी सुनाया था। इससे मुझे बाबू अम्बिकाचरण मजूमदारकी भी याद आ जाती है, जिनका भाषण सुननेका सुअवसर मुझे लखनऊमें मिला था। उन्होंने अपना भाषण जबानी सुनाना शुरू किया और डेढ़ पृष्ठतक तो वे एक भी अक्षर इधर-उधर किये बिना सुनाते चले गये। और अगर उन्हें मित्रोंने समाप्त करनेका संकेत न किया होता तो बड़े-बड़े ३० पृष्ठोंके उस भाषणका सुनना शायद लखनऊके लोगोंको गराँ गुजरता और वे उसे सुनाते चले जानेके लिए न कहते।

मुझे पता नहीं कि उसका शेष भाग किसने सुनाया था। बंगाल आनेपर मैंने खुद भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रोंके सम्बन्धमें अधिकांशतः ऐसा ही देखा।

मुझे आपसे या स्वयं अपनेसे मनकी तीव्र वेदना या उत्कण्ठाको छिपाना नहीं चाहिए। मुझे बंगाल आनेपर बंगला भाषाकी सुन्दर ध्वनि सुननेको मिलती रही है। इसलिए चाहे कितना ही शानदार क्यों न हो, अंग्रेजीके धाराप्रवाह भाषणसे मेरी रक्षा करें। यदि आप हिन्दुस्तानीमें अपनी बात न कह सकें तो शुद्ध बंगलामें ही कहें। शायद बंगाल सारे भारतको एक यही सन्देश देना चाहता है। मेरा खयाल है कि अब बहुत आवश्यक हो गया है कि हम अपनी कार्यवाहियाँ, विशेषकर ऐसी कार्यवाहियाँ, प्रान्तीय भाषाओं या हिन्दुस्तानीमें ही चलायें। एक समय ऐसा आयेगा जब हम सब अंग्रेजी भाषाका प्रयोग करनेमें शर्म मानेंगे। मेरा खयाल है कि यह बात मैं पहले भी कह चुका हूँ। आपके अभिनन्दन-पत्रोंमें व्यक्त उद्‌गारोंके लिए आपको धन्यवाद देना मेरा कर्तव्य है। लेकिन मैं उन सुन्दर मंजूषाओंके लिए आपको धन्यवाद नहीं देता जिनमें रखकर मुझे अभिनन्दन-पत्र दिये गये हैं। मेरे पास कोई सम्पत्ति नहीं है और न ऐसी चीजोंका मेरे लिए कोई उपयोग ही है। महत्त्वपूर्ण तो उसमें

१. यह भाषण जिला बोर्ड, नगरपालिका और पीपुल्स एसोसिएशनकी ओरसे भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें दिया गया था।

२. यह वाक्य हिन्दू, १८-५-१९२५ की रिपोर्टपर आधारित है।

रखे हुए कागजके वे टुकड़े ही हैं जो आपके हृदयके उद्‌गार व्यक्त करते है और जिनके लिए मेरे हृदयमें भी स्थान है। आपने ढाकाके गत वैभवकी बात की। यह बहुत ही सच है। मैंने एक स्थानसे दूसरे स्थानका भ्रमण करते हुए यह देख लिया है कि बंगालके लिए अपने पुराने गौरवको पुनः प्राप्त कर लेनेकी असीम सम्भावनाएँ हैं। ऐसा कुछ कीजिए जिसमें बंगाल एक बार फिर अपने कच्चे माल, चावल, जूट या रुईका नहीं, बल्कि सुन्दर कपड़ेका निर्यात करने लगे और अपनी उस महान् कलाको पुनः प्रतिष्ठित करे, जिसके लिए वह प्रसिद्ध था। यह निश्चित ही समझिए कि जब-तक आप हाथकताईकी समस्याको नहीं सुलझाते, तबतक सुन्दरतम कलाओंको पुनः प्रतिष्ठित नही किया जा सकता। मुझपर यह आरोप लगाया जाता है कि भारत जिसके लिए इतना प्रसिद्ध रहा है मुझमें उस कलाके सौन्दर्यकी अनुभूतिकी क्षमता नहीं है। लेकिन मेरा हृदय उस सुन्दर कलाके यहाँसे उठ जानेपर रोता है। हमें अपने बनाये हुए कपड़े चाहिए। जबतक हम अपनी जरूरतका सूत खुद नही कातते, हमारे पास अपना बनाया कपड़ा नहीं हो सकता। अगर आप पेरिस या जापानसे मलमलका आयात करेंगे, तो वह आपका या मेरा नुकसान ही होगा। और अगर आप पेरिस या जापानसे बहुत ही महीन सूतका, जैसा कि मैंने ढाकामें देखा, आयात करेंगे तो आप इस कलाको फिर कभी प्रतिष्ठित नही कर पायेंगे। ऐसी अवस्थामें आप बंगालके करोड़ों मूक लोगोंके लिए क्या कर पायेंगे? आप उन बहनोंके लिए क्या कर पायेंगे, जिनका पर्देके पीछे दम घुटा जा रहा है? मैं कोमिल्लाके एक गाँवमें गया था। वहाँ हमारी उन बहनोंके, जिन्हे जिला बोर्डमें अपना कोई प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार नहीं है, एक प्रतिनिधिने इस बातका आग्रह किया कि उन्हें रुई दी जाये और सूत ले लिया जाये। अगर आप वहाँ उनसे सूत प्राप्त करनेकी व्यवस्था कर देते और उससे उन्हें भले ही एक, दो या तीन रुपये ही मिलते है तो आप इस तरह उनको रोटी दे पाते हैं। यह उनकी कितनी बड़ी सेवा है। क्या आप ऐसा समझते हैं कि आपका जिला बोर्ड और पीपुल्स एसोसिएशन उनकी मदद कर सकता है?

मैं अभी-अभी अस्पृश्योंकी, भंगियोंकी सभासे आया हूँ। ये लोग आपके शहरको साफ-सुथरा रखते हैं। उनकी सेवाएँ आपके लिए अनिवार्य हैं। उन्होंने मुझे बताया कि उनके ८० बच्चे हैं, जिन्हें वे पढ़ाना चाहते हैं; लेकिन उनके लिए कोई स्कूल नही है। उनसे मेरे यह पूछनेपर कि क्या आप उनके लिए कोई स्कूल खुलवाना चाहते हैं, उनमें से एकने कहा कि 'आपको दिये मानपत्रमें हमने स्कूलकी माँग की है।'

खद्दरपर बोलते हुए महात्माजीने कहा:

अगर आप और मध्यमवर्गीय लोग प्रतिदिन सिर्फ आधा घंटा कताईमें लगायें तो मैं ढाकाको खद्दरसे भर दे सकता हूँ। फिर तो हम जापान, मैंचेस्टर या किसी भी दूसरी जगहसे स्पर्धा कर सकते है। लोग खद्दर पहनना चाहते हैं। यह पक्की बात है कि वे सब खद्दर पहनने लगेंगे। अगर आप तय करलें तो ढाकाको कपड़े की

जरूरत पूरी करनेके लिए काफी खद्दर मिलने लगे। आप ढाकाके वैभवको आसानीके साथ पुनः प्रतिष्ठित कर सकते हैं और पहलेसे भी अधिक शानदार ढंगसे। अब मैं आपका अधिक समय नहीं लूंगा।

आपने हिन्दू-मुस्लिम समस्याकी भी चर्चा की है। मैं इस समय अली-बन्धुओंमें से किन्हींको साथ लेकर नहीं आया हूँ, इसका मुझे अफसोस है। अगर वे होते तो आप लोगोंने इसका जो हार्दिक प्रमाण दिया है, मेरे साथ वे भी उसे सुनते।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १९-५-१९२५

६४. ढाकाके विद्यार्थियोंके साथ बातचीत[1]

१७ मई, १९२५

ढाकामें विद्यार्थियोंकी सभा मन्सूख कर दी गई थी; लेकिन गांधीजीने विद्यार्थियोंसे कहा कि सभी सार्वजनिक समारोहोंके समाप्त हो जानेपर वे उनसे आकर मिलें और बातचीत करें। इस तरह विद्यार्थियोंको इतना मिला जितनेकी उन्होंने सपनेमें भी कल्पना न की होगी। गांधीजी छेड़ दिए जानेपर अपनी बात बहुत ही अच्छी तरह कहते हैं। एक मित्रने उन्हें यह कहकर उकसा दिया कि चरखा चलाना शक्ति और समयकी बर्बादी है। दूसरेने कहा कि आपकी सलाहमें श्रम-विभाजनके सिद्धान्तका कोई खयाल नहीं रखा गया है। इसपर गांधीजीने खुलकर बोलना शुरू किया।

क्या मैं आपसे सारा दिन कातनेको कहता हूँ? क्या मैं आपसे इसे अपने मुख्य धन्धेके रूपमें अपनानेको कहता हूँ? तब फिर इसमें श्रम-विभाजनके सिद्धान्तका भंग कहाँ हुआ? क्या आप खाने-पीनेमें इस सिद्धान्तको लागू करते हैं? जिस प्रकार हममें से प्रत्येकके लिए खाना, पीना और कपड़े पहनना जरूरी है, उसी प्रकार सबके लिए कातना भी जरूरी है। आप कहते हैं कि यह शक्ति और समयकी बर्बादी है? और आप यह भी कहते हैं कि आपके मनमें अपने देशभाइयोंके प्रति ममत्वकी भावना है। मानवोचित दयालु प्रकृतिके बिना ममत्व क्या चीज है? क्या आप वैसा कुछ महसूस करते हैं जैसा कि गाय अपने बछड़ेके प्रति, या माँ बच्चेके प्रति महसूस करती है? गायके थनमें और माँके स्तनमें अपने बच्चोंको देखते ही दूध उतर आता है। क्या अपने अकाल-पीड़ित देशभाइयोंको देखकर आपका हृदय प्रेमसे भर उठता है? मेरे मित्रो! चरखा चलाना उनके प्रति अपना प्रेम प्रकट करना है। आपका सूत कातना उनको अपना निठल्लापन छोड़नेकी प्रेरणा देना है। यदि कोई लोगोंके बीचमें जाकर मधुर गीत गाता है और उनके मनको प्रभावित करता है तो क्या यह समय

१. महादेव देसाई द्वारा प्रस्तुत गांधीजीके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

और शक्तिकी बर्बादी है? हाँ, अगर वह बेसुरे सुरमें और दर्पमें भरकर उनके सामने वंदेमातरम्‌को भी अलापे तो यह जरूर समय और शक्तिकी बर्बादी होगी। लेकिन कताईका मतलब इतना ही नहीं है। वह उद्देश्यपूर्ण चीज है और उसका मतलब है अधिक उत्पादन। इसका उद्देश्य जनसाधारण और आपके बीच एक कड़ी कायम करना है। इसके यन्त्रवत् उपयोगसे भी कुछ-न-कुछ हासिल हो जाता है और फिर इसके अलावा दूसरा ऐसा कोई काम नहीं है जो इतनी कम कोशिश करके ही सीखा जा सकता हो और जिसे हम करोड़ों लोगोंमें से क्या अच्छे और क्या साधारण सभी व्यक्ति कर सकते हों। और विद्यार्थियोंमें से तो सभीको कातना चाहिए, क्योंकि वे देशके जाग्रत तत्त्व हैं। उनका जीवन अभी शुरू नहीं हुआ है और नये विचारोंको वे जितनी आसानीसे ग्रहण कर सकते हैं उतनी आसानीसे और कोई नहीं कर सकता। सेवाकी लम्बी अवधि उनके सामने पड़ी हुई है। फिर नई शराब नई बोतलोंमें ही भरी जा सकती है, पुरानी बोतलोंमें नहीं। जरा सोचिए तो सही कि उत्साही और बुद्धिमान विद्यार्थियोंका अनुशासित समूह कितना कुछ कर सकता है। सोचकर देखिए कि ढाकाके ११,००० विद्यार्थियों द्वारा प्रतिदिन आधा घंटा कताई करनेसे जो उत्पादन होगा, वह कितना जबरदस्त होगा। क्या आप यह जानते हैं? अगर आप सब खादी पहनें तो आपके खर्चे हुए पैसोंका अधिकांश कताई करनेवालोंको मिलेगा? आप शायद इंग्लैंड और उसकी साधन-सम्पन्नताके बारेमें सोचते होंगे। लेकिन वह दूसरे राष्ट्रोंके शोषणपर जीता है। उसने हमारे श्रमको अपनी मुट्ठीमें कर रखा है। यह एक ऐसी आर्थिक क्षति है, जो उन सभी करों और अन्य आर्थिक क्षतियोंसे बढ़कर है, जिनकी ओरसे दादाभाई नौरोजीने हमें सतर्क किया था। इस अप्रत्यक्ष क्षतिको वे भी नहीं देख पाये थे। लेकिन मैं, जो उनके चरण-चिन्होंपर चलनेवाला उनका शिष्य हूँ, इस अप्रत्यक्ष क्षतिको देख सका हूँ और मेरा कहना है कि हमारे राष्ट्रको निठल्लोंका राष्ट्र बना दिए जानेसे हमारी जो आर्थिक क्षति हुई है, वह सर्वाधिक विनाशकारी है।

गांधीजीने जबतक स्पष्ट रूपसे यह समझा नहीं दिया कि हमारे ऊपर थोपे हुए इस आलस्यसे इस शस्यश्यामल भूमि का कैसा विनाश हुआ है। वे जगन्नाथपुरीके अभाव, बिहारकी गरीबी और देशके अन्य भागोंकी उन स्त्रियोंकी बात करते हुए, जिनके लिए एक आना प्रतिदिन भगवान्‌की भेजी सौगात जैसा है, इसी तरह बोलते चले गए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-५-१९२५

६५. भाषण : नेशनल कॉलेज, श्यामपुरमें[1]

१७ मई, १९२५

गांधीजीने कहा कि मैं विद्यार्थियोंको अस्पतालके शिलान्यासपर सहर्ष आशीर्वाद दे सकता हूँ; लेकिन वैद्यों और डाक्टरोंमें मेरी श्रद्धा बिलकुल ही नहीं है; मेडिकल कालेजोंमें तो और भी नहीं। बीमार जब डाक्टर और वैद्योंसे इलाज करानेके फेरमें पड़ जाते हैं तो और भी ज्यादा लाचार बन जाते हैं। इस पेशेकी शिक्षा अर्थोपार्जनके लिए ली जाती है, और लोग इसे प्राप्त करनेके बाद अधिकसे-अधिक धन कमानेको उत्सुक रहते हैं। महात्माजीने कहा कि यदि विद्यार्थी मेडिकल कालेजसे बाहर निकलनेके बाद अपना जीवन देशकी खातिर समर्पित करनेकी बात स्वीकार करें तो मैं उन्हें आशीर्वाद दे सकता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १९-५-१९२५

६६. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

१८ मई, १९२५

प्रिय गुरुदेव,

नेपाल बाबूने मुझे आपका अत्यन्त कृपापूर्ण और प्रेमपूर्ण पत्र भेजा है। मैं जरूर बोलपुरमें एक या दो दिन बिताना चाहता हूँ। मुझसे मिलनेके लिए आपके बोलपुरसे आनेकी बातका सवाल ही नही हो सकता। आपके स्वास्थ्यकी हालत कितनी नाजुक है, सो मैं जानता हूँ। मैं अपने आ सकनेकी तारीखकी सूचना आपको दूँगा।[2]

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ४६२९) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजीने नारायणगंजसे सुबह श्यामपुर आकर नेशनल कॉलेज अस्पतालकी इमारतका शिलान्यास किया था। नेशनल कालेजके शिक्षकों और विद्यार्थियोंकी ओरसे उन्हें एक अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया था, जिसका जवाब उन्होंने हिन्दीमें दिया था। मूल भाषण उपलब्ध नहीं है।

२. गांधीजी २९ मईको शान्तिनिकेतन गये थे।

६७. पत्र : मुहम्मद अलीको[1]

१८ मई, १९२५

मेरे प्यारे दोस्त और बिरादर,

आपके लिखनेसे पहले ही मैंने आपकी स्थितिका अन्दाजा लगा लिया था। ईमानदार कार्यकर्त्ताओंका भाग्य ऐसा ही होता है। पहले हम उस दिशामें ज्वारके साथ तैरते चले जा रहे थे; उसमें हमें कुछ करना नहीं पड़ रहा था। हम जब ज्वारकी विपरीत दिशामें तैरते हैं, तभी हमें कोशिश करनी होती है। हमें अब पता चलेगा कि हममें कुछ दम है या नहीं। शत्रु कितना ही दुर्दम हो, उसके विरुद्ध लड़ना सच्चे सिपाहीके लिए बच्चोंका खेल है। लेकिन अपने ही लोगोंमें नैतिक बलकी कमी, सन्देहकी भावना, अनुशासनहीनता और विश्वासकी कमीका मुकाबला बड़ी मुश्किल चीज है। आपको और मुझे इस असलियतका मुकाबला करना है।

मेरी दुआएँ हमेशा आपके साथ हैं और आपके लिए हैं। आप दोनों भाइयोंमें भी मेरा विश्वास अचल है; हालाँकि आपके कामके तरीकेमें नहीं। यदि आप हर कामका वक्त सख्तीके साथ अलग-अलग रखें तो आपको समयकी कमी महसूस नहीं होगी। जो आदमी जितना अधिक व्यस्त रहता है उसके पास और भी कामोंके लिए समय निकल आता है। ईश्वरसे डरनेवाले व्यक्तिके लिए सारा दिन प्रार्थनाका ही समय है। प्रार्थनाका निश्चित समय होना केवल एक इशारा है और उससे यही साफ होता है कि सभी कामोंके लिए हमारा समय निश्चित होना चाहिए। क्या हमने सब कुछ ईश्वरको समर्पित नहीं किया है? हमारा खाना भी एक प्रार्थना हो सकती है और व्रत रखना भी एक प्रवृत्ति। उपदेश काफी हो गया।

मुझे आप लोगोंकी और गुलनारकी[2] बड़ी याद आती है। मेरे सारे फूल और छोटी-छोटी सुन्दर चीजें व्यर्थ चली जाती हैं। उससे कहिए कि इतनी बड़ी न हो जाये कि मैं उसे खिला न सकूँ।

आप सबको सप्रेम,

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. यद्यपि पत्रके मसविदेपर कोई पता नहीं लिखा है, फिर भी विषय-वस्तुसे स्पष्ट हो जाता है कि यह पत्र मुहम्मद अलीको लिखा गया था।

२. मुहम्मद अलीकी बेटी, शुएब कुरैशीकी पत्नी।

६८. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

वैशाख वदी १०, [१८ मई, १९२५][1]

आनन्दपर मेरा [पूर्व जन्मका कुछ] ऋण था न?

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी,

६९. भाषण: महिलाओंकी सभा, मैमनसिंहमें[2]

१९ मई, १९२५

महात्माजीने महिलाओंको अभिनन्दन-पत्र तथा उपहारोंके लिए धन्यवाद देनेके उपरान्त कहा कि स्वराज्यसे मेरा अभिप्राय धर्मराज्य या रामराज्यसे है। भारतके लिए धर्म और नैतिकता-हीन स्वराज्य हो ही नहीं सकता। रामराज्यके लिए हमें सीताजीकी अपेक्षा है। सीताजीके ही कारण हम रामचन्द्रकी पूजा कर पाते हैं। सीताके जन्मके बिना रामचन्द्रका अस्तित्व असम्भव है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरी बहनें भी सीताके समान हों। सीताने हृदय और शरीरको पवित्र रखा। मैं अपनी बहनोंसे आग्रह करता हूँ कि खद्दर पहनकर वे अपने शरीर शुद्ध बनायें। सीताजी भारतमें बना कपड़ा पहनती थीं। उनके समयमें विदेशी वस्त्रका भारतमें तनिक भी आयात नहीं किया जाता था। लेकिन आजकी महिलाएँ फ्रांस, जापान और मैंचेस्टरसे मँगाया हुआ कपड़ा चाहती हैं। विदेशी वस्त्र पहनना अशुद्ध है, क्योंकि वह सूचित करता है कि वे अपने गरीब भाइयोंको भूल गई हैं। किसी समय हमारी लाखों बहनें चरखेसे सूत कातकर जीविकोपार्जन करती थीं। लेकिन अब हमारे विदेशी वस्त्रोंके इस्तेमाल करनेकी वजहसे उनका चरखेका काम बन्द हो गया है। बहनोंको प्रतिदिन कमसे-कम आधा घंटा सूत कातना चाहिए। महात्माजीने देशी मिलोंमें बने कपड़ेको अर्ध-खद्दर कहा। उन्होंने कहा कि यद्यपि हमारी सब बहनें जो सभामें आई हैं, खद्दर पहने हैं, लेकिन ऐसा इन्होंने या तो मेरे प्रति अपना स्नेह व्यक्त करनेके लिए या मुझे धोखा देनेके लिए किया होगा। सबसे ज्यादा जरूरी चीज है बहनोंमें भारतके प्रति प्रेम — उससे उन्हें खद्दर पहननेकी प्रेरणा मिलेगी। यदि मैमनसिंहमें

१. साधन-सूत्रके अनुसार, लेकिन १९२५ में वैशाख वदी १०, १७ मई १९२५ को थी।

२. सुबह आयोजित इस सभामें गांधीजीको हाथकता सूत, जेवर और सिक्के भेंट किये गये थे। अभिनन्दन-पत्र बंगलामें पढ़ा गया था, जिसका उत्तर गांधीजीने हिन्दीमें दिया था। मूल भाषण उपलब्ध नहीं है।

बहनें निम्नलिखित तीन काम करनेकी जिम्मेवारी लें तो मुझे काफी सन्तोषका अनुभव होगा। वे हैं:

१. प्रतिदिन आधा घंटा चरखेपर सूत कातना।

२. खद्दरका इस्तेमाल।

३. उन नामशूद्रोंके प्रति जिन्हें गलतीसे अस्पृश्य माना जाता है, घृणा-भावका त्याग।

अन्तमें महात्माजीने कहा कि मुझे सूत, रुपया और आभूषणके रूपमें जो उपहार दिये गये हैं, उन्हें खद्दर प्रचारमें लगाया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २२-५-१९२५

७०. भाषण: अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें[1]

१९ मई, १९२५

इस समय अली बन्धुओंमें से कोई भी मेरे साथ नहीं है, इसलिए मैं बहुत असहाय महसूस कर रहा हूँ। उनके साथ रहनेपर मुझे भरोसा रहता है कि मैं अपनी बात मुसलमान भाइयोंके हृदयतक आसानीसे पहुँचा सकता हूँ।[2]

हिन्दू-मुस्लिम समस्याकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि यह बड़े दुःखकी बात है कि दोमें से कोई भी जाति अपने बड़े-बड़े स्वार्थोको तो क्या, छोटे-छोटे स्वार्थोंको भी छोड़नेके लिए तैयार नहीं है। आज तो वे दाल-रोटीके लिए नहीं, बल्कि लकड़ी-पत्थर और सर्वथा महत्त्वहीन चीजोंके लिए झगड़ रहे हैं। मैं महसूस करता हूँ कि जबतक हमारा हृदय साफ और शुद्ध नहीं हो जाता, तबतक हम भाई-भाईकी तरह नहीं रह सकते। मैं चाहता हूँ कि हम स्वार्थकी चट्टानपर पटककर अपनी एकताको टुकड़े-टुकड़े न कर दें। किन्तु मेरा विश्वास है कि समस्याका हल हमारे ऊपर निर्भर नहीं है। मैं आशावादी हूँ और मानता हूँ कि इस देशपर ईश्वर कृपा करेगा और इस लड़ाई-झगड़ेके बावजूद हमें मिल-जुलकर रहनेकी सामर्थ्य देगा।

हिन्दुओं और मुसलमानोंको अपने-अपने धर्मोंमें यह एक बात और दाखिल कर लेनी चाहिए कि हम एक दूसरेके बिना नहीं जी सकते। जिस ईश्वरने सात करोड़ मुसलमानोंको बाईस करोड़ हिन्दुओंके बीच रख दिया है, वह हमपर जरूर दया करेगा और वह हमें न चाहते हुए भी भाई-भाईकी तरह रहनेकी शक्ति देगा।[3]

१. यह भाषण महाराजाके महलमें आयोजित सभामें मैमनसिंह नगरपालिका व जिला बोर्डकी तरफसे भेंट किये गये मानपत्रोंके उत्तरमें दिया गया था।

२. यह अंश यंग इंडिया, २८-५-१९२५ में प्रकाशित महादेव देसाईके यात्रा विवरणसे उद्धृत है।

३. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

खद्दर और कताईकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि अगर आप जनसाधारणके साथ एक होकर रहना चाहते हों तो ये दोनों अनिवार्य हैं। क्या आपने अपने स्वार्थके लिए जनसाधारणका शोषण नहीं किया है? आपने उन्हें बदलेमें क्या दिया है? अगर आप सारे भारतमें घूम कर देखें तो आपको आसानीसे पता चल जायेगा कि आप अपने भाइयोंका खून चूस कर जी रहे हैं। परिणाम यह हुआ है कि गरीबी और कंगाली देशके मर्ममें पैठ गई है और वह उनपर इस तरह हावी हो गई है कि वे यह भी भूल गये हैं कि उनमें मेहनत करनेकी ताकत भी है या नहीं। दर-असल, जनसाधारण लाचार होकर निठल्ला हो गया है। इसलिए आप सब चरखा अवश्य चलायें। यही कारण है कि मैं सभी जमींदारों और प्रमुख व्यक्तियोंसे कातने और इस तरह जनसाधारणको अपनी ओरसे कुछ देनेको कहता हूँ। आपकी शिकायत है कि खद्दर खुरदरा होता है और टिकाऊ तथा अच्छा नहीं होता। जब आप अपने गरीब भाई-बहनोंके लिए प्रतिदिन आधा घंटा भी कात नहीं सकते, तो यह सब हो कैसे सकता है? चरखेसे केवल मनबहलाव करें तो यह सब नहीं हो सकता। चरखेपर आप अधिक सूत नहीं कात पाते; लेकिन क्यों? इसलिए कि इसे आप ठीक तरहसे और नियमपूर्वक नहीं चलाते। बाजारमें अभीतक जो सबसे अच्छा चरखा आया है, वह है खादी प्रतिष्ठानका चरखा।

इसके बाद मैमनसिंहकी जनताकी ओर मुखातिब होते हुए उन्होंने उनकी राष्ट्रीय भावनाको जगाते हुए यह आशा व्यक्त की कि वे लोग कथनानुसार काम करेंगे। महात्माजीने नकली खद्दरकी तीव्र भर्त्सना की। उन्होंने कहा, अर्ध-खद्दर अपवित्र है और उसे जला देना चाहिए। अगर आप अच्छी, टिकाऊ और सुन्दर खादी चाहते हैं तो आप प्रतिदिन आध घंटेका श्रम जनसाधारणको, उन गरीब भाइयों और बहनोंको दें जो भूखे मर रहे हैं, जो उन्हें गिरानेवाली गरीबीके पाशमें जकड़े हुए हैं। अगर आप आधा घंटेका श्रम मुफ्त दें और देशके लिए रोज आधा घंटा कताई करें, तो मैं आपको वचन देता हूँ कि खादी सस्ती, अच्छी, सुन्दर और टिकाऊ हो जायेगी और मैं आपको यह भरोसा भी दिलाता हूँ कि तब मैं आपको स्वराज्य भी अवश्य ही दिला दूंगा।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २२-५-१९२५

७१. मैमनसिंहके जमींदारोंसे बातचीत[1]

१९ मई, १९२५

यदि आपका अपना धोबी है, अपना सफाई करनेवाला भंगी है तो आपका अपना बुनकर क्यों नहीं है? और अच्छे तथा सुन्दर सूतके लिए आपको अपने ही प्रदेशोंमें अच्छेसे-अच्छे कातनेवाले भी मिल ही सकते हैं।

प्रमुख और शिक्षित व्यक्ति चरखा क्यों नहीं चलाते?

क्योंकि उन्हें गरीबोंके लिए दर्द महसूस नहीं होता और उन्हें दर्द इसलिए नहीं महसूस होता कि वे गरीबोंके कष्ट नहीं जानते। कृपया यह न कहिये कि वे आलसी हैं। उन्हें निठल्ला हमने बनाया है। उनमें जीवनके प्रति दिलचस्पी कैसे पैदा करें। आपको और हम सबको रात-दिन परिश्रम करना चाहिए और उस बच्चेकी तरह अधीर नहीं होना चाहिए जिसने कि आमका बीज बोया, लेकिन जो बीजके जड़ पकड़ने और वृक्षके रूपमें तैयार होनेके लिए ६ महीने भी इन्तजार करनेको तैयार नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-५-१९२५

७२. एक असाधारण मानपत्र

मुझे भेंट किये गये अधिकांश मानपत्रोंमें ऐसे विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं जिनके योग्य मैं नही हूँ। उनका प्रयोग न तो उनके लेखकोंके लिए ही लाभप्रद हो सकता है और न मेरे लिए। उनसे मुझे व्यर्थ ही नीचा देखना पड़ता है, क्योंकि मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि मैं उनके योग्य नही हूँ। जब वे मेरे अनुरूप होते हैं तब उनका उपयोग अनावश्यक होता है। उनसे मुझमें विद्यमान गुणोंकी शक्ति बढ़ नहीं सकती। यदि मैं सचेत न रहूँ तो उनसे मेरे मनमें आसानीसे घमण्ड आ सकता है। आदमी जो भी अच्छाई करे उसका बखान न करना ही ज्यादा अच्छा है। किसीका अनुकरण करना उसकी सबसे सच्ची सराहना करना है। इसलिए मैं अपने सभी प्रशंसकोंको ऐसा करनेकी सलाह देता हूँ। यदि वे मेरा सूत कातना पसन्द करते हैं तो उन्हें स्वयं सूत कातकर उसकी सराहना करनी चाहिए; यदि वे मेरी नियमबद्धताको पसन्द करते हैं तो उन्हें स्वयं नियमबद्ध बनकर मेरी प्रशंसा करनी चाहिए। और यदि वे मेरी सच्चाई और अहिंसाको मूल्यवान मानते हैं तो उन्हें अपने आचरणसे उनके प्रति अपना प्रशंसा-भाव दिखाना चाहिए।

१. महादेव देसाई द्वारा प्रस्तुत गांधीजीके यात्रा-विवरणसे उद्धृत ।

लेकिन सभी मानपत्रोंमें केवल मेरी प्रशंसाके गीत नहीं गाये जाते। किसी अवसरपर उनसे मुझे मूल्यवान जानकारी मिलती है। चाँदपुरके मानपत्रमें[1] खास बात यह थी कि उसमें वहाँके लोगोंने अपनी कठिनाइयाँ साफ-साफ बताई थीं। मानपत्रमें मेरे असली अथवा काल्पनिक गुणोंका कुछ जिक्र जरूर है, लेकिन उसमें चाँदपुर निवासियोंकी कार्यवाहियोंका ही अधिक विवरण था। विवरण इस प्रकार है:

१. कांग्रेस सदस्योंकी संख्या — श्रेणी "क" १०, श्रेणी "ख" ६८, कुल ७८
२. चालू चरखोंकी संख्या २४५
३. प्रत्येक चरखेकी औसत क्षमता — १०० गज प्रति घंटा, सबसे अधिक गति ५०० गज प्रति घंटा।
४. औसत अंक १२; सबसे ऊँचा अंक १५२।
५. सूतका मासिक उत्पादन — १ मन।
६. हाथ कते सूत तथा अन्य सूतसे चालू खड्डियोंकी संख्या एक हजारसे अधिक; केवल सात खड्डियाँ शुद्ध खादी तैयार करती हैं।
७. शुद्ध खादीका मासिक उत्पादन २५० गज।
८. खादी गोदामोंकी संख्या केवल ३।
९. खादीकी खपतका मासिक औसत लगभग ३०० रु०।
१०. राष्ट्रीय स्कूलोंकी कुल संख्या ४, विद्यार्थियोंकी कुल संख्या १६७। जहाँतक शराबखोरीका सम्बन्ध है, यह १९२२ से धीरे-धीरे बढ़ रही है।

. फिर अधिकतर विषयोंपर एक रोचक टीका है। उसका अन्त निम्नलिखित ढंगसे किया गया है:

> हम अनुभव करते हैं कि यदि हम देशकी जनताकी घोर निर्धनता तथा उसके फलस्वरूप होनेवाली मौतोंका उल्लेख नहीं करते तो हम अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं करते। लोग भारी कर्जेके बोझसे दबे हुए हैं। उनमें से बहुतोंका हिसाब-किताब देखें तो मालूम पड़ता है कि वे दिवालियेपनकी निराशाजनक स्थितिमें पहुँच गये हैं। कुटीर उद्योगोंके पूर्ण विनाशके परिणामस्वरूप लोग बहुधा गम्भीर अपराध करने लगते हैं तथा हम लोगोंकी इस आर्थिक अधोगतिके अन्तिम परिणामोंको सोचकर दहल उठते हैं।

निश्चय ही यह लेखा ऐसा नहीं जिसपर गर्व किया जा सके। लेकिन इसमें निराश होनेकी भी कोई बात नहीं। हममें से हरएक अपनी शक्तिभर परिश्रम कर सकता है। परिणामपर हमारा कोई वश नहीं है और न हो ही सकता है, क्योंकि वह कई अन्य स्थितियोंपर निर्भर है। वास्तवमें शक्ति-भर उद्योग कर चुकनेके बाद हम

१. देखिए "भाषण: चाँदपुरकी सार्वजनिक सभामें", १०-५-१९२५।

बिलकुल निश्चिन्त हो सकते हैं। दुर्भाग्यसे हममें से अधिकांश काम नहीं करते अथवा उदासीनतासे करते हैं और फिर भी परिणाम बहुत असन्तोषजनक आनेकी शिकायत करते हैं। यदि हम शक्ति-भर प्रयत्न करें तो फिर सब-कुछ ठीक हो जायगा।

यह सच है कि जो समस्याएँ हमारे सामने हैं वे बहुत बड़ी हैं तथा अनेक हैं। एक आदमीके लिए तथा बहुतोंके लिए यह मान लेना कि वे उन सभीको एक बारमें ही सुलझा लेंगे, सर्वशक्तिमान होनेका दावा करना है। इस प्रकारका कोई भी प्रयत्न अवश्य ही असफल होगा। हमारी कठिनाइयाँ इसलिए बढ़ जाती हैं कि हमारा राष्ट्र पराधीन है। यदि हम पराधीन न होते तो इनमें से अनेक कठिनाइयाँ दूर की जा सकती थीं। लेकिन यह भी उतना हो सत्य है कि हम तबतक अपना सहज स्वत्व प्राप्त नहीं कर सकते जबतक हम इनमें से अधिकसे-अधिक समस्याओंको अभी सुलझा न लें। स्वराज्य न मिलनेतक उन समस्याओंको हाथमें न लेनेका मतलब है स्वराज्य तथा समस्याओंके हल, दोनों ही को टालना। इसलिए वह व्यक्ति, जो मुख्य समस्याओंमें अपनी सम्पूर्ण योग्यतासे सहायता प्रदान करता है, उन्हें हल करने तथा स्वराज्यको निकट लानेमें सहायक होता है।

इस प्रकार यदि चाँदपुरके कार्यकर्त्ताओंने शक्तिभर प्रयत्न कर लिया है तो उन्होंने जो परिणाम बताये हैं, उन्हें निराशाजनक समझनेकी जरूरत नहीं। कुछ समय बीतनेपर उन्हें अवश्य सफलता मिलेगी; क्योंकि ईमानदार और मेहनती कार्यकर्त्ताओं-को दीर्घ उद्योगका फल सदा मिलता ही है। 'क' श्रेणीके १० सदस्योंका होना एक भी सदस्य न होनेसे बेहतर है तथा मैं तो हमेशा ही ऐसे १० सदस्योंका होना बेहतर मानता हूँ बजाय १०,००० ऐसे सदस्योंके जो प्रतिवर्ष ४ आने अदा करें और फिर कांग्रेसके बारेमें कुछ भी न सोचें; केवल इतना ही सोचें कि उन्होंने अपने चार आने खो दिये। यदि दस सदस्य अपने विश्वासपर कायम रहेंगे तो उनकी संख्या शीघ्र ही सौ हो जायेगी। मुझे चरखेके सिवा कोई दूसरी सूरत दिखाई नहीं देती। जिन्हें कोई विकल्प दिखाई देता है वह उसे जरूर करें। जबतक ऐसी योजना सामने नहीं आती, तबतक इन दस व्यक्तियोंको, जो चरखा चलाते हैं, निर्भीक होकर मैदानमें डटे रहना चाहिए।

लेकिन मुझे डर यह है कि प्रबन्धकोंने पूरी मेहनतसे कार्य नहीं किया है। मुझे ज्ञात हुआ है कि चाँदपुरमें लगभग १२० स्वयंसेवक हैं। उनमें से लगभग १०० सूत कातना जानते हैं, किन्तु उनमें से मुश्किलसे पाँच अथवा छः हो नित्य सूत कातते हैं। एक प्रस्तावके द्वारा स्वयंसेवकोंके लिए सूत कातना अनिवार्य कर दिया गया है। किन्तु यदि स्वयंसेवक ही कताई-सदस्यताके प्रस्तावका सर्वथा पालन नहीं करता तो और कौन करेगा? स्वागत-समितिको स्वयंसेवकोंको चुननेमें दृढ़तासे काम लेना था। यदि इसे पर्याप्त योग्य व्यक्ति नहीं मिलते थे तो इसे अपना कार्य थोड़से स्वयंसेवकोंसे ही चला लेना था। अनाड़ी डाक्टरका होना डाक्टरके न होनेसे भी बदतर है। उदासीन स्वयंसेवक बहुधा सहायक होनेके बजाय रोड़ा अटकाता है। यहाँ बीचमें ही मैं यह भी उल्लेख कर दूँ कि मेरे प्रति स्वयंसेवकोंका व्यवहार बहुत ही अच्छा था। उन्होंने अपनी शक्ति-भर सेवा की। सेवा और प्रेम कीमती तो दोनों

हैं, लेकिन मैं व्यक्तिगत सेवा और प्रेम नहीं चाहता, मैं राष्ट्रके प्रति सेवा और प्रेम चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ — दृढ़ कर्त्तव्यपरायणता तथा उन सभी दायित्वोंकी पूर्ति जो उनके लिए निश्चित किये गये हैं और जिन्हें उन्होंने स्वीकार किया है।

मानपत्रमें शरावके व्यापारमें वृद्धिका जिक्र किया गया है। यह एक गम्भीर विषय है। इसका उपाय वे कार्यकर्त्ता ही कर सकते है जो कि विशेष तौरसे हुए इस सुधारके काममें लगें। लेकिन मुझे लगता है कि शरावका व्यापार ऐसी बुराइयोंमें से है जिन्हे केवल मद्यनिषेध द्वारा ही सफलतापूर्वक कावूमें लाया जा सकता है।

अन्तिम टीका हमारी सामान्य स्थितिकी द्योतक है।

हमारी बढ़ती हुई गरीबी कुटीर उद्योगोंके पुनरुज्जीवनसे नहीं, वल्कि उस एक कुटीर उद्योगके ही पुनरुज्जीवनसे दूर होगी। जव हम एक वार उस कुटीर उद्योगको पुनरुज्जीवितकर लेंगे तो अन्य सव वादमें पुनरुज्जीवित हो जायेंगे। उनसे देशकी समृद्धि वढ़ेगी। लेकिन केवल चरखा ही अकेला भुखमरीकी सामान्य समस्याको सुलझा सकता है। निस्सन्देह प्रत्येक जिलेकी भिन्न-भिन्न आवश्यकताएँ है। उनकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है। लेकिन मैं चरखेको ऐसी नीव वनाना चाहता हूँ जिसपर स्वस्थ ग्रामीण जीवनकी रचनाकी जा सके। मैं चरखेको ऐसा केन्द्र वनाना चाहता हूँ जिसपर अन्य सभी क्रियाएँ आधारित हों। कोई भी सूत कातनेवाला ग्राम्य जीवनमें तवतक भाग नही ले सकता जवतक कि वह ग्रामीणोंकी अन्य समस्याओंके, जिनसे वे त्रस्त हैं, सम्पर्कमें नही आता तथा उनको हल करनेमें हाथ नहीं वँटाता। लेकिन यदि कोई कार्यकर्त्ता गाँवमें काम करने जायेगा तथा किसी भी कार्यको, जो सुगमतासे मिले, हाथमें ले लेगा तथा चरखेको नहीं अपनायेगा तो वह केन्द्र-विन्दुसे भटक जायेगा और इसलिए एक-एक ग्रामीणतक पहुँचनेके वजाय अन्धकारमें मार्ग ढूँढ़ता फिरेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-५-१९२५

७३. कूदनेको तत्पर

एक पत्र-लेखक कुछ प्रश्न पूछनेके वाद, अन्तमें लिखते हैं:

मैं आशा करता हूँ कि आप इन विषयोंपर प्रकाश डालनेकी कृपा करेंगे और जवतक मैं अनर्गल बातें न करने लगूँ तवतक मेरे साथ चर्चा जारी रखगे। मैं आपका अनुयायी हूँ, आपके नेतृत्व और पथ-प्रदर्शनमें जेल जा चुका हूँ। जव मैं आपके वहुत नजदीक था और आपसे मिलनेका वहुत मौका था तव भी मैंने आपसे कोई वातचीत नहीं की; क्योंकि मैं आपका समय लेना नहीं चाहता था। मैंने आपका चरण-स्पर्शतक नहीं किया। पर अब आपकी युक्तियों और राजनैतिक विचारोंपर से मेरा विश्वास हिल गया है। मैं क्रान्तिवादी नहीं हूँ; अलवत्ता उस धारमें लगभग कूदने ही वाला हूँ। यदि आप इन प्रश्नोंका जवाब सन्तोषजनक रूपसे देंगे तो आप मुझे बचा लेंगे।

अब मैं उनके सवालोंको क्रमशः लेता हूँ:

अहिंसा क्या है? चित्तकी एक वृत्ति है या प्राणका नाश न करना है? यदि वह प्राणका नाश न करना हो तो क्या उसका पालन सम्भव है? क्या हम इसके तर्कसम्मत छोरतक जाकर इसका पालन कर सकेंगे? हम अपने भोजन इत्यादिमें रोज असंख्य जीवोंकी हिंसा करते हैं। उस अवस्थामें तो हम वनस्पतियोंतक को खा नहीं सकते।

अहिंसा चित्तकी एक वृत्ति भी है और तज्जनित चेष्टा भी। इसमें सन्देह नहीं कि वनस्पतिमें भी प्राण हैं; परन्तु वनस्पतिका उपयोग किये विना हम रह नहीं सकते। वह जीव-नाशसे कम तो किसी तरह नहीं है। अलबत्ता, वह क्षम्य माना जा सकता है।

दूसरा प्रश्न है:

यदि हम जीव-हिंसासे बच नहीं सकते तो इसके यह मानी नहीं हैं कि हम बिना आगा-पीछा सोचे उसका विनाश करते ही रहें; फिर भी उस हालतमें, सचमुच जरूरी होनेपर उसके सम्बन्धमें सिद्धान्तकी दृष्टिसे आपत्ति नहीं की जा सकती। कार्य-साधकताकी दृष्टिसे भले ही की जा सके।

ऐसे अवसरोंपर भी जहाँ हिंसा की आवश्यकता सिद्ध होती हो, 'सिद्धान्तकी दृष्टिसे' हिंसाका समर्थन नहीं किया जा सकता। उसका बचाव केवल कार्य-साधकता-की दृष्टिसे ही किया जा सकता है।

तीसरा प्रश्न है:

यदि अहिंसाका अर्थ है प्राणका नाश न करना, तो फिर आप किसी व्यक्तिको किसी कार्यके निमित्त अपना प्राण देनेके लिए किस तरह कह सकते हैं — चाहे वह काम कितना ही पवित्र और धार्मिक क्यों न हो? क्या वह स्वयं अपने प्रति हिंसा न होगी?

हाँ, मैं किसी आदमीसे बराबर यह कह सकता हूँ कि अमुक कामके लिए अपनी जान दे दो, तिसपर भी मैं हिंसाका दोषी न होऊँगा, क्योंकि अहिंसाका अर्थ है — औरोंको चोट न पहुँचाना।

चौथा प्रश्न यह है:

अपने प्राणसे प्यार करना मनुष्यका स्वभाव है। जबकि किसी व्यक्तिका अपने देश या समाजकी आवश्यकताके लिए अपनी जान दे देना उचित है तो आवश्यकता पड़नेपर वह औरोंकी जान कुरबान क्यों नहीं कर सकता? हमें सिर्फ इतना ही साबित करना होगा कि उसकी जरूरत थी; अर्थात् यह भी कार्य-साधकताका ही सवाल ठहरा।

'जो अपनी जानसे मुहब्बत करेगा वह उसे खोयेगा। जो अपनी जानको गँवायेगा वह उसे पायेगा।' आवश्यकताकी बिनापर दूसरेकी जानको कुरबान करनेका समर्थन

नहीं किया जा सकता, क्योंकि आवश्यकताको साबित करना असम्भव है। हम खुद ही इसके काजी नही बन सकते। बल्कि वहाँ एकमात्र काजी वे होगे जिनकी जान हम लेना चाहते है। हमारा निर्णय गलत भी हो सकता है। यह अहिंसाके पक्षमें एक अच्छा कारण है। मध्ययुगके ईसाई धर्माधीशोंका अटल विश्वास था कि उनका कार्य धर्मसम्मत है; पर आज हम जानते है कि वे सरासर गलतीपर थे।

पाँचवा प्रश्न यह है:

कुरबानी और हत्यामें क्या भेद है?

कुरबानीके मानी हैं, खुद कष्ट सहना, जिससे कि दूसरेको लाभ पहुँचे। हत्याके मानी हैं, दूसरेको तकलीफ देना—मार डालना, जिससे कि हत्यारे या जिसके लिए हत्या की गई है उसे लाभ हो।

छठा प्रश्न:

क्या जो डाक्टर आपको नश्तर लगाता है वह आपको कुछ समयके लिए तकलीफ पहुँचानेके कारण निन्दाके योग्य है? पर क्या हम उसके चित्तकी वृत्ति अर्थात् बीमारको लाभ पहुँचानेके हेतुपर ध्यान रखकर उसके हिंसात्मक कार्यपर ध्यान न देते हुए उसकी और भी अधिक प्रशंसा नहीं करते?

यहाँ हिंसा शब्दका दुरुपयोग है। हिंसाका अर्थ है किसीको बिना उसकी रजामंदीके या बिना उसे किसी तरहका लाभ पहुँचाये, चोट पहुँचाना। मेरी बाबत तो चिकित्सकने मेरे ही हितके लिए, मेरी लिखित रजामन्दीसे मुझे कुछ समयके लिए तकलीफ पहुँचाई थी। पर एक क्रान्तिकारी अपने शिकारको उसके भलेके लिए नही लूटता, वह उसका वध उसके भलेके लिए नहीं करता—उसे तो वह चोट पहुँचानेके ही काबिल समझता है—हाँ, समाजके किसी कल्पित हितके लिए।

सातवाँ प्रश्न इस प्रकार है:

क्या अन्य बलोंकी तरह शारीरिक बल भी जीवनका एक कारगर साधन नहीं है? जिस प्रकार अहिंसाका आश्रय भीरु लोग अपनी भीरुताको छिपानेके लिए ले सकते हैं, उसी तरह क्रूर और निरंकुश शासक हिंसाका भी दुरुपयोग कर सकते हैं। किन्तु इससे यह साबित नहीं होता कि हिंसा खुदमें कोई बुरी चीज है।

शारीरिक बल निस्सन्देह जीवनका एक कारगर साधन है। निरंकुश शासकोंने जरूर ही हिंसाका दुरुपयोग किया है। परन्तु हिंसाकी जो व्याख्या मैंने की है उसमें तो उसके सदुपयोगकी कल्पना भी नही की जा सकती। इससे पहलेवाले सवालके जवाबमें इसकी परिभाषाको देखिए।

आठवाँ प्रश्न:

पागलों तथा भयंकर अपराधियोंको, जो समाजको हानि पहुँचाते हैं, आप जेल भेजेंगे; तो क्या आप हमें उन सभ्य अपराधियोंको जो सरकारी अफसरोंके रूपमें काम कर रहे हैं, मारनेके बजाय गिरफ्तार करने तथा हिमालयकी किसी गुफामें ले जाकर कैद रखनेकी इजाजत देंगे?

मैं नहीं कह सकता कि पागलों और मुजरिमोंको, वे खतरनाक हों या मामूली, जेलमें रखना अर्थात् सजा देना ठीक ही है। पागल तो अब भी इस तरह नहीं रखे जाते। पर हम तेजीसे उस समयके नजदीक पहुँच रहे है जबकि मुजरिमोंको भी सजा देनेके खयालसे नही वल्कि उनको अन्तमें सुधारनेके लिए वन्दिशमें, न कि जेलमें, रखा जायेगा। पर हाँ, मैं उस संघमें खुशीसे शामिल होऊँगा, जो वाइसराय और हरएक ऐसे असैनिक अंग्रेज अथवा हिन्दुस्तानीको, जो जानवूझकर या अनजाने ही आज भारतको निष्प्राण अथवा रक्तहीन वना रहे हैं, ऐसे जेलोंमें भेजनेके लिए कायम होगा, जहाँ उनकी सुख-सुविधाका पूरा ध्यान रखा जायेगा; पर शर्त यह है कि मेरे सामने ऐसी तजवीज पेश की जाये जो हर तरह व्यावहारिक हो। वेशक मैं ऐसे संघमें शरीक होनेके लिए तैयार हूँ; लोग चाहे यह भले कहने लगें कि उन्हें इस प्रकार कारावासमें रखना मेरी ही व्याख्याके अनुसार हिंसात्मक कार्य होगा।

नवाँ प्रश्न इस प्रकार है:

इनमें से कौन-सी बात अधिक अमानुषिक और भयंकर है? या यों कहा जाये कि कौन-सी अधिक हिंसात्मक है? ३३ करोड़ मानवकष्ट भोगते रहें, उनकी उन्नतिके सब द्वार वन्द रहें और उनको यों ही सड़ते-गलते मर मिटने दिया जाये या कुछ हजार लोगोंका वध होने दिया जाये? आप किस वातको ज्यादा अच्छा समझेंगे? अधःपतन होते-होते ३३ करोड़ जनताका धीरे-धीरे लोप हो जाना या कुछ सौ लोगोंका संहार कर दिया जाना? हाँ, यह अवश्य सिद्ध करना होगा कि कुछ सौ व्यक्तियोंको मौतके घाट उतार देनसे ३३ करोड़ लोगोंका अधःपतन रुक जायेगा परन्तु यह बात तो तफसीलकी है, उसूलकी नहीं और इस वातका विवेचन आगे चलकर किया जा सकता है कि ऐसा करना बुद्धिमत्तापूर्ण होगा या नहीं, परन्तु यदि यह साबित कर दिया गया कि कुछ सौ लोगोंको मार डालनेके परिणामस्वरूप ३३ करोड़का अधःपतन रोका जा सकता है तो क्या आप वसी हिंसापर आपत्ति करेंगे?

कोई भी सिद्धान्त, यदि वह पूरी तौरसे अच्छा, कल्याणप्रद न हो तो सिद्धान्त कहलाने योग्य नही है। मैं अहिंसाकी दुहाई इसलिए देता हूँ कि मैं जानता हूँ कि अकेले उसीकी वदौलत मानवजातिका सर्वश्रेष्ठ हित सधता है — परलोकमें ही नहीं, इहलोकमें भी। मैं हिंसाके सम्वन्धमें आपत्ति इसलिए करता हूँ कि उसके द्वारा हित होता हुआ दिखाई देता है, परन्तु वह अस्थायी होता है और उससे उत्पन्न होनेवाली बुराई स्थायी होती है। मैं नहीं मानता कि एक-एक करके अंग्रेजोंका खून कर देनेसे भारतवर्षको किंचिन्मात्र भी लाभ पहुँच सकता है। यदि कोई तमाम अंग्रेजोंको कल ही मार डाले तो भी करोड़ों लोग, आजकी तरह ही दुःखी वने रहेंगे। मौजूदा हालतके लिए अंग्रेजोंकी बनिस्वत हमारी जिम्मेवारी ज्यादा है। यदि हम सिर्फ अच्छा-ही-अच्छा करते रहे तो अंग्रेज बुरा करनेमें अशक्त हो जायेंगे। इसीलिए मैं आन्तरिक सुधारपर निरन्तर जोर देता रहता हूँ।

परन्तु क्रान्तिकारीके सामने तो मैं अहिंसाको नैतिकताके सर्वोच्च आधारपर सर्वथा उचित सिद्ध करनेकी कोशिश नहीं करता वल्कि कार्य-साधकताके निम्नतर

आधारपर ही उचित ठहराता हूँ। मैं कहता हूँ कि क्रान्तिकारियोंके तरीके भारतवर्षमें सफल नहीं हो सकते। यदि खुल्लमखुल्ला लड़ाई मुमकिन हो तो मैं शायद मान सकूँ कि हम हिंसाका पथ ग्रहण करें, जैसा कि दूसरे देशोंने किया है और कमसे-कम उन गुणोंको ही प्राप्त करें जो रणक्षेत्रमें वीरता दिखानेसे उदय होते हैं। पर युद्धके द्वारा भारतके स्वराज्यकी प्राप्तिको हम, जहाँतक नजर पहुँचती है, किसी समय भी असम्भव ही मानते हैं। युद्धके द्वारा हमें चाहे अंग्रेजी शासनतन्त्रकी जगह दूसरा तन्त्र मिल जाये परन्तु वह जनताका स्वराज्य न होगा। स्वराज्यकी तीर्थ-यात्रा परम दुर्गम, महान् कष्टप्रद चढ़ाई है। उसके लिए छोटीसे-छोटी तफसीलपर गौर करना होगा। उसके लिए बहुत बड़ी संगठनसम्बन्धी योग्यताकी जरूरत है। उसके मानी हैं, देहातियोंकी सेवा करनेके ही उद्देश्यसे देहातमें प्रवेश करना — दूसरे शब्दोंमें इसका अर्थ है राष्ट्रीय शिक्षा — जनताकी शिक्षा। इसका अर्थ है जनताके अन्दर राष्ट्रीय चेतना और जागृति उत्पन्न करना। यह स्थिति किसी जादूगरके आमके पेड़की तरह अचानक नहीं उत्पन्न हो जायेगी। वह तो वट-वृक्षकी तरह बहुत ही धीरे-धीरे, यहाँतक कि उसका बढ़ना शायद दीख ही न पड़े, बढ़ेगी। यह करिश्मा खूनी क्रान्तिके द्वारा सम्भव नहीं। इस मामलेमें जल्दीसे काम लेना निस्सन्देह कामको बिगाड़ना है। चरखेकी क्रान्ति ही, जहाँतक कल्पना दौड़ती है, द्रुततम क्रान्ति है।

दसवाँ और अन्तिम प्रश्न इस प्रकार है:

जब जीवनके परम स्वार्थका सवाल उपस्थित होता है तब क्या तर्क और युक्तिको ताकपर नहीं रख दिया जाता? क्या हकीकत यह नहीं है कि थोड़ेसे स्वार्थी, आततायी और हठी लोग तर्क और युक्तिकी बात नहीं सुनते और एक जनसमाजपर हुकूमत करते हैं, उसपर जुल्म ढाते हैं और उसके साथ अन्याय करते रहते हैं? पाण्डवों तथा आग्रही कौरवोंमें शान्तिपूर्वक मेल करानेमें भगवान श्री कृष्ण भी सफल न हो सके। महाभारत चाहे कोई ऐतिहासिक घटना न हो। कृष्ण चाहे आध्यात्मिकतामें इतना ज्यादा बढ़े-चढ़े न हों, पर खुद आप भी तो अपने उस न्यायाधीशको इस्तीफा देने और सजाका हुक्म न सुनानेके लिए राजी नहीं कर सके, हालाँकि औरोंकी तरह वह भी आपको निरपराध मानता था। ऐसी बातोंमें कोई आत्म-त्यागके द्वारा समझानेसे कहाँतक सफल हो सकता है?

यह बात दुःखपूर्ण, पर सच है कि जहाँ स्वार्थका सम्बन्ध आता है, लोग तर्क और युक्तिको ताकपर रख देते हैं। निरंकुश शासक निस्सन्देह बड़े दुराग्रही होते हैं। अंग्रेज निरंकुश शासकको तो दुराग्रहका अवतार ही समझिए। पर वह सहस्रमुखी दानव है। वह दुर्दमनीय और अवध्य है। उसे उसीके शस्त्रोंसे नहीं मारा जा सकता; क्योंकि हमारे पास उसने ऐसा कोई शस्त्र रहने ही नहीं दिया है। मेरे पास एक ऐसा अस्त्र है, जो उसके शस्त्रागारमें ढाला नहीं जाता और जिसे वह चुरा भी नहीं सकता। उसने अबतक जितने शस्त्रास्त्र बनाये हैं वह अस्त्र उनसे बढ़कर है। वह क्या है? वह है अहिंसा। और चरखा उसका प्रतीक है। इसीलिए मैंने उसे देशके सम्मुख पूरे विश्वासके साथ प्रस्तुत किया है। कृष्ण जो-कुछ करना चाहते थे

उसमें, महाभारतकार कहते हैं, वे असफल हुए ही नहीं। वे सर्वशक्तिमान थे। उन्हें उनके उच्च पदसे उतारकर यहाँ घसीटना व्यर्थ है। पर यदि उनके विषयमें हम उन्हें निरा मर्त्य मनुष्य समझकर विचार करें तो उनका पलड़ा हल्का पड़ जायेगा और उन्हें पीछेकी तरफ आसन मिलेगा। 'महाभारत' न तो काल्पनिक है और न जैसा लोगोंका खयाल है इतिहास ही है। वह मानव-आत्माका इतिहास है, जिसमें ईश्वर कृष्णके रूपमें मुख्य पात्र — नायक — है। उस महाकाव्यमें ऐसी कितनी ही बातें हैं जो मेरी अल्पबुद्धिसे परे हैं। उसमें कितनी बातें ऐसी हैं जो स्पष्टतः क्षेपक है। वह रत्नोंका खजाना नहीं है। वह तो एक खान है, जिसके खोदनेकी जरूरत है, जिसमें गहरे पैठनेकी जरूरत है। उसके बाद ही कंकड़-पत्थर निकालकर अलग कर देनेपर हीरे हाथ आयेंगे। इसलिए जो क्रान्तिका संकल्प ले चुके हैं या लेने जा रहे हैं अथवा उसकी धारामें कूदनेको तत्पर हैं, मैं उन मित्रोंसे आग्रह करता हूँ कि वे अपने पैर धरतीपर ही जमाये रखें और हिमालयके शिखरोंपर उड़ानें न भरें, जहाँ कि 'महाभारत' के कवि अर्जुन तथा दूसरे वीरोंको ले गये थे। मैं तो हर हालतमें उसपर चढ़नेकी कोशिश करनेसे भी इनकार करूँगा। मेरे लिए भारतवर्षका मैदान ही काफी है।

अच्छा तो अब मैदानमें उतरकर, प्रश्नकर्ता इस बातको समझ लें कि मैं अदालत इसलिए नहीं गया था कि न्यायाधीशको समझाऊँ कि मैं निरपराध हूँ; बल्कि मैं गया था अपनेको पूरा अपराधी कुबूल करने और ज्यादासे-ज्यादा सजा माँगनेके लिए, क्योंकि मैंने तो मनुष्य-कृत कानूनको जानबूझ कर तोड़ा था। न्यायाधीश मुझे निरपराध नहीं मान सकता था, उसने मुझे वैसा माना भी नहीं। जेल जानेमें कोई बड़ी कुर्बानी नहीं थी। सच्ची कुर्बानी इससे कहीं कठिन होती है। यह सज्जन अहिंसाके फलितार्थको समझ लें। यह मतपरिवर्तन करानेकी एक विधि है। मुझे इस बातका यकीन हो चुका है। और यह कहनेके लिए क्षमा किया जाऊँ कि मेरी दृढ़ और अविचल अहिंसाकी भावनाने जितने ज्यादा अंग्रेजोंको अपने विचारका कायल किया है, उतने अंग्रेजोंको मार डालनेकी सैकड़ों धमकियाँ और मार डालनेकी घटनाएँ कायल नहीं कर पाई हैं। मैं कहता हूँ कि जिस दिन भारतमें आम तौरपर विवेकशील अहिंसाका पालन होने लगेगा, स्वराज्य हमसे दूर नहीं रह जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-५-१९२५

७४. टिप्पणियाँ

अभिनन्दन-पत्र देनेवाले ध्यान दें

मैं बार-बार यह कह चुका हूँ कि मुझे दिये जानेवाले अभिनन्दन-पत्रपर जब चौखटा लगा होता है या जब वे कीमती डिब्बेमें रखे जाते है तब यात्रामें उनको रखना मुश्किल हो जाता है। फिर भी लोग मुझे भारी-भारी चौखटे और कभी-कभी कीमती मंजूषाएँ देते ही जा रहे हैं। जहाँतक वेश कीमती होनेका सम्बन्ध है, कलकत्ता निगम इस बारेमें सबसे ज्यादा गुनहगार है। मुझे वहाँ अभिनन्दन-पत्र माँगकर लाये सोनेके पत्रपर दिया गया था; क्योंकि निगम द्वारा बनवाया गया सोनेका पत्र तब-तक तैयार नहीं हो पाया था। अब इस यात्रामें देशबन्धुने मुझे वह सुन्दर सुवर्ण-पत्र दिया जिसपर पूरा अभिनन्दन-पत्र अंकित है। इसे पाते ही मुझे हैरानी हुई कि इसे रखूँगा कहाँ? और यही बात उनके बारेमें भी सही थी; हालाँकि वह दिया गया था उनके उसी पुराने भवनमें। जब वे जाने लगे तो वे महादेव देसाईको अलहदा बुलाकर कह गये कि सुवर्ण-पत्र सुरक्षित जगह रखा जाये। सौभाग्यसे सतीश बाबू मुखर्जी मेरे पास थे। मैं उनसे सुवर्ण-पत्रकी बात पहले कह चुका था। उन्होंने उसे अपने जिम्मे ले लिया। यह पत्र भी वहीं जायेगा जहाँ मुझे प्राप्त दूसरी कीमती चीजें गई हैं। जिन मित्रोंको मैंने ये सब चीजें सौंपी हैं, वे अभी इस बातका फैसला नहीं कर पाये हैं कि वे उन्हें बेचें या किसी अजायबघरमें रखें। जो लोग मुझे अभिनन्दन-पत्र देना चाहते हों, यह जानकर कि मैं बेशकीमती चीजें रख नहीं सकता, कम खर्चपर तैयार अभिनन्दन-पत्र ही दिया करें तो कितना अच्छा हो। और चौखटे? उनको तो यात्रामें उठाये फिरनेमें बहुत ही असुविधा होती है। बहुतेरे मित्रोंने तो इस बातको समझ लिया है और अब वे खादीपर छपे अभिनन्दन-पत्र देने लगे है। मेरी समझमें यह सबसे सीधा-सादा और अच्छा तरीका है। खादी तो मैं अपने साथ चाहे जितनी ले जा सकता हूँ। जितने भी अभिनन्दन-पत्र उसपर छपेंगे उतना ही खादीका प्रसार होगा। अगर खादीके अभिनन्दन-पत्रके साथ भी मंजूषा देना जरूरी हो तो मैं भविष्यमें अभिनन्दन-पत्र देनेवालोका ध्यान फरीदपुरके उदाहरणकी ओर दिलाता हूँ। वहाँ नगरपालिका और जीवशिव मिशनने सस्ती बाँसकी नलियोंमें अभिनन्दन-पत्र रखकर दिये थे। एक नली चितकबरी थी और दूसरीपर चटाई चढ़ाई हुई थी और सिरोंपर चाँदीके सादे ढक्कन लगे थे। ये चाँदीके ढक्कन भी आसानीसे छोड़े जा सकते थे। सादीसे-सादी चीज भी उस जरा-सी कलाके स्पर्शसे सुरूप हो सकती है जिसे हम अपने आसपासके जीवनसे सीख सकते हैं। हिन्दुस्तानमें ग्राम-जीवनका स्तर यद्यपि गिर गया है, तथापि उसमें अब भी इतनी कला और कवित्व है कि हम उसका अनुकरण कर सकते है। त्रावणकोरमें तो लोगोंने ताड़के पत्तोंसे खूब काम लिया था। यों तो मैं सभी अभिनन्दन-पत्रोंके बारेमें कलायुक्त सादगी रखनेकी

सलाह दूँगा; परन्तु मुझे दिये जानेवाले अभिनन्दन-पत्रोंके बारेमें तो इसका आग्रह ही करना चाहता हूँ, क्योंकि कीमती और भारी डिब्बे और चौखट अपने पास रखनेकी सुविधा और इच्छा मुझे नही है।

औंधी छूतछात

एक पत्र-लेखक लिखता है :

> आपने एक पत्र-प्रेषकके इस प्रश्नका उत्तर दिया है कि स्वयं अछूतोंके बीच प्रचलित छूतछात कैसे मिटाई जा सकती है। मैं इसी प्रकारका दूसरा प्रश्न रखना चाहता हूँ।
>
> कदाचित् आपको मालूम नहीं है कि कुछ अछूत स्वयं सवर्णके छूनेमें अथवा उसके निर्धारित मर्यादासे अधिक निकट जानेमें, अथवा उसके कुएँसे पानी भरनेमें, अथवा उसके मन्दिरमें प्रवेश करनेमें अथवा सवर्णके सम्बन्धमें कोई भी ऐसा कार्य करनेमें, यद्यपि उसके लिए आज्ञा मिल चुकी हो तथा उन्हें निमंत्रित भी किया गया हो, एक तरहका पाप समझते हैं। 'अछूत' सोचता है कि यदि वह कोई भी ऐसा कार्य करेगा तो उससे मर्यादाका उल्लंघन होगा और वह पापका भागी होगा। यह छूतछात सामान्य रूपसे प्रचलित उस छूतछातसे उलटी है जो छोटी जातियोंके खिलाफ ऊँची जातियोंमें (स्पृश्यों और अस्पृश्योंमें) पाई जाती है। यह औंधी अस्पृश्यता है। यह हो सकता है कि इस प्रकारकी अस्पृश्यतामें (जिसके बारेमें कुछ ही लोग जानते हैं, लेकिन जो उतनी ही तीव्र है जितनी कि अन्य प्रकारकी अस्पृश्यता) प्रतिशोधकी भावना न हो, और सवर्ण लोग यह सोचकर प्रसन्न भी हो सकते हैं। फिर भी यह मौजूद तो है ही; 'मैंचेस्टर गार्जियन'के विशेष संवाददाताने भी, जिसने सन् १९२२ में आपसे साबरमती जेलमें भेंट की थी[1] तथा भारतका दौरा किया था, गुजरातके आनन्द और बारडोली ताल्लुकोंमें इसे देखा था। समझमें नहीं आता कि आप अस्पृश्यता-निवारणका कार्य करनेवाले कार्यकर्त्ताओंको इस प्रकारकी उलटी अस्पृश्यतासे अछूतोंको मुक्त करनेका क्या उपाय बतायेंगे? क्या अस्पृश्यताकी तरह यह भी एक पाप नहीं है? जिसे हम मर्यादा धर्म कहते हैं, क्या वह ही इस प्रकार हमारे रास्तेमें नहीं आता? क्या कोई सच्चा अछूत, जो इस धर्ममें विश्वास रखता है, डूबते ब्राह्मणको अन्यथा समर्थ होते हुए भी बचा सकता है?

मैं अस्पृश्यताके इस नृशंसतापूर्ण परिणामसे अनभिज्ञ नहीं हूँ, जिसका संवाददाताने उल्लेख किया है। कभी-कभी मैं देखता हूँ कि मेरा स्पर्श करना तो दूर रहा अस्पृश्योंको मेरे पास आनेमें कठिनाई होती है। मैं यह नहीं मानता कि अछूतों द्वारा सवर्णोंको

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १११-११८।

स्पर्श न करना मूलतः कोई धार्मिक प्रश्न है। वे ऐसा सोच भी नहीं सकते कि वे उन लोगोंको भी छू सकते हैं, जिन्होंने उन्हें अबतक अछूत माना है। अधिकांशतः अछूत उन लोगोंकी अनुमति होनेपर भी डरके कारण स्पर्श नहीं करते। यह मामला उस फ्रांसीसी कैदीके समान है जो कि वर्षोंतक बैसिलके कारागारमें कैद रहनेके बाद छूटनेपर सूर्यके प्रकाशको बर्दाश्त नहीं कर पाया था। वह अपनी देखनेकी शक्ति लगभग खो बैठा था। लेकिन मैंने बंगालमें दिये गये एक सुझावकी बात सुनी थी। वहाँ कथित अछूतोंको यह सुझाव दिया था कि उन्हें प्रतिशोधस्वरूप कथित उच्च जातीय हिन्दुओंको अछूत समझना चाहिए और उनकी सभी सेवाएँ जो वे अब कर रहे हैं बन्द कर देनी चाहिए तथा उनसे खाना और पानी लेनेसे भी इनकार कर देना चाहिए। मुझे उस दिन बहुत खेद होगा जिस दिन इस प्रकारका प्रतिशोध लिया जायेगा; लेकिन स्वतंत्रता तथा मनमानीके इस युगमें, जो आज केवल चर्चाका विषय है, वह कार्यमें परिणत कर दिया जाये और कथित उच्च जातियोंके लोग, जिनके भाग्यमें यह बदा है, दण्डके भागी बनें तो कोई आश्चर्य की बात न होगी। प्रकृति अन्ततक हमें सुधरनेका मौका देती है तथा यदि हम उसका लाभ नहीं उठाते हैं तो अन्तमें वह हमें आज्ञा माननेके लिए बाधित कर देती है और उसके साथ सजा भी देती है। यह सजा हमें कमसे-कम परेशान तो करती ही है।

एक पत्र-लेखककी दुविधा[1]

यह है पत्र-लेखककी समस्या। मुझे पता नहीं कि मैंने जनताके सामने संन्यासीका आदर्श रखा है। मैंने तो भारतके सामने लगातार स्वराज्यका आदर्श रखा है। हाँ, ऐसा करते हुए मैंने सादगीका उपदेश जरूर दिया है। मैंने सदाचारका भी उपदेश किया है। परन्तु सदाचार, सादगी और ऐसे गुण अकेले संन्यासियोंकी सम्पत्ति या विशिष्ट अधिकार तो नहीं हैं। साथ ही मैं यह भी कदापि नहीं मानता कि संन्यासी एकान्तवासी हो और दुनियाकी कुछ भी फिक्र न करे। बल्कि संन्यासी तो वह है जो अपनी चिन्ता न कर, चौबीसों घंटे औरोंकी फिक्र करे। वह पूर्णतया स्वार्थ भावसे मुक्त होकर भी निःस्वार्थ कामोंमें लगा रहे, जिस तरह ईश्वर अविराम निःस्वार्थ सेवामें लगा रहता है। इसलिए एक संन्यासी तभी सच्चा त्यागी कहा जायेगा जब वह स्वराज्य अपने लिए नहीं (क्योंकि उसे तो वह प्राप्त ही है), बल्कि औरोंके लिए प्राप्त करनेकी चिन्ता करे। उसे अपने लिए दुनियामें किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं रहती। पर इसके यह मानी नहीं हैं कि वह औरोंको दुनियामें अपना स्वत्व पहचानने और प्राप्त करनेमें मदद न दे। यदि प्राचीन कालके संन्यासी समाजके राजनीतिक जीवनकी कोई चिन्ता नहीं करते थे तो उसका कारण यह है कि उस कालकी समाज-रचना भिन्न प्रकारकी थी, पर आज तो राजनीति जीवनके प्रत्येक अंगको प्रभावित करती है। हम चाहें या न चाहें, सैकड़ों

१. पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है। लेखकने लिखा था: 'मैं आपके लेख और भाषण ध्यानसे पढ़ता हूँ। मुझे उनमें भारी विसंगति दिखाई देती है। एक ओर आप मनुष्यके सामने संन्यासीका आदर्श रखते हैं और दूसरी ओर स्वराज्यके लिए प्रयत्नशील हैं जिसकी जरूरत संन्यासीको नहीं। आप इन दोनों विचारोंमें संगति कैसे बैठाते हैं?'

बातोंमें हमारा सम्बन्ध राज्यसे पड़ता है। हमारे नैतिक जीवनपर राज्यका असर पड़ता है। इसलिए समाजका सबसे बड़ा हितैषी और सेवक होनेके कारण संन्यासीका ताल्लुक राजा-प्रजाके बीचके सम्बन्धोंसे आये बिना नहीं रह सकता — अर्थात् उसे प्रजाको स्वराज्य प्राप्त करनेका रास्ता दिखाना ही चाहिए। इस तरह विचार करनेपर स्वराज्य किसीके लिए गलत आदर्श नहीं है। लोकमान्यने देशको, हममें से तुच्छसे-तुच्छको, जो सबसे बड़ा सत्य सिखाया वह है उनका दिया मन्त्र : "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है"। संन्यासी तो स्वयं स्वराज्य-प्राप्त होता है, इसलिए उसका रास्ता दिखानेके लिए वही सबसे योग्य है। संन्यासी दुनियामें रहता है, परन्तु वह दुनियादार नही होता। जीवनके तमाम महत्त्वपूर्ण कार्योंमें उसका आचरण साधारण मनुष्योंके जैसा होता है; सिर्फ उसकी दृष्टि जुदी होती है। हम जिन बातोंको रागपूर्वक करते है उन्हें वह वीतराग होकर करता है। वीतराग होनेका प्रयत्न हम सब लोगोंके लिए कर्त्तव्य है। निश्चय ही हर व्यक्तिके लिए यह एक उपयुक्त आकांक्षा है।

जानवरोंके प्रति निर्दयता

अब चूंकि मैंने अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डलके संचालनका बड़ा बोझ अपने सिरपर ले लिया है, मेरे पास गोरक्षा विषयक पत्र खूब आने लगे हैं। उसके फलस्वरूप मेरा पत्र व्यवहार पहलेसे भी और भारी हो गया है। मैं यहाँ एक नमूना देता हूँ :[1]

मैं कलकत्ताकी सड़कोंसे होकर बहुधा निकला हूँ। लेखकने गाड़ियोंमें जोते जानेवाले बैलों, भैंसों तथा घोड़ोंके विषयमें जो-कुछ लिखा है वह बिलकुल सत्य है। लेखकने मालिकोंपर जो लांछन लगाये हैं उनमें अतिशयोक्ति नहीं है, यद्यपि मेरी रायमें मालिक उनसे जान-बूझकर निर्दयताका व्यवहार नही करते, वे सिर्फ लापरवाह है। युक्तिकी बात वे भी मान सकते हैं जैसे कि माल-ढुलाई करनेवाले और गाड़ीवान मान लेते है। प्रश्न यह है कि उनतक कैसे पहुँचा जाये। नगरपालिकाकी हदमें काममें लाये जानेवाले जानवरोंकी हालतकी देखभाल करनेका कार्य सम्बन्धित नगरपालिकाका है। तथापि गैर सरकारी उपकारी संस्थाएँ भी मालिकोंको पत्र लिख सकती हैं और उनसे मुलाकात कर सकती है तथा जहाँ भी शिकायतका कारण हो उसे दूर करनेका अनुरोध कर सकती हैं। मुझे विश्वास है कि लगातार निगाह रखने तथा सम्बन्धित लोगोंसे विचारपूर्ण अनुरोध करनेसे काफी सफलता मिल सकती है।

मुर्गियोंके बच्चों तथा टर्कियों हालतकेकी विषयमें मुझे कुछ भी नहीं मालूम। लेकिन यदि ऐसा अपराध नगरपालिकाके बाजारमें किया जाता है तो निगम आसानीसे उसकी रोकथाम कर सकता है। मनुष्यों द्वारा मूक जीवोंके प्रति जो निर्दयता बरती जाती है वह मानवीय शक्तियोंके उचित संगठनसे काफी हदतक रोकी जा सकती है। बंगाल

१. यहाँ नहीं दिया गया है। बंगाल प्रान्तीय महिला परिषद्की ओरसे भेजे गये इस पत्रमें कलकत्तामें पशुओंके प्रति जो निर्दयता बरती जाती है, उसका विस्तृत वर्णन था; और गांधीजीसे इस विषयमें टीका करनेका अनुरोध किया गया था।

प्रान्तीय महिला परिषद् ऐसे मामले, जो उसकी निगाहमें आयें, दर्ज करने तथा निगमको अथवा सम्बन्धित मालिकोंको सूचित करनेके लिए स्वयंसेवक नियुक्त कर सकती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-५-१९२५

७५. भाषण : दीनाजपुरके अस्पृश्योंके समक्ष[1]

२१ मई, १९२५

गांधीजीने कहा . . . मुझे सिर्फ इतना ही कहना है कि आप अधीर न हों और आप यह सोचकर सन्तोष करें कि आपकी दशा अन्यत्र रहनेवाले आपके भाइयोंसे कहीं अच्छी है। अगर आप चाहें तो नगरपालिकाको नोटिस दे दें कि अगर आपकी माँगें स्वीकार नहीं की जातीं तो आप सफाईका काम भगवानके भरोसे छोड़कर यहाँसे चले जायेंगे। लेकिन साथ ही आप यह बात भी ध्यानमें रखें कि आप नगरपालिकाके बुलानेपर नहीं, बल्कि अपनी इच्छासे यहाँ आकर बसे थे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-६-१९२५

७६. भाषण : दीनाजपुरकी सार्वजनिक सभामें

२१, मई, १९२५

अभिनन्दन-पत्रोंका उत्तर देते हुए गांधीजीने मधुर बंगला[2], हिन्दी, और संस्कृत भाषाओंमें अभिनन्दन-पत्र पानेपर हार्दिक सन्तोष व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि इस सौजन्यके कारण मैं जिलाबोर्ड द्वारा अंग्रेजीमें अभिनन्दन-पत्र दिये जानेकी बात माफ करनेको तैयार हूँ। इसके बाद उन्होंने एकत्रित जन-समुदायके अनुशासनपूर्ण व्यवहार और उनकी इच्छानुसार जो लोगोंने शान्ति बनाये रखी, उसकी सराहना की। उन्होंने सूत कातनेवालोंकी भी तारीफ की। उन्होंने कहा :

अपने बंगालके दौरोंमें दीनाजपुरके सूत कातनेवालोंको देखकर मुझे सबसे ज्यादा खुशी हुई है और उन्हें काम करते देखकर मैं मोहित हुआ हूँ। यह भी एक बड़ा शुभ लक्षण है कि वकील, डाक्टर और समाजके अन्य प्रतिष्ठित लोग संथालों, मेहतरों और अबतक नीची निगाहसे देखे जानवाले अन्य लोगोंके साथ बैठकर सूत कातते हैं।

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

२. स्थानीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष जोगेन्द्रचन्द्र चक्रवर्तीने एक अभिनन्दन-पत्र बंगलामें पढ़ा; इसके बाद तीन और अभिनन्दन-पत्र संस्कृत, हिन्दी, तथा अंग्रेजीमें पढ़े गये।

खद्दर, अस्पृश्यता और हिन्दू-मुस्लिम एकताके त्रिसूत्री कार्यक्रमपर जोर देनेके बाद उन्होंने अपना भाषण समाप्त किया।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २३-५-१९२५

७७. भाषण : दीनाजपुरके विद्यार्थियोंके समक्ष

२१ मई, १९२५

एक मित्रने मुझसे कहा कि उनके मनमें जब कामविकार उत्पन्न होता है तब वे उसको शान्त करनेके लिए चरखा उठा लेते है। एक दूसरे मित्र कहते है कि उन्हें जब कभी क्रोध चढ़ता है तब वह चरखा चलानेसे शान्त हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिए जिस शान्तिकी आवश्यकता होती है वह चरखेसे मिल जाती है। दो-तीन दिन पहले मुझे दो-एक लड़कोंने कहा, "हमसे चरखा नही चलाया जाता; हम तो फाँसीपर चढ़नेके लिए तैयार हैं। आप हमें कोई ऐसा कार्य बतायें जिसका हमपर नशा चढ़ जाये।" मुझे ऐसा लगा कि ये विद्यार्थी ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले नही हैं, क्योंकि चरखे-जैसी शान्तिपोषक वस्तु इनको अच्छी नहीं लगती। मुझे तो लगता है कि जीवनको सत्यनिष्ठ, निर्मल, शान्त और सेवामय बनानेकी सामग्री चरखेमें निहित है। इसलिए मैं आप सबसे यह अनुरोध करता हूँ कि आप सूत कातनेके रूपमें आधा घंटेका श्रम अवश्य करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३१-५-१९२५

७८. भेंट : दीनाजपुरके जमींदारसे[1]

२१ मई, १९२५

यह पूछनेपर कि क्या आप अपने बारडोलीके निर्णयको गलत मानते हैं, गांधीजीने जोरदार शब्दोंमें उसका नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा :

वह निर्णय मेरे जीवनके सबसे अधिक समझदारीके कार्योंमें से एक है। भावी इतिहासकार मुझे भारतके सबसे अधिक नाजुक समयमें भारतको बचानेवाला मानेंगे। यदि मैंने वह कदम न उठाया होता तो भावी सन्तति मुझे एक राजनीतिक नेताके वेषमें सबसे बड़ा दानव मानती और भारत आगामी कई एक पीढ़ियों तकके लिए अन्धकारमें

१. महाराजाके अतिथिगृहमें हुई इस भेंटमें गांधीजी हिन्दी और अंग्रेजीमें बोले। मूल हिन्दी विवरण उपलब्ध नहीं है।

डूब जाता। आगे बढ़ रही उस सेनाको पीछे हटनेका हुक्म देनेके लिए अतीव साहसकी जरूरत थी; और मुझे यह बात कहते हुए गर्व होता है कि उस समय मुझमें अनुकूल साहसकी कमी नहीं पाई गई। वाइसरायको मेरी अन्तिम चेतावनी कोई बड़ी चीज नहीं थी, एक बच्चा भी उसपर हस्ताक्षर कर सकता था, लेकिन बारडोली प्रस्तावके लिए सचमुच ही बहादुरों-जैसे साहसकी जरूरत थी। ऐसा लग सकता है कि मैं आत्म-प्रशस्ति कर रहा हूँ, लेकिन मैं जैसा महसूस करता हूँ, मुझे चाहिए कि वैसा ही मैं आपको ईमानदारीसे साफ-साफ बता दूँ।

जैसा कि सर जॉर्ज लॉयडने[1] स्वयं स्वीकार किया है, आपका कार्यक्रम लगभग सफल हो जानेवाला था। सभी यूरोपीय उस समय बुरी तरह भयभीत थे।

वे भयभीत इसलिए थे कि वे समझे थे कि सविनय अवज्ञाके बजाय उद्धत अवज्ञा होगी। आप तो जानते ही हैं कि मेरे पास सविनय अवज्ञाका जो शस्त्र है, वह उन्हें जो शस्त्र अवगत है उनसे सर्वथा भिन्न है। उनके पास मेरी शक्ति मापनेका कोई उपाय नहीं था और इसलिए मेरी कार्यवाहियोंसे निपटनेमें वे सर्वथा असहाय थे।

तब फिर रुकनेकी पुकार लगाना क्या भूल नहीं थी, खासकर जब कि आपकी योजना इतनी सफलतापूर्वक चल रही थी?

नहीं, भाइयो, देश तैयार नहीं था, जैसा कि चौरी-चौरा काण्डने दिखा दिया। दोष हमारे अपने ही कार्यकर्त्ताओंमें था। उद्वेग और पूर्वग्रहोंपर उनका काबू नहीं था, और यदि स्वराज्य स्थापित भी हो जाता तो हमारे आपसके झगड़ों और मतभेदोंके कारण वह एक क्षण भी कायम न रह पाता।

चरखेके सामान्य आर्थिक और राजनीतिक महत्त्वपर जोर देते हुए उन्होंने आगे कहा :

हमारे कार्यकर्त्ताओंमें सचाईसे, लगनसे कार्य करनेकी कहाँतक क्षमता है, इसकी भी परीक्षा चरखा है। मुझे पूरा विश्वास है कि इस समय केवल चरखा ही भारत-की मुक्तिका द्वार खोलनेवाली कुंजी है।

किन्तु महात्माजी! इसमें सन्देह नहीं है कि बहुमत राष्ट्रीय स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए चरखेकी सामर्थ्य और उपयोगिताको माननेमें आपके साथ नहीं है।

मैं इसकी चिन्ता नहीं करता। यदि इस सवालपर मैं अकेला भी होऊँ और सारा भारत मेरे खिलाफ खड़ा हो, तब भी मैं सीना तानकर खड़ा रहूँगा। जो लोग मुझसे भिन्न राय रखते हैं, वे अपने मतानुसार देशकी सेवा कर सकते हैं, लेकिन मैं जितना सम्भव है उतने जोरसे यही बात कहूँगा कि चरखा हमें स्वराज्य दिलायेगा। यह सब आपको कोरी अतिशयोक्ति लग सकता है, लेकिन यह अतिशयोक्ति नहीं है। मेरे लेखे यह एक आम व्यावहारिक बुद्धिकी बात है। जिस तरह एक संगीतज्ञ विश्वासके साथ कह सकता है कि उसके एक विशेष तार छेड़नेपर एक निश्चित स्वर निकलेगा, उसी तरह मेरा विश्वास इस समस्याके हलके सम्बन्धमें है।

१. बम्बईके गवर्नर।

इसके बाद महात्माजीको बताया गया कि कट्टर हिन्दू इस बातको ठीक नहीं जानते कि आप अपना अस्पृश्यताका सिद्धान्त कहाँतक ले जाना चाहते हैं। जैसी सीधी-सादी और नपी-तुली भाषामें बोलना उनकी खूबी है, वैसी ही भाषामें उन्होंने कहा:

मैं इसे एक शब्दमें समझाऊँगा। हिन्दुओंमें चार वर्ण हैं। मैं पाँचवाँ कोई वर्ण नहीं मानता। मेरा यह विश्वास शास्त्रोंके अध्ययनपर आधारित है। तथाकथित अस्पृश्योंके साथ शूद्रों-जैसा बरताव होना चाहिए, उससे घटकर नहीं। जिन लोगोंको शूद्रोंके साथ परस्पर खानपानमें कोई आपत्ति नहीं है, उन्हें अछूतोंसे वैसा ही बरताव करनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। लेकिन जो लोग शूद्रोंके साथ नहीं खाते, निश्चय ही उनका अछूतोंके साथ खानपान भी जरूरी नहीं है।

किसीने इस बातपर दुःख प्रकट किया कि १९२०–२१ में जैसी हिन्दू-मुस्लिम एकता थी, वह इधर हालमें कम होती जा रही है। महात्माजीने दुःखके साथ जवाब दिया:

यह एकता, एकता कहने योग्य नहीं थी। यह तो एकताकी दिशामें प्रयत्न-भर था। क्या विश्वकी कोई ताकत मुझसे मेरी पत्नीको अलग कर सकती है? जब दोमें सच्ची अभिन्न-हृदय एकता होगी तो किसी भी तीसरे पक्षकी ओरसे दिया गया कोई भी प्रलोभन या झाँसा उसे अविच्छिन्न नहीं कर सकता।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २३-५-१९२५

७९. भाषण: कार्यकर्त्ताओंके स्कूल, बोगूड़ामें[1]

२२ मई, १९२५

मैं आप लोगोंसे चरखेके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहूँगा। आप जानते ही हैं कि इस विषयमें अन्य स्थानोंपर मैं क्या कहता रहा हूँ। अस्तु, मैं अहिंसाके बारेमें आपको कुछ बताऊँगा ताकि आपका विश्वास अहिंसामें दृढ़ हो। ढाकामें एक विद्यार्थीने मुझसे कहा कि चरखा चलानेमें जोशकी कोई गुंजाइश नहीं है, इसलिए मैं उसे चलानेकी अपेक्षा फाँसीके तख्तेपर अधिक खुशीसे चढ़ूँगा। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि उस विद्यार्थीको न तो अहिंसामें विश्वास है और न ब्रह्मचर्यमें ही। चरखा शान्ति और अहिंसाका प्रतीक है और उसीमें मेरी पूरी श्रद्धा है, क्योंकि अहिंसा मेरे लिये एक नीति नहीं है वरन् एक सिद्धान्त, एक धर्म है। मैं अहिंसाको ऐसा क्यों मानता हूँ? इसलिए कि मैं जानता हूँ कि संसार जिससे टिका है वह शक्ति हिंसा अथवा विनाशकारी कोई शक्ति नहीं है। मैं यह जरूर स्वीकार करता हूँ कि संसारमें विनाशकारी शक्ति

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

भी है लेकिन वह अस्थायी है और वह उस सृजनकारी शक्तिके सामने सदा व्यर्थ सिद्ध होती है जो शाश्वत है। यदि विनाशकारी शक्ति अधिक प्रबल होती, तो सभी पवित्र प्रेमसम्बन्ध — माता-पिता और बच्चेके बीच, भाई-बहनोंके बीच शिक्षक और शिष्यके बीच, शासकों और शासितोंके बीच — समाप्त हो जाते। अहिंसा सूर्यके समान है, जिसकी पूजाको हमारे ऋषियोंने गायत्रीमें परमेश्वरके प्रतीक-रूपमें चिरस्थायी कर दिया है। जिस प्रकार सूर्य नित्य परिक्रमण करते हुए और अन्धकार, पाप तथा ग्लानिको दूर करते हुए "मनुष्यकी नश्वरताका साक्षी बना रहता है", उसी प्रकार अहिंसाको समझिए। अहिंसा आपको ऐसे प्रेमकी प्रेरणा देती है जिससे बड़े जोश या साहसकी, बात आप सोच भी नहीं सकते। और इसीलिए इस चरखेमें जो शान्ति और प्रेमका प्रतीक है, ज्यों-ज्यों मैं वृद्ध होता जाता हूँ, मेरी आस्था बढ़ती जा रही है। और इसीलिए मैं नहीं समझता कि आपने दान करते समय मेरा चरखा कातना कोई अनुचित काम है। चरखा घुमाते हुए मैं स्वयं अपनेसे कह रहा हूँ, "परमात्मा जब कि वह असंख्य लोगोंको भूखा रखे हुए है, मुझे नित्यकी रोटी क्यों देता है? वह या तो मुझको भी भूखा रखे या फिर मुझे उनकी भूख मिटाने योग्य शक्ति दे।" मैं चरखा चलाकर अहिंसा और सत्यका, जो एक ही सिक्केके दो बाजू हैं, आचरण करता हूँ। अहिंसा मेरा परमेश्वर है और सत्य भी मेरा परमेश्वर है। जब मैं अहिंसापर निगाह उठाता हूँ, सत्य कहता है: "उसे मेरे जरिये प्राप्त करो।" जब मैं सत्यकी खोज करता हूँ तो अहिंसा कहती है, "उसे मेरे जरिये प्राप्त करो।"

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-६-१९२५

८०. भाषण: बोगुड़ाकी सार्वजनिक सभामें

२२ मई, १९२५

महात्माजीने अभिनन्दन-पत्रोंका[1] जवाब देते हुए उनके लिए धन्यवाद दिया और आश्वासन दिया कि वे खद्दर सस्ता करने और गरीबोंको मुफ्त चरखे बाँटनेके लिए प्राप्त थैली खादी प्रतिष्ठानको सौंप देंगे। इस सम्बन्धमें महात्माजीने डॉ० प्रफुल्लचन्द्र रायकी, जिनके साथ १९०१से उनके सम्बन्ध थे, प्रशंसा की। महात्माजीने कहा कि स्वर्गीय श्री गोखलेने मेरा परिचय उनसे कराया था और तबसे हमारे पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़ होते गये। इसलिए यह मुनासिब ही है कि इस जिलेमें दौरा करना मैं अपना सौभाग्य समझूँ, क्योंकि इससे मुझे गरीबोंके लिए डॉ० रायने जो शानदार काम किये और आज भी कर रहे वह याद आ जाते हैं।

१. यह अभिनन्दन-पत्र नगरपालिका, जिलाबोर्ड और जनताकी ओरसे भेंट किये गये थे।

महात्माजीने यह भी कहा कि दीनाजपुर और बोगूड़ामें पहली बार मैंने अमीर-गरीब, पिता और छोटे लड़के-लड़कियों, अछूतों और ब्राह्मणों आदि सबको साथ-साथ बैठकर देशकी खातिर सूत कातते देखा, जिससे चरखेमें मेरी आस्थाको और भी बल मिला है। उन्होंने कहा कि यह देशके लिए शुभ शकुन है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २४-५-१९२५

८१. भाषण : तलोडामें[1]

२२ मई, १९२५

मैंने बोगूड़ाकी सभामें कहा था कि मेरा वहाँ जाना मेरे लिए तीर्थयात्रा-जैसा था। इस बातको मैं यहाँ फिर दुहराता हूँ। श्री रायके स्वार्थ-त्यागको जितना मैं जानता हूँ उतना कदाचित् आप न जानते हों और जब मुझे यह पता लगा कि वे जिन अनेक कामोको कर रहे हैं उनमें से एक काम यह भी है, तभी मैंने एक बार यहाँ आनेका निश्चय कर लिया था। इसके अलावा जब मैंने यहाँ आकर यह देखा कि उनके कार्यसे जिन लोगोंको सहायता मिली है, उनमें मुसलमान अधिक हैं तो मेरी प्रसन्नताका और उनके प्रति मेरी श्रद्धाका पार न रहा; क्योंकि यदि हिन्दू मुसलमानोंकी ऐसी सेवा करें और मुसलमान हिन्दुओंकी तो दोनोंमें अपने आप सौहार्द हो जायेगा। मुझे बहुत दुःख है कि इस दुर्लभ दृश्यको देखनेके लिए यहाँ मेरे भाई शौकत अली या मुहम्मद अली नहीं हैं। आज इस समय देशकी स्थिति ऐसी विषम है कि हम कार्यकर्त्ताओंको अपना-अपना काम छोड़कर बाहर निकलना कठिन हो गया है। किन्तु मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैं जब उन दोनों बन्धुओंको यहाँका समाचार सुनाऊँगा तो उनको बहुत प्रसन्नता होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-६-१९२५

१. यहाँ डा० प्रफुल्लचन्द्र राय एक खादी केन्द्र चलाते थे।

८२. पत्र : कल्याणजी मेहताको

ज्येष्ठ सुदी १ [२३ मई, १९२५][1]

भाईश्री कल्याणजी,

आपका पत्र मिल गया। पार्वतीबहनको[2] कहें कि वह मुझे कभी-कभी पत्र लिखें। आशा है आप बारडोलीका कार्य बहुत ध्यानसे कर रहे होंगे। मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहता है। इस पत्रके साथ चि० रुखीके लिए एक आशीर्वादका पत्र भेज रहा हूँ। आशा है कि विवाहकी रस्ममें सादगी बरती गई होगी और वह निर्विघ्न सम्पन्न हुई होगी। मेरे बंगालके दौरेकी अवधि थोड़ी बढ़ गई है।[3] मुझे असम भी जाना होगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २६७६) की फोटो-नकलसे।

८३. बंगालका त्याग

बंगालमें शुद्ध त्यागके दृष्टान्त देखकर मैं तो हर्ष-विभोर हो रहा हूँ। एक जमींदारका सारा कुटुम्ब खादीमय है। उस परिवारकी सभी स्त्रियाँ सूत कातती हैं और सभी स्त्री और पुरुष खादी पहनते हैं। उन्होंने अपनी जमीन और अपना घर खादी-प्रतिष्ठानको उपयोगके लिए दे दिये हैं। प्रतिष्ठानके प्राण सतीश बाबूका त्याग भी ऐसा-वैसा नहीं। उन्हें डॉ० रायके रसायनके कारखानेसे हर माह १,५०० रु० मिलते थे। उन्हें वहाँ रहनेके लिए बंगला भी मिला हुआ था। अधिक माँगते तो अधिक भी मिल सकता था। वे वहाँ रहते हुए भी खादीका काम तो करते ही थे। परन्तु उन्हें इतनेसे सन्तोष नहीं हुआ। उनके कोमल हृदयने अनुभव किया कि इस तरह दो काम करनेसे दोनोंके बिगड़नेकी सम्भावना है। वे रसायनके कारखानेके तो प्राण ही थे। उसके लिए यदि वे पूरा समय न देते तो उसे जरूर धक्का लगता। इधर खादीके द्वारा गरीबोंकी सेवा होती है। यह काम फुरसतके वक्तमें किया जा सकता था, किन्तु उन्हें उचित नहीं मालूम हुआ। एक पुरुषका दो पत्नी रखना जिस तरह पाप है उसी तरह एक मनुष्यका दो कामोंको अपना प्रिय कार्य बनाना भी अनर्थकारी है। फिर खादीके लिए तो जितना त्याग किया जाये उतना ही कम है। उन्होंने अपने मनमें इस तरह तर्क करके जिस कारखानेको खुद जमाया था, उसीको एक क्षणमें छोड़ दिया और अब अपने पास जो-कुछ थोड़ी जमा पूँजी है उसकी आमदसे

१. गांधीजीने बंगालका दौरा १९२५ में किया था; उस वर्ष ज्येष्ठ सुदी १, २३ मईको पड़ी थी।

२. प्रागजी देसाईकी पत्नी।

३. यह ३१ अगस्त, १९२५ तक बढ़ा दिया गया था।

अपना घर-खर्च चलाते और अपना सारा समय खादीके कार्यमें ही लगाते हैं। वे अपने कामकी ग्यारह शाखाएँ खोल चुके हैं। इनमें से पाँच खादी उत्पादक-केन्द्र हैं। वे अभी ऐसी शाखाएँ और भी खोलनेका इरादा कर रहे हैं। इन शाखाओंके मार्फत ५,०६० चरखोंसे सूत काता जा रहा है और ५९७ हाथकरघोंपर खादी बुनी जा रही है।

उनके इस कार्यमें उनकी धर्मपत्नी भी उनके साथ हो गई हैं। जहाँ रुपयेकी बहुतायत थी वहाँ उन्हें आज तंगीसे काम चलाना पड़ता है, यह बात इस बहनको खलती तो होगी। जहाँ रहनेके लिए अलहदा बंगला था, वहाँ उन्हें आज एक छोटी-सी इमारतके एक छोटे-से हिस्सेसे सन्तोष माननेमें कठिनाई होती होगी, किन्तु ये बहन इन तमाम तकलीफोंको खुशी-खुशी सह रही हैं।

त्यागमें सतीशबाबूका उदाहरण अकेला ही नहीं है। दूसरे अनेक नवयुवक अद्भुत त्याग कर रहे हैं। सतीशबाबूके पास बहुत था और उन्होंने बहुत छोड़ा। फिर भी उन्हें खाने-पीनेकी साँसत नही उठानी होती। उन्हें सामान्यतः सोने-बैठनेकी तकलीफ नहीं है, परन्तु सौ नवयुवक ऐसे हैं जिन्हे अधिकसे-अधिक २०) मासिक गुजारेके लिए मिलते हैं। बंगालमें जीवन-यापन कितना कठिन है हमें इसका अन्दाज वहाँकी स्थितियाँ देखे बिना नहीं हो सकता। कहा जा सकता है कि बरसातके दिनोंमें तो उन्हें पानीमें ही रहना पड़ता है। उनके मकान किसी भी समय पानीमें बह जा सकते हैं। एक घरसे दूसरे घर नावमें बैठकर जाना पड़ता है। ऐसे समयमे गन्दगी की तो हद ही नही रहती। ये नवयुवक ऐसे कष्ट सहकर राष्ट्रकी सेवा कर रहे हैं। कुछ लोग खादीके काममें लगे हुए हैं और कुछ राष्ट्रीय शालाओंमें। तमाम राष्ट्रीय शालाओंमें चरखा तो जरूर ही चलाया जाता है।

ऐसी हालतमें जायकेदार खाना मिलना तो असम्भव ही होता है। दूध-दही भी हमेशा नहीं मिल सकता। वहाँ सामान्य भोजन दाल-भात होता है। बंगालमें बिलकुल निरामिष भोजन करनेवाले कम ही लोग होते हैं। जो मांसाहार नहीं करते वे भी मछली तो जरूर खाते हैं। इन निर्धन सेवकोंको भी जब और कुछ नहीं मिलता तब मछली तो मिल ही जाती है। मानना चाहिए कि जिसे दूध-दही न मिलता हो उसके लिए यह बहुत बड़ा सहारा है। इससे उनके त्यागकी कीमत कम नहीं होती। उनके मछली खानेकी बात मैंने इसीलिए लिखी है कि उनके कष्टोंका माप करनेमें मुझसे कही अत्युक्ति न हो।

ये सब नवयुवक शिक्षित हैं। उनमें से कुछ तो प्राध्यापक थे और बड़े-बड़े वेतन पाते थे। आज उन्हें अपने त्यागपर पश्चात्ताप नहीं होता। वे लोग त्यागमें सुख मानते हैं। इसके बिना ऐसा कठिन त्याग टिक भी नहीं सकता। जब मैं उनके इस त्यागका विचार करता हूँ तब मुझे गुजरातके लोगोंका त्याग नगण्य मालूम होता है। शिक्षित वर्गमें जो त्याग यहाँ देख रहा हूँ उसकी तुलना तो केवल महाराष्ट्रके लोगोंके त्यागके साथ ही की जा सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २४-५-१९२५

८४. टिप्पणियाँ

बहिष्कार हो तो?

एक भाई लिखते हैं:[1]

इसका जवाब मैं तो एक ही दे सकता हूँ। पंच कितना ही जुल्म करें, फिर भी उन्हें अदालतमें न ले जाया जाये। वे जैसी सजा देना चाहें वैसी दें। उस सजाको भोग लेनेसे पंचोंका गुस्सा ठंडा हो जाता है और वे स्वयं पश्चात्ताप करते हैं। फिर, जहाँ पंच अन्याय करते हैं, वहाँ तो बहिष्कार स्वागत-योग्य माना जाना चाहिए। जिस जातिमें कन्या-विक्रयका अत्याचार होता हो, जिस जातिमें ढोंग हो, जिसके पंच सदस्य मांसाहार और मद्यपानको तरह देते हों, उस जातिमें रहनेसे फायदा हो ही नहीं सकता। जाति तो रूढ़ि है, धर्म नहीं। जातिमें रहकर मनुष्य कुछ सहूलियत पाता है। लेकिन जहाँ जाति नीति-भ्रष्ट हो जाये, वहाँ इन सहूलियतोंको मंजूर न करना ही अच्छा है। हमने जिस नीतिका आश्रय लेकर सरकारसे असहयोग किया, उसी नीतिको जातिपर लागू करके उससे भी असहयोग किया जा सकता है।

लेकिन यहाँ तो असहकारका सवाल ही नहीं उठता। यहाँ तो स्वयं जाति हमारा बहिष्कार करती है। हमें इसे एक अच्छा मौका मानकर इसका स्वागत करना चाहिए। लेकिन इसे अच्छा मौका वही मान सकता है, जिसने अपना धर्म पाला हो, जातिकी सेवा की हो और जातिकी नीति-वर्धक आज्ञाओंको हमेशा खुशीसे माना हो। संयमी ही बहिष्कारका स्वागत कर सकता है। असंयमीको तो बहिष्कार दुःखदायी लगेगा। लेकिन अस्पृश्यता-निवारण असंयमीका नहीं, संयमीका काम है। अस्पृश्यता-निवारण भोगोंकी वृद्धिके लिए नहीं, बल्कि सेवाके अवसर अधिक प्राप्त करनेके लिए है, सेवासे किसीको बहिष्कृत न करनेके लिए है।

देशी राज्य

एक सज्जन यह सवाल[2] करते हैं। लेखककी बातमें बहुत-कुछ सत्यांश है। पर इस सवालका एक दूसरा पहलू भी है। जिस प्रजामें सत्व होता है उसका राजा अन्यायी नहीं हो सकता। यदि प्रजामें सत्व नहीं है तो शासनतन्त्र चलानेवाला चाहे राजा हो और चाहे लोक प्रतिनिधिमण्डल हो, दोनों समान हैं। जो सत्ताका उपयोग करना नहीं जानता वह उस सत्ताको कायम कैसे रख सकता है? इसीलिए मैंने कहा

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने लिखा था, "आजकल कोई-कोई जाति अस्पृश्यता न माननेवालोंको, भले वे कितने ही अच्छे गुणोंवाले हों, जातिसे निकाल देती है, पर शास्त्रोंने जिसे बड़ा भारी पाप माना है उसके बारेमें पंच कुछ नहीं करते। ऐसे जालिम पंचोंको अदालतमें ले जाया जाये या नहीं?"

२. यहाँ नहीं दिया गया है। लेखकने पूछा था कि राजा आज अच्छा और कल बुरा भी हो सकता है, तब क्या राज्य कायम रखने चाहिए?

है कि जैसी प्रजा होती है वैसा राजा होता है। जहाँ-जहाँ मैंने अन्याय होता देखा है, वहाँ-वहाँ प्रजाका दोष अर्थात् प्रजाकी कमजोरी भी देखी है। मैंने प्रजासत्तात्मक राज्यमें भी अन्याय होते देखा है; और उसमें प्रजाकी कमजोरी देखी है। पृथ्वीमें आज ऐसे प्रजासत्तात्मक राज्य मौजूद है, जहाँ मनमानी अन्धाधुन्धी चल रही है और जहाँ हर हाकिम राजा बन कर बैठ गया है।

मैंने यह नहीं चाहा है कि निरंकुश राज्य कायम रहें। अंकुश कैसा और कितना होना चाहिए, इसका विचार राजा और प्रजाको कर लेना चाहिए। जहाँ प्रजा जाग्रत है, वहाँ अन्याय असम्भव होता है। जहाँ प्रजा सुप्त है, वहाँ राज्यतन्त्र कैसा भी हो, अन्याय तो रहेगा ही। देशी राज्य निर्मल और पूरी तरह न्यायवान हो सकते हैं। उसके लिए हमारे पास रामराज्यका उदाहरण मौजूद है। आजकलके देशी राज्योंमें जो अपूर्णता दिखाई देती है उसका कारण एक ओर प्रजाकी अपूर्णता है और दूसरी ओर अंग्रेजी राज्यतन्त्रकी अपूर्णता। इसलिए देशी राज्योंकी अन्धाधुन्धीपर आश्चर्य नहीं हो सकता। परन्तु इस तरह दोनों अपूर्णताओंका असर होते हुए भी कितने ही देशी राज्योंके शासनतंत्रका चमक उठना क्या देशी राज्योंकी नीतिमत्ताका सूचक नहीं है? मेरे लिखने और कहनेका आशय सिर्फ इतना ही है कि देशी राज्योंमें कोई बात संग्रहणीय नही है और उनको मिटा देना ही उचित है, यह खयाल ठीक नही है। देशी राज्योंमें सुधार करनेकी बहुत-कुछ गुंजाइश है और वे सुधार करनेसे आदर्श राज्य बन सकते हैं। मेरे कहनेका यह आशय हरगिज नहीं है कि जिस हालतमें वे आज है, उसीमें वे बने रहें।

एक जमींदारकी सेवाएँ

चौधरी रघुवीरनारायण सिंह मेरठके जमीदार है। उन्होंने असहयोगके दिनोंमें जो त्याग किया था, वह अभीतक कायम है। उनका पूरा परिवार खादी-प्रेमी है। उन्होंने बेलगाँवमें यह प्रतिज्ञा की थी कि वे अप्रैलसे पहले कांग्रेसके ५०० सूत कातनेवाले सदस्य बनायेंगे। उन्होंने इस प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें लिखा है:[१]

यह सच है कि चौधरीजी सूत कातनेवाले ५०० सदस्य स्वयं नहीं बना सके हैं। फिर भी उनका उत्साह अनुकरणीय है। यदि बहुत-से धनी लोग इस कार्यमें भाग लें तो सूत कातने और खादी तैयार करनेका काम बहुत तेजीसे चल सकता है।

जैन मुनि और चरखा

जैन मुनि चरखा चला सकते हैं या नहीं, इस बारेमें पालीताणामें हुई बातचीतका जो समाचार 'नवजीवन' में छपा था[२], उसके सम्बन्धमें मेरे पास कई पत्र

१. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने इस बातपर खेद प्रकट किया था कि वे अपने बड़े भाईकी बीमारी और मृत्युके कारण अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सके हैं। उन्होंने गांधीजीको विश्वास दिलाया था कि उनका खादीके प्रति प्रेम बना रहेगा। उन्होंने साथ ही इस सम्बन्धमें किये गये अपने कार्यका विवरण भी दिया था।

२. देखिए खण्ड २६, पृष्ठ ४५७-५९।

आये है। मैं इस विषयके विवादमें नहीं पड़ूँगा। हाँ, कुछ बातोंका स्पष्टीकरण करना उचित होगा। मैंने अपनी समझके अनुसार जैन-धर्मग्रन्थोंका अध्ययन किया है; किन्तु मैं जानता हूँ कि मुझे उन ग्रन्थोंकी व्याख्या करनेका कोई अधिकार नही है। मैंने बात-चीतमें तो केवल अहिंसा और मुनिभावकी ही व्याख्या की थी। सम्भव है कि मेरी यह व्याख्या जैन-दर्शनके अनुकूल न हो। यदि ऐसा हो तो मुझे उससे खेद ही होगा और मैं मान लूँगा कि मेरा मत जैन मतसे विरुद्ध है। किन्तु फिर भी मेरा हृदय और मस्तिष्क जिस बातको स्वीकार करते हैं उसे कहनेका मुझे अधिकार होना चाहिए। हो सकता है कि इस सम्बन्धमें मुझसे भूल हुई हो। उस हालतमें उसका फल भोगना होगा। किन्तु यदि मुझसे वह भूल अज्ञानमें हुई हो तो मैं उसे अनुभव करते ही अवश्य सुधार लूँगा। मैं अहिंसा और मुनिभावकी व्याख्या करता हूँ, इससे किसी जैनको या अन्य भाईको अपने मनमें दुःख नही मानना चाहिए। जहाँ किसीका मन दुःखी करनेका तनिक भी आशय न हो वहाँ उसे दुःख क्यों मानना चाहिए? यदि कोई हमारी व्याख्यासे सहमत न हो और हमें अपनी व्याख्याकी यथार्थताका निश्चय हो तो हम उसे मूर्ख भले ही मानें, किन्तु हमें उससे दुःखी तो अवश्य ही नही होना चाहिए।

इतने स्पष्टीकरणके बाद मैं नम्रतापूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि इस समय तो मुनियोंके लिए भी लोक-कल्याणार्थ चरखा चलाना धर्म है। उन्हें जैसे लोक-कल्याणार्थ खाने-पीनेका अधिकार है, वैसे ही चरखा चलाना उनका कर्त्तव्य है। मेरी अल्पमतिके अनुसार तो यदि कोई मुनि किसी ऐसी प्रवृत्तिसे, जिससे एक भी जीवकी रक्षा होती हो, जान-बूझकर दूर रहता है तो वह मुनि नहीं कहा जा सकता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २४-५-१९२५

८५. फिजूलखर्ची

मेरे सामने एक लम्बा पत्र पड़ा है। उसमें वर्तमान आन्दोलनकी और उसके कार्यकर्त्ताओंकी सम्यक् और शिष्ट आलोचना की गई है। उसमें से जानने योग्य बातें नीचे देता हूँ:[1]

पच्चीस पृष्ठोंके इस पत्रका यह सार मैंने लगभग लेखकके शब्दोंमें ही दे दिया है। लेखक विवेकशील है और उन्होंने सद्भावसे पत्र लिखा है। उनके लगाये हुए कुछ आरोपोंके बारेमें मुझे कुछ भी मालूम नही है। फिर भी मेरा यह अनुभव अवश्य है कि सार्वजनिक धनका बहुत अपव्यय किया जाता है। मैंने प्रसंग आनेपर

१. पत्र यहां नहीं दिया गया है। पत्रलेखकने इसमें कार्यकर्ताओंकी आरामतलबी और विदेशी वस्तु-मोहकी शिकायत की थी और गांधीजीका ध्यान इस बातकी ओर खींचा था कि वे जब-कभी आते हैं तब उनपर फिजूल खर्च किया जाता है।

इसकी आलोचना भी की है। मुझे कई बार मालूम हुआ है कि कार्यकर्त्ताओंकी सुख-सुविधाके लिए आवश्यकतासे अधिक रुपया खर्च किया गया है। अब तो इसमें बहुत कमी हो गई है, परन्तु मुझे कबूल करना चाहिए कि अभी और सुधार करना आवश्यक है। मामूली जाने-आनेमें भी गाड़ी-भाड़ेपर रुपया खर्च किया जाता है, यह बात कुछ हदतक सच है। हम तो अब सिर्फ दरिद्रोंकी सेवा करना चाहते हैं — उनके प्रतिनिधि बनना चाहते हैं। इसलिए, मेरे मनमें जरा भी शक नहीं कि हमें अपने जीवनमें और भी अधिक सादगी लानेकी जरूरत है। जहाँ पैदल जा सकते हैं वहाँ गाड़ीका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। कार्यकर्त्ताओंको मेहमानदारीकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। कार्यकर्त्ता दावतें खानेके लिए नहीं, सेवा करनेके लिए इकट्ठे होते हैं।

मेरी समझमें यह नही आया कि स्त्रियोंके संसर्गके उल्लेखसे उनका संकेत किस बातकी ओर है। सारे पत्रको पढ़नेपर भी यह बात स्पष्ट नहीं हुई। परन्तु लेखककी की हुई तुलनासे कुछ अनुमान होता है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि संसर्गके उद्देश्यसे किया गया संसर्ग पाप है और त्याज्य है। ऐसे संसर्गकी खोजमें रहनेवाले कार्यकर्त्ताओंसे राष्ट्रकी कुछ भी सेवा नही होगी। परन्तु सेवाके लिए किया गया स्त्री-संसर्ग अनिवार्य है, अतः स्वीकार्य है। हमने स्त्रियोंको बहुत दबाकर रखा है। स्त्रियोंका स्त्रीत्व समाप्त हो गया है। देश-सेवाके निमित्त स्त्रीको बाहर निकलनेका अधिकार है और यह उसका धर्म है। स्त्रियाँ हमारी हलचलोंमें ज्यों-ज्यों ज्यादा हिस्सा लेती जायेंगी हम त्यों-त्यों स्त्रियों और पुरुषोंको एक ही सभा-समाजोंमें अधिकाधिक देखेंगे। मुझे यह स्थिति उचित मालूम होती है।

वह ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य नहीं और वह संयम संयम नहीं जिसका पालन वनमें रहकर ही किया जा सकता हो। कितने ही लोगोंके लिए वन-सेवन अभीष्ट है। ऐसा एकान्त-वास थोड़ा-बहुत सबके लिए लाभदायक है। पर वह है विचार-वृद्धिके लिए, आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए, अपनेको सुरक्षित रखनेके लिए कदापि नहीं। संसारके सामान्य व्यवहारोंमें रहते हुए भी जो अलिप्त रहता है, वही संयमी है, वही सुरक्षित है।

प्राचीन समयमें जो बन्धन लगाये गये थे वे उस समयके लिए भले ही अनुकूल रहे हों; परन्तु हम इस जमानेमें तो देखते है कि यूरोपके लोगोंमें बहुतसे स्त्री-पुरुष आपसमें बहुत आजादीसे रहते हुए भी अपने सदाचारकी और अपनी पवित्रताकी रक्षा करते है। यदि कोई यह मानता हो कि यूरोपमें पवित्रताकी रक्षा करना असम्भव है तो वह उसका निरा अज्ञान है। हाँ, यह सच है कि यूरोपमें हमारे लिए पवित्रताकी रक्षा करना जरूर मुश्किल है। इसका कारण यूरोपकी स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता नही है, बल्कि यूरोपीय लोगोंकी, भोगको भी एक प्रकारका धर्म मान लेनेकी प्रवृत्ति है। फिर यूरोपमें जिस तरहकी स्वतन्त्रता है हम उसके अभ्यस्त नही है।

यूरोपका उदाहरण हमारे लिए एक हदतक ही उपयोगी है। उसका पूरा अनुकरण भयावह है। इस दृष्टान्तके देनेका हेतु, यह बताना है कि यह विचार हर समय और हर जगहके लिए सत्य नहीं है कि स्त्रियोंसे मिलना-जुलना सर्वथा त्याज्य है और संयमीके लिए पापरूप है।

हमारी सभ्यतामें जिस सुधारकी जरूरत होगी वह सुधार अपने वातावरणपर विचार करके करना पड़ेगा। एक ओर हमें स्त्री-समाजका सुधार करना है; और दूसरी ओर इस बातकी सावधानी रखनी है कि उससे संक्रान्ति कालमें अनर्थ न हो। कुछ हदतक हमें जोखिम भी उठानी पड़ेगी। मेरे पास ऐसी शिकायतें आई हैं कि एक-दो जगह ऐसा अनर्थ हो रहा है। मैं उसकी जाँच भरसक कर रहा हूँ।

मेरी मतिके अनुसार पवित्रताको सुरक्षित रखनेके लिए यह इष्ट है कि स्त्री-पुरुष किसी भी समय कहीं भी एकान्तमें न मिलें। जहाँ सम्बन्ध पवित्र है वहाँ एकान्तमें मिलनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें अपनी शिक्षा-दीक्षामें, अपनी बोल-चालमें, अपने खान-पानमें और अपनी आदतोंमें सुधार करनेकी आवश्यकता है। शास्त्रोंमें कितने ही निर्देश उस समयके लिए थे। इस समय उनका विचार-मात्र भयंकर मालूम होता है। स्त्रियोंकी ओर देखना पाप ठहराया गया है। इससे तो ऐसा लगने लगा है मानों हम स्त्रीको शुद्धभावसे देख ही नहीं सकते। पुत्र माँके दर्शनसे पवित्र होता है। भाई-बहनकी ओर निर्दोष भावसे देखे तो उसमें पाप हो ही नहीं सकता। पाप मनकी स्थितिपर निर्भर है। जो पुरुष विकार रहित होकर स्त्रीकी ओर नहीं देख सकता उसे तो अपनी आँखें ही फोड़ लेनी चाहिए अथवा उसे मनके विकार रहित न होने तक अवश्य ही जंगलमें वास करना चाहिए। जो पुरुष अकारण ही स्त्रीकी ओर ताकता है वह विकार रहित होनेका दावा करे तो पाखण्डी है। इसके विपरीत प्रसंग आने-पर जो स्त्रीकी ओर देखते हुए डरता है, उसे अपनी भीरुता दूर करनी चाहिए। अपरिचित स्त्रीकी ओर देखना पाप समझा जा सकता है; परन्तु इस सम्बन्धमें कोई एक नियम नहीं हो सकता। कितने ही बन्धन क्यों न लगाये, फिर भी विकारी मनुष्यका मन तो मलिनता खोजेगा ही और अवसर हाथ आते ही अन्तमें वह मान-सिक पाप भी करेगा। शुद्ध मन अपने सम्मुख आये अकल्पित प्रलोभनोंको पार कर जायेगा और सर्वथा शुद्ध बना रहेगा।

अन्तमें संयमी लोगोंको उचित है कि वे लेखकके सुझावोंको सरल भावसे अपने हृदयमें स्थान दें, सावधान रहें और अपने सेवाधर्मका पालन करें।

परन्तु पूर्वोक्त लेखके सबसे महत्त्वपूर्ण भागका सम्बन्ध तो मुझसे है। मैं समझता हूँ कि लेखककी सारी टीका सच्ची है। मेरे नामपर किये जानेवाले तमाम खर्चका जिम्मेदार मैं ही हूँ; इसमें कोई शक नहीं। मैं बहुत बार अनुभव करता हूँ कि मेरे लिए किया गया बहुत-सा खर्च नाहक होता है। मैंने इस बारेमें अनेक सज्जनोंसे मीठी तकरार की है। मैं बहुत बार तो अपनी जरूरतोंके विषयमें पहलेसे पत्र लिख देता हूँ। ऐसा होते हुए भी अतिशय प्रेम अपनी अतिशयताको नहीं छोड़ता। लोग उसके कारण कुछ-न-कुछ बहाना निकालकर खर्च करते हैं। यह सब रोकनेका प्रयत्न करनेपर भी सदा रोका नहीं जा सकता। हो सकता है कि इसमें मेरी कमजोरी भी हो। सम्भव है कि मेरे मनको ऐसे भोग दरकार हों, जिन्हें मैं पहचान न सका होऊँ। महात्मा तो मैं कहने-भरका हूँ—परन्तु वास्तवमें अल्पात्मा हूँ। ऐसा न होता तो मित्रवर्गके मनको दुखाकर उनसे इस अतिशयताका सर्वथा त्याग क्यों न

कराऊँ? आशा है वह दिन भी आयेगा ही। मैंने अपने जीवनमें ऐसा बहुत किया है। यहाँ तो मैं अपना दोष स्वीकार करके उसे कुछ हलका कर रहा हूँ और लेखकको यकीन दिलाता हूँ कि उनके इस पत्रसे मैं अधिक सावधान हुआ हूँ और आगे भी सावधान रहूँगा।

मुझे एक वातके सम्बन्धमें अपना बचाव अवश्य करना पड़ेगा। वह है शौचादिकी सुविधा। मैंने आजसे पैंतीस साल पहले यह वात सीख ली थी कि शौचका स्थान भी उतना ही साफ-सुथरा रहना चाहिए जितना सोने-बैठनेका स्थान। मैंने यह बात पश्चिमसे सीखी है। मै मानता हूँ कि शौचके वहुत-से नियमोंका सूक्ष्म पालन जैसा पश्चिममें होता है, वैसा पूर्वमें नहीं। पश्चिमके शौचादिके नियमोंमें कुछ अपूर्णता है जो आसानीसे दूर की जा सकती है। हमारे अनेक रोगोंका कारण हमारे पाखानोंकी दशा और हमारी जहाँ-तहाँ मल-मूत्र डाल देनेकी कुटेव है। अतः मैंने शौचादिके लिए स्वच्छ स्थान और स्वच्छ बरतनोंकी आवश्यकता मानकर उन्हींका व्यवहार करनेकी आदत डाल ली है और मैं चाहता हूँ कि सब लोग ऐसा ही करें। यह आदत अब इस हदतक पुख्ता हो गई है कि मैं इसे बदलना भी चाहूँ तो भी यह बदल नहीं सकती और इसे वदलनेकी मेरी इच्छा भी नही होती। इसकी व्यवस्था करनेके लिए कुछ उद्योग करना होता है और उसका भार मेरे यजमानोंपर पड़ता है। परन्तु उसके लिए वम्बईसे कमोड मँगवाना तो अनर्थ ही है। एकान्तमें जमीन कच्ची हो तो वहाँ एक गड्ढा खुदवा देना और उसके पास कुछ सीढ़ियाँ बनवा देना मेरे लिए काफी होता है। यह स्थान मेरे सोनेकी जगहके नजदीक होना चाहिए। शहरोंमें तो यह सुविधा कमोडसे ही हो सकती है; इसलिए वहुत-से मित्र कमोडकी व्यवस्था कर देते हैं। परन्तु वह कमोड बम्बईका ही बना हो यह जरूरी नही। उसे कोई भी बढ़ई आसानीसे बना सकता है। आधा कनस्तर उसमें रखे जानेवाले बरतनका काम दे सकता है। सफाई रखनेके लिए दूसरी बहुत-सी बातें भी सुझाई जा सकती है।

इस व्यवस्थामें, एक भी विदेशी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। खादीमें यह बात तो निहित है ही कि दूसरी वस्तुएँ भी जहाँतक सम्भव हो, स्वदेशी इस्तेमाल की जायें। यह न समझ लेना चाहिए कि खादी पहन ली तो हमें इससे दूसरी विदेशी चीजें इस्तेमाल करनेका परवाना मिल गया। पर खादीका यह अर्थ भी नही कि किसी चीजसे केवल विदेशी होनेके कारण ही उससे घृणा की जाये। खादीका अर्थ सग्राहक है, नाशक नहीं। संग्रह करते हुए जो नाश हो वह अनिवार्य है। इसलिए केवल आवश्यक वस्तुओंका संग्रह ही क्षम्य है। कपड़ेके बिना काम नही चल सकता। हिन्दुस्तानमें कपड़ा सहज ही तैयार किया जा सकता है। कपड़ेका धन्धा हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंको रोजी देता है। सो खादी उनकी रोजीके खयालसे संग्रह-रूप अर्थात् अपनाने योग्य है। इसलिए खादी पहनना धर्म है और विदेशी वस्त्र तथा उस हद तक देशी मिलका कपड़ा पहनना भी अधर्म है। परन्तु पश्चिमसे आनेवाली 'आयोडीन' नामक दवा हिन्दुस्तानमें नहीं बनती तथापि वह आवश्यक है; इसलिए वह विदेशी होते हुए भी ग्राह्य है। परन्तु जो अपनी सुख-सुविधामें वृद्धिकी ही दृष्टिसे विदेशी

और स्वदेशी वस्तुओंका भी उपयोग करते हैं वे सेवक अधर्माचरण करते हैं। देश-सेवक तो ऐसा कर ही नहीं सकते। इस कारण बम्बईसे मायावतीमें स्वादके लिए बम्बईके आम ले जाना सेवकके लिए तो अधर्म ही है। जहाँ एक रुपयेसे काम चल सकता है वहाँ दो खर्च करना स्पष्टतः चोरी है।

इस कारण मैंने जो बात कई बार अपने मित्रोंको सूचित की है वही यहाँ भी लिख देता हूँ। मेरे लिए नीचे लिखी चीजोंसे ज्यादा चीजोंका इन्तजाम करनेवाले न मेरा हित देखते हैं, न लोगोंका और न अपना।

मुझे शौचके लिए उतनी ही स्वच्छ जगह चाहिए जितनी स्वच्छ सोनेके लिए हो।

सोने-बैठनेका इन्तजाम साफ जगह और साफ हवामें हो तो काफी है। खाटकी जरूरत नहीं। मेरे सोने-बिछानेके कपड़े मेरे साथ ही रहते हैं। इसलिए मुझे गद्दे या रजाईकी जरूरत नहीं पड़ती।

खानेके लिए रोज १॥ सेरके लगभग बकरीका दूध हो तो काफी है। दो नींबू भी चाहिए। अपने लिए आवश्यक फल आदि मैं अपने साथ रखता हूँ। मेरे लिए बकरीके घीकी जरूरत नहीं। मुझे यात्रामें जरूरत हो तो मैं बकरीके दूधकी चीजें बनवाकर अपने साथ रखता हूँ। मैं बहुत ज्यादा खर्च करके बकरीके दूधसे घी बनवाना महापाप मानता हूँ।

मेरी सुविधाके लिए मोटरकी जरूरत नहीं। हाँ, समयकी बचतकी दृष्टिसे उसका उपयोग अवश्य किया जा सकता है।

मेरे लिए पहले दरजेके डिब्बेकी बिलकुल ही जरूरत नहीं है। हाँ, फिलहाल, मुझे अकेलेके लिए, दूसरे दरजेकी जरूरत बेशक है। परन्तु मेरे साथियों और मित्रोंको तीसरे दरजेका इन्तजाम ही काफी होता है। मेरे साथ अपने खर्चसे कभी-कभी कोई भाई-बहन यात्रा करते हैं। वे अपनी जगहका इन्तजाम खुद ही कर लेते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २४-५-१९२५

८६. सन्देश : 'फॉरवर्ड' को

२५ मई, १९२५

चरखेके साथ आगे बढ़ो। क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह स्वराज्यवादियोंको शक्ति प्रदान कर सकता है। 'फॉरवर्ड' के पाठकगण प्रत्येक घरमें चरखा . . . .[1] और फलस्वरूप सुभाषचन्द्र बोस शीघ्र ही हमारे बीच होंगे।

मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ८०४९) की फोटो-नकलसे।

१. यहाँ साधन-सूत्रमें कुछ शब्द अस्पष्ट हैं।

८७. पत्र : न० चि० केलकरको

२५ मई, १९२५

प्रिय श्री केलकर,

आपका पत्र मिला। निश्चय ही जबतक हमारे पास विचारार्थ विषयोंका स्पष्ट निर्देश करनेवाला माकूल दस्तावेज न हो, हमें मध्यस्थता नहीं शुरू करनी चाहिए। सम्बन्धित पक्ष इस बातको जानते हैं कि मैंने शुरूसे ही इस तरहका आग्रह रखा है। मैंने यह भी शर्त रखी है कि वे मुझपर समयकी पाबन्दी नहीं लगायेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ३११४) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : काशीनाथ न० केलकर

८८. टिप्पणियाँ

ताजा विवरण

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा कांग्रेस सदस्योंके सम्बन्धमें दिये गये ताजे विवरण इस प्रकार हैं :

	प्रदेश	पिछला महीना		चालू महीना		कुल
		क	ख	क	ख	
१.	अजमेर	२	१५	—	—	१७
२.	आन्ध्र	—	—	—	—	१,९६५
३.	असम	११३	१	—	—	११४
४.	बिहार	७१८	२६१	—	—	९७९+
५.	बंगाल	३५४	१,९१९	—	—	२,२७३
६.	बरार	—	—	६	२०	२६*
७.	बर्मा	४२	२८	३३	२८	६१
८.	म०प्र० (हिन्दी)	—	—	—	—	५००
९.	म०प्र० (मराठी)	८०	५२	—	—	१३२
१०.	बम्बई	२३१	१३३	२४२	२०१	४४३
११.	दिल्ली	८३	६२	२४३	६४७	८९०
१२.	गुजरात	२,०९५	१०१	—	—	२,१९६

१३. कर्नाटक	३७६	३४४	—	—	७२०
१४. केरल	—	—	—	—	—ф
१५. महाराष्ट्र	४०८	२९२	—	—	७००
१६. पंजाब	५०	५७४	५०	७५४	८०४‡
१७. सिन्ध	७३	१९२	१०७	२३४	३४१
१८. तमिलनाड	—	—	—	लगभग	१,४००
१९. उत्तरप्रदेश	२३७	४६७	—	—	१,४८४†
२०. उत्कल	—	—	—	—	३१०×
	४,८६२	४,४४१	६८१	१,८८४	१५,३५५

+ इस वर्गमें से १०२ने परिवारके सदस्यों द्वारा कता हुआ सूत भेजा।
* ४ जिलोंमें से ३ के आंकड़े प्राप्त नहीं हुए।
ф मार्चकी भी कोई सूचना नहीं मिली।
‡ यह ज्ञात नहीं कि इनमें से कितनोंने वास्तवमें चन्दा दिया।
† ७८० सदस्य अवर्गीकृत हैं।
× इनमें से केवल ११६ सदस्योंने अप्रैलका चन्दा अप्रैलके मध्यतक दिया है।

ये अंक उन लोगोंके लिए, जो नये मताधिकारको मानते हैं या जो कांग्रेसको एक कार्यक्षम और कारगर तौरपर काम करनेवाली संस्था बनाना चाहते हैं, दिलचस्प और मनन करने योग्य हैं। नागपुर अधिवेशनमें केरल नया प्रान्त बनाया गया था। उससे बहुत काम करने और भारी त्याग दिखानेकी उम्मीद थी, परन्तु आज तो उसने कांग्रेसकी पुकार मानो सुनी ही नहीं है। उसने अ० भा० कांग्रेस कमेटीको कैफियततक देनेकी कृपा नहीं की। हाँ, वाइकोमके सत्याग्रहका श्रेय उसे अवश्य प्राप्त है; परन्तु कोई भी व्यक्ति या संस्था अपनी पिछली जमा पूंजीपर जीवित नहीं रह सकती। जो अपनी जमा पूंजीको बढ़ाता नहीं, वह तो जो है, उसे भी खो बैठता है। मध्य प्रान्त (हिन्दी-भाषी) भी एक नया प्रान्त है। अबतक यह अपनी दिलेरीके लिए मशहूर रहा है। पर वह एक गोलमोल संख्या भेजकर सन्तोष मान रहा है। मुझे इस ५००की संख्यापर भी सन्देह होता है। संख्या ४९९ या ५०१ क्यों नहीं है? उसमें वर्गीकरण भी नहीं किया गया है। इसका मतलब समझानेके लिए कैफियत देनेकी जरूरत है। क्या संख्या ५००से अधिक बढ़ी ही नहीं? क्या किसीने नागा किया ही नहीं? क्या ये सबके-सब खुद कातनेवाले हैं? उन्होंने औरोंका काता सूत तो नहीं दिया है? यदि उन्होंने दूसरोंका काता सूत नहीं भेजा है तो फिर उन्होंने अपना चन्दा किस तरह भेजा है? क्या प्रान्तीय कमेटीने खुद ही सूत खरीदनेका भार अपने जिम्मे ले लिया है जिससे सदस्योंको सूत खरीदने और उसकी जाँच करनेकी तकलीफ न उठानी पड़े? यदि कांग्रेसने यह काम अपने जिम्मे ले लिया हो तो उसने ऐसा किन शर्तोंपर किया है? ये सवाल हैं जिनका उत्तर पानेके लिए सब इच्छुक हैं। आन्ध्रकी संख्या उसकी पुरानी कीर्तिके बिलकुल योग्य नहीं है। मेरे खयालसे इसका

कारण यह है कि वह आन्तरिक झगड़ोसे छिन्नभिन्न हो रहा है और इससे उसकी प्रगतिकी शक्ति कुण्ठित हो गई है। तमिलनाडका भी यही हाल है। यदि वह अपने ब्राह्मण-अब्राह्मणके चिरन्तन विवादका निपटारा कर सके तो वह आसानीसे इससे भी अधिक अच्छा काम कर सकता है। परन्तु यह स्थिति मुझे विचलित नहीं कर सकती। मैं पुराना पापी हूँ, बहुत धीरे-धीरे सुधरता हूँ। मैंने जो यह निराशाजनक चित्र खींचा है उससे मुझे नये मताधिकारको बदलनेको नहीं बल्कि उसपर दृढ़ रहनेकी, उसे कमजोर बनानेकी नही, बल्कि उसके मुख्य प्रयोजनको पुष्ट करनेकी जरूरत दिखाई देती है। मैं कांग्रेसको एक ऐसी सच्ची राष्ट्रीय संस्था, जो राष्ट्रकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेवाली हो, जनसाधारणकी प्रतिनिधि हो, और दिये समयपर निर्धारित काम करनेवाली, तबतक नहीं बना सकता जबतक उसके सदस्योंमें तन्त्रनिष्ठा न हो, उसके हर विभागमें सहयोग न हो, और उसके हर सदस्यमें जिम्मेदारीका खयाल न हो। ये १५,००० सदस्य राष्ट्रकी उद्देश्य-सिद्धिके प्रयोजनके लिए जरूरतसे ज्यादा हैं बशर्ते कि वे अपने अकीदेके सच्चे हों और अपनी अंगीकृत तमाम शर्तोका पालन करते हों। अपनी इस सतत यात्राके सिलसिलेमें जो मैंने अपने ऊपर ले ली है, मैंने जो-कुछ देखा है और देख रहा हूँ उससे मुझे इस बातका यकीन हो गया है कि कांग्रेसको मुख्यतः स्वयं सूत कातनेवालोंका संघ बनानेकी आवश्यकता है। राष्ट्रके जीवनमें जो काहिली घुस गई है उसे उससे मुक्त करनेके लिए इससे बढ़कर सरल और सीधा और कोई तरीका नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-५-१९२५

८९. किसानोंकी पुकार

जैसे-जैसे समय बीतता है, मेरा बंगालका दौरा और उसमें मुझे जो मानपत्र भेंट किये जा रहे हैं वे अधिकाधिक कामकाजी होते जा रहे हैं। उनमें अब मेरी तथा मेरे कामकी तारीफ नहीं रहती, बल्कि कुछ शिक्षाप्रद तथा मूल्यवान जानकारी दी जाती है। इस प्रकारका एक मानपत्र टिपराके किसान-संघकी ओरसे दिया गया था। उसके सारगर्भित वाक्य देखिए।[1]

मैं पाठकोंको विश्वास दिला दूँ कि मैंने इसमें से केवल औपचारिक प्रारम्भिक अनुच्छेद तथा अन्तके एक वाक्यवाले संक्षिप्त परिच्छेद तथा बेकारकी उपाधियोंसे युक्त आधे वाक्यांशको ही छोड़ा है। मै यह माननेको तैयार हूँ कि पूर्ववर्ती विवरणमें अतिशयोक्ति है। लेकिन मैं यह कहे बगैर नहीं रह सकता कि यह कुल मिलाकर किसा-

१. यहाँ नहीं दिया गया है। मानपत्रमें कम मजदूरी, कम काम, उपजके अनौचित्यपूर्ण नीचे भाव, पीनेके पानीकी कमी और मुकदमेबाजी वगैराकी वजहसे टिपराके अन्न और पटसन उत्पादक किसानोंकी दुर्दशाका वर्णन किया गया था और उन्हें राहत दिलानेका अनुरोध किया गया था।

नोंके अपने दृष्टिकोणसे उनकी स्थितिका एक उचित विवरण है। उस विवरणमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग वह है जिसमें छः महीनेकी बेकारीका उल्लेख है। यह देशके अन्य भागोंके समान ही है। बहुत-से लोग अपने बेहद छोटे खेतोंमें छः महीने काम करते हैं और छः महीने अपने घरोंसे दूर कारखानोंमें मजदूरी करते हैं। ध्यानसे पढ़नेवाला पाठक यह अनुभव करेगा कि यह बेकारी स्वभावतः उनके दुःखोंकी कहानीमें प्रथम स्थानपर आती है। यह मुख्यतः उनकी ऊपर बताई गई अन्य कठिनाइयोंका भी कारण है। यदि उनको घरमें ही पूरे सालके लिए लगातार काम होता तो फिर उन्हें साहूकारकी शरण न लेनी पड़ती। यदि वे संकटमें काम चलानेके लिए कुछ भी बचा सकते तो उन्हें अपना पटसन दूसरोंकी मर्जीके मुताबिक नीचे मूल्योंपर न बेचना पड़ता। छः महीने उद्योगरत रहनेसे वे अपने जीवनमें क्रान्ति ला सकते हैं।

लेकिन उनका कहना है कि वे सूत कातना नहीं जानते। वे चाहते हैं कि मैं कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंको इस बातकी ओर ध्यान देनेके लिए कह दूं। काश! मैं कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंमें चरखेके प्रति अपने-जैसा विश्वास तथा उत्साह भर सकता। निश्चय ही उन्हें जनताके प्रतिनिधि होनेके नाते देशमें घूम-फिरकर चरखेका सन्देश देना चाहिए। उन्हें देशवासियोंको यह सन्देश देते हुए तथा कातनेके लिए प्रेरित करते हुए उनके विषयमें स्वतः ही बहुत-सी बातें मालूम हो जायेंगी तथा वे उनके दुःख और सुख सभीमें शामिल हो सकेंगे। कांग्रेसी ग्रामोंपर टिड्डी दलकी तरह धावा नहीं कर सकते; बल्कि उन्हें ग्रामवासियोंके पास उनकी आवश्यकताओंको समझाने तथा उन्हें अपनी हालतको सुधारनेमें मदद देनेके लिए सहृदय सन्देशवाहकोंकी तरह जाना चाहिए। यदि वे वहां सूत कातनेका प्रचार करनेके लिए जायें और तब उन्हें उसके बजाय अन्य किसी प्रकारकी सहायता देनेकी आवश्यकता जान पड़े तो मुझे किंचित्-मात्र भी दुःख अथवा क्षोभ नहीं होगा। वे ग्रामोंमें सेवकोंके रूपमें जायें तथा रहें। मैं जिससे भी मिलता हूं वही स्वीकार करता है कि ग्रामोंमें कार्य करना आवश्यक है; लेकिन वस्तुतः ऐसा करते बहुत कम लोग हैं। जो लोग ग्रामोंमें गये हैं उनमें अधिकांश लोग चरखेको सेवाका साधन मानते हैं। लेकिन गांव तो ७ लाख हैं तथा हमारे पास समस्त भारतमें सच्चे ग्रामसेवक ७०० भी नहीं हैं। किसानोंका मानपत्र हमारे लिए एक फटकार तथा चेतावनी है। हम स्वराज्यकी बात तभी कर सकेंगे जब हमारे पास गांवोंमें काम करनेवाले कार्यकर्त्ता खासी बड़ी संख्यामें होंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-५-१९२५

१०. कुछ त्रुटियाँ

मैं बंगालके जीवनको जितना ही अधिक देखता हूँ उतना ही अधिक यह अनुभव करता हूँ कि वहाँ तमाम दिशाओंमें भारी सम्भावनाएँ मौजूद हैं। उसने संसारका सबसे बड़ा आधुनिक कवि उत्पन्न किया है और उसने दो विज्ञानाचार्योंको जन्म दिया है, जो संसारके सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकोंमें[1] माने जाते हैं। उसमें संगीतज्ञ भी ऐसे हैं जिनको मात करना मुश्किल है। उसने ऐसे-ऐसे चित्रकारोंको उत्पन्न किया है जिनकी कला भारतके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक व्याप्त हो गई है। आत्म-बलिदानका श्रेय भी उसे इतना प्राप्त है कि महाराष्ट्र भी उसका मुकाबला नहीं कर सकता। जब मैंने उन क्रान्तिकारी[2] महाशयको जवाब दिये थे, तब मैंने अपनी आँखोंसे यह नहीं देखा था कि कार्यकर्त्ता लोग फसली बुखारके प्रदेशोंमें सिर्फ खाना-कपड़ा लेकर लोगोंके बीच किस लगनके साथ काम कर रहे हैं। मुझे इसका बिलकुल पता न था कि यहाँ ऐसे नवयुवक भी हैं जो दरिद्रता और अभावोंके बीच इस तरहकी जिन्दगी बसर कर रहे हैं और बीमारियोंने उनके शरीरमें इस कारण घर कर लिया है कि उन्हें अच्छे पौष्टिक भोजन या अच्छी आबहवामें रहनेकी सुविधा नहीं है। अब मैंने ऐसे मुकाम और ऐसे लोग देख लिये हैं। बंगालमें क्या स्त्री और क्या पुरुष, दोनोंमें कातनेके लिए एक खास प्रतिभा है। मैंने दोनोंको चाँदपुर, चटगाँव, महाजनहाट, नवाखली, कोमिल्ला, ढाका और मैमनसिंहमें काम करते हुए देखा है। मोटे तौरपर कहा जा सकता है कि हर जगह मैंने उनके कामको, भारतके हर हिस्सेसे जहाँ-जहाँ मैं हो आया हूँ, श्रेष्ठ पाया है। कातना उनका पेशा नहीं है और न वे कातनेके आदी ही हैं; क्योंकि उनमें से बहुतेरे तो यदि मेरे विनोदके लिए नहीं तो मेरा मान बढ़ानेके लिए अथवा मुझे खुश करनेके भावसे चरखा कातने आये थे। और फिर भी उनका काम बुरा नही था। उसके विधिवत् ज्ञानके बिना उनकी बुद्धि, शक्ति और त्यागका अपव्यय अवश्य हो रहा है। वहाँके अधिकांश चरखे भद्दे, कुरूप और ढीले-ढाले थे। या तो वे अच्छी तरह नही चलते थे या भारी चलते थे और उनसे तकुएको ज्यादासे-ज्यादा नही, बल्कि कमसे-कम चक्कर मिलते थे। फलस्वरूप बहुत ही कम सूत निकल पाता था। मैंने ऐसे एक चरखेपर पूरे तीस मिनटतक सूत काता। मैं आध घंटेमें औसतन १३० गज कात लेता हूँ, पर बंगालके उस चरखे पर सिर्फ ३० गज ही कात पाया। यदि चरखा अच्छा हो तो इससे तिगुना सूत आसानीसे निकल सकता है। किसी भी व्यक्ति या राष्ट्रके लिए उसकी आमदनीका किसी भी दिये हुए समयमें तिगुना हो जाना कम लाभ नही है। बंगालमें बहुत अच्छे और सस्ते चरखे सुलभ हैं। खादी प्रतिष्ठानका तैयार किया चरखा बहुत बढ़िया

१. डॉ० जगदीशचन्द्र बोस तथा डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय।
२. देखिए "फिर वही", ७-५-१९२५।

है और काम भी अच्छा देता है। फिर है भी सस्ता — ढाई रुपयेमें मिलता है। मैंने इस तरहका और इससे सस्ता चरखा सारे हिन्दुस्तानमें नहीं देखा। मैं चाहता हूँ कि बंगालमें प्रतिष्ठानके नमूनेके चरखेका प्रचार हो। इस बातकी भी जरूरत है कि 'चरखा-शास्त्री' ऐसे तमाम मुकामोंपर जायें जहाँ चरखे चलते हों, चरखोंकी मरम्मत करें और जहाँ मरम्मतसे काम न चलता हो वहाँ उन चरखोंको नष्ट कर दें। वे अपने बताये हुए चरखेकी श्रेष्ठता भी समझायें। इस कामको वही आदमी कर सकता है जो अपना समय अन्य तमाम बातोंको छोड़कर अकेले खादीके काममें लगाता हो। ऐसी संस्था है खादी-प्रतिष्ठान और ऐसे चरखा-शास्त्री हैं सतीशबाबू, जिन्होंने चरखेके लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है। दूसरा विघ्न है शुद्ध खादीके साथ मिलावटकी खादीका अनुचित मुकाबला। यदि कांग्रेसवालोंके नजदीक कांग्रेसके प्रस्तावोंकी कुछ भी कद्र हो तो वे मिलावटवाली खादीसे अपना सम्बन्ध किसी तरह नहीं रख सकते। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि जिन कांग्रेसकी संस्थाओंमें मिले-जुले सूतकी खादी बन रही है या बरती जा रही है, वे ऐसा करनेसे बाज आयेंगी। मिलावटकी या आधी खादी आम तौरपर वह होती है जिसका ताना मिलके सूतका होता है। और तानेके ही द्वारा तो सूतकी परख की जा सकती है। यदि हम तानेमें मिलका सूत लगाते रहे तो हम हाथके कते सूतकी किस्ममें कभी सुधार नहीं कर सकते और इसलिए हम एक घरेलू धन्धेके तौरपर हाथकताईकी जड़ हरगिज नहीं जमा सकते और न विदेशी कपड़ेका बहिष्कार ही सफल बना सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-५-१९२५

९१. राष्ट्रीय सेवा और वेतन

एक पत्रलेखक लिखता है।[1] यह स्पष्ट है कि वह 'यंग इंडिया' लगातार नहीं पढ़ता; यदि पढ़ता तो उसने इस बारेमें मेरा विचार देख ही लिया होता। मैंने बार-बार दुहराया है कि मैं वेतन लेकर राष्ट्रकी सेवा करनेमें सम्मान समझूँगा। मेरे सफर सम्बन्धी खर्च तथा इस प्रकारके अन्य खर्चकी बात दूसरी है। मंजूरी कराये बिना मैं उसे कांग्रेससे प्राप्त नहीं कर सकता। *मैं कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार अथवा* उसके निर्देशसे यात्रा नहीं करता। मैं भिन्न-भिन्न प्रदेशोंसे निमन्त्रण मिलनेपर दौरा करता हूँ। अगर मैं उस खर्चको कांग्रेससे वसूल करूँ अथवा उसपर कांग्रेसकी मंजूरी माँगूँ तो यह मेरे लिए बिलकुल अनुचित होगा। पत्रलेखकको यह मालूम नहीं है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य भी, जब वे कांग्रेसके बुलानेपर इकट्ठे होते हैं, उससे कोई खर्च नहीं लेते। यदि कांग्रेससे ऐसा खर्च लिया जाये तो उसका कोष शीघ्र ही समाप्त हो जाये। किन्तु यदि जिस प्रकार उसकी परिभाषा की गई

१. यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है।

है उस मानेमें मैं पूरा समय काम करनेवाला कांग्रेसका सेवक बन जाता तथा हमारी वैतनिक राष्ट्रीय सेवाकी कोई सुविधा होती तो मैं दूसरोंको प्रोत्साहन देनेके लिए सबसे पहले अपना नाम वैतनिक सेवकोंकी सूचीमें लिखाता। हमने अभीतक इस प्रकारकी सेवा स्थापित नहीं की है तथा मुझे समस्त भारतके लिए अथवा गुजरात तकके लिए वैसी योजना बनानेमें बहुत-सी व्यावहारिक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। मैंने अनेक बार इसकी योजनापर विचार किया और मुझे वह विचार तुरन्त छोड़ भी देना पड़ा। इसलिए पत्रलेखकको खिलाफत दफ्तरसे अपने ईमानदारीसे किये हुए कामके बदलेमें वेतन लेनेपर आत्मग्लानि नहीं होनी चाहिए। यदि इससे उसको सान्त्वना मिले तो मैं उसे बताता हूँ कि अलीभाई जब खिलाफत समितिके निर्देशसे यात्रा करते थे तो उससे यात्राका भत्ता अवश्य लेते थे। उसे यह जानकर भी सान्त्वना मिलनी चाहिए कि मैंने जब खिलाफत समितिके कामके सिलसिलेमें अली भाइयोंके साथ दो या तीन बार यात्रा की थी तो मेरी यात्राका खर्च खिलाफत समितिने ही उठाया था। मैं उस समय भी अपने दोस्तोंकी मदद ले सकता था, लेकिन मैंने अपनेको खिलाफती टुकड़ीका सदस्य कहनेमें अपना सम्मान समझा था। यदि अली भाइयोंने खिलाफत समितिसे अपने वैयक्तिक खर्च वसूल नहीं किये तो इसका कारण यह था कि वे खिलाफत समितिसे न्यायपूर्वक जितना ले सकते थे उससे उनका यह खर्च बहुत ज्यादा होता था। यदि वे समितिसे अपने ये खर्च वसूल करते तो यह एक बुरी नजीर होती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-५-१९२५

९२. टिप्पणियाँ

हकीम साहब

हकीम अजमलखाँ साहबका मार्सेल्ससे उर्दूमें लिखा एक खत मुझे मिला है। मैं सम्बद्ध अंशका अनुवाद दे रहा हूँ:

> बम्बईसे १० अप्रैलको सवार होकर आज २२ अप्रैलको मार्सेल्स पहुँचा। रास्तेमें मेरी तन्दुरुस्ती अच्छी ही रही। चलते वक्त आपसे न मिलनेका अफसोस है। खुदाको मंजूर हुआ तो यह खुशी फिर वापसीपर हासिल होगी। उस वक्त मुझे बहुत शर्म आयेगी, जब मुझसे इस सफरमें कोई शख्स हिन्दुस्तानका हाल दरयाफ्त करेगा; इसलिए कि मेरा जवाब इसके सिवा और क्या हो सकता है कि आजकल हिन्दुस्तान बहुत पस्त हालतमें है और उसकी दो मगहूर मगर बदकिस्मत कौमें आपसमें खूब दिल खोलकर लड़ रही हैं। काश वे भाई, जो इस खाईको चौड़ा कर रहे हैं, हिन्दुस्तान और एशिया पर, बल्कि खुद अपनी-अपनी कौमोंपर रहम करें और अपनी कोशिशोंका रुख

नेकीकी तरफ फेरकर बेजान कांग्रेसमें जान डाले। डॉ० अन्सारी अच्छे हैं—और इस सफ़रसे खुश मालूम होते हैं।

जो लोग हकीम साहबकी नेकदिलीसे वाकिफ हैं वे जरूर हमारे आपसके झगड़ोंपर इनकी तरह ही दुखी होंगे।

'जुगल-जोड़ी'

इन दिनों अली भाइयोंमें से कोई भी यात्रामें मेरे साथ नहीं है। इसपर कुछ लोग ऐसे भी हैं जो खयाल करते हैं कि मेरा इस जुगल जोड़ीसे, जैसा मौ० मुहम्मद अली स्वयंको और अपने भाई शौकत अलीको कहकर खुश होते हैं, कुछ मतभेद हो गया है। इस बातसे जमानेकी हालत जाहिर होती है। नवाखलीमें तो कुछ भाइयोंने मुझसे कहा कि लोगोंको शक है कि आपका अली भाइयोंसे खुला मतभेद हो गया है। मैंने उनसे कहा कि ऐसी कोई बात नहीं हुई है और न होनेकी कोई सम्भावना है। यदि कभी ऐसा हुआ भी तो मैं उसको उसी तरह फौरन जाहिर कर दूंगा जिस तरह मैंने उनसे अपनी दोस्ती जाहिर की है। पर मैं पाठकोंको सावधान कर देना चाहता हूँ कि यदि वे निराशासे बचना चाहते हैं तो ऐसी कोई आशा या आशंका अपने मनमें न रखें। दोस्ती यों आसानीसे नहीं होती और टूटती तो और भी मुश्किलसे है। वह जबरदस्त तनाव बर्दाश्त कर सकती है। वह जिस चीजको बर्दाश्त नहीं कर सकती, वह है बेईमानी या बेवफाई। कोई यह खयाल न करे कि मेरे और मौ० शौकत अलीके बीच कोहाटके मामलेमें मतभेद होनेसे हमारे ताल्लुकात बिगड़ गये हैं। यदि हममें से किसीने एक-दूसरेको खुश करनेके लिए अपनी सच्ची राय प्रकट न की होती तो हमारी मित्रता झूठी मित्रता होती।

स्वभावत: दूसरा प्रश्न यह किया गया, 'तब फिर उनमें से कोई आपके साथ क्यों नहीं है?' मैंने प्रश्नकर्त्तासे कहा कि मौ० शौकत अली बम्बईसे तबतक नहीं निकल सकते जबतक वे खिलाफत समितिकी टूटी नावकी मरम्मत न कर लें और मौ० मुहम्मद अली अपने दोनों अखबारोंके कामसे नहीं छूट सकते; उनपर इनका बोझ उनकी शक्तिसे ज्यादा पड़ रहा है। इसके अलावा असली बात यह है कि आज हमारे लिए हमेशा साथ रहनेकी जरूरत उतनी ज्यादा नहीं है जितनी १९२०–२१में थी। बल्कि उसके खिलाफ आज तो हरएक कार्यकर्त्ताको अपने-अपने सुपुर्द किये गये काममें ही लगे रहनेकी जरूरत है। कार्यक्रम देशके सामने मौजूद है। उसे पूरा करना है। मै एक इन्स्पेक्टर जनरलकी तरह घूम-फिरकर देखता हूँ कि नये मताधिकार-पर किस तरह अमल किया जा रहा है। मैं इसलिए घूम रहा हूँ कि मैं स्वयं नये मताधिकारकी कीमतको जाँच व परख सकूँ। सभापति-पदका भार सिरपर उठानेके कारण तो मैं ही इस वर्ष जहाँ-कहीं मेरी जरूरत हो वहाँ, सम्भव हो तो किसी मुसलमान मित्रके साथ अन्यथा उसके बिना ही, घूम-फिरकर इस कार्यको सबसे ज्यादा अच्छी तरह कर सकता हूँ। जहाँतक हिन्दू-मुसलमान सवालका ताल्लुक है, मुझे जो-कुछ कहना था वह मैं कह चुका हूँ। मैंने दवा बता दी है। अभी तो वह नाकाफी रही है। इसलिए अब मुझे इन्तजार करते हुए देखते रहना है और ईश्वरसे प्रार्थना

करते रहना है। मैं उसके सम्बन्धमें अपने कर्त्तव्यका पालन सिर्फ अपने सिद्धान्तको सामने रखकर या पुष्ट करके कर रहा हूँ। मैं अपनी सारी शक्ति सिर्फ चरखेके प्रचार और अछूतोद्धारमें खर्च कर रहा हूँ।

बैलगाड़ी और चरखा

बंगालके दौरेमें मेरे सम्मुख चतुर बंगालियोंकी ओरसे चरखेके विरुद्ध सभी प्रकारकी चतुराई-भरी युक्तियाँ पेश होती रही हैं। इन पृष्ठोंमें अधिकांश युक्तियों-पर विचार किया जा चुका है। लेकिन चूंकि पाठकोंको अखबारोंमें पढ़ी बात कभी-कभी याद नहीं रहती, अतः यदि पत्रकार उसी बातको समयका उचित व्यवधान देकर दोहराये तो वह सदा हितावह ही होता है। एक दोस्तने मुझसे पूछा था कि क्या आप रेलका स्थान बैलगाड़ियोंको देना चाहते हैं? यदि ऐसा नहीं है तो आप यह आशा कैसे कर सकते है कि कारखानोंका स्थान चरखा ले लेगा। मैंने उनसे कहा कि मैं रेलोंके स्थानपर बैलगाड़ियाँ नही चलाना चाहता, क्योंकि मैं चाहनेपर भी वैसा नहीं कर सकता। ३० करोड़ बैलगाड़ियोंसे लम्बी-लम्बी दूरियाँ जल्दी तय नही की जा सकतीं। लेकिन मैं कारखानोंका स्थान चरखेको दे सकता हूँ। इसका कारण यह है कि रेलोंका सम्बन्ध रफ्तारसे है। किन्तु मिलोंके मामलेमें प्रश्न उत्प-त्तिका है। जिस देशमें काम करनेवालोंकी संख्या काफी हो, जैसी कि भारतमें है, तो चरखा आसानीसे स्पर्धा कर सकता है। मैंने उनसे कहा, वस्तुस्थिति यह है कि एक ग्रामीण अपने लिए पर्याप्त कपड़ा कारखानोंसे भी सस्ता तैयार कर सकता है, बशर्ते कि वह अपने श्रमका मूल्य न लगाये। उसे ऐसा करनेकी आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि वह अपने फाजिल समयमें ही सूत कातेगा अथवा कपड़ा बुनेगा। यह ध्यान देने योग्य बात है कि झूठी तथा अपूर्ण तुलनाओंसे लोगोको कैसे धोखा होता है। इस मामलेमें एक ओर मिलों और रेलोंका अन्तर तथा दूसरी ओर चरखे और बैल-गाड़ियोंका अन्तर इतना स्पष्ट है कि उनकी तुलना करना ही उचित नहीं है। लेकिन कदाचित् इस मित्रका विचार यह है कि मैं यथासम्भव हर स्थितिमें सभी तरहकी मशीनोंके उपयोगका विरोधी हूँ। कदाचित् उनके ध्यानमें रेलोंके विरुद्ध मेरी वे आप-त्तियाँ थीं, जिनका उल्लेख मैंने अपनी 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तिकामें किया है। यों मैं बार-बार कह चुका हूँ कि मै उस पुस्तिकामें चर्चित भिन्न-भिन्न बुनियादी समस्याओंका हल नही सोच रहा हूँ।

शक्तिका अपव्यय

एक अन्य तर्क यह दिया गया है कि चरखा चलाना शक्तिका अपव्यय है। यह एक आश्चर्यजनक तर्क है जो बिना विचारे दिया गया है। मै बता चुका हूँ कि जो कार्य किसी उद्देश्यको सम्मुख रखकर किया जाता है उसे शक्तिका अपव्यय नहीं माना जा सकता। चरखा राष्ट्रके सम्मुख उन लाखों करोड़ोंको धन्धा देनेके लिए रखा गया है जिनके पास सालमें कमसे-कम चार महीने कोई काम नहीं रहता। मैंने आपत्तिकर्त्तासे यह भी कहा कि चरखेसे हर आधा घंटेमें कमसे-कम १०० गज सूत काता जा सकता है। यदि केवल इस बातको ही ध्यानमें रखकर सोचें तो भी

चरखा चलाना व्यर्थका काम नही माना जा सकता। वह व्यर्थका काम नही है इतना ही नही, बल्कि वह एक ठोस आर्थिक योजना भी है। इसका कारण यह है कि आज तो लाखों-करोड़ों लोगोंके लिए जरूरत ही किसी ऐसे धन्धेकी है, जिसे सभी कर सकें और जिसके लिए किसी विशेष कुशलता या लम्बे प्रशिक्षणकी आवश्यकता न हो। ऐसा धन्धा सूत कातना ही हो सकता है, उसके सिवा दूसरा नही।

विकास और ह्रास

नवाखली जिला खद्दरके कार्यका एक अच्छा विकास केन्द्र बन सकता है। स्पष्ट है कि वहाँ जब खद्दरका कार्य प्रारम्भ किया गया उससे पूर्व बहुत-कुछ कार्य हो चुका था। इस कार्यके विकास और ह्रासकी निम्न रिपोर्ट, जो मुझे नवाखलीमें दी गई थी, अवश्य ही सामान्यतः सभीके लिए दिलचस्प होगी:[1]

इससे जो निष्कर्ष निकलता है, वह स्पष्ट है। कार्यकर्त्ताओंको हिम्मत नही हारनी चाहिए। उन्हें तमाम कठिनाइयोंके होते हुए भी अपना काम उसी प्रकार जारी रखना चाहिए, जैसे सूझ-बूझवाला कोई धनी व्यापारी रखता है। जबतक खादी रिवाजमें नही आ जाती, हमें स्वेच्छासे वैसा व्यापारी बन जाना चाहिए, व्यक्तिगत लाभके लिए नहीं बल्कि देशके लाभके लिए। खद्दरका कार्य कांग्रेसकी परिवर्तनशील दलीय राजनीतिसे अलग होना चाहिए। कांग्रेस अपना कार्यक्रम चाहे पचास बार बदले लेकिन चरखा और खद्दरका कार्यक्रम न बदले, क्योंकि उसपर लाखों गरीब तथा मूक प्राणियोंका भाग्य निर्भर है।

पतित बहनें और चरखा

नवाखलीमें मुझे बताया गया कि दो पतित बहनें चरखा चला रही है, यही नहीं, बल्कि उसीसे अपना गुजारा कर रही हैं। वे नवयुवतियाँ नहीं है, उनकी उम्र ४० से ऊपरकी है। वे अब शरीर बेचकर अपना पेट नही भर सकती। अत: चरखा न चलाती तो उन्हें भीख माँगकर पेट पालना पड़ता। अतः सच पूछें तो चरखेने उन्हें भीख माँगनेसे विरत किया है, उनके मूल धन्धेसे नही। फिर भी नवाखलीके लोगोंके लिए यह एक भारी बात है कि वे इन बहनोंसे वास्ता रखते है और उनके हितमें इतनी दिलचस्पी लेते है। मुझे यह भी बताया गया कि ऐसी कुछ और बहनें भी चरखा चलाने लगी है, यद्यपि उन्होंने अपना पेशा नही छोड़ा है। मेरी समझमें यदि वे बहनें अपना धन्धा न छोड़ें तो चरखा चलानेसे उनके लिए कोई लाभ नही हो सकता। वह उनके अनुचित धन्धेपर पर्दा डालनेका काम अवश्य कर सकता है। इसके अलावा, यह निर्विवाद बात है कि उनके लिए चरखेकी सिफारिश रोजी कमानेके जरियेके तौरपर नही की जा सकती। वे अधिक नही तो १ से

१. यह रिपोर्ट यहाँ नहीं दी गई है। इसमें कपास उत्पादन करनेवाले इस जिलेके सम्बन्धमें कहा गया था कि वहाँ ५५,००० बुनकर हैं। वहाँ खादीकी खपत कम हो जानेसे उत्पादन घट गया है। यदि जिलेमें इस कार्यको संगठित किया जाये और उसके लिए पर्याप्त धन और कार्यकर्त्ता हों तो वहाँ इसके विकासकी बहुत सम्भावना है।

२ रुपयातक रोज कमाती रही हैं। उन्हें बुनाई, कसीदा या कोई दूसरा दस्तकारी-का काम सीखना चाहिए जिससे उन्हें मुनासिब आमदनी हो सके। फिर यह सवाल ऐसा भी नहीं है कि जिसे पुरुष अपने हाथमें ले सकें। यह काम नारियोंके लिए ही छोड़ना होगा। वे अपनेको इसके योग्य सिद्ध करें। जबतक असाधारण चरित्रबलकी कोई नारी आगे आकर इन पतित बहनोंके उद्धारका कार्य अपने हाथमें न लेगी तबतक वेश्यावृत्तिकी समस्या हल नहीं हो सकती। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुरुष उन पुरुषोंको समझा सकते हैं जो अपनी वासनाकी तृप्तिके लिए इन युवतियोंको अपने शरीर बेचनेके लिए ललचाकर स्वयं पतित होते हैं। वेश्यावृत्ति सदासे चली आ रही है; पर वह आजकी तरह नगर-जीवनका एक नियमित अंग शायद ही कभी रही हो। कुछ भी हो, वह समय आये बिना नहीं रह सकता जब मानवजाति इस पापके खिलाफ आवाज उठायेगी, और वेश्यावृत्तिको बिलकुल मिटा देगी, जिस तरह उसने अबतक कितनी ही पुरानी कुप्रथाओंसे अपना पीछा छुड़ा लिया है।

मेरठमें कताई

चौधरी रघुवीर नारायणसिंह मेरठसे लिखते हैं कि उन्होंने बेलगांवमें नये मताधिकारके अन्तर्गत ५०० नये सदस्य बनानेका वादा किया था; परन्तु वे अपने भाईकी भारी बीमारी और बादमें मृत्युके कारण — मुझे इस समाचारसे खेद है — मीयादके अन्दर उसे पूरा न कर सके। अब स्वराज्यवादी वकील बा० ज्योतिप्रसाद तथा दूसरे मित्रोंकी सहायतासे उन्होंने ६४७ सदस्य बना लिये हैं; इनमें २०० खुद कातनेवाले हैं। जितना हुआ सो तो बेशक ठीक ही है; परन्तु मैं चौधरीजीको याद दिलाता हूँ कि उन्हें तो ५०० खुद कातनेवाले सदस्य बनाने हैं। आशा है कि वे तथा उनके साथी इस बातको ध्यानमें रखकर तबतक दम न लेंगे जबतक मेरठमें कातनेवाले सदस्योंकी उतनी संख्या पूरी न हो जाये। चौधरीजी यह भी लिखते हैं कि हमने यहाँ मर्दों और औरतोंकी कताई प्रतियोगिताका आयोजन कराया है और उनमें बहुतसे लोगोंने हिस्सा लिया है। वे कहते हैं कि यद्यपि तरक्की धीरे-धीरे हो रही है पर कुल मिलाकर वह हो तो लगातार ही रही है। उन्होंने कताई और बुनाई-धुनाई सिखानेका भी प्रबन्ध किया है।

ईश्वरके नामपर चरखा

वौरिंगपेटके कुछ नौजवानोंने 'रामनवमी' सप्ताहमें कता अपना ३,२०० गज सूत मुझे भेजा है। उन्होंने लिखा है, 'इन दिनोंमें इस रामनाम जपके समारोहमें बालक और वृद्ध सभीने भाग लिया था; किन्तु हमने उसमें भाग लेनेके साथ-साथ सूत भी काता है।' उनका यह उदाहरण अनुकरणीय है। मैं ऐसे कितने ही नवयुवकों-को जानता हूँ जो चरखा चलाते समय ईश्वरका ध्यान करते हैं। जो लोग यज्ञार्थ कातते हैं, वे तो उसके साथ तमाम ऊँचे और अच्छे विचारोंको जोड़ सकते हैं। ढाकामें मेरे मौनके दिन कुछ संगीतज्ञ मुझे सितारवादन सुनाने आये। सोमवार खाली मौनवार ही नहीं, बल्कि वह मेरा सम्पादन कार्यका दिन भी होता है। सो उनका सितारवादन सुननेके लिए समय देना मेरे लिए मुश्किल ही था। परन्तु मैं उन्हें

निराश भी नहीं करना चाहता था। इसलिए मैंने उन्हें लिखकर कहा कि मैं उनका सितारवादन सूत कातते-कातते सुनूंगा। उन्होंने यह बात तत्काल स्वीकार कर ली। नतीजा यह हुआ कि मैंने रोजसे ज्यादा अच्छा सूत काता। सितारवादनकी बदौलत हाथ ज्यादा जमा हुआ रहा। मैं हमेशा ऐसे चरखेसे सूत कातता हूँ जो आवाज न करता हो। इसलिए उससे मुझे सितारवादनका आनन्द लेनेमें जरा भी बाधा नहीं पहुँची; उलटा उसके द्वारा सितारवादन सुननेका आनन्द बढ़ा और उस आनन्दसे कातनेका आनन्द बढ़ा। इन दोनोंमें से किसीके कारण भी मेरे ईश्वर-ध्यानमें बाधा नहीं पड़ी। हाथ, कान और हृदय पूर्णतया एक ही लयमें डूबे हुए थे। शंकाशील लोग जरा इसकी आजमाइश तो करें।

उदासीनता या नियमपालनका अभाव

भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे मेरे पास शिकायतें पहुँच रही हैं कि बार-बार चेतावनी देने और याद दिलानेपर भी जिलोंकी तरफसे सदस्यताका ब्यौरा या उत्तर नहीं मिलता। वे पूछते हैं कि ऐसी हालतमें हमें क्या करना चाहिए? साधारण तौरपर तो जवाब यही होगा — उन्हें भंग कर दो। जो मातहत दफ्तर अपने बड़े दफ्तरके हुक्मोंकी तामील नहीं करता वह फिजूल नहीं तो क्या है? इस नये मताधिकारके द्वारा सदस्यों और उपसमितियोंके आज्ञापालनके गुणकी परीक्षा होती है। सदस्योंको हर महीने अपना चन्दा भेजना होता है — इसमें हर महीने उनके नियम-पालनकी आजमाइश होती है। यदि किसी संस्थाके सदस्य नियमपूर्वक अपना चन्दा देनेकी तकलीफ न उठायें तो उसकी कोई ज्यादा वक़त नहीं। मैं जानता हूँ कि चन्दा न देने और कमेटियोंकी बैठकोंमें न आनेकी शिकायत उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी स्वयं कांग्रेस। यह समयपर चन्दा न देनेकी शिकायत इस नये मताधिकारके साथ ही पैदा नहीं हुई है। आप जरा सोचें तो कि यदि किसी पेढ़ी या सरकारके नौकर-चाकर अपना काम नियमपूर्वक समयपर न करें या पेढ़ीके अधिकांश ग्राहक या सरकारके अधिकांश करदाता समयपर बिना तकाजा किये भुगतान न करें या कर न दें तो उस पेढ़ी या सरकारकी क्या हालत हो? इस पेढ़ी या सरकारका सब कारोबार बन्द हो जाये। कांग्रेस एक सरकार या पेढ़ीसे बढ़कर है या होनी चाहिए। फिर भी उसको सदस्योंसे चन्दा या कर देनेके लिए बार-बार मिन्नत करनी पड़ती है। ऐसी अवस्थामें कांग्रेस अभीष्ट परिणाम कैसे ला सकती है? मुझे नहीं लगता कि अ० भा० कांग्रेस कमेटीको उसके हिस्सेका सूत मिल गया है। मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि प्रान्तीय कमेटियों या अ० भा० कां० कमेटीको अपना अंश प्राप्त करनेमें पूरी दृढ़ता दिखानी चाहिए। कांग्रेसकी शक्ति किस बातमें है? इसीमें कि उसके सदस्य और उसकी संस्थाएँ अपना अंगीकृत कार्य नियमपूर्वक और समयपर करें।

भावुकताकी बकवास

एक भावुकता वह है जिसमें तथ्य होता है और जो उपयोगी होती है। उदाहरणार्थ जैसे अपने देशसे प्रेम करना तथा उसके फलस्वरूप श्रम करना। एक भावुकता

वह है जो अर्थहीन और अनुपयोगी होती है। दूसरी तरहकी भावुकताका उदाहरण इस पत्रमें मिलता है:[1]

मुझे इस नवयुवक स्नातकसे सहानुभूति है; लेकिन मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि आत्महत्या करना, जिसकी वह बात कहता है, पाप है। सभी अनशन सराहनीय नहीं होते। आत्मबलिदानका इच्छुक आत्महत्या द्वारा स्वराज्यकी प्राप्तिमें सहायता नहीं कर सकता, यही नहीं बल्कि उसके आत्महत्याके अपराधसे उसमें रुकावट ही पड़ेगी। इससे प्रकट होता है कि उसमें आत्मविश्वासकी कमी है। मैं उसकी सरकारी नौकरी न करनेकी प्रतिज्ञाका सम्मान करता हूँ। लेकिन निश्चय ही उसका विकल्प केवल आत्महत्या ही नहीं है। यदि उक्त राष्ट्रीय स्कूल उसका भरण-पोषण नहीं करता तो उसके लिए ईमानदारीसे रोजी कमाने तथा अपने माता-पिताका भरण-पोषण करनेके और अनेक तरीके हैं। क्या उसमें हाथसे मेहनत करनेका मनोबल है? मैं ऐसे किसी भी ईमानदार तथा काम करनेके इच्छुक कार्यकर्त्ताको नहीं जानता जिसे किसी राष्ट्रीय अथवा सार्वजनिक संस्था अथवा गैरसरकारी फर्ममें उचित कार्य न मिल सका हो। मैं जानता हूँ कि राष्ट्रीय कार्यको पूर्णरूपसे विकसित करनेके लिए ऐसे ईमानदार और मेहनती नवयुवक तथा नवयुवतियोंकी आवश्यकता है, जो वेतन लेकर सेवा करनेके लिए तैयार हों। यह नवयुवक जुलाहे अथवा बढ़ईका काम कर सकता है और मजदूरीसे खासा पैसा कमा सकता है। उदाहरणार्थ वह खादी प्रतिष्ठानको अर्जी दे सकता है और यदि उसमें आवश्यक योग्यता है तो उसे उसमें काम मिल ही जायेगा। नवयुवकोंको तो कभी निराशाका शिकार होना ही नहीं चाहिए। उनमें आत्मविश्वास होना चाहिए और उन्हें जानना चाहिए कि वास्तविक योग्यताका पुरस्कार अवश्य मिलता है।

१०० वर्ष पुराना चरखा

कोमिल्लामें मुझे एक चरखा दिखाया गया था जो १०० साल पुराना बताया गया, किन्तु जो अबतक चालू अवस्थामें है। चरखेकी वर्तमान मालकिन एक विधवा है जिसकी अवस्था ५८ वर्षसे भी अधिक है। वह चरखा उसकी दादीने उसकी माँको दिया था। उसकी वर्तमान मालकिन १४ वर्षकी अवस्थामें विधवा हो गई थी। वह स्वयं सूत कातकर उससे अपने लिए और अपने परिवारके अन्य लोगोंके लिए कपड़ा बुनवा लेती थी। कहा जाता है कि उसने अपने तथा अपने परिवारके अन्य लोगोंके लिए कभी विदेशी वस्त्र नहीं खरीदा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-५-१९२५

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें एक राष्ट्रीय स्कूलके निराश शिक्षकने लिखा था कि मैं बड़ी दुविधामें पड़ा हूँ कि असहयोगी बना रहूँ या अपने परिवारकी खातिर सरकारसे सहयोग करूँ। कृपया आप मुझे सलाह दें कि मातृभूमिकी मुक्ति और अपने परिवारके कल्याणार्थ मेरे लिए आमरण अनशन करना उचित होगा या नहीं।

९३. भाषण: कलकत्ताकी सार्वजनिक सभामें[1]

२८ मई, १९२५

महात्माजीने एकत्र जनसमुदायके समक्ष भाषण देते हुए कहा कि मैं आप लोगोंसे एक बात कह चुका हूँ, नहीं मालूम, आपने उसे सुना या नहीं। मैं अब आपसे एक बात और कहना चाहूँगा, उसे आप कानोंसे सुनें; मैंने जो-कुछ आपको पहले बताया था वह आपने नेत्रोंसे सुना है। मैंने आपको अपना चरखेका एकमात्र सन्देश कातकर दिखा ही दिया है और उस सम्बन्धमें मुझे उससे अधिक और कुछ नहीं कहना है। एक कहावतका अर्थ और महत्त्वका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि यदि आप सिनेमा जायें और अभिनेताओं, अभिनेत्रियोंका अभिनय पर्देपर देखें, लेकिन उस चित्रकी भावना और उपदेशको हृदयंगम न करें, उसे अपने जीवनमें न उतारें, तो इस प्रकार सिनेमा देखनेसे क्या लाभ? किसीकी कथनीका, यदि वह उसे अपनी करनीमें नहीं उतारता, कुछ भी महत्त्व नहीं है। इसलिए मुझे जो-कुछ कहना था और जो-कुछ डॉ० नायडूने कहा था, उसे मैंने अपने हाथोंसे करके समझाया।

आगे बोलते हुए महात्माजीने कहा कि यदि मैंने जो-कुछ करके दिखलाया है, उससे ज्यादा कुछ कहना भी पड़े तो मुझे बड़ा दुःख होगा। बंगालके दौरेसे पहले मैंने जनताके सामने अपने सन्देशका प्रदर्शन कार्य द्वारा नहीं किया, लेकिन फरीदपुरसे मैंने वैसा करना शुरू कर दिया है। आप लोगोंने मुझे बारीक और मोटा सूत कातते हुए देखा। मेरा इरादा आपको केवल अपना सूत दिखाना नहीं है वरन् आपको अपने अभ्याससे प्रभावित करना है ताकि आप उस अभ्यासको अपने जीवनमें उतारें और उसीके अनुसार काम करें। मैं कलकत्ताके नागरिकोंके बीच बैठा हूँ लेकिन मेरा मन सदा बंगालके दूर-दूर बसे हुए गाँवोंमें कष्ट भोग रही जनताके ही बीच पड़ा रहता है। मैं आम जनतासे, गरीब किसानोंसे, पद-दलित अछूतोंसे घुल-मिलकर रहना चाहता हूँ। अपना चरखा कातते और भजन करते समय मेरा मन पूर्वी बंगालकी उन गरीब स्त्रियोंकी बात सोचता है जो भुखमरीसे पीड़ित हैं; वह उन पद-दलित ग्रामीणोंके पास होता है जिनके साथ अछूतों-जैसा बरताव होता है। मेरे कारण वे भूखों मर रहे हैं और आपके कारण उन्हें हररोज पेट-भर भोजन नहीं मिलता। हम लोग ही इसके कारण हैं। मैं उनके साथ मिल-जुलकर रहना चाहता हूँ और उनके दुःखोंका कारण जानना तथा दुःखोंसे उन्हें मुक्ति दिलानेमें मदद करना चाहता हूँ।

१. सभा शामको भवानीपुरमें हरीश पार्कमें हुई थी। गांधीजीने जवाहरलाल नेहरू और डा० वरदराजुलु नायडूके बोल चुकनेके बाद सभामें भाषण दिया था।

डा० वरदराजुलु नायडूकी अपीलका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि डा० नायडूने आपसे स्वराज्य दलमें शामिल होने और मदद करनेको कहा है। मेरे लिए इस अपीलका इतना ही अर्थ है कि आपको स्वराज्यके लिए कुछ करना चाहिए। मैं इस अपीलका केवल यही अर्थ निकाल सका हूँ। सभामें उपस्थित नवयुवक कौंसिलोंमें प्रवेश कैसे कर सकते हैं? दासगुप्त जैसे कुछेक लोगोंके साथ चित्तरंजन कौंसिलमें जा सकते हैं, और वे गये भी हैं। लेकिन सभामें उपस्थित सभी लोग तो कौंसिलोंमें जानेकी आशा नहीं कर सकते। एक बार चित्तरंजन बाबूने फरीदपुरमें आप लोगोंसे गाँवोंमें जाने और जनताके साथ मिलकर काम करनेको कहा था। मैं देशबन्धुके शब्दोंके रहस्यको इस तरह कह सकता हूँ कि स्वराज्य दलमें शामिल हो जाने-भरसे कोई वास्तविक काम नहीं हो सकता। यदि आप जनताकी हालत बेहतर बनाना चाहते हैं तो आपको जनताके पास जाना होगा, उसके साथ रहना होगा। लोगोंको दानके रूपमें एक मुट्ठी चावल देनेसे उनके दिलोंमें सच्चे जीवनका संचार नहीं होगा।

पूर्वी बंगालमें बहुतेरे ग्रामीणोंने मुझे बताया है कि सालमें छः महीने उन्हें बेकार बैठे रहना पड़ता है, क्योंकि उनके पास करनेके लिए कुछ काम ही नहीं होता। वे चाहते हैं कि उनके बीच चरखेका प्रचलन शुरू हो। वे यह नहीं जानते कि चरखा और कपास उन्हें कहाँसे मिल सकती है। इसलिए आपको उन ग्रामीणोंके पास चरखेका सन्देश लेकर जाना होगा और उन्हें चरखा चलानेका प्रशिक्षण देना होगा। अपने गरीब भाइयों और बहनोंके काते हुए सूतसे बना खद्दर आपको अवश्य खरीदना चाहिए।

महात्माजीने आगे कहा कि आप कहीं भी जायें, कलकत्ता या दिल्ली अथवा किसी भी अन्य शहरमें हों, आपको हमेशा गरीब किसानोंकी बात ध्यानमें रखनी चाहिए, आपका दिल हमेशा उनके साथ रहना चाहिए। उनके प्रति यह कृतज्ञता ज्ञापन करना नैतिक रूपसे वाजिब है, यह आपको करते रहना चाहिए। आप जो-कुछ भी खाते हैं, उसे ये गरीब किसान पैदा करते हैं; शहरोंमें जिन-जिन सुविधाकी चीजोंका आनन्द आप उठाते हैं, वे सब आपके इन भूखसे पीड़ित भाई-बहनोंके श्रमका फल है। आप लोग डेस्कपर बैठकर लेख और भाषण लिखनेवाले नेता हैं। लेकिन अगर आप जनताके लिए कुछ करना चाहते हैं तो आपको खद्दर अवश्य पहनना चाहिए और सूत कातना चाहिए। मुझे एक बहनने बताया कि जब वह पूर्वी बंगालमें घूमी तब उसने लोगोंको खद्दर पहने देखा, लेकिन जब वह शहरोंमें आई तो उसे अपनी बहनोंको विदेशी वस्त्र पहने देखकर निराशा हुई। इससे ज्यादा दर्दनाक तथ्य और क्या हो सकता है।

चम्पारनमें अपने कामके दौरान एक घटनाका ज़िक्र करते हुए महात्माजीने कहा कि ट्रेनमें मेरी पत्नीसे एक औरत मिली जिसके पास एक ही खद्दरका कपड़ा था।

उसने मेरी पत्नीको बताया कि वह हमेशा उसी कपड़ेको पहने रहती है। जब उसे गंगामें स्नान करना होता है; तो प्रायः नंगे शरीरसे ही नहाती है और उसके बाद वही कपड़ा पहन लेती है। यह बहुत ही दुःखद तथ्य है। मैं आशा करता हूँ कि आप लोग ऐसी घटनाओंकी पुनरावृत्ति नहीं होने देंगे।

महात्माजीने बहनोंसे बहुत ही प्रभावशाली स्वरमें अपील की कि यदि आप रामराज्यकी स्थापना करना चाहती हैं तो आपको सीताजीका सोत्साह अनुकरण करना चाहिए। सीता देवी कभी विदेशी वस्त्रका इस्तेमाल नहीं करती थीं, वह नित्य नियमसे सूत कातती थीं और आपको भी उनकी तरह सूत कातना चाहिए।

अस्पृश्यताके बारेमें बोलते हुए उन्होंने कहा कि सनातन धर्ममें अस्पृश्यता-जैसी कोई चीज नहीं है। युगोंसे सम्मान पा रहे इस उदार सनातन धर्मकी तहोंमें अवमानना और विद्वेषकी भावनाका लेश भी नहीं है। यदि आप इस धर्मको नष्ट होनेसे बचाना चाहते हैं तो आपको धर्मके मूल तत्त्वोंमें पैठे हुए इस अस्पृश्यताके दोषको अलग करना होगा। गोखलेने कहा है कि सारा संसार भारतको 'परिया' की तरह मानेगा, क्योंकि आप लोग अपने भाइयों और बहनोंको उसी निगाहसे देखते हैं। मैं देखता हूँ कि गोखलेका यह कथन अक्षरशः सत्य है।

अपना भाषण समाप्त करते हुए महात्माजीने कहा कि यहाँपर जो कुछेक गज सूत मैंने काता है, उससे हम स्वराज्यके पथपर कितने ही गज आगे बढ़ गये हैं और मेरी तो एकमात्र प्रार्थना यही है कि आप हिन्दुस्तानके स्वराज्यके लिए, देशबन्धुके लिए, अछूतोंके लिए, मुसलमानोंके लिए और हिन्दुस्तानकी अन्य सभी जातियोंके लिए सूत कातें।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २१-५-१९२५

९४. पत्र : पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको

शान्तिनिकेतन

ज्येष्ठ सुदी ७ [२९ मई, १९२५][1]

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिल गया। मुझे खेद है कि आप गोरक्षा-मण्डलके कोषाध्यक्षका कार्य नहीं सम्भाल सकेंगे। आप अपनी कृपादृष्टि तो रखेंगे न?

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१९६) से।
सौजन्य : पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास

१. शान्तिनिकेतन डाकखानेकी मुहर ३० मई, १९२५ की है। जेठ सुदी सप्तमी २९ मईको पड़ी थी।

९५. पत्र : जमनालाल बजाजको

शान्तिनिकेतन
ज्येष्ठ सुदी ७ [२९ मई, १९२५][1]

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम कार्यसमितिकी बैठकमें आओगे ही और तब हम सारी बातें कर लेंगे, इस खयालसे लिखना मुल्तवी कर दिया था। तुम नही आये इसमें भी चिन्ताकी कोई बात नही हुई। गिरधारीके पत्रसे यह धारणा बन गई थी कि तुम अवश्य आओगे।

मेरी निगाह कालेजके लिए किसी योग्य मनुष्यकी खोजमें लगातार रहती है; पर कोई आँखपर ही नहीं चढ़ता। जुगलकिशोर[2] आ जायें तो एक तरहसे यह समस्या हल हो सकती है। वे चरित्रवान् तो हैं हीं। उनके गिडवानीको[3] लिखे गये पत्रोंसे मुझे पूरा सन्तोष नहीं हुआ है। अगर गिडवानी खुद आनेकी बात सोचें और आ सकें तब तो ठीक ही है। इस समय और कोई निगाहमें नहीं है। कोई दाक्षिणात्य मिल जायें तो अच्छा — यह खयाल बना ही रहता है।

क्या यह कालेजके उद्घाटनकी क्रिया जून महीनेमें ही सम्पन्न की जानी चाहिए? मेरे जूनके अन्तिम दिन तो असममें जाने हैं। उसके बाद मुझे फौरन बिहार जाना होगा। लेकिन अगर असमसे वर्धा फौरन आना जरूरी हो तो वहाँ आकर तब बिहार जाऊँगा। मुझे बिहारमें एक महीना लग जायेगा। जबसे लोगोंको मेरे वर्धा आनेकी बात मालूम हुई है। वे मुझे तभीसे दूसरी जगहोंमें आनेके लिए निमन्त्रित कर रहे हैं। नागपुर, अमरावती और अकोलासे पत्र आये हैं। मुझे ऐसा लगता है कि जहाँसे बुलावा आये वहाँ हो आना इष्ट है। मैं इस वर्ष अच्छी तरह भ्रमण करना अपना धर्म समझता हूँ। अगर ऐसा करूँ तो मध्य प्रदेशकी यात्राका कार्यक्रम तुम्हीं तैयार कर लो और चल सको तो शायद तुम्हारा साथ चलना भी उचित हो।

(१) मुझे वर्धा कब आना है?

(२) मध्यप्रदेशकी यात्रा करनी है या नहीं?

(३) यदि करनी है तो क्या तुम इसका कार्यक्रम तैयार करोगे और साथ चलोगे? इन प्रश्नोंका उत्तर देना।

अभी जल्दी आश्रममें आ सकूँगा, ऐसा नहीं दीखता। बंगालके बाद तुरन्त बिहार, मध्य प्रदेश वगैरामें जाना है। मैं यह दौरा खत्म हो जानेपर ही अर्थात् शायद सितम्बरमें वहाँ आ सकता हूँ।

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२. आचार्य जुगलकिशोर, जो बादमें विद्यापीठमें चले गये थे; आप कांग्रेसके महामन्त्री और उत्तर प्रदेश सरकारके मन्त्री भी रहे।

३. डा० चौइथराम गिडवानी।

एण्ड्रयूज और टैगोरके साथ

देशबन्धु चित्तरंजन दास और महादेव देसाईके साथ

कार्यसमितिकी बैठक तो हुई ही नहीं, क्योंकि तीन ही सदस्य उपस्थित थे — जवाहरलाल, डॉ० नायडू और मैं। अणे साहब आनेवाले तो थे, लेकिन आये नहीं। इसलिए अजमेरके मामलेपर कोई विचार नहीं किया जा सका। फिर भी इसके बारेमें मुझसे मिलना जरूरी हो तो मिल जाना। हमें इस विषयमें घबरानेकी जरूरत नहीं। मैं अर्जुनलालजीको[1] खुद लिखनेवाला हूँ कि उन्हें जो-कुछ कहना हो वे मुझसे कहें।

आशा है, तुम सबकी तन्दुरुस्ती ठीक होगी। मैं ठीक हूँ। मैं आज शनिवारको बोलपुरमें हूँ और यहाँ सोमवारतक रहूँगा। मैं मंगलवारको कलकत्ता जाऊँगा और वहाँसे तीन दिनके लिए दार्जिलिंग। मैं बादका कार्यक्रम आजकलमें पक्का होनेपर भेजूँगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २८५२) की फोटो-नकलसे।

९६. रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे बातचीत[2]

३० मई, १९२५

श्री गांधीने बड़ी ही सावधानीसे अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कहा कि मैं आधुनिक कालकी जातियों और उपजातियोंके वर्गीकरणपर विश्वास नहीं करता, परन्तु मेरा विश्वास है कि समाजको प्रमुख [चार] व्यावसायिक वर्गोंमें बाँटना वैज्ञानिक दृष्टिसे उचित है। मैं मानव-समाजके उस व्यावसायिक विभाजनको ही मानता हूँ जिसमें ऊँच-नीचका कोई सवाल नहीं होता; केवल समाज-व्यवस्थामें जो विभिन्न कार्य किये जाते हैं, उन्हींका सवाल होता है।

कविने आशंका व्यक्त की कि यदि समाजमें ऐसे व्यावसायिक विभाजन भी चिरकालतक चलाये जायें तो कालान्तरमें निष्फलताके सिवाय उनमें से और कुछ निष्पन्न नहीं होगा। कविने अपना यह मत व्यक्त किया कि इस व्यावसायिक विभाजनको जन्मपर आश्रित बना देना वैज्ञानिक और प्राकृतिक नहीं है; क्योंकि मानव-स्वभाव विविधता और व्यावसायिक चुनावमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी अपेक्षा करता है।

१. अर्जुनलाल सेठी; अजमेरके प्रसिद्ध क्रान्तिकारी और राष्ट्रसेवी।

२. गांधीजी २९ मईकी रातको बोलपुर पहुँच गये थे। सी० एफ० एन्ड्रयूज और अन्य सज्जन उन्हें लेने आये थे। शान्तिनिकेतन पहुँच कर उन्हें कवि-निवासके एक फूलोंसे सजे हुए कमरेमें ले जाया गया। गांधीजीने कहा: "मैं सुहाग-रातके इस कमरेमें!" गुरुदेवने मुस्कराकर कहा: "हमारी हृदय-सम्राज्ञी शान्ति-निकेतन-बाला आपका स्वागत करती है।"

गांधीजी वहाँ तीन दिन रहे। इस बीच गुरुदेव और उनके बीच जो-जो बातें हुईं उनका विवरण उपलब्ध नहीं है। सी० एफ० एन्ड्रयूजसे भी विभिन्न विषयोंके साथ-साथ चाय-बागानोंके मजदूरोंकी दशापर बातें हुई थीं। उन सबका विवरण भी उपलब्ध नहीं है।

श्री गांधीने फिर बहुत ही प्रामाणिकताके साथ विस्तारपूर्वक अपना मन्तव्य समझाकर बताया। अन्तमें कविने उनसे अपने चरखे और खद्दरके कार्यक्रमको भी विस्तारसे समझानेके लिए कहा।

श्री गांधीने पूर्वी बंगालमें अपने अनुभवोंका वर्णन किया और बताया कि कताईके पुनरुत्थानसे वहाँके गाँवोंमें नये जीवनका संचार हुआ। है। स्पष्ट ही कवि इससे बहुत प्रभावित हुए क्योंकि उनका हृदय हमेशा ही ग्रामीणोंके कष्टोंसे द्रवित रहता आया है। श्री गांधीने साफ-साफ समझाया कि शिक्षितवर्गसे मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि वे प्रतिदिन निश्चित समयपर थोड़ी देर इसलिए सूत कातें कि अपने गरीब और दलित मानव भाइयोंके प्रति उनकी सहानुभूति सजीव रूपमें व्यक्त हो। उन्होंने जिस महान कार्यका बीड़ा उठाया है उसमें कविकी अमूल्य मदद माँगी। परस्पर अत्यन्त मैत्रीपूर्ण अभ्यर्थनाके बाद भेंट समाप्त हुई।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २-६-१९२५

९७. टिप्पणियाँ

काठियावाड़का चन्दा

काठियावाड़ियोंको खादी-प्रचारके निमित्त २०,००० रुपये इकट्ठे करने थे। भाई मणिलाल कोठारीने मुझे तार द्वारा सूचित किया है कि यह रुपया इकट्ठा हो गया है। उनके सबसे बादमें आये हुए तारसे विदित हुआ है कि 'एक मित्रने कपास खरीदनेके लिए ५,००० रुपये दिये है तथा ऊपरसे गरीबोंको मुफ्त चरखे बाँटनेके लिए १,००० रुपये और दिये हैं। यह रकम आपके द्वारा प्राप्त चन्देको मिलाकर २०,००० रुपये हो जाती है।' निश्चित की गई यह राशि इतनी शीघ्रतासे इकट्ठी कर लेनेपर मैं काठियावाड़ियोंको और भाई मणिलालको धन्यवाद देता हूँ।

कैदी प्रागजी देसाई

भाई कल्याणजी, जो अभी कराची जेलमें भाई प्रागजी देसाईसे मिलकर वापस आये हैं, लिखते हैं:[१]

पत्रमें इशारा यह है कि दक्षिण आफ्रिकामें प्रागजी भाईका जेलका पहला अनुभव था, इसलिए वे वहाँ उत्तेजित हो जाते थे। अब तो वे पक्के हो गये हैं फिर उनका मन शान्त क्यों न रहे?

१. यहाँ नहीं दिया गया है। लेखकने इसमें लिखा था कि जेलमें प्रागजी भाई आरामसे हैं। उसके द्वारा उन्होंने गांधीजीको यह कहलाया था कि अब वे वैसे कैदी नहीं हैं, जैसे दक्षिण आफ्रिकामें थे।

कराचीमें अन्त्यज शाला

भाई कल्याणजीने मुझे इसी पत्रमें सूचित किया है कि भाई नारणदास कराचीमें अपनी जिम्मेदारीपर चार अन्त्यज शालाएँ चला रहे हैं। इन शालाओंमें शिक्षक ब्राह्मण हैं। वे विद्यार्थियोंसे शालाओंमें ही दाँत साफ करवाते हैं, उनको वहीं स्नान करवाते हैं और भोजन कराते हैं। इसलिए वे भली-भाँति स्वच्छ रहते हैं। दाँत साफ करवानेका नियम रखना तो अन्त्यजेतर शालाओंमें भी होना चाहिए। शारीरिक स्वस्थता दाँतोंकी सफाईपर बहुत-कुछ निर्भर है, यह बात लोग आम तौरपर नहीं जानते, नहीं तो जिन शालाओंके बालकोंके दाँत साफ न हों उनके शिक्षक दण्डनीय माने जायें।

कर्मचारियोंको छुट्टी

स्वयं गुणग्राही होनेके कारण मैं जहाँ भी कोई अच्छी बात देखता हूँ वहाँसे उसे माँगनेमें कोई संकोच नहीं करता। 'बाइबिल' में कहा गया है कि रविवारका दिन ईश्वरकी प्रार्थनाके लिए रखना चाहिए। जिस दृष्टिसे यह बात कही गई है उसका पालन तो बहुत ही कम ईसाई करते हैं, किन्तु उस दिन नौकरीसे विश्रान्ति और छुट्टी तो पश्चिममें लगभग सभी जगह रहती है। इस दिन छुट्टी रखनेसे काममें कोई कमी नहीं हुई है। उल्टे देखनेमें यह आया है कि सर्वत्र काम और ज्यादा अच्छा होता है। सप्ताहमें ऐसा एक दिन हिन्दुस्तानकी खानगी पेढ़ियोंमें मनाया जाये तो अच्छा हो, ऐसा विचार करके एक भाईने बम्बई से लिखा है:[1]

मेरी बातको कोई महत्त्व देगा या नहीं यह तो मैं नहीं जानता, किन्तु मैं उक्त सुझावका पूरा समर्थन करता हूँ। यदि व्यापारी स्वयं छुट्टी लें और अपने कर्मचारियोंको भी छुट्टी दें तो महीनेमें कम काम और कम कमाईकी जोखिम होनेपर भी उनको और उनके कर्मचारियोंको बहुत-कुछ फायदा होगा, इस बारेमें मुझे कोई शंका ही नहीं है। सरकारी विभागोंमें तो रविवारकी छुट्टी रहती ही है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इससे कामका कुछ हर्ज हुआ है। अंग्रेजी पेढ़ियोंकी दुकानोंमें रविवारको कामकाज बन्द रहता है, किन्तु जहाँतक हम जानते हैं इससे उनको भी कोई नुकसान नहीं हुआ है। मैं नहीं समझता कि सुबहसे लेकर सायंकालतक काम करनेवाली पेढ़ियोंमें बहुत ज्यादा मुनाफा होता होगा। उससे उनकी हानि तो स्पष्ट दिखाई देती है। उनमें न तो दुकानदारोंको साँस लेनेका समय मिलता है और न उनके कर्मचारियोंको। जिनका लगभग पूरा दिन दुकानमें ही जाता है और जो घरमें केवल खाना खाते और सोते ही हैं, वे गृहस्थ नहीं, दुकानस्थ ही कहे जाने चाहिए। वे अपने बाल-बच्चोंकी देख-रेख नहीं कर सकते। उनके बाल-बच्चोंको उनका साथ तो मिल ही कैसे सकता है? उनको अपनी तन्दुरुस्तीतक ठीक रखनेके लिए नित्य दवाएँ लेते रहनेकी जरूरत होती है। नौकरोंकी हालत तो उनसे भी खराब होती

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। उसमें खानगी पेढ़ियोंमें काम करनेवालोंको सप्ताहमें एक दिन छुट्टी मिलनेके प्रश्नपर नवजीवनमें लिखनेकी प्रार्थना की गई थी।

है। मालिक अपनी मर्जीसे दुकानमें रहते हैं इसलिए उन्हें उसमें रस आता है। वे अपनी मर्जीके अनुसार दुकानसे गैरहाजिर भी रह सकते हैं। नौकर तो यह खयाल करते-करते ही अपना दिन गुजारता है कि यहाँसे कब छूटूँगा। इस हालतमें उसकी तन्दुरुस्ती अच्छी नहीं रहती तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? इसके बजाय यदि उसको सप्ताहमें रविवार या दूसरा कोई दिन अवकाशके लिए मिल जाया करे और नित्य निश्चित घंटोंतक ही काम करना पड़े तो उसको सन्तोष रहेगा और वह जल्दी ही मालिकके कामको अपना ही काम मानना सीख जायेगा।

ऐसे सुधार प्रायः इसलिए नही हो पाते कि लोग सोचते हैं, पहल कौन करे? धन्धे अनेक हैं; उनमें से कोई एक धन्धेवाला भी पहल करे तो दूसरे उसका अनुकरण कर सकते हैं। नौकर भी कोई तरीका सोचें और मालिकोंके सामने विनयपूर्वक सुझाव रखें तो सम्भवतः वह भी स्वीकार किया जा सकता है।

कताई-सदस्यताका मजाक

एक स्वयंसेवकने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं:[१]

मैंने जानबूझकर गाँव या ताल्लुकेका नाम नही दिया है। वह है तो गुजरातका ही। मै यह बात इसलिए स्पष्ट कर रहा हूँ कि कोई यह न सोच ले कि मैंने हिन्दी या अंग्रेजीके पत्रका अनुवाद किया है। मैं तो बाहर घूमता रहता हूँ, इसलिए दूरसे जो-कुछ उजला देखता हूँ, उसे दूध मान लेता हूँ। मैं अपने मनमें यही सोचे बैठा था कि गुजरातके २,००० मताधिकारी तो शत-प्रतिशत खरे हैं। इसी बीच मुझे यह पत्र मिला।

उक्त समाचार सच ही होगा और जैसा एक जगह वैसा ही दूसरी जगह, इस नियमके अनुसार अगर सर्वत्र यही स्थिति हुई तो क्या होगा? यदि ऐसा हो तो हमें यह बात स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर लेनी होगी। गुजरातमें २,०००की जगह दो मताधिकारी हों तो भी अच्छा है, किन्तु २०,०००की जगह २,००,००० कागजके सिपाही काम नही देंगे।

यदि सुविधाएँ देनेकी जरूरत हो ही तो वे दी जानी चाहिए। किन्तु यदि सारी सुविधाएँ देनेपर भी और विनय करनेपर भी लोग सूत कातनेके लिए तैयार न हों तो हम न तो उनसे जबरदस्ती सूत कतवा सकते हैं और न उनका नाम कांग्रेसके रजिस्टरमें ही रख सकते हैं।

तब कताई-सदस्यताका क्या हो? मैं जबतक सूत कातनेको महत्त्व देता हूँ और जबतक मुझे उसके बिना हिन्दुस्तानकी आर्थिक स्थितिमें सुधार होते नहीं दिखता, तबतक मैं कताई-सदस्यताका ही आग्रह करूँगा। मेरी स्थिति उस माँकी तरह ही सही है जो अपने बच्चेको उतना ही अधिक छातीसे लगाती है, जितना दूसरे लोग उसे दुतकारते और दुरदुराते हैं। जैसे माँके दिलमें दूसरोंकी निन्दासे अपने बालककी

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। उसमें लेखकने अपने गाँवकी स्थिति बताई थी और कताई-सदस्यताके बाद कांग्रेस कार्यकर्ताओंने जो रवैया अख्तियार किया, उसका उल्लेख किया था।

योग्यता अथवा कल्याणके सम्बन्धमें शंका नही होती वैसे ही मुझे कताई-सदस्यताकी योग्यता अथवा चरखेकी लोक-कल्याणकी क्षमताके सम्बन्धमें कोई शंका नही हो सकती। इसलिए मैं तो चरखे से ही लगा रहना चाहता हूँ और अपने सब साथियों-को भी यही सलाह देता हूँ।

मेरा यह भी विचार है कि लोक-कल्याणकी दृष्टिसे जो सूत काता जाये वह महँगा न पड़े, सस्ता ही पड़े। किन्तु हमें लोगोंकी हदसे ज्यादा खुशामद नही करनी चाहिए और उनको ऐसी सुविधाएँ नही देनी चाहिए जिनमें ज्यादा खर्च पड़ता हो। यदि लोगोंको सूत कातनेके लिए तैयार करनेमें खर्च अधिक होता है तो सूत कातना निरर्थक समझना चाहिए, क्योंकि इसका अर्थ तो यह हुआ कि हम सूत कातनेका आग्रह करने जायें तो कातनेवालेसे कुछ लानेके बजाय उलटे उसे कुछ दे आयें। यह तो दिवालियेपनका व्यापार हुआ। उसमें सूत कातनेसे जो लाभ माना जाता है, वही समाप्त हो जाता है।

हमें सूत कातनेका प्रयोग वैज्ञानिक विधिसे करना है अर्थात् कातनेवाले सच्चे त्यागी स्त्री-पुरुष कितने मिलते हैं यह देखना चाहिए। सच्चे कातनेवाले वे लोग ही हैं जो अपने-आप २,००० गज सूत कातकर दे दें अथवा गरीब हों तो कांग्रेसके दफ्तरसे रुई लेकर उनका सूत कातकर भेज दिया करें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ३१-५-१९२५

९८. ग्राम-प्रवेश

जहाँ देखता हूँ वहीं सुखसे ज्यादा दुःख दिखाई देता है और यह भी दिखाई देता है कि इस दुःखके कारण हम स्वयं ही हैं।

बंगालके कितने ही अभिनन्दन-पत्रोंमें मौसमी बुखार, काला आजार आदि बीमारियों-की बात सदा रहती है। बंगालके कार्यकर्त्ताओंने मेरे निवेदनका उचित पालन किया है। मैंने चाहा था कि वे अभिनन्दन-पत्रोंमें मेरी स्तुति न दें, अपनी स्थानीय स्थितियोंका वर्णन दें। देखता हूँ कि प्रायः सभी अभिनन्दन-पत्रोंमें मेरी इस प्रार्थनापर पूरे तौरसे ध्यान दिया गया है। इससे मुझे बहुत जानकारी मिली है। किसी-किसी जगह आबादी कम होती जा रही है; क्योंकि वहाँ अनेक प्रकारकी बीमारियोंसे अकाल मृत्यु बढ़ती जाती है। शारीरिक व्याधियोंके अतिरिक्त फसलको नुकसान पहुँचानेवाली एक नई मुसीबत और पैदा हो गई है। वह एक पौधा है जिसे 'वाटर हायसिंथ' कहते हैं। इसका देशी नाम तो मालूम नही हुआ है। कहते हैं कि कोई आदमी अनजाने इसे पश्चिमसे ले आया था। वह आया कहींसे हो, परन्तु वह अब पद्मा नदीमें मीलोंतक फैला मिलता है। यह अनाजकी फसलको नष्ट कर देता है। यह जहरीला पौधा जिस-जिस हिस्सेमें देखा गया है, उसमें नदीके किनारेके खेतोंमें धानकी फसल लग-भग चौपट हो गई है। सरकारने उसे निर्मूल करनेके उपाय तो किये हैं; परन्तु अभीतक तो उनमें से एक भी सफल हुआ नही दिखाई देता।

ऐसे विचित्र कष्टोंसे पीड़ित प्रदेशकी सहायता कौन कर सकता है? किस तरह कर सकता है? गाँवोंके कष्टोंका अनुभव किये बिना उसके निवारणके उपाय किये नहीं जा सकते। आजके ग्राम्य-जीवनमें जो अज्ञान है, उसमें जब ज्ञानका प्रवेश होगा तभी हालत सुधर सकती है। लोगोंको आरोग्यके नियमोंका ज्ञान नहीं है। वे उसी तालाबमें नहाते, मैल साफ करते और बर्तन धोते हैं। मवेशी उसी तालाबमें पानी पीते हैं और मनुष्य भी उसीका पानी पीते हैं। जगह-जगह पानी भरा है उसे नालियाँ बनाकर निकालनेका उपाय किसीको नहीं सूझता और सूझता भी हो तो कोई भी उसे अपना काम नहीं मानता। तब करे कौन?

लोग इतने कंगाल हैं कि उन्हें खानेके लिए अच्छा और पौष्टिक भोजन चाहिए, सो भी नहीं मिलता, फिर दवाका खर्च कहाँसे लायें? आबहवा बदलना तो ग्रामीणोंके लिए सम्भव ही नहीं।

कुछ रीति-रिवाज तो इतने खराब हैं कि उनसे शरीर और आत्मा दोनोंका हनन होता है। बहुत छोटी आयुमें बालिकाओंका विवाह कर दिया जाता है। तेरह वर्षकी बालिका बच्चेकी माँ बन जाती है! सात वर्षकी लड़की विधवा हो जाती है! कितनी ही तो पतिको पहचानती भी नहीं हैं। पति किसे कहते हैं, इसका ज्ञान सात सालकी बालिकाको हो भी कैसे सकता है?

क्या हम इसके इलाजके लिए सरकारसे मिन्नत करें? इन कुप्रथाओंके निवारणका उपाय स्वराज्य मिलनेपर होगा या इनका उपाय किये बिना स्वराज्य ही न मिलेगा?

इसका एक ही उपाय सुगम है। शिक्षित लोगोंको सेवा-भावसे नम्रतापूर्वक देहातोंमें जाकरके लोगोंकी हालत जाननी चाहिए। इसमें बहुत-से बीमार पड़ेंगे और बहुत-से मर भी जायेंगे। हम जब यह सब सहन करना सीखेंगे, इसका उपाय हमें तभी मिलेगा। तभी लोग उस उपायको पहचानेंगे और अपनायेंगे। मै यह जरूर मानता हूँ कि लोगोंकी बुद्धिमें तर्कके प्रयोगसे बात बिठा देना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। लोग तो हृदयके माध्यमसे ही समझेंगे। हृदयके माध्यमसे तो केवल वे लोग ही बोल सकेंगे जिन्होंने सेवासे, प्रेमसे, त्यागसे लोगोंका विश्वास प्राप्त कर लिया हो। सामान्यतः संसारके और विशेषतः भारतके इतिहासके पन्ने-पन्नेमें लिखा है कि जो लोग भावना-प्रधान होते है उन्हें कोई बात बुद्धिसे नहीं समझाई जा सकती। क्या यह सच नही है कि हृदय प्रधान है और बुद्धि गौण? और हृदय रूपी गंगासे अछूती बुद्धि व्यर्थ है? हृदय शुद्ध न होनेके कारण और बहुत मायावी होनेपर भी रावणकी बुद्धि व्यर्थ रही और रामकी बुद्धि, हृदय शुद्ध होनेके कारण सहज ही अजेय रही।

देशबन्धु कहते हैं कि देहातको सुगठित किये बिना स्वराज्य मिलना सम्भव नहीं है। अन्य लोग भी यही कहते हैं। बंगालके अनुभवसे मैंने तो यही सीखा है कि हम जबतक देहातमें प्रवेश न करेंगे, तबतक हिन्दुस्तानको नहीं पहचान सकेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३१-५-१९२५

९९. बंगालमें कताई

बंगालकी यात्राका पहला भाग निर्विघ्न पूरा हो गया। निर्विघ्न इसलिए लिखना पड़ता है कि कितने ही मित्रोंको इसमें शक था कि मेरा स्वास्थ्य इस परिश्रमको सहन कर सकेगा या नहीं। मैंने बंगालमें जो हालत देखी है वह तो मेरी आशासे अधिक अच्छी प्रतीत हुई है। यहाँ बड़े-बड़े जमींदार सकुटुम्ब कातते हैं। यहाँ दीनाजपुरमें तथा अन्यत्र मैंने जमींदारों, वकीलों, बैरिस्टरों, अस्पृश्यों और हिन्दु-मुसलमानोंको बड़ी-बड़ी सभाओंमें एक साथ बैठकर कातते हुए देखा। यहाँ मैंने ऐसे सैकड़ों स्त्री-पुरुषोंको, जो अच्छा खाते-पीते हैं, बढ़िया सूत कातते हुए देखा। ये सब लोग हमेशा नहीं कातते। मुझे तो इतनी ही बात सन्तोष दे रही है कि इतने स्त्री-पुरुष अच्छी तरहसे कातना जानते हैं और प्रसंग आनेपर कातनेके लिए बैठते हैं। मैंने कताईका इतना अभ्यास भारतमें और कहीं नहीं देखा। दूसरी जगह जिस बातको स्त्री-पुरुष प्रयास करके पाते हैं, मैंने यहाँ यह बात स्वाभाविक पाई। जिस तरह विवाह इत्यादिके लिए अलहदा पोशाकें होती हैं; जिस तरह घरकी पोशाक और दफ्तरकी पोशाक जुदी-जुदी होती हैं, उसी तरह बहुतोंने खादीको भी अपनी पोशाकमें जगह दी है। यह बात ज्यादातर हिन्दुस्तानमें दूसरी जगह नहीं देखी जाती।

यहाँ मैंने खादी-विरोधी वातावरण देखा ही नहीं। अपरिवर्तनवादी और स्वराज्यवादी दोनों खादीका कम-ज्यादा उपयोग तो करते ही हैं। मैंने यहाँ चरखेकी निरुपयोगिता बतानेवाले सिर्फ तीन ही आदमी देखे; किन्तु वे भी प्रथम पंक्तिके न थे। यहाँ नरम और गरम सभी दलोंके लोग खादीका थोड़ा-बहुत उपयोग करते हैं।

यहाँकी पूनियोंका मुकाबला कोई प्रान्त नहीं कर सकता। उनमें किरी बिलकुल नहीं होती। बहुत-सी जगह तो देव कपास जातिकी रुईका सूत काता जाता है। उसे न ओटनेकी जरूरत होती है और न धुननेकी। इस कपासकी रुई अँगुलियोंसे निकाल ली जाती है, उसके रेशोंको जमाकर उनकी पूनियाँ बना ली जाती हैं और इन पूनियोंसे महीनसे-महीन सूत कात लिया जाता है। दूसरी कपास जो पहाड़ोंमें होती है, बहुत घटिया किस्मकी है। उसका रेशा बहुत ही छोटा होता है। वह चिकनी भी नहीं होती। उसे धुनना पड़ता है; परन्तु उसमें भी किरी तो नहीं होती। उसकी पिंजाई अच्छी नहीं होती; परन्तु चूँकि सभीको रुई साफ धुननेकी आदत है, इसलिए कोई भी खराब नहीं धुनता। बाजारमें जो सूत दिखाई देता है उसमें भी किरी नहीं होती। दससे कम अंकका सूत शायद ही कहीं दिखाई देता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३१-५-१९२५

१००. पत्र : देवचन्द पारेखको

शान्तिनिकेतन

ज्येष्ठ सुदी ८ [३१ मई, १९२५][1]

भाईश्री ५ देवचन्दभाई,

आपका विस्तृत पत्र मिला। मेरे खयालसे तो मैं कुछ भी करनेका साहस नहीं कर सकता। इसलिए मैं आपका पत्र रामजीभाईको[2] भेज रहा हूँ। वे इसे पढ़ ले और इस सम्बन्धमें आपसे बात कर लें। उसके बाद आप सब जो उचित समझें, वह करें। हमें तो जैसे भी हो, काठियावाड़को खादीमय बनाकर किसानोंका जीवन सरल और सुखमय बनाना है। यदि इस सम्बन्धमें निर्णयके लिए मगनलाल और लक्ष्मीदासको बुलानेकी आवश्यकता हो तो उनको बुला लें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च :]

मुझे अभी बंगालमें डेढ़ मास और लगेगा, फिर असम जाना होगा।

गुजराती पत्र (जी० एन० ५६९३) की फोटो-नकलसे।

१०१. पत्र : मणिबहन पटेलको

ज्येष्ठ सुदी ८ [३१ मई, १९२५][3]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिला। लम्बी चिट्ठी लिखनेका लोभ करूँ तो शायद लिख ही न सकूँ, इसलिए छोटा पत्र लिखकर ही सन्तोष करता हूँ। तुम्हें चूड़ियाँ[4] तो कभीकी मिल गई होंगी। ये मैंने कलकत्तासे लेकर भेजी हैं और दूसरी जो ढाकासे खरीदी हैं, अभी मेरे पास हैं। वे तुम्हें मेरे आनेपर ही मिलेंगी। तुम्हें चि० डाह्याभाईके बारेमें विस्तृत उत्तर महादेवने दिया होगा। उसे कमाना हो तो खुशीसे कमाये। उसकी तबीयत ठीक हो गई है, यह जानकर खुशी हुई। चि० यशोदासे[5] कहना कि

१. डाककी मुहरसे।

२. अमरेलीके रामजी हंसराज।

३. साधन-सूत्रके अनुसार।

४. देखिए "पत्र : मणिबहन पटेलको", १४-५-१९२५।

५. डाह्याभाईकी पत्नी।

वह मुझे पत्र लिखे। बापूकी खूब सेवा करना और उनपर जो बोझ है उसमें तुम तीनों जितना हाथ बँटा सको, बँटाना। मुझे अभी बंगालमें एक मास और बिताना होगा।

बापूका आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने

१०२. भाषण : शान्तिनिकेतनमें

३१ मई, १९२५

मैं न तो आपसे यह कहता हूँ कि आप अपनी कविता छोड़ दीजिए, न यही कहता हूँ कि साहित्य या संगीत छोड़ दीजिए। मैं सिर्फ इतना ही चाहता हूँ कि आप अपने इन तमाम कामोंको करते हुए भी सिर्फ आध घंटा चरखेके लिए दे दीजिए। अबतक किसीने ऐसा नहीं कहा कि हम आधा घंटा भी नहीं निकाल सकते। चरखा हमारी प्रान्तीयताको मिटानेवाला है। आज उत्तरी हिन्दुस्तानका आदमी बंगालमें जाकर अपना परिचय हिन्दुस्तानी कहकर देता है। बंगाली दूसरे प्रान्तोंमें अपनेको परदेशी मानते हैं। दक्षिणके लोग उत्तरमें जाकर विदेशी-जैसे बन जाते हैं। चरखा ही एकमात्र ऐसा साधन है कि जिससे यह भान होता है कि हम सब एक देशकी सन्तान हैं। हमने आजतक कुछ करके नहीं बताया, अतः कुछ करके तो बता दें। विदेशी कपड़ेका बहिष्कार एक ऐसी चीज है कि जिसके लिए सब मिलकर प्रयत्न कर सकते हैं, जिसमें सब एक-सा हिस्सा ले सकते हैं। अस्पृश्यता तो अकेले हिन्दुओंको ही दुःख देती है; मुसलमानोंके झगड़े समय पाकर मिट जायेंगे — पर खादीके बिना सारा देश दरिद्रतामें पड़ा-पड़ा सड़ता रहेगा। मध्य आफ्रिकामें निद्रा-का रोग पाया जाता है, — लोग महीनोंतक बेहोश पड़े रहते हैं और अन्तमें मर जाते हैं — हमारे देशके निद्रारोगकी सिवा चरखेके और दवा नहीं है।[1]

हिन्दी नवजीवन, १८-६-१९२५

१. इस भाषणका संक्षिप्त विवरण ३-६-१९२५ की अमृतबाजार पत्रिकामें भी उपलब्ध है।

१०३. भेंट : डॉ० एच० डब्ल्यू० बी० मोरेनोसे

शान्तिनिकेतन
३१ मई, १९२५

डॉ० एच० डब्ल्यू० बी० मोरेनोने जब दुबारा महात्मा गांधीसे भेंट की तो आंग्ल-भारतीय प्रश्नपर सविस्तार बात हुई। प्रारम्भमें ही डॉ० मोरेनोने उन कठिनाइयोंकी ओर इशारा किया जो सूत कातने और खद्दर पहननेकी श्री गांधीकी सलाहपर अमल करनेमें आती थीं; यदि यह मान भी लें कि खद्दरके पक्षमें दिये गये गांधीजीके तर्क सही हैं, तो भी आंग्ल-भारतीयोंको कामकी वह पद्धति-विशेष अपनानेमें ऐसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा जिनपर वे पार नहीं पा सकते।

श्री गांधीने स्वीकार किया कि आंग्ल-भारतीयों-जैसे एक समूचे समुदायको कामके ऐसे तरीके अपनानेके लिए तैयार करना आसान नहीं है, लेकिन उन्होंने कहा कि मैं उनके मामलेमें धीरजसे काम लेनेको तैयार हूँ। फिलहाल मुझे इसी बातसे संतोष हो जायेगा कि आंग्ल-भारतीय लोग मेरे कताई-कार्यक्रमके प्रति अनुकूल मानसिक दृष्टिकोण अपना लें। कताईका मुख्य प्रयोजन पीड़ित जनताकी निर्धनताको कम करना ही है। कताई अमीरों और गरीबोंके बीच एकताका सूत्र है; और मैं तो भारतमें बसे, भारतका नमक खानेवाले अंग्रेजोंको भी यही सलाह दूँगा कि उन्होंने जिसे अपना देश बना लिया है, उसके प्रति वे सच्चे रहें और कताईको अपनायें।

डॉ० मोरेनोने गांधीजीका ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित किया कि फिलहाल कौंसिलोंमें, विधान-सभाओं और अन्य सार्वजनिक संस्थाओंमें आंग्ल-भारतीयोंको एक निश्चित अनुपातमें प्रतिनिधित्व मिला हुआ है। स्वराज्य हो जानेपर इस अल्पसंख्यक समुदायके साथ क्या व्यवहार किया जायेगा? भारतके अन्य बड़े-बड़े समुदायोंके बीच उसकी स्थिति क्या होगी?

श्री गांधीने जवाब दिया कि यदि आंग्ल-भारतीय अन्य जातियोंके साथ कदम मिलाकर चलें तो मैं नहीं समझता कि उनको कोई बड़ा नुकसान उठाना पड़ेगा। मेरा मत है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंको अपनी तरफसे कुछ रियायत करके भी आंग्ल-भारतीयोंको भारतकी प्रातिनिधिक संस्थाओंमें कुछ अधिक प्रतिनिधित्व सिर्फ इसलिए देना चाहिए कि वे अल्पसंख्यक हैं और उन्हें अधिक संरक्षणकी जरूरत है। 'खुद मुझे लग सकता है कि मैं इसे जरूरतसे ज्यादा अहमियत दे रहा हूँ लेकिन मैं अपने मनमें इतना जानता हूँ कि मैं बच्चेकी तरह इस छोटे समाजके प्रति इस कर्त्तव्यको पिताका कर्त्तव्य निभानेकी तरह मानता हूँ; फिर अन्य लोग चाहे जो भी कहें।'

डॉ० मोरेनोने कहा कि अभी आंग्ल-भारतीय लम्बे अर्सेके सम्पर्क और अपने रहन-सहनके एक खास तौर-तरीकेके कारण उन पदोंके लिए विशेष उपयुक्त हैं जिनपर वे अभी भारतमें रेल-विभाग, चुंगी-विभाग और अन्य विभागोंमें काम कर रहे हैं, क्या 'भारतीयकरण' का अर्थ इन पदोंको आंग्ल-भारतीयोंसे छीनकर भारतीयोंको दे देना है? इधर कुछ समयसे ऐसी आशंका आंग्ल-भारतीयोंके मनको बुरी तरह कुरेदती रहती है।

श्री गांधीने जवाब दिया कि सभी सेवाओंके लिए सबसे बड़ी कसौटी कार्यक्षमता होनी चाहिए। यदि आंग्ल-भारतीय उन पदोंके लिए उपयुक्त हैं तो उन्हें कुछ समयतक अवश्य ही उनपर बने रहना चाहिए। कुछ समय बाद जब भारतीय भी कार्यक्षमताके आधारपर इन पदोंके योग्य हो जायेंगे तो उन्हें इन पदोंको प्राप्त करनेसे रोका नहीं जा सकता, लेकिन उस वक्ततक आंग्ल-भारतीयोंके लिए जीविकाके अन्य क्षेत्र भी खुल जायेंगे। भारतमें जो जातियाँ और समुदाय अभी ऊपर हैं, मैं यह नहीं चाहता कि उनको नीचे लाया जाये, बल्कि मैं तो यह चाहता हूँ कि स्वराज्य आनेपर जो नीचे हैं उनको भी ऊँचे स्तरपर ले जाया जाये। मैं एक उदासीन भारतीय ड्राइवर द्वारा चलाये जानेवाले इंजनकी अपेक्षा उस इंजनवाली रेलगाड़ीमें बैठना ज्यादा पसन्द करूँगा जिसे एक योग्य प्रशिक्षित यूरोपीय या आंग्ल-भारतीय ड्राइवर द्वारा चलाया जा रहा हो।

डॉ० मोरेनोने आंग्ल-भारतीयोंकी शिक्षाकी दयनीय दशाका उल्लेख करते हुए कहा कि धारा-सभाओंमें कभी-कभी यूरोपीयोंकी शिक्षाके लिए अनुदानोंमें कटौती करानेके प्रयत्न किये जाते हैं, और इसका आधार यह होता है कि अन्य शैक्षणिक अनुदानोंकी तुलनामें, उन्हें बहुत ही खुले हाथ राशियाँ दी जाती हैं। डॉ० मोरेनोने कहा कि उन अनुदानोंको बन्द करनेका अर्थ यही होगा कि निकट भविष्यमें यह समुदाय सामाजिक रूपसे बर्बाद हो जायेगा। इसपर श्री गांधीने कहा:

गलती यही है। मुझे कुछ रियायतें देकर भी आंग्ल-भारतीयोंको इसीलिए सन्तुष्ट रखना चाहिए कि वे अल्पसंख्यक हैं और उन्हें विशेष संरक्षणकी जरूरत है। जब बम्बईमें दंगे हुए थे और आंग्ल-भारतीयों और पारसियों दोनोंपर नृशंसतापूर्ण हमले किये गये थे, तब मैंने अपने भारतीय भाइयोंको बुरी तरह डाँटा-फटकारा था। भारतके सभी दलोंकी एकताकी बात कहते समय मैं उसमें आंग्ल-भारतीयों, पारसियों, यहूदियों, आदिका उल्लेख करता आया हूँ। इन सबको अलग रखकर एकता हो ही नहीं सकती। तब तो दुर्बलोंपर शक्तिशाली लोगोंकी निरंकुशता ही चलेगी। भारतके बड़े समुदायों, जैसे कि हिन्दुओं और मुसलमानोंका छोटे समुदायोंके प्रति यह एक पवित्र कर्त्तव्य है कि वे उन्हें संरक्षण दें।

आंग्ल-भारतीयोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें मैं कहूँगा कि वह शिक्षा उनकी नैतिकताको ऊँचा नहीं उठाती, क्योंकि अक्सर यात्रा करते समय मैंने देखा है कि आंग्ल-भारतीयोंमें यूरोपीयों और भारतीयोंके गुण होनेके बजाय दोनोंकी बुराइयाँ ही

हैं। भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी भाषाकी गन्दीसे-गन्दी गालियाँ रोज ही उनकी बोलचालमें शामिल होती रहती हैं। ऐसी दूषित रुचि तो आंग्ल-भारतीयोंको स्वयं ही सुधारनी है। आंग्ल-भारतीयोंमें ऐसा हो क्यों रहा है; इसका कारण यही है कि वे अपने-आपको सामाजिक रूपसे अलग-थलग रखते हैं और अपने पड़ोसियोंके उत्तम गुणोंको ग्रहण करनेकी कोशिश नहीं करते। रेलवे प्लेटफॉर्मपर मैंने यह भी देखा है कि वे चटोरे भी होते जा रहे हैं। खाने-पीनेकी जो भी गन्दी और बीमारी पैदा करनेवाली चीजें उनको बिकती दिखाई पड़ती हैं, उनको वे चुपकेसे खरीद कर लोगोंकी आँखें बचाकर खा लेते हैं। जिह्वाका स्वाद मनकी रुचि बताता है।

डॉ० मोरेनोने इस बातकी ओर ध्यान दिलाया कि यह बिलकुल पक्की बात है कि अभीतक आंग्ल-भारतीयोंने कांग्रेसकी कार्रवाइयोंमें नहींके बराबर या बिलकुल दिलचस्पी नहीं दिखाई है। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके बंगालमें नेतृत्वके दौरान इस समुदायके तत्कालीन नेता डॉ० जे० आर० हेलैसको कांग्रेसमें शरीक होनेके लिए आमन्त्रित किया गया था। लेकिन जब यह बात समुदायके लोगोंमें फैली तो कुछ समयके लिए डॉ० हेलैसको समाजसे बहिष्कृत कर दिया गया था।

हम कांग्रेसमें आपका स्वागत करेंगे। आप क्यों नही आते? यदि आप बाहर बने रहें तो दोष किसका है? कमसे-कम मैं तो उसी तरह बाहें फैला कर आपका स्वागत करूँगा, जैसे कि मैं यहूदियों या पारसियोंका करूँगा। यदि कांग्रेस सभीको अपने अन्दर शामिल नही करती, तो वह सच्ची राष्ट्रीय संस्था नही है।

सूतकी शर्तवाले मताधिकारके बारेमें महसूस होनेवाली कठिनाईको भी आप उसी तरह हल कर सकते हैं, जैसे कि अन्य लोगोंने फिलहाल किया है। वे अपने ही स्थानसे सूत खरीदकर उसे भेज सकते है।

डॉ० मोरेनोने कहा कि इस समुदायमें दो तरहके लोग हैं, एक वे जिनका रुझान यूरोपकी तरफ है, दूसरे वे जिनका रुझान भारतकी तरफ है; लेकिन अब विचारोंमें शीघ्रतासे परिवर्तन हो रहा है।

श्री गांधीने कहा कि मैंने खुद गौर किया है कि आंग्ल-भारतीयोंके मतमें परिवर्तन हो रहा है। अब वे अपने-आपको भारतीय माननेकी तरफ झुक रहे हैं। यह मैंने अपने कई आंग्ल-भारतीय मित्रोंकी बातचीतसे समझा है। कुछ आंग्ल-भारतीय चमड़ीके रंगको लेकर ही सिद्धान्त बघारने लगते हैं। थोथे बड़प्पनकी यह भावना बेकारकी चीज है।

असल कठिनाई तो तब आती है जब आप अपने समुदायके गरीब लोगोंकी स्थितिपर विचार करते है। वे पतनकी ओर जा रहे हैं और भारतीयोंकी निम्नतम बुराइयोंको अपनाते जा रहे हैं, क्योंकि उनके और समुदायके समृद्धिशील भाइयोंके बीचकी खाई चौड़ी होती जा रही है। समृद्ध आंग्ल-भारतीयोंके लिए कोई साम्प्रदायिक समस्या नहीं है और वे अपनी योग्यतासे कही अधिक पा रहे हैं। आंग्ल-भारतीय विचारकोंको अपने गरीब वर्गोंकी समस्या हल करनेके बारेमें अधिक सोचना है। हमारे यहाँ अस्पृश्योंकी समस्या है। आपके सामने यही समस्या एक दूसरे रूपमें है।

दक्षिण भारतका एक आंग्ल-भारतीय स्टेशन मास्टर मेरा मित्र है। उसने रहन-सहनका एक दिखावटी तरीका अपना लिया है। यह बड़ी गलत-सी बात है। मेरा यह मित्र २० सालकी सेवाके बाद भी ३०० रु० महीना पाता है, लेकिन चूंकि उसे यूरोपीय तौर-तरीकेसे रहना पड़ता है, इसलिए वह अपनी बीबी और चार बच्चोंकी जरूरतें पूरी करने और परिवारको उपयुक्त शिक्षाकी सुविधाएँ देनेके बाद एक पैसा तक नहीं बचा पाता। इस आंग्ल-भारतीयने मुझे बताया है कि उसे लगता है कि इससे बर्बादी ही हाथ लगती है; फिर भी उसे रहन-सहनका ऐसा ढंग कायम रखनेके लिए मजबूर होना पड़ता है, क्योंकि वह यदि दूसरा कोई तरीका अपनाये तो रेलवेमें उसकी तरक्की बन्द ही हो जायेगी।

डॉ० मोरेनोने कहा कि आंग्ल-भारतीयोंको जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है उन्होंने उनमें से कुछ ही का बयान किया है। उन्होंने गांधीजीसे भारतके सच्चे मित्रके नाते उनके बारेमें सलाह माँगी और कहा कि आंग्ल-भारतीय देशकी मिट्टीसे ही जन्मे हैं और देशके साथ उनके हित स्थायी रूपसे जुड़े हुए हैं।

जवाबमें श्री गांधीने कहा कि मैं इन भावनाओंकी कद्र करता हूँ। आंग्ल-भारतीयोंके स्थायी हितोंकी तो सभी भारतीय चिन्ता करेंगे। आंग्ल-भारतीयोंको भारतीयोंसे अलग करनेवाली बातें तो बहुत कम हैं। मुझे खुशी है कि आपने इस मामलेमें मेरे साथ इतना दिल खोलकर बात की। उन्होंने कहा कि मैं अपने भारतके दौरोंमें कितने ही अन्य आंग्ल-भारतीयोंसे मिला हूँ। वे जब-तब मेरी सलाह लेने आते हैं, अनेकों ऐसे आंग्ल-भारतीय निजी तौरपर मुझसे मिलने आते हैं और सभी साम्प्रदायिक मामलोंमें मेरी सलाह लेते हैं। वे मेरे तर्कोंका औचित्य तो स्वीकार करते हैं, पर उन्हें अमलमें नहीं ला पाते। उनमें अमल करने लायक नैतिक बल नहीं है। गांधीजीने डॉ० मोरेनोको सलाह दी कि आपने जिस पवित्र कार्यको अपने जीवनका उद्देश्य बनाया है, उसे शिथिल न होने दें, क्योंकि आंग्ल-भारतीय समुदायकी मुक्ति सिर्फ इसी नीतिपर अमल करनेमें है। आपको आलोचनासे हतोत्साहित होकर विचारों और कार्योंमें संकीर्णता नहीं आने देनी चाहिए। इस सिलसिलेमें बंगालके बुद्धिजीवियों और देशके मेहनतकशोंका उदाहरण सामने है।

भेंटके अन्तमें डॉ० मोरेनोने श्री गांधीसे आंग्ल-भारतीयोंसे सम्बन्धित कई प्रश्न 'यंग इंडिया'के स्तम्भोंके जरिये पूछते रह सकनेकी इच्छा व्यक्त की ताकि सम्बद्ध प्रश्नोंपर सुविचारित उत्तर मिल जायें। श्री गांधीने कहा:

आपके समुदायके एक मित्रके नाते, मैं ऐसे प्रश्नोंका उसी तरह स्वागत करूँगा जैसे कि उन सब लोगोंके प्रश्नोका करता हूँ जो भारतमें जन्मे हैं या रहते हैं। इन मसलोंके बारेमें यथाशक्ति सभी गलतफहमियाँ दूर करनेसे मुझे खुशी हासिल होगी ताकि हम भविष्यको और अच्छी तरह समझ सकें। आखिर हम दोनों एक ही उद्देश्य अर्थात् आपके और मेरे अपने देश भारतकी उन्नतिके लिए काम कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २-६-१९२५

१०४. पत्र : जी० वी० सुब्बारावको[1]

१ जून, १९२५

प्रिय मित्र,

आपके पत्रमें उल्लिखित अनेक बातोंसे मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ३६२४) की फोटो-नकलसे।

१०५. पत्र : जितेन्द्रनाथ कुशारीको

१ जून, १९२५

प्रिय मित्र,

अल्पकालमें ही आपने जो प्रगति की है, उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। आशा करता हूँ कि यह प्रगति जारी रहेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत जितेन्द्रनाथ कुशारी
सत्याश्रम
डाकखाना बहरोक
जिला ढाका

अंग्रेज़ी पत्र (जी० एन० ७१८७) की फोटो-नकलसे।

१. जी० वी० सुब्बाराव पंतुलु; १९१४ में कांग्रेसके महामन्त्री। १९१७ में वे पुनर्निर्वाचित हुए थे, किन्तु उन्होंने त्यागपत्र दे दिया था।

१०६. पत्र : एस० ए० वझेको[1]

शान्तिनिकेतन
१ जून, १९२५

मैंने आपका ज्ञापन गौरसे पढ़ लिया है। वह बहुत उपयोगी और तर्कपुष्ट है। लेकिन उसमें गलतफहमीकी गुंजाइश भी है। उसका यह अर्थ भी निकल सकता है कि यदि आपके सामने विकल्प रखा जाये तो आप भेदभावको वैधानिक रूप देनेके ही पक्षमें रहेंगे। यों तो मैं यही समझा हूँ कि आप ऐसा कोई विकल्प स्वीकार नहीं करेंगे। किसी सामान्य नियम या प्रणालीको तो आसानीसे बदला जा सकता है, किन्तु विधान-सभा द्वारा लिखित कानून बन जानेपर उसे संशोधित करना बड़ा ही कठिन काम होता है। हममें से इने-गिने लोग ही न्यायाधीश बन सकते हैं; लेकिन यदि हमारे पूरे समुदायको वैधानिक व्यवस्थाके जरिये न्यायाधीश बननेके अधिकारसे वंचित कर दिया जाये तो हम उसे कैसे पसन्द कर सकते हैं? प्रस्तावित कानूनी प्रतिबन्धका असर शायद एक भी एशियाईपर नहीं पड़ेगा। फिर भी उसका विरोध तो अवश्य करना चाहिए। यह नीति-सूत्र है कि कानूनी तौरपर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाये और प्रशासनके व्यवहारमें कोई सख्ती न की जाये, बल्कि इसके विपरीत असमानताकी नीतिपर अमल करनमें प्रशासन ढिलाई बरते। मैं उस रंगमंचके सभी अभिनेताओंको जानता हूँ। स्मट्सका 'फितरतीपन' दुनियामें मशहूर है, फिर भी हर्टज़ोग या बेयर या क्रेसवेलकी अपेक्षा उनकी दृष्टि अधिक न्यायपूर्ण है। मैं तो यह सब केवल इसलिए कर रहा हूँ कि इससे आपको अपनी बात और अधिक स्पष्ट रखनेमें मदद मिल सकती है। फिर भी यदि आपका यही मत हो कि यदि भेदभाव किया ही जाना है तो उसे ठोस कानूनी शक्ल देना ज़रूरी है, तो फिर मुझे कुछ कहना नहीं है। उस परि-स्थितिमें हमारा परस्पर मतभेद रहा। भेदभावके मामलेमें आस्ट्रेलिया चरमसीमापर है, पर वहाँ भी राजनीतिज्ञ लोग वैधानिक संशोधनका सहारा लिये बिना ही जब चाहें विवेकशील ढंगसे व्यवहार करना शुरू कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. इम्पीरियल सिटिजनशिप एसोसिएशन (साम्राज्यीय नागरिक संघ) के मन्त्री, भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ़ इंडिया सोसाइटी) के सदस्य और प्रवासी भारतीयोंके हितमें काम करनेवाले एक प्रमुख कार्यकर्ता।

१०७. भाषण: भवानीपुर, कलकत्तामें[1]

२ जून, १९२५

श्री गांधीने कहा कि चरखा मुझे बहुत प्रिय है और यह जानकर कि राष्ट्रीय स्कूलके पाठ्यक्रममें उसे स्थान मिल गया है, मुझे खुशी हुई है। आशा है कि लड़के मन लगाकर कातेंगे और कुशल कतैये बनेंगे। ऐसे हर स्त्री-पुरुष और बच्चेसे, जिसके दिलमें आम जनतासे हमदर्दी है, मैं प्रतिदिन कमसे-कम आधा घंटा चरखा चलानेकी आशा करता हूँ। श्री गांधीने कहा कि चरखा ही आम जनता और उच्च वर्गोंको जोड़नेवाली एकमात्र कड़ी है।

श्री गांधीने अस्पृश्यता और हिन्दू-मुस्लिम एकताकी भी चर्चा की।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ४-६-१९२५

१०८. वाइकोम

वाइकोम सत्याग्रहका[2] जनताके ध्यानमें बना रहना जरूरी है। उसे यह मालूम होना चाहिए कि सत्याग्रही इस समय पहलेसे भी ऊँचे प्रकारके अनुशासनका पालन कर रहे हैं। पहले उनको आगे बढ़नेसे रोकनेके लिए जो स्थूल बाधा खड़ी की गई थी उसके सामने बैठकर वे चरखे चलाते थे। यह बाधा थी पुलिस द्वारा रक्षित एक बाड़। पाठक जानते हैं कि अब वह बाड़ हटा दी गई है, पहरेदार हटा लिये गये हैं और वहाँ जानेकी मनाहीका हुक्म भी वापस ले लिया गया है और अब सत्याग्रही अपने आप स्वीकार किये गये नैतिक प्रतिबन्धका पालन स्वेच्छासे कर रहे हैं। अवश्य ही वे यह आशा करते हैं और यह उन्होंने साफ-साफ जाहिर भी कर दिया है कि वे सवर्ण हिन्दू, जिनका इससे सीधा सम्बन्ध है, कठोरता त्याग देंगे तथा सरकार स्वयं शीघ्र सड़कोंको उन लोगोंके लिए, जो 'अनुपगम्य' कहे जाते हैं, उसी प्रकार खोल देनेकी घोषणा कर देगी जिस प्रकार वे अभी दूसरे सभी मनुष्यों — यहाँ तक कि बिल्लियों और कुत्तोंके लिए भी खुली हैं। त्रावणकोरकी हिन्दू सरकारको इस अमानुषिक अन्धविश्वासका, जो हिन्दू धर्ममें घुस आया है, समर्थन नहीं करना चाहिए। यह उसका दलित जातियोंके प्रति दोहरा कर्त्तव्य है — एक तो प्रत्येक दयालु

१. यह भाषण राष्ट्रीय शाला और 'सेवक समिति' की ओरसे भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें दिया गया था।

२. जो वाइकोम (केरल) में एक मन्दिरको और उसके पासकी सड़कको पञ्चमा और अन्य पिछड़ी जातियोंके लिए खोलनेके लिए १९२४ में चलाया गया; देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५४७-५२।

सरकारका अपने अधीनस्थ दलित मानवोंके प्रति जो दायित्व होता है, उसके कारण तथा दूसरे एक हिन्दू सरकारका हिन्दुत्वके प्रति जो दायित्व है, उसके कारण।

यह मैंने शासनके प्रति कहा।

त्रावणकोरके सवर्ण हिन्दुओंने मुझसे वादा किया था कि वे सरकारको तबतक चैन न लेने देंगे जबतक उक्त सड़कें अनुपगम्य पंचमोंके लिए खोल नहीं दी जाती। यों ऐसा वादा करना जरूरी नहीं था; क्योंकि यह तो उनका कर्त्तव्य ही है। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया था कि वे समस्त त्रावणकोरमें सभाएँ करेंगे, जिससे सरकारको स्पष्ट रूपसे यह दीख जाये कि वे उन पंचमोंके लिए सड़कोंपर चलनेकी मनाहीको हिन्दुत्वके विरुद्ध मानते हैं और उसे असह्य समझते हैं। सार्वजनिक सभाएँ करनेके अतिरिक्त उन्हें सवर्ण हिन्दुओंके दस्तखत करके अन्त्यजोंके लिए इन सड़कोंको खोलनेका एक ऐसा बृहद आवेदन भी प्रस्तुत करना था। मालूम नहीं जिन सज्जनोंने मुझे ऐसा आश्वासन दिया था, वे अपनी प्रतिज्ञाका पालन कर रहे हैं अथवा नहीं।

अब कुछ उनके बारेमें जिन्हें गलतीसे 'अनुपगम्य' कहा जाता है। मुझे मालूम हुआ है कि वे धीरज खो रहे हैं। उन्हें धीरज खोनेका अधिकार है। मुझे यह भी बताया गया है कि सत्याग्रहसे उनका विश्वास उठ रहा है। यदि यह सच है तो विश्वासकी इस कमीसे यह जाहिर होता है कि वे नहीं जानते, सत्याग्रह कैसे अपना असर डालता है। यह एक ऐसी शक्ति है जो अपना काम चुपचाप तथा देखनेमें धीरे-धीरे करती है। सच कहें तो दुनियामें ऐसी कोई दूसरी शक्ति नहीं है जिसका प्रभाव इतना सीधा और त्वरित होता हो। लेकिन कभी-कभी पशुबलसे सफलता अधिक द्रुत गतिसे प्राप्त होती दिखाई पड़ती है। शारीरिक श्रम द्वारा रोजी कमाना सत्याग्रह द्वारा रोजी कमानेका एक प्रकार है। स्टाक एक्सचेंजके जुएसे अथवा घरमें सेंध लगानेसे, जो कि सत्याग्रहके विपरीत क्रियाएँ हैं, प्रत्यक्षतः धनकी उपलब्धि तत्काल हो सकती है। लेकिन मैं ऐसा मानता हूँ कि दुनियाने अबतक यह समझ लिया है कि घरमें सेंध लगाना तथा जुआ खेलना, रोजी कमानेके कोई ढंग ही नहीं है तथा उनसे जुआरी तथा चोरको बजाय लाभके नुकसान ही होता है। अनुपगम्य पंचम अन्ध-विश्वासी सवर्णोंसे खुली लड़ाई लड़कर जबरदस्ती मन्दिरके पासकी सड़कोंपर जा सकते हैं; लेकिन वे इससे हिन्दुत्वमें सुधार तो नहीं कर सकेंगे। उनका तरीका लोगोंको जबरदस्ती बदलनेका तरीका होगा। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि उनमें से कुछ लोग, अपने कष्ट तत्काल कम न होनेकी परिस्थितिमें ईसाई धर्म, इस्लाम अथवा बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेनेकी धमकी भी देते हैं। मेरे तुच्छ विचारमें जो लोग धमकीका प्रयोग करते है वे धर्मका अर्थ नहीं जानते। धर्म तो हमारे जीवन-मरणका प्रश्न है। आदमी अपना धर्म-परिवर्तन ऐसे नहीं कर लेता जैसे वह अपनी पोशाक बदल लेता है। धर्म तो उसके साथ उसकी मृत्युके बादतक लगा रहता है। यदि वह अपने धर्मको मानता है तो दूसरोंको अनुग्रहीत करनेके लिए नहीं बल्कि इसलिए कि वह इसके अलावा और कुछ कर ही नहीं सकता। एकपत्नी-व्रती अपनी पत्नीसे अनन्यभावसे प्रेम करता है। उसकी पत्नी बेवफा हो जाती है वह तब भी उसके प्रति निष्ठावान रहता है। उससे उसका

गठबन्धन खूनके रिश्तेसे भी अधिक दृढ़ होता है। धर्म-बन्धन भी, यदि उसका कुछ मूल्य हो तो, उसी प्रकारका होता है। धर्म तो हृदयका विषय होता है। एक अस्पृश्य जो जुल्म किये जानेके बावजूद हिन्दुत्वका पालन करता रहता है, अपने आपको ऊँचा बतानेवाले हिन्दूसे ज्यादा सच्चा हिन्दू है, क्योंकि वह उच्चवर्णी हिन्दू तो अपनी उच्चताके अपने दावेसे ही हिन्दुत्वका निषेध करता है। इसलिए जो पंचम लोग हिन्दू धर्मको छोड़नेकी धमकी देते हैं, वे मेरी सम्मतिमें अपने धर्मसे विश्वासघात करते हैं।

लेकिन सत्याग्रहीका मार्ग स्पष्ट है। उसे इन सभी विपरीत धाराओंके मध्यमें अविचल खड़ा रहना चाहिए। उसे न तो अंधे रूढ़िवादियोंके प्रति अधीर होना चाहिए और न दलित लोगोंकी विश्वासहीनतासे खीझना ही चाहिए। उसको जानना चाहिए कि उसका कष्टसहन कठोरसे-कठोर धर्मान्ध मनुष्यके कठोरतम हृदयको भी पिघला देगा तथा युगोंसे दबाकर रखे हुए डगमगाते पंचम भाईकी रक्षाके लिए दीवारका काम देगा। उसे जानना चाहिए कि राहत तभी मिलेगी जब उसकी कमसे-कम आशा होगी; उस कठोर तथा दयालु प्रभुका ऐसा ही तरीका है। वह अपने भक्तोंकी पूरी-पूरी अग्नि-परीक्षा लेता है और उन्हें एक रजकणसे भी अधिक तुच्छ बनाकर खुश होता है। अपने संकटके समय सत्याग्रहीको अपने मनमें पौराणिक कथामें वर्णित उस गजराजकी प्रार्थनाका स्मरण् करना चाहिए, भगवानने जिसकी रक्षा उस समय की थी जब वह बिलकुल हताश हो चुका था।

आंग्ल-भारतीय

मैंने श्री मोरेनोको यह सुझाव दिया था कि आंग्ल-भारतीयोंको अन्य भारतीयोंके समान ही सूत कातना और खद्दर पहनना चाहिए। मैं देखता हूँ कि कुछ सज्जनोंने इस सुझावकी हँसी उड़ाई है। इस सुझावकी हँसी उड़ाना है तो बड़ा आसान, परन्तु मुझे अपनी दवापर कामिल यकीन है और मै जानता हूँ कि आज लोग जिस बातपर हँस रहे हैं, उसीको बहुत जल्दी बिलकुल ठीक समझने लगेंगे। आंग्ल-भारतीय भाइयोंके प्रति मेरे मनमें कोई दुर्भाव नहीं है। मेरी स्वराज्यकी कल्पनामें उनके लिए भी उतना ही स्थान है जितना भारतमें पैदा हुए या भारतको अपना देश बना लेनेवाले किसी दूसरे मनुष्यके लिए है। इसलिए चाहे कुछ लोग इस समय मेरी बातका गलत अर्थ लगायें, परन्तु मैं जानता हूँ कि अन्तमें उनकी गलतफहमी दूर हो जायेगी। मैं एक हिन्दुस्तानी और दूसरे हिन्दुस्तानीमें कोई भेद नहीं करता। मैंने आंग्ल-भारतीयोंमें भी गरीब वर्गके बहुत लोग देखे हैं और मैं उनसे मिला हूँ। यदि उन्हें थोड़े भी सुखसे रहना हो तो उन्हें दूसरे गरीब हिन्दुस्तानियोंका साथ देना होगा। उन्हें उनके दुःखमें शरीक होना और जहाँतक हो सके उनके जैसा जीवन व्यतीत करना होगा। खादी सब लोगोंकी सामान्य पोशाक हो सकती है; तो फिर उन्हें औरोंके साथ-साथ सूत क्यों नहीं कातना चाहिए? देशके गरीबों और अपने बीचकी सहानुभूति-सूचक इस प्रत्यक्ष और व्यापक कड़ीको अपनानेमें शर्मकी कोई बात नही है। अपनी जन्मभूमिके दीन-दरिद्र लोगोंके साथ अपनेको तद्रूप करनेमें आंग्ल-भारतीय भाई पीछे क्यों रहें? उन्हें मामूली हिन्दुस्तानीसे अपनेको बड़ा और ऊँचा समझनेकी झूठी शिक्षा दी गई है। इस

उच्चताकी झूठी भावनाके कारण वे दरअसल अपने ही घरमें विदेशी-जैसे बन गये हैं। और वे अंग्रेजोंमें तो मिल नहीं सकते। उनके लिए किसी दूसरे देशको अपना देश समझना नामुमकिन है। यदि वे किसी उपनिवेशमें जानेकी कोशिश करें तो वहाँ उनको उसी दुर्गति और उन्हीं निर्योग्यताओंका सामना करना होगा, जिनका सामना एक मामूली हिन्दुस्तानी प्रवासीको करना होता है। इसलिए मैंने बड़े नम्रभावसे और ऐसी सचाईसे, जिसके मूलमें मेरा गहरा विश्वास है, यह कहा है कि उन्हें अपने जीवन सम्बन्धी विचार बदलने चाहिए। उन्हें वैसा ही होना चाहिए, जैसे वास्तवमें वे हैं अर्थात् भारतके लोगोंकी तरह। तब उनमें उचित सन्तुलन आ जायेगा, वे अपने माता-पिता — दोनोंके सद्गुणोंको ग्रहण करेंगे और खुद अपनी, अपने देशकी तथा अपने यूरोपीय माता या पिताकी भारी सेवा करेंगे। उस अवस्थामें, अपनी एकदम उचित स्थितिको प्राप्त करनेके बाद, वे अंग्रेजोंसे जो-कुछ कहेंगे उनपर उसका असर होगा और वे उनसे अपने जाती तजुर्बेकी ताकतके साथ बातें कर सकेंगे। मैंने डाक्टर मोरेनोसे न यह कहा था और न अब कहता हूँ कि आंग्ल-भारतीय समाजके गरीबसे-गरीब लोग भी सूत कातकर उससे गुजर करें और उसीमें सन्तोष मानें। फिर भी इस बातका कोई कारण दिखाई नहीं देता कि राष्ट्रीय दृष्टिसे उनमें से बड़से-बड़े लोग भी सूत क्यों न कातें? हाँ, मुझे यह कहते हुए जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती कि उनमें जो लोग बेहद गरीब हैं, वे अच्छी तरहसे बुनाई सीख लें। यह एक सहायक धन्धा है। जो लोग सीख सकते हों, वे इसे ईमानदारीके साथ रोटी कमानेके लिए सीखें, क्योंकि कुशलतासे और कलात्मक बुनाई करनेवाले लोग ४० रु० से ५० रु० मासिकतक पैदा कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-६-१९२५

१०९. खादी प्रतिष्ठान

बाढ़ और अकालके संकटको दूर करनेमें चरखा कहाँतक सहायक हो सकता है, इसका जिक्र मैंने अन्यत्र किया है। यह अपने-आपमें एक स्वतन्त्र प्रयोग है। परन्तु इससे जो अनुभव आचार्य राय तथा जैसा कि वे उन्हें मानते हैं उनके दाहिने हाथ, सतीश बाबूने प्राप्त किया है, उसकी इतिश्री इस प्रयोगसे ही नहीं हो जाती। वे दोनों रसायनशास्त्री हैं। उनका वैज्ञानिक मस्तिष्क उन्हें इस बातकी छानबीन करनेको मजबूर करता है कि बंगालके किसानोंको सदाके लिए बतौर एक सहायक धन्धेके चरखा और खद्दर किस हदतक उपयोगी हो सकता है। एक छोटा-सा प्रयोग बढ़ते-बढ़ते एक बड़ी संस्था — खादी प्रतिष्ठान — के रूपमें परिणत हो गया है। बंगालके कितने ही हिस्सोंमें उसकी शाखायें खुल गई हैं तथा और भी खोले जानेका विचार है। उसका उद्देश्य शुद्ध खादीका निर्माण और उसका विक्रय करना है। उसका उद्देश्य यह भी है कि पुस्तकों आदिके प्रकाशन और मैजिक लैंटर्नके प्रयोग सहित व्याख्यानोंके द्वारा खादी और चरखेको लोकप्रिय बनाया जाये। अपेक्षाकृत अधिक स्थायी बनानेके

लिए, उसे एक सार्वजनिक ट्रस्टका रूप दे दिया गया है। मेरे सामने ट्रस्टका दस्तावेज और उसके आय-व्ययका लेखा मौजूद है। मैं इन बातोंका जिक्र यहाँ इसलिए करता हूँ कि मैंने पबनाकी एक सभामें एक सज्जनसे वादा किया था कि मैं 'यंग इंडिया' में प्रतिष्ठानके कामका जिक्र करूँगा। खादी-प्रतिष्ठानके चरखेको मैंने बंगालमें प्राप्य चरखोंमें सर्वोत्तम पाया है और इसलिए उसे समूचे बंगालके लिए उपयुक्त बताया है। उसमें सुधार करनेकी कोशिश भी की जा रही है। एक महाशयने खादी-प्रतिष्ठानकी खादीके महँगे होनेकी शिकायत की थी। मैंने उनसे वादा किया था कि मैं इस शिकायतकी निस्बत 'यंग इंडिया' में लिखूँगा। एक अर्थमें यह इल्जाम सही कहा जा सकता है। खयाल यह है कि खादी बड़ेसे-बड़े पैमानेपर तैयार हो और चरखा प्रत्येक घरमें चले; ट्रस्टके संस्थापकगण खद्दरको स्वावलम्बी और सूतको अच्छी किस्मका बनाना चाहते हैं। इसलिए उन केन्द्रोंमें भी जो खादी-उत्पादनके अनुकूल नहीं है, उसी व्यवस्थाके अन्तर्गत काम होना चाहिए। इस प्रकार व्यवस्थापकगण तमाम खादी इकट्ठी करके, औसत निकालकर खादीकी कीमत निश्चित कर सकते हैं। इससे हम इस नतीजेपर पहुँचते हैं कि केवल वे ही लोग खादी-प्रतिष्ठानसे सस्ती खादी बेच सकते हैं जो अनुकूल केन्द्रोंमें काम करते हों। फिलहाल तो खादीकी बिक्रीकी चिन्ता नहीं है; क्योंकि जो-कुछ थोड़े केन्द्र अभी शुद्ध खादी तैयार करते हैं उनके ग्राहक ऐसे बने-बनाये हैं कि जो कीमत आदिकी परवाह नहीं करते। प्रतिष्ठान अब भी घाटा उठाकर खादी बेच रहा है, पर वह घाटेको कमसे-कम करनेकी कोशिश कर रहा है। वह हमेशा ही दानके बलपर नहीं चलाया जा सकता। प्रतिष्ठान द्वारा बेची जानेवाली खादीकी कीमत कम करनेकी कोशिश हर तरहसे की जा रही है, इस बातके बारेमें मैं आश्वस्त हूँ। और यह बात हर शख्स जानता है कि प्रतिष्ठानमें किसीका कोई निजी स्वार्थ नहीं है। उसके मुख्य कार्यकर्त्ता तो रोजी अलगसे कमाते हैं और गाँठका खाकर उसमें काम करते हैं। उन्होंने प्रतिष्ठानको अपना जीवन ही अर्पित कर दिया है। अबतक मैंने खादी-उत्पादनके ५ और सुसंगठित केन्द्रोंका निरीक्षण किया है। वे ये हैं — कोमिल्लामें अभय आश्रम, मलिकन्दामें डॉ० प्रफुल्लचन्द्र घोषका आश्रम, चटगाँवमें प्रवर्तक संघका, पबनामें सत्संग आश्रम और दुआडंडू खादी केन्द्र। इस आखिरी आश्रमको मैं खुद नहीं देख पाया, पर उसके मुख्य कार्यकर्त्ताओंसे हुगलीमें मिला हूँ, उनकी खादी देखी है और उनके कामका हाल भी सुना है। प्रवर्तक संघ अबतक अर्ध-खादी अर्थात् मिलावटवाली खादी भी तैयार करता रहा है। पर अब जहाँतक चटगाँवका सम्बन्ध है, उसने केवल शुद्ध खादी ही रखनेका निश्चय कर लिया है। कुटियाण्डु नामक जगहमें तो वे प्रयोग शुरू कर ही चुके हैं, परन्तु व्यवस्थापकोंने सारे चटगाँव जिलेके लिए आखिरी निर्णय, मेरी यात्राके समय किया है। उनके कलकत्ता भण्डारमें तथा मुख्य कार्यालय चन्द्रनगर तथा कलकत्ता-स्थित भण्डारमें अभीतक अर्ध-खादी है। पर वे जितनी जल्दी हो सके इस अर्ध-खादीको समाप्त कर देना चाहते हैं। वे इस सिद्धान्तको कुबूल करते हैं कि अर्ध-खादीसे खादी आन्दोलनको लाभ नहीं होता। ये सब संस्थाएँ अच्छा काम कर रही हैं। कांग्रेसकी संस्थाओंके द्वारा भी

कहीं-कहीं कुछ काम हो रहा है। मैं तो इन तमाम संस्थाओंके कामको, यद्यपि नामसे नहीं पर भावरूपमें, कांग्रेसका ही काम मानता हूँ। जरूरत इस बातकी है कि तमाम बिखरी हुई शक्तियां एक सूत्रमें बँध जायें जिससे समय, बुद्धि, शक्ति, और धन कम खर्च हो। इन संस्थाओंके अध्यक्ष आपसमें मिलें, अपने अनुभवोंका आदान-प्रदान करें और एक संयुक्त कार्यक्रम बना लें। और यह काम समयपर ही होना चाहिए। सवाल यही है कि इसमें जल्दी की जा सकती है या नहीं। खादी-प्रतिष्ठानको एक लाभ यह है कि उसके पास ऐसे लोग हैं जिन्होंने अपनेको चरखा-प्रचारके लिए ही अर्पित कर रखा है। उसके पास बड़े व्यवस्था-पटु लोग हैं। एक विख्यात् व्यक्तिका नाम उसके साथ जुड़ा हुआ है। इसलिए उसके पास विस्तारके लिए असीम गुंजाइश है। इसीलिए मैं आमतौरपर सारे भारतका और खास तौरपर बंगालका ध्यान उसकी ओर दिला रहा हूँ। मैं समालोचकोंको आमन्त्रित करता हूँ कि वे उसकी जाँच-पड़ताल करें और जो कमियां दिखाई दें उनको प्रकट करें। और सहानुभूति रखनेवालोंसे मेरा कहना यह है कि वे उसके हिसाब-किताबको देखें—जो कि खुली पुस्तक है— और उसकी सहायता करें। जो लोग उदासीन हैं, उनसे मेरा निवेदन है कि वे अपनी उदासीनता छोड़ें, उसके कामकाजका अध्ययन करके या तो उसका विरोध करें या उसकी सहायता करें। एक विज्ञानवेत्ताकी हैसियतसे आचार्य रायकी कीर्ति सारे संसारमें व्याप्त है। परन्तु उनके लाखों देशवासी उन्हें न तो उनके बनाये उम्दा साबुनकी बदौलत और न उनके द्वारा कितने ही बंगाली नवयुवकोंके लिये जुटाये गये जीविकाके साधनोंकी बदौलत जानेंगे—वे उन्हें जानेंगे उस प्रकाश और सुखकी बदौलत जो, उनका खादीका काम लाखों लोगोंके टूटे-फूटे झोंपड़ोंमें पहुँचा सकता है। परमात्मा करे यह संस्था उस विशाल वटवृक्षकी तरह हो, और उन तमाम छोटी-छोटी संस्थाओंकी आश्रयदाता बन जाये जो उससे सहायता और रहनुमाईकी अपेक्षा रखते हों। रासायनिक कारखाने निश्चय ही महान् हैं। पर खादी-प्रतिष्ठान उनसे भी बढ़कर है, क्योंकि इसकी जड़ देशकी भूमिमें है। कहीं बाहरसे लाकर उसकी कलम नहीं लगाई गई है। उसे पनपानेके लिए और भी एहतियातकी जरूरत है। अगर उसे एक विशाल राष्ट्रीय संस्था बनना है तो उसके कार्यकर्त्ता अपने सर्वोत्तम गुणों और अपनी शक्तियोंको जाग्रत करके उसमें लगा दें। परमात्मा करे वह तमाम आशाओंको पूरा करे जिसके आसार मुझे अभीसे दिखाई दे रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-६-१९२५

११०. टिप्पणियाँ

निराधार अभियोग

मैंने शिकायत सुनी है कि बंगालमें कांग्रेसजनोंने अर्थात् स्वराज्यवादियोंने चरखे-की हत्या ही कर डाली है। किन्तु उनपर यह आरोप निराधार है। एक तो चरखा बंगालमें मरा ही नहीं है, दूसरे चरखेकी प्रवृत्तिमें यदि कुछ रुकावट आई भी है तो स्वराज्यवादी उसके लिए उतने ही जिम्मेदार हैं, जितने किसी दूसरे दलके लोग। मैं तो उलटा यह कुबूल करता हूँ कि कताई-प्रदर्शनोंको सफल बनानेमें हर जगह स्वराज्य-वादियोंने सहयोग दिया है। उन्होंने उनकी व्यवस्था करनेमें तथा सूत कातनेमें योग दिया है। कुछ स्वराज्यवादी तो अपने सारे परिवार-सहित उनमें उत्साहसे भाग लेते हैं। मैं अपने फरीदपुरके मेजवान बिश्वास बाबूके सम्बन्धमें पहले ही लिख चुका हूँ। उनकी धर्मपत्नी और बच्चे सब चरखेके प्रेमी हैं। वे अपने परिवारके उपयोगके निमित्त आवश्यक खादी बनानेके लिए सूत कातते हैं। श्री वसन्तकुमार मजूमदारकी धर्मपत्नी भी सूत कातनेमें बहुत उत्साह दिखाती है। उन्होंने कोमिल्लामें एक भारी प्रदर्शनकी व्यवस्था की थी। दीनाजपुरके जोगेनबाबू खुद नियमित रूपसे सूत कातते हैं। उनके परिवारको सफाईके साथ सूत कातते हुए देखकर एक विशेष प्रकारके आनन्दका अनुभव होता था। वास्तवमें दीनाजपुरका कताई-प्रदर्शन सर्वोत्तम था। मैं और भी ऐसी मिसालें दे सकता हूँ। हाँ, यह बात सच है कि चरखेमें स्वराज्यवादियोंकी श्रद्धा उतनी नहीं है जितनी, उदाहरणार्थ, मेरी है। और यह बात उन्होंने छिपाई भी नहीं है। यदि रचनात्मक कार्यक्रमपर उनका पूरा और पक्का विश्वास होता तो वे कौंसिलोंमें जाते ही नहीं। उनकी स्थिति बेहद सीधी-सादी है। उनका रचनात्मक कार्यक्रममें और चरखेमें विश्वास है। उनका विश्वास यह भी है कि उसके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। पर साथ ही वे यह भी मानते हैं कि कौंसिलों तथा उन दूसरी तमाम प्राति-निधिक और अर्ध-प्रातिनिधिक सस्थाओंपर भी कब्जा कर लेना चाहिए, जिनके द्वारा सरकारपर दबाव डाला जा सकता है। उन्होंने यह रुख सचाईसे ग्रहण किया है। और इसके बारेमें कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। कमसे-कम मेरी राय में तो बंगालके स्वराज्यवादी अपने विश्वासके अनुसार काम कर रहे हैं।

नीति-भ्रष्टता

स्वराज्यवादियोंपर नीति-भ्रष्टताका आरोप भी लगाया जाता है। उनके कार्योंकी चर्चा करते हुए यहाँ उसपर भी विचार कर लेना ठीक होगा। कुछ प्रसिद्ध समाज-सेवकोंने आकर मुझसे कहा, सावधान रहें; आप कहीं स्वराज्यवादियोंके हाथकी कठ-पुतली न बन जायें। उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि मैं बंगालके राजनैतिक जीवनको निर्मल बनानेमें अपने प्रभावका उपयोग करूँ। मैंने उनसे कहा कि मुझे इन आरोपोंपर विश्वास करनेका कोई कारण नहीं दिखाई देता। परन्तु यदि आप नाम-धाम और सबूत

दे तो मैं खुशीसे आरोपोंकी जाँच करूँगा और यदि वे सच निकलेंगे तो बिला झिझक दलकी निन्दा करूँगा। मैंने उनसे यह भी कहा कि मैंने पहले भी ये आरोप सुने हैं। मैंने उनकी ओर देशबन्धु दासका ध्यान खींचा भी था। उन्होंने मुझे यकीन दिलाया कि उनमें सत्यांश नहीं है और कहा, यदि आपको खबर देनेवाले लोग बुराई और अपराधियोंके नाम-ग्राम बतायेंगे तो मैं जरूर उनकी जाँच कराऊँगा। उन्होंने मुझसे कहा कि आम तौरपर ऐसा कहा जाता है; लेकिन हर मामलेमे कानूनी सबूत देना सम्भव नहीं। मैंने उनसे कहा कि इस अवस्थामें तो हमें इसी सुवर्ण-सूत्रका पालन करना चाहिए कि जिस आरोपको सिद्ध नहीं किया जा सकता, हम उसमें विश्वास न करें; नहीं तो किसी भी सार्वजनिक कार्यकर्त्ताकी कीर्ति सुरक्षित न रहेगी।'

उस बातचीतके बाद मैं इन अभियोगोंकी सब बातें भूल गया था। पर चाँदपुरमें हरदयाल बाबूने उसी बातको पूरे जोरसे उठाया।[1] मैंने उनकी बातोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया; वे भी मुझसे यह उम्मीद नहीं रखते थे। यद्यपि मैं और हरदयाल बाबू एक ही विचारधाराके माननेवाले हैं तथापि देशसेवकों और सार्वजनिक कार्योंको देखनेके मेरे और उनके तरीके जुदा-जुदा हैं। मेरे असहयोगके मूलमें, थोड़ा भी निमित्त हो तो तीव्रसे-तीव्र विरोधीसे सहयोग करनेकी तैयारी रहती है। मैं एक अपूर्ण मर्त्य प्राणी हूँ, और ईश्वरके अनुग्रहपर अवलम्बित रहता हूँ; मेरे नजदीक कोई आदमी ऐसा नहीं जो दोषमुक्त न हो सके। हरदयाल बाबूके असहयोगके मूलमें भीषण अविश्वास और सहयोगकी ओरसे परावृत्त होनेकी वृत्ति है। उन्हें बड़े-बड़े प्रमाणोंकी आवश्यकता है, जबकि मेरे लिये केवल एक संकेत ही काफी है।

पर फिर यह आरोप मेरे सामने एक ऐसे मनुष्यने उपस्थित किया, जिससे उसकी कोई उम्मीद न थी। मेरे कान खड़े हो गये और मैंने संजीदगी अख्त्यार की। मैंने कुछ साधारण-सी पूछताछ शुरू की। पर मेरे कलकत्ता पहुँचनेपर स्वराज्य-दलके मुख्य 'सचेतक' बाबू नलिनी सरकार, बाबू निर्मलचन्द्र, बाबू किरणशंकर राय और बाबू हीरेन्द्रनाथ दासगुप्ताने मेरी चिन्ता दूर कर दी। उन्होंने मेरे पास आकर अपने आप कहा कि वे स्वराज्य-दलकी तमाम कार्रवाइयोंके सम्बन्धमें मेरे सवालोंके जवाब देनेके लिए तैयार हैं। तब मैंने उन तमाम आरोपोंका जिक्र किया, जो मैंने सुने थे। उन्होंने जो बातें मुझसे कहीं, उनसे मुझे पूरा सन्तोष हो गया। उन्होंने तो यह भी कहा, आप और भी जाँच करें और हमारी बहियाँ भी देखें। पर मैंने कहा, जबतक इन आरोपोंके सम्बन्धमें और ज्यादा पक्की जानकारी पेश न की जाये तबतक मैं बहियोंकी जाँच नहीं कर सकता। फिलहाल तो आरोप ही आरोप हैं, उनका सबूत नहीं है। उन्होंने मुझसे कहा कि घूस लेने और नीतिभ्रष्ट होनेके आरोपमें सत्यका अंश भी नहीं है।

मैं उन लोगोंसे, जो जल्दीसे दोषारोपण कर बैठते हैं, प्रार्थना करता हूँ कि वे अपने प्रतिपक्षियोंके सम्बन्धमें जो बातें सुनें उनपर विश्वास न करें। क्या हम नहीं जानते कि खुद सरकारके खुफिया विभागकी कही हुई बातें किस हदतक गलत निकली हैं? क्या हम नहीं जानते कि खुफिया पुलिस बहुत दिनोंतक रानडे और गोखलेतक

१. देखिए "भेंट: हरदयाल नागसे", १२-५-१९२५ से पूर्व।

के पीछे लगी रहती थी। क्या आप नहीं जानते कि स्व० सर फीरोजशाह मेहता और यहाँतक कि सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीतक पर लांछन लगाये गये हैं? भारतके पितामह ——दादाभाई नौरोजी——तक अपवादसे नहीं बचे थे। लन्दनमें एक सज्जनने मुझसे उनके बारेमें ऐसी बातें कही और मुझसे अनुरोध किया कि मैं कमसे-कम उनके बारेमें उन महान् देशभक्तके, जिन्हें मैं पूजता था, पास जाऊँ और पूछूँ। मै बहुत डरते-डरते और काँपते-काँपते उनके पास गया। मै उनके चरणोंके पास जाकर बैठ गया। मुझे याद है, मैंने उनकी सौम्य मूर्तिकी ओर देखते हुए बड़े संकोचसे पूछा कि जो बात कही गई है वह कहाँतक सही है। उनका दफ्तर ब्रिक्सटनमें एक मकानकी सबसे ऊपरी मंजिलके एक मामूलीसे कमरेमें था। मैं उस दृश्यको कभी नहीं भूलूँगा। मै जब लौटा तो इस भावको लेकर कि वह आरोप एक बिलकुल ही मिथ्या लांछन था। अली भाइयोंपर भी तो लोगोंने 'स्वार्थ-साधन और विश्वासघात' के आरोप लगाये थे। यदि मै उनपर विश्वास करता तो मेरा क्या हाल होता? पर मै तो जानता हूँ कि अलीभाई विश्वासघात और नीतिभ्रष्टतासे परे हैं। अभी जो मतभेद हममें हैं, वे हममें फूट डालनेके लिए काफी हैं। तब फिर हम अपने प्रतिपक्षियोंपर लगाये गये नीचताके निराधार आरोपोंको झट सत्य मानकर उन्हें तीव्रतर क्यों करें? मै समझता हूँ कि सच्चे मतभेद बिलकुल न्यायोचित ही होते हैं। तब हमें अपने प्रतिपक्षियोंको भी अपने ही समान देशभक्त और सद्भावी मानकर उनका सम्मान करना चाहिए। एक सज्जनने तो, जिन्होंने मुझसे स्वराज्यवादियोंकी नीति-भ्रष्टताकी बात कही थी, मुझसे यह भी कहा कि यह सच होते हुए भी बंगालमें चित्तरंजन दासके सिवा कोई नेता नहीं है। देशमें सेवाके इतने क्षेत्र हैं कि हर शख्सके लिए सेवाकी काफी गुंजाइश है। जहाँ सब लोग सेवा ही करना चाहते हैं तब वहाँ ईर्ष्या-द्वेषको स्थान कैसे हो सकता है? मैं तो विश्वास रखनेका कायल हूँ। विश्वाससे विश्वास पैदा होता है। सन्देह एक सड़ी-गली चीज है और उससे केवल बदबू ही पैदा होती है। जिसने विश्वास किया है, वह दुनियामें कभी पथभ्रष्ट नहीं हुआ; जबकि सन्देह-ग्रस्त मनुष्य न अपने कामका रहता है और न दुनियाके कामका। अतएव जिन लोगोंने अहिंसाको अपना धर्म माना है वे चेत जायें और अपने प्रतिपक्षियोको शककी नजरसे न देखें। सन्देह हिंसा ही का सगोत्री है। अहिंसामें तो विश्वास किये बिना काम ही नहीं चलता। सो जबतक पूरा-पूरा सबूत न मिले तबतक मुझे किसीके भी खिलाफ कही हुई बातोंको सच माननेसे इनकार करना ही चाहिए और मेरे सम्मान्य साथियोके खिलाफ कही गई बातोको माननेसे तो और भी ज्यादा। पर हरदयाल बाबू कहेंगे, 'तब क्या आप चाहते हैं कि हम अपने देखे-सुने सबूतको सच न मानें?' मैं कहता हूँ, हाँ और नहीं। मै ऐसे लोगोंको भी जानता हूँ जिनकी आँखों और कानोंने उन्हें धोखा दिया है। वे सिर्फ उन्ही बातोंको देखते और सुनते हैं जिन्हें वे देखना और सुनना चाहते हैं। मै उनसे कहता हूँ, यदि आपको अपने मतके विपरीत निष्पक्ष प्रमाण मिले तो उस अवस्थामें आप अपनी आँखों और अपने कानोंपर भी विश्वास न करें। फिर भी जिन लोगोंने कोई बात देखी है, सुनी है और जानी है और जो उसकी

सचाई दूसरोंके सम्मुख सिद्ध नही कर सकते, उन्हें अपने ही विश्वासपर दृढ रहना चाहिए, भले ही सारी दुनिया उनके खिलाफ हो। मैं उनसे सिर्फ इतना ही आग्रह करूँगा कि वे जरा उन लोगोंके प्रति सहिष्णुता रखें जो मेरी तरह सच्ची बात जाननेके लिए उत्सुक होते हुए भी उसे उसी तरह नही देख पाते जिस तरह दूसरे लोग उसे देखते हैं। स्वराज्यवादियोंपर नीति-भ्रष्टताका जो आरोप लगाया जाता है उसकी निस्वत अभीतक मुझे यकीन नही हो पाया है। और जो लोग इसके खिलाफ विश्वास रखते हैं उन्हें चाहिए कि वे जबतक मुझे कायल नही कर लेते, मेरे प्रति सहिष्णुता दिखायें।

चरखेसे फांसी पसन्द

बंगालमें एक जगह विद्यार्थियोसे बाते हो रही थी। एकने कहा — 'आप जानते हैं, हम सूत क्यों नहीं कातते? चरखेमें कोई आवेश देनेवाली बात नही है। हमारी शिक्षाने हमें सूत कातने-जैसे कामोके अयोग्य बना दिया है। हममें बहुत-से लोग सूत कातनेसे मर जाना बेहतर समझते हैं। फांसीपर चढ़कर मरना तो हम खुशी-खुशी कबूल कर सकते है; पर हमारे लिए सूत कातना नामुमकिन है। हमें कोई ऐसी वस्तु दें जो भव्य हो। हम लोग विलक्षणताके प्रेमी हैं। चरखेमें यह बिलकुल ही नहीं है।' मैंने उस विलक्षणताके प्रेमी मित्रसे कहा कि चरखेमें जितना आप समझते है, उससे कही ज्यादा विलक्षणता है। जिस बंगालने बोस और राय उत्पन्न किये हैं आप उसपर अव्यावहारिक और स्वप्नदर्शीके अर्थमें विशुद्ध विलक्षणतावादी होनेका दोष क्यो लगाते है? मैंने उनसे कहा कि जो चरखा न कातनेके लिए कोई-न-कोई बहाना निकाल लेते हैं, वे सचमुच देशके प्रेमी नही हैं। यदि किसीके बच्चेकी मौतसे रक्षा की जा सकती हो तो क्या वह हास्यास्पद होनेपर भी वैद्योके निर्देशोका पालन न करेगा? मै और मेरे श्रोतागण इस बातको तो मानते है कि भारतके लाखो लोग मौतके मुँहमें जा रहे हैं और चरखा ही उनकी घोर कष्टमय दरिद्रताकी समस्याको हल कर सकता है। निश्चय ही मेरी बंगाल-यात्रामें अत्यन्त आश्चर्यजनक और आनन्द-दायक अनुभव यह हुआ है कि वहाँ किसी भी दलकी तरफसे कताईका विरोध नही किया गया। मुझसे जो लोग मिलनेके लिए आये, मैंने उनसे कहा कि यदि उनका विश्वास चरखेमें न हो तो वे उसका विरोध करें। पर तीन आदमियोके अलावा, मैंने जिनके तर्कोंका उत्तर कुछ दिन पूर्व दिया था, किसीने विरोध नही किया है। और मेरा विरोध करनेवाले वे तीन आदमी भी खादी पहने हुए थे। मैं जहाँ भी गया वहाँ कार्यक्रममें कताई-प्रदर्शन खासतौरसे रखे जाते थे। इनमे बड़े-बड़े जमीदारो और वकील-बैरिस्टरोको छोटे-छोटे बच्चोके साथ बैठकर सूत कातते हुए देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। ऐसी अवस्थामें वह विलक्षणता-सम्बन्धी आक्षेप निराधार था। यह दुर्भाग्यकी बात है कि मामूली विद्यार्थियोमें परीक्षाको छोड़कर अन्य बातोंमें उद्योगकी कोई प्रवृत्ति ही नहीं होती। उन्हें परीक्षामें पास होनेके प्रमाणपत्रकी अपेक्षा देशके प्रति सच्चे प्रेमसे उद्योगकी अधिक प्रेरणा मिलनी चाहिए। ज्यामितिके कठिन प्रश्नोको हल करनेमें या अंकगणितके लम्बे-लम्बे जोड़ और गुणावाले सवाल करनेमें जितनी विलक्षणता है, उतनी ही विलक्षणता सूत कातनेमें भी है। यदि बंगाली विद्यार्थी अपनी परीक्षाओंके विषयमें

विलक्षणताके अभावकी दलील पेश नहीं करते तो चरखेके लिए उसे पेश करनेका तो और भी कम कारण है; क्योंकि सूत कातना राष्ट्रके भरण-पोषणके लिए उतना ही आवश्यक है जितनी आवश्यक किसी व्यक्तिके भरण-पोषणके लिए परीक्षा हो सकती है।

'चीनसे भूमध्य सागरतक'

एक बड़े अच्छे पुराने मुसलमान मित्र मुझे मेमनसिंहमें मिले और हमारी बातचीतमें कुदरती तौरपर खद्दरकी चर्चा चल पड़ी। मैंने कहा कि आपने खादी नहीं पहनी है और फिर विनयके साथ पूछा कि आपका विश्वास खादीमें है या नहीं? उन्होंने कहा, "हाँ, अवश्य है।" तब मैंने उन्हें अपनी खादीकी व्याख्या समझाई। लेकिन उससे कुछ भी फायदा न हुआ। मित्रने पलटकर कहा, "आप समझ सकते हैं, मैं स्वदेशीका संकुचित अर्थ नहीं करता। मेरे लिए चीनसे भूमध्यसागरतक फैले देशोंमें बना कपड़ा खद्दर है।" मैंने उन्हें यह समझानेकी बहुत कोशिश की कि उनका पहला फर्ज हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोके प्रति है, जिनसे उन्हे अपनी आजीविका प्राप्त होती है। हिन्दुस्तान अपने लिए तमाम कपड़ा तैयार करनेमें समर्थ है और करोड़ों लोग खेतीके साथ कोई सहायक उद्योग न होनेके कारण भूखों मर रहे है; किन्तु उनकी समझमें मेरी बात नहीं आई। वे [वर्डस्वर्थकी] लूसीकी तरह पूर्ण आत्म-सन्तोषके साथ अपनी ही बातपर जमे रहे। वे पहले ही से एक खयाल बनाये बैठे थे; इसलिए उनपर किसी भी दलीलका कोई असर न पड़ सका। यदि मैं उनसे यह कहता कि अंग्रेजी उपनिवेशोके लोगोंने दूसरे उपनिवेशोंसे और इंग्लैंडसे भी, यद्यपि उनमें उन्हीके सजातीय और सहधर्मी रहते थे, अपने व्यापारकी रक्षा बड़े-बड़े कर लगाकर की थी और प्रत्येक मनुष्यका स्वभावतः यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह दूर रहनेवाले मनुष्यकी अपेक्षा अपने पड़ोसी ही की सेवा प्रथम करे तो भी परिणाम वही होता। फिर मुझे अवकाश भी न था। हम फिर मिलनेका निश्चय करके जुदा हुए। उन्होंने मानो अपनी बात-पर जोर देनेके लिए और फिर भी यह दिखानेके लिए कि मतभेद होनेपर भी हम लोग मित्र हैं, मुसकराते हुए मेरे कार्यको आगे बढ़ानेके लिए मेरे हाथमें कुछ रुपये रखे; लेकिन वे इस बीच भी चीनसे भूमध्य सागरतक का सूत्र ही दुहराते रहे। यदि उन्हें यह पढ़नेका मौका मिले तो मैं कहना चाहता हूँ कि यदि ज्यादा लोग उनके सिद्धान्तके अनुसार चलें तो कई सहस्र मुसलमान बहनें, जो आज बंगालमें सूत कातकर अपने परिवारकी आमदनीमें कुछ वृद्धि कर लेती हैं, अपने अत्यल्प आय-साधनोंमें यह आवश्यक वृद्धि नही कर सकेंगी।

सिन्धकी उदासीनता

एक गुजराती महाशय लिखते हैं, मैंने कराचीमें कुछ गुजराती लोगोको खादी पहने देखा। वहाँ श्री रणछोड़दासकी देखभालमें स्त्रियोंको कताई सिखानेका भी प्रबन्ध है; परन्तु खुद सिन्धियोंमें खादी नहीके बराबर या बहुत कम खादी देखी। वे यह भी लिखते हैं कि हैदराबादमें इने-गिने कांग्रेसजनोंके सिवा किसी भी सिन्धीके बदन-पर खादी दिखाई नहीं देती। यह आश्चर्यकी बात है; क्योंकि सिन्धमें बहुत अच्छे

और सच्चे खादीभक्त हैं। इनका कारण यही हो सकता है कि हिन्दू आमिल लोग इतने अधिक पढ़-लिख गये हैं और उन्होंने यूरोपीय तौर-तरीकोंको इतना अपना लिया है कि चरखेके सीधे-सादे सन्देशपर उनका विश्वास नहीं जमता। दूसरे भाई तो अपने विदेशी रेशमके व्यापारमें इतने व्यस्त हैं कि उन्हें खादीकी बात सोचनेकी फुरसत ही नहीं है; तथा मुसलमानोंपर राष्ट्रीय भावनाका अभी इतना प्रभाव हुआ नहीं है कि वे हिन्दुस्तानसे सम्बन्ध रखनेवाली किसी बातको समझें-सराहें। खादीके लिए सिन्ध-जैसे प्रतिकूल वायुमण्डलमें भी जो कुछ लोग खादी पहनने और सूत कातनेका आग्रह रख रहे हैं वे स्तुत्य हैं। मुझे इस बातमें जरा भी शक नहीं कि यदि उनकी श्रद्धा इस अग्नि-परीक्षाके बाद कायम रही तो उसका प्रभाव उच्च और 'सभ्य' आमिलोंपर, अपने ही काममें मगन भाइयोंपर और राष्ट्रीय भावनामें हीन मुसलमान बिरादरोंपर अवश्य ही पड़ेगा।

कुर्गमें खद्दर

एक पत्र-लेखकने लिखा है:

> मौजूद खादी-भण्डार केवल दो महीने पहले खोला गया था, उसके लिए शुद्ध खादी हमें तमिलनाड कांग्रेस कमेटीके तिरुपुर वस्त्रालयसे मिलती रही है। अबतक भण्डारने लगभग ५०० रुपयेकी खादी खरीदी और बेची है। इस क्षेत्रमें खादी फैल गई है। कुछ महीने पहले आपको हजारोंमें से भी काफी लोग खादी पहने हुए न मिलते। लेकिन अब कांग्रेस अधिवेशनके बाद आपको काफी प्रतिशत लोग खादी पहने मिलेंगे।
>
> इस समय चरखे खासी बड़ी संख्यामें चल रहे हैं। इस प्रदेशमें हाथ-कताईकी प्रगतिके लिए एक मजबूत समिति बना दी गई है।

सभी नये केन्द्र खोलनेवालोंका ऐसा ही सुखद अनुभव है। लेकिन कुछ समय बाद वे शिथिल-प्रयत्न हो जाते हैं। हमें आशा करनी चाहिए कि ज्यों-ज्यों समय बीतेगा, कुर्गसे अधिक अच्छे विवरण मिलते जायेंगे। किन्तु इसके लिए कार्यका संगठन सचाईसे करनेकी जरूरत है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-६-१९२५

१११. बाढ़-संकट-निवारण

यह मेरे लिए नामुमकिन था कि मैं बंगाल तो जाता, पर वहाँके बाढ़-पीड़ित प्रदेशको और उसमें आचार्य रायकी संकट-निवारण समितिके द्वारा किये जानेवाले कामको न देखता। मेरे लिए यह एक तीर्थ-यात्रा थी, क्योंकि एक तो आचार्य रायसे मेरा परिचय १९०१ से ही है और दूसरे, उन्होंने बड़ी सफलताके साथ यह दिखा दिया है कि चरखा किस तरह संकट-निवारणके लिए एक उपयोगी वस्तु है और भावी संकटके समय किस तरह बतौर एक बीमाके है। यदि देहातके लोगोंको यह बात भली प्रकार समझा दी जाये कि बाढ़ और अकालके मौकोंपर किन तरीकोंसे काम लिया जाना चाहिए और साथ ही वे खेतीके अलावा एक अन्य धन्धेकी भी आदत डाल लें — क्योंकि खेती तो बाढ़ या अकालके समय असम्भव हो जाती है — तो बहुतेरा समय, धन और परिश्रम, जो कि आम तौरपर ऐसे वक्तपर दरकार होता है, बच सकता है। यदि ऐसे मौकोंपर लोगोंको दान या चन्दोंपर जीवित रहना सिखाया जाता है तो एक तो वे अपना आत्मसम्मान खो बैठते हैं और दूसरे अपने अंगोंका उपयोग करना भूल जाते हैं। तब उनमें पस्तीकी भावना घर कर जाती है और अन्तमें उन लोगोंकी हालत पशुओंकी हालतसे भी बदतर हो जाती है। कुछ नहीं तो पशु जीते रहनेमें सुखका अनुभव तो करते हैं; परन्तु इन मनुष्योंको तो जीते हुए मरेके समान समझिए। ऐसी अवस्थामें मैं जितना हो सके खुद अपनी आँखोंसे यह देखना चाहता था कि इस चरखा-दीवाने रसायनाचार्यने बाढ़-पीड़ित प्रदेशोंमें राहत पहुँचानेकी दिशामें क्या काम किया है।

मैं पहले बोगूडा और वहाँसे तलोडा गया, जहाँ अपने उस प्रख्यात् देशवासीको मैंने उसके असली रूपमें देखा। उन्होंने कहा, 'यह कुटिया मेरी नजरमें उस आलीशान 'साइन्स कालेज'की अपेक्षा ज्यादा कीमती है। यहाँ मैं अन्य सब जगहोंसे अधिक शान्त और उद्वेगहीन रहता हूँ। और चरखा तो मुझपर अपना रंग दिनपर-दिन जमाता ही जा रहा है। पुस्तकोंके अध्ययनसे थके हुए दिमागको यहाँ खूब आराम मिलता है।' तलोडा एक छोटा-सा गाँव है, जहाँ संकट-निवारण समितिका एक केन्द्र है। समितिने कोई २० बीघा जमीन खरीदी है और बाँसकी झोंपड़ियाँ बनाकर उन-पर छप्पर डाल दिये हैं। आसपासका कुदरती दृश्य बड़ा रमणीय है। पूर्व बंगालमें फसली बुखारका बोलबाला है। प्रकृति अपने नियमोंके उल्लंघनका यह दण्ड दे रही है। मानवने इस भूखण्डको बुखारवाली भूमि तो बना दिया है, पर वह उसके प्राकृतिक सौन्दर्यको नष्ट नहीं कर पाया है।

इस विश्रान्तिदायक स्थानमें मैंने संकट-निवारण सम्बन्धी कामोंकी सारी गाथा सुनी। यहाँ जो अभिनन्दन-पत्र मुझे दिया गया उसमें एक भी स्तुतिवाचक विशेषण न था। उसके छः टाइप किये फूलस्केप पन्ने वस्तुस्थिति और आँकड़ोंके विवरणसे भरे पड़े थे। पाठकोंके लाभार्थ उनका सार यहाँ दिया जा रहा है:

सितम्बर १९२२ में राजशाही और बोगूड़ा जिलोंमें जबरदस्त बाढ आई। उसने उत्तरी बंगालकी कोई ४,००० वर्गमील जमीनको भारी नुकसान पहुँचाया। नुकसान कोई १ करोडका आंका गया था। पहली कठिनाई तो यह सामने आई कि संकट-निवारण-समितिकी व्यवस्था कैसे हो और उसके निमित्त काम करनेवाले जगह-जगह निर्मित अनेक दलोंको एक-सूत्रमें कैसे बांधा जाये। जिन्हे संकट-निवारणके कामोंका जरा भी ज्ञान है, वे जानते हैं कि खाली सेवा करनेकी इच्छा या केवल रुपयेसे ही काम नही चल सकता। उसके लिए ज्ञान और योग्यताकी भी जरूरत है और उसका प्राय: अभाव पाया जाता है। यथोचित कार्य-प्रणालीके द्वारा दो बुराइयाँ रोकी जा सकीं — एक तो एक ही काम दुबारा करना और दूसरे अकुशल प्रबन्ध। सारा बाढ-पीड़ित प्रदेश ५० केन्द्रोंमें बांट दिया गया था। इस विशाल संगठनके अध्यक्ष और कोई नहीं श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस थे, जो आज माण्डलेके किलेमें सम्राट्के मेहमान हैं। डॉ० इन्द्रनारायण सेनगुप्त उनके सहायक थे। इस समितिने २५,६०६ रुपयेका अनाज और ५५,२०० रुपयेके कपड़े बांटे। इसके अलावा ८०,००० छोटे थान, ७५,००० पुराने कुरते और जाकिटें बांटे सो अलग। उसने १,२७४ रुपयेका भूसा और ५२ वेगन चारा भी बांटा, जो उसे दानमें मिला था। समितिकी देखभालमें १०,००० झोंपड़ियाँ बनाई गईं। सामान गांववालोंको घर-घर पहुँचाया जाता था। मजदूरी-खर्च भी किस्तोंमें दिया जाता था। जब एक बार दी रकम खर्च हो जाती थी और उसकी जांच होकर सूचना आ जाती थी, तब दुबारा मजदूरी-खर्च दिया जाता था। निग-रानी इतनी कड़ी थी कि इतने बड़े काममें सिर्फ तीन बार क्रमश: — १,५०० रुपये, ३५० रुपये और २०० रुपयोंका गबन हुआ था किन्तु उसका भी पता फौरन लगा; लिया गया और रकम वसूल कर ली गई। झोंपड़ियोंकी बनवाईमें १,१२,७५५ रुपये खर्च हुए। कालिकापुरमें सूखी जमीन पुनः आबाद करनेके लिए बाँधकी बहुत बड़ी जरूरत थी। सच पूछिए तो यह काम था जिला-बोर्डका, पर वह उसका बोझ उठाने-में असमर्थ था। सो इस समितिने कोई एक मील लम्बा बाँध बाँधा, जिससे ६००० बीघा जमीनकी हिफाजत हो सकी। उसमें ५,७७५ रुपया खर्च हुआ। फिर धीरे-धीरे जब काम जम गया, समितिने गांववालोंको कुछ काम देनेकी तजवीज की। उसका मेहनताना उन्हे खाने और कपड़ेके रूपमें दिया गया। उन्हें धान कूटनेका काम दिया गया। कुछ धान प्रत्येक बाढ-पीड़ित कुटुम्बको दे दिया जाता था। वे लोग चावल कूटकर नियमित नियत-केन्द्रमें ले आते थे। हर कुटुम्बको यह अख्त्यार दे दिया गया था कि वह उसमें से नियत मात्रामें चांवल अपने खानेके लिए रख ले। ऐसे १४ केन्द्र चल रहे थे। इन केन्द्रोंसे ४ महीनोंतक २०,००० प्राणियोंको भोजन मिला। ५०,००० मन धानमें से २७,४०० मन चावल मिला। नागा किसीने नही किया। इस व्यवस्थामें ४३,००० रुपये खर्च हुए। खाने और कपडेके अलावा दवा-दारूकी भी खुलकर मदद की गई।

परन्तु समितिकी आकांक्षा इतनेसे ही पूरी न हुई। उसने कुछ स्थायी काम करके अपनेको जनता द्वारा दी गई रकमके योग्य बनाना चाहा। उसने लोगोंको ऐसे

कष्टके अवसरोंपर स्वावलम्वी और स्वाश्रयी बनाना चाहा। यहाँ मैं अभिनन्दन-पत्रकी भाषामें ही इस वातकी तफसील देता हूँ कि किस तरह उन लोगोंमें चरखेको दाखिल किया गया।[1]

यद्यपि ये परिणाम वहुत वढ़िया है, फिर भी पूरा प्रयत्न करनेपर जैसे परिणाम निकलनेकी सम्भावना है, उनको देखते हुए कुछ भी नहीं है। एक ऐसी अवस्था आ जायेगी जव कि रुई लोगोंके दरवाजे ले जानेकी जरूरत न रहेगी, वल्कि वे खुद ही रुई लेकर सामान्यतया अपना सूत वेचा करेंगे, जैसा कि वे वंगालके फेनी जिलेमें तथा पंजाव, राजपूताना और दूसरी जगहोंके कितने ही गाँवोंमें कर रहे हैं। चरखेका संगठन मुझे इतना कामिल नजर आता है कि मुझे इस काममें पूर्वोक्त दिशामें तरक्की करनेके मार्गमें किसी वाधाका अन्देशा नही मालूम होता।

इस प्रयोग द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकताकी सच्ची प्रगति भी दिखाई देती है। एक मुख्यत: हिन्दू लोगोंका संगठन मुख्यत: मुस्लिम लोगोंकी वस्तीको इमदाद कर रहा है — महज उनकी माली हालत दुरुस्त करनेके लिए। उसमें मुसलमान कार्यकर्त्ता भी हैं जिन्हें कभी यह खयाल भी होने नहीं दिया जाता कि वे हिन्दू कार्यकर्त्तासे किसी तरह कम उपयोगी है। और महज अपनी योग्यताकी वदौलत उनमें से दो कतैये सवसे ऊँचा स्थान प्राप्त किये हुए हैं। मुझे ३२ स्वयंसेवकोंको सूत कातते हुए देखनेका अवसर मिला था। सभी फी घंटा ४०० गजसे ज्यादा गतिसे कात रहे थे, परन्तु एक मुसलमान कतैयेने ७२० गज फी घंटेकी गतिसे काता। मैं यह भी वता देना चाहता हूँ कि इन स्वयंसेवकोंको कताई वाजार भावसे दी जाती है। सतीशवावूने — जिनकी योजना-शक्तिकी वदौलत यह सारा संगठन हुआ है — मुझसे कहा है कि तजुरवेसे मालूम होता है कि पूरा समय काम करनेवाले स्वयंसेवकोंको, यदि हम उनसे पूरी नियम-निष्ठा चाहते हों तो पूरा मेहनताना देना वेहतर रहता है। ६२ स्वयंसेवकोंको औसतन २५ रुपये मासिक हिसाबसे मेहनताना मिल रहा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-६-१९२५

१. यहाँ नहीं दिया गया है। उसमें इचमारगांव, तलोडा, चम्पापुर, दुर्गापुर और तिलकपुर नामक अकाल-पीड़ित स्थानोंमें चरखेके द्वारा पहुँचाई गई राहतका जिक्र था।

११२. एनी बेसेंटको लिखे पत्रका मसविदा[1]

४ जून, १९२५

प्रिय डा० बेसेंट,

आपके कृपापत्र मिले। आपका ज्ञापन[2] मैंने श्री गांधीको दिखा दिया है। वे यहाँ कल शाम आये थे। हम दोनों ही इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि आपके घोषणा-पत्रका मसविदा कुछ आवश्यक संशोधनोंके बाद हम दोनों ही व्यक्तिगत रूपसे स्वीकार कर सकते हैं, लेकिन श्री शास्त्री, श्री जिन्ना या पण्डित मालवीयजी इसे स्वीकार करेंगे, ऐसी कोई उम्मीद नहीं है और उन अन्य लोगोंकी स्थिति तो स्पष्ट ही है, जिन्होंने अपने-आपको सविनय अवज्ञाका कट्टर विरोधी घोषित कर दिया है। हम समझते हैं कि जबतक सभी दलोंमें हमारी माँगोंकी ठीक-ठीक शर्तों और माँगोंके ठुकराये जानेपर काममें लाये जानेवाले उपायोंके बारेमें स्पष्ट मतैक्य नहीं हो जाता, तबतक राष्ट्रीय माँगके रूपमें कुछ भी प्रस्तुत करना व्यर्थ होगा। हमारे रास्तेमें दूसरी कठिनाई यह है कि हिन्दुओं, मुसलमानों और ब्राह्मणों तथा अब्राह्मणोंमें कोई स्पष्ट मतैक्य नहीं है। इसलिए हमारा खयाल है कि अभी फिलहाल हमें अपना ध्यान व्यक्तिगत तौरपर ऐसे लोगोंको अपनी रायका बनानेमें लगाना चाहिए जिनकी बातको राष्ट्रीय मामलोंमें महत्त्व दिया जाता है। मैं अपनी योग्यताके अनुसार इसीका प्रयत्न कर रहा हूँ।

चूँकि मैं इतना सब तार द्वारा नहीं बता सकता था, इसलिए मैंने आपको तार द्वारा कोई निश्चित जवाब नहीं भेजा। कोई आशाप्रद जवाब न भेज सकनेका मुझे खेद है।

आपका,

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० १०६७४) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजीने चित्तरंजन दासकी तरफसे इसका मसविदा तैयार किया था और दासने हस्ताक्षर करके ५ जूनको इसे भेज दिया था। महादेव देसाईने लिखा है कि चित्तरंजन दासने अपनी पत्नीसे कहा, "यह जवाब तैयार करनेमें मुझे तीन दिन लग जाते, पर गांधीजीने इसे १५ मिनटमें तैयार कर दिया।"

२. 'कामनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल' से सम्बन्धित ज्ञापन, जिसका मसविदा डा० बेसेंटने तैयार किया था।

११३. पत्र : निशीथनाथ कुंडूको

[दार्जिलिंग][1]
६ जून, १९२५

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं अब उस विषयपर देशबन्धुसे बातचीत करनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

निशीथनाथ कुंडू
जिला कांग्रेस कमेटी
दीनाजपुर

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ८०२०) की फोटो-नकलसे।

११४. पत्र : नारणदास गांधीको

ज्येष्ठ सुदी ९ [६ जून, १९२५]

चि० नारणदास,

तुम्हारी ओरसे कोई खबर नहीं मिली। मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे अपना खादीके कार्यका विवरण हर मास भेजो। पाक्षिक भेजो तो और भी अच्छा।

ऐसा लगता है कि तुम भाई . . . के सम्बन्धमें कोई जाँच नहीं कर सके हो। अब तुरन्त करना। उसपर हिसाबमें गड़बड़ी करनेका आरोप है और व्यभिचारका आरोप भी है। व्यभिचारके सम्बन्धमें तो तुम क्या जाँच करोगे? इस विषयमें इतना ही कहूँगा कि तुम जब . . . जाओ तो अपनी आँखें खुली रखकर जाओ। हिसाबकी जाँच सावधानीसे करना, जिससे यदि वह प्रामाणिक हो तो मैं निर्भय होकर वैसा कह सकूँ।

तुम जानते ही हो कि मैं उनपर लगाये गये आरोपोंकी चर्चा 'नवजीवन' में कर चुका हूँ।

१. डाककी मुहरसे।

आशा है, तुम स्वस्थ होगे।
खुशालभाई और देवभाभीको दंडवत्।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६२९२) से।
सौजन्य: नारणदास गांधी

११५. भाषण: ईसाई धर्मप्रचारिकाओंके समक्ष[1]

६ जून, १९२५

मैंने आपका निमन्त्रण केवल इसीलिए स्वीकार किया था कि मुझे इससे आपके साथ बातें करनेका और जो बातें आपकी समझमें न आती हों उनको समझानेका भी अवसर मिलेगा। देशबन्धु, मैं और दूसरे लोग आज जिस प्रवृत्तिमें तन्मय होकर संलग्न हैं, वह आत्मशुद्धिकी प्रवृत्ति है। इससे मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि यह आन्दोलन राजनीतिक नहीं है। निस्सन्देह यह बहुत हदतक राजनीतिक है। किन्तु राजनीतिक क्या है और धार्मिक क्या है? क्या जीवनके ऐसे कोई एक-दूसरेसे बिलकुल ही अलग-थलग विभाग किये जा सकते हैं? समस्त प्रवृत्ति एक ही व्यक्ति द्वारा और एक ही स्थानसे संचालित होती है। यदि वह व्यक्ति और वह स्थान स्वच्छ और शुद्ध होंगे तो समूची प्रवृत्ति शुद्ध होगी; किन्तु यदि ये दोनों मलिन हों तो समूची प्रवृत्ति मलिन होगी। प्रवृत्तियोंमें इस प्रकारका भेद करना मुझे हास्यास्पद लगता है, क्योंकि इस सम्बन्धमें मेरा अनुभव भिन्न है। मैंने तो कभी ऐसा भेद किया नहीं। भिन्न-भिन्न दीख पड़नेवाली सभी प्रवृत्तियाँ एक-दूसरेकी पोषक बनकर मधुर जीवन-संगीत उत्पन्न करती हैं। धर्मविहीन राजनीतिसे दुर्गन्ध आती है और राजनीतिसे विच्छिन्न धर्म निरर्थक है। राजनीतिका अर्थ है लोककल्याणसे सम्बन्धित प्रवृत्ति। जो ईश्वरका साक्षात्कार करना चाहता है वह इस प्रवृत्तिके प्रति उदासीन कैसे रह सकता है? और चूंकि मैं ईश्वर और सत्यको एक ही मानता हूँ, इसलिए राजनीतिमें भी सत्यका प्रभुत्व स्थापित करनेकी मेरी इच्छा तो सदा बनी ही रहेगी।

ईसाके अनुयायियोंसे ईसाके ही आदेशको समझनेकी बात कहना तो काशीमें गंगाजल लेकर जानेके समान है। किन्तु स्वयं ईसाई न होनेपर भी, 'बाइबिल' के एक विनीत श्रद्धालु और सद्भावी अभ्यासीके रूपमें, मैंने 'बाइबिलके' "गिरिप्रवचन" में से जो सार निकाला है, उसे मैं आपके सम्मुख नम्रतापूर्वक रखना चाहता हूँ। यदि मैं ऐसा करते हुए अपने हृदयके विचार सचाईके साथ आपके सम्मुख न रखूं तो मैं आपको भाई और बहिन कहकर सम्बोधित करनेके अयोग्य हूँ। मैंने १९१६ में मद्रासमें पादरियोंके एक सम्मेलनमें भाषण[2] दिया था। इस समय वह मुझे याद आ रहा

१. यह भाषण दार्जिलिंगमें ईसाई धर्मप्रचारकों द्वारा संचालित भारतीय भाषा-विद्यालयमें दिया गया था।
२. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ २२१-२७।

है। उसमें मैंने कहा था कि पादरी सदा अपने धर्मके अनुयायियोंकी गिनती करते हैं, ऐसा करना बड़ी भूल है। आज धर्मपरिवर्तनकी प्रवृत्ति जिस प्रकार चलाई जा रही है, मुझे उसमें तनिक भी श्रद्धा नही है। इसका परिणाम कुछ लोगोंके लिए भले ही लाभदायक रहा हो; किन्तु उससे जो अनिष्ट हुआ है उसकी तुलनामें तो वह लाभ कुछ भी नही है। धर्म-सम्बन्धी तनातनीका कोई अर्थ नही होता। ईश्वर यह चाहता है कि जो बात हमारे हृदयमें हो वही होठोंपर रहे। आज हजारों ऐसे स्त्री-पुरुष हैं जो 'बाइबिल' या ईसाका नामतक नही जानते; किन्तु फिर भी वे 'बाइबिल' जाननेवाले तथा उसके दस आदेशोंका पालन करनेकी बातें करनेवाले ईसाइयोंकी अपेक्षा अधिक आस्तिक और धर्मभीरु हैं। धर्म कोई बातें बनानेकी चीज नहीं है। वह तो शूरवीरोंका मार्ग है। कोई मनुष्य किसी एक धर्मको छोड़कर दूसरा धर्म ग्रहण करते ही अच्छा बन जाता है, मेरी अल्प बुद्धि यह बात माननेको तैयार नही है। मै ऐसे अनेक भारतीय और जुलू लोगोंके उदाहरण दे सकता हूँ जो ईसाई तो बन गये है, किन्तु जिनके हृदयमें प्रेमकी या ईसाके बलिदानकी अथवा ईसाके सन्देशकी गन्ध-तक नही है।

इस सम्बन्धमें मुझे जोहानिसबर्गके श्री मरे नामके पादरीसे हुई अपनी बातचीत याद आ जाती है। एक मित्रने उनसे मेरा परिचय कराया था। उसको आशा थी कि मै ईसाई बन जाऊँगा। हम घूमने निकले, मार्गमें उन्होंने मुझसे कई प्रश्न पूछे और उलट-पलट कर जिरह की। काफी जिरह कर चुकनेके बाद उन्होने मुझसे कहा, 'नहीं भाई, मुझे आपको ईसाई नही बनाना है, बल्कि मै तो अब किसीको भी ईसाई नही बनाऊँगा।' उनकी यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी। उन्होंने यह भी माना कि ईसाके आदेशका जो अर्थ मैंने किया है, वह ठीक है। मैंने 'बाइबिलका'[1] उद्धरण देते हुए कहा, "जो मुँहसे प्रभु-प्रभु कहता है, उसे मुक्ति नहीं मिलती; मुक्ति उसे मिलती है जो प्रभुकी इच्छाके अधीन होकर प्रभु जैसा चाहता है, वैसा ही करता है। मुझे अपनी कमजोरियोका ज्ञान है। मैं उनसे संघर्ष कर रहा हूँ, अपने बलसे नही, बल्कि ईश्वरने मुझे जो बल दिया है उससे। क्या आप यह चाहते हैं कि मैं ईश्वरप्रदत्त बलके आधार-पर इस प्रकारका संघर्ष न करूँ और उसके बजाय तोतेकी तरह यह कहता रहूँ कि ईसाने मेरे पाप धो दिये है और अब मैं शुद्ध हो गया हूँ?" वे चौंक उठे और मुझे रोक कर बोले, "आप जो-कुछ कहते है वह मेरी समझमें आ गया।"

मै आज आपसे भी उतने ही भावावेशमें बात कर रहा हूँ जितने भावावेशमें मैंने उन मित्रसे बातचीत की थी, क्योंकि मै जैसे उनके हृदयका स्पर्श करना चाहता था, वैसे ही आपके हृदयको भी स्पर्श करना चाहता हूँ। आप धर्मपरिवर्तन किये गये लोगोंकी गिनती क्यो बढ़ाते रहना चाहते हैं, आप उनकी मौन सेवा क्यों नही करते? क्या आप मुझे यह बतायेंगे कि आप लोगोंका धर्मपरिवर्तन क्यों करना चाहते है? यदि आपके संसर्गमें आनेसे उनका जीवन निर्मल और उदात्त हो जाये और वे असत्य और अन्धकारका मार्ग छोड़कर सत्य और प्रकाशके मार्गपर आ जायें तो क्या इतना

१. सेन्ट मेथ्यू, ७, २१; २१, २८-३१।

काफी नही है? यदि आप एक निराश्रित बालकको सँभालें और उसे स्वयं खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने लायक बना दें तो इससे अधिक आपको क्या चाहिए? क्या आपके कामका इतना पुरस्कार पर्याप्त नही है? अथवा आप जिनकी सेवा करते हैं उनसे झूठ-मूठ ही यह कहलाना चाहते हैं कि "हम ईसाई बन गये हैं।" आज विभिन्न धर्मोंमें अपने अनुयायियोकी गिनतीके सम्बन्धमें होड़ लगी हुई है और वे आपसमें लड़ रहे हैं। इससे मुझे बहुत लज्जा आती है और जब मैं किसी मनुष्यके मुखसे उसका यह पराक्रम सुनता हूँ कि उसने अमुक सख्यामें लोगोका धर्मपरिवर्तन किया है तब मुझे लगता हैं कि यह तो कोई पराक्रम ही न हुआ; प्रत्युत यह तो ईश्वर और आत्माका तिरस्कार हुआ।

आपका कार्य इतनेसे ही समाप्त नही होता। आपको तो लोगोके साथ घुल-मिल जाना चाहिए। जब आप गरीबसे-गरीब आदमीको गले लगायेंगी तभी आपकी सेवा सच्ची होगी। लॉर्ड सेलिसबरीने पादरियोंके एक शिष्टमंडलसे जो शब्द कहे थे, यहाँ मुझे याद आ रहे हैं। ये पादरी चीनसे आये थे और बौक्सरोंके विरुद्ध सरकारी सरक्षण प्राप्त करना चाहते थे। लॉर्ड सेलिसबरीने उनसे कहा था: "मैं आपको संरक्षण देनके लिए तैयार हूँ, किन्तु क्या आपको यह शोभा देगा? प्राचीन कालमें पादरी वीर थे। वे सच्चा संरक्षण ईश्वरका ही मानते थे। वे जो भी कठिनाइयाँ सामने आती थीं, उनसे जूझते थे और अपने प्राणतक होम देते थे। यदि आपको चीनमें भी धर्म-प्रचार करना आवश्यक प्रतीत होता है तो धर्मभीरु लोग जिस सरक्षणके इच्छुक रहते है आपको उस संरक्षणकी खोज करनी चाहिए। वह धर्मप्राण व्यक्ति जो जोखिम उठाते हैं वह जोखिम उठानी चाहिए। आपको यही शोभा देता है।" ये शब्द एक सच्चे और व्यवहारकुशल मनुष्यके हैं। यदि आप भी भारतके लोगोंकी सेवा करना चाहती हैं तो आप भी अपने प्राण हथेलीपर रखकर जूझें। आपको चाहे कितनी ही विफलता क्यों न मिले और चाहे कितनी ही परेशानियाँ तथा असुविधाएँ क्यो न उठानी पड़ें; फिर भी आप केवल सेवाकी भावनासे लोगोंकी सेवा करती रहें।

यदि आप इन कंगालोमें प्राण-संचार करना चाहती हैं तो मैं आज प्रत्येक भारतीयके सामने जो कार्यक्रम रख रहा हूँ, उसको आप भी अंगीकार करे और उसके द्वारा जन-जीवनमें प्रवेश करे। ईसाके आदेशोंका पालन जितनी अच्छी तरह इस कार्यसे होगा, उतनी अच्छी तरह किसी अन्य कार्यसे नही।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-६-१९२५

११६. धर्मके नाम अन्धेर

गुजरातमें लाड जातिमें जो झगड़ा चल रहा है, उसके सम्बन्धमें मुझे एक लम्बा पत्र मिला है। लेखकने शुद्ध भावसे प्रयत्न करके मुझे झगड़ेके सम्बन्धमें बहुत-सी जानकारी दी है और बताया है कि समझौतेके लिए जितने भी प्रयत्न किये जा सकते थे उतने किये गये हैं। मैं उनकी बातपर विश्वास करनेके लिए तैयार हूँ। लेकिन मेरा विचार लाड जातिके विषयमें कुछ लिखने या सुझाव देनेका नही है, बल्कि उसपर से जो विचार मुझे सूझे हैं सिर्फ उनको हिन्दू-समाजके सामने प्रस्तुत करनेका है।

एक तरफ तो हिन्दूधर्मकी रक्षाके निमित्त संगठन किया जा रहा है और दूसरी तरफ हिन्दूधर्ममें जो दुर्बलतायें हैं, वे उसे अन्दर-ही-अन्दर घुनकी तरह खा रही हैं। अतः जिस प्रकार घुन लकड़ीके एक मोटे लट्ठेमें बैठा उसे भीतरसे खा रहा हो तो वह लट्ठा ऊपरसे ढक देने या रोगन लगा देनेपर भी अन्तमें तो खोखला ही हो जायेगा, उसी प्रकार जो घुन हिन्दू जातिके हृदयमें बैठा उसे खा रहा है, वह नष्ट न किया जायेगा तो हम बाहरसे हिन्दूधर्मकी रक्षा चाहे कितनी ही क्यो न करें, उसका नाश हुए बिना न रहेगा।

वर्णबन्धनके नामपर वर्णोंका संकर हो रहा है और हो चुका है। वर्णोंकी मर्यादा नष्ट हो गई है और अब उनकी अतिशयता ही बाकी बची है। वर्णबन्धन धर्मकी रक्षाके लिए रखा गया था; किन्तु वह आज विकृत बनकर उसका नाश कर रहा है। वर्ण तो चार ही होने चाहिए; लेकिन इसके बजाय आज तो वे असंख्य और अगणित हो गये हैं। वर्ण मिट गये हैं और वे जातियों उपजातियोंमें बँट गये हैं। जिस प्रकार आवारा और लावारिस ढोर बाड़े (मवेशीखाने)में बन्द कर दिये जाते हैं उसी प्रकार हम लोग भी लावारिस बनकर इन जातियों—उपजातियोंके बाड़ोंमें बन्द होकर बन्दी बन गये हैं। वर्ण प्रजाके पोषक थे; किन्तु जातियाँ प्रजाकी विनाशक बन गई है। हम हिन्दू प्रजाकी या हिन्दुस्तानकी सेवा करनेके बजाय अपनी इन बन्धन रूप जातियोंको कायम रखनेमें व्यस्त रहते है और उससे जो प्रश्न उत्पन्न होते है उनका निर्णय करनेमें अपने समय, बुद्धि और धनका व्यय करते हैं। व्याध उधर शहदके छत्तेको तोड़नेके लिए तैयार खडा है, इधर मूर्ख मक्खियाँ एक दूसरीकी कोठरियोंपर कब्जेके बारेमें पंचायत कर रही हैं। जहाँ बीसा और दस्साका भेद ही मिटाया जाना चाहिए, वहाँ बीसा बड़े या दस्सा बड़े, यह प्रश्न ही कहाँ रहता है? जहाँ समस्त हिन्दुस्तानके वणिकोंको एक कौम बन जाना चाहिए वहाँ दस्सा-बीसा, मोढ़-लाड और हालारी-घोघारीके भेदों और उनके बीचके झगड़ोंके लिए अवकाश ही कैसे हो सकता है?

वर्ण कर्मानुसारी थे। लेकिन आज जातिका आधार तो एक रोटी-बेटी व्यवहार ही है। जबतक मैं रोटी-बेटी व्यवहारकी मर्यादाकी रक्षा करता हूँ तबतक मैं कलालकी दुकान करूँ, या शमशेर बहादुर बनूँ या विदेशी गोमांसके बन्द डिब्बे बेचूँ

तो भी कोई आपत्ति नहीं। यह सब करनेपर भी मैं वणिक जातिमें आदरणीय माना जा सकता हूँ। मैं एक पत्नीव्रतका पालन करता हूँ या अनेक सुन्दरियोंसे रमण करता हूँ, जाति इस झगड़ेमें नहीं पड़ती, इतना ही नहीं, बल्कि मैं जातिका चौधरी बनकर रह सकता हूँ, उसके लिए नयी स्मृतियाँ बना सकता हूँ और उससे पुरस्कृत हो सकता हूँ। मैं कहाँ खाता-पीता हूँ या कहाँ अपने पुत्रों और पुत्रियोंका विवाह करता हूँ, मेरी जाति इसकी चौकीदारी तो करती है; लेकिन उसे मेरे आचरणका निरीक्षण करनेकी जरूरत नहीं मालूम पड़ती। मैं विलायत हो आया हूँ इसलिए कन्याकुमारीके गर्भागारमें नहीं जा सकता। लेकिन यदि मैं खुल्लम-खुल्ला व्यभिचार करूँ तो मुझे उसके कारण उस गर्भागारमें जानेसे कोई नहीं रोकेगा।

इस चित्रणमें कहीं भी अतिशयोक्ति नहीं है। यह धर्म नहीं है; यह तो अधर्मकी परिसीमा है। इससे वर्णकी रक्षा न होगी, उसका नाश होगा। मैं वर्णाश्रम धर्मकी रक्षाका उद्योग तो करता हूँ; लेकिन यदि यह अधर्म दूर न होगा तो मैं उसकी रक्षा करनेमें असमर्थ ही सिद्ध हूँगा। यहाँ तो वर्णकी अतिशयताने ही वर्णका स्थान ले रखा है; इसलिए इस अतिशयताके नाशके बजाय वर्णोंका ही नाश होनेका भय है।

अब यह देखें कि ऐसी असंख्य जातियोंकी रक्षा किस प्रकार सम्भव है। अहिंसा प्रधान धर्म हिंसाका आचरण करके जातिको बनाये रखनेका प्रयत्न कर रहा है। जिसने जातिके कृत्रिम और अनुचित बन्धन तोड़ दिये हैं, उसे समझाने और उसकी 'भूल' बतानेका तो प्रयत्न किया नहीं जाता, बल्कि उसका फौरन ही बहिष्कार कर दिया जाता है। बहिष्कार करना अर्थात् उसको सब प्रकारसे सताना, उससे खान-पान, ब्याह-सगाई और मौत-गमीमें आने-जानेका व्यवहार भी बन्द कर दिया जाता है और यह दण्ड बहिष्कृत व्यक्तिकी सन्ततिको भी भोगना पड़ता है। इसका नाम है चींटीपर सेना लेकर धावा; और यदि इस युगकी भाषामें कहें तो डायरशाही। ऐसे अत्याचारोंसे तो हजार, दो हजार मनुष्यकी संख्यावाली जातियाँ टिकनेके बजाय नष्ट ही हो जायेंगी। इनका नाश वांछनीय अवश्य है, लेकिन जोर जबरदस्तीसे किया गया नाश हानिकर होगा। उनका नाश जब इच्छा-पूर्वक किया जायेगा तभी समाजके लिए पोषक होगा।

सबसे अच्छा उपाय तो यह है कि छोटी-छोटी जातियोंकी पंचायतें मिलकर एक बड़ी जाति बना लें और यह बड़ी जाति दूसरे संघोंके साथ मिलकर चारों वर्णोंमें से एक स्थान प्राप्त कर लें। लेकिन आजकी शिथिलताकी हालतमें तो तत्काल ऐसा सुधार होना नामुमकिन-सा है।

अतः धर्मका पालन जितना कठिन है उतना ही आसान भी है। जिस प्रकार हरएक समाज धर्मकी वृद्धि कर सकता है उसी प्रकार हरएक व्यक्ति भी कर सकता है। व्यक्तियोंको चाहिए कि वे निर्भय बनकर जिसे धर्म मानते हों उसपर अमल करें और यदि उन्हें बहिष्कृत किया जाये तो उसकी कुछ भी फिक्र न करें। उन्हें जातिके इन तीनों प्रकारके दण्डोंका विनयपूर्वक स्वागत करना चाहिए और उन्हें यह नहीं मानना चाहिए कि उन्हें ये दण्ड विवश करनेके लिए दिये गये हैं। जातिभोज देनेसे

कोई लाभ नही है, किन्तु न देनसे अनक वार लाभ होता है। मैं तो मृत्यु-भोजको पाप ही मानता हूँ। लड़केके लिए लड़की और लड़कीके लिए योग्य लड़का जातिमें न मिले तो यह भी चिन्ताका विषय नहीं है। इसका कारण यह है कि जिसे दण्ड दिया गया है उसके लिए वह दण्ड नहीं है क्योंकि वह तो उपजातियोंके अस्तित्वको ही नही मानता। यदि लड़की या लड़का लायक हो तो दूसरे समाजोके सुधारक वर्गमें से योग्य लड़का या लड़की मिलनेमें कोई कठिनाई न होगी। लेकिन यदि कठिनाई हो तो भी उसका सामना करना ही धर्म है। चरित्रवान् और संयमीके लिए ऐसी कठिनाइयाँ, कठिनाइयाँ ही नहीं हैं। वह तो उनका सामना प्रसन्न चित्त होकर ही करता है। यदि उसे गमीके मौकेपर भी जातिकी मदद न मिले तो उसमें भी दुःख माननेकी क्या बात है? दूसरे मददगार मिल जायेंगे। मैं मुर्दा गाड़ीके विषयमें तो लिख ही चुका हूँ। उसका उपयोग करनेसे कम मदद दरकार होगी। जिसे उतनी मदद भी न मिल सके वह मजदूर बुला ले। जो इतना दीन हो कि उसके पास मजदूरी देनेके लिए भी पैसे न हों, किन्तु वह ईश्वरका भक्त हो, उसे तो यही विश्वास रखना चाहिए कि ईश्वर उसे कहींसे भी मदद भेज देगा। दण्डका भय छोड़ देना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रहका शस्त्र जिस प्रकार सरकारसे लड़नेमें उत्तम शस्त्र है उसी प्रकार जातिसे लड़नेमें भी है। चूँकि दोनों रोग एक ही प्रकारके है, इसलिए दोनोंकी चिकित्सा भी एक ही है। सत्याग्रह अत्याचारका इलाज है। हिन्दूधर्मकी — अन्य धर्मोकी भी — रक्षा केवल सत्याग्रहसे ही की जा सकती है।

मैं प्रत्येक धर्मप्रेमीको विनयपूर्वक यह सलाह देता हूँ कि वे नाना प्रकारके जाति विषयक झगड़ोंमें न पड़ें और अपने कर्त्तव्यपर दृढ़ रहें। यह कर्तव्य है — अपने धर्मकी और देशकी रक्षा करना। धर्मकी रक्षा छोटी-छोटी जातियोंकी अनुचित रक्षा करनेसे नही होगी; वल्कि धार्मिक आचरणसे ही होगी। धर्मकी रक्षाका अर्थ है — हिन्दू-मात्रकी रक्षा। स्वयं चरित्रवान् बननेसे ही हिन्दू-मात्रकी रक्षा होगी। चरित्रवान् बननेका अर्थ है; सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसादि व्रतोंका पालन करना, निर्भय बनना अर्थात् मनुष्य-मात्रके भयका त्याग करना, ईश्वरपर श्रद्धा रखना और उससे डरना, वह हमारे सब कामोंका और सब विचारोंका साक्षी है, यह मानकर मलिन विचार मनमें लाते हुए काँपना, जीव-मात्रकी सहायता करना, दूसरे धर्मोके मनुष्योको भी मित्र मानना और परोपकारमें समय बिताना इत्यादि। फिलहाल उपजातियोंका अस्तित्व तभी क्षन्तव्य माना जा सकता है जब उनके सब काम साधारण रूपसे धर्म और देशहितके पोषक हों। जो जाति सारे विश्वका उपयोग अपने ही लिए करती है उसका नाश ही इष्ट है। जो जाति ससारके कल्याणमें योग देती है, उसीका चिरंजीवी होना योग्य है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-६-१९२५

११७. बंगालमें

मैं बंगाल नहीं छोड़ सकता और बंगाल भी मुझे नही छोड़ता। एक महीना बीत गया है; अभी एक महीना और बिताना होगा। इस दरम्यान असममें भी थोडे दिनोके लिए जाये बिना काम न चलेगा। श्री फूकनने मुझे लिखा है, "असमने कुछ अधिक नहीं किया है, फिर भी वह खादीके सम्बन्धमें क्या कर सकता है, आपको उसे यह दिखानेका मौका तो देना ही होगा। आप उसे आखिर एक सप्ताहका समय तो दें ही।" यह सब न लिखा होता तो भी मैं साधारण-सा निमन्त्रण मिलनेपर ही चला जाता, क्योंकि मुझे असमसे बहुत-कुछ आशा है। इसके अतिरिक्त असम इतना दूर है कि वहाँ बार-बार जाना सम्भव नही। लेकिन असम जानेके अनेक कारणोंमें से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण तो यह है कि असमने १९२१ में जितना कष्ट सहन और त्याग किया है, उतना किसी दूसरे प्रान्तने शायद ही किया होगा। असमका अपराध यह था कि उसने अफीमबन्दी कीं थी। इसके लिए सैकड़ों नवयुवकोंको जेल जाना पड़ा और अनेक अन्य कष्ट सहने पडे। उसका परिणाम यह हुआ कि लोगोंके मनमें बहुत भय उत्पन्न हो गया, यहाँतक कि वे सिर ऊँचा नही कर सकते थे। इस प्रान्तमें जानेके लिए तो मुझसे अधिक अनुरोध करनेकी जरूरत न थी। अतः मैंने श्री फूकनके आमन्त्रणको तुरन्त स्वीकार कर लिया। अब मुझे १५ तारीखतक असम पहुँच जाना चाहिए। मुझे वहाँ करीब-करीब दो सप्ताह लगेंगे। मैं फिर वहाँसे वापस आकर बंगालका बाकी दौरा पूरा करूँगा। फिर भी बंगालका कुछ हिस्सा तो छूट ही जायेगा।

मुझसे बंगाल नही छोड़ा जाता क्योंकि मुझे बंगालसे बहुत बड़ी आशा है। मै जैसे-जैसे बंगालियोंके सम्पर्कमें आता जा रहा हूँ, वैसे-वैसे उनकी सरलतापर और उनके त्यागपर मुग्ध होता जा रहा हूँ। मै जहाँ जाता हूँ वही मुझे त्यागी युवक दिखाई पड़ते हैं। उनमें देश-सेवा करनेकी बड़ी उमंग है। वे इसी खोजमें रहते हैं कि देशकी सेवा किस प्रकार की जाये। कुछ काम ऐसा किया जा रहा है, जिसका उल्लेख तक नहीं होता और कभी होगा भी नही; क्योंकि उसका बर्णन सरस ढंगसे नही किया जा सकता। सरल जीवन स्वतः सरस होता है, लेकिन वह जितना सरस होता है, उसका वर्णन उतना ही नीरस होता है। शुद्ध शान्तिमें सबसे बड़ा सुख होता है। इस शान्तिका, इस सुखका नित्य नया वर्णन कैसे किया जा सकता है? जो मनुष्य एक गाँवमें बालकोंको लेकर बैठ जाता है और उन्हें नित्य पिताकी तरह प्रेमसे पढ़ाता है, उसके सुखका, उसकी शान्तिका वर्णन कौन कर सकता है? उसके सुखकी बराबरी कौन कर सकता है? और उससे उस सुखको कौन छीन सकता है। उसमें नित्य वृद्धि होती जाती है, क्योंकि उसका फल शिक्षणमें ही निहित होता है। वह इस बातकी चिन्ता नही करता कि उसके पास एक बालक है या अनेक। उसकी

चिन्ता तो केवल शिक्षणतक ही सीमित रहती है। चूँकि यह कार्य उसीके हाथमें होता है; इसलिए वह अपने सुखका कर्त्ता या हर्त्ता स्वयं ही बन जाता है।

मेरे ऊपर कुछ ऐसी छाप पड़ी है कि इस प्रकारके सेवक बंगालमें अधिक दिखाई पड़ते हैं। ये युवक बहुतसे स्थानोंमें फैल गये हैं। उनका एक-दूसरेसे बहुत कम सम्बन्ध है। सभी अपने-अपने काममें तन्मय दिखाई पड़ते हैं। मुझे ऐसे कार्यकर्त्ताओंको देखनेके अनेक प्रसंग मिल रहे हैं और ये प्रसंग ज्यों-ज्यों आते हैं त्यों-त्यों मेरी इच्छा यही होती है कि मैं बंगालसे अभी न जाऊँ। मैं ऐसे ही सेवकोंमें स्वराज्यका बीज देख रहा हूँ। उनमें भारतकी आशा छिपी है। वे नहीं बोलते, उनका काम बोलता है।

हाथकी भाषा

ऐसे कार्यकर्त्ताओंको देखकर ही एक सभामें भाषण देते हुए मेरे मुँहसे 'हाथकी भाषा' शब्द निकला। यह सभा कलकत्तेमें की गई थी। मैं इसमें नियत समयपर पहुँच गया था। उसमें बहुत-से स्त्री-पुरुष तो उस समय भी आ ही रहे थे। सभाका कार्यक्रम संगीतसे शुरू किया जानेवाला था। संगीताचार्य अभी नहीं आये थे; इसलिए मेरा भाषण आरम्भ होनेमें कुछ देर थी। मैंने अपनी तकली निकाली। मेरी तकली मेरे साथ ही रहती है और जब फुरसत मिलती है तब मैं उससे थोड़ा सूत कात लेता हूँ। मैं तकली चलानेमें सबसे अकुशल सिद्ध हुआ हूँ। अबतक मेरा हाथ जैसा चाहिए वैसा बैठा नहीं है। अभीतक कोई यह नहीं बता सका है कि 'दोष' कहाँ है। लेकिन मैं तकलीसे हारनेवाला थोड़े ही हूँ। हम दोनोंमें युद्ध चलता ही रहता है। कुछ भी हो मैं उससे सूत तो कात ही लेता हूँ; इसलिए मैंने उस समयका उपयोग तकली चलानेमें किया। मेरे पास जितनी भी पूनियाँ थीं सब खत्म हो गईं; लेकिन मेरा भाषण आरम्भ होनेमें तो अब भी देर थी। इसलिए इस अवकाश कालमें मुझे क्या कहना चाहिए यह सोच लिया और श्रोताओंसे कुछ इस प्रकार कहा:

'अब मुझे भाषण देनेकी जरूरत ही कहाँ रही है? सामान्य भाषण मुँहसे दिये जाते हैं और कानोंसे सुने जाते हैं। लेकिन मैंने अपना भाषण हाथसे किया है और यदि आपने अपनी आँखोंका उपयोग किया हो तो आपने वह आँखोंसे सुना होगा। मुँहसे दिये गये भाषणमें अकसर हृदय और वाणीका मेल नहीं होता। हृदयमें होता कुछ है तो वाणीसे निकलता कुछ है। हाथके भाषणमें ऐसे दोषको स्थान नहीं है, क्योंकि उसका मनसे कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। उसे देखकर तो आप जो चाहते हैं वह अर्थ निकाल सकते हैं। हाथसे जो सूत कत रहा है वह तो बेकार नहीं जा सकता। मैंने मुँहसे बहुत सुनाया है और आपने कानोंसे बहुत सुना है। लेकिन बंगालने मुझे हाथोंसे भाषण करना सिखाया है। मुझे इसका प्रथम पाठ फरीदपुरके विद्यार्थियोंने पढ़ाया था। उसे मैं भूला नहीं हूँ। उसके बादसे मैं बहुत-सी सभाओंमें चरखा चलाता हूँ और कहीं-कहीं तो फरीदपुरकी तरह चरखा चलाते हुए मुँहसे भाषण भी देता जाता हूँ और इस प्रकार हाथ और मुँहका मेल व्यवहारतः करके दिखाता हूँ। मैं देख रहा हूँ कि अब केवल मौनका युग आ रहा है। हाथकी भाषा ही सच्ची

भाषा मानी जायेगी। इस भाषाको गूंगे और निरक्षर भी बोल सकेंगे और यदि देखते होंगे तो बहरे भी सुन सकेंगे।

मेरे सूतके तार निकालनेका अर्थ सिर्फ सूत कातना ही नहीं है। मैंने सूत कातकर यह दिखाया है कि यद्यपि मेरा शरीर आपके पास है किन्तु मेरा हृदय बंगालके गाँवोंकी झोंपड़ियोंमें है। मैंने सूत कातकर उनके साथ तादात्म्य स्थापित किया है, क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि करोड़ों भूखों मरते कंगाल हिन्दुस्तानियोंके जीवनका अवलम्ब यह सूतका तार ही है। यदि हम लोग उनकी खातिर चरखा न चलायेंगे तो उनके अस्थिपंजरोंपर चर्बी नहीं चढ़ेगी। वे वस्त्र पहने होनेपर भी नंगे रहेंगे और उद्यम करनेपर भी निरुद्यम रहेंगे। चरखेको उन्हें अन्नपूर्णा समझकर चलाना चाहिए। और हमें उनको ठीक मार्ग दिखानेके लिए, शान्ति देनेके लिए और खादी सस्ती करनेके लिए यज्ञ समझकर इसे चलाना चाहिए। वे जितने भी घंटे खाली रहें चरखा चलायें और हम उनके लिए अर्थात् यज्ञार्थ भले ही सिर्फ आधा घंटा चरखा चलायें लेकिन यदि हम ही चरखा नहीं चलायेंगे तो वे भी चरखा नहीं चलायेंगे। हम चरखा नहीं चलायेंगे तो चरखेके दोषोंको कौन दूर करेगा, चरखा-शास्त्र कौन बनायेगा और चरखेकी शक्तिका माप कौन करेगा? उसका विनाश हमारे हाथोंसे हुआ है, इसलिए उसका पुनःस्थापन भी हमारे ही हाथोंसे होना चाहिए। यह सब अर्थ और बहुत-से दूसरे भी अर्थ, मैंने जो हाथसे भाषण किया है, उसमें मौजूद हैं। हमने गरीब किसानोंसे बहुत-कुछ लिया है, इसलिए धर्म यही है कि हम चरखा चलाकर उन्हें उसमें से कुछ वापस करें।

शान्तिनिकेतन

लेकिन बंगालमें मेरे लिए एक यही आकर्षण नहीं है। यहाँ तो मेरे लिए अनेक आकर्षण मौजूद हैं। मैं शान्तिनिकेतनमें जाये बिना रह ही कैसे सकता था? मैं ये टिप्पणियाँ शान्तिनिकेतनमें बैठा मौनवारको लिख रहा हूँ।[1] शान्तिनिकेतनवासी मुझे परम शान्ति दे रहे हैं। यहाँ बहनें मुझे अपने मधुर गीत सुना रही हैं। मैंने महाकविसे घंटों जी-भरकर बातचीत की। अब मैं उन्हें कुछ अधिक समझ सका हूँ; कहना चाहिए कि वे मुझे कुछ अधिक समझने लगे हैं। उन्होंने मुझपर अपना प्रेम व्यक्त करनेमें कोई कसर नहीं रखी है। उनके बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरका तो, जो 'बड़ो दादा' के नामसे प्रसिद्ध हैं, मुझपर वैसा ही प्रेम है जैसा पिताका पुत्रके प्रति होता है। वे मेरे दोष तो देखना ही नहीं चाहते। उनके खयालसे तो मैंने कोई गलती की ही नहीं और मेरा असहयोग, मेरा चरखा, मेरा सनातनीपन, मेरी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यकी कल्पना और मेरा अस्पृश्यताका विरोध — सब बातें सर्वथा उचित हैं, और मेरी तरह उनका भी विश्वास है कि स्वराज्य इन्हींपर निर्भर है। जैसे पिता मोहवश पुत्रके दोष नहीं देखता उसी प्रकार 'बड़ो दादा' भी मेरे दोष बिलकुल देखना नहीं चाहते। उनके मोह और प्रेमका तो मैं यहाँ उल्लेख-भर कर सकता हूँ;

१. गांधीजी २९ मईसे १ जूनतक शान्तिनिकेतन रहे थे।

उसका वर्णन कदापि नहीं कर सकता। मैं उस प्रेमके योग्य बननेका प्रयत्न कर रहा हूँ। उनकी उम्र ८० सालसे भी ज्यादा है। लेकिन वे छोटी-छोटी बातोंकी भी जानकारी रखते हैं। वे यह जानते हैं कि हिन्दुस्तानमें आज क्या चल रहा है। वे दूसरोंसे पत्र पढ़वाकर सुनते हैं और सब जानकारी प्राप्त करते हैं। दोनों भाइयोंने वेदादि ग्रन्थोंका गहन अध्ययन किया है। दोनों संस्कृतके ज्ञाता हैं। दोनों बातचीतमें 'उपनिषदों' के मन्त्रों और 'गीता' के श्लोकोंके उद्धरण बार-बार देते जाते हैं।

शान्तिनिकेतनमें चरखेके पुजारी भी मौजूद हैं। कुछ नियमित रूपसे चरखा चलाते हैं और कुछ अनियमित रूपसे। बहुत-से खादी पहनते हैं। मुझे आशा है कि इस विश्वविख्यात् संस्थामें चरखेको और भी अधिक स्थान प्राप्त होगा।

नन्दिनी बाला

इस बातको तो कुछ ही गुजराती जानते होंगे कि यहाँ कुछ गुजराती बालक रहते हैं। उनमें से कुछ बालकोंके तो कुटुम्ब भी यहीं रहते हैं। इनमें एक भाटिया कुटुम्ब था। उसमें एक कन्याका जन्म हुआ। उसकी माँ बहुत बीमार रही और पागल हो गई। इसलिए गुरुदेवकी पुत्रवधूने उसे गोद ले लिया और अब उसका पालन-पोषण उन्हींके द्वारा हो रहा है। यह कन्या कोई ढाई वर्षकी होगी। वह गुरुदेवकी बहुत लाड़ली है। सब लोग उसे उनकी पौत्री ही मानते हैं। गुरुदेव अभी आराम कर रहे हैं। उन्हें डाक्टरोंने हृदय-रोग होनेके कारण चलने-फिरनेकी मनाही कर दी है। वे जिसमें कड़ा परिश्रम हो ऐसा मानसिक काम भी नहीं कर सकते; इसलिए दिनमें तीन-चार बार इस लड़की नन्दिनीसे विनोद करते और उसे अनेक प्रकारकी कहानियाँ सुनाते हैं। यदि वे उसे कहानियाँ नहीं सुनाते तो वह नाराज हो जाती है। वह इसी तरह इस समय मुझसे भी नाराज हो रही है। वह मुझसे फूलोंका हार लेनेके लिए तो तैयार हो गई है; लेकिन मेरे पास आनेसे साफ इनकार कर रही है। हो सकता है कि चूँकि मैं उसके कहानियोंके समयमें गुरुदेवसे बातचीत करता रहा था, इसलिए वह उसका बदला ले रही हो। बालक और राजाकी नाराजीको कौन सँभाल सकता है? यदि राजा नाराज हो तो मेरे-जैसा सत्याग्रही शायद उसे सँभाल भी ले लेकिन बालककी नाराजीके सामने तो मेरा तेजस्वी हथियार भी निस्तेज प्रतीत होता है। इस दरम्यान मौन-दिवस आ पहुँचा है। इसलिए मुझे शायद नन्दिनीको जीते बिना ही शान्तिनिकेतनसे जाना पड़े। मैं अपनी इस हारके दुःखकी कहानी किसे सुनाऊँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-६-१९२५

११८. काठियावाड़में खादी

काठियावाड़से आये हुए पत्रोंको देखनेसे ऐसा जान पड़ता है कि जिन-जिन भाइयोंने हाथसे सूत कातनेवाले किसानों और निर्धन वर्गके लोगोंको संगठित करनेका बीड़ा उठाया था, वे अपने प्रयत्नमें सफल हो गये हैं। इस सम्बन्धमें देवचन्द भाई पूरी तरह आश्वस्त हैं। लगता है कि अधिक प्रयासके बिना ही ऐसे परिवार मिल गये हैं। वे मानते हैं कि यदि अधिक कार्यकर्त्ता हों और हम आधे मूल्यपर अधिक पूनियाँ दे सकें तो सूत कातनेके लिए बहुत-से परिवार तैयार हो जायेंगे। किन्तु जितने परिवार अनायास मिल चुके हैं उनकी सेवा करना ज्यादा अच्छा है या समझानेके बाद जो परिवार तैयार होंगे उनके पास जाना? प्राप्त परिवारोंकी सेवा करनेका अर्थ है हमारे और उनके बीच काम करनेवालोंकी व्यवस्थाको दृढ़ करना, चरखेमें सुधार करना और अच्छा सूत कतवाना और कातनेवालोंको धुनना सिखाना आदि।

मैं इतनी दूर बैठा इस सम्बन्धमें सलाह देनेमें असमर्थ हूँ और स्वयंको इसका अनधिकारी मानता हूँ। समय-समयपर उपस्थित होनेवाली परिस्थितिको जाने बिना कोई सलाह देना मैं भयंकर समझता हूँ। इसलिए बंगालमें जो अनुभव हुए हैं उनको मैं कार्यकर्त्ताओंके सम्मुख प्रस्तुत करना चाहता हूँ। मैं बंगालमें देखता हूँ कि कहीं भी पूरी-पूरी पूनियाँ शायद ही दी जा सकी हैं। कलकत्ताके सिवा किसी दूसरी जगह पूनियाँ दी भी नहीं जातीं। केवल रुई ही दी जाती है। इसके अतिरिक्त हजारों सूत कातनेवाली बहनें तो कपास ही माँगती हैं। वे उसे हाथसे ओट लेती हैं। जिन्हें कातने-का अनुभव है, वे समझ सकते हैं कि जो लोग ओटने और धुननेका काम स्वयं कर लेते हैं उनकी कमाई बढ़ ही जाती है। इन कामोंको अपने-अपने घरोंमें करना कठिन नहीं है। जिन्होंने ये काम किये हैं वे इस बातको जानते ही हैं। बंगालमें अभीतक लोग पुराने जमानेको भूले नहीं हैं, इसलिए वे सहज ही इन बातोंको पकड़ लेते हैं। बंगाल-की जैसी पूनियाँ तो कोई बना ही नहीं सकता। उनकी पूनियोंमें किरी बिलकुल नहीं होती। यदि हम ओटाईका काम प्रत्येक कातनेवालेके घरमें आरम्भ नहीं करा सकते तो भी धुनाईका काम क्यों नहीं आरम्भ करते? मैंने यहाँकी धुनकियाँ बहुत सादी बनी हुई देखी हैं। उनका मूल्य चार या छः आनेसे ज्यादा शायद ही होता हो। लोग बाँसको भिगोकर झुका लेते हैं और कई बार केलेके रेशोंकी डोरी बटकर उसकी ताँत बना लेते हैं। वे घोटा तो काममें ही नहीं लाते हैं। वे उसका काम उंगलीसे ही ले लेते हैं। हम भले इतना न करें और शायद इसकी जरूरत भी न हो; किन्तु जो लोग नियमित रूपसे कातते हैं, उनको तुरन्त धुनाई सीख लेना तो जरूरी है ही। कातने-वालोंको पूनियाँ हमेशा पर्याप्त मात्रामें मिल सके, यह मुझे मुश्किल दिखाई देता है।

दूसरी बात यह अनुभवमें आई है कि यहाँ दस अंकसे कमका सूत शायद ही कोई कातता हो। बाजारमें जो सूत मिलता है वह प्रायः दस अंकसे ऊपरका होता

है। यहाँ देव कपासके अतिरिक्त जो कपास होती है वह हमारी मढ़िया कपाससे घटिया किस्मकी होती है। यहाँ जो औजार काममें लाये जाते हैं वे हमारे औजारोंसे सस्ते होते हैं। मैं कह नहीं सकता कि सस्ते औजार कहीं अन्ततः मँहगे तो नहीं पड़ते।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-६-१९२५

११९. एक सलाह

७ जून, १९२५

प्रण उतावलीमें कभी न करो। एक बार करनेके बाद जानकी बाजी लगाकर उसे पूरा करो।

मोहनदास गांधी

अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ८७३५) की फोटो-नकलसे।

१२०. पत्र: 'वर्ल्ड' के सम्पादकको

साबरमती
८ जून, १९२५

प्रिय मित्र,

आपकी शुभकामनाएँ और पत्र मिला; तदर्थ धन्यवाद स्वीकार करें। आपने मुझसे कुछ अटकल लगानेको कहा है, मेरी रायमें वह बेमतलबकी अटकलबाजी होगी। वर्तमानको उसके समग्र रूपमें कौन जानता है? हम सब इतना जरूर जानते है कि समग्र भविष्य वर्तमानका ही प्रत्यक्ष परिणाम होगा। आवश्यक परिवर्तन यही है कि हम अपने अन्दर विनम्रता पैदा करें और आत्मचिन्तन करें। अपने अहंकारमें हम अपना सुधार किये बिना संसारका सुधार करना चाहते है। 'आत्मानं विद्धि' आज भी उतना ही सही है जितना अपने पहले-पहल कहे जानेके समय था।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१२१. भाषण : जलपाईगुड़ीकी सार्वजनिक सभामें

१० जून, १९२५

श्री गांधीने एक आम सभामें भाषण देते हुए व्यापारियों और व्यवसायियोंसे अनुरोध किया कि वे अपने धनको और व्यवसायकी अपनी सूझ-बूझको भारतके कल्याण-के लिए इस्तेमाल करें। अभीतक अकेले शिक्षित वर्गने ही भारतकी सेवा की है। अब व्यापारी वर्ग और आम जनताकी बारी है। देशके सामने जो रचनात्मक कार्य है उसके लिए उनकी सम्पूर्ण व्यवसाय-कुशलता और दूरदर्शिता अपेक्षित है, और यदि वे देशके हितमें संलग्न होंगे तो इससे ६० करोड़ रुपया सालानाकी बचत होगी। खद्दरका उत्पादन इतना पर्याप्त होने लगेगा कि सारे देशको वस्त्र सुलभ होगा और विदेशी कपड़ेका पूरा-पूरा बहिष्कार सम्भव हो जायेगा। मेरी रायमें भारतके सात लाख गाँवोंमें से हर गाँव कताई-बुनाईकी ऐसा मिल-जैसा है जो मशीन, श्रम और पूँजीके मामलेमें बिलकुल आत्मनिर्भर है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ११-६-१९२५

१२२. जलपाईगुड़ीमें स्वयंसेवकोंसे बातचीत[1]

१० जून, १९२५

आप कहते हैं कि सूत कातनेमें कुछ मजा नहीं है। लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या गायत्री जाप करनेमें कोई मजा है? क्या कलमा पढ़नेमें कोई मजा है? आप उसे कर्त्तव्यकी तरह — एक पवित्र संस्कारकी तरह करते हैं। उसी तरह सूत कातना भी एक कर्त्तव्य और पवित्र संस्कार है। भारत मर रहा है। वह मृत्युशैया-पर है। क्या आपने कभी किसी व्यक्तिको मरते हुए देखा है? क्या आपने उसके पैर छूकर देखे हैं? आप देखते हैं कि उसके पैर ठंडे हो जाते हैं, सुन्न पड़ जाते हैं। उसके सिरमें फिर भी आपको गरमाहट लगती है और आप अपना मन समझा लेते हैं कि अभी उसके शरीरमें जीवन है। लेकिन वह चुक रहा होता है, उसी तरह भारतकी आम जनता अर्थात् भारत माताके चरण ठंडे और सुन्न पड़ गये हैं। यदि आप भारत-को बचाना चाहते हैं तो जो-कुछ थोड़ा-सा काम करनेको मैं कहता हूँ वह अवश्य कीजिए। मैं आपको चेतावनी देता हूँ। समय रहते चरखा शुरू कीजिए, अन्यथा आप विनाशको प्राप्त होंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

१२३. टिप्पणियाँ

एक नई भरती

मेरी प्यारी बेटियोंकी फौज दिन-ब-दिन बढ़ रही है। बेशक उन सबकी रानी तो गुलनार ही है। मैं जब-जब निमन्त्रण मिलनेपर सरकारका मेहमान बनकर गया हूँ तब-तब वही मेरी गैरहाजिरीमें मेरी ओरसे मेरे निरंकुश सिंहासनपर आसीन हुई है। लेकिन छोटी-छोटी तारिकाएँ तो इतनी अधिक हैं कि उन्हें गिनाया भी नहीं जा सकता। अभी उनमें जो एक नई भरती हुई है वह है बर्दवानकी रानीबाला। वह प्यारी लड़की शायद दस वर्षकी होगी। मुझे उसकी उम्र पूछनेकी हिम्मत ही नहीं हुई। मै उसके साथ सदाकी तरह खेल रहा था और उसकी सोनेकी छः भारी चूड़ियोंको दूसरोंकी निगाह बचाकर देख रहा था। मैंने उसे नरमीसे समझाया कि उसकी छोटी-छोटी कलाइयोंपर ये चूड़े बहुत भारी है और उसका हाथ तुरन्त उन चूड़ियोंपर गया। उसके नाना, 'सर्वेन्ट' के श्याम बाबूने, जो सम्पादकके रूपमें ख्याति पा चुके है, कहा, "हाँ, ये चूड़े महात्माजीको दे दो।" मुझे खयाल हुआ कि इस उदारताका अर्थ है दूसरेकी हानि। लेकिन श्याम बाबू बोले 'आप मेरी लड़की और दामादको नही जानते। मेरी लड़की यह सुनकर कि रानीबालाने अपने चूड़े आपको दे दिये है, बहुत खुश होगी। मेरे दामाद तो इन्हें दे ही सकते हैं। वे बड़े उदार हृदयके आदमी हैं और सदा गरीबोंकी बड़ी मदद करते हैं।' वे बोलते जाते थे और रानीबालाको चूड़े उतारनेमें मदद तथा उत्साह देते जाते थे। मुझे यह कबूल करना चाहिए कि मैं इससे थोड़ा चकरा गया था। मैंने तो सिर्फ विनोद ही किया था। मैं छोटी लड़कियोंसे सदा ऐसा ही कुछ विनोद करता हूँ और विनोद-विनोदमें उनके दिलमें ज्यादा गहनोंके प्रति अरुचि और गरीबोंके लिए अपने गहने दे देनेकी इच्छा पैदा करता हूँ। मैंने चूड़े वापस करनेका प्रयत्न किया। लेकिन श्याम बाबूने मुझे ऐसा करनेसे यह कहकर रोक दिया कि उनकी लड़की चूडे वापस लेनेके कार्यको अपशकुन मानेगी। मैंने उन्हें अपनी शर्त बताई कि लड़की इन चूड़ोंके बदले जो उसने मुझे दे दिये हैं, दूसरे चूडे न माँगे तो मैं इन्हें ले सकता हूँ। अलबत्ता उसे पसन्द हों तो वह शंखके बने सुन्दर सफेद चूड़े पहन सकती है। लड़की और उसके नाना दोनोंने मेरी यह शर्त स्वीकार कर ली। अस्तु, यह दान उस कुटुम्बके लिए शुभ शकुन था या नही, यह मैं नहीं जानता; लेकिन गरीबोंके और मेरे लिए तो वह शुभ शकुन ही था; क्योंकि इसका दूसरोंपर भी भारी असर हुआ और बर्दवानमें स्त्रियोंकी जिस सभामें मैंने व्याख्यान दिया उसमें मुझे लगभग एक दर्जन चूड़े और दो जोड़ी कानोंके बाले बिना माँगे मिले। यह कहनेकी कोई आवश्यकता नही कि इनका उपयोग बंगालमें चरखा और खादीके प्रचारके निमित्त किया जायगा। मै जितनी भी छोटी लड़कियाँ हैं उनको और उनके माता-पिताओंको और उनके बूढ़े दादा-दादियों या नाना-नानियोंको यह बताता हूँ कि जो लड़कियाँ मुझसे

रानीवालाकी शर्तपर प्रेम करना चाहें मैं उन सबको, फिर वे चाहे जितनी हों अपनी प्रेमपात्री बना देनेके लिए तैयार हूँ। इस ख्यालसे कि उन्होंने अपने कीमती गहने गरीबोंकी सेवाके लिए दे दिये है, उनकी सुन्दरता और भी बढ़ जायेगी। हिन्दुस्तानकी छोटी-छोटी लड़कियोंको यह कहावत सदा याद रखनी चाहिए कि 'सुन्दर वह जो सुन्दर करे'।

ग्यारह दिनकी प्रगति

सत्याग्रहाश्रम स्कूल वहरोकके मन्त्री अपने पत्रमें लिखते है :[1]

निश्चय ही यह प्रगति बहुत अच्छी है। लेकिन उस चमत्कारी कार्यका अन्त ११ दिनमें ही नहीं हो जाना चाहिए। हमपर बहुधा यह आरोप लगाया जाता है कि हम लगातार एक-जैसी शक्तिसे तथा तन्मयतासे कार्य नही कर सकते। मैं आशा करता हूँ कि जिस सुधारका सूत्रपात इतनी अच्छी तरह हुआ है वह जारी रहेगा। मैं जानता हूँ कि एक योग्य कातनेवालेके हाथोंमें एक अच्छा तथा आवाज न करनेवाला चरखा 'एक सतत उल्लास देनेवाली' वस्तु बन जाता है।

प्रतियोगियोंका विश्लेषण

जिन लोगोंने हाथ कताई सम्बन्धी निबन्ध-प्रतियोगितामें भाग लिया है और अपने निबन्ध भेजे हैं। प्रदेशानुसार उनका निम्न विश्लेषण पाठकोंको दिलचस्प होगा। उनकी सूची यहां दी जाती है :

आन्ध्र	४	तमिलनाड	१९
गुजरात	९	बम्बई	४
संयुक्त प्रदेश	३	बिहार	२
बंगाल	३	महाराष्ट्र	३
बर्मा	१	केरल	१
उड़ीसा	२	कर्नाटक	१
पंजाब	५	मध्यप्रदेश (मराठी)	१
सिंध	१	श्रीलंका	१
एक गुजराती (लन्दन)	१	गुमनाम	१
			६२

इसकी यह प्रतिक्रिया प्रतियोगितामें ली जानेवाली दिलचस्पीका एक स्वस्थ चिह्न है। इन निबन्धोंकी अच्छाई या स्तरके बारेमें की गई जांचका फल भी शीघ्र ही मालूम हो सकेगा। परीक्षक महोदय उन्हें जांच रहे हैं।

१. यह यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें मन्त्रीने गांधीजीके वहाँ जानेके बाद राष्ट्रीयशालाके छात्रोंकी सूत कताईकी प्रगतिके विषयमें लिखा था।

बहुत बड़ी फटकार

एक वकील मित्र अपने पत्रमें लिखते हैं:[1]

यदि इस मित्रका यह मानना कि वे बुननेवाले और कताई-विशेषज्ञ न होनेके कारण सूतकी अच्छाई या बुराई नही जान पाते, सच होता तो मेरी उक्तिको 'बहुत बड़ी फटकार' कहा जा सकता था। लेकिन सच बात तो यह है कि सूतका बुनाईके योग्य है या नहीं, यह जानना बड़ा सीधा काम है। मोटे तौरपर देखकर यही बात मालूम हो जायेगी कि सूत एकसार, मोटा-पतला या रोएँदार, कैसा है; और हाथसे जरा खींचनेपर यह पता चल जायेगा कि वह अच्छा बटदार है या नही। इसलिए साधारणतया सूतकी अच्छाई या बुराई जाननेके लिए किसीको बुनकर होनेकी जरूरत नही है। इसके अलावा जो थोड़ा भी सावधान है, वह बुनकरसे अपना सूत दिखा ले सकता है। हजारों कातनेवाले जो आज अच्छा सूत कात रहे हैं, बुनकर नही है और बिना कुछ अधिक कठिनाईके अच्छे और बुरे सूतको पहचान लेते हैं। इस पत्रके लेखकने जो सूत भेजा है, वह सम्भवतः आश्रम पहुँच चुका होगा; लेकिन मैं बराबर सफरमें रहा हूँ; इसलिए मुझे नहीं मिला है। लेकिन अब उन्हें मेरे उपरोक्त सुझावको मान लेना चाहिए। जेलमें हमें मिलके कते सूतका दो गजका एक नमूना दिया जाता था और उस नमूनेका सूत कातनेके लिए कहा जाता था। इस प्रकार जो लोग हिदायतोंके बलपर निर्णय नहीं कर सकते वे मिल-कते सूतका, जिस अंकका सूत कातना चाहें, उस अंकका एक नमूना ले लें और उसी अंक और किस्मका सूत कातनेका प्रयत्न करें। अब शायद यह बात साफ हो गई है कि मैंने उन सदस्योंसे जिन्होंने रस्सी-जैसा खराब सूत भेजा था, यह क्यों कहा था कि उनका सूत सूत ही नही है। मेरी इच्छा किसी भी कातनेवालेके प्रति अन्याय करनेकी न थी। यह दिखानेके लिए भी मुझे फौरन ही इस बातको स्वीकार कर लेना चाहिए कि खराब सूत भेजनेवालोंमें इन वकील मित्रकी तरह कई लोग ऐसे भी होंगे जिन्हें इसका अधिक ज्ञान नही था। लेकिन वे बहुत न होंगे, क्योंकि इन पृष्ठोंमें बार-बार चेतावनियाँ और हिदायतें प्रकाशित की गई है और अ० भा० खादी बोर्डने भी जब सूत उसके पास भेजा जाता था तब पृथक् रूपसे यह सब प्रकाशित किया था।

शालाओंमें कताई

इलाहाबाद नगरपालिकाके स्कूलोंमें कताई शुरू करनेमें जो भारी सफलता मिली है, उसका जिक्र 'यंग इंडिया' में किया जा चुका है। अब पण्डित जवाहरलाल नेहरूने यह रिपोर्ट दी है।

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें पत्रलेखकने 'बुनकरकी शिकायतें' शीर्षक लेखका हवाला देते हुए यह लिखा था: 'मैं आपके इस कथनसे सहमत नहीं हो सकता कि जिस कतैयेका सूत बढ़िया किस्मका नहीं होता, वह लापरवाहीसे या बिना पूरा मन लगाये सूत कातता है और इस प्रकार अपने-आपको और राष्ट्रको धोखा देता है। किसी सदस्यकी सचाई, वह जो सूत कात सका है, उसकी अच्छाई या बुराईसे निश्चित करना, अनुचित होगा। सूतमें जो दोष आ जाते हैं उनका कारण यह हो सकता है कि उसे यह उचित जानकारी न हो कि अच्छे सूतमें कितना बट देना चाहिए।'

लखनऊ, फर्रुखाबाद, बनारस, कानपुर तथा मिर्जापुरके नगरपालिका बोर्ड तथा झांसी, बांदा, बस्ती और आजमबागके[1] जिला बोर्ड अपने स्कूलोंमें कताईकी व्यवस्था कर रहे हैं। ऐसा मालूम होता है कि संयुक्त प्रान्तमें कई स्थानीय निकाय इस बारेमें विचार कर रहे हैं तथा इस विषयमें संयुक्त-प्रान्तीय प्रादेशिक कांग्रेस कमेटीसे लिखा-पढ़ी कर रहे हैं।

मैं इन नगरपालिकाओंको उनके प्रशंसनीय निश्चयपर बधाई देता हूँ। स्कूलोंमें कताई शुरू करनेमें एक गम्भीर अड़चन, जिसकी इलाहाबाद नगरपालिका शिक्षा-विभागने अपनी रिपोर्टमें शिकायत की थी, चरखोंके जल्दी-जल्दी खराब हो जानेकी तथा उनको रखनेके लिए जगह की कमी की भी है। सावधानीसे चलाया जाये तो चरखा खराब नहीं हो सकता। लेकिन जगहकी कमीकी शिकायत सभी शहरोंमें एक बड़ी बाधा है। इसलिए मैं स्कूलोंके अधिकारियोंका ध्यान सुन्दर तकलीकी ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। यह जेबमें रखकर ले जाई जा सकती है, इसे सभी बच्चे एक ही समयमें चला सकते हैं और यह सभी जगह इस्तेमाल की जा सकती है। उदाहरणके तौरपर इलाहाबादके नगरपालिकाके स्कूलोंमें ३,४०० लड़कों और लड़कियोंके चलानेके लिए ३३४ चरखे हैं, लेकिन इनमें से आधे मरम्मतकी आवश्यकताके कारण बेकार रहते हैं। मुझे निश्चय है कि चरखोंसे प्रति लड़का तथा लड़की ४५ मिनटमें १५० गजसे अधिक सूत नहीं काता गया। इसका मतलब है अधिकसे-अधिक ४७,२५० गज प्रतिदिन। इतने समयमें तकलीसे ३० गजसे अधिक सूत न कतेगा। लेकिन पूरे ३,४०० लड़के उसे एक साथ चला सकते हैं। इसलिए तकलीके प्रयोगसे प्रतिदिन १,०२,००० गज अर्थात् चरखेसे तैयार सूतकी मात्राका दुगुना सूत कत जायगा। इसलिए अन्ततोगत्वा स्कूलों तथा ऐसे समूहोंके लिए तकली सूत कातनेका सबसे अच्छा साधन है। तकलीसे सूत कातनेमें पारंगत होनेमें चरखेकी अपेक्षा अधिक समय नहीं लगता। इसलिए मैं सिफारिश करता हूँ कि इलाहाबाद नगरपालिकाके स्कूलोंमें तकली तुरन्त अपनाई जाये। अधिकारी उन विशेष छात्रोंके लिए जो विशेष समय उसके लिए देना चाहते हों तथा बहुत मात्रामें सूत उत्पादन करनेके लिए उत्सुक हों, चरखे कायम रख सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-६-१९२५

१. यहाँ आजमगढ़ होना चाहिए।

१२४. यह पुरुषोंका काम नहीं?

एक प्रोफेसर साहब इस प्रकार लिखते हैं:

स्वयं तो मुझे चरखे और खादीमें पूर्ण विश्वास है। यह बात मेरी समझमें खूब अच्छी तरह बैठ गई है कि सिवाय खद्दरके कोई भी ऐसा सूत्र नहीं है जो उच्च वर्गके लोगोंको आम लोगोंसे जोड़ सकता हो। और ऐसे किसी सूत्रके बिना और एकत्वका अनुभव किये बिना, कोई भी देश किसी भी कार्यको सिद्ध नहीं कर सकता; हिन्दुस्तान तो और भी नहीं। इसके अलावा मैं यह भी अच्छी तरह समझता हूँ कि काफी तादादमें खादीका उत्पादन शुरू हो जानेपर विदेशी कपड़ा आना बन्द हो जायेगा। यदि हिन्दुस्तानको स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है तो उसे खादीके कार्यक्रमपर पूरे तौरपर अमल करना होगा।

लेकिन मेरा खयाल है कि आपने गलत सिरेसे काम करना शुरू किया है। स्वस्थ और सशक्त मनुष्योंको स्त्रियोंकी तरह कातनेके लिए बैठनेको कहना बहुतेरे मनुष्योंको अजीब-सा मालूम होता है। मैं इस व्यंगपूर्ण उक्तिको ठीक मानता हूँ कि आजकल हम लोग औरतोंसे किसी प्रकार भी बढ़कर नहीं हैं। फिर भी हकीकत यह है कि हम लोग उस कार्यको करना स्वीकार नहीं कर सकते जिसे कि सैकड़ों वर्षोंसे स्त्रियोंसे ही सम्बन्धित माना जाता रहा है। और यदि मुझको इसका भी विश्वास दिलाया जा सके कि कमसे-कम भारतवर्षकी सभी स्त्रियोंने कताईको अपना लिया है और फिर भी इस काममें पुरुषोंके हाथ बँटानेकी जरूरत है तो मैं अपने आजके इस खयालको छोड़ देनेके लिए तैयार हो जाऊँगा। बारीक विदेशी साड़ियाँ पहनकर औरतें तो इठलाती फिरें और पुरुषोंसे कातनेके लिए कहा जाये, यह तो उलटी गंगा बहानेके समान ही होगा। इसके अतिरिक्त, विदेशी कपड़ोंके आयातकी जिम्मेवारी पुरुषोंपर उतनी नहीं है जितनी कि स्त्रियोंपर, और इसलिए मेरा यह खयाल है कि खद्दर और चरखेका उपयोग करनेके लिए स्त्रियोंके बजाय पुरुषोंपर दबाव डालना गलत सिरेसे काम शुरू करना होगा।

मेरी विनम्र राय है कि आपको पुरुषोंको तो उन विभिन्न प्रकारके राजनीतिक प्रचारके कार्यमें ही लगे रहने देना चाहिए था, और अपना सन्देशा सीधे-सीधे स्त्रियोंको ही सुनाना चाहिए था। फिलहाल अपने चरखे और खादीके महान् कार्यक्रमको आप स्त्रियोंके क्षेत्रतक ही सीमित करें और पुरुषोंको पुरुषोचित हथियारोंसे ही स्वतन्त्रताकी लड़ाई लड़ने दें।

यह पत्र काफी बड़ा था, लेकिन मैंने उसके तर्कका सार प्रस्तुत कर दिया है, पर उसकी भाषा नहीं बदली है। यह तो स्पष्ट है कि ये विद्वान् प्रोफेसर हिन्दुस्तानकी स्त्रियोंकी हालतसे परिचित नहीं हैं। अगर वे परिचित होते तो उन्हें यह भी खबर होती कि साधारण तौरपर पुरुषोंको स्त्रियोंसे अपनी बात कहनेका सौभाग्य या मौका ही नहीं मिलता। अलबत्ता मेरे सद्भाग्यसे कुछ अंशतक मैं उन्हें अपनी बात सुनानेमें समर्थ हो सका हूँ; लेकिन अनेक सुविधाएँ सुलभ होनेपर भी मेरा सन्देश जितना पुरुषोंतक पहुँच सका है उतना स्त्रियोंतक नहीं पहुँच पाया है। प्रोफेसर साहबको यह भी मालूम होना चाहिए कि स्त्रियाँ पुरुषोंकी इजाजत लिये विना कुछ भी नहीं कर सकतीं। मैं ऐसे बहुत-से उदाहरण पेश कर सकता हूँ कि जिनमें पुरुषोंने स्त्रियोंको चरखा और खादी ग्रहण करनेसे रोका है। तीसरी बात यह कि जो ईजाद और तबदीली पुरुष कर सकते हैं वह स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं। यदि कताई-आन्दोलन सिर्फ स्त्रियोंतक ही सीमित रहा होता तो गत चार वर्षोंमें चरखेमें जो सुधार हुए हैं और जिस प्रकारका संगठित रूप आज उसे मिल सका है, वैसा न मिल पाता। चौथे, किसी भी कामके बारेमें यह कहना कि वह स्त्रियोंका ही है या पुरुषोंका ही है, अनुभवके विरुद्ध पड़ता है। खाना-पकाना मुख्यतः स्त्रियोंका ही काम है। लेकिन जो सिपाही खाना नहीं पका सकता वह किसी भी कामका नहीं है। लड़ाईकी छावनियोंमें खाना पकानेका सभी काम पुरुष ही करते हैं। घरमें तो स्वभावतः स्त्रियाँ ही खाना पकाती हैं; लेकिन बहुत बड़े पैमानेपर व्यवस्थित तौरसे खाना पकानेका काम तो सारे संसारमें पुरुष लोग ही करते हैं। लड़ाईमें लड़ना मुख्यतया पुरुषोंका ही काम है लेकिन इस्लामके प्रारम्भिक युद्धोंमें अरब स्त्रियाँ अपने पतियोंके साथ खड़ी होकर बहादुरोंकी तरह लड़ी थीं। गदरके दिनोंमें झाँसीकी रानीने अपनी बहादुरीके लिए जो नाम पाया वह बहुत ही थोड़े-से पुरुषोंको नसीब हो सका। और आज यूरोपमें हम स्त्रियोंको वकालत, डाक्टरी और प्रशासन-कार्य खूबीसे करते देख-सुन रहे हैं। बाबूगिरीका धन्धा तो आशुलिपि और टाइपिंग जाननेवाली स्त्रियोंने करीब-करीब अपने ही कब्जेमें कर लिया है। कातना पुरुषोचित काम क्यों नहीं है? जो काम हिन्दुस्तानकी आर्थिक और आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है (और प्रोफेसरके मतानुसार चरखा ऐसा कर सकता है।) वह पुरुषोंके लिए काफी पुरुषोचित क्यों नहीं है? क्या प्रोफेसर महोदय यह नहीं जानते कि पहले-पहल जिसने कताईकी मशीनका आविष्कार किया वह पुरुष ही था। यदि उसने उसकी ईजाद न की होती तो आज मनुष्यका इतिहास कुछ और ही प्रकारसे लिखा गया होता। सिलाई और सूईका काम तो मुख्यतया स्त्रियोंका ही है, लेकिन संसारके प्रख्यात् और अच्छेसे-अच्छे दर्जी सब पुरुष ही हैं। और सिलाईकी मशीनका आविष्कारक भी पुरुष ही था। यदि सिंगरने सूईका तिरस्कार किया होता तो आज वह मानव-समाजके लिए यह विरासत न छोड़ गया होता। यदि गत वर्षोंमें औरतोंके साथ-साथ पुरुषोंने भी कताईपर ध्यान दिया होता तो कम्पनी सरकारके दबानेपर हमने आज जो कताईका काम छोड़ दिया है वैसा कभी न छोड़ा होता। राजनीतिज्ञ लोग, जितना चाहें, शुद्ध राजनीतिका काम

करनेमें अपनेको लगा सकते है। लेकिन यदि करोड़ोंके सम्मिलित प्रयत्नसे हमें अपने तन ढकने लायक कपड़ा आप तैयार करना है तो राजनीतिज्ञको, कवि–पण्डित–सभीको, फिर वह स्त्री हो या पुरुष, हिन्दू हो या मुसलमान या ईसाई या पारसी या यहूदी हो, उसे देशके लिए धर्मभावनाके साथ आधा घंटा अवश्य ही कातना चाहिए। मानवताका धर्म किसी एक वर्गका यानी केवल स्त्रियोंका या केवल पुरुषोंका ही अधिकार नही है, वह तो सभीका अधिकार है, फर्ज है। हिन्दुस्तानका मानवधर्म उन सब लोगोंसे जो अपनेको हिन्दुस्तानी कहते हैं इस बातकी अपेक्षा रखता है कि वे कमसे-कम आध घंटा नित्य अवश्य कातें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ११-६-१९२५

१२५. आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली

कविराज गणनाथ सेन लिखते हैं:

> **मैं इस बातकी ओर आपका ध्यान दिलाता हूँ कि अष्टांग आयुर्वेद विद्यालयकी[1] नींव रखते समय आपने जो भाषण दिया था उसका कलकत्ताके वैद्योंने, और जन-समाजने भी बड़ा ही गलत अर्थ लगाया है। क्या आपसे यह निवेदन कर सकता हूँ कि आप बराय मेहरबानी इस बातको स्पष्ट करें कि आपका मतलब आयुर्वेद और सच्चे दिलसे उसको माननेवालोंकी निन्दा करनेका नहीं था। आपने तो उस वर्गकी निन्दा की है जो लोगोंको धोखा देकर इससे आजीविका प्राप्त कर रहा है। मुझे तो यह अत्यन्त आवश्यक मालूम होता है, क्योंकि करीब-करीब तमाम बंगाली अखबारोंने उस भाषणका दूसरा ही अर्थ किया है और उनका प्रतिवाद न करनेके कारण वे हम लोगोंको दोष दे रहे हैं।**

मैं सेन महोदयके सुझावको बड़ी खुशीके साथ स्वीकार करता हूँ। ऐसा करनेका एक बड़ा कारण यह है कि मुझे इससे आयुर्वेद-सम्बन्धी अपने विचारोंको प्रकट करनेका मौका मिलता है।

मुझे शुरूआतमें ही यह कह देना चाहिए कि जिस कारणसे तिब्बिया कालेजका उद्घाटन करनेके सम्बन्धमें मैंने अनिच्छा प्रकट की थी वही कारण इस संस्थाकी नींव रखनेके बारेमें भी था। वह कारण है चिकित्सा-पद्धति सम्बन्धी मेरे सामान्य विचार, जो मैंने 'हिन्द-स्वराज्य' में प्रकट किये हैं। १७ वर्षके अनुभवके बाद भी, आज उनमें कोई बड़ा अन्तर नहीं आया है। यदि आज मैं उस पुस्तकको फिर लिखूँ तो मुमकिन है कि मै उन्ही विचारोको कुछ दूसरी ही भाषामें लिखूँगा। लेकिन जिस तरह मै अपने दिली दोस्त हकीम साहबको इनकार न कर सका, उसी तरह मैं इस दौरेके प्रबन्धकोंकी बात भी टाल न सका। परन्तु मैने उनसे यह कह दिया था कि मेरा भाषण उन्हें प्रतिकूल-सा मालूम होगा। यदि मैं इस प्रकारके अनुष्ठानके सर्वथा

१. देखिए "भाषण: अष्टांग आयुर्वेद विद्यालयके शिलान्यास-समारोहमें", ६-५-१९२५।

विरुद्ध होता तो मैं किसी भी हालतमें इस सम्मानको स्वीकार करनेसे साफ इनकार ही कर देता। जो शर्तें मैंने उस समय सभामें जाहिर की थी उन्ही शर्तोंपर यह विधि सम्पन्न करनेको राजी होना सम्भव था। मुझे आशा है कि जिस संस्थाकी मैंने नींव रखी थी और जिसके संस्थापकने, जो स्वयं एक कविराज है उसके लिए एक *बड़ी भारी रकम दी है, वह सचमुच ही मानवीय कष्टोंको मिटानेमें सहायक होगी;* वह आयुर्वेदका प्रत्यक्ष अभ्यास, संशोधन और नया शोध-कार्य भी करेगी और इस प्रकार इस मुल्कमें जो सबसे ज्यादा गरीब है, उन्हें मामूली देशी दवाओंका ज्ञान प्राप्त करने तथा उन्हें उपयोगमे लानेका सुभीता कर देगी और लोगोंको रोग दूर करनेके उपाय सिखानेके बजाय रोगोको न होने देनेके उपाय बतायेगी।

समूचे चिकित्सा-व्यवसायसे जो मेरा विरोध है उसका कारण यह है कि उसमें आत्माकी ओर जरा भी ध्यान नही दिया जाता और इस शरीर-जैसे नाशवान, क्षणभगुर साधनकी मरम्मत करनेके प्रयत्नमें जो श्रम किया जाता है वह एक नगण्य वस्तुके लिए ही किया गया प्रयत्न है। इस प्रकार यह पेशा आत्माकी उपेक्षा करके मनुष्योको अपना मोहताज बना देता है और मनुष्यके गौरव तथा आत्मसंयमको घटानेमें मदद करता है। मै इस बातका उल्लेख कृतज्ञतापूर्वक करता हूँ कि पाश्चात्य देशोंमें धीरे-धीरे, पर निश्चित रूपसे ऐसे विचारोंके लोग पैदा हो रहे है जो रोगग्रस्त शरीरको अच्छा करनेके अपने प्रयत्नमें आत्माका भी ध्यान रखते हैं और इसलिए वे उपचारके प्रबल साधनके रूपमें दवाओपर उतना भरोसा नही रखते जितना कि कुदरतपर। आयुर्वेदके विद्वानोंसे मेरा विरोध इसलिए है कि उनमें से अधिकांश नहीं तो बहुतेरे तो नीम हकीम ही होते हैं। वे जितना जानते हैं उससे कही अधिक जाननेका दावा करते हैं। वे इस बातका दावा करते है कि वे सब किस्मके रोगोंको निश्चय ही दूर कर सकते है। इन लोगोंमें नम्रता नही होती। वे आयुर्वेद-प्रणालीका अभ्यास नही करते और उसके उन रहस्योंका उद्घाटन करनेका प्रयास नही करते, जो आज संसारकी नजरोंसे बिलकुल ही ओझल प्रतीत होते हैं। वे कहते है कि आयुर्वेद सर्वशक्ति सम्पन्न है, लेकिन बात ऐसी नही है। और ऐसा करके उन्होंने उसे दिन-प्रतिदिन प्रगति करनेवाली यशस्वी पद्धति बनानेके बजाय केवल एक जड़ पद्धति बना दिया है। मुझे एक भी ऐसी महत्त्वपूर्ण शोध या ईजादका पता नही जो आयुर्वेद-विशारदोंने की हो, जबकि पाश्चात्य डाक्टर और सर्जन लोग अनेक उत्तम शोध और ईजादें कर चुकनेका दम भरते हैं। आयुर्वेद जाननेवाले साधारणतया नाड़ी देख कर रोग पहचानते है। मैं बहुत-से ऐसे वैद्योको जानता हूँ जो इस बातका दावा करते है कि वे रोगीकी नाड़ी देखकर ही यहांतक जान लेते है कि उसे 'अपेंडिसाइटिस' है या नही। यह तो कोई नही कह सकता कि पुराने जमानेमें भी कभी नाड़ी-विज्ञान इतना बढ़ा-चढ़ा था या नही कि उस जमानेके वैद्य नाड़ी देखकर ही मुख्य-मुख्य रोगोका निदान कर लेते। परन्तु यह निश्चित है कि आज यह दावा प्रमाणित नही किया जा सकता। आज तो आयुर्वेद जाननेवाले सिर्फ इतना ही दावा कर सकते है कि उन्हे वनस्पति और धातुसे बनी कुछ ऐसी दवाओंका ज्ञान है जो बड़ी कारगर

होती है और यदि उनमें से कुछ रोगीको दी जायें तो वड़ा फायदा पहुचाती है। वे इन रोगोंकी सिर्फ अटकल ही लगाते हैं और इससे वे गरीव रोगियोंके लिए बहुत हानिकर सिद्ध होती हैं। दवाओंके वे विज्ञापन जो कामवासनाको भड़काते हैं, असमर्थतामें अनीतिका समावेश करते है और जो लोग ऐसे उपायोंका अवलम्ब लेते है वे समाजके लिए वास्तविक खतरा वन जाते हैं।

जहाँतक मुझे मालूम है आयुर्वेदाचार्योका ऐसा कोई संघ नहीं है जो इस अनीतिके अनवरत प्रवाहको जिससे कि हिन्दुस्तानियोंका पुंसत्व नष्ट हो रहा है और जिसके द्वारा वहुतसे बूढ़े लोग सिर्फ अपनी काम-पिपासा तृप्त करनेके लिए राक्षस वनकर जी रहे है, रोकनेका प्रयत्न कर रहा हो या विरोधमे स्वर उठा रहा हो। सच तो यह है कि ऐसे वैद्योको मैंने चिकित्सक-समाजमे काफी मान-प्रतिष्ठाका उपभोग करते देखा है। इसलिए जव कभी मुझे मौका मिलता है मैं यही सत्य वैद्यों या हकीमोंको समझानेका प्रयत्न करता हूँ और उनसे निवेदन करता हूँ कि आप लोग सत्य और नम्रता अपनाये और वड़े धैर्यके साथ अनुसन्धान करें। सभी प्राचीन और उदात्त वातें मुझे प्रिय है। मै यह मानता हूँ कि एक समय था जब कि आयुर्वेद चिकित्सा-प्रणाली या यूनानी दवाओंका ध्येय वड़ा अच्छा था और वे प्रगति कर रही थी। एक ऐसा भी समय था कि जब मैं वैद्योमें वड़ा विश्वास रखता था और उनकी सक्रिय रूपसे मदद करता था। लेकिन अनुभवने मेरा भ्रम दूर कर दिया है। वहुतेरे वैद्योंके अज्ञान और अहंकारको देखकर मुझे दुःख हुआ है। ऐसा गौरवपूर्ण व्यवसाय विगडकर मात्र रुपये कमानेका धन्धा वनकर रह गया है, यह देखकर मुझे वड़ा ही कष्ट होता है। मै यह व्यक्तियोंको दोष देनेके लिए नही लिख रहा हूँ। आयुर्वेदाचार्योकी चिकित्सा-प्रणालीका दीर्घकालतक अवलोकन करनेके पश्चात् उसकी जो छाप मुझपर पड़ी है, मैंने उसीको लिखा है। यह कहना कि जिन वुराइयोंका उल्लेख मैंने यहां किया है वे उन्होंने पाश्चात्य डाक्टरोंसे सीखी हैं, कोई ठीक उत्तर नहीं हो सकता। वुद्धिमान मनुष्य जो वस्तु बुरी है उसका अनुकरण नही करता, जो चीज अच्छी है उसीका अनुकरण करता है। हमारे कविराज, वैद्य और हकीम उस वैज्ञानिक भावनाका अनुकरण करें जो आज पश्चिमके डाक्टरोमें दिखाई दे रही है। वे उनकी नम्रताको भी ग्रहण करें। वे देशी दवाओंको ढूँढ़ निकालनेके प्रयत्नमें अपनेको गरीव वना डालें। पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्रका जो भाग हमारे शास्त्रोंमें नही है, उसको वे स्पष्टतया स्वीकार कर लें और उसे अपना ले। लेकिन पाश्चात्य वैज्ञानिकोकी धर्महीनतासे उन्हें वचना चाहिए। वे शरीरके रोगका निवारण करनेके लिए विज्ञानके नामपर छोटे प्राणियोंको वड़ी पीड़ा पहुँचाते हैं और उसे 'पशुओंपर शोध-मूलक प्रयोग' के नामसे पुकारते हैं। कुछ लोग शायद यह कहेंगे कि आयुर्वेदमे भी ऐसे प्रयोगोंका विधान है। यदि यह सच है तो मुझे वड़ा ही अफसोस होगा। भ्रष्ट वस्तु पवित्र नही हो सकती है, उसकी अनुमति भले ही चारों वेदोमें क्यों न हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-६-१९२५

१२६. पत्र : जमनालाल बजाजको

नवाबगंज जाते हुए
ज्येष्ठ बदी ५ [११ जून, १९२५][1]

चि० जमनालाल,

चि० मनहरसे जो पत्र लिखाया था वह तुम्हारे पास है, यह जानकर मुझे बहुत खुशी हुई। कार्यसमितिकी बैठकमें इच्छा होनेपर आनेकी बात बिलकुल ठीक है। मुझे खास जरूरत होगी तो बुला लूँगा। अभी आचार्यकी[2] खोजमें हूँ ही। मैं १६ जुलाईके बाद मध्य प्रदेशको एक महीना दूँगा। मुझे अमरावती और अकोलाकी नगरपालिकाओंके पत्र मिले हैं; प्रेषकोंके नाम तो याद नहीं हैं। जहाँ जाना जरूरी हो वहाँ जानेका कार्यक्रम रखना। पहले तो एक सप्ताह वर्धामें शान्तिसे बितानेकी इच्छा है। वह तो दार्जिलिंगमें जैसा बीता उससे भी अधिक शान्तिका समय माना जाना चाहिए। उसके बाद दौरा शुरू किया जाये। यहाँ १६ जुलाईतक का कार्यक्रम तो है ही। इस १८को कलकत्तेसे असम जाऊँगा और वहाँसे २ जुलाईको कलकत्ता लौटूंगा। तुमने तो बहुत सूत काता है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २८५३) की फोटो-नकलसे।

१२७. पत्र : वसुमती पण्डितको

ज्येष्ठ सुदी ५ [११ जून, १९२५][3]

चि० वसुमती,

तुम्हारे पत्र बराबर मिलते रहे हैं। मैं तुम्हें प्रति सप्ताह एक पत्र तो लिखता ही हूँ। और तुम्हारा पत्र आता है तो उत्तर भी देता हूँ। तुम जब दुकानके कामसे मुक्त हो जाओ तब मैं चाहता हूँ कि कुछ दिनों विश्राम करो। यदि तुम्हें आश्रमका वातावरण अच्छा लगे तो वहीं शान्तिसे रहो। जानकी बहन और जमनालाल दोनों बहुत पवित्र व्यक्ति हैं। जमनालालजी तो बहुत-सी विधवा बहनोंको आश्रय देना चाहते हैं। यदि तुम्हारा शरीर कुछ सबल हो जाये तो मैं तुमसे बहुत काम लेना चाहता हूँ। उसके लिए तुम्हें स्थिर होकर रहनेकी आवश्यकता होगी। मुझे तो

१. डाककी मुहरसे।

२. देखिए "पत्र : जमनालाल बजाजको", ३०-५-१९२५।

३. डाककी मुहर ११ जून, १९२५ की है; तदनुसार तिथि ज्येष्ठ बदी ५ होनी चाहिए, ज्येष्ठ सुदी ५ नहीं।

आश्रममें पहुँचनेमें अभी तीन मास लगेंगे। वक्त इससे ज्यादा तो लग सकता है, कम नही। मैं यह पत्र स्टीमरपर से लिख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४६३) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१२८. भाषण: नवाबगंजके विद्यार्थियोंके समक्ष[1]

११ जून, १९२५

आप सब सूत कातते और खद्दर पहनते हैं, लेकिन मुझे यह बताइये कि आपमें से कितने हमेशा सच बोलते है और कभी झूठ नहीं बोलते?

कुछ लड़कोंने अपने हाथ उठा लिये।

अच्छा तो अब यह बताइये कि आपमें से कितने कभी-कभी झूठ बोलते है?

दो लड़कोंने तुरन्त अपने हाथ उठा दिये, फिर तीन, फिर चार और अन्तमें लगभग सभीने हाथ उठा दिये।

धन्यवाद, आपमें से जो जानते है और स्वीकार करते है कि वे कभी-कभी झूठ बोलते हैं, उनके लिए हमेशा आशा रहेगी। जो यह समझते हैं कि वे कभी झूठ नहीं बोलते, उनका मार्ग कठिन है। मैं दोनोंकी ही सफलताकी कामना करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१२९. सम्मति: दर्शक-पुस्तिकामें[2]

१२ जून, १९२५

मुझे यह देखकर बहुत खुशी हुई कि पिछले चार सालोंसे, यहाँ सूत कातना अनिवार्य विषय रहा है। कताईकी असफलतापर इन्स्पेक्टरकी टिप्पणियाँ मैंने पढी है। मेरे विचार सर्वथा विपरीत हैं, लेकिन मैं जानता हूँ कि कताईको यदि मुनाफेका नहीं तो सर्वथा स्वावलम्बी काम तो बनाया ही जा सकता है। इसके लिए मैं निम्नलिखित सुझाव रख रहा हूँ:

(१) मौजूदा शिक्षकोंको कोई इनाम रखकर या तनख्वाहमें भी थोड़ी बढ़ोतरीका वचन देकर कताईकी कला और शास्त्र सीखनेके लिए प्रेरित करना चाहिए।

(२) लडकोंके काते हुए सूतकी हमेशा जाँच की जानी चाहिए और सूतके कस तथा उसके नम्बरकी पर्ची साथमें लगा दी जानी चाहिए।

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।
२. बिझारी स्कूल, उपाशी, नवाबगंजकी दर्शक-पुस्तिकामें। इस स्कूलमें अनिवार्य विषयोंके रूपमें कताई और बुनाईकी शिक्षा देनेका प्रयोग किया जा रहा था।

(३) लड़कोंको अपने काते हुए सूतकी किस्म उत्तरोत्तर अच्छी बनानेके लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(४) सूत मौजूदा कताई-संस्थाओं, जैसे खादी-प्रतिष्ठान, को तयशुदा दामपर, जो हमेशा कपासके दामसे ज्यादा हो, बेचना चाहिए। उस कामके लिए कपास हमेशा उसी संस्थासे लेनी चाहिए।

(५) मेरा पक्का खयाल है कि बुनाई-विभाग रखना बिलकुल ही जरूरी नहीं है और उसे तभी रखना चाहिए जब उससे बुनाई मास्टरकी तनख्वाह निकाली जा सके। मुझे इस सम्बन्धमें यह वचन पाकर खुशी हुई है कि विदेशी अथवा मिलका सूत अब आगेसे बिलकुल भी काममें नहीं लाया जायेगा।

(६) धुनाईपर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और बालकोंको यह काम स्वयं करना आना चाहिए।

(७) चरखे बड़ी कर्कश आवाज करते हैं, यह विचित्र बात है। ऐसी आवाज अच्छी तरह कातनेमें अवश्य ही बाधक होती है, यह दूर की जा सकती है। यह तो होनी ही नहीं चाहिए। किन्तु यह केवल तभी हो सकता है जब कताई मास्टर कताईका शास्त्र जानता हो। इसमें चरखेकी मरम्मतका काम तो आता ही है। जब चरखे ठीक तरहसे काम करते हैं तो वे एक संगीत पैदा करते हैं जो कानोंके लिए सुखकर होता है। चरखे त्यागका पाठ पढ़ानेके अतिरिक्त बालकोंके लिए आनन्ददायक भी बन सकते हैं।

मैं समिति और शिक्षकोंको उनके इस प्रयोगके लिए बधाई देता हूँ और उनकी पूरी-पूरी सफलता चाहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१३०. पत्र : मणिबहन पटेलको

शुक्रवार, ज्येष्ठ बदी ६ [१२ जून, १९२५][1]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। मैं आज तो जहाजमें हूँ। चूड़ियाँ कलकत्तेमें हैं। मुझे वहाँ १८ तारीखको पहुँचना है। वहाँ पहुँचनेपर उन्हें पार्सलसे भेज दूँगा। परन्तु देवदास आश्रममें न आया हो तो भी पूछताछ कर लेना। उसके नाम आया पार्सल अवश्य रखा होगा, तुम उसे ले लेना।

डाह्याभाईने खेतीका काम पसन्द किया था। मैंने उसे यह सलाह उसीके हितको ध्यानमें रख कर दी थी। परन्तु उसका मन विदेश जानेका ही हो तो मैं उसे रोकना नहीं चाहता। विदेश जानेमें मेरे लिए एक बड़ी कठिनाई यह है कि मुझे किसीसे रुपया माँगना पड़ेगा। कोई उत्साहसे रुपया दे तो भी जहाँतक हो सके हम न लें,

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

यह आदर्श है। इस आदर्शपर टिके रहनेकी हमारी शक्ति न हो तो किसीसे मदद लेकर जानेमें भी कोई आपत्ति नहीं। मुझे वहाँ आनेमें अभी कुछ समय लगेगा। मैं अभी १६ .जुलाईतक बंगालमें हूँ। डाह्याभाई यहाँ आना चाहे तो आ जाये और बात कर जाये अथवा आश्रममें आनेपर करना चाहे तो तब कर ले। हमें उसे किसी भी तरह दुखी नहीं करना चाहिए। मैं उसकी जैसी इच्छा हो वैसा ही करना और मृदुल भावसे उसका मार्गदर्शन करना चाहता हूँ। तीन रास्ते हैं:

१. खानगी नौकरी करना,

२. खेती करना और

३. अमरीका जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करना।

वह इनमें से जो करना चाहे सो करे। उसमें मुझे कोई आपत्ति नही। चौथा रास्ता राष्ट्रकी सेवाका है। किन्तु वेतन लेकर राष्ट्रकी सेवा करना उसे पसन्द नही, इसलिए मैंने वह रास्ता नहीं गिना। क्या उसकी रुचि चिकित्साके अध्ययनमें है? यदि हो तो यहाँ राष्ट्रीय चिकित्सा कालेज है और दिल्लीमें भी एक वैसा ही कालेज है। डाह्याभाई न जानता हो तो उसे बताना। यहाँ (कलकत्ते) का कालेज अच्छा माना जाता है। उसे उसमें अध्ययन करना हो तो वह कर सकता है।

मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। कोई दूसरी खराबी तो नहीं हुई, बीचमें कुछ सर्दी लग गई थी। लोग हर जगह पूरा-पूरा आराम देते हैं।

. . . को[1] नियमपूर्वक पत्र लिखती रहना। इससे उसे सन्तोष मिलता है। . . .[2] प्रेमका भूखा है।

बापूकी सेवा भली-भाँति करना। जब माँ मर चुकी हो, बाप बहुत-सी बाहरी झंझटोंमें फंसा हो, यदि बच्चे सेवाभावी हों तो वे अपनी सेवासे पिताके सब दुःखोंको भुला देते हैं। यह मैं एक आज्ञाकारी पुत्रके रूपमें प्राप्त अपना अनुभव तुम भाई-बहनोंको बता रहा हूँ। इससे बच्चोंका कितना कल्याण होता है, मैं इसका साक्षी भी हूँ। मैं माँ-बापको परमेश्वरकी तरह पूजनेका फल प्रतिक्षण भोग रहा हूँ। मैं तुम दोनोंको यह सब इसलिए लिख रहा हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि बापूपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। मैं तो उसे बँटा नहीं सकता। मैं तो पत्र लिखनेका समय भी नहीं निकाल पाता; इसलिए अपनी जिम्मेदारी भी तुमपर डाल रहा हूँ।

अपने स्वास्थ्यकी खूब सँभाल रखना। पढ़नेमें अधिक समय जाये तो चिन्ता न करना। महादेव कहते थे कि तुम दोनों भाई-बहनोंके अंग्रेजी शब्दोंके हिज्जे बहुत कच्चे हैं। अपनी यह कमी दूर कर लेना। हम जो भी सीखें अच्छी तरह ही सीखें। जहाँ भी शंका हो, वहाँ शब्दकोष देखना। ज्यादा-कुछ करनेकी जरूरत नहीं रहती।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने

१ व २. साधन-सूत्रमें ये स्थान खाली हैं।

१३१. भाषण: भोजेश्वरकी सार्वजनिक सभामें

१२ जून, १९२५

महात्माजी हिन्दीमें[1] बोले और बादशाह मियाँने उसका बंगलामें अनुवाद किया। भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रके[2] लिए धन्यवाद देनेके बाद महात्माजीने कहा कि आपने मुझसे कांग्रेसके सम्बन्धमें बोलनेको कहा है। मैं तदनुसार आपसे यह कहता हूँ कि यदि आप हिन्दुस्तानमें स्वराज्य चाहते हैं तो आपको तीन बातें करनी होंगी। प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे वह राजा हो या किसान, अमीर या गरीब, हिन्दू या मुसलमान, आदमी या औरत, प्रतिदिन कमसे-कम आधा घंटा सूत कातना होगा। सभीको हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करने और अस्पृश्यता-निवारणके लिए प्रयत्न करना होगा।

आप लोग इस बातपर जोर देते हैं कि भारतके अन्य हिस्सोंकी जैसी अस्पृश्यता बंगालमें नहीं है; मगर मुझे इसपर विश्वास नहीं होता। उन्होंने कहा कि हिन्दू धर्म यह कभी नहीं सिखाता कि आपको नामशूद्रों, नाइयों और धोबियोंका छुआ पानी नहीं पीना चाहिए।

इसके बाद महात्माजीने उन्हें सभी बुरी आदतें छोड़नेकी सलाह दी। उन्होंने शराब न पीने और वेश्याओंके यहाँ न जानेको कहा।

कांग्रेसके कार्यका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि जो लोग कांग्रेसको मरी हुई समझते हैं, उनका खयाल गलत है। कांग्रेस मरी नहीं है। उसके कार्यकर्त्ता मृतप्राय हो गये हैं। अबतक लोग समझते थे कि कांग्रेसके कामका मतलब है — भाषण देना और जोश-खरोश पैदा करना। लेकिन यह तो इस महान् राष्ट्रीय संगठनका सच्चा काम नहीं है। कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओंका कर्त्तव्य जनताकी सेवा करना है। इसी मूक और आडम्बरहीन सेवा-भावनाकी कमीके कारण कांग्रेस पिछड़ गई है। उन्होंने कहा कि जबतक कांग्रेसमें पाँच सच्चे कार्यकर्त्ता भी मौजूद रहेंगे तबतक वह मर नहीं सकती। जबतक भारतका एक भी व्यक्ति विदेशी वस्त्र पहनता है तबतक कांग्रेसके पास करनेके लिए कामकी कोई कमी नहीं है।

कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंके कर्त्तव्योंका उल्लेख करते हुए महात्माजीने कहा कि हजारों भारतीय भूखों रह रहे हैं। आप उन्हें चरखा दीजिए। ऐसा करके आप अपने भाइयोंको बचानेमें समर्थ हो सकेंगे[3]।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १६-६-१९२५

१. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

२. यह अभिनन्दन-पत्र दक्षिणपाड़ाके लोगोंकी ओरसे भेंट किया गया था।

३. गांधीजीको यहाँ एक हजार रुपयेकी थैली भेंट की गई थी।

१३२. पत्र : चित्तरंजन दासको

[१३ जून, १९२५ से पूर्व]

मेरे प्यारे दोस्त,

आपके साथ मेरे दिन बहुत ही अच्छी तरह बीते। मैं महसूस करता हूँ कि दार्जिलिंगमें साथ रहनेसे हम एक-दूसरेके ज्यादा नजदीक आ गये है।[1]

जलपाईगुड़ीमें केवल ७,००० रुपयेकी थैली मिली। इसे मैंने सतीश बाबूको इस हिदायतके साथ सौंप दिया है कि इसको जो चरखा-समिति आप नियुक्त कर रहे है, उसे दे दिया जाये। जलपाईगुडीमें भी मुझे वैसा ही तजुर्बा हुआ जैसा अन्यत्र होता है। कातनेवाले वहाँ है, लेकिन उनको संगठित करनेवाला कोई नहीं है। वहाँ लड़कियोंका एक अच्छा स्कूल है। उनके पास करीब बीस चरखे हैं, पर एक भी कामका नही है। बेचारी स्कूलकी मुख्य शिक्षिका हालाँकि खुद अच्छा सूत कातती है, पर अच्छे-बुरे चरखेका फर्क नही जान पाती। चरखोंकी हालतसे समितिको कोई वास्ता नही। अगर विशेषज्ञों द्वारा मार्गदर्शन किया जाये तो आसानीसे इसका इलाज हो सकता है। प्रस्तावित समिति ऐसा मार्ग-दर्शन कर सकती है।

मेरा आग्रह है कि आप चरखा और तकली दोनोंपर सूत कातना सीखें। यदि आप चाहें तो इसे कर सकते हैं; लेकिन आपको इसपर ध्यान देना होगा। यदि गवर्नर कह दें कि 'कातो और जो चाहो ले लो' तो आप चरखेपर २४ घंटे काम करें और सिद्धहस्त बन जायें। यहाँ यही बात गवर्नर नही बल्कि एक ऐसा व्यक्ति जो आपको प्यार करता है और भारतको प्यार करता है, कह रहा है: 'कातो और स्वराज्य प्राप्त करो'। यही तो एक स्थायी महत्त्वका काम हम कर सकते हैं। चरखेके जरिये अपने लिए कपड़े मुहैया करना कोई असम्भव कार्यक्रम नही है। सतीश बाबूने जिस कातनेवालेका वादा किया था, वह हमारे कलकत्ता पहुँचते ही आपके पास आ जायगा। सूत कातना अवश्य सीखिये और धर्मकी भावनाके साथ, ईश्वरके नामपर हजारों लोगोंकी खातिर आधा घंटा अवश्य 'कातिये।'[2] इससे आपको शान्ति और प्रसन्नता मिलेगी। और फिर जब आप कातेंगे तो जिन नवयुवकोंपर आपका इतना अद्भुत प्रभाव है, वे भी कातने लगेंगे। आशा है कि ज्वर आपको फिर नही सतायेगा।

जिस डाकसे आपको यह पत्र जा रहा है उसीसे एक पत्र भोरलालको जा रहा है। हम १८ को कलकत्ता पहुँच रहे हैं। १४ से १६ तक हम बारीसालमें रहेंगे।

१. गांधीजी दार्जिलिंगमें देशबन्धुके साथ ३-६-१९२५ से ६-६-१२५ तक रहे थे, जहाँ देशबन्धु स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। देखिए "दार्जिलिंगके संस्मरण", १०-७-१९२५।

२. देखिए "टिप्पणियाँ", १६-६-१९२५ का उपशीर्षक "दार्जिलिंगमें चरखा।"

कृपया वासन्ती देवीसे अपने हिस्सेके सूतकी पहली किस्त भेजनेको कहिए। मैं चाहता हूँ कि ३० दिनका जमा सूत १००-गजकी लच्छियोंमें सफाईसे अच्छी तरह लिपटा हो। कलकत्ताके मेयरकी पत्नीकी ओरसे प्रथम श्रेणीके सूतसे जरा भी कम दर्जेका सूत स्वीकार नहीं किया जायेगा।

आप सबको सस्नेह।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१३३. भाषण : मदारीपुरकी सार्वजनिक सभामें[1]

१३ जून, १९२५

पतित बहनोंके साथ यह सम्पर्क विशेषकर नौजवानोंके लिए खतरनाक है। आपको केवल इतना ही करनेकी जरूरत है कि स्त्रियोंको यह काम सौंप दीजिये और दूरसे उनका मार्गदर्शन करते रहिए। स्वयंसेवकोंने अपने अभिनन्दन-पत्रमें मुझसे पूछा है कि हम अपना काम आगे कैसे बढ़ा सकते हैं। आप सभीने अहिंसाका व्रत धारण किया है और चूँकि अहिंसा प्रेम है, मैं बता सकता हूँ कि प्रेमके अस्त्रको धारण करके आप अपनी सारी शक्ति कहाँ लगायें। आप उन आदमियोंको जो अपने-आपको और उन औरतोंको बिगाड़ते हैं, समझाइए और उनकी आँखें खोलिए। उन्हें यह बताकर कि उनका अपराध कितना पाशविक और कुत्सित है, उनको बुराईके रास्तेसे हटाइए। पतित बहनोंके पुनरुद्धारके लिए एक महिला स्वयंसेविका संघ बनाया जाना चाहिए, और इस संघके जरिये ही पतित बहनोंके बीच काम करना चाहिए। आपने अपने अभिनन्दन-पत्रमें कहा है कि सरकारने मदारीपुरको सभी क्रान्तिकारी केन्द्रोंमें एक मुख्य केन्द्र करार दिया है। इस बुराईको दूर करनेके लिए भारतकी महिलाओंमें सचमुच एक क्रान्ति लानेकी ही जरूरत है। ईश्वर करे इस क्रान्तिकी आधारशिला रखनेका श्रेय मदारीपुरको ही मिले।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत। गांधीजीने पतित बहनोंका उल्लेख किया, जिनमें से कुछ सभामें एक कोनेमें सूत कात रही थीं।

१३४. भाषण : मदारीपुरके सार्वजनिक पुस्तकालयमें

१३ जून, १९२५

अभिनन्दन-पत्रके जवाबमें महात्माजीने कहा कि अभी भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रसे मुझे बड़ी खुशी हुई है। मैं इसके लिए अवैतनिक सचिवको धन्यवाद देता हूँ। उन्होंने उस लड़कीकी बहुत तारीफ की जिसने उस बाँसकी मंजूषाको रंगीन खद्दर और स्थानीय हाथकते सूतसे सजाने-संवारनेमें इतना श्रम किया। उन्होंने कहा कि सचिवने मुझे जो संक्षिप्त विवरण दिया उससे यह जानकर खुशी हुई कि पुस्तकालयमें काफी संख्यामें पुस्तकें हैं और काफी संख्यामें लोग प्रतिदिन वहाँ सुलभ पुस्तकें, पत्रिकाएँ और समाचारपत्र पढ़ने आते हैं। लेकिन मैं यह जानना चाहता हूँ कि इन पुस्तकों आदिके पढ़नेसे उनको वास्तवमें किस तरहका लाभ होता है। महात्माजीने आगे कहा कि जो भी हो इतना तो स्पष्ट है कि अब पुस्तकालय हमारे नित्यके जीवनके लिए अपरिहार्य हो गये हैं। उन्होंने कहा कि ये पुस्तकालय हमारे जीवनका अभिन्न अंग बन गये है और इस बातसे मुझे सन्तोष हुआ कि इस पुस्तकालयमें तरह-तरहके समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ हैं। इसके बाद महात्मा गांधीने सार्वजनिक पुस्तकालयोंका महत्त्व बतलाया और पुस्तकोंके चयनपर खास जोर दिया।[1] महात्माजीने अभिनन्दन-पत्र तथा भेंट की गई सुन्दर मंजूषाके लिए अवैतनिक सचिवको फिर एक बार धन्यवाद देकर लोगोंसे विदा ली।[2]

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १८-६-१९२५

१. अमृतबाजार पत्रिका, १६-६-१९२५ की एक रिपोर्टके अनुसार गांधीजीने कहा कि "पुस्तकालयमें ऐसी पुस्तकें होनी चाहिए जो पाठकोंको आदमी बननेमें मदद दे सकें।"

२. अवैतनिक सचिवने गांधीजीसे प्रार्थना की कि वे दर्शक-पुस्तिकापर स्वाक्षरोंमें कुछ लिखें। गांधीजीने लिखा : "मैं संस्थाकी पूरी-पूरी सफलता चाहता हूँ।"

१३५. अन्त्यजोंके सम्बन्धमें

एक स्वयंसेवकने मुझसे कुछ सूक्ष्म प्रश्न पूछे हैं। वे उपयोगी हैं इसलिए यहाँ दिये जा रहे हैं:[1]

पहला प्रश्न है:[2]

जहाँ परिषद्के अन्य सदस्य ठहरे हों, वहाँ अन्त्यज सदस्य न ठहर सकें तो यही माना जायेगा कि अस्पृश्यताका निवारण नहीं हुआ है। जिस बातकी स्वतन्त्रता चारों वर्णोंको हो उसकी छूट अन्त्यज भाइयोंको भी अवश्य होनी चाहिए। जहाँ अन्त्यज सदस्य न ठहर सकें, दूसरे सदस्योंका कर्त्तव्य है कि वे वहाँ न ठहरें।

दूसरा प्रश्न है[3]:

जिस प्रकार दूसरे वर्णोंके लोग मर्यादासे एक पंक्तिमें बैठते हैं उसी प्रकार अन्त्यज भाइयोंको भी बैठनेका अधिकार है। किन्तु वैष्णवभाईकी आलोचनाके बाद यह स्वयंसेवक विनयपूर्वक दूसरी जगह जाकर बैठ गया, यह बहुत ठीक किया। शिष्टताका तकाजा है कि सभा-सम्मेलनोंमें बहुमतके सामने अल्पमतको अपना आग्रह छोड़ देना चाहिए। किन्तु इस उदाहरणमें उक्त भाईने केवल एक ही वैष्णवकी आपत्तिको मानकर तदनुसार आचरण किया, यह विशेष-रूपसे स्तुत्य है। किसीको जबर्दस्ती अपने मनके अनुसार चलाना हमारा धर्म नहीं है। हमारा धर्म अन्त्यज भाइयोंकी सेवा और रक्षा करना है। इसलिए हम जिन कठिनाइयोंको दूर न कर सकें हमें उनको स्वयं ही बर्दाश्त कर लेना चाहिए।

तीसरा प्रश्न है[4]:

जहाँ पग-पगपर अन्याय होता हो वहाँ हम जितने अन्यायका निवारण कर सकें उतनेका निवारण करें। हम कोई भी कदम उठायें उसमें कुछ-न-कुछ कमी तो रह ही जायेगी। इसलिए जरूरी हो जानेपर ऐसा कदम ही उठाना चाहिए, जिसमें कमसे-कम अन्याय होता हो।

१. यहाँ नहीं दिये गये हैं।

२. प्रश्न यह था कि क्या परिषद्के अवसरपर अन्त्यज सदस्योंको अपने साथ ठहरानेका ध्यान रखना प्रतिनिधियोंका कर्त्तव्य नहीं था।

३. यह प्रश्न भोजनके समय सवर्णोंके साथ उन प्रतिनिधियोंके बैठनेसे सम्बन्धित था, जो अस्पृश्यतामें नहीं मानते थे।

४. इसमें कहा गया था कि आप सौराष्ट्रके अपने दौरेमें कई बार ऐसे स्थानोंमें ठहर जाते हैं जहाँ अन्त्यजोंको प्रवेश नहीं मिल सकता, और इस खामीकी पूर्तिके विचारसे आप अन्त्यजोंके मुहल्लोंमें जाकर सभा करते हैं, पर जो अन्त्यज उस समय वहाँ आपसे नहीं मिल पाते, वे मिलनेसे ही रह जाते हैं। क्या यह उनके प्रति अन्याय नहीं हुआ?

चौथा प्रश्न है:[1]

जिसे अनुचित कार्य करना है, उसे कोई-न-कोई बहाना तो मिल ही जायेगा। यदि मैं अन्त्यजोंकी बस्तीमें जानेका कार्यक्रम न रखूँ तो मैं उन सबसे मिल नही सकूँगा और वे मुझसे जो-कुछ कहना चाहते हैं, सार्वजनिक सभामें उसे दिल खोलकर कहनेका पूरा अवसर उन्हें नही मिल सकेगा। अन्त्यजोंकी बस्तीमें जानेका एक उद्देश्य इस बातपर जोर देना भी है कि इससे उनको स्वयं अपने रहन-सहनको सुधारनेकी प्रेरणा मिलती है। अन्त्यजोको सार्वजनिक सभामें सम्मिलित करनेका उद्देश्य यह है कि जनसमूह उनकी उपस्थितिको सहन करने लग जाये। इन दोनोंमें से किसी भी उद्देश्यका त्याग नहीं किया जा सकता। इसलिए जिस सार्वजनिक सभामें अन्त्यजोंका बहिष्कार किया जाये उसमें उनका सम्मिलित न होना ही सामान्य रीति मानी जानी चाहिए। यदि अमरेलीमें उक्त स्वयंसेवक द्वारा सूचित की गई घटना घटी हो तो यह दुःखजनक है। गायकवाड़के राज्यमें और वह भी अमरेलीमें अन्त्यजोंको सभामें बैठनेसे रोका जाये, यह असह्य है। 'समुद्रमें लगी आग कौन बुझा सकेगा?' किन्तु इस उदाहरणसे यह बात मेरी समझमें आ गई है कि मुझे कितनी सावधानी बरतनेकी जरूरत है। ईश्वर मेरी सहायता करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-६-१९२५

१३६. स्वयंसेवकके गुण

एक स्वयसेवक लिखते है:[2]

यह ठीक है कि एक बार मैंने स्वयसेवकोके लिए एक दर निश्चित करनेका विचार किया था। मैंने भाई वल्लभभाई और अन्य लोगोंसे इस सम्बन्धमें सलाह भी की थी। किन्तु हम उस बारेमें कोई अन्तिम निर्णय नही कर सके। हमें तब ऐसा लगा था और अब भी लगता है कि गुजरातके लिए बंगाल और महाराष्ट्रका आदर्श बहुत ऊँचा है। उस समय काममें लगे हुए स्वयंसेवकोंसे दस रुपयेमें काम कराना लगभग असम्भव था। उस समय ऐसा लगा कि उक्त वेतनपर देशको ज्यादातर स्वयंसेवकोंकी सेवासे वंचित रह जाना पड़ेगा।

१. लेखकने कहा था, आप अन्त्यजोंके मुहल्लोंमें जाया करते हैं। इससे स्थानीय संकीर्ण तत्त्वोंको यह कहनेका अवसर मिल जाता है कि अब अन्त्यजोंको सामान्य सभामें जानेकी जरूरत नहीं रही है। अमरेलीमें ऐसा ही हुआ था।

२. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने शिकायत की थी कि बंगाल और गुजरातमें स्वयंसेवकोंको अलग-अलग दरोंसे भत्ते दिये जाते हैं। उसने गांधीजीसे प्रार्थना की थी कि वे उनके लिए ऐच्छिक गरीबी-पर जोर दें और निर्वाहके लिए दिये जानेवाले भत्तेकी समान दर निश्चित करें।

कोई आदर्श जब सबके लिए सामान्य आदर्श स्थापित हो जाता है तभी उसके सम्बन्धमें नियम बनाये जा सकते हैं। जबतक आदर्श भिन्न-भिन्न रहता है तबतक उनके सम्बन्धमें नियम नहीं बनाये जा सकते। गुजरातने गरीबीका आदर्श कुछ ही वर्ष हुए स्वीकार किया है। महाराष्ट्र और बंगालने ३० वर्ष या उससे भी पहले गरीबीके आदर्श-को अंगीकार कर लिया था और वहां उसके अनुसार जीवनयापन करनेके लिए बहुत-से युवक तैयार हो चुके थे। बहुत ही ज्यादा गरीबीसे निर्वाह करनेके इस आदर्शको मानकर चलनेवाली संस्थाएँ बहुत कम ही रहेंगी। गुजरातमें तो फिलहाल इस आदर्शके पालनकी आशा व्यक्तियोंसे ही रखी जा सकती है। दूसरे लोग त्याग करें चाहे न करें, सच्चा संयमी तो उसमें अपने संयम या त्यागसे मुंह न मोड़ेगा। जब कुछ गुजराती मरणपर्यन्त अत्यन्त निर्धनतासे जीवन बिताने लगेंगे तभी दूसरे गुजराती बड़ी संख्यामें गरीबीसे जीवनयापन करना स्वीकार करेंगे।

इस समय तो निर्धनताको आदर्श मानकर जिस हदतक उसका पालन कर सकें, करना ही एकमात्र मार्ग है।

हमारे मार्गमें बड़ा विघ्न तो यह आ पड़ा है कि मैं बीमार पड़ गया और अपने ही जीवनमें निर्धनताका प्रयोग पूर्णरूपेण लागू न कर सका। इस समय जो प्रयोग मैं कर रहा हूँ, उसे तो मैं निर्धनताका प्रयोग ही नहीं मानता। मनुष्य अपनी दुर्बलताओंका आरोप दूसरोंपर करता है। जो मनुष्य अत्यधिक ठण्ड महसूस करता है और बहुत-से कपड़े पहनता है, वह यही मानता है कि सभीको उतने अधिक कपड़ोंकी जरूरत है। गर्म पानीसे नहानेवाले मनुष्यको ठण्डे पानीसे नहानेवाले व्यक्तिपर दया आती है; जो किसी सवारीके बिना इधर-उधर नहीं जा सकता, वह दूसरोंसे भी यही अपेक्षा रखता है। मेरी स्थिति भी ऐसी ही दयनीय है।

मुझे ऐसा लगता रहता है कि जो-कुछ मैं खाता हूँ, वह दूसरे लोगोंको भी मिले। मैं दूसरे दर्जेमें यात्रा करता हूँ; इसलिए मैं दूसरोंसे तीसरे दर्जेमें यात्रा करनेके लिए कहनेमें संकोच करता हूँ। मुझे अन्य कई सुविधाओंकी जरूरत जान पड़ती है जो दूसरोंको सुलभ नहीं होती। मैं इस बातको सहन करता हूँ, किन्तु इससे मुझे मनमें संकोच होता है। मैं जानता हूँ कि यह मेरा मोह है, फिर भी वस्तुस्थिति तो यही है। जिस कामको मनुष्य स्वयं नहीं करता या कर नहीं सकता उसकी वकालत वह कितने भी जोरसे क्यों न करे, फिर भी लोगोंपर उसका असर नहीं पड़ता।

इसका अर्थ यह नहीं है कि निर्धनताका जीवन बितानेके सम्बन्धमें गुजरातकी प्रगति मेरे ऊपर निर्भर है। मैंने ऊपर जो-कुछ कहा है वह अपने साथियोंको लक्ष्य करके कहा है। यह इस बातकी स्वीकृति भी है कि मैं स्वयं गुजरातको इस मार्गपर और आगे ले जानेमें असमर्थ हूँ।

जो बात मेरे सम्बन्धमें सत्य है वही मेरे द्वारा स्थापित आश्रमके सम्बन्धमें भी सत्य है। आश्रममें अपरिग्रह इत्यादि व्रतोंके पालनका प्रयत्न पर्याप्त रूपसे किया जाता है। परखे हुए और निर्धनताको प्रतिष्ठित माननेवाले स्त्री और पुरुष आश्रममें रहते हैं। मेरा विश्वास यह है कि ये लोग दंभी नहीं हैं। इसके बावजूद हम सभी जितनी सादगी और गरीबीसे रहना चाहते हैं उसतक नहीं पहुँच पाये हैं। इसलिए सबको

यथाशक्ति प्रयोग करनेकी छूट दी गई है जिससे किसीकी प्रगति न रुके। इसी कारण आश्रममें कुछ लोग स्वयंपाकी हैं। वहाँ प्रति व्यक्तिपर कमसे-कम मासिक खर्च सात रुपया आता है। मैं मानता हूँ कि जो दो-तीन ब्रह्मचारी ऐसा प्रयोग कर रहे हैं, वे बहुत कष्ट उठाते हैं। जो इस हदतक नहीं पहुँच सके हैं वे धीरजसे अपने विशेष व्ययको अनिवार्य समझकर सहन करते हैं और उसमें जितनी कमी हो सकती है उतनी कमी करनेका प्रयत्न करते हैं। किन्तु यह तो मानना ही चाहिए कि यह आदर्शसे बहुत कम है। आश्रममें त्यागवृत्ति बढ़ानेके सम्बन्धमें अनेक प्रयत्न किये गये हैं, किन्तु उनमें बहुत सफलता नहीं मिली है। अपने इस अनुभवके कारण दूसरोंसे अधिक गम्भीर प्रयोग करवानेकी मेरी हिम्मत नहीं पड़ती।

कहा जा सकता है कि जो लोग [इस आदर्शपर चलनेके लिए] तैयार नहीं हैं, उनसे मैं यह क्यों न कहूँ कि वे तैयारी करनेके बाद सेवामें लगें। सार्वजनिक सेवाके सम्बन्धमें ऐसा नहीं किया जा सकता। जहाँ उद्देश्य सेवकोंको ही तैयार करना हो, वहाँ यह नियम लागू किया जा सकता है। किन्तु जहाँ उद्देश्य किसी विशिष्ट कार्यको करना हो वहाँ नीति-नियमोंको भंग किये बिना जो भी स्वयंसेवक मिल सकें और जुटाये जा सकें उनसे ही काम लेना उचित है। हमारा एक उद्देश्य है, अन्त्यज बालकोंको पढ़ाना। इसके लिए केवल त्यागी शिक्षक मिलें तो अच्छा। यदि न मिलें और अपने पास धन हो तो अच्छा वेतन देकर भी चरित्रवान शिक्षक रखने चाहिए। चरखे और खादीका प्रचार करना भी हमारा उद्देश्य है। उसे पूरा करनेके लिए हमें जितनी सुविधा हो, उसके अनुसार जो गरीबीमें नहीं रह सकते ऐसे चरित्रवान सेवक रखने ही चाहिए। सब कामोंको एक साथ करनेका प्रयत्न करनेमें सब-कुछ खो बैठनेकी स्थिति आ जाती है।

इस प्रकार अपने उद्देश्योंकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करते हुए यदि हम गरीबीको भी अपना आदर्श मानकर चलें तो अन्तमें हम उसको भी पा लेंगे — यही मेरा अभिप्राय है और अनुभव भी है।

यह तर्क चाय आदि अन्य वस्तुओंके सम्बन्धमें भी लागू होता है। हम आज लोगोंकी खाने-पीनेकी आदतोंको सुधारने नहीं बैठे हैं। इसलिए हमें चाय पीनेवाले सेवककी सेवाओंको भी अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

ऐसे सब मामलोंमें हमें विवेकसे काम लेनेकी जरूरत है। यह संसार विचित्र है। हममें से कुछ लोग इन अनेक जंजालोंसे अलिप्त रहकर जीवन व्यतीत करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ लोग स्वराज्यका अर्थ धर्मराज्य या रामराज्य समझते हैं। वे अनीतिको कभी सहन नहीं कर सकते। उनकी दृष्टिमें स्वराज्यका मार्ग मोक्षका मार्ग है। स्वराज्य उस मार्गमें एक महत्त्वपूर्ण मंजिल है। उनकी मान्यता है कि वे इस मंजिलको छोड़कर मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। किन्तु स्वराज्यके इस अर्थसे सभी लोग सहमत नहीं हैं। फिर भी वे जिस स्वराज्यको चाहते हैं, उसका समावेश ऊपर दी हुई कल्पनामें हो जाता है, इसलिए उक्त मुमुक्षु उनका साथ नहीं छोड़ सकते। कितने ही ऐसे लोग हैं जो सुराज-उराज कुछ नहीं जानते; पर उनके लिए चरखा सर्वस्व है। वे करोड़पति होनेपर भी चरखा-धर्म स्वीकार करते हैं, वे हिन्दुस्तानकी

गरीबी दूर करना चाहते हैं। इन्हें भी उक्त मुमुक्षु अपने साथ रखना चाहते हैं, क्योंकि चरखा उनके स्वराज्यका एक आवश्यक अंग है। इसलिए वह मुमुक्षु जिससे जितना त्याग मिल सकता है उससे उतना लेकर अपना रास्ता तय करता है और गुरुकी मंजिलोंका बोझ हल्का करता है।

मैं चाहता हूँ कि कोई मेरे इस उत्तरका विपरीत अर्थ न निकाले। यदि आज गरीब सेवकोंका दल मिल सके तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। मैं जानता हूँ कि यदि ऐसा दल मिल जाये तो स्वराज्य बहुत निकट आ जायेगा। लोगोंको यह बात पूर्ण-रूपसे ध्यानमें रखनी चाहिए। किन्तु साथ ही उन्हें अपनी दुर्बलताओं और त्रुटियोंको भी याद रखना चाहिए। यही प्रेमपन्थ है। हमें अपने सम्बन्धमें जितना कठोर होना चाहिए, दूसरोंके सम्बन्धमें उतना ही उदार रहना चाहिए। यह अहिंसाका मार्ग है। हमें अपने त्यागपर कभी अभिमान नहीं करना चाहिए और दूसरोंके कम त्यागका कभी अनादर नहीं करना चाहिए। ऐसा भी होता है कि जो मनुष्य पाँच मन बोझा उठा सकता है उसे अमुक बोझ उठानेमें अपनी पूरी शक्ति नहीं लगानी पड़ती और जो एक मन बोझ उठा सकता है, उसे अपनी पूरी शक्ति लगा देनी होती है। इस मामलेमें एक मन बोझ उठा सकनेवाला मनुष्य ही सच्चा सेवक है। इसलिए हमें दूसरोंका काजी बननेके बजाय अपना ही काजी बनना चाहिए और अपने भीतर त्याग करनेकी जितनी क्षमता हो उसका उपयोग करना चाहिए और दूसरे लोग जितना त्याग करें उसको द्वेषरहित होकर प्रेमपूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

ऊपरके पत्रमें एक प्रश्न है जिसका उत्तर तो दिया जा चुका है। स्वयंसेवकोंका धर्म है कि वे धनी हों या निर्धन, गांवोंमें जाकर गांवोंके लोगोंपर भाररूप हर-गिज न बनें। हमें उनको कमसे-कम तकलीफ देकर निर्वाह करना चाहिए और यदि हम उनको थोड़ा-सा कष्ट दें भी तो उसका बदला अपनी सेवासे दे देना चाहिए। हमें उनको कातने और धुनने आदिकी क्रियाएँ स्वयं प्रयोग करके सिखानी चाहिए और इस प्रकार उनके सूत और पूनियोंका संग्रह बढ़ाना चाहिए। किन्तु इस प्रसंगमें भी हर स्थानमें, हर समय और प्रत्येक व्यक्तिके सम्बन्धमें एक ही नियम लागू नहीं किया जा सकता। गांवोंके लोगोंके मनपर ऐसी छाप नहीं पड़नी चाहिए कि स्वयंसेवक गांवमें मौज करने या सैर-सपाटेके लिए आते हैं। ऐसी बातोंके सम्बन्धमें कोई एकान्तिक सिद्धान्त स्थिर नहीं किया जा सकता। मैं देखता हूँ कि यह नियम कि हमें अपने सत्कारके सम्बन्धमें किसी भी गांवके लोगोंको एक सामान्य मर्यादासे आगे न बढ़ने देना चाहिए, अनुभवसे दृढ़ होता जा रहा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-६-१९२५

१३७. मेरा कर्त्तव्य

एक सज्जन लिखते हैं :[1]

हम देखते हैं कि लेखकने इस पत्रमें एक सामान्य भूल की है; अधिकांश लोग प्राय: यह भूल करते हैं। यह मानना कि उपदेश देनेका बड़ा प्रभाव है, हमारा मिथ्या मोह है। यह मोह इस पत्रमें भी है। हम अनन्त कालसे यही अनुभव करते आ रहे हैं कि उपदेशका प्रभाव बहुत ही कम होता है। आज सैकड़ों साधु उपदेश दे रहे हैं। सैकड़ों ब्राह्मण नित्य, 'गीता', 'भागवत' आदिका पाठ कर रहे हैं। लेकिन कहा यही जा सकता है कि उसका कुछ भी असर नहीं होता। यह सच है कि उपदेशकका कुछ असर होता हुआ हम देखते हैं, लेकिन वह असर उसके उपदेशका नहीं, बल्कि उसके चारित्र्यका होता है। यदि वह जितना आचरण कर सकता है उससे अधिकका उपदेश देता है तो उसका कुछ भी असर नहीं होता। सत्यकी ऐसी ही महिमा है। उसे हम भाषाके आवरणमें कितना ही ढाँकें, वह ढँक नहीं सकता। यदि मुझमें हिमालयपर चढ़नेकी शक्ति न हो और मैं फिर भी दूसरोंको उसपर चढ़नेका उपदेश दूँ तो उसका कुछ भी असर न होगा। लेकिन यदि मैं उसपर केवल चढ़कर दिखाऊँ तो सैकड़ों लोग मेरा अनुगमन करेंगे। मनुष्यकी करनी ही सच्चा उपदेश है।

दूसरे, मनुष्यमें कोई विशेष उपदेश देनेकी योग्यता भी होनी चाहिए। मैं पशु-हिंसा नहीं करता। फिर भी मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मुझमें पशु-हिंसाको बन्द करानेकी योग्यता नहीं है। मैं यह जानता हूँ कि पशुओंके प्रति हमारा कुछ कर्त्तव्य है। लेकिन मैं दूसरोंको उसे समझानेमें असमर्थ हूँ। उसके लिए तो मुझमें बहुत अधिक पवित्रता, बहुत अधिक दयाभाव और बहुत अधिक संयम होना चाहिए। उसके बगैर मुझे सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता और उस ज्ञानके बिना मुझे उपयुक्त भाषा प्राप्त नहीं हो सकती।

बिना ऐसा ज्ञान प्राप्त किये आत्मविश्वास उत्पन्न नहीं होता। मैं पशु-हिंसाका त्याग करानेकी शक्ति रखता हूँ, यह आत्मविश्वास मुझमें नहीं है।

लेकिन मैं तो ईश्वरको माननेवाला हूँ। मुझमें पशु-सेवाकी वृत्ति बहुत तीव्र है। मनुष्य तो अपना दुःख व्यक्त कर सकता है और उससे मुक्त होनेका कुछ प्रयत्न भी कर सकता है। पशुओंमें यह शक्ति नहीं होती, इसलिए उनके प्रति हमारा कर्त्तव्य दुहरा है। लेकिन यह जानते हुए भी और उसके लिए शक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हुए भी, मुझे उनकी सेवा करनेकी शक्ति न होनेके कारण बड़ी लज्जा मालूम होती है। लेकिन उसके लिए मैं ईश्वरको दोष देता हूँ। उसने मुझमें ऐसी शक्ति क्यों नहीं दी? इसके लिए मैं उससे हमेशा झगड़ता हूँ और विनय करता हूँ। लेकिन

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने गांधीजीसे निवेदन किया था कि चूँकि बंगालमें पशु-हिंसा बहुत होती है; अतः वे बंगालके लोगोंको जीव-हिंसा बन्द करनेका उपदेश दें।

ईश्वर तो अपनी मर्जी चलाता है। जब वह किसीकी नहीं सुनता, तब मेरी क्यों सुनेगा? ऐसा हो सकता है कि वह मेरी बात औरोंसे जल्दी सुन ले। लेकिन जब वह मुझमें ऐसी शक्ति देगा तब मैं इन सज्जनको विश्वास दिलाता हूँ कि उनके कहनेकी राह न देखूंगा। तबतक मेरी तपश्चर्या जारी रहेगी। मैं जिस कार्यमें आज संलग्न हूँ, क्या उसे करते-करते ही मुझमें यह सेवा करनेकी शक्ति नहीं आयेगी? मेरा विश्वास है कि मैं कृपण नहीं हूँ। मैं अपनी सब शक्तियोंको कृष्णार्पण कर चुका हूँ। इसलिए यदि मुझमें पशु-हिंसाको बन्द करानेकी शक्ति आ जायेगी तो मैं उसका उपयोग करनेमें विलम्ब न करूँगा।

लेकिन इस बीच जो अपरिहार्य है, उसे तो सहन ही करना चाहिए। इस संसारमें अनेक स्थानोंपर निर्दोष मनुष्योंपर अत्याचार किये जा रहे हैं, हम उन्हें बन्द करानेका दावा कहाँ करते हैं? हम यह समझकर कि यह हमारी शक्तिके बाहर है, जगतका कल्याण चाहते हुए भी चुप रहते हैं। हम अशक्तिके कारण ही देश-भक्तिको एक अलग गुण मानकर विकसित कर रहे हैं। लेकिन देशभक्ति धर्मसम्मत है। उससे जगतका अकल्याण नहीं होता। संसारका अकल्याण करके अपने देशका हित साधन करना मिथ्या देशभक्ति है। लेकिन स्वदेशकी धर्मसम्मत सेवामें जिस प्रकार संसार-भरकी सेवाका समावेश हो जाता है उसी प्रकार मेरी मनुष्य-सेवामें पशु-सेवाका भी समावेश हो जाता है। यह मेरी मान्यता है; क्योंकि मनुष्य-सेवा और पशु-सेवामें कोई विरोध नहीं है।

आज हमारे देशमें एक प्रकारका धर्माडम्बर फैला हुआ है। हम दयाके उन कार्योंको तो करनेका विचार करते हैं जिन्हें हम कर नहीं सकते और जिनके करनेका कुछ अर्थ नहीं है; लेकिन दयाके उन कार्योंको नहीं करते जिन्हें हम कर सकते हैं। धीरा भगतकी[1] भाषामें कहें तो हम निहाईकी चोरी करते हैं और सूईका दान करनेका ढोंग करते हैं। 'गीताकी' भाषामें कहें तो स्वधर्मका, जो हमारे लिए सुलभ है, थोड़ा-सा भी पालन करना छोड़कर हम परधर्म पालनके बड़े-बड़े विचार करते हैं और 'इतोभ्रष्टस्ततोभ्रष्टः' हो जाते हैं। ऐसी भूलोंसे हमें बचना चाहिए, यह बात समझानेके लिए ही मैंने पूर्वोक्त सुझावका उत्तर देना और यह दिखानेका प्रयत्न करना उचित समझा कि मैं पशु-हिंसा बन्द करानेके श्रेष्ठ धर्मका पालन क्यों नहीं आरम्भ करता।

हम जगतके कर्त्ता नहीं हैं। हम सर्वशक्तिमान भी नहीं हैं। हम लोगोंमें जो शक्ति है यदि हम उसका सदुपयोग करें तो वह शक्ति आप ही बढ़ेगी और हम ईमानदार होंगे तो इस शक्तिके बढ़नेपर उसका उपयोग अवश्य करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-६-१९२५

१. गुजराती कवि।

१३८. भाषण: बारीसालकी सार्वजनिक सभामें[1]

१४ जून, १९२५

संयुक्त रूपसे उत्तर देते हुए, श्री गांधीने कहा कि जब मैं पिछली बार यहाँ आया था तो अश्विनीकुमार दत्त जीवित थे, यद्यपि वे पूर्णतया स्वस्थ नहीं थे। वे एक असाधारण पुरुष थे। उनमें अनेक गुण थे। उन्होंने अनेकों संस्थाओंकी संस्थापना की थी। उन्होंने देशकी खातिर कष्ट सहे और अनुपम त्याग किया था।

श्री गांधीने कहा कि मेरा खयाल है कि ऐसे चरित्रवाले व्यक्तिकी स्मृतिको स्थायी बनाना हमारा परम कर्त्तव्य है; लेकिन यह जानकर मुझे खेद हुआ कि उनका स्मारक बनानेके लिए धन-संग्रहके जो प्रयत्न किये गये, वे सफल नहीं हो पाये। मैंने खेद सहित सुना है कि पर्याप्त धन नहीं मिल पाया है। पिछली बार बारीसालमें मैंने जो-कुछ देखा था, वह मुझे अच्छी तरह याद है। खेद है कि इस बार अलीबन्धु मेरे साथ नहीं हैं। मुझे इन चरखोंसे सन्तोष नहीं है, यद्यपि यह जानकर खुशी हुई है कि इस जिलेमें तैयार सूत अन्य जिलोंके सूतसे कहीं अच्छा है।

श्री गांधीने अनुरोध किया कि आपको बेलगाँव कांग्रेसके प्रस्तावका पालन करना चाहिए और शीघ्र ही ज्यादा अच्छा काम करके दिखाना चाहिए। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि बारीसालमें अस्पृश्यताकी समस्या मद्रास-जैसी टेढ़ी नहीं है और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके पारस्परिक सम्बन्ध उतने खराब नहीं हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६-६-१९२५

१३९. सम्मति: फादर स्ट्राँगको

[१४ जून, १९२५]

ऑक्सफोर्ड मिशनके फादर स्ट्राँगने गांधीजीको बुनाईका काम देखनेके लिए अपने यहाँ आमन्त्रित किया था। गांधीजी थोड़ी देरके लिए वहाँ गये थे। फादर स्ट्राँगने उनको बुनाई विभाग दिखाया। गांधीजीने उनसे कहा:

लेकिन यह सब मिलका सूत है और अगर आप मिलका सूत इस्तेमाल करते हैं तो इससे लाखों लोगोंको नहीं करोड़पतियोंको ही लाभ पहुँचता है। इस तरह बुनाईको लाखों लोगोंका एक कुटीर-उद्योग नहीं बनाया जा सकता। उनके लिए तो कताई ही एकमात्र अनुपूरक धन्धा बन सकता है। लॉर्ड कर्जनके अनुसार एक भार-

१. यह भाषण नगरपालिका, स्वागत-समिति और समाज सेवक संघकी ओरसे दिये गये अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें दिया गया था। लगभग ५,००० लोग सभामें मौजूद थे।

तीयकी सालाना औसत आय ३० रु० है, पर हमारे हिसावसे २६ रु० ही है। और यदि आम जनताकी औसत आय यही है तो इसमें से उच्च वर्गोंकी आय निकाल देने-पर आम जनताकी वास्तविक आय और भी कम वैठेगी। फिर यदि सूत कातकर आप इस आयमें १० रु० और जोड़ सकें तो क्या यह उन लोगोंके लिए एक वड़ी वात नहीं होगी? आपको तो ५ रुपयेसे शायद कोई अन्तर न पड़े, पर जो विलकुल खाली हाथ हैं, उनके लिए तो पाँच रुपये एक वड़ी रकम है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१४०. पत्र : राजा महेन्द्र प्रतापको

[१५ जून, १९२५ या उससे पूर्व][1]

आप मुझे जब-तव लिखते रहे हैं। मैं जानता हूँ कि जीवनके वारेमें हमारे दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं। मैं जानता हूँ कि जितने लोग हैं उतने ही सोचनेके तरीके हैं। लेकिन जैसे एक ही समयमें, एक ही परिस्थितिमें और एक ही जगहपर सर्दी और गर्मीका साथ-साथ रहना सम्भव नहीं, इसी तरह एक ही समय, स्थान और एक ही परिस्थितिमें हिंसा और अहिंसाका एक साथ रहना असम्भव है।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१४१. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

वारीसाल

१५ जून, १९२५

प्रिय पण्डितजी,

आपके पत्रमें जवाहरको फिरसे वुखार आनेकी वात पढ़कर मुझे वड़ा संताप हुआ। आशा है कि पत्र लिखनेके वाद आप दोनों शीघ्र ही स्वस्थ हो गये होंगे और अव स्फूर्तिदायक जलवायुका आनन्द ले रहे होंगे।

ख्वाजाके[2] सम्वन्धमें मैंने आपको तार[3] दे दिया है। वे मुझे जिम्मेदारी सौंपने-की गलती कर रहे हैं। लेकिन अगर उन्हें यह करना ही हो तो मैं क्या कह

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२. जामिया मिल्लिया इस्लामिया, अलीगढ़के ए० एम० ख्वाजा।

३. यह तार उपलब्ध नहीं है।

सकता हूँ? परन्तु उनके स्थानपर बैठकर मैं करूँ क्या? यदि जामिया असहिष्णुताकी भावना पैदा करती है, तो यह ख्वाजाका ही तो दोष है। वह उसके प्रधान हैं। उसकी शुरुआत भलेसे-भले मुसलमानोंने की थी। अगर उसमें बुराई आ गई हो तो सुधार किया जा सकता है, लेकिन मेरी रायमें उसकी तरफसे ऐसी लापरवाही नहीं की जानी चाहिए कि वह खत्म ही हो जाये। इसलिए उसे ख्वाजाका पूरा समय और ध्यान माँगनेका हक है और तभी वह फलफूल सकती है। ख्वाजा केवल नामके प्रधान तो नहीं हैं। वे तो इस आन्दोलनके प्राण हैं। वे प्रशासक भी हैं। इसलिए मैं सिद्धान्तके आधारपर नहीं, नीतिके आधारपर ही आपत्ति उठा रहा हूँ और इस मामलेमें अभी नीति तो सिद्धान्तसे भी अधिक महत्त्व रखती है। ख्वाजाके सामने अब चुनाव करानेका बस यही मार्ग रह गया है कि वह कालेजके लिए अपने समान ही योग्य अन्य व्यक्ति ढूँढ़ लें।

और फिर मैं अकेला ही तो सलाह देनेवाला नहीं हूँ। ख्वाजा यदि अली बन्धुओंसे मशविरा न करें तो भी हकीम साहब और डा० अन्सारीसे तो करना पड़ेगा। वे उनके सहन्याली हैं। आशा है कि अब आप मेरी कठिनाई समझ गये होंगे। मुझे लगता है कि मैं पूरे दिलसे इस पक्षकी मदद कर रहा हूँ। मैं अपने मित्रोंके सन्तोषको बड़ा महत्त्व देता हूँ, पर मैं इस संस्थाकी सहायता अपने मित्रोंके संतोषकी अपेक्षा अपने स्वयंके संतोषके लिए ही अधिक करना चाहता हूँ।

अगर इससे उन्हें स्वतन्त्र निर्णय करनेमें मदद मिल सके तो आप इस पत्रको ख्वाजाको दिखा सकते हैं।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[पुनश्च:]

आशा है कि आपके पहले पत्रके उत्तरमें लिखा मेरा पत्र आपको मिल गया होगा।[2]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. गांधीजीने २३ मईको ख्वाजाको एक पोस्टकार्ड लिखा था लेकिन वह उपलब्ध नहीं है। २५ को इसकी प्राप्ति स्वीकार करते हुए, ख्वाजाने लिखा था, "पण्डित मोतीलाल नेहरू मुझे राज्य परिषद्के लिए खड़ा करनेपर जोर दे रहे हैं। मैंने आपके आदेशकी माँग की थी, क्योंकि मैंने उन्हें लिखा था कि मैंने एक वर्षतक के लिए अपनी सेवाएँ आपकी मर्जीपर छोड़ दी हैं। आपकी अनुमतिके बिना मैं कुछ भी नहीं करूँगा। पहाड़ जाते समय रास्तेमें पण्डितजीसे मेरी मुलाकात हो गई और उन्होंने आपकी इजाजत लेनेकी जिम्मेदारी अपनेपर ले ली है, किन्तु मैंने आपसे कोई आदेश मिले बिना इसकी घोषणा नहीं की है।

१४२. पत्र : मदाम आँत्वानेत मिरबेलको

[स्थायी पता : साबरमती]
१५ जून, १९२५

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई।[1] लेकिन केवल मुझसे मिलनेके उद्देश्यसे एक इतनी लम्बी और खर्चीली यात्रा करनेके लिए मैं आपको उत्साहित नहीं करूँगा। और न ही आपकी आत्मिक उन्नतिके लिए आपका मुझसे मिलना आवश्यक है। वह तो ईश्वरके नामपर की गई सेवाका फल है।[2]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मदाम आँत्वानेत मिरबेल
१००, रचू ब्रूल मेजाँ
लाइल -- नॉर्ड, फ्रांस

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१४३ : पत्र : शरतचन्द्र बोसको

१५, जून, १९२५

प्रिय शरत् बाबू,

मुझे खुशी है कि आप तुरन्त ही यह समझ गये कि दूसरी सभा करना एक जवाबी प्रदर्शन ही माना जायेगा। अहिंसा तो प्रेम है। वह मौन और करीब-करीब गुप्त रूपसे अपना असर पैदा करती है। कहावत भी है कि दाहिना हाथ नहीं जानता कि बाँया क्या दे रहा है। मित्रों और सगे-सम्बन्धियोंके बीच प्रेमका कोई करिश्मा नहीं

१. २६ जनवरी, १९२५के इस पत्रमें मिरबेलने अपना तथा एक ३६ वर्षीय विवाहिता महिलाका परिचय दिया था जो अपने धर्मकी धर्मान्धता और अनुदारतासे हताश और थियोसोफीके साहित्यसे बहुत प्रभावित थीं। अपने 'करुणामूर्ति गुरु' की खोजमें ११ साल इन्तजार करनेके बाद वह गांधीजीकी शिष्या बनना चाहती थी और चाहती थी कि गांधीजी उनके आश्रम पहुँचनेकी कोई तारीख तय कर दें।

२. इसका जवाब मिरबेलने ६ जुलाईको दिया। देखिए खण्ड २८, "पत्र : मदाम आँत्वानेत मिरबेलको", १३ अगस्त, १९२५।

होता। वे एक-दूसरेको स्वार्थवश प्यार करते हैं, प्रबुद्धताके आधारपर नहीं। वह तो तथाकथित विरोधियोंके बीच ही अपना करिश्मा दिखाता है। इसलिए जरूरत इस बातकी है कि आदमी जितनी भी दयालुता और दानवीरता दिखा सकता है वह सारीकी-सारी अपने विरोधी या आततायीके प्रति दिखाई जाये।

उपर्युक्त बातोंको ध्यानमें रखते हुए कृपया विचार कीजिए और निम्नलिखित उन आरोपोंका उत्तर दीजिए जो कल आपके चले जानेके बाद उन्होंने आपपर लगाये थे।[1]

इन आरोपोंमें से एकपर भी विश्वास करना मेरे लिए असम्भव है। आपको अभी इनका उत्तर देनेकी जरूरत नहीं। जब मैं आपके पास आऊँ तब आप जवाब दे सकते हैं। लेकिन यदि आप कोई दो टूक जवाब लिखित रूपमें देना ही चाहें तो दे सकते हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

१४४. एक पत्रके बारेमें[2]

[१६ जून, १९२५से पूर्व]

सरदार जोगेन्द्रसिंहका यह पत्र[3], जिसे उन्होंने अपने अन्तस्तलसे लिखा है, मैं बड़ी खुशीके साथ छाप रहा हूँ। मैं उनकी सलाहकी कद्र करता हूँ। सरदारजीने जिस बातचीतका जिक्र किया है वह मुझे अच्छी तरह याद है। वे स्वराज्यवादियोंके साथ समझौतेके[4] औचित्यपर आपत्ति करते हैं। इस समझौतेको हुए अब नौ महीने हो चुके हैं, परन्तु मुझे उसपर अफसोस होनेका कोई कारण नहीं दिखाई दिया। मैंने किसी उसूलको कुरबान नहीं किया है। कांग्रेसपर किसी एक आदमीका इजारा नहीं है। वह लोकतन्त्रात्मक संस्था है और मेरी रायमें उसका मताधिकार इतना व्यापक

1. साधन-सूत्रमें यहाँ एक वाक्य और है, जो स्पष्टतः ही महादेव देसाईका लिखा है। वाक्य इस प्रकार है, वे आरोप हैं, रचनात्मक कार्यक्रममें बाधा डालना, कांग्रेस-सदस्योंको धोखा देना, बिना अधिकार खर्च करना, कांग्रेसका फर्नीचर लौटानेसे इनकार करना आदि।

2. जिस लेखपर गांधीजीने यह टिप्पणी लिखी है, वह चि० र० दासकी मृत्यु अर्थात् १६ जून, १९२५ से पूर्व लिखा गया था।

3. पत्रके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट १।

4. देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ३०७-८।

और इतना बुद्धि-सम्मत है, जितना दुनियामें अबतक कहीं देखनेमें नही आया; क्योंकि यह मताधिकार शारीरिक श्रमके गौरवको वैधानिक स्वीकृति देता है। मैं तो यह चाहता था कि यही एक-मात्र कसौटी होती। असत्य और हिंसाका आधार लेकर चलनेवालोंको छोड़कर उसमें सब प्रकारके मतावलम्बियोंका समावेश होता है। स्वराज्य-पार्टीवालोंको मतदानके आधारपर अपनी बात मनवानेका पूरा अधिकार था। मैं उसके लिए तैयार न था; क्योंकि मैंने देखा है कि इस तरह राय लेनेसे लोगोंमें नीति-भ्रष्टता फैलती है — उस अवस्थामें तो और भी, जबकि मतदाता स्वतन्त्र रूपसे निर्णय करनेके आदी न हों। एक विचारवान् आदमीकी तरह मैं स्वराज्यवादी लोगोंकी बढती हुई शक्तिको माने बिना नही रह सकता था। वे रचनात्मक कार्य-क्रमको प्रधान स्थान देनेके लिए रजामन्द थे। उनसे इससे अधिक उम्मीद नही की जा सकती थी। यदि मैंने उन्हें मतदानके जरिये फैसला करनेपर मजबूर किया होता तो उन्होंने कौंसिल-प्रवेशको राष्ट्रीय कार्यक्रम बना लिया होता — इतना ही नहीं, लड़ाईके आवेशमें उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रमको ही किनारे उठाकर रख दिया होता या उसे एक नगण्य स्थान दे दिया होता। यह तो हुई सिद्धान्तकी बात।

व्यवहारमें इसी समझौतेके द्वारा अधिकांशतः परिवर्तनवादी और अपरिवर्तन-वादी लोगोंका मनमुटाव दूर हो गया है। इसके द्वारा दोनों दलोंके लोग परस्पर मेल रखते हुए संयुक्त कार्यक्रमपर अमल करने लगे हैं। इस समझौतेके लाभ दक्षिण भारतमें साफ नजर आ रहे हैं। बंगालमें भी देख रहा हूँ। मैं इस रायसे सहमत नही हूँ कि स्वराज्यवादी असफल हुए हैं। चुनावकी धूमके समय दिये वादोंको मैं बहुत महत्त्व नही देता। यह एक मानी हुई प्रथा है कि शादीके समय की गई प्रतिज्ञाओं-की तरह चुनावके समय दिये गये वचनोंको अत्यधिक महत्त्व नही देना चाहिए। यदि हम एक बार इस बातको कबूल कर ले कि कौंसिल-प्रवेश हर दृष्टिसे बुरा नहीं है तो फिर स्वराज्यवादियोंको कौंसिलोंमें किये गये अपने कामपर शर्मिन्दा होनेकी कोई वजह नही। उन्होंने कौंसिलोंमें अपने विचार निर्भीकताके साथ प्रकट किये हैं। उन्होंने सरकारको मतदानमें बार-बार हराया है। उन्होंने यह दिखला दिया है कि सरकारपर स्वयं उसके बनाये मतदाताओंका भी विश्वास नही है। उन्होंने अनुशासन और सुदृढ़ ऐक्यका जैसा परिचय दिया है वैसा आजकल कौंसिलके सदस्य कही नहीं दे पाये हैं और सबसे बढ़कर (कमसे-कम मेरे लिए) उन्होंने उन शानदार वर्जित स्थानोंमें खादीका प्रवेश करा दिया है और वहाँ जाते हुए वे अपना रोजमर्राका राष्ट्रीय लिबास पहनते हुए नही सकुचाये हैं, हालांकि एक जमाना था जब उस लिबासमें वहाँ जाते हुए लोग डरते या शरमाते थे। उस लिबासको हम लोग सिर्फ घरपर ही पहनते थे। क्या स्वराज्यवादियोंकी कार्रवाइयोंने सरकारको सोचनेपर मजबूर नही कर दिया है? हाँ, यह सच है कि सरकारने लोकमतकी परवाह नही की है। यह भी सच है कि खिलाफ राय होते हुए भी उसने अपनी ही मनमानी की है। पर स्वराज्यवादी क्या कर सकते थे? यदि उनके पास शक्ति होती तो वे सरकार-का तख्ता उलट देते और उसके मतका अनादर कर देते। वह शक्ति आना अभी

बाकी है। वह धीरे-धीरे, परन्तु निश्चित रूपसे आ रही है। सरकार जानती है कि वह सदा-सर्वदा लोकमतके खिलाफ जानेकी जुर्रत नहीं कर सकती। स्वराज्यवादियोंने उसे उसकी स्थितिकी कमजोरीका भान पहलेसे अधिक करा दिया है। मेरा उनके साथ राजनैतिक मतभेद है। परन्तु उनकी दिलेरी, अनुशासन-प्रियता और देशभक्तिका मैं आदर करता हूँ। और अपने सिद्धान्तकी रक्षा करता हुआ मैं उस दलको सशक्त बनाने और उसे सहायता पहुँचानेकी भरसक कोशिश करनेको तैयार हूँ। मैं कांग्रेस-का प्रधान तभीतक हूँ जबतक वे मुझे वहाँ रखना चाहें। जहाँ मैं उनकी सहायता नहीं कर सकता वहाँ मुझे उनके काममें बाधा हरगिज नहीं डालनी चाहिए।

मेरे नजदीक तो अहिंसात्मक असहयोग एक धर्म है। मैं सरदारजीके इस कथन-का हृदयसे समर्थन करता हूँ कि "असहयोग सार-रूपमें सहयोग ही है और सैन्य-बलसे अधिक सशक्त है।". यदि मैं भारतके अधिकांश शिक्षित समुदायको अपने मतका बना सकूँ तो स्वराज्य और अधिक प्रयत्नके बिना हासिल हो सकता है। मेरा यह विश्वास दिनपर-दिन दृढ़ होता जा रहा है कि अहिंसाके बिना भारतको ही क्या, सारी दुनियाको, शान्ति और सुख नहीं मिल सकता। इसलिए मेरे नजदीक चरखा केवल सादगी और आर्थिक स्वाधीनताका ही प्रतीक नहीं है, बल्कि शान्तिका भी प्रतीक है। क्योंकि यदि हम हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी और यहूदी — सब मिलकर भारतके घर-घरमें चरखा फैला दें तो हम न केवल सच्ची एकताको मूर्तिमन्त कर सकेंगे और विदेशी कपड़ेको देशसे हटा सकेंगे, बल्कि हम आत्मविश्वास और संगठन-क्षमता भी प्राप्त कर लेंगे, जिसकी बदौलत हिंसाका जरा भी सहारा लिए बिना स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है। इसलिए मेरी दृष्टिमें चरखेकी सफलताका अर्थ है अहिंसाकी विजय — ऐसी विजय जो कि सारी दुनियाके लिए एक पदार्थ-पाठ होगा।

सरदारजी सलाह देते हैं कि चरखेके साथ ही गाँवोंमें बिजली भी दाखिल की जाये। मेरा खयाल है कि वे पंजाबके थोड़ेसे गाँवोंको ही जानते हैं। यदि वे मेरी तरह भारतके जीवनसे परिचित होते तो वे बिजलीकी बात इतनी निश्चयात्मकताके साथ न लिखते। भारतकी मौजूदा स्थितिमें हमारे देहातोंमें घर-घर बिजली पहुँचाना व्यवहारतः नितान्त असम्भव है। हो सकता है कि वह समय भी आए। पर वह तब-तक नहीं आ सकता जबतक चरखा घर-घरमें प्रविष्ट न हो जाए। इसलिए मैं महत्त्व-हीन, छोटे-छोटे या बेमतलबके मसलोंको उठाकर और झूठी उम्मीदें दिलाकर लोकमत-को भ्रमित नहीं करना चाहता। यदि चरखेका प्रयोजन जैसा सरदारजी कहते हैं या वे मानते हैं उतना ही हो तो भी हमें उसीके, केवल उसीके, प्रचारमें अपनी सारी शक्ति तबतक लगाते रहना चाहिए, जबतक हमें सफलता प्राप्त न हो जाए। और जिस समय हम उसके द्वारा देहातियोंका जीवन जीने योग्य बना देंगे और बेकारीके दिनोंके लिए उनके वास्ते एक प्रतिष्ठित और लाभप्रद धन्धा तजवीज कर देंगे, उस समय उनके जीवनको खुशहाल बना सकनेवाली अन्य तमाम चीजें अपने-आप चली आयेंगी। मैं सर-दारजीको यकीन दिलाता हूँ कि मैं यन्त्र-मात्रका विरोधी नहीं हूँ। यों तो खुद चरखा भी एक यन्त्र ही है। पर मैं उन तमाम यन्त्रोंका कट्टर दुश्मन हूँ, जो गरीबोंका शोषण करनेके लिए तजवीज किये गये हों।

सरदारजी इस बातका जरा भी अन्देशा न करें कि एकताके दायरेसे अंग्रेज लोग अलग रखे जायेंगे। क्योंकि उसमें वे सब लोग आ जाते हैं जो अपनेको भारतवासी कहलाना पसन्द करते हैं — फिर वे चाहे यहीं जन्मे हों, चाहे उन्होंने भारतको अपने देशके रूपमें अपना लिया हो। उसमें तमाम जातियों और पंथोंका समावेश है। और इस एकताका उद्देश्य किसी राष्ट्र या व्यक्तिका — यहाँतक कि किसी डायरका भी अहित करना नहीं है। उसका लक्ष्य तो लोगोंके विचारोंमें परिवर्तन करना है, उन्हें मिटा देना नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१४५. टिप्पणियाँ

[१६ जून, १९२५ या उससे पूर्व]

दार्जिलिंगमें चरखा

यदि देशबन्धु दास दार्जिलिंगमें न होते तो मैं शायद ही वहाँ जानेका इरादा करता — हालाँकि वहाँके बरफीले पहाड़ोंकी श्रृंखला बड़ी सुहावनी और लुभावनी है। मैंने तो खयाल किया था कि दार्जिलिंगके उच्चवर्गीय लोगोंको चरखेका सन्देश सुनाना निरी मूर्खता होगी। पर मेरा यह डर बिलकुल गलत निकला। वहाँ मुझे एक स्त्रियोंकी सभामें व्याख्यान देनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने चरखेका सन्देश हमदर्दीके साथ सुना। स्वर्गीय व्योमेशचन्द्र बनर्जीकी पुत्री, श्रीमती ब्लेयर, वहाँकी उच्चवर्गीय स्त्रियोंको कताई सिखानेके लिए एक वर्ग खोलनेवाली थी। मुझे पादरियोंकी एक छोटी 'सभामें भी अपना सन्देश' देनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। हो सका तो इसका हाल आगे लिखूँगा। मैंने यह खयाल भी नहीं किया था कि मुझे कितने ही नेपाली, भूटिया तथा अन्य लोगोंसे मिलनेका सुअवसर मिलेगा। उन्होंने उस सन्देशमें सबसे ज्यादा अनुराग दिखाया। परन्तु मुझे सबसे ज्यादा खुशी तो हुई श्रीमती बासन्ती देवीको सूत कातना सीखते हुए और बीमारीके दिनोंको अपवाद मानकर नित्य नियमसे आध घंटा सूत कातनेका व्रत लेते हुए देखकर। उनकी लड़की तो सूत कातना जानती ही थी। पर बासन्ती देवीने इस ओर ध्यान नहीं दिया था। अब उन्होंने फिर चरखा चलाना आरम्भ किया है और साथ ही तकली भी चलाने लगी हैं। तकली उन्होंने १० ही मिनटमें सीख ली। श्रीमती उर्मिला देवी तथा उनके बच्चे तो कुछ दिनोंसे नियमित रूपसे सूत कातते हैं। और खुद देशबन्धु दास भी तकली चलाना सीखते थे। परन्तु उन्हें सरकारको बार-बार पराजित करने और अपने मुवक्किलोंको जितानेसे सूत कातना अधिक मुश्किल लगता है। अपने पतिकी वकालत करते हुए श्रीमती बासन्ती देवीने

१. देखिए "भाषण: ईसाई धर्म प्रचारिकाओंके समक्ष", ६-६-१९२५।

कहा, 'ये अपने सन्दूककी ताली भी मुश्किलसे घुमा पाते हैं — उसमें मुझे सदा उनकी मदद करनी पड़ती है। अब आप समझ सकते हैं कि सूत कातना इनके लिए क्यों इतना कठिन है।' परन्तु देशबन्धुने मुझे यकीन दिलाया है कि वे अब अध्यवसायपूर्वक चरखा चलाना जरूर सीखेंगे। उन्होंने पटनामें थोड़ा चरखा चलाना सीखा भी था। परन्तु बीमारीसे उसमें बाधा आ गई। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं चरखेका पूरी तरह कायल हूँ और मैं हर तरहसे उसके प्रचारमें सहायता करना चाहता हूँ। फैशन-परस्त लोगोंसे भरे दार्जिलिंगमें कलकत्तेके मेयरके घरके सारे लोगोंको चरखा चलाते हुए तथा चरखेका वातावरण बनाते हुए देखकर मुझे बहुत हर्ष हुआ। यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है कि वे सब लोग खादी पहने हुए थे। देशबन्धुके लिए खादी कोई सभा-समारोहोंके समय ही पहननेकी चीज नहीं है। वे तो सदा खादी ही पहनते हैं। वे मुझसे कहते हैं कि यदि अब वे चाहें भी तो उनके लिए मिलका या विदेशी कपड़ा पहनना कठिन होगा।'

मन्त्री चाहिए

आशा है, जो गोरक्षामें रुचि रखते हैं, वे ऐसा विचार न करेंगे कि मुझपर जो जिम्मेदारी डाली गई है, मैं उसकी अवहेलना कर रहा हूँ। इसे स्वीकार करते समय मैंने समितिके सदस्योंको चेतावनी दे दी थी कि मुझे कोई अच्छा मन्त्री न मिला तो मैं समितिके किसी भी कार्यके लिए बिलकुल बेकार साबित हो जाऊँगा। मैं उन्हें तथा इसमें रुचि रखनेवाले अन्य लोगोंको दुःखके साथ सूचित करता हूँ कि मुझे अभीतक कोई ऐसा मन्त्री नहीं मिल सका है जिससे मुझे सन्तोष हो। उसे अंग्रेजीका समुचित तथा हिन्दुस्तानीका कामचलाऊ ज्ञान अवश्य होना चाहिए। वह ऐसा होना चाहिए जो अपना पूरा समय इसी काममें दे, किसी दूसरे काममें नहीं। उसे गायसे प्रेम होना चाहिए तथा अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए संघने जो कार्यक्रम बनाया है, उसमें उसका विश्वास होना चाहिए। उसका आचरण शुद्ध होना चाहिए तथा शरीर स्वस्थ। वेतन उसकी जरूरतोंके मुताबिक दिया जायेगा, बशर्ते कि वह असाधारण न हो। अन्तमें, उसे एक अध्ययनशील विद्यार्थी होना चाहिए; क्योंकि गोरक्षासे सम्बन्धित साहित्यके अध्ययनकी आशा उसीसे की जायेगी। जो समझते हैं कि उनमें उपरोक्त योग्यताएँ मौजूद हैं, वे मुझे पूर्ण विवरण और आवश्यक वेतन सूचित करते हुए लिखनेकी कृपा करें।

तिलक स्वराज्य-कोष

इस कोषका क्या उपयोग किया गया है, लोग अभीतक इस प्रश्नको लेकर परेशान हैं। एक पंजाबी पत्रलेखकका कहना है कि उन्हें अपने खादीके दौरेके सिल-सिलेमें ऐसे लोग मिलते हैं जो इस कोषके व्ययका विवरण पूछते हैं। मैंने इन स्तम्भोंमें बार-बार कहा है कि इस कोषके पूर्णतया प्रमाणित आय-व्यय पत्रक समय-समयपर

१. इसके पश्चात् *यंग इंडिया*के सह-सम्पादककी यह टिप्पणी थी: उक्त टिप्पणीके कम्पोज होनेके बाद हमें यह दुःखद समाचार मिला है कि देशबन्धुका मंगलवारको सायं ५-३० बजे दार्जिलिंगमें हृदयकी गति रुक जानेसे निधन हो गया।

प्रकाशित किये गये हैं। जनताको यह भी जानना चाहिए कि कोष इक्कीस प्रदेशोंमें विभक्त कर दिया गया था तथा उसमें से कई लाख रुपयेकी रकम विशेष कार्योंके लिए निर्धारित कर दी गई थी। केवल अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने ही समस्त देशका आय-व्यय पत्रक प्रकाशित नहीं किया है, बल्कि प्रदेशोंकी कमेटियोंने भी ऐसे पत्रक प्रकाशित किये हैं। यद्यपि कहीं-कहीं कोषका दुरुपयोग किया गया है तथा कुछ गबन भी हुआ है, किन्तु कुल मिलाकर मुझे सन्तोष है कि धनका विनियोग अभीष्ट कार्यमें ही किया गया है। कांग्रेसके मामलोंका कोई भी गम्भीर विद्यार्थी जब चाहे तब इन छपे हुए आँकड़ोंका अध्ययन कर सकता है तथा स्वयं यह जान सकता है कि उक्त राशिका विनियोग कैसे किया गया।

थैलियोंके विषयमें

उसी पंजाबी पत्रलेखकने पूछा है कि भिन्न-भिन्न स्थानोंपर मुझे जो थैलियाँ भेंट की जाती हैं उनका क्या उपयोग किया जाता है? यह धन प्रायः जहाँ एकत्र किया जाता है उन्हीं स्थानोंपर छोड़ दिया जाता है और निर्देश दिया जाता है कि उसका उपयोग खादी-प्रचारमें किया जाये। केवल, जहाँपर मुझे ऐसा दिखता है कि ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसे मैं उसे उपयोगके लिए सौंप सकूँ तो उसका उपयोग खादी-प्रचारके ही निमित्त आश्रमके जरिये किया जाता है। जहाँ धन किसी विशेष कार्यके लिए निर्धारित किया जाता है वहाँ स्वाभाविक तौरसे मुझे कुछ नहीं करना पड़ता, केवल सम्बन्धित व्यक्तियोंको निर्धारित कार्योंके निमित्त दी गई रकम सौंप देनी पड़ती है।

अब कोई उपयोग नहीं

पत्रलेखक लिखता है:

> मेरी फेरीके दौरेमें मुझे ऐसे लोग मिलते हैं जो यह कहते हैं, "चूँकि कांग्रेसकी शक्ति क्षीण होती जा रही है, अतः आप खादीकी फेरी लगानेके लिए बेकारका कष्ट क्यों उठा रहे हैं? जब कांग्रेस फिर मजबूत हो जायेगी, हम तब खादी खरीद लेंगे; अभी तो हम विदेशी वस्त्र पहनते हैं। इस समय तो हमें इसीके उपयोगका सुख लेने दें।" मुझसे कई वकीलोंने ऐसा कहा। किन्तु यह एक ही पहलू है। मैं एक वकीलसे मिला। उसने स्वयं कुछ खादी खरीदी; फिर वह हमें लोगोंके पास ले गया तथा हमारे साथ सप्ताहमें दो बार हर प्रकारके लोगोंमें खादीकी फेरी लगानेका वचन दिया।

लगातार कार्य करते रहनेके तो और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं; लेकिन मुझे अभीतक किसीने ऐसी बात नहीं बताई थी जैसी पंजाबके इन वकील दोस्तोंके बारेमें कही गई है। निश्चय ही, यह कहना आवश्यक नहीं है कि खादी अस्थायी उपयोगकी वस्तु नहीं है। यह पहननेकी वैसी ही स्थायी वस्तु है, जैसे गेहूँ तथा चावल स्थायी खाद्यपदार्थ हैं। और विदेशी वस्त्र पहननेका सुख लेनेकी बात तो उन्होंने

केवल हँसीमें कही होगी। क्या विदेशी कपड़ा पहननेमें सुख मिलता है? क्या यह 'गुलामीमें सुख मिलता है' कहने जैसी बात नहीं है? अमेरिकामें कई जगह यह देखा गया था कि जब दक्षिण प्रदेशोंमें गुलामीका अन्त किया गया तो गुलाम आजादी लेनेसे इनकार करते थे; गुलामी उनकी प्रकृति बन चुकी थी।

लाखोंको खिलाओ

४९ बंगाली रेजीमेंटके एक सदस्य लिखते हैं :

> यह बात तो सभी स्वीकार करते हैं कि आप दुनियाके सबसे बड़े नेता हैं। सबसे बड़े नेताका उद्देश्य क्या है? सबसे बड़े नेताका उद्देश्य है भारतके लाखों भूखोंको अन्न देना। यह बात ठीक है न? जबतक आप ३२ करोड़ भारतीयोंको अन्न और वस्त्र प्रदान नहीं कर सकते, आप स्वराज्य मिलनेकी आशा नहीं कर सकते। यदि आप मुझे एक अरब रुपया दे दें तो मैं आपको स्वराज्य तुरन्त दे सकता हूँ। आप स्वराज्यकी बातें करते हैं, आप चरखे इत्यादि की बातें करते हैं; लेकिन आप लाखों-करोड़ों भूखोंको भोजन देनेकी बात नहीं करते। जिस मनुष्यको उचित भोजन नहीं मिलता, वह चरखा नहीं चला सकता। सर्व-प्रथम पेट फिर वस्त्र। मैं एक दिन नंगा रह सकता हूँ; लेकिन मैं भूखा दो घंटे भी नहीं रह सकता। यदि आप भारतीयोंको भोजन तथा धन दे सकें तो भारतीय जनता आपकी बातपर तुरन्त अमल करेगी, अन्यथा नहीं करेगी।

पहले तो मैं यह कह दूँ कि मैं "सबसे बड़ा नेता" नहीं हूँ। वैसे मुझे ऐसा कहनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैंने "सबसे बड़ा नेता" होनेका न तो कभी दावा किया है और न कभी यह उपाधि ही स्वीकार की है। मैं तो नित्य ही अपनी लघुता तथा असहाय अवस्थाका अनुभव करता हूँ। मैंने अभीतक यह अनुभव नहीं किया है कि मैं बड़ा हूँ, लेकिन यदि मैं लाखों-करोड़ों भूखोंका भरण-पोषण करनेसे बड़ा बन सकता हूँ तो मैं उस दिशामें जा रहा हूँ, क्योंकि मैं चरखेके नुस्खेके पक्षमें इससे कमका दावा नहीं करता। इसकी योजना लाखों-करोड़ों भूखोंको अन्न तथा वस्त्र देनेके उद्देश्यसे ही की गई है। मैं स्वीकार करता हूँ कि वस्त्रका स्थान दूसरा है। लेकिन चरखेका हेतु पहले भोजन देना तथा फिर वस्त्र देना है। मैंने केवल एक अरब रुपया एक बार ही देनेकी योजना नहीं की है। मेरी योजना तो हर साल कमसे-कम साठ करोड़ रुपया देनेकी है। इस फार्मूलेको मैं प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता हूँ कि फाके करनेवाली जनता केवल उन्हींकी पुकारपर चेतेगी जो उसके लिए भोजन तथा पैसेकी व्यवस्था करें। मैं जो-कुछ देता हूँ उसमें दोनों ही शामिल हैं। लेकिन म्याऊँका ठौर पकड़े कौन? डाक्टर अमोघ औषध बता सकता है; लेकिन वह मरीज-को उसे खानेके लिए बाध्य तो नहीं कर सकता। जनताका मुख्य मर्ज धनकी कमी नहीं है, कामकी कमी है। श्रम ही धन है। जो लाखों करोड़ों लोगोंको उनकी झोंपड़ियोंमें सम्मानित श्रम मुहैया करता है, वह उन्हें भोजन तथा वस्त्र देता है अथवा धन देता है, क्योंकि भोजन और वस्त्र धन ही है। चरखा इस प्रकारका श्रम मुहैया

करता है। इसलिए जबतक चरखेसे अच्छी कोई दूसरी चीज हाथ नहीं आती तबतक हमारे पास यही एक साधन रहेगा।

राष्ट्रीयता बनाम अन्तर्राष्ट्रीयता

मुझे दार्जिलिंगमें एक महाशय मिले और उन्होंने मुझे एक परिचारिकाकी बात बताते हुए कहा कि वह परिचारिका औरोंको हानि पहुँचाकर अपने राष्ट्रकी सेवा न करना अच्छा समझती है। मैं समझ गया कि यह बात मुझे उपदेश देनेके लिए कही जा रही है। मैंने सौम्य भावसे उन्हें बताया कि यद्यपि वे मेरे लेखों और कार्योंको समझनेका दावा करते हैं फिर भी वे उनको समझ नहीं पाये हैं। मैंने उनसे यह भी कहा कि मेरी देशभक्ति संकुचित नही है और उसमें केवल भारतका ही नही, सारी दुनियाका कल्याण समाविष्ट है। फिर मैंने उनसे कहा कि मैं एक विनीत मनुष्य हूँ। मै अपनी मर्यादाओंको जानता हूँ, इसीलिए मैं केवल अपने देशकी सेवा करके ही सन्तुष्ट हूँ—हाँ, मैं इस बातकी चिन्ता जरूर रखता हूँ कि मेरे हाथसे कोई ऐसा काम न हो जिससे किसी भी दूसरे देशको कुछ हानि पहुँचे। मेरी समझमें किसी व्यक्तिके लिए राष्ट्रवादी बने बिना अन्तर्राष्ट्रवादी बनना असम्भव है। अन्तर्राष्ट्रवाद उसी अवस्थामें सफल होगा जब राष्ट्रवाद मजबूत होगा अर्थात् जब भिन्न-भिन्न देशोंके लोग सुसंगठित होकर एक आदमीकी तरह मिल-जुलकर सारे काम कर सकेंगे।

राष्ट्रवाद बुरी बात नही है; बुरी बात तो है संकीर्णता, स्वार्थपरता और अलगावका भाव, जो वर्तमान राष्ट्रोंके कष्टोंका मूल है। हर राष्ट्र दूसरेको हानि पहुँचाकर अपना फायदा करना चाहता है, दूसरेको तबाह करके अपनेको आबाद करना चाहता है। मेरा खयाल है कि भारतके राष्ट्रधर्मने एक जुदा ही रास्ता दिखाया है। वह सारी मनुष्य-जातिकी हित-साधना और सेवाके लिए अपनेको सुसंगठित या पूर्ण विकसित करना चाहता है। मुझे अपनी देशभक्ति या अपने राष्ट्रवादके विषयमें कोई सन्देह नही है। ईश्वरने मुझे भारतवर्षके लोगोंमें जन्म दिया है, इसलिए यदि मैं उनकी सेवामें गफलत करूँ तो मैं अपने सिरजनहारका अपराधी बनूँगा। यदि मैं उनकी सेवा करना नही जानता तो मुझे मानव-जातिकी सेवा करना कभी नही आयेगा। और जबतक मैं अपने देशकी सेवा करता हुआ किसी दूसरे राष्ट्रको नुकसान नहीं पहुँचाता तबतक मैं पथभ्रष्ट नहीं हो सकता।

बंगालमें हिन्दी

हिन्दीके कुछ प्रेमी इस बातसे संतुष्ट नही है कि मैं बंगालमें केवल लोगोंके सम्मुख हिन्दीमें बोलनेका आग्रह करूँ और सभाओंमें समय या असमय उसकी हिमायत करूँ। बगाल साहित्य परिषद्की सभामें कुछ चुने हुए लोग थे और वे भी अंग्रेजीके विद्वान् थे। मैंने उनकी अनुमति लेकर वहाँ भी हिन्दीमें ही भाषण किया था। ये हिन्दीप्रेमी मुझसे यह भी चाहते हैं कि मैं बगालमें भी मद्रासकी भांति ही हिन्दीके वर्ग चलाऊँ तथा हिन्दीका प्रचार करूँ। परन्तु मुझे दुःख है कि मैं उनकी इच्छाको पूर्ण नही कर सकता। मेरी साधन-सामग्री अब खतम होनेपर आ गई है। फिर अट्टा-

लिकाओंकी नगरी कलकत्तेमें हिन्दी जाननेवालोंकी एक भारी तादाद है और वहाँसे हिन्दीके अखबार भी निकलते हैं। इसलिए कलकत्तेके हिन्दी-प्रेमियोंको चाहिए कि वे स्वयं उसका भार उठा लें। उनके पास धन और विद्वज्जन दोनों हैं। वे बंगालके तमाम मुख्य-मुख्य केन्द्रोंमें हिन्दीके वर्ग खोल सकते हैं। अवश्य ही ऐसी हलचलसे मेरी सहानुभूति होगी। परन्तु इसका संगठन स्थानीय उत्साही लोगोंके द्वारा ही किया जाना चाहिए। यदि दक्षिण और बंगाल हिन्दीको अपनानेके लिए तैयार किये जा सकें तो सारे भारतके लिए एक भाषाका प्रश्न आसानीसे हल हो जायेगा। मैंने किसी भी जगह अपनी टूटी-फूटी हिन्दी या हिन्दुस्तानीकी मार्फत लोगोंको अपनी बात समझानेमें कभी कोई कठिनाई अनुभव नहीं की है।

तमिलनाड

पाठकोंको स्मरण होगा कि नई कताई-सदस्यताके अन्तर्गत तमिलनाडमें कांग्रेस सदस्योंकी संख्या इकट्ठी १,४०० दी गई थी। मुझे मन्त्रीका तार मिला है कि वहाँ मईके अन्ततक 'क' वर्गके ९८९ और 'ख' वर्गके ८०२ सदस्य बनाये गये। ये अंक उत्साहवर्धक हैं। इससे लगता है कि तमिलनाडमें आसानीसे इससे भी अच्छा काम किया जा सकता है।

वी० वी० एस० अय्यर

'यंग इंडिया' के पाठकोंको श्री वी० वी० एस० अय्यरकी[1] पानीमें डूब जानेसे मृत्यु होनेपर मेरी ही तरह दुःख होगा। मुझे उनसे सालों पहले लन्दनमें मिलनेका अवसर मिला था। वे तब उग्र अराजकतावादी थे। किन्तु वे धीरे-धीरे नरम हो गये थे। उनका देशप्रेम बड़ा ही ज्वलन्त था। वे पक्के असहयोगी थे और उन्होंने अभी हालम ही अपनी पूरी शक्ति शेरमादेवी गुरुकुलको चलानेमें लगानेका विचार किया था। मैं उन्हें सदा बहुत अच्छा, सच्चा और स्थायी राष्ट्रसेवक मानता था। परमात्मा उनकी आत्माको शान्ति दे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-६-१९२५

१. तमिल विद्वान् कम्बा रामायणके भाष्यकार।

१४६. तार : मुहम्मद अलीको

खुलना
[१७ जून, १९२५]

दिल्लीके उपद्रवोंके[1] सिलसिलेमें दोषी या अपराधी कौन इसपर कुछ कहना नहीं चाहता। आपकी सत्यनिष्ठा और धर्मपरायणतापर पूरा-पूरा विश्वास है। ईश्वर हम सबका पथप्रदर्शन करे।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६४४) की फोटो-नकलसे।

१४७. तार : वासन्तीदेवी दासको[2]

[खुलना
१७ जून, १९२५]

वासन्तीदेवी दास
स्टेपअसाइड
दार्जिलिंग

हृदयकी सारी समवेदना आपके साथ। ईश्वर आपको शक्ति दे। आशा है आप बहादुरीसे काम लेंगी। बेबीको[3] बहुत ज्यादा दुःखी नहीं होने देना चाहिए। शामको कलकत्ता पहुँच रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६४४)की फोटो-नकलसे।

१. संदर्भ स्पष्ट नहीं है।

२. यह तार और इसके बादके तार १६ जूनको दार्जिलिंगमें चित्तरंजन दासके स्वर्गवासपर दिये गये थे।

३. मोना दास।

१४८. तार: सतकौड़ीपति रायको

[खुलना
१७ जून, १९२५]

अकल्पित किन्तु ईश्वरेच्छा बलीयसी। अत्यावश्यक पूर्वनिर्धारित काम निबटानेके लिए पहली ट्रेन छोड़ रहा हूँ। दोपहरको चल रहा हूँ। दाह-संस्कारके प्रबन्धको अन्तिम रूप देनेके लिए कृपया मेरे पहुँचनेतक रुकिए। यदि मित्रोंको समुचित कारणोंके आधारपर आपत्ति न हो तो मेरे खयालसे शवको रसा रोड ले जाना चाहिए। राष्ट्रका काम कतई नहीं रुकना चाहिए, बल्कि उनकी महान् आत्मा और उच्चादर्शपूर्ण उदाहरणका अनुसरण करते हुए काम दुगुनी गतिसे आगे बढ़ना चाहिए। आशा है कि दलगत कलह शान्त हो जायेगा और सभी लोग बंगालके इस प्रिय नायक और भारतके एक महानतम सेवककी स्मृतिका सम्मान करनेमें हृदयसे शरीक होंगे। असमका दौरा रद कर रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६४४) की फोटो-नकलसे।

१४९. तार: उर्मिला देवीको

[खुलना
१७ जून, १९२५]

उर्मिला देवी

प्रियजनोंकी मृत्युसे दुःख होना स्वाभाविक। बहादुर विचलित नहीं होते। मैं चाहता हूँ कि तुम बहादुरीसे काम लो और हर आदमीको अपना सगा भाई बना लो। शामको पहुँच रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६४४) की फोटो-नकलसे।

१५०. तार: मोना दासको

[खुलना
१७ जून, १९२५]

मोना

पिताकी सच्ची बेटी बनो और इस क्षतिको बहादुरीसे झेलो। ईश्वर तुमको सान्त्वना दे। आशा है कि तुम भोम्बल और गुजाताको धीरज बँधाओगी। शामको पहुँच रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६४४)की फोटो-नकलसे।

१५१. तार: वल्लभभाई पटेलको

[खुलना
१७ जून, १९२५]

वल्लभभाई पटेल

दार्जिलिंगमें दिलके दौरेसे देशबन्धुका स्वर्गवास। फूल कल कलकत्ता पहुँच रहे हैं। मैं आज वहाँके लिए रवाना हो रहा हूँ। अवसरके उपयुक्त शोक-सभा बुलाइए, सभी दलोंको आमन्त्रित कीजिए।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६४४) की फोटो-नकलसे।

१५२. तार : सरोजिनी नायडूको

[खुलना
१७ जून, १९२५]

सरोजिनी नायडू
हैदराबाद

कल दार्जिलिंगमें देशबन्धु नहीं रहे। ईश्वरका विधान कौन जान या मेट सकता है। यदि इस क्षतिकी पूर्ति करनेमें तुम अपनी समूची शक्ति लगाना चाहती हो तो तुमको स्वास्थ्य-लाभके अपने कार्यक्रममें व्यवधान नहीं पड़ने देना चाहिए।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६४४)की फोटो-नकलसे।

१५३. तार : शौकत अलीको[1]

[खुलना
१७ जून, १९२५]

शौकत अली

देशबन्धु गये। ईश्वरकी इच्छा। वही सर्वशक्तिमान है।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६४४) की फोटो-नकलसे।

१. साधन-सूत्रमें गांधीजीके अक्षरोंमें सूचना है: मुहम्मद अलीको ऐसा ही तार दें और उसमें "मौलाना अबुल कलामको सूचित करें" इतना जोड़ दें।

१५४. तार : वाइकोम सत्याग्रह आश्रमको[1]

१७ जून, १९२५

सत्याग्रह आश्रम
वाइकोम

सुनता हूँ प्रतिबन्धक आदेश वापस ले लिये गये। बधाई। आशा है कि कटुता पैदा करनेवाला कोई प्रदर्शन नहीं किया जायेगा और न रूढ़िवादियों-को भड़कानेवाली कोई अनावश्यक कार्रवाई।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६४४) की फोटो-नकलसे।

१५५. महान् शोक

कलकत्ता
१७ जून, १९२५

जब हृदयको गहरी चोट लगती है तब कलम नहीं चलती। मैं यहां चारों ओर उमड़ते शोकमें इतना डूब गया हूँ कि 'यंग इंडिया' के पाठकोंके लिए तार द्वारा अधिक कुछ सामग्री भेजनेमें असमर्थ हूँ। अभी दार्जिलिंगमें उस महान् देशभक्तके साथ ५ रोजतक मेरा साथ रहा। उसके फलस्वरूप हम दोनों पहलेसे कहीं अधिक एक-दूसरेके नजदीक आ गये थे। इस बार मैंने केवल यही अनुभव नहीं किया कि देश-बन्धु कितने महान् थे, बल्कि यह भी अनुभव किया कि वे कितने नेक थे। भारतका एक अनमोल रत्न खो गया है। हमें चाहिए कि हम स्वराज्य लेकर उसे पुनः प्राप्त कर लें।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १८-६-१९२५

१. मार्च, १९२५ में गांधीजी केरलके दौरेपर गये थे और वहां उन्होंने के० केलप्पन नायर-जैसे स्थानीय नेताओं और त्रिवेन्द्रमके पुलिस कमिश्नर डब्ल्यू० एच० पिटसे बातचीतकी। बादमें वे इस समस्याके सम्बन्धमें इन लोगोंसे पत्र-व्यवहार करते रहे; देखिए खण्ड २६, पृष्ठ ३१६-१७। इस पत्र-व्यवहारको उन्होंने २४ मार्चको अखबारोंमें प्रकाशनार्थ जारी करते हुए बताया कि इस पत्र-व्यवहारमें जो "मतैक्य" हो पाया है, वह इस सुधारके लिए किये जा रहे आन्दोलनमें किसी हदतक प्रगतिका सूचक है।

१५६. एक अपील[1]

[१७ जून, १९२५]

प्यारे देशभाइयो,

राष्ट्र देशबन्धु चित्तरंजन दासके लिए शोक मना रहा है। पर हम शोक क्यों मनायें? हालाँकि देशबन्धु हमारे बीचसे चले गये हैं, फिर भी वे हमारे मनमें बने रहेंगे। उन्होंने काम जहाँ छोड़ा है, वहींसे हमें उसे उठा लेना चाहिए। हमारा पहला काम मृतात्माके प्रति यथोचित सम्मानसे शुरू हो। हमारा स्नेह अन्धा नहीं, प्रज्ञापूर्ण होना चाहिए।

अस्थिअवशेष जब स्यालदा स्टेशनपर पहुँचेगा, तब भीड़ बहुत ज्यादा हो जाने की सम्भावना है। यदि हम चाहते हैं कि हर व्यक्ति अस्थिअवशेषके प्रति सम्मान प्रकट करनेकी अपनी इच्छा पूरी कर सके तो हमें इन नियमोंका पालन करना चाहिए:

१. शोर-शराबा नही होना चाहिए।

२. भीड़को गाड़ीकी तरफ नहीं बढ़ना चाहिए। लोग जहाँ-कहीं हों, उनको वहीं खड़े रहना चाहिए और धक्कामुक्की करके आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

३. अर्थी निकलनेके लिए साफ रास्ता छोड़ रखना चाहिए।

४. कीर्तन करनेवालोंकी टोली और तैनात किये गये अन्य लोगोंके अतिरिक्त बिलकुल सामनेकी ओर और किसीको नहीं रहना चाहिए। जुलूसके साथ चलनेके इच्छुक लोग कृपया पीछे-पीछे चलें। उनको पंक्ति नही तोड़नी चाहिए।

५. श्मशान घाटपर लोगोंको अर्थीकी ओर नहीं बढ़ना चाहिए। उन्हें देह छोड़े तीन दिन हो चुके हैं; इसलिए उसमें विकृति होने लगी होगी। अतएव उसे अन्तिम दर्शनोंके लिए खोलकर नहीं रखा जा सकेगा।

६. कृपया याद रखिए कि दिवंगत देशभक्तकी स्मृतिके प्रति हमारे सम्मानका तकाजा इतना ही नहीं है कि हम उसके प्रति अपने स्नेहका बाह्य और क्षणिक प्रदर्शन करके रह जायें; बल्कि हमें अपने दिलोंमें देशबन्धुकी छोड़ी हुई विरासतके योग्य बननेका संकल्प करना है।

आपका सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १९-६-१९२५

१. यह अपील पर्चोंके रूपमें बाँटी गई थी।

१५७. भाषण: खुलनाकी सार्वजनिक सभामें[1]

१७ जून, १९२५

आचार्य रायने आप लोगोंको बताया है कि हमपर कैसा वज्रपात हुआ है। परन्तु मैं जानता हूँ कि अगर हम सच्चे देश-सेवक हैं तो कितना ही बड़ा वज्रपात क्यों न हो, वह हमारा साहस नहीं तोड़ सकता। आज सवेरे यह शोक-समाचार सुनते ही मुझे यह न सूझ पड़ा कि मेरे सामने जो दो परस्पर विरोधी कर्त्तव्य उपस्थित हैं, उनमें से कौन-सा करूँ। मेरा कर्त्तव्य था कि मैं पहली गाड़ीसे कलकत्ता चला जाता। पर मेरा कर्त्तव्य यह भी था कि आपके निर्धारित किये गये कार्यक्रमको पूरा करूँ। मेरी सेवावृत्तिने यही प्रेरणा दी कि यहाँका कार्य पूरा किया जाए। यद्यपि मैंने यहाँ दूर-दूरसे आये हुए लोगोंसे मिलनेके लिए रुक जाना ज्यादा ठीक माना है तथापि उनके सामने कांग्रेसके कार्यकी विवेचना न करके आज स्वर्गीय देशबन्धुका ही जिक्र करूँगा। मुझे विश्वास है कि मेरे कलकत्ता दौड़ जानेकी अपेक्षा यदि मैं यहाँका काम पूरा कर लूँ तो उनकी आत्माको अधिक प्रसन्नता होगी।

देशबन्धु दास महानतम व्यक्तियोंमें से थे।[2] मैं लगभग छः वर्षोंसे उन्हें जानता हूँ। कुछ ही दिन पहले जब मैं दार्जिलिंगमें उनसे विदा हुआ था, तब मैंने एक मित्रसे कहा था कि उनसे मेरा सामीप्य जितना बढ़ता जाता है उतना ही उनके प्रति मेरा प्रेम भी बढ़ता जाता है। मैंने दार्जिलिंगमें देखा कि उनके मनमें भारतकी भलाईके सिवा और कोई खयाल ही न था। वे भारतकी स्वाधीनताका ही सपना देखते थे, उसीका विचार करते और उसीके बारेमें बातचीत करते थे, अन्य बातोंके बारेमें नहीं। दार्जिलिंगमें मेरे विदा होते समय भी, उन्होंने मुझसे कहा था कि आप विभिन्न दलोंके बीच एकता स्थापित करनेके लिए बंगालमें कुछ दिन और ठहरिए ताकि बंगालके दौरेकी अवधिमें सब लोगोंकी शक्ति एक ही कार्यके लिए संयुक्त हो जाए।

उनसे मतभेद रखनेवालोंने और उनपर बेतरह नुक्ताचीनी करनेवालोंने भी बिना हिचकिचाहटके इस बातको स्वीकार किया है कि बंगालमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो उनका स्थान ले सके। वे निर्भीक थे, वीर थे। बंगालके नवयुवकोंके प्रति उनका स्नेह निस्सीम था। किसी नवयुवकने मुझसे ऐसा नहीं कहा कि देशबन्धुसे सहायता माँगनेपर कभी किसीकी प्रार्थना खाली गई। उन्होंने लाखों रुपया पैदा किया और लाखों रुपया बंगालके नवयुवकोंमें बाँट दिया। उनका त्याग अनुपम था, उनकी महान् बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञताके बारेमें मुझ-जैसा व्यक्ति क्या कह सकता है?

१. खुलनामें महात्मा गांधीको सात अभिनन्दन-पत्र दिये गये; वे नगरपालिका, जिला बोर्ड और लोक संघ, इत्यादि स्थानीय संस्थाओंकी ओरसे थे। प्रफुल्लचन्द्र रायने देशबन्धु चित्तरंजन दासके निधनका समाचार बताया था।

२. समाचार पत्रोंके विवरणोंके अनुसार इतना कहनेके अनन्तर गांधीजी रो पड़े और एक या दो मिनटतक उनका कण्ठ अवरुद्ध रहा — वे बोल न सके।

उन्होंने दार्जिलिंगमें मुझसे अनेक बार कहा था कि भारतकी स्वाधीनताका दारोमदार अहिंसा और सत्यपर है। भारतके हिन्दुओं और मुसलमानोंको जानना चाहिए कि उनका हृदय हिन्दू-मुसलमानका भेद जानता ही न था। मैं भारतके सब अंग्रेजोंसे कहता हूँ कि उनके प्रति भी उनके मनमें कोई बुरा भाव न था। उनकी अपनी मातृभूमिके प्रति यही प्रतिज्ञा थी — 'मैं जीऊँगा तो स्वराज्यके लिए और मरूँगा भी तो स्वराज्यके लिए।'

हम उनकी स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके लिए क्या करें? आँसू बहाना सहज है; परन्तु ऐसा करनेसे हमारी या उनके स्वजन-परिजनोंकी सहायता नहीं हो सकती। अगर हममें से प्रत्येक व्यक्ति — हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई उस कामको करनेकी प्रतिज्ञा करे जो उनके हृदयमें बसा हुआ था, जिसके लिए वे परिश्रम करते थे और जिसमें वे स्वयं लगे रहते थे तो समझा जायेगा कि हमने सचमुच कुछ किया। हम सब ईश्वरको मानते हैं। हमें जानना चाहिए कि शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य है। देशबन्धुका शरीर नष्ट हो गया, परन्तु उनकी आत्मा कभी नष्ट न होगी। न केवल उनकी आत्मा, बल्कि उनका नाम भी — जिन्होंने इतनी बड़ी सेवा और त्याग किया है — अमर रहेगा। जो भी व्यक्ति, जवान या बूढ़ा उनके आदर्शपर थोड़ा-बहुत भी चलेगा, वह उनकी यादगार बनाये रखनेमें मदद देगा। हमारे पास उनकी-सी बुद्धिमत्ता नहीं;' पर हम उस भावनाको अपना सकते हैं जिससे वे देशकी सेवा करते थे।

देशबन्धुने पटना और दार्जिलिंगमें सूत कातना सीखनेकी कोशिश की थी। मैंने उनको चरखा चलाना सिखाया और उन्होंने मुझसे वादा किया था कि मैं कातना सीखनेकी कोशिश करूँगा और जबतक स्वास्थ्य साथ देगा तबतक कातना न छोड़ूँगा। उन्होंने अपने दार्जिलिंगके निवासस्थानको 'चरखा क्लब' बना दिया था। उनकी साध्वी पत्नीने वचन दिया था कि बीमारीकी हालत छोड़कर, मैं रोज आध घंटेतक स्वयं चरखा चलाऊँगी। उनकी लड़की, बहन और भानजी तो बराबर ही चरखा कातती थीं। देशबन्धु मुझसे प्रायः कहा करते: 'मैं समझता था कि कौंसिलमें जाना जरूरी है, मगर चरखा कातना भी उतना ही जरूरी — न सिर्फ जरूरी है, बल्कि बिना चरखेके कौंसिलके कामको कारगर बनाना असम्भव है।' उन्होंने जबसे खादीकी पोशाक पहननी शुरू की तबसे अन्तिम दिवसतक पहनते रहे।

उन्होंने हिन्दू और मुसलमानोंमें मेल पैदा करनेके लिए कितना बड़ा काम किया था, यह कहना मेरा काम नहीं है; यह तो सर्वविदित है। अस्पृश्योंके प्रति वे कितना प्रेम रखते थे, इसके विषयमें सिर्फ एक बात कहूँगा जो मैंने बारीसालमें कल रातको, एक नामशूद्र नेतासे सुनी थी। उस नेताने कहा कि उन्हें पहली आर्थिक सहायता देशबन्धुने दी, बादमें डाक्टर रायने। आप सब लोग कौंसिलोंमें नहीं जा सकते। परन्तु वे तीनों काम जो उनको प्रिय थे, आप कर सकते हैं।

मैं अपनेको भारतका एक निष्ठावान् और देशबन्धुका वफादार भाई और सहयोगी मानता हूँ। इस कारण मैं आम तौरपर घोषित किया करता हूँ कि मैं अपने सिद्धान्तोंकी रक्षा करता हुआ, भविष्यमें देशबन्धु दासके अनुयायियोंको, यदि सम्भव हुआ

तो उनके कौंसिलके कार्यक्रममें पहलेसे अधिक सहायता दूँगा। ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है कि वह मेरे द्वारा कोई ऐसा काम न कराये और मुखसे कोई ऐसी बात न कहलाये जिससे देशबन्धुके कार्यमें क्षति पहुँच सकती हो। हम दोनोंके बीच कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें मतभेद था ही। फिर भी हमारा हृदय एक था। राजनैतिक तरीकोंमें तो सदा मतभेद बना रहेगा। परन्तु उसके कारण लोगोंको एक-दूसरेसे अलग नहीं हो जाना चाहिए और न परस्पर शत्रुता पैदा होने देनी चाहिए। जो स्वदेश-प्रेम मुझे एक कामके लिए प्रेरित करता था वही उनको कुछ दूसरा काम करनेको प्रेरित करता था। ऐसा पवित्र मतभेद देशके काममें बाधक नहीं हो सकता। साधन-सम्बन्धी मतभेद नहीं बल्कि हृदयकी मलिनता ही अनर्थकारी होती है।

दार्जिलिंगमें रहते समय मैं देखता था कि देशबन्धुके दिलमें उनके राजनीतिक विरोधियोंके प्रति नम्रता प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। मैं उन पवित्र संस्मरणोंका उल्लेख यहाँ न करूँगा। देशबन्धु देश-सेवकोंमें एक रत्न थे। उनकी सेवा और त्याग बेजोड़ थे। ईश्वर करे, उनकी याद हमारे दिलोंमें सदा बनी रहे और उनका आदर्श हमारे सत्प्रयत्नोंमें सहायक हो। हमारा मार्ग लम्बा और दुर्गम है। उसमें हमें आत्म-निर्भरताके सिवा कोई सहारा नहीं देगा। स्वावलम्बन ही देशबन्धुका आदर्श था। वह हमें सदा अनुप्राणित करता रहे। ईश्वर उनकी आत्माको शान्ति दे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १८-६-१९२५

१५८. क्या हम तैयार हैं?

श्री भरूचाने[1] मुझसे सार्वजनिक रूपसे प्रार्थना की है कि मैं फिरसे एक सर्व-दलीय सम्मेलन बुलाऊँ, क्योंकि उनकी रायमें यह समय उसके मुआफिक है। देशबन्धु दासने 'मराठा' की एक प्रति मुझे दी है। उसमें भी, मैंने एक ऐसी ही प्रार्थना देखी। मुझे मालूम है कि सरोजिनी देवीका भी विचार यही है। परन्तु इस सम्बन्धमें मेरी स्थिति बहुत-कुछ वैसी ही है, जैसी कि कांग्रेसकी बैठक बुलानेके सम्बन्धमें। यदि मुझे श्री जिन्ना, सर मुहम्मद शफी, पण्डित मदनमोहन मालवीयजी, लाला लाजपतराय, श्री श्रीनिवास शास्त्री, सर सुरेन्द्रनाथ, कट्टरपंथी अ-ब्राह्मण नेताओं, श्री सी० वाई० चिन्तामणि, डा० सप्रू तथा अन्य लोगोंकी ओरसे कहा जाये तो मैं खुशीके साथ सम्मेलन बुलाऊँगा। मेरा निजी खयाल तो यह है कि एकताके लिए आज हम उससे ज्यादा तैयार नहीं हैं जितने कि दिल्लीमें थे। यदि यह सम्मेलन हम स्वराज्यके सम्बन्धमें बुलाना चाहते हैं तो हम हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नपर लड़ पड़ेंगे। यदि सम्मेलन बुलानेका हमारा मंशा यह है कि कांग्रेसके मंचपर तमाम दल आ जायें तो नई तजवीजें करने या उनपर पहले विचार करनेका काम अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका है। क्योंकि

१. बी० एफ० भरूचा।

जबतक कांग्रेसके मौजूदा सदस्य एकताकी इच्छा व्यक्त करने और .कामकी योजना बनानेके बारेमें सन्तोषजनक रूपसे सहमत नहीं हो जाते तबतक सब दलोंका सामान्य सम्मेलन बुलानेसे कुछ भी हासिल न होगा। यदि इसके रास्तेमें अकेली कताई-सदस्यता ही बाधक हो तो उससे निपटनेका तरीका और भी आसान है। जिन लोगोंने इस मताधिकारको शुरूमें तय किया था, वे ही पहले इसके परिवर्तनके सुझावपर विचार करें। वे लोग कौन हैं? स्वराज्य दल — उसके इक्के-दुक्के सदस्य नहीं — और मैं। मताधिकार सम्बन्धी समझौता, स्वराज्य दल तथा मेरे बीच हुआ था। यों तो मैं किसी दलका प्रतिनिधि नहीं था, पर फिर भी मैं अपने जैसे विचार रखनेवाले लोगोंका, जिनकी संख्या अनिश्चित है, प्रतिनिधि तो था ही। मैं स्वराज्य दलकी रजामन्दीके बिना कांग्रेसमें कोई काम करना नहीं चाहता। अतएव यदि वह दल मताधिकारमें परिवर्तन करना चाहता है तो वह जहाँतक मुझसे ताल्लुक है, आज भी ऐसा कर सकता है — सिर्फ उसके कहने-भरकी देर है। और जब वह दल अपना मत निश्चित कर लेगा तब उसे कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए अखिल भारतीय कांग्रेसकी बैठक बुलाई जा सकती है। मै काग्रेसके अन्दर अपनेको कुछ नही मानता। मै मानता हूँ कि आज देशका शिक्षित समुदाय चरखा तथा अन्य कई प्रश्नोंपर मेरे साथ नही है। भारतवासियोंके शिक्षित-समाजने ही कांग्रेसको जन्म दिया था और उसमें उन्हींकी प्रधानता रहनी चाहिए, उसकी नीतिकी बागडोर भी उन्हींके हाथोंमें होनी चाहिए। मेरा दिल कहता है कि मै जन-साधारणके विचारोंका प्रतिनिधित्व करता हूँ, फिर वह कितने ही अपूर्ण रूपसे क्यों न हो। मै काग्रेसपर अपने विचारोका असर अप्रत्यक्ष रूपसे डालना चाहता हूँ, अर्थात् मतोंकी गिनती करके नहीं, बल्कि दलीलों और वस्तुस्थितिको सदस्योंके सामने रखकर और उन्हें अपनी बातोंका कायल करके; क्योंकि मत तो सम्भव है ऐसे कारणोंसे भी मिल जायें, जिनका सम्बन्धित विषयके गुण-दोषसे कोई सम्बन्ध न हो। जबतक जनता खुद सोचने लायक नही बन जाती तबतक वह उन लोगोके कहनेपर ही चलेगी जिनका उसपर उस समय प्रभाव होगा। ऐसी अवस्थामें उनके मतोंका सहारा लेना अनुचित होगा। इसलिए यदि स्वराज्य दल जो निश्चित रूपसे शिक्षित समाजके साथ आधेसे ज्यादा हिस्सेका प्रतिनिधित्व करता है, कताई-सदस्यताको उड़ा देना चाहता हो तो वह ऐसा आज भी कर सकता है। मेरी ओरसे उसका कोई विरोध कदापि न होगा। हाँ, यह जरूर है कि उस अवस्थामें मुझसे कांग्रेसका नेतृत्व करते रहनेकी उम्मीद रखना बेजा होगा। फिलहाल मै त्रिसूत्री रचनात्मक कार्यक्रमके अलावा किसी भी दूसरे कामके अयोग्य हूँ। मेरे नजदीक उसकी सफलता ही स्वराज्य है और उसके बिना स्वराज्य एक असम्भव चीज है। ऐसी अवस्थामें मुझे अवश्य ही उन लोगोंके लिए जगह कर देनी चाहिए, जिनके बारेमें यह कहा जाता है कि उनका दृष्टिकोण अपेक्षाकृत व्यापक है।

सुना है कि श्री देशमुखने कहा है कि यदि मैं अपने विचारोंको बदल न सकूँ तो मुझे सार्वजनिक जीवनसे हट जाना चाहिए। मैंने उनका सताराका भाषण पढ़ा नहीं है; पर यदि उन्होंने ऐसा कहा है तो उन्हें इसका पूरा हक था। मैं भी किसी

व्यक्तिके लिए ऐसा ही कहूँगा, यदि मेरी यह धारणा हो कि उसके कार्योंसे देशकी हानि हो रही है। क्या तमाम असहयोगियोंने कौंसिलोंके सदस्योंसे इस्तीफा देनेका आग्रह नहीं किया था? हो सकता है कि श्री देशमुखका विचार भ्रमपूर्ण हो, पर एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ताके नाते अपनी बात कहनेके उनके अधिकारपर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती; उन्होंने कोई नई या अजीव बात भी नहीं कही है। दर हकीकत ऐसा एक समय था जब मैं संजीदगीके साथ कांग्रेससे हट जानेका विचार कर रहा था; पर अन्तमें मैंने सोचा कि उससे कोई लाभ नहीं होगा। मैं मौलाना मुहम्मद अलीकी इस बातसे सहमत हूँ कि कोई भी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, जबतक स्वयं उसे अपनी बातमें विश्वास है, अपने उत्तरदायित्वको नहीं छोड़ सकता। लोग चाहें तो उसे भले हटा दें। उन्होंने कहा कि यदि आप जल्दी करके समयसे पहले कांग्रेससे हट जायेंगे तो आप अपने राजनीतिक प्रतिपक्षियोंपर तथा देशपर बेजा बोझ डाल देंगे। अपने पैगामपर विश्वास होते हुए भी आप कांग्रेस तभी छोड़ें जब आपकी लोकप्रियता नष्ट हो जाये। और ऐसी अवस्था आ जानेपर भी यह निर्णय करना कि अमुक रवैयेपर डटा रहूँ या पीछे हट जाऊँ, बड़ा ही नाजुक विषय होता है। बात यह है कि किसीके कहनेसे स्वेच्छापूर्वक स्वीकार किये गये सेवा-कार्यसे अलहदा हो जाना जितनी दिखाई देती है, उतनी आसान बात नहीं है। परन्तु श्री देशमुखने हिम्मत करके लोगोंके लिए इस सवालपर विचार करनेका रास्ता साफ कर दिया है। जो लोग चाहते हैं कि मैं यह क्षेत्र छोड़ दूँ, उन्हें कमसे-कम मेरे उन साधनों और विचारोंके खिलाफ, जिन्हें वे अनुपयुक्त समझते हों, लोकमत तो तैयार करना ही चाहिए। मेरा महात्मापन किसी खोटे सिक्केको चलानेका परवाना न माना जाये।

पर मेरे लिए चरखा खोटा सिक्का नहीं है। उसपर मेरी इतनी श्रद्धा है कि सारी दुनियाके विरुद्ध हो जानेपर भी मैं उसकी हिमायत करूँगा। मैं आजादी सब लोगोंके लिए चाहता हूँ। मैं उसका विचार अहिंसाकी ही भाषामें कर सकता हूँ। यदि हमें आजादी बिलकुल अहिंसात्मक साधनोंसे ही प्राप्त करनी है तो हम उसे केवल चरखेके ही द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। चरखेके अन्दर हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता-निवारण और दूसरी कितनी ही चीजें शामिल हैं, जिनके उल्लेखकी यहाँ आवश्यकता नहीं है। मेरी रायमें यदि कांग्रेस इस मताधिकारको हटा देगी तो वह भयंकर भूल करेगी। परन्तु लोकतन्त्रमें मेरा जो विश्वास है, उसमें यदि भयंकर भूलेंतक कर बैठनेका अधिकार शामिल न हो तो वह विश्वास कौड़ी मोलका भी नहीं रहेगा। इसीलिए मैं समझता हूँ कि यदि दूसरे लोग उससे अनुप्राणित नहीं होते तो मेरा विश्वास मेरी अपनी दृष्टिसे सही होते हुए भी तिरस्कृत कर दिया जाना चाहिए। मैं तो चाहता हूँ कि चरखेपर लोगोंकी जीवन्त श्रद्धा हो; उसके फलस्वरूप वे सक्रिय सहयोग करें। कोरी "हाँ, हाँ," करने और तदनुसार काम न करनेसे किसीको लाभ नहीं हो सकता। इस विषयमें किसी निष्कर्षपर पहुँचनेका प्रयास करते समय मेरा व्यक्तिगत खयाल बिलकुल ही नहीं किया जाना चाहिए। हमारी इस महान् प्राचीन धर्मभूमि भारतके विकासके लिए कोई भी व्यक्ति अपरिहार्य नहीं है। सैकड़ों

गांधियोंका नामोनिशाँ मिट जाये तो हर्ज नहीं, भारतवर्ष जीता-जागता और फलता-फूलता रहे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-६-१९२५

१५९. एक घरेलू प्रकरण

लायलपुरके एक वकीलने 'यंग इंडिया' के सम्पादकके नाम यह पत्र भेजा है:

> कोई तीन या चार साल पहले कलकत्तेमें 'ऑल इंडिया स्टोर्स लिमिटेड' नामकी एक कम्पनी खोली गई थी। उसके डायरेक्टर थे — श्री हरिलाल मो० गांधी। रावलपिण्डीमें उस कम्पनीके एक प्रतिनिधिने यह प्रचारित किया था कि वे महात्मा गांधीके लड़के हैं। उस प्रतिनिधिने मेरे एक मुवक्किलको उस कम्पनीका हिस्सेदार बननेके लिए राजी कर लिया; मुवक्किलने उसे तथा उस कम्पनीको कुछ रुपये दिये और वे उस कम्पनीके शेयरहोल्डर बन गये। मैंने तथा मेरे उन मुवक्किलने कम्पनी द्वारा सूचित पतेपर — २२ अमरतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ताको — पत्र लिखे। मेरे मुवक्किलको अन्देशा है कि शायद यह कम्पनी नकली थी और उनका रुपया डूब गया। अब आपकी (महात्माजीकी) कीर्ति तथा इस दरिद्र देशके आर्थिक कल्याणके नामपर मैं अपने मनको दिलासा देनेकी कोशिश कर रहा हूँ और चाहता हूँ तथा परमात्मासे प्रार्थना भी करता हूँ कि मेरे मुवक्किलकी यह आशंका निराधार साबित हो। डाकघरने हमारे तमाम पत्र "डेड लेटर आफिस" के द्वारा वापस कर दिये हैं। इसलिए मेरे मुवक्किलके इस शकके लिए कि वह कम्पनी डूब गई है, कुछ वजह जरूर मालूम होती है। क्या यह सच है कि महात्माजीके लड़के उस कम्पनीके डायरेक्टर थे? ऐसी कोई कम्पनी खड़ी भी की गई थी या नहीं और आज वह मौजूद है या नहीं; यदि है तो कहाँ?
>
> कृपया यह सब लिखनेके लिए मुझे क्षमा कीजिए। मेरे मुवक्किल एक मुसलमान सज्जन हैं और महात्माजीके प्रति अपने आदर-भावके कारण ही वे उस कम्पनीके शेयरहोल्डर हुए थे। वे इन बातोंकी तसदीक कर लेना चाहते हैं। इसीलिए आपको यह तकलीफ दी गई है।

यदि इस पत्रमें कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंकी बात शामिल न होती तो मैं इसका जवाब खानगी तौरपर देकर खामोश हो रहता — हालाँकि यह पत्र छापनेके उद्देश्यसे ही भेजा गया है। इसे प्रकाशित करना इस खयालसे भी आवश्यक है कि बहुत सम्भव है कि अन्य अनेक हिस्सेदार इन वकील साहबके मुवक्किलकी तरह सोच रहे हों। उन्हें भी उतनी तसल्ली हो जानी चाहिए, जितनी मैं दे सकता हूँ। हाँ, मैं अवश्य

ही हरिलाल मो० गांधीका पिता हूँ। वह मेरा सबसे बड़ा लड़का है। उसकी उम्र ३६ से ऊपर है। वह ४ बच्चोंका पिता है। उसकी सबसे बड़ी सन्तान १९ सालकी है। कोई १५ साल पहलेसे उसके और मेरे विचार भिन्न-भिन्न रहे हैं। इसलिए वह मुझसे अलहदा रहता है और १९१५ से उसका भरण-पोषण मैं नहीं कर रहा हूँ और न मैंने उसकी कोई व्यवस्था की है। मैंने हमेशा अपने बच्चोंको १६ साल-की अवस्थाके बाद अपना मित्र और बराबरीका माना है। मेरे बाह्य जीवनमें जो जबर्दस्त परिवर्तन समय-समयपर हुए उनका असर मेरे नजदीक रहनेवालोंपर, खास कर मेरी सन्तानपर हुए बिना नहीं रह सकता था। हरिलाल इन तमाम परिवर्तनों को देखता था, उसकी उम्र भी उन्हें समझने योग्य थी। इससे वह कुदरती तौरपर पश्चिमी रंग-ढंगसे प्रभावित हुआ, जो एक जमानेमें मेरे जीवनका भी रंग-ढंग था। उसके व्यापार सम्बन्धी कार्योंका मुझसे कोई सम्बन्ध न था। यदि मैं उसपर अपना प्रभाव डाल पाता तो आज वह मेरे अनेक सार्वजनिक कार्योंमें मेरे सहयोगीके रूपमें होता और साथ ही अच्छी-खासी रोजी भी कमा रहा होता। पर उसने बिलकुल जुदा और आजाद रास्ता अख्तियार किया। ऐसा करनेका उसे हक भी था। वह महत्वाकांक्षी था और आज भी है। वह धनी बन जाना चाहता है, सो भी आसानीसे। और बहुत करके उसके मनमें मेरे प्रति यह शिकायत भी है कि मैंने उसे तथा अपने अन्य पुत्रोंको उन दिनों, जब मैं उनके लिए कुछ कर सकता था, उन बातोंसे वंचित रखा जिनके द्वारा मनुष्य धनी बनता है और धनसे सुलभ होनेवाली ख्याति भी प्राप्त कर सकता है। इस पत्रमें उल्लिखित स्टोर उसने खोला था। उसमें मेरा किसी किस्मका भी सहयोग न था। मैंने अपने नामका उपयोग भी करनेकी अनुमति स्टोर-वालोंको नहीं दी थी। मैंने न तो खानगी तौरपर, न जाहिरा तौरपर किसीसे उसके व्यवसायमें शरीक होनेकी सिफारिश की। जिन लोगोंने उसे सहायता दी, उन्होंने उस उद्योगके गुण-दोषका विचार करके ही दी थी। हाँ, यह जरूर है कि मेरा पुत्र होना उसके मार्गमें सहायक होगा। जबतक यह दुनिया कायम है, तबतक वह वर्णाश्रमके अपने विरोधके बावजूद आनुवंशिकताका लिहाज करती रहेगी। बहुतोंने अपने मनमें यह समझा होगा कि यह गांधीका लड़का है इसलिए भला, व्यवहारमें खरा, रुपये-पैसेके मामलेमें सावधानी बरतनेवाला तथा अपने पिताकी तरह ही विश्वसनीय होगा। मेरी उनके साथ सहानुभूति है; परन्तु इससे अधिक कुछ नहीं। उन कामोंके सिवा जो मेरे साथ किये जाते हैं या जिन्हें मैं अपने नामपर करनेकी इजाजत देता हूँ या जिनके लिए अपनी तरफसे प्रमाणपत्र देता हूँ, किसी शख्सके कामोंकी नैतिक या दूसरे प्रकारकी जिम्मेवारियोंको मैं अपने सिरपर नहीं ले सकता; फिर वह मेरे कितने ही आप्त और इष्ट क्यों न हों। मेरे सिरपर यों ही अनेक जिम्मेवारियाँ हैं। मेरे हृदयके अन्दर जो शाश्वत द्वन्द्वयुद्ध होता रहता है, और जो कभी अस्थायी सुलहका कायल नहीं हुआ है उसके दौरान जिन कष्टों और सन्तापोंको मैं झेला करता हूँ उन्हें तो अकेला मैं ही जानता हूँ। पाठक विश्वास करें कि इस उक्त प्रयासमें मेरी तमाम शक्ति खर्च हो जाती है। यदि मैं इस युद्धमें जूझनेका पर्याप्त बल पाता हूँ तो इसका

कारण यही है कि मैं बहुत जागरूक रहता हूँ। मैं पाठकोंको यह भी बता देना चाहता हूँ कि मेरी स्वराज्य सम्बन्धी हलचलका भी सम्बन्ध उसी अन्तर्द्वन्द्वसे है। मैं इस स्वराज्य कार्यमें इसलिए लगा हुआ हूँ कि मेरी आत्माको इससे अत्यन्त सन्तोष मिलता है। इसपर एक मित्रने मुझसे कहा कि यह तो आपकी एक अत्यन्त ही परोक्ष किस्मकी, स्वार्थसिद्धिकी दोहरी चेष्टा है। मैंने इसे तुरन्त स्वीकार किया।

मैं हरिलालके मामलोंसे अवगत नहीं हूँ। वह कभी-कभी मुझसे मिल जाता है, पर मैं उसके कारोबारकी भीतरी बातें जाननेकी कभी कोशिश नहीं करता। मुझे यह भी मालूम नहीं कि वह अपनी कम्पनीमें एक डायरेक्टरकी हैसियतसे काम कर रहा है। मुझे यह भी पता नहीं कि इस समय उसके कारोबारका क्या हाल है—हाँ, इतना मालूम है कि हालत अच्छी नहीं है। यदि वह नेकनीयत है तो तमाम लेनदारोंका रुपया पूरा चुकता किये बिना दम न लेगा — फिर उसका स्टोर चाहे लिमिटेड हो या न हो। प्रामाणिक व्यवसायके बारेमें मेरी यही मान्यता है। पर हो सकता है कि उसके विचार जुदे हों और वह दिवाला निकालनेसे सम्बन्धित कानूनका सहारा ले। मेरी तरफसे सर्वसाधारणको इतना ही यकीन दिला देना काफी है कि किसी भी छल-छद्मकी बातका समर्थन मेरी ओरसे कभी नहीं होगा। मेरे नजदीक सत्याग्रह-धर्म, प्रेमधर्म एक शाश्वत सिद्धान्त है। मैं तमाम अच्छी बातोंके साथ सहयोग करता हूँ। मैं तमाम बुरी बातोंके साथ असहयोग करनेका इच्छुक रहता हूँ, फिर उनका सम्बन्ध मेरी पत्नीके साथ हो, लड़केके साथ हो, या खुद मेरे ही साथ। मैं दोनोंमें से किसीकी भी ढाल बनना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि दुनिया हमारे तमाम दोषों और बुराइयोंको जान ले। जहाँतक हो सकता है शिष्टताके साथ मैं दुनियाको कौटुम्बिक रहस्य मानी जानेवाली अपनी तमाम बातें बता देता हूँ। मैं उन्हें छिपानेकी जरा भी कोशिश नहीं करता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि उनको छिपानेसे हमारी हानि ही होगी।

हरिलालके जीवनमें बहुतेरी ऐसी बातें हैं, जिन्हें मैं नापसन्द करता हूँ। वह यह बात जानता भी है। पर उसके इन दोषोंके रहते हुए भी मैं उसे प्यार करता हूँ। आखिर पिताका हृदय ही ठहरा। ज्यों ही वह उसमें प्रवेश पाना चाहेगा, उसे स्थान मिल जायेगा। फिलहाल तो उसने अपने लिए उसका द्वार बन्द कर रखा है। अभी उसे और दर-दरकी खाक छाननी है। मानवी पिताके संरक्षणकी तो निश्चित सीमाएँ होती हैं, पर दैवी पिताका द्वार उसके लिए सदा खुला हुआ है। वह उसे खोजेगा तो वहाँ जरूर स्थान पायेगा।

ये वकील साहब तथा उनके मुवक्किल इस बातको जान लें कि यदि एक वयस्क पुत्रकी गलतियोंसे, जिनके लिए मैंने कभी उसको उत्साहित नहीं किया, मेरी कीर्तिमें कलंक लग सकता हो तो फिर वह कीर्ति किस कामकी? यदि कांग्रेसके सभापति और उसकी भिन्न-भिन्न कमेटियोंके सदस्य अपने न्यास अथवा उत्तरदायित्वके प्रति सच्चे बने रहें और एक पैसेका भी दुरुपयोग न करें तो इस दरिद्र देशका आर्थिक कल्याण ऐसी निजी कम्पनियोंके डूब जानेपर भी भलीभाँति सुरक्षित रहेगा। मुझे उन

मुवक्किल महोदयपर तरस आता है जो मेरे सम्मानकी खातिर एक ऐसी कम्पनीके हिस्सेदार बन गये, जिसके नियमोंको पढ़नेकी उन्होंने कभी परवाह ही नहीं की। इन मुवक्किलके इस उदाहरणको देखकर वे लोग होशियार हो जायें जो बड़े-बड़े नामोंको देखकर किसी कारोबारमें शामिल हो जाते हैं। कोई व्यक्ति अच्छा हो सकता है—पर यह जरूरी नहीं है कि उसकी सन्तान भी अच्छी ही हो। उसका कुछ बातोंमें अच्छा होना सम्भव है, पर सभी बातोंमें उसका अच्छा होना जरूरी नहीं है। वही मनुष्य जो एक बातके बारेमें प्रमाण माना जा सकता है, हर बातके बारेमें नहीं माना जा सकता। हरएकको अपना सौदा ठोक-बजाकर करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-६-१९२५

१६०. तार : मोतीलाल नेहरूको

कलकत्ता

[१८ जून, १९२५][1]

पण्डित मोतीलालजी नेहरू
हर्स्ट लॉज
डलहौजी

मैं यहाँ आपके प्रतिनिधिके रूपमें हूँ। जानते-बूझते कोई ऐसा काम नहीं करूँगा जो आपको नापसन्द हो। बासन्ती देवीके पाससे हिलता नहीं हूँ। कृपया विश्राम कीजिये, कोई जोखिम मत उठाइये। आपको पूरी ताकत आ जानेपर ही पहाड़ोंसे लौटना चाहिए। श्रद्धांजलि-सभातक तो कलकत्ता-में रुकूँगा ही। तार द्वारा सूचित कीजिए कि स्वास्थ्यमें कितना सुधार हो पाया है। क्या जवाहरलाल वहीं है?

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६४४) की फोटो-नकलसे।

१. चित्तरंजन दासके अस्थि-अवशेष इसी दिन कलकत्ता पहुँचे थे।

१६१. तार: के० केलप्पन नायरको[1]

[रसा रोड
कलकत्ता
१८ जून, १९२५ या उसके पश्चात्]

हम किसी आधे समझौतेके लिए तैयार न हों; पर सत्याग्रहियोंको ऐसे स्थानोंपर तैनात किया जाना चाहिए जिनपर कमिश्नरको आपत्ति न हो। आपके तारका आशय स्पष्ट नहीं। जो भी हो, सड़कें बिलकुल खुली रहनी चाहिए।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६९१) की फोटो-नकलसे।

१६२. देशबन्धु जिन्दाबाद![2]

[१९ जून, १९२५]

कलकत्ताने कल दिखला दिया है कि देशबन्धु दासका बंगाल ही नहीं, सारे भारतवर्षके हृदयपर कितना अधिकार था। बम्बईकी तरह कलकत्ता भी सार्वभौमिक नगर है। इसमें हर प्रान्तके लोग बसते हैं और इन तमाम प्रान्तोंके लोग, बंगालियोंकी तरह ही, उस जुलूसमें हार्दिक योग दे रहे थे। देशके कोने-कोनेसे तारोंकी जो झड़ी लग रही है उससे भी यही बात और जोरके साथ प्रकट होती है कि सारे देश-भरमें वे कितने लोकप्रिय थे।

अपनी कृतज्ञताके लिए प्रसिद्ध इस जन-समाजसे इससे भिन्न व्यवहारकी अपेक्षा भी नहीं की जा सकती थी। फिर देशबन्धु इसके पात्र भी थे। उनका त्याग महान् था। उनकी उदारताकी सीमा न थी। उनकी मुट्ठी सदा और सबके लिए खुली रहती थी। दान देनेमें वे कभी आगा-पीछा न करते थे। उस दिन जब मैंने बड़े मीठे भावसे कहा कि अच्छा होता आप दान देनेमें अधिक विचारसे काम लेते तो उन्होंने

१. गांधीजीके १७ जूनके तारके बाद उन्हें श्री केलप्पनका इस प्रकारका तार मिला था: "आधी सड़कोंके इस्तेमालकी इजाजतके लिए सरकार एक तरहसे राजी। कोई ऐलान नहीं। बाकी सड़कोंको बन्द करनेका मतलब है सदाके लिए अनुपगम्यताको बरकरार रखना। हल स्वीकार्य नहीं। सत्याग्रह त्यागनेका अर्थ है अनुपगम्यताकी प्रथाके सामने घुटने टेकना; उत्तर तार द्वारा दें।" केलप्पन नायरने इसी दिन ब्योरेवार पत्र भी लिखा था; देखिए "पत्र: के० केलप्पन नायरको", २८-७-१९२५।

२. यह लेख २० जून, १९२५ के अमृतबाजार पत्रिकामें भी प्रकाशित हुआ था।

तुरन्त उत्तर दिया, "पर मैं नहीं समझता कि अपने अविचारके कारण मेरी कुछ हानि हुई है।" उनका रसोईघर अमीर और गरीब सबके लिए खुला रहता था। उनका हृदय हरएककी मुसीबतके समय सहानुभूतिसे भर जाता था। बंगाल-भरमें ऐसा कौन नवयुवक है जो किसी-न-किसी रूपमें देशबन्धुके उपकारसे बँधा नहीं है? उनकी बेजोड़ कानूनी प्रतिभाका लाभ भी गरीबोंको सदा सुलभ रहता था। मुझे मालूम हुआ है कि उन्होंने यदि सबकी नहीं तो बहुतेरे राजनीतिक कैदियोंकी पैरवी बिना एक पैसा लिए की है। पंजाब-काण्डकी[1] जाँचके समय जब वे पंजाब गये थे तो अपना सारा खर्च अपनी जेबसे ही किया था। उन दिनों अपने साथ वे एक राजाकी तरह लवाजिमा ले गये थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि पंजाबकी उस यात्रामें उनके ५०,०००) खर्च हुए थे। जो उनके दरवाजे आता उसीके लिए उनका उदार हाथ आगे बढ़ जाता था। उनके इसी गुणने उन्हे हजारों नवयुवकोंका हृदय-सम्राट् बना दिया था।

वे जैसे उदार थे वैसे ही निर्भीक भी थे। अमृतसरमें उनके धुआँधार भाषणोंने मुझे चकित कर दिया था। वे अपने देशकी मुक्ति तुरन्त चाहते थे। वे एक भी विशेषणको हटाने या बदलनेके लिए तैयार न थे, इसलिए नहीं कि वे जिद्दी थे, बल्कि इसीलिए कि उन्हें अपना देश बहुत प्यारा था। उन्होंने विशाल शक्तियोंको अपने नियन्त्रणमें रखा। अपने अदम्य उत्साह और अध्यवसायके द्वारा उन्होंने अपने दलको शक्ति-सम्पन्न बनाया। परन्तु यह भीषण शक्तिप्रवाह उनकी जान ले बैठा। उनका यह बलिदान स्वैच्छिक था। वह उच्च था — उदात्त था।

उनकी सबसे बड़ी जीत फरीदपुरके कांग्रेस अधिवेशनके अवसरपर हुई। उनके वहाँके उद्‌गार उनकी अनुपम विवेकशक्ति और राजनीतिज्ञताके नमूने थे। उनका वह भाषण विचारपूर्ण और स्पष्ट था और (जैसा कि मुझसे उन्होंने कहा) उसमें उन्होंने अपने लिए अहिंसाको एकमात्र नीति और इसलिए भारतवर्षके राजनीतिक धर्मके रूपमें स्वीकार किया था।

पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा महाराष्ट्रके अनुशासनबद्ध, दिग्गज नेताओंके साथ मिलकर उन्होंने शून्यवत् स्वराज्यदलको एक महान् और वर्धमान दल बना लिया और ऐसा करके उन्होंने अपनी संकल्पशक्ति, मौलिकता, साधनबाहुल्य और किसी वस्तुको अच्छा मान लेनेके बाद फिर परिणामकी चिन्ता न करने आदि गुणोंका परिचय दिया। फलस्वरूप आज हम स्वराज्यदलको एक ठोस और सुचारु रूपसे अनुशासनबद्ध संगठनके रूपमें देखते है। कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें मेरा उनसे मतभेद था और है। पर मैंने सरकारका काम कठिन बनाने और पग-पगपर उसके कामका अनौचित्य दिखानेके एक साधनके रूपमें कौंसिल-प्रवेशकी उपयोगितासे कभी इनकार नहीं किया। कौंसिलोंमें इस दलने जो काम किया उसके महत्त्वसे कोई इनकार नहीं कर सकता और उसका श्रेय मुख्यतः देशबन्धुको ही है। मैंने हर चीजपर खूब सोच-विचार करके ही उनके साथ समझौता किया था। तबसे मैंने उस दलकी यथाशक्ति सहायता की है। अब

१. १९१९ में।

उसके नेताके स्वर्गवासके बाद, मेरा यह दोहरा कर्त्तव्य हो गया है कि मैं उस दलका साथ दूं। यदि मैं उसकी सहायता न कर पाया तो भी उसकी प्रगतिमें तो मैं किसी तरह बाधक नहीं बनूंगा।

मैं फिर उनके फरीदपुरवाले भाषणपर आता हूँ। स्थानापन्न वाइसरायने श्रीमती बासन्ती देवी दासके नाम शोकसन्देश भेजा है। राष्ट्र वाइसराय महोदयकी शिष्टताकी कद्र करेगा। आंग्ल-भारतीय पत्रोंने स्वर्गीय देशबन्धुकी स्मृतिमें जो उनका यशोगान किया है उसका उल्लेख मैं कृतज्ञतापूर्वक करता हूँ। मालूम होता है कि फरीदपुरवाले भाषणकी खरी सत्यनिष्ठाकी भावनाने अंग्रेजोंके दिलपर अच्छा असर डाला है। मुझे इस बातकी चिन्ता है कि कही उनका स्वर्गवास केवल इस शिष्टाचार प्रदर्शनका अवसर बनकर ही न रह जाये। फरीदपुरवाले भाषणके मूलमें एक महान् उद्देश्य था। आंग्ल-भारतीय मित्रोंने चाहा था कि देशबन्धु अपनी स्थितिको स्पष्ट कर दें और अपनी तरफसे पहल करें। इसीके उत्तरमें उस महान् देशभक्तने वह भाषण किया था और अपनी स्थिति स्पष्ट की थी। पर क्रूर कालने उस उदार संकेतके प्रेरकको हमसे छीन लिया। परन्तु उन अंग्रेजोंको, जो अब भी देशबन्धुकी नीयतपर शक रखते हों, मैं यकीन दिलाना चाहता हूँ कि जबतक मैं दार्जिलिंगमे रहा, मेरे दिलपर जो बात सबसे ज्यादा जोरके साथ अंकित हुई, वह थी देशबन्धुके उन वचनोंमें निहित निर्मल भावना। क्या इस गौरवमय अन्तका सदुपयोग हमारे घावोंको भरने और अविश्वासको मिटानेमें नही किया जा सकता? मैं एक सीधी-सी बात सुझाता हूँ। सरकार देशबन्धु चित्तरंजन दासकी स्मृतिमे, जो जब अपने पक्षकी पैरवी करनेके लिए हमारे साथ दुनियामें नहीं है, उन तमाम राजनीतिक कैदियोंको छोड़ दे जिनके सम्बन्धमें उनका कहना था कि वे निर्दोष हैं। मैं निरपराधताकी बिनापर उन्हें छोड़नेके लिए नही कहता। हो सकता है कि सरकारके पास उनके अपराधके लिए पक्के सबूत हों। मैं तो सिर्फ उस मृत आत्माके गुणोंकी स्मृतिमें, बिना पहलेसे कोई दुराग्रह रखे उन्हें छोड़ देनेके लिए कहता हूँ। यदि सरकार भारतीय लोकमतके अनुरंजनके लिए कुछ भी करना चाहती है तो इससे बढ़कर अनुकूल अवसर न मिलेगा और राजनीतिक कैदियोंकी रिहाईसे बढ़कर अनुकूल वायुमण्डल बनानेका अच्छा श्रीगणेश दूसरा न होगा। मैं प्रायः सारे बंगालका दौरा कर चुका हूँ। मैंने देखा है कि इस बातसे लोगोंके मनमें बड़ा रोष है — इनमें सभी लोग आवश्यक रूपसे स्वराज्यवादी नहीं हैं। परमात्मा करे कि वह अग्नि, जिसने कल देशबन्धुके नश्वर शरीरको भस्म कर डाला, हमारे नश्वर अविश्वास, सन्देह और डरको भी भस्मसात् कर दे। फिर यदि सरकार चाहे तो वह भारतवासियोंकी माँग — वह जो-कुछ भी हो — की पूर्तिके सर्वोत्तम उपायोंपर विचार करनेके लिए एक सम्मेलन बुला सकती है।

पर यदि सरकार अपने जिम्मेका काम कर लेगी तो हमें भी अपने हिस्सेका काम पूरा करना होगा। हममें यह दिखा देनेकी शक्ति होनी ही चाहिए कि हमारी नौका एक आदमीके भरोसे नहीं चल रही है। श्री विन्स्टन चर्चिलके शब्दोंमें, जो कि उन्होंने युद्धके समय कहे थे, हमें कह सकना चाहिए, 'सब काम ज्योंका-त्यों चलता रहेगा।'

स्वराज्यदलकी पुनर्रचना तुरन्त होनी चाहिए। पंजाबके हिन्दू और मुसलमान भी इस दैवी-प्रकोपको देखकर अपने लड़ाई-झगड़े भूल गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है। क्या दोनों पक्षके लोग इतनी दृढ़ता और समझदारीका परिचय देंगे कि अपने लड़ाई-झगड़ोंका अन्त कर दें? देशबन्धु हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रेमी थे। उसपर उनका विश्वास भी था। उन्होंने अत्यन्त विकट परिस्थितिमें भी हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक बनाये रखा। क्या उनकी चिताग्नि हमारे अनैक्यको भी न जला डालेगी? तमाम दलोंका एक संस्थाके अन्तर्गत आ मिलना शायद इसकी ठीक शुरुआत होगा। देशबन्धु इसके लिए बड़े उत्सुक थे। सम्भव है, उन्होंने अपने प्रतिपक्षियोंके सम्बन्धमें कटु वाक्य प्रयुक्त किये हों। परन्तु दार्जिलिंगमें मैं वहाँ जितने दिन ठहरा, देशबन्धुके मुँहसे उनके किसी भी राजनीतिक प्रतिपक्षीके प्रति एक भी कठोर शब्द निकलते न सुना। उन्होंने मुझसे कहा कि आप सब दलोंको एक करनेमें भरसक सहायता दीजिए। सो अब हम शिक्षित भारतवासियोंका कर्त्तव्य है कि देशबन्धुके इस दूरदर्शितापूर्ण विचारको कार्यरूपमें परिणत करें और उनके जीवनकी इस एक महत्त्वाकांक्षाको पूर्ण करें — यदि हम फिलहाल स्वराज्यकी सीढ़ीपर ठेठ ऊपरतक न पहुँच सकें तो उसकी कुछ सीढ़ियाँ तो तुरन्त ही चढ़ जायें। तभी हम अपने हृदयस्तलसे पुकार सकते हैं — 'देशबन्धु स्वर्गवासी हुए; देशबन्धु जिन्दाबाद!'

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१६३. श्रद्धांजलि-सभाके सम्बन्धमें निर्देश

कलकत्ता

१९ जून, १९२५

भारतने देशके कोने-कोनेमें शोक-सभाएँ करके अपनेको गौरवान्वित किया है। लेकिन जनताको देशबन्धुके प्रति अपना स्नेह पर्याप्त रूपमें व्यक्त करनेका समय नहीं मिल पाया। इसीलिए मेरा सुझाव है कि देश-भरमें जहाँ-जहाँ कांग्रेसका प्रभाव हो, हर कस्बे और हर गाँवमें एक श्रद्धांजलि सभाका आयोजन किया जाये और उसमें उपयुक्त प्रस्ताव पास किये जायें। मुझे आशा है कि सभी दलोंके लोग, यूरोपीय लोग भी, श्रद्धांजलि सभामें भाग लेनेके लिए आमन्त्रित किये जायेंगे।

मैं अन्यत्र कहीं लिख भी चुका हूँ कि देशबन्धुकी अन्तिम अभिलाषा यही थी कि सभी दल एक सर्वमान्य उद्देश्यको पूरा करनेके लिए एक हो जायें। ईश्वर करे यह अखिल भारतीय श्रद्धांजलि सभा सभी दलों और जातियोंके बीच वास्तविक एकताका मार्ग प्रशस्त कर दे।

मैंने कलकत्तामें मौजूद नेताओं और देशबन्धु परिवारके सदस्योंसे इस सभाकी तिथिके बारेमें मशविरा कर लिया है। उन्होंने इसके लिए पहली जुलाईका दिन निश्चित

करनेका सुझाव दिया है, क्योंकि उनकी मृत्युके बादका सोलहवाँ दिन होनेके कारण यही श्राद्धका दिन पड़ता है। यदि समूचे देशकी सभाओंके लिए एक ही समय निर्धारित कर दिया जाये तो इन सभाओंका महत्त्व और भी बढ़ जायेगा। इसलिए मेरा सुझाव है कि आगामी पहली जुलाईके दिन पाँच बजे (स्टैंडर्ड टाइम) शामका समय इसके लिए ठीक किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २४-६-१९२५

१६४. स्मरणांजलिके लिए निवेदन[1]

१९ जून, १९२५

जनताको यह बतला देना मेरा कर्त्तव्य है कि श्रीमती वासन्ती देवीको स्वनामधन्य अपने पतिके देहावसानके दिनसे ही दुःसह मानसिक तनावमें से गुजरना पड़ रहा है। मैंने खुद दो दिन देखा है कि उनके पास संवेदना प्रकट करनेवालोंका तांता लगा रहा है। अपनी स्वाभाविक विनम्रताके कारण वे किसीसे भी मिलनेसे इनकार नहीं कर पातीं। इसका नतीजा यह हुआ है कि आज उनके शरीरने लगभग जवाब ही दे दिया है। शायद लोग नहीं जानते कि उनका शरीर बहुत ही कमजोर है और उनको दिलकी बीमारी भी है। उनके और राष्ट्रके ऊपर पड़े इस विपद्-कालमें यह तो उनका अपार साहस ही है, जो उनका साथ दे रहा है। सामान्य परिस्थितिमें भी और वह भी किसी स्वस्थ व्यक्तिके लिए सुबहसे लेकर काफी रात गयेतक मुलाकातियोंसे एकके बाद-एक लगातार मिलते रहना सचमुच असहनीय मानसिक क्लान्ति हो जाती। मेरे काफी समझाने-बुझानेपर उन्होंने मुझे मुलाकातियोंके लिए एक समय निर्धारित करनेकी अनुमति दी है। मैंने मित्रों तथा वासन्ती देवीके चिकित्सक-सलाहकारोंसे मशविरा करके उनकी सहमतिसे मुलाकातियोंके लिए शामको ५ से ७ तकका समय निश्चित किया है। इस शोकसन्तप्त महिलासे मिलने आनेके इच्छुक सभी लोगोंसे मेरा विनम्र निवेदन है कि वे निर्धारित समयमें ही आयें। यदि इस अनुरोधको मान लिया गया तो सम्भव है कि बिलकुल ही खाट पकड़नेकी नौबत न आय।

क्या स्थानीय भाषाओंके समाचारपत्र इसका अनुवाद छापनेकी कृपा करेंगे?

मो० क० गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०५९२) की फोटो-नकलसे।

१. यह सन्देश चितरंजन दासके निधनके बाद कलकत्तासे समाचारपत्रोंके लिए भेजा गया था। इसका मसविदा गांधीजीके स्वाक्षरोंमें है।

१६५. चित्तरंजन दास

२० जून, १९२५

एक दिग्गज पुरुष उठ गया! बंगाल आज एक विधवाकी तरह हो गया है। कुछ सप्ताह पहले देशबन्धुकी आलोचना करनेवाले एक सज्जनने मुझसे कहा था, "यद्यपि यह सच है कि मैं उनके दोष बताता हूँ, फिर भी मैं आपके सामने स्पष्ट रूपसे कह रहा हूँ कि उनकी जगहपर बैठने लायक दूसरा कोई शख्स है ही नहीं।" जब खुलनाकी सभामें, जहाँ यह अत्यन्त क्षोभकारी समाचार मैंने पहले-पहल सुनाया, इस प्रसंगका मैंने जिक्र किया, तब आचार्य रायने छूटते ही कहा: "यह बिलकुल यथार्थ है। यदि मैं यह बता सकूँ कि रवीन्द्रनाथके बाद कविका स्थान कौन लेगा, तभी मैं यह भी कह सकूँगा कि देशबन्धुके बाद नेताका स्थान कौन ले सकता है। बंगालमें कोई आदमी ऐसा नहीं है जो देशबन्धुकी ऊँचाईके नजदीक भी पहुँच पाता हो।" वे सैकड़ों संघर्षोंके विजेता वीर थे। उनकी उदारता दोषकी हदतक बढ़ी हुई थी। वकालतमें उन्होंने लाखों रुपये पैदा किये, पर उन्होंने कभी उस धनका संचय करके धनी बनना न चाहा; यहाँतक कि अपना भव्य भवन भी दानमें दे डाला।

१९१९ में, पंजाब कांग्रेस जाँच-समितिके सिलसिलेमें उनसे मेरी पहले-पहल भेंट हुई थी। जब उनसे मिलनेका अवसर आया तब मेरे मनमें भय और शंकाके भाव थे। मैं दूर-दूरसे ही उनकी धुआँधार वकालत और उससे भी अधिक उनकी ओजस्विनी वक्तृत्वशक्तिके बारेमें सुनता रहा था। वे अपनी मोटरमें बैठकर सपत्नीक—सपरिवार—आये थे। वे राजाओंकी-सी शान-शौकतसे रहते थे। मेरा पहला अनुभव तो कुछ अच्छा न रहा। हम लोग हंटर-समितिकी तहकीकातमें गवाहियाँ दिलानेके प्रश्नपर विचार करनेके लिए बैठे थे। मैंने देखा कि वे तमाम कानूनी बारीकियोंसे परिचित थे और उनमें गवाहको जिरहमें परास्त कर देनेके साथ ही फौजी-कानूनसे संचालित शासन-व्यवस्थाकी अनेक शरारतों या कुचेष्टाओंकी कलई खोल देनेकी वकीलोचित तीव्र लालसा भी थी। मेरा प्रयोजन भिन्न था। मैंने उन्हें अपना मन्तव्य बताया। दूसरी मुलाकातके बाद मेरे दिलको तसल्ली हुई और मेरा तमाम डर दूर हो गया। मैंने जो-कुछ उन्होंने कहा उसे गौरके साथ सुना। भारतवर्षके बहुतेरे देशसेवकोंके घनिष्ठ सम्पर्कमें आनेका मेरा यह पहला अवसर था। तबतक कांग्रेसके किसी काममें मैंने व्यवहारतः कोई हिस्सा नहीं लिया था। वे मुझे दक्षिण आफ्रिकाके एक योद्धाके रूपमें ही जानते थे। पर इस समितिके मेरे तमाम साथियोंने मेरा संशय और संकोच दूर करके मुझे अपना दोस्त-जैसा बना लिया। और देशके इस विख्यात सेवकका नम्बर इसमें सबसे आगे था। मैं उस समितिका अध्यक्ष माना जाता था। 'जिन बातोंमें हमारा मतभेद होगा, उनमें मैं अपना मत आपके सामने उपस्थित कर दूँगा, फिर जो फैसला आप करेंगे उसे मान लूँगा, इसका यकीन मैं आपको दिलाता हूँ।' उनके

इस स्वयंस्फूर्त आश्वासनके पहले ही हममें इतनी घनिष्ठता स्थापित हो गई थी कि मुझे अपने मनका संशय उनपर प्रकट कर देनेका साहस हो गया। उनकी ओरसे उपर्युक्त आश्वासन मिल जानेके पश्चात् मुझे इस वफादार सहयोगीपर अभिमान तो हुआ, किन्तु साथ ही मुझे कुछ शर्म-सी आई, क्योंकि मैं जानता था कि मैं तो भारतकी राजनीतिमें एक नौसिखिया हूँ और कदाचित् ही ऐसे पूर्ण विश्वासका अधिकारी हूँ। परन्तु अनुशासन छोटे-बड़ेका भेद नहीं जानता। वह राजा जो अनुशासनके मूल्यको जानता है, अपने खिदमतगारकी भी बात, उस मामलेमें जिसका पूरा भार वह उसीपर छोड़ देता है, मान लेता है। इस जगह मेरा स्थान एक खिदमतगार-जैसा था। और मैं इस बातका उल्लेख कृतज्ञता और अभिमानके साथ करता हूँ कि मुझे जितने वफादार सहयोगी वहाँ मिले थे, उनमें कोई इतना वफादार न था जितने चित्तरंजन दास थे।

अमृतसरमें कांग्रेस अधिवेशनके अवसरपर अनुशासन चलानेका अधिकार मुझे नहीं मिल सकता था। वहाँ हम सभी योद्धा थे; हममें से हरएकको अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार राष्ट्रहित-रूपी अपनी थातीकी रक्षा करनी थी। वहाँ शुद्ध तर्क अथवा पक्षके हितके अलावा अन्य किसीके सुझावके सामने सिर झुकानेका सवाल ही न था। कांग्रेसके मंचपर पहली लड़ाई लड़ना मेरे लिए बहुत आनन्दका विषय था। परम विनयी, परन्तु वैसे ही दृढ़, महान् मालवीयजी दोनों पक्षोंमें सन्तुलन रखनेकी कोशिश कर रहे थे। राजी करनेके खयालसे वे कभी एकके पास जाते थे, कभी दूसरेके पास। कांग्रेसके अध्यक्ष पण्डित मोतीलालजीने सोचा कि खेल खत्म हो चुका है। लोकमान्य और देशबन्धुके साथ इस बार मेरा समय जैसा बीता, वह मेरी स्मृतिमें एक विरल अनुभवके रूपमें कायम रहने वाला है। उन दोनोंने सुधार सम्बन्धी प्रस्तावका एक ही सूत्र बना रखा था। हम एक दूसरेके गले अपनी-अपनी बात उतार देना चाहते थे। पर कोई किसीका कायल न होता था। बहुतोंने तो सोचा था कि अब कोई चारा नहीं है और बात बिगड़ ही चुकी है। अलीभाई, जिन्हें मैं जानता जरूर था, और जिनके प्रति मेरा प्रेमभाव था, परन्तु जिनके साथ आजकी तरह घनिष्ठ परिचय नहीं था, मुझे देशबन्धुके प्रस्तावके पक्षमें लानेकी कोशिश करने लगे। मुहम्मद अलीने अपनी आग्रहपूर्ण विनम्रताके साथ कहा, 'जाँच-समितिमें आपने जो महान् कार्य किया है, कृपया उसे नष्ट न कीजिए।' पर उनकी बात मुझे न जँची। तब ज़यरामदास, उस ठंडे दिमागवाले सिन्धीने, पतवार थामी; उन्होंने समझौतेसे सम्बन्धित अपने सुझाव, मय अपने तर्कके, एक कागजपर लिखकर मेरे पास भेजे। मैं उन्हें बहुत कम जानता था। पर उनके नेत्रों और चेहरेमें कोई ऐसी बात थी, जिसने मुझे लुभा लिया। मैंने उस पुर्जेको पढ़ा; सुझाव अच्छा था। मैंने उसे देशबन्धुको दिया। उन्होंने जवाब दिया — "ठीक है, बशर्ते हमारे पक्षके लोग इसे मान लें।" यहाँ अपने दलके प्रति उनकी निष्ठापर गौर कीजिए। अपने पक्षके लोगोंका समाधान किये बिना वे रह नहीं सकते थे। यही एक रहस्य है, लोगोंके हृदयोंपर उनके आश्चर्यजनक अधिकारका। वह योजना सब लोगोंको पसन्द आई। लोक-

मान्य अपनी गरुड़के सदृश तेज नजरसे वहाँ जो-कुछ हो रहा था, सब देख रहे थे। व्याख्यान-मंचसे पण्डित मालवीयजीकी गंगाके सदृश वाग्धारा वह रही थी — उनकी एक आँख सभामंचपर लगी थी, जहाँ हम साधारण लोग बैठे हुए राष्ट्रके भाग्यका निर्णय कर रहे थे। लोकमान्यने कहा — "मेरे देखनेकी जरूरत नहीं। यदि दासने उसे पसन्द कर लिया है तो मेरे लिए वह काफी होगा।" मालवीयजीने उसे वहाँसे सुना, कागज मेरे हाथसे छीन लिया और तीव्र करतलध्वनिके बीच घोषित कर दिया कि समझौता हो गया है। मैंने इस घटनाका सविस्तार वर्णन इसलिए किया है कि इसमें देशबन्धुकी महत्ता, उनके निर्विवाद नेतृत्व, उनकी कार्यविषयक दृढ़ता, निर्णय सम्बन्धी समझदारी, दलके प्रति वफादारी इत्यादिके कारणोंका निचोड़ आ जाता है।

अब और आगे बढ़िए। अब हम जुहू, अहमदाबाद, दिल्ली और दार्जिलिंगकी बात उठाते हैं। जुहूमें वे और पण्डित मोतीलालजी मुझे अपने पक्षमें मिलानेके लिए आये। वे दोनों जुड़वाँ भाई-जैसे हो गये थे। हमारे दृष्टिकोण जुदा-जुदा तो थे ही। पर उन्हें यह गवारा न था कि मेरे साथ मतभेद रहे। यदि उनके बसकी बात होती तो जहाँ मैं २५ मील चाहता वे ५० मील चले जाते। परन्तु जहाँ देशहितका प्रश्न था, वे एक अत्यन्त प्रिय मित्रके सामने भी एक इंचतक झुकना नहीं चाहते थे, हमने एक किस्मका समझौता कर लिया। हमारा मन तो न भरा; पर हम निराश भी न हुए। बात यह थी कि हम एक-दूसरेपर विजय प्राप्त करनेपर तुले हुए थे। बादको हम अहमदाबादमें मिले। देशबन्धु अपने पूरे रंगमें थे और परिस्थितियोंका अवलोकन एक चतुर खिलाड़ीकी तरह कर रहे थे। उन्होंने मुझे शानदार शिकस्त दी।[1] उनके जैसे मित्रके हाथों ऐसी कितनी शिकस्तें मैं न खाऊँगा? — पर अफसोस! वह शरीर अब दुनियामें नहीं है। कोई यह खयाल न करे कि साहावाले प्रस्तावके[2] कारण हम एक-दूसरेके शत्रु बन गये थे। हम एक-दूसरेको गलतीपर जरूर समझते थे, पर वह मतभेद स्नेहियोंके बीचका मतभेद था। वफादार पति और पत्नी अपने पवित्र मतभेदोंके दृश्योंको याद करें — किस तरह वे अपने मतभेदोंके कारण कष्ट सहते हैं, ताकि उनके पुनर्मिलनका सुख द्विगुणित हो जाये। हमारी हालत यही थी। सोचता था, हमें फिर दिल्लीमें उस शिष्ट किन्तु दुर्दान्त पण्डितसे और विनम्र स्वभाववाले दाससे, जिसका बाहरी रूप सरसरी तौरपर देखनेवालेको रूक्ष मालूम हो सकता है, मिलना होगा। समझौतेका खाका वहाँ तैयार हुआ और पसन्द भी किया गया। वह एक अटूट प्रेमबन्धन था, जिसपर कि अब एक पक्षने अपनी मृत्युके रूपमें अन्तिम मुहर लगा दी है।

अब मैं फिलहाल दार्जिलिंगका जिक्र छोड़ता हूँ। वे आध्यात्मिक होनेका दावा भी करते थे और कहते थे कि धर्मके विषयमें मुझसे उनका कोई मतभेद नहीं है। पर यद्यपि उन्होंने कहा नहीं, तथापि उनका भाव यह रहा होगा कि मैं इतना रसहीन हूँ कि मुझे हमारे विश्वासोंकी एकरूपता नहीं दिखाई देती। मैं मानता हूँ कि उनका

१. देखिए खण्ड २४, पृष्ठ ३४२-४९।
२. देखिए खण्ड २४, पृष्ठ २७२-७६।

खयाल ठीक था। उन बहुमूल्य पाँच दिनोंमें मैंने उनके प्रत्येक कार्यमें गहरी धर्म-भावना देखी। वे न केवल महान् थे, बल्कि नेक भी थे, उनकी नेकी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। पर इन पाँच दिनोंके अनमोल अनुभवोंको मुझे किसी अगले दिनके लिए रख छोड़ना चाहिए। क्रूर दैवने जब लोकमान्यको हमसे छीना था, तब मैं अकेला और असहाय रह गया था। मेरी वह चोट अभीतक नहीं भर पाई है — क्योंकि मैं आज भी उनके प्रिय शिष्योंकी कृपाका आकांक्षी हूँ। पर देशबन्धुके वियोगने तो मुझे और भी शोचनीय अवस्थामें छोड़ दिया है। जब लोकमान्य हमसे जुदा हुए थे तब देश आशा [और उमंग] से भरा हुआ था; हिन्दू और मुसलमान हमेशाके लिए एक होते हुए दिखाई दे रहे थे; हम युद्धका शंख फूँकनेकी तैयारीमें थे। पर अब?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१६६. संरक्षणकी आवश्यकता

देखा तो यही गया है कि आजतक कोई भी बड़ा धन्धा संरक्षण या सहायताके बिना नहीं चल सका है। सहायता तीन प्रकारसे मिल सकती है। राज्यसे, समाजसे अथवा किसी व्यक्तिसे। धनी लोग जब स्वयं रुपया कमानेकी इच्छासे किसी भी नये धन्धेमें अपनी पूँजी लगाते हैं तो वे प्रारम्भमें ही मुनाफा मिलनेकी आशा नहीं रखते। इसी तरह समाजके लाभके लिए आरम्भ किए जानेवाले धन्धेमें समाजको पहले आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। जहाँ राज्यतन्त्र सुव्यवस्थित और लोकोपयोगी होता है वहाँ राज्य धन्धोंकी सँभाल आर्थिक सहायता देकर करता है।

खादीका कार्य किसी एक व्यक्तिके लाभका कार्य नहीं है; इसलिए उसको कोई एक व्यक्ति संरक्षण नहीं दे सकता। यदि उसे एक व्यक्ति संरक्षण दे भी तो वह एक निश्चित सीमासे आगे व्यर्थ सिद्ध होगा, क्योंकि खादी-प्रचार केवल धनसे ही नहीं किया जा सकता। यदि हमें ऐसे व्यापक हितके कार्यमें राज्यकी उत्साहपूर्ण और पर्याप्त सहायता मिल सके तो फिर कमी ही क्या रहे? वह तो राज्यका हृदय-परिवर्तन माना जाएगा और हम उससे प्रेमपूर्वक सहयोग करेंगे।

बाकी रही सामाजिक सहायता। इस सहायताके अभावमें जल्दी ही खादीका व्यापक प्रचार नहीं हो सकता। हम अभी तीन प्रकारसे सहायता ले रहे हैं और उसमें हमारा उद्देश्य खादीको सस्ता और अच्छा बनाना है।

सबसे पहले तो हम धनिक वर्गसे धनकी सहायताके बलपर खादीके दाम कुछ कम करते हैं। दूसरे हम कताई-सदस्यताकी मारफत सहायता लेते हैं। मताधिकारमें कताई-को सम्मिलित करनेके उद्देश्योंमें से एक मुख्य उद्देश्य यह है कि लोग सूत कातनेमें अपना आधा घंटेका श्रम मुफ्त देकर खादीके दाम सस्ता करने और खादीको अच्छा बनानेमें सहायता दें। तीसरी सहायता खादी-शास्त्रके ज्ञाताओंकी संख्या बढ़ानेके रूपमें है।

तीनों प्रकारकी सहायताको प्राप्त करनेका काम साथ-साथ चलता है। मैंने अपनी यात्रामें यह देखा है कि लोगोंमें खादीप्रेम तो बहुत है अथवा यह कहना चाहिए कि लोग खादी पहननेके लिए तो तैयार हैं; किन्तु वे खादी तलाश करनेका कष्ट उठानेके लिए अथवा विदेशी कपड़ेसे खादीका ज्यादा दाम देनेके लिए तैयार नहीं हैं। इस प्रकार अब हम इस स्थितितक पहुँच चुके हैं कि यदि हम सस्ती खादी तैयार कर सकें अथवा उसे सस्ती बेच सकें तो लोग उसका उपयोग करेंगे।

हमें धनी लोगोंकी सहायता पर्याप्त नहीं मिली है। मताधिकारमें सूत कातना शामिल तो कर लिया गया है; किन्तु अभी लोगोंने उसे इतना नहीं अपनाया है कि उस मताधिकारके अनुसार तैयार सूतका असर खादीके भावपर पड़ सके। इस प्रकार यदि समाज भारत-माताके लिए इतना भी करनेके लिए तैयार नहीं होता तो हम खादीका प्रचार जितना करना चाहते हैं उतना कैसे कर सकते हैं? इसके अतिरिक्त जबतक चरखा-शास्त्रमें प्रवीण कार्यकर्त्ता बहुत बड़ी संख्यामें नहीं मिलते तबतक सूत और खादीकी किस्म नहीं सुधारी जा सकती। ऊपर जो तीन काम बताए गए हैं वे ऐसे हैं कि उनको मध्यमवर्गके लोग अर्थात् थोड़ेसे लोग ही पूरा कर डाल सकते हैं। यदि ये काम हो जाएँ तो लोग तुरन्त खादी पहनने लग जाएँ। इसलिए इस दोष या त्रुटिके लिए मध्यमवर्ग जिम्मेदार है। यदि मध्यमवर्ग — शिक्षितवर्ग — खादी-की उपयोगिता समझ ले तो फिर खादीको व्यापक बनानेमें कोई अड़चन नहीं आ सकती; तब हम खादीके दाम जितने चाहें उतने कम कर सकेंगे।

यदि हमारे पास पर्याप्त संख्यामें चरखा-शास्त्रके जानकार हों तो हम जितना और जैसा सूत अब प्राप्त कर पाते हैं उतने ही समयमें उसकी अपेक्षा परिमाणमें कमसे-कम दुगुना या ड्योढ़ा और अधिक अच्छे किस्मका सूत प्राप्त कर लेंगे। हम चरखा-शास्त्रियोंके अभावमें जैसे-तैसे चरखे चलाते रहते हैं और चाहे जैसा सूत स्वीकार कर लेते हैं। चरखा-शास्त्री चरखोंके दोष दूर कर सकेंगे और फलस्वरूप अधिक सूत काता जा सकेगा तथा सूतके दोष भी दूर होंगे। ऐसा करनेपर खादीकी बुनाई भी अपेक्षाकृत सस्ती पड़ेगी। हाथ-कता सूत कच्चा-पक्का हो तो उसे बुननेमें देर लगती है; इसलिए मिलके सूतकी अपेक्षा उसकी बुनाई महँगी पड़ती है। दुर्भाग्यसे हमारे पास देश-भरमें गिने-चुने चरखा-शास्त्री हैं। हमने जितनी कम तैयारीसे चरखेके प्रचार-का काम शुरू किया है उतनी कम तैयारीसे किसी दूसरी प्रवृत्तिमें काम चल ही नहीं सकता था। कम तैयारी होनेपर भी हमने चरखा प्रचारमें जो प्रगति की है उससे यह मालूम पड़ता है कि चरखा और खद्दरकी महिमा कितनी है और वे देशके लिए कितने आवश्यक हैं। मेरा दृढ़ मत है कि भारतमें जो अनेक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं, उनमें खादीकी प्रवृत्ति सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। देशमें खादीके सिवा कोई दूसरी ऐसी व्यापक लोकोपकारी प्रवृत्ति नहीं है, जिसमें पिछले चार वर्षोंमें लोगोंके हाथोंमें इतना पैसा गया हो अथवा जिसमें इतने लोग दिन-रात व्यस्त रहे हों अथवा जिसमें आज इतने लोग ईमानदारीसे अपनी आजीविका कमा रहे हों या बिना कुछ लिए काम कर रहे हों। इस सबमें दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जाती है। इस प्रकारकी

शुभ और अल्प प्रयाससे फल देनेवाली प्रवृत्तिको यदि समुचित रूपसे उक्त तीनों प्रकार-का संरक्षण मिले तो मेरा निश्चित मत है कि भारत कुछ समयमें ही खादीमय हो जाएगा। मेरी प्रार्थना है कि धनी इसमें धन दें, हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई, स्त्री-पुरुष सब इसमें कमसे-कम आधे घंटेका श्रम दें और खादीप्रेमी इसके विशेषज्ञ बनकर इसे अपने ज्ञानका लाभ दें। इसके फलस्वरूप हिन्दुस्तान खादीमय बनेगा, हिन्दुस्तानका साठ करोड़ रुपया बाहर जानेसे रुकेगा, वह गरीबोंमें बँटेगा और उससे हिन्दुस्तानके लोगोंमें अपनी शक्तिके सम्बन्धमें आत्मविश्वास उत्पन्न होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-६-१९२५

१६७. पावककी ज्वाला

प्रीतमके गीतकी पंक्ति है कि "प्रेमपंथ पावककी ज्वाला है, लोग इसे देखकर पीछे भागते हैं"।[1] अस्पृश्यका स्पर्श करना, तिरस्कृतका सत्कार करना प्रेमपंथ है। उसमें बहुतसे संकट आते हैं। बाप त्याग दे, माँ घरसे निकाल दे, समाज बहिष्कृत कर दे और पुजारी देखते ही मन्दिरके द्वार बन्द कर दे; किन्तु जो प्रेम फिर भी बना रहे वही सच्चा प्रेम है।

काठियावाड़-जैसे छोटेसे प्रदेशमें अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनसे वैष्णव जगतमें खलबली मच गई है। जिन्होंने अस्पृश्यताको भ्रष्ट प्रथा मानकर त्याग दिया है, उनके लिए वैष्णव मन्दिरोंके द्वार बन्द किए जाने लगे हैं। ऐसे लोग मन्दिरोंके बिना कैसे काम चला सकेंगे? उन्हें क्या करना चाहिए? उत्तर एक ही हो सकता है: उन लोगोंको मन्दिरमें जाए बिना ही काम चलाना चाहिए। मूर्तिकी प्रतिष्ठा करने-वाले तो आखिर हम ही हैं। जिस मूर्तिके आसपास अधर्म फैलता है उससे तो हमें लाभके बजाय हानि ही होगी। अन्तिम मन्दिर तो हृदय ही है। मन्दिरकी भित्तियाँ तो लंगड़ेकी लकड़ी-जैसी हैं। वे तो सहारा-मात्र हैं। जब यह लकड़ी सहारा न रह-कर बोझ बन जाए तब उसे फेंक देना चाहिए। इस वैष्णव मन्दिरके द्वार बन्द हो सकते हैं; किन्तु हृदयरूपी मन्दिरके द्वार तो चौबीसों घंटे खुले रहते हैं। उसमें बैठा हुआ अन्तर्यामी भगवान हमारी रक्षा निरन्तर करता ही रहता है। जो प्रेमपंथपर चलते हैं उन्हें इस मंदिरमें विराजमान भगवानके दर्शन करके कृतार्थ होना चाहिए।

किन्तु वैष्णव मन्दिर तो सार्वजनिक संस्था है। यदि हम उसमें प्रवेश-निषेधकी आज्ञाको न मानें तो? अनुचित प्रतिबन्धको माननेकी क्या जरूरत है? इस प्रकार-के तर्क उठाना कि क्या इस प्रतिबन्धको मानना पाप न होगा, अनुचित है। ऐसे अवसर-की कल्पना की जा सकती है जब किसी प्रतिबन्धको माननेमें पाप हो; किन्तु मुझे मन्दिरमें प्रवेश सम्बन्धी प्रतिबन्ध ऐसा नहीं लगता। जिसे यह प्रतिबन्ध ऐसा लगे वह तो चाहे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, वहाँ प्रवेश करेगा ही। ऐसे मामलोंमें

१. "प्रेम पन्थ पावकनी ज्वाळा, भाळी पाछा भागे जो ने।"

सबके लिए कोई एक नियम नहीं होता। सामान्य नियम तो यह होना चाहिए कि यदि दो-चार मनुष्य अस्पृश्यताको पाप मानते हों, किन्तु दूसरे सैकड़ों लोग उसे धर्म मानते हों तो वहाँ उन दो-चार लोगोंको धीरज रखना चाहिए और प्रतिबन्धका पालन करना चाहिए। उन्हें लोकमत प्रशिक्षित करना चाहिए। उन्हें पुजारीसे विनयपूर्वक मिलना चाहिए, जातिके पंचोंको समझाना चाहिए और जबतक उनमें से अधिकतर लोग समझ न जाएँ तबतक स्वयं उस प्रतिबन्धको मानना चाहिए; यही अभीष्ट है। यदि लोकमत प्रतिबन्धके विरुद्ध हो तो प्रतिबन्ध लगानेवाले लोगोंको विनयपूर्वक सूचना देकर प्रतिबन्ध तोड़ा जा सकता है।

मैं पुजारियोंको विनयपूर्वक समझाना चाहता हूँ कि यदि वे धर्मके रक्षक बनना और बने रहना चाहते हों तो उनको सावधान हो जाना चाहिए। यदि वे ईश्वरीय नियमोंके विरुद्ध अन्धविश्वास और अधर्मकी दीवारें खड़ी करनेका आग्रह करेंगे तो वे टिक नहीं सकेंगे। मैं मानता हूँ कि वल्लभ सम्प्रदायका, कितना ही तुच्छ सही, अनुयायी होनेके नाते मुझे इतना कहनेका तो अधिकार है ही। उनकी वंश-परम्परासे चली आती हुई गद्दी अब खतरेमें है। मैं चाहता हूँ कि वे अस्पृश्यताको अपनाकर स्वयं अस्पृश्य न बनें। समाजमें आज जिस अस्पृश्यताका पालन किया जा रहा है वह न तो 'भागवत' में मिलती है और न 'गीता' में। वह 'वेदों' और 'उपनिषदों' में भी नहीं है। और तो और, उसका पालन तो व्यवहारमें भी नहीं किया जाता। वैष्णव अपने कामसे जब जरूरत होती है तब अस्पृश्य माने जानेवाले लोगोंका जान-बूझकर स्पर्श करते हैं। कानूनमें भी अस्पृश्यताको कोई स्थान नहीं है। जब वैष्णव अदालतोंमें जाते हैं या कारखानोंमें जाते हैं तब वे अस्पृश्योंको छू लेते हैं; उसके बाद बिना स्नान किए भोजन कर लेते हैं और मन्दिरमें चले जाते हैं। इस प्रकारकी जो अस्पृश्यता व्यवहारमें शून्यवत् ही है, उसे केवल अस्पृश्य माने जानेवाले भाइयों और बहनोंको सतानेकी खातिर, उनका तिरस्कार करनेके लिए माननेमें विवेक, दीर्घदृष्टि, ज्ञान और मर्यादा कुछ भी नहीं है। मैं अपने-आपको वैष्णव कहता हूँ, क्योंकि मैं यह मानता हूँ कि वैष्णव धर्ममें इन सब गुणोंके लिए स्थान है। वैष्णव धर्मकी उत्पत्ति ही दया, ज्ञान और पतितोंको भी पुनीत करनेकी भावनासे हुई है, ऐसी मेरी मान्यता है। मैं बंगालमें यही देख रहा हूँ। जो कार्य वल्लभाचार्यने पश्चिममें किया है, वही चैतन्यने पूर्वमें किया है। बंगालमें चैतन्यने अस्पृश्य माने जानेवाले लाखों लोगोंका उद्धार किया। उन्होंने अस्पृश्यताकी जड़ ही हिला दी थी, इसलिए आज बंगालमें अस्पृश्यता बहुत कम है। स्पर्श करनेसे अपवित्र हो जाते हैं, ऐसा तो कोई वहाँ मानता ही नहीं। बंगालमें अस्पृश्यता केवल इतनी ही है कि "अस्पृश्य" के हाथसे जल ग्रहण न किया जाए और नाई और धोबी उसकी सेवा न करें। अब यह मिथ्या धारणा भी वहाँ बहुत क्षीण हो गई है। आज वहाँ कितने ही अस्पृश्य वकील और डाक्टर हैं। उनमें ज्ञानवृद्धि होती जा रही है। बंगालमें ढेढ़वाड़ा-जैसी जगह तो शायद ही कहीं हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-६-१९२५

१६८. अपील : देशबन्धु स्मारकके लिए

कलकत्ता
२२ जून, १९२५

जनताको शायद मालूम होगा कि स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरंजन दासने रसा रोडपर चार बीघेसे कुछ अधिक भूमिपर स्थित अपना विशाल बंगला अपने जीवनकालमें ही विभिन्न सार्वजनिक कार्योंके लिए दान कर दिया था और उसका एक ट्रस्ट बना दिया था। ट्रस्टियोंने हमको सूचित किया है कि उस सम्पत्तिका वर्तमान मूल्य ३,२५,००० रू०. आंका गया है और उसपर २,२०,००० रुपयेका कर्ज है। इसलिए वास्तवमें दान लगभग १,०५,००० रुपयेका हुआ।

हम लोगोंको, जिनके हस्ताक्षर नीचे दिये गये हैं, पूर्ण विश्वास है कि बंगालके लोग इस दिवंगत देशभक्तके योग्य एक स्मारक अवश्य बनाना चाहेंगे। १८ तारीखको कलकत्तामें जो अभूतपूर्व शोकप्रदर्शन हुआ और दिवंगत आत्माको श्रद्धांजलि देनेके लिए देश-भरमें जो सभाएँ हुईं उनसे भी इस बातका स्पष्ट प्रमाण मिला है। हमारा खयाल है कि उल्लिखित ट्रस्ट बनानेमें देशबन्धुका मुख्य हेतु बंगालकी महिलाओंका उत्थान था और उसमें हम लोगोंका सहायक होना ही उनके उद्देश्यको फलीभूत करनेका सर्वोत्तम मार्ग है। हमारी समझमें देशबन्धुकी अभिलाषा पूरी करनेका अच्छेसे-अच्छा तरीका यही होगा, कि महिलाओंके लिए एक ऐसा अस्पताल बनाया जाये जिसमें जातिगत या धर्मगत कोई भेदभाव न किया जाये और साथ ही नर्सोंके प्रशिक्षणके लिए भी एक संस्था खोली जाये।

अनुमान है कि इसके लिए दस लाख रुपयेसे कमकी राशिसे काम नहीं चलेगा। हम समझते हैं कि दिवंगत देशबन्धुके स्मारकके लिए दस लाख रुपयेकी राशि किसी भी अर्थमें कोई बहुत बड़ी राशि नहीं है। इसीलिए हम बंगालकी जनतासे इतनी राशिके लिए अपील करते हैं। हमारी इच्छा है कि इस स्मारकको दलगत विचारोंसे अलग रखा जाये, जिससे कि देशबन्धुकी महत्ता समझनेवाले सभी लोग इसमें योगदान कर सकें; फिर चाहे देशबन्धुके राजनीतिक विचारोंसे वे सहमत न भी रहे हों। वर्तमान ट्रस्टियोंके नाम ये हैं :

डा० विधानचन्द्र राय
श्रीयुत निर्मलचन्द्र चन्द्र
श्रीयुत तुलसीचन्द्र गोस्वामी
कुमार सत्यमोहन घोषाल
श्री नलिनीरंजन सरकार

इन व्यक्तियोंने इस ट्रस्टको निर्दलीय रूप देनेके लिए इसमें शामिल होनेकी सहमति दे दी है और विशेषाधिकारके बलपर उन्होंने ट्रस्टियोंके रूपमें दो और सज्जनों

—डा० सर नीलरतन सरकार और श्रीयुत सतीशरंजन दास—को शामिल करनेका फैसला किया है।

७, हैरिंगटन स्ट्रीटके सर राजेन्द्र मुखर्जीने कोषाध्यक्षके रूपमें काम करनेके लिए स्वीकृति देनेकी कृपा की है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
अमृतबाजार पत्रिका, २३-६-१९२५

१६९. अपील: अखिल वंग देशबन्धु-स्मारक कोषके लिए

कलकत्ता
२२ जून, १९२५

मुझे विश्वास है कि जो अपील लॉर्ड सिन्हा तथा अन्य व्यक्तियोंके हस्ताक्षरोंके साथ अखिल वंग स्मारक कोषके सम्बन्धमें प्रकाशित की गई है उसकी ओर बंगालकी जनता शीघ्र ध्यान देगी और उसमें उत्साहपूर्वक अपना योगदान करेगी। आशा है कि दस लाख रुपयोंकी राशि तो सभी बंगाली लोगोंसे तथा उन लोगोंसे जो बंगालमें बस गये हैं और जो बंगालमें अपनी जीविका उपार्जित कर रहे हैं या धन कमा रहे हैं, प्राप्त हो जायेगी। मेरी अपील खासकर बंगालके नवयुवकोंसे है, क्योंकि सम्भवतः अन्य वर्गोंकी अपेक्षा बंगालका नवयुवक वर्ग देशबन्धुका अधिक ऋणी है। यों तो दस लाख रुपये दस करोड़पतियोंसे ही प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु वांछित यही है कि यह रकम विशेषतः गरीब तबकेके लोगोंसे, जो दो-चार पैसे देनेमें भी समर्थ हों, एकत्र की जाये। गत १८ तारीखको देशबन्धुकी शवयात्रामें जो लाखों व्यक्ति शरीक हुए थे, वे इस कोषकी पूर्तिके लिए अपना समुचित योगदान दे सकते हैं और उन्हें देना भी चाहिए।

याद रहे कि जो दस लाख रुपये माँगे गये हैं, आवश्यकताको देखते हुए वे कमसे-कम ही हैं, अधिकसे-अधिक कदापि नहीं। श्री देशबन्धुकी मिल्कियतपर जो दो लाख बीस हजारका कर्ज है उसे अदा करनेके उपरान्त सात लाख अस्सी हजार रुपये ही बच रहेंगे—यह रकम एक अस्पतालके खोलने और नर्सोंकी प्रशिक्षण संस्थाके लिए कोई बड़ी रकम नहीं है।

क्या यह लक्ष्य सामने रखना उचित न होगा कि इस पूरे कोषका एकत्रीकरण पहली जुलाईसे पूर्व समाप्त हो जाये। समय कम है—यह मैं मानता हूँ, परन्तु यदि सभी केन्द्र तत्काल ही संगठित हो जायें और ठीक ढंगसे चन्दा इकट्ठा करना शुरू कर दें तो इस रकमको एकत्र कर लेना बंगालके सामर्थ्यके बाहरकी बात नहीं है। मुझे कोष इकट्ठा करनेका थोड़ा-बहुत अभ्यास है। इसी नाते मैं जनतासे यह कहना चाहता हूँ कि लोग चन्दा उन्हींको दें जिनसे वे परिचित हों या जिनपर उनका

भरोसा हो — अन्योंको नहीं। यदि इन्हीं आठ दिनोंमें कोष एकत्र कर लेना है तो एक क्षण भी जाया नहीं होने देना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब —

१. वे सबके-सब जो चन्दा देनेकी स्थितिमें हों, स्वयं दें और दूसरोंको ऐसा करनेके लिए प्रोत्साहित करें;

२. यदि चन्दा देनेकी तिथि टालनेके बजाय सभी लोग अभी दे डालें;

३. यदि सब लोग अपने सामर्थ्यके अनुसार अधिकसे-अधिक दें;

४. यदि मुफस्सिल केन्द्र इस कार्यको तत्काल ही हाथमें ले ले।

जनताको याद रखना चाहिए कि

१. यह स्मारक अखिल बंगाल स्मारक है — किसी विशेष जाति, धर्म, वर्ण या दलसे सम्बन्धित नहीं;

२. इसका आयोजन भारतके एक सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिकी यादगारको हमेशाके लिए बनाये रखनेके उद्देश्यसे किया गया है;

३. इसका उद्देश्य मानवीय सेवाओंके अतिरिक्त और कुछ नहीं है;

मुझे यह भी मालूम है कि कलकत्तेमें एक ऐसे गैरसरकारी अस्पतालकी जरूरत है जिसमें केवल स्त्रियोंका इलाज हुआ करे और जिसमें नर्सोंको प्रशिक्षण मिला करे।

मुझे अब यह कहनेकी जरूरत नहीं रह गई है कि दानदाताओंके द्वारा प्रदत्त रकमोंका उचित उपयोग होगा, इसकी गारंटी न्यासियोंके नामोंपर से ही हो जाती है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २४-६-१९२५

१७०. पत्र : देवचन्द पारेखको

आषाढ़ सुदी १ [२२ जून, १९२५][1]

भाईश्री ५ देवचन्दभाई,

राजाओंसे पैसेकी सहायता लेनेकी बात मैं समझता हूँ। किन्तु सारा काम उनके अमलदारोंके मार्फत करवानेमें संकोच होता है। फिर भी जब आप सब इकट्ठे होकर विचार करेंगे तब मैं अधिक ठीक निश्चय कर सकूँगा। हमें यह सोचना है कि हर साल खर्चमें कमी कैसे करते जा सकते हैं और कैसे लोगोंको स्वावलम्बी बनाया जा सकता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६२०५) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : नारणदास गांधी

१. डाककी मुहरमें कलकत्ता, २३ जून, १९२५ है। आषाढ़ सुदी पड़वा २२ जून को थी।

१७१. पत्र : वसुमती पण्डितको

आषाढ सुदी १ [२२ जून, १९२५][1]

चि० वसुमती,

मुझे तुम्हारे दोनों पत्र लगभग साथ-साथ मिले। अभी तो मुझे एक मास कलकत्तामें ही रहना होगा। तब फिर भ्रमण आरम्भ करूँगा। मैं चाहता हूँ कि तुम अपना मन पक्का कर लो और रहनेकी जगह भी स्थिर कर लो। तुममें कार्य करनेकी योग्यता है या नहीं, यह देखना तो मेरा काम है न? किन्तु यह तो पीछे सोचेंगे। मैं यद्यपि इस समय एक जगह टिका हुआ हूँ; किन्तु फिर भी काममें बहुत अधिक व्यस्त हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४६४) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१७२. पत्र : नारणदास गांधीको

आषाढ सुदी १ [२२ जून, १९२५][2]

चि० नारणदास,

सब शाखाओंके कार्य-विवरण सम्बन्धी पत्र मिल गया है। जान पड़ता है देवचन्द भाईने दूसरोंपर अधिक भरोसा किया है। जहाँ हिसाब बहुत ठीक-ठीक न रखा जायेगा, वहाँ हमें पछताना होगा। मैंने . . . को[3] लिखा है कि वे जिन बहियोंको खानगी मानते हैं वह भी उन्हें दिखा देनी चाहिए। तुमने सभी शाखाओंके विवरण भेजे हैं। उनमें से ऐसा संक्षिप्त विवरण तैयार करके प्रकाशित करनेके लिए भेजना जिसे पढ़नेमें लोगोंको रस आये और जानकारी भी मिले।

इस प्रवृत्तिमें लगे हुए कितने लोग अपना खर्च स्वयं उठाते हैं, कितने कम वेतन लेकर काम करते हैं, कितने बाजार दरसे पारिश्रमिक लेकर काम करते हैं और सबको कुल मिलाकर कितना रुपया दिया जाता है, यह भी उस संक्षिप्त विवरणमें लिखना। यह बात भी उसमें अवश्य हो कि कुल कितने चरखे चलते हैं। जमनादासको क्या हो गया था? खुशालभाई और देवभाभीको मेरा दण्डवत्।

बापूके आशीर्वाद

१ व २. डाककी मुहरमें कलकत्ता २३ जून, १९२५ है। १९२५ में आषाढ़ सुदी पड़वा २२ जून को थी।
३. यहाँ साधनसूत्रमें ही स्थान खाली है।

[पुनश्च:]

अभी मैं यहाँ कलकत्तामें ही रहूँगा।

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१९३) से।
सौजन्य: नारणदास गांधी

१७३. प्राप्त चन्देकी स्वीकृति

कलकत्ता
२३ जून, १९२५

मुझे जनताकी जानकारीके लिए यह घोषित करते प्रसन्नता हो रही है कि चन्देकी ये राशियाँ सर राजेन्द्र मुखर्जीके[1] हवालेकी जा चुकी हैं:

	रुपये
एन० एन० सरकार	१०,०००
एस० आर० दास	५,०००
राय ए० एन० बोस	१,०००
सी० सी० ला	१,०००
एस०	१,०००
के०	१,०००
ए०	१,०००
सुप्रभा देवी	१००
गुप्त दान	१०
मौलवी अब्दुल हकीम	१००
	कुल २०,२१०

मेरे पास एक हजार रुपयेका एक चेक और सोनेकी एक अँगूठी भी सर मुखर्जी-को देनेके लिए रखी हुई है। मैं जानता हूँ कि सर मुखर्जीके पास कुछ छोटी-मोटी रकमें भी भेजी गई हैं।

इस प्रकार आरम्भ काफी अच्छा हुआ है।

पहली जुलाईसे पहले दस लाख रुपये इकट्ठे करनेका मतलब हुआ रोजाना सवा लाख रुपये इकट्ठा करना। यह औसत तभी कायम रह सकेगा जब प्रत्येक कार्यकर्त्ता मुस्तैदीके साथ जुट जाये। इसलिए मुझे उम्मीद है कि कोई भी कार्यकर्त्ता

१. अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषके कोषाध्यक्ष।

इसका इन्तजार नही करेगा कि उससे कहा जाये; बल्कि वह स्वयं ही अपने मित्रोंसे चन्दा मांगना शुरू कर देगा।

लोग जिस उत्साहसे १८ तारीखकी सभामें शामिल हुए थे, चन्दा देनेके मामलेमें भी उन्हें स्वेच्छापूर्वक उसी उत्साहसे आगे आना चाहिए। मुझे आज रात म्युनिसिपल मार्केटकी सभामें शरीक होनेके लिए बुलाया गया था। काफी बडी सभा थी। मैं तो स्मारकके लिए चन्दा इकट्ठा करनेके ही उद्देश्यसे वहां गया था। लेकिन वह सभा इतनी विशाल थी और उसे नियन्त्रित रखना इतना कठिन था कि वहाँ चन्दा इकट्ठा करना मुश्किल था। यदि कोष एकत्रित करनेकी अवधिमें सभाओंका आयोजन करनेवाले लोग मुझे ऐसी एक भी सभामें न बुलायें जहाँ चन्दा इकट्ठा न किया जा सकता हो तो वह मेरे ऊपर अनुग्रह ही होगा।

कलकत्ताके आसपासके गांवोंसे हम काफी उम्मीद रख सकते हैं। विभिन्न जिलोंके प्रमुख व्यक्तियोंके पास तार भेजे जा चुके हैं। मुझे भरोसा है कि वे सब पहली जुलाईसे पहले ही चन्दा इकट्ठा करके कोषाध्यक्षके पास भेज देंगे।

[अंग्रेजीसे]
अमृतबाजार पत्रिका, २४-६-१९२५

१७४. भेंट : 'स्टेट्समैन' के प्रतिनिधिसे

[२४ जून, १९२५ से पूर्व]

कलकत्तेमें गांधीजीने 'स्टेट्समैन' के एक प्रतिनिधिसे की गई भेंटके दौरान कहा :

मैं यहां तबतक ही रहूंगा जबतक मुझे ऐसा लगेगा कि यहां मेरी उपस्थिति अपेक्षित है या फिर जबतक श्री दासके विश्वस्त साथी-सहयोगी मुझे यहाँ रखना चाहेंगे। मैंने बिना किसी शर्तके अपनी सेवाएँ उनको अर्पित कर दी हैं।

मैं पहले ही इस आशयका सुझाव दे चुका हूँ कि पहली जुलाईको सारे भारतमें श्रद्धांजलि-सभाएँ की जानी चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि भारतके प्रत्येक बड़े केन्द्रमें सभी मतोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले लोग इनमें शामिल होंगे। मैं कमसे-कम उक्त तारीखतक तो शायद यहीं रहूँगा।

भविष्यके सम्बन्धमें राय पूछी जानेपर श्री गांधीने कहा :

एक सांसारिक व्यक्तिकी हैसियतसे मेरे लिए यह कह सकना बहुत कठिन है कि भविष्य क्या होगा, लेकिन एक आस्थावान व्यक्तिके नाते मैं कह सकता हूँ कि श्री दासमें जिन सद्गुणोंको देखनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, वे लाभप्रद सिद्ध होंगे और उनका परिणाम अच्छा ही निकलेगा। यह लाभ किस रूपमें प्रतिफलित होगा सो मैं नहीं जानता।

उन्होंने पहले जो यह सुझाव दिया था कि श्री दासको अर्पित की जानेवाली श्रद्धांजलियोंका परिणाम सभी दलोंकी एकता-स्थापनाके रूपमें प्रतिफलित होना चाहिए; उसका उल्लेख करते हुए श्री गांधीने कहा :

यदि एकता स्थापित की जा सकती है, औपचारिक नहीं वास्तविक एकता, तो फिर कोई माँग उस संयुक्त दल द्वारा ही एक निश्चित रूपमें सामने रखी जानी चाहिए। व्यक्तिगत रूपसे मेरा यह बताना कि वह माँग क्या होनी चाहिए, निरर्थक होगा; लेकिन मैं यह जरूर कहता हूँ कि मेरी दिली ख्वाहिश चाहे कुछ भी हो, बहुमत जो चाहेगा उसके रास्तेमें मैं रुकावट नहीं डालूँगा।

श्री गांधीसे पूछा गया, 'आपको स्वराज्यकी क्या परिभाषा है?'

स्वराज्यकी मेरी अपनी परिभाषा है — तत्कालीन जनताके प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त भारतीय जनताकी इच्छा। स्वराज्यकी कोई बिलकुल ऐसी नपी-तुली परिभाषा हो ही नहीं सकती, जैसी कि ज्यामितिमें सीधी रेखाकी होती है। विभिन्न परिस्थितियोंके फलस्वरूप जनताकी मनोवृत्तिमें होनेवाले परिवर्तनोंके साथ-साथ जनताकी इच्छाका आग्रह भी बदलता रहता है। इसलिए स्वराज्यकी तात्कालिक परिभाषा है 'औपनिवेशिक स्वराज्य।'

श्री गांधीसे पूछा गया कि क्या आप अड़ंगा-नीतिका परित्याग करनेकी सलाह देंगे, विशेष रूपसे बंगालके सन्दर्भमें।

यदि बंगाल कौंसिलकी आगामी बैठकमें मन्त्रिमण्डल बनानेकी इच्छा स्पष्ट रूपसे प्रकट की गई तो क्या आप कौंसिलको एक स्वरसे उसका विरोध करनेकी सलाह देंगे? गांधीजीने मुस्कराकर उत्तर दिया:

मैं इस प्रश्नका उत्तर न देना ज्यादा पसन्द करूँगा। मैं चाहूँगा कि बंगाल निराश न हो, विश्वास न खो बैठे, क्योंकि ऐसा करना उस महान् दिवंगत नेताके प्रति विश्वासघात करना होगा। मैं जानता हूँ कि बहुधा जब विश्वासका कोई समुचित कारण भी नहीं होता तब भी मैं विश्वास बनाये रखता हूँ और फिर मेरा विश्वास बादमें घटनाओंसे सही भी सिद्ध हो जाता है।

बंगालके पास कल्पनाशक्ति प्रचुर मात्रामें है और उसकी सहनशक्ति भी अपार है। यह बात मैं अपने दौरेके समय देख चुका हूँ। मैं बंगालियोंसे कहूँगा कि यदि वे अपनेमें इन गुणोंके साथ अक्षुण्ण विश्वास भी रखें तो सब ठीक हो जायेगा।

श्री गांधीने कहा कि इस कठिन घड़ीमें श्रीमती दासके पास हूँ। इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। वे अपना दुःख बड़े धैर्यके साथ सहन कर रही हैं।

उन्होंने उन नवयुवकोंकी प्रशंसा की जिन्होंने श्री दासकी अन्त्येष्टिके समय भीड़में उनकी रक्षा की थी।

यदि उनकी मजबूत बाहें मुझे साधे न होतीं तो मैं शायद पिसकर चूर हो गया होता। श्मशान घाटपर खासकर ऐसी ही हालत थी।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २४-६-१९२५

१७५. भेंट: 'सर्चलाइट' के प्रतिनिधिसे

[२४ जून, १९२५ से पूर्व]

लॉर्ड रीडिंग और लॉर्ड बर्कनहेडके बीच इंग्लैंडमें हुई बातचीतके परिणामसे जब श्री गांधीको अवगत कराया गया, तो उन्होंने कहा:

मुझे तो लगता है कि यह विवरण ठीक ही होगा। क्योंकि मैंने इससे बेहतर किसी चीजकी आशा ही नहीं की थी। फिर भी, इससे भारतमें खलबली मचेगी और न केवल स्वराज्य दल, वरन् सभी दलोंकी भावनाओंको गहरी चोट पहुँचेगी। व्यक्तिगत रूपसे मेरी समझमें नहीं आता कि भारतीयकरण काफी आगे बढ़ गया है, इसका अर्थ क्या है।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २८-६-१९२५

१७६. तार: सुशीलकुमार रुद्रको

२४ जून, १९२५

सुशीलकुमार रुद्र,
सोलन

आपकी पूर्ण मानसिक शान्तिके लिए मेरी दुआएँ और मेरा हार्दिक स्नेह आपके साथ हैं। कितनी खुशीकी बात है कि चार्ली आपके साथ हैं।[1]

गांधी

मूल अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ६०४८) से।
सौजन्य: श्रीमती सुशीलकुमार रुद्र

१. प्रिंसिपल रुद्रका ३० जूनको देहावसान हो गया था। देखिए "एक खामोश समाज सेवी", ९-७-१९२५।

१७७. भेंट : 'इंग्लिशमैन' के प्रतिनिधिसे

कलकत्ता
२४ जून, १९२५

महात्मा गांधीने 'इंग्लिशमैन' के प्रतिनिधिके पूछनेपर कहा :

स्वराज्य दलमें कोई फूट न तो है और न होगी ही।

उन्होंने आगे कहा कि स्वराज्य दलके भविष्यके सम्बन्धमें बहुत-सी अटकलें लगाई जा रही हैं और अफवाहें उड़ रही हैं, परन्तु वह सब लोगोंका अनुमान-ही-अनुमान है और उनका कोई आधार नहीं है।

पत्र-प्रतिनिधिने पूछा कि यदि आपको स्वराज्य दलका नेतृत्व दिया जाये तो आप उसे स्वीकार करनेके लिए तैयार होंगे? महात्मा गांधीने उत्तर दिया: नहीं। यह सर्वथा आवश्यक है कि बंगालमें स्वराज्य दलका नेता बंगाली ही हो। इस उच्च सम्मानके लिए एकसे अधिक बंगाली उपयुक्त हैं, परन्तु जहाँतक योग्यता, अनुभव और स्वराज्य दलकी कार्यप्रणालीके ज्ञानका सम्बन्ध है, मेरे मतसे स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरंजन दासके सहायक श्री जे० एम० सेनगुप्त सबसे अधिक उपयुक्त हैं।

राष्ट्रवादियों और स्वराज्यवादियोंके एकीकरणकी जो बात कही जाती है उसके सम्बन्धमें पूछे जानेपर महात्मा गांधीने कहा कि अगर ये दोनों दल सम्मानयुक्त शर्तों-पर संयुक्त हो जायें तो यह देशके लिए सबसे अधिक हितकर बात होगी।

महात्माजीने कहा कि मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। मैं कलकत्तेमें अभी एक महीना और ठहरूँगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६-६-१९२५

१७८. टिप्पणियाँ

अन्याय इष्ट न था

आप कहते हैं कि शिक्षित भारतीय आपके सन्देशकी ओर आकर्षित नहीं हुए हैं। क्या आप इससे उनके प्रति अन्याय नहीं करते? आप अपने दायें हाथ राजगोपालाचारीजीको ही लें। फिर निःस्वार्थ शिक्षित कार्यकर्त्ताओंका एक समुदाय समस्त देशमें फैला हुआ है। आप इनकी चर्चा 'यंग इंडिया' में बहुत कम ही करते हैं। यदि ये न होते तो आज आपकी हालत क्या होती? आप गाँवोंके कामकी बात करते हैं। यह सब तो बहुत अच्छा है; लेकिन आप उसे भी तो इन्हींकी सहायतासे कर रहे हैं।

इसमें एक मिथ्या प्रश्न उपस्थित होता है। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। जो मुट्ठी-भर शिक्षित लोग चुपचाप सेवा कर रहे हैं और चरखेका पैगाम पहुँचा रहे हैं उनसे वास्तवमें उनका और देशका गौरव बढ़ रहा है। उनके बिना मैं बिल-कुल मजबूर हो जाऊँगा। परन्तु मेरी ही तरह वे भी भारतके शिक्षित जनोंके प्रतिनिधि नहीं हैं। एक वर्गके रूपमें शिक्षित भारतवासियोंका चरखेसे कोई सम्बन्ध नहीं है; इसलिए नहीं कि वे उसे चाहते नहीं हैं; बल्कि इसलिए कि वे अभी उसके कायल नहीं हुए हैं। जब मैंने यह बात लिखी थी[1] तब मेरे ध्यानमें सर्वश्री शास्त्री, जिन्ना, चिन्तामणि, सप्रू और देशके शिक्षित समुदायके समस्त प्रसिद्ध लोग थे। सामान्य लोग व्यक्तिगत रूपसे मुझे भले ही चाहते हों; परन्तु वे मेरे विचारों और मेरी कार्यप्रणालियोंसे भयभीत हैं। कुछ लोग तो कभी-कभी मुझे सचाईके साथ यह भी समझाते हैं कि मैं अपना ढंग सुधारूँ जिससे वे मेरे साथ होकर काम कर सकें। यह अंश मैंने बतौर शिकायतके भी नहीं लिखा था। मैंने तो सिर्फ वस्तुस्थितिका वर्णन किया है — इस उद्देश्यसे कि मैं अपनी मर्यादायें बता दूँ और यह भी दिखा दूँ कि राष्ट्रीय उत्थानमें उनकी भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि चरखेके सभी फलितार्थोंको समझने-वाले और उनका प्रतिनिधित्व करनेवाले बड़ेसे-बड़े नेताओंकी है। मैं यह भी मानता हूँ कि कांग्रेसका उन्हींके द्वारा नेतृत्व होना ठीक है; और मुझे महज मतोंके बलपर इस प्रश्नको तय करानेकी उतावली न करनी चाहिए; बल्कि उलटा मुझे तबतक धीरज रखना चाहिए, जबतक मैं उन्हें यह विश्वास नहीं करा देता कि भारतके राजनैतिक उद्धारके लिए भी चरखा और खादी अत्यन्त आवश्यक हैं।

माता-पितासे पहले संस्था

अपने बंगालके दौरेमें मैंने यह भी विस्मयकारी बात सुनी कि एक सार्वजनिक संस्थाके सदस्य अपने माता-पिताके भरण-पोषणकी अपेक्षा अपनी संस्थाका निर्वाह करना

१. सम्भवतः यहाँ उल्लेख "क्या हम तैयार हैं?", १८-६-१९२५ शीर्षक लेखका है।

अधिक ठीक मानते हैं। यह भी कहा गया कि इस सम्बन्धमें उन्हें मेरा समर्थन प्राप्त है। यदि इस अखबारमें मैंने कोई ऐसी बात लिखी हो, जिससे इस प्रकारका खयाल पैदा हुआ हो, तो मैं पाठकोंसे क्षमा माँगता हूँ। मुझे जान-बूझकर कोई ऐसा अपराध करनेकी याद नहीं है। मैं जो-कुछ हूँ उस सबका श्रेय मेरे माता-पिताको है। उनके प्रति मेरी भावना वैसी ही थी, जैसी श्रवणकी अपने माता-पिताके प्रति बताई जाती है। इसलिए यह बात सुनकर मेरे मनमें जो क्रोध उमड़ा, उसे मैं बहुत ही कठिनाईसे रोक सका। जिस युवकने यह बात कही थी, वह इस विषयमें गम्भीर नहीं था। परन्तु आजकल कुछ नौजवानोंका यह रवैया ही हो गया है कि वे अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं और पूर्णताकी प्रतिमूर्ति होनेका ढोंग करते हैं। मेरी रायमें बालिग पुत्रोंका प्रथम कर्त्तव्य बूढ़े और दुर्बल माता-पिताओंका भरण-पोषण करना है। यदि वे अपने माता-पिताओंका भरण-पोषण करनेकी स्थितिमें न हों तो विवाह न करें। तबतक यह पहली शर्त पूरी न हो, वे सार्वजनिक काम हाथमें न लें। उन्हें स्वयं भूखों मर कर भी अपने माता-पिताके लिए अन्न-वस्त्र जुटाना चाहिए। परन्तु नौजवानोंसे यह आशा नहीं रखी जाती कि वे माता-पिताओंकी विचारहीन या अज्ञानपूर्ण माँगें पूरी करें। ऐसे माता-पिता होते हैं जो गुजारेके लिए नहीं बल्कि झूठे दिखावे या लड़कियोंके विवाहके अनावश्यक खर्चके लिए रुपया माँगते हैं। मेरी रायमें सार्वजनिक कार्यकर्ताओंका कर्तव्य है कि वे विनयपूर्वक ऐसी माँगोंको माननेसे इनकार कर दें। असलमें मुझे जहाँतक स्मरण है, कोई ऐसा योग्य सार्वजनिक कार्यकर्ता नहीं मिला है जो भूखों मरता हो। मुझे कुछ लोग तंगदस्त जरूर मिले हैं। मुझे कुछ लोग ऐसे भी मिले हैं, जिन्हें जितना मिल रहा है उससे अधिक मिलना चाहिए। किन्तु जब उनका काम बढ़ जायेगा और उनकी योग्यता प्रकट हो जायेगी, तब उन्हें तंगी नहीं उठानी पड़ेगी। मनुष्य कठिनाइयों और कष्टोंसे ही बनता है। ये तो स्वस्थ विकासके चिह्न हैं। यदि सभी नवयुवक सम्पन्नताका उपभोग करें और आवश्यक वस्तुओंका अभाव किस चिड़ियाका नाम है यह भी न जानें तो वे कष्टोंके आनेपर उनके सामने कभी नहीं टिक सकेंगे। आह्लाद त्यागसे ही मिलता है।

इसलिए सरेआम अपने त्यागका ढिंढोरा पीटना ठीक नहीं है। कई कार्यकर्ताओंने मुझे बताया कि वे किसी भी प्रकारका त्याग करनेके लिए तैयार हैं। पूछनेपर मालूम हुआ कि त्यागसे उनका अर्थ माँगकर या दान प्राप्त करके निर्वाह करना है। मैंने उन्हें बताया कि दानसे जीवन-निर्वाह करनेमें त्यागकी कोई बात नहीं है। कई सार्वजनिक कार्यकर्ता ऐसा करते हैं, पर इस कारण वे त्यागका दम नहीं भर सकते। कई युवकोंने अच्छी-खासी आमदनी देनेवाली अपनी आजीविकाएँ छोड़ दी हैं। बेशक यह उनके लिए श्रेयकी बात है, पर यहाँ मैं नम्रतापूर्वक इतना जरूर कह देना चाहता हूँ कि त्यागकी प्रशंसामें अति कर देनेकी आशंका भी बराबर रहती है, जो प्रसन्नतापूर्वक न किया जाये, वह त्यग त्याग नहीं है। त्याग करके मुँह उतार लेनेमें कोई बड़प्पन नहीं है। त्याग 'पवित्र बननेकी प्रक्रिया' है। जो व्यक्ति किये गये त्यागके लिए दूसरोंकी सहानुभूति चाहता है, वह बहुत ही घटिया वृत्तिका

कहलायेगा। बुद्धने अपना सर्वस्व त्याग दिया क्योंकि ऐसा किये विना वह रह ही नहीं सकते थे। किसी भी चीजका संग्रह उनके लिए पीड़ाकारक था। लोकमान्य निर्धन बने रहे क्योंकि धनका भार उन्हें असह्य था। एन्ड्रचूज चन्द रुपयोंको भी बोझ मानते हैं। यदि कहींसे कुछ धन उनके पास आ जाता है तो उन्हें उसे खत्म कर देनेकी चिन्ता पकड़ लेती है। मैं अकसर उनसे कहता हूँ कि तुमपर एक निगाह रखनेवाला आदमी चाहिए। सुनकर वह हँस देते हैं और विना किसी खिन्नताके उसी तरह धन लुटाने चले जाते हैं। मादरे-हिन्द ऐसी-वैसी देवी नहीं है। वह शायद इच्छुक और अनिच्छुक अनेक युवकों और युवतियोंसे बलिदान करवानेके बाद ही कहेगी "शावाश मेरे बच्चो! तुम अब स्वतन्त्र हो।" अभी तो हम त्यागका नाटक कर रहे हैं। सच्चे त्यागका समय अभी आया नहीं है।

सम्बद्ध स्कूलोंमें कताई

मुझे अपने बंगालके इस दौरेके दरम्यान कई नई बातोंका पता लग रहा है। इनमें बहुत-सी सुखद तथा कुछ दुःखद भी हैं। मदारीपुरसे कुछ ही दूरीपर एक ग्राम है, जिसका नाम उपसी है। इस ग्राममें एक हाईस्कूल चलाया जा रहा है। यह शिक्षा-विभागसे सम्बद्ध है, लेकिन कोई सहायता सरकारसे नहीं लेता। कताईके पुनरुज्जीवित होनेके बाद इसमें सभी छात्रोंके लिए एक घंटा कताई करना अनिवार्य कर दिया गया था। सन् १९२१में मौलाना मुहम्मद अलीकी गिरफ्तारीपर बुनाई भी एच्छिक विषयके रूपमें आरम्भ की गई थी। यहाँ अभी हालतक बुना जानेवाला कपड़ा अर्ध-खद्दर होता था। कुछ माह पहले ही पूर्ण खादीकी बुनाई शुरू की गई है और प्रबन्धकोंने निश्चय किया है कि अब अर्ध-खद्दरके बजाय केवल शुद्ध खादीपर ध्यान केन्द्रित किया जाये। लगभग सौ लड़कोंको एक साथ सूत कातते देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। पूछनेपर यह भी मालूम हुआ कि कताई अनिवार्य होनेपर लड़कोंकी संख्यामें कोई कमी नहीं हुई है। मुख्याध्यापकने कहा कि यदि माता-पिता सूत कातना अस्वीकार करते अथवा लड़के आपत्ति उठाते तो इसे जारी नहीं रखा जा सकता था।

मुख्याध्यापकने मेरे सम्मुख दर्शक-पुस्तिका रखी ताकि मैं उसमें अपनी सम्मति लिख दूँ।[1] इसमें सफे पलटनेपर मैंने स्कूलोंके इन्स्पेक्टरकी एक लम्बी रिपोर्ट पढ़ी। उसने लिखा था, 'मुझे कताईसे कोई द्वेष नहीं किन्तु इस प्रयोगके सम्बन्धमें मेरा अनुभव यह है कि वह प्रयोग जहाँ-कहीं किया गया है वहीं वह इसी स्कूलकी तरह असफल रहा है। मेरे खयालसे यह प्रयोग तभी सफल हो सकता है जब वह स्वावलम्बी हो।' मैं समझ नहीं पाता कि जब ज्यामितिकी कक्षा स्वावलम्बी नहीं होती तब कताईकी कक्षा ही स्वावलम्बी क्यों होनी चाहिए। ज्यामितिकी कक्षाकी सफलता लड़कोंकी ज्यामितिकी प्रगतिसे नापी जाती है। कताई कक्षाकी सफलता लड़कों द्वारा कताईमें प्राप्त की गई दक्षतासे नापी जानी चाहिए। और हाईस्कूलके लड़के दक्ष होकर तो दिखा ही सकते हैं। लेकिन मैं इन्स्पेक्टरकी चुनौती स्वीकार करने तथा यह दिखानेके लिए भी बिल्कुल तैयार हूँ कि कुछ अपवादोंको छोड़कर साहित्यिक

१. देखिए "सम्मति: दर्शक-पुस्तिकामें", १२-६-१९२५।

कक्षाएँ स्वावलम्बी नहीं बनाई जा सकतीं; किन्तु कताईकी कक्षा सदैव स्वावलम्बी बनाई जा सकती है। पहले तो उसके लिए अलग कताई-अध्यापककी आवश्यकता नही है। थोड़ी-बहुत प्रेरणाके द्वारा विद्यमान अध्यापक वर्गको कताईमें यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करनेके लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है और वे अपनी-अपनी कक्षाओंको कताई सिखा सकते हैं। वैसे, स्कूलके जो छात्र इस कलाको सीखनके लिए तैयार हों, यदि उन्हींको दूसरोंको कातना सिखा सकनेके लिए प्रशिक्षण दिया जाये तो इतना भी काफी है। शिक्षकोंको इसके लिए जो अतिरिक्त वेतन दिया जायेगा वह पहले महीनेकी कताईकी फीससे आसानीसे निकाला जा सकता है। लड़के प्रति घंटा कमसे-कम औसतन एक धेला कमायेंगे। वास्तवमें तो प्रत्येकको एक पैसेके हिसाबसे कमाना चाहिए। बत्तीस छात्रोंकी कक्षा चार आने प्रतिदिन कमा सकेगी। इसका मतलब है ७½ रुपये प्रतिमास। अध्यापककी वेतन वृद्धि २½ रुपये प्रतिमाससे अधिक न होगी। इस प्रकार शेष ५ रुपया प्रतिमासकी बचत होगी। मै यह अवश्य मान रहा हूँ कि लड़कोंका काता हुआ सूत बिक जायेगा। अच्छे कते सूतको बेचनेमें कोई कठिनाई नही है। तथा किसीकी देखरेखमें कातनेवाले लड़के अवश्य ही अच्छा सूत कातेंगे। निश्चय ही, जहाँतक इस संस्था-विशेषका प्रश्न है, खादी प्रतिष्ठानने वचन दिया है कि वह जरूरतकी रुई उधार दे देगा तथा निर्धारित मूल्यपर कता सूत खरीद लेगा। सच तो यह है कि अध्यापक इस राष्ट्रीय कलामें पर्याप्त रुचि ही नहीं लेते। इन्स्पेक्टरके मापदण्डके अनुसार जो असफलता दिखाई देती है, उसका कारण यही है।

एक गाँवका प्रयोग

सेलम जिलेके पुदुपालयम गाँवमें जो काम किया जा रहा है उसके सम्बन्धमें श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी लिखते हैं:[1]

पाठक देखेंगे कि वहाँ वास्तविक कार्य पिछले अगस्तमें आरम्भ किया गया था। नौ मास एक अल्प अवधि ही है; किन्तु उसमें जो उन्नति की गई है वह अति उत्साहवर्धक है। पाठक यह भी देखेंगे कि यद्यपि केन्द्र एक गाँवमें रखा गया है; किन्तु सेवाका विस्तार वस्तुतः बीस गाँवोंमें है। इस आश्रममें अबतक दस पंचम बालकोंको शिक्षा मिल चुकी है, यह कोई छोटी-मोटी बात नही है। यह स्मरण रहे कि भारतमें इस प्रकारकी यही एक प्रवृत्ति नहीं है। मैंने देखा है कि बंगालमें ऐसे प्रयास कई जगह किये गये हैं। मैंने पत्रमें से रुपये-पैसेका हिसाब और जाँच किया हुआ आय-व्यय पत्रक निकाल दिया है। इनको दो अधिकृत हिसाब-परीक्षकोंने प्रमाणित किया है। आँकड़ोंसे जाहिर होता है कि खद्दर विभागको चलानेमें कोई नुकसान नहीं हुआ है।

'कूदनेको तत्पर'[2]

मैंने आपके घने लिखे पन्द्रह सफे पढ़ लिये हैं। मैं उत्तरके रूपमें आपको यही सलाह दे सकता हूँ कि आप इस सम्बन्धमें दिये गये मेरे उत्तरोंको बार-बार पढ़ें।

१. यहाँ नहीं दिया गया है।
२. देखिए "कूदनेको तत्पर", २१-५-१९२५।

तब आप देखेंगे कि आपने जो भी मुद्दे उठाये हैं उनके उत्तर मेरे पहले दिये गये उत्तरोंमें आ जाते हैं। यदि उनसे आपका समाधान न हो तो मुझे प्रतीक्षा और प्रार्थना ही करनी होगी। मैं अब कुछ भी क्यों न लिखूँ, उससे सम्भवतः आपका समाधान नहीं होगा। मैंने देखा है कि हमारे जीवनमें एक समय ऐसा आता है जब तर्क हमें नहीं छूते; जब हर तर्कपर हमारा एक प्रति-तर्क तैयार रहता है। मेरे जो मित्र बहुत-सी बातोंमें मुझसे सहमत हैं, मैंने उनके विषयमें भी यही बात देखी है। किन्तु कुछ बातोंके बारेमें हमें अपने मतभेदको स्वीकार करके चलना होता है। मुझे आपके सम्बन्धमें भी ऐसा ही करना होगा। लेकिन मैं आपकी लगनकी सराहना करता हूँ। आप मेरे प्रवासमें कहीं मुझसे मिल लें। मैं तब आपसे आपकी इस समस्त विचार-धाराके सम्बन्धमें प्रसन्नतापूर्वक चर्चा करूँगा। कभी-कभी जहाँ छपे शब्दसे काम नहीं चलता, बातचीत वहाँ काम दे जाती है। किन्तु मैं यहाँ एक बात कह दूँ। आप यह क्यों सोचते हैं कि हमें जबतक स्वराज्य नहीं मिलता, हम तबतक सूत नहीं कात सकते और खद्दर नहीं पहन सकते या अस्पृश्यता-निवारण नहीं कर सकते या मुसलमानोंसे हमारी एकता नहीं हो सकती? अंग्रेजोंके चले जानेसे हिन्दुओंको मुसलमानोंका या मुसलमानोंको हिन्दुओंका विश्वास करनेमें या धर्मान्ध रूढ़िवादियोंकी आँखें खोलने और दलित वर्गोंकी दशा सुधारनेमें या काहिल लोगोंको चरखा चलानेके लिए और बिगड़ी हुई रुचिके लोगोंकी रुचि सुधारने और उन्हें खद्दर पुनः पहिननेके लिए तैयार करनेमें किस तरह मदद मिल जायेगी? निश्चय ही यदि हम इस समय मुसीबतोंके दबावसे इन कामोंको नहीं कर सकते तो हम नाममात्रके स्वराज्यकी झूठी स्वतन्त्रताकी भावनासे आश्वस्त होनेपर तो उन्हें शायद करेंगे ही नहीं। यदि हम इन कार्योंको या इनमें से किसी कार्यको इस समय पूरा नहीं करते या पूरा करनेका प्रयत्न नहीं करते तो इसका कारण हमारी अनिच्छा, काहिली या इससे भी निकृष्ट किसी अन्य अवगुणके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मैं आपको और आपके मित्रोंको आमन्त्रित करता हूँ कि आप अपनी योग्यता और शक्तिको, जो आप में अवश्य ही है, इस रचनात्मक कार्यमें लगायें और तब आप देखेंगे कि स्वराज्य निकट आता जा रहा है। आपको यह दिखाई देता हो या न दिखाई देता हो; किन्तु आप इन तीनों उद्देश्योंको जिस हदतक पूरा कर रहे हैं, वह उसी अनुपातसे हमारे समीप आता जा रहा है। अछूतपनके दुर्गकी नींव दिन-प्रतिदिन खोखली हो रही है। चरखेकी आनन्द ध्वनि अधिकाधिक सुनाई देती चली जा रही है और यद्यपि प्रत्यक्षतः हिन्दू और मुसलमान जमकर लड़नेकी तैयारियाँ करते दिखते हैं; किन्तु वस्तुतः वे यह अनुभव कर रहे हैं कि ऐसा करनेसे कोई लाभ नहीं होगा। फिर भी सम्भव है यह लड़ाई न रुक सके। लड़ाई हो ही गई तो उसके बाद शान्तिका सूर्योदय होगा।

विजित अभिमान

कांग्रेस-महामन्त्री लिखते हैं:

मुझे खेद है कि मैंने आपको १६ तारीखको सदस्यताकी जो सूची भेजी थी उसमें एक गलती रह गई है। बर्माका पिछले मासका कुल जोड़ ७०के

बजाय ७५ होना चाहिए। लेकिन बर्मा प्रदेश कांग्रेस कमेटीने बादकी संख्या ७५ देते समय 'क' और 'ख' श्रेणीके अन्तर्गत कोई विवरण नहीं दिया है।

इस तालिकासे स्पष्ट देखा जा सकता है कि २० प्रान्तोंमें से केवल ६ ने चालू माहमें जानकारी भेजी है। केरलने कोई भी जानकारी नहीं भेजी। शेष १३ प्रदेशोंकी केवल पिछले मासकी संख्याएँ उपलब्ध हैं। इन १३ प्रदेशोंकी पिछले मासकी तथा ६ प्रान्तोंकी चालू मासकी कुल सदस्य संख्या १५,३५५ है।

मैं इस पत्रको केवल भूल-सुधारके लिए नहीं छाप रहा हूँ, बल्कि यह स्वीकार करनेके लिए छाप रहा हूँ कि मैं मासिक तालिकाएँ मँगाने-जैसे सीधे-सादे मामलेमें भी अनुशासनका पालन नहीं करा सका हूँ। मैं बेलगाँवमें[1] कहा करता था कि मैं अनुशासनका पालन करानेमें बहुत सख्त हूँ। मैं देखता हूँ कि मैं प्रादेशिक कमेटियोंका सहयोग प्राप्त करनेमें असफल रहा हूँ। कांग्रेसके संविधानमें अनुशासनहीन कमेटियोंके लिए कोई सजा नहीं रखी गई है। यदि रखी भी गई हो तो मैं उसे लागू करना नहीं चाहता। यद्यपि मेरा घमण्ड चूर-चूर हो गया है, फिर भी मुझे प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिए और आशा रखनी चाहिए। क्या कमेटियाँ अपने कर्त्तव्यके प्रति सजग होकर महामन्त्रीकी तालिकाएँ भेजनेकी प्रार्थनाका उचित उत्तर देंगी?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१७९. नम्रताकी आवश्यकता

बंगालमें कार्यकर्त्ताओंसे बातचीतके दौरान मेरा एक नवयुवकसे साबका पड़ा। उसने अपनेको ब्रह्मचारी कहा और कहा कि लोग मुझे मेरे अन्य गुणोंके अतिरिक्त इसलिए भी मानें कि मैं ब्रह्मचारी हूँ और मेरे साथी ब्रह्मचारी हैं। उसने यह बात इस तरह कही और ऐसे यकीनके साथ कही कि मेरे मनमें उसके प्रति अरुचि होने लगी। मैंने अपने मनमें कहा कि यह व्यक्ति ऐसे विषयोंके बारेमें बोल रहा है जिनका जरा भी ज्ञान इसे नहीं है। उसके साथियोंने उसके दावोंका खण्डन किया। और जब मैंने उससे जिरह की तब तो खुद उसने भी मान लिया कि उसका दावा निराधार है। जो व्यक्ति शारीरिक पाप न करते हुए भी मानसिक पाप करता है तो वह ब्रह्मचारी नहीं है। जो व्यक्ति किसी रमणीको देखकर, फिर वह कितनी ही सुन्दर क्यों न हो — डिग जाता हो, वह ब्रह्मचारी नहीं है। जो केवल विवशतासे अपने शरीरको अपने वशमें रख रहा है, वह काम तो अच्छा कर रहा है, पर वह ब्रह्मचारी नहीं है। हमें अनुचित अप्रासंगिक प्रयोग करके पवित्र शब्दोंका मान न घटाना

१. दिसम्बर १९२४ के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनमें; देखिए खण्ड २५ पृष्ठ ४८६-८७।

चाहिए। वास्तविक ब्रह्मचर्यका फल अद्‌भुत होता है और वह पहचाना भी जा सकता है। इस सद्‌गुणका पालन करना कठिन है। प्रयत्न तो बहुतेरे करते हैं, पर सफल बिरले ही हो पाते हैं। जो लोग देशमें गेरुआ वस्त्र पहनकर संन्यासियोंके वेषमें घूमते-फिरते हैं, वे प्राय: किसी सामान्य व्यक्तिसे अधिक ब्रह्मचारी नहीं होते। अन्तर इतना ही है कि मामूली आदमी उसकी डींग नहीं हाँकता। इसलिए अकसर उस संन्यासीसे बेहतर होता है। वह इसी विचारसे सन्तोष मान बैठता है कि परमात्मा उसके संकटकी घड़ियोंको, उसके मार्गके प्रलोभनोंको जानता है; वह प्रलोभनोंपर उसके विजयके अवसरों तथा उसके भगीरथ प्रयत्नोंके बावजूद उसके कुछ स्खलनोंको जानता है। यदि दुनिया उसके पतनको देखे और उससे उसे तोले तो वह असन्तुष्ट नहीं होता और अपनी सफलताओंको वह कंजूसके धनकी तरह छिपाकर रखता है। वह इतना विनयी होता है कि उन्हें प्रकट नहीं करता। ऐसा मनुष्य उद्धारकी आशा रख सकता है। परन्तु वह कदापि नहीं, जो संयमका ककहरातक नहीं जानता, परन्तु अपनेको संन्यासी माननेका ढोंग रखता है। ऐसे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जो संन्यासीका वेष नहीं बनाते, पर अपने त्याग और ब्रह्मचर्यका ढिंढोरा पीटते फिरते हैं, दोनों गुणोंका मान घटाते हैं और अपनेको तथा अपने सेवाकार्यको बदनाम करते हैं। उनसे सावधान रहना ही उचित है। उनसे समाजको हानि हो सकती है।

जब मैंने अपने साबरमती आश्रमके लिए नियमावली तैयार की, तब वह मित्रोंके पास सलाह और समालोचनाके लिए भेजी। उस नियमावलीकी एक प्रति स्वर्गीय सर गुरुदास बनर्जीको भी भेजी। उस प्रतिकी पहुँचकी सूचनाके साथ उन्होंने सलाह दी कि नियमोंमें उल्लिखित व्रतोंमें नम्रता भी एक होनी चाहिए। उन्होंने अपने पत्रमें लिखा था आजकलके नवयुवकोंमें नम्रताका अभाव पाया जाता है। मैंने उनसे कहा कि मैं आपकी सलाहके मूल्यको तो स्वीकार करता हूँ, नम्रताकी आवश्यकताको भी पूरा-पूरा समझता हूँ, पर एक व्रतके रूपमें उसको स्थान देना उसके गौरवको घटाना है। यह बात तो हमें गृहीत ही करके चलना चाहिए कि जो लोग सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यका पालन करेंगे, वे नम्र अवश्य रहेंगे। नम्रताविहीन सत्य एक उद्धत व्यंगचित्र होगा। जो व्यक्ति सत्यका पालन करना चाहता है, वह जानता है कि यह कितना कठिन है। दुनिया उसकी कथित सफलताओंपर भले ही हर्ष प्रकट करे, पर उसे उसकी गिरावटका पता बहुत ही कम लग पाता है। सत्यपरायण व्यक्ति बड़ा ही नियन्त्रित व्यक्ति होता है। उसे नम्र बननेकी आवश्यकता है ही। जो शख्स सारे संसारके साथ, यहाँतक कि उसके भी साथ, जो उसे अपना शत्रु कहता हो, प्रेम करना चाहता है, वह जानता है कि केवल अपने बलपर ऐसा कर पाना कितना कठिन है। जबतक वह अपनेको एक रजकणके समान तुच्छ न समझने लगेगा तबतक वह अहिंसाके तत्त्वको ग्रहण नहीं कर सकता। जिस प्रकार उसके प्रेमकी मात्रा बढ़ती जाती है, उसी प्रकार यदि उसकी नम्रताकी मात्रा न बढ़ी तो वह किसी कामका नहीं। जो मनुष्य अपनी आँखोंमें तेज लाना चाहता है, जो स्त्री-मात्रको अपनी सगी माता या बहन मानता है, उसे तो रजकणसे भी तुच्छ बनना पड़ेगा। उसे एक ऊँचे कगारके किनारेपर खड़ा

समझिए। पाँव जरा इधर-उधर हुआ कि वह नीचे आया। वह अपने मनमें भी अपने गुणोंके सराहनासूचक शब्द कहनेका साहस नहीं करता, क्योंकि वह नहीं जानता कि अगले क्षणमें क्या होनेवाला है। उसके मनमें पहले अहंकार उत्पन्न होता है और उसके फलस्वरूप उसका विनाश होता है; उसके हृदयमें दर्प आता है फलतः उसका पतन होता है।

'गीता' में सच कहा है —

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥[1]

अर्थात् जबतक मनुष्यके मनमें अहंभाव मौजूद है तबतक उसे ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो सकता। यदि वह ईश्वरमें मिलना चाहता हो तो उसे शून्यवत् हो जाना चाहिए। इस प्रतिक्षण परिवर्तनशील जगतमें ऐसा कहनेका साहस कौन कर सकता है कि "मैंने विजय प्राप्त की"? हम विजय प्राप्त नहीं करते; ईश्वर प्राप्त कराता है।

हमें इन गुणोंका महत्त्व कम नहीं कर देना चाहिए; नहीं तो हम सब यह कहने लगेंगे कि ये गुण हममें मौजूद हैं। जो बात भौतिक बातोंके बारेमें सच है वही आध्यात्मिक बातोंके बारेमें भी सच है। यदि एक सासारिक संग्रामस्थलमें विजय पानेके लिए यूरोपने गत महायुद्धमें — जो स्वयं ही नाशवान् है — कितने करोड़ लोगोंका बलिदान कर दिया, तब यदि आध्यात्मिक युद्धमें करोड़ों लोगोंको इसके प्रयत्नमें मिट जाना पड़े, जिससे कि संसारके सामने एक पूर्ण उदाहरण रह जाये, तो यह कौन-सी बड़ी बात है? हमारे हाथमें तो इतना ही है कि हम अत्यधिक नम्रताके साथ उद्योग करते जायें।

इन उच्च गुणोंको अपनेमें विकसित करना ही उनके लिए किये परिश्रमका पुरस्कार है। जो इनमें से किसी एकको प्राप्त कर लेनेपर उसके बदलेमें भौतिक सुख चाहता है वह अपनी आत्माका नाश करता है। सद्‌गुण कोई व्यापारकी चीज नहीं है। मेरा सत्य, मेरी अहिंसा, मेरा ब्रह्मचर्य ये मेरे और मेरे कर्त्तासे सम्बन्ध रखनेवाले विषय हैं। ये तिजारतकी चीजें नही हैं। जो भी युवक उनकी तिजारत करनेकी कोशिश करेगा, वह अपना ही नुकसान करेगा। जगत्‌के पास कोई ऐसा मापदण्ड नही है, कोई ऐसा साधन नहीं है जिससे इन बातोंकी नापतौल की जा सके। वे छानबीन और विश्लेषणसे परे हैं। इसलिए हम कार्यकर्त्ताओंको चाहिए कि हम उन्हे केवल अपने खुदके शुद्धीकरणके लिए प्राप्त करे। हम दुनियासे कह दें कि वह हमारे कार्योंसे हमारा मूल्यांकन करे। जो संस्था या आश्रम अपनेको लोगोंसे सहायता पानेका अधिकारी मानता हो उसका लक्ष्य भौतिक — सांसारिक होना चाहिए — जैसे अस्पताल, पाठशाला, कताई और खादीप्रचार। सर्वसाधारणको इन गतिविधियोंकी उपयोगिता-अनुपयोगिता परखनेका अधिकार है और यदि जनता उन्हें पसन्द करती है तो सहायता कर सकती है। शर्तें स्पष्ट हैं। व्यवस्थापकोंमें नेकनीयती और योग्यता होनी चाहिए।

१. अध्याय २, श्लोक ५९।

वह प्रामाणिक मनुष्य जो शिक्षाशास्त्रसे अपरिचित हो, शिक्षक कहलाकर लोगोंसे सहायता पानेका हक नहीं रखता। इन सार्वजनिक संस्थाओंमें हिसाव-किताब ठीक-ठीक रखा जाना चाहिए जिससे लोग जब चाहें तब निरीक्षण कर सकें। इन शर्तोंकी पूर्ति संस्थाके संचालकोंको करनी चाहिए। लोगोंसे आदर और आश्रय पानेकी दृष्टिसे उन्हें सच्चरित्रताका दिखावा नही करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१८०. पतित बहनें

मदारीपुरमें स्वागत समितिने पतित बहनोके द्वारा एक कताई प्रदर्शनका आयोजन किया था। उस दृश्यको देखकर तो मुझे आनन्द हुआ, परन्तु मैंने इस बातकी ओर व्यवस्थापकोंका ध्यान खींचा कि इस प्रश्नको हाथमें लेनेमें क्या-क्या खतरे खड़े हो सकते हैं। बारीसालमें उनके उद्धारकार्यको पहले-पहल एक निश्चित रूप मिला था। परन्तु उसने जो पद्धति पकड़ी है, वह शोभनीय नही, निश्चित ही भद्दी है। वहाँ इन अभागिनी बहनोंकी एक संस्था कायम की गई है। उस संस्थाको एक भ्रमोत्पादक नाम दिया गया है। उसके 'वर्तमान ध्येय और उद्देश्य' इस प्रकार बताये गये है:

१. गरीबोंकी मदद करना और बीमार भाई-बहनोंकी सेवा-शुश्रूषा करना।

२. अपने बीच शिक्षाका प्रसार करना।

(ब) एक नारी शिल्पाश्रमकी स्थापना करके कताई, बुनाई, सिलाई, दस्तकारी, तथा अन्य हस्तकौशलकी उन्नति करना।

(क) उच्च संगीत की शिक्षा देना।

३. उन तमाम संस्थाओंमें शरीक होना, जिनका धर्म सत्याग्रह और अहिंसा है।

यदि और कुछ भी नहीं तो यह घोड़ेके आगे गाड़ी रखने जैसा है। इन बहनोंको खुद अपना सुधार करनेके पहले ही जनसेवा करनेकी सलाह दी गई है। उच्च संगीतकी शिक्षा देनेके विचारका परिणाम यदि दुखद न हो तो वह कमसे-कम एक बड़े मजाक-जैसा तो लगेगा ही। क्योंकि यह मानना होगा कि ये स्त्रियाँ नाचना और गाना तो जानती ही हैं। और फिर वे अपने व्यवसाय द्वारा सारे समय सत्य और अहिंसाको भंग करते हुए भी सत्य और अहिंसाको अपना धर्म माननेवाली संस्थाओंमें शरीक हो सकती हैं!

मेरे सामने जो कागज पड़ा हुआ है वह तो यह भी कहता है कि वे कांग्रेसकी सदस्या भी बनाई गई हैं और "उनकी तुच्छ स्थितिके योग्य राष्ट्रीय काम करनेकी" छूट भी उन्हे दी गई हैं। वे कांग्रेसकी प्रतिनिधि भी चुनी गई हैं। मैंने उनके नामसे लिखा गया एक घोषणापत्र भी देखा है, जिसे कि मैं भद्दा और गन्दा समझता हूँ।

इसमें हेतु कुछ भी हो, मैं इस पूरे प्रकरणको लज्जाजनक माने बिना नहीं रह
। हाँ, कताईको मैं जरूर चाहता हूँ, परन्तु उसे पापका परवाना नहीं बनने
। मैं जरूर चाहता हूँ कि हर शख्स सत्याग्रह धर्मको स्वीकार करे। परन्तु
शख्सको, जिसका कि धंधा ही खून करनेका रहा हो और जिसपर उसे
न हो, प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर करनेसे रोकनेमें अपनी सारी शक्ति लगा
सहानुभूति इन बहनोंके साथ है। लेकिन बारीसालवालोंने जो तरीके
उन्हें मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। इन बहनोंको वहाँ
मिल गया है जो कि समाजके नैतिक कल्याणकी दृष्टिसे उन्हें
९। जिस प्रयोजनको लेकर इन बहनोंने अपनी संस्था बनाई
जाने-माने चोरोंका एक संघ बनायेंगे? और ये बहनें तो
हैं। इसलिए उनकी ऐसी संस्थाकी स्थापनाका आधार
। चोर तो रुपया पैसा ही चुराते हैं, पर ये तो मनुष्यके
बात सच है कि समाजमें इन अभागिनी स्त्रियोंके
तौरपर जिम्मेदार हैं। परन्तु हमें यह बात हरगिज
में बुराई फैलानेकी महाभयंकर शक्ति प्राप्त
हुआ कि वहाँ इन स्त्रियोंके सामाजिक कार्यके
जिसका असर बहुत बुरा पड़ रहा है।
भी उनके प्रभावसे नहीं बचा है। अच्छा
दृढ़ मत है कि जबतक वे इस शर्मनाक
किसी किस्मका चंदा या सेवा लेना
बननेके लिए प्रोत्साहित करना
अनुसार वे कांग्रेसमें आनेसे रोकी
कांग्रेससे दूर रखेंगा और खुद
स्वयं ही दूर रखेंगी।
उनसे आग्रह करूँगा कि
उनकी कोई संस्था है।
त्याग दें। वे चरखेको
। रोजीके तौरपर

१८१. तीन सवाल

एक सज्जनने बारीसालसे मुझसे तीन सवाल पूछे थे। उनको उत्तर सहित नीचे दे रहा हूँ :

१. क्या हमारी 'पतित बहनें' जिला या प्रान्तीय सम्मेलनों तथा अन्य प्रातिनिधिक मण्डलोंके लिए प्रतिनिधि चुनी जा सकती हैं? यदि नहीं तो फिर ये प्रतिनिधिके रूपमें बारीसालसे पिरोजपुर और जैसोरके सम्मेलनोंमें कैसे भेजी गईं?

कांग्रेसके मौजूदा विधानके अनुसार एक चरित्रहीन व्यक्ति भी, यदि उसे चुनकर भेजनेवाले मतदाता मिल जायें, कांग्रेसका प्रतिनिधि बननेका अधिकारी है। परन्तु वे सदस्य जो पतित बहनोंको, उन्हें उस रूपमें जानते हुए और उनके द्वारा उस पापमय धन्धेका त्याग न होनेपर भी चुनते हैं, मेरे नजदीक बहुत अच्छे आदमी नहीं हैं। जिन सम्मेलनोंका जिक्र किया गया है, उनकी मुझे कोई जानकारी नहीं।

२. यदि कोई एक स्थापित या सुसंगठित मण्डल कांग्रेसका रुपया खा जाये या रसीद बुकें, बही-खाते आदि और जिला कांग्रेस कमेटीके रुपये तथा अन्य सम्पत्ति, नयी चुनी कार्य-समितिको, जिसे कि बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी विधिवत् मान्यता दे चुकी है, न दे तो रुपये-पैसे वसूल करने तथा किताबें और कांग्रेसकी अन्य सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिए क्या कार्रवाई करनी चाहिए?

यद्यपि मैं अब भी एक दृढ़ असहयोगी हूँ तो भी यदि मेरी मिन्नत-खुशामदसे काम न निकला तो मैं उसपर दीवानी या फौजदारी दावा करनेमें न हिचकूँगा — फिर वह चाहे मेरा पिता या पुत्र ही क्यों न हो। कांग्रेसका विधान और प्रस्ताव उसके उद्देश्यको विफल करनेके लिए नहीं हैं।

३. जो हिन्दुस्तानी और यूरोपीय लोग, जिनमें सरकारी उच्च अधिकारी भी शामिल हैं, अबतक आपके लोकोपकारी कार्यके विरोधी रहे हैं, अब भी हैं और जो आपकी पिछली बंगाल-यात्राके समय जिन समारोहोंमें आप जाते थे, शरीक नहीं होते थे और होते भी थे तो बाधा डालनेके लिए ही, वे ही अब आपके स्वागतमें इतना उत्साह क्यों दिखा रहे हैं? आपकी समझमें इसका कारण क्या है? क्या ऐसा माननेका कोई कारण है कि उन लोगोंमें अब अहिंसात्मक असहयोगकी उच्च भावना पैदा हो गई है या इससे यह साबित होता है कि देशके सबसे बड़े राजनीतिक नेताके रूपमें आपकी शक्ति यदि बिलकुल नष्ट नहीं हो गई तो क्षीण अवश्य होती जा रही है?

मुझे पता नहीं कि सरकारने मेरे पिछले बंगालके दौरेके समय क्या-क्या बाधायें डाली थीं। परन्तु यदि सरकारी कर्मचारी आज मेरे स्वागतमें उत्साह दिखा रहे हैं —तो पत्रलेखक उक्त अनुमान निकालनेके लिए स्वतन्त्र हैं। मैं आशा करता हूँ कि पत्रलेखक महोदय स्वयं उस गलतीके शिकार न बनेंगे, जिसके शिकार उनके खयालके

इसमें हेतु कुछ भी हो, मैं इस पूरे प्रकरणको लज्जाजनक माने बिना नहीं रह सकता। हाँ, कताईको मैं जरूर चाहता हूँ, परन्तु उसे पापका परवाना नहीं बनने देना चाहता। मैं जरूर चाहता हूँ कि हर शख्स सत्याग्रह धर्मको स्वीकार करे। परन्तु एक ऐसे शख्सको, जिसका कि धंधा ही खून करनेका रहा हो और जिसपर उसे पश्चात्तापतक न हो, प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर करनेसे रोकनेमें अपनी सारी शक्ति लगा दूंगा। मेरी पूरी सहानुभूति इन बहनोंके साथ है। लेकिन बारीसालवालोंने जो तरीके अख्तियार किये हैं उन्हें मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। इन बहनोंको वहाँ ऐसा सामाजिक दर्जा मिल गया है जो कि समाजके नैतिक कल्याणकी दृष्टिसे उन्हें हरगिज न मिलना चाहिए। जिस प्रयोजनको लेकर इन बहनोंने अपनी संस्था बनाई है, क्या उसे लेकर हम जाने-माने चोरोंका एक संघ बनायेंगे? और ये बहनें तो चोरोंसे भी ज्यादा खतरनाक हैं। इसलिए उनकी ऐसी संस्थाकी स्थापनाका आधार और भी अधिक कमजोर है। चोर तो रुपया पैसा ही चुराते हैं, पर ये तो मनुष्यके सद्‌गुणोंको चुराती हैं। हाँ, यह बात सच है कि समाजमें इन अभागिनी स्त्रियोंके अस्तित्वके लिए पुरुष ही बुनियादी तौरपर जिम्मेदार हैं। परन्तु हमें यह बात हरगिज न भुला देनी चाहिए कि इन्होंने समाजमें बुराई फैलानेकी महाभयंकर शक्ति प्राप्त कर ली है। बारीसालमें मुझे मालूम हुआ कि वहाँ इन स्त्रियोंके सामाजिक कार्यके फलस्वरूप ये इतनी आगे बढ़ गई हैं कि जिसका असर बहुत बुरा पड़ रहा है। और फलतः बारीसालके युवकोंका सदाचार भी उनके प्रभावसे नहीं बचा है। अच्छा होता यदि यह संस्था तोड़ दी जाती। मेरा दृढ़ मत है कि जबतक वे इस शर्मनाक जिन्दगीको अख्तियार किये हुए हैं, तबतक उनसे किसी किस्मका चंदा या सेवा लेना या उन्हें कांग्रेसका प्रतिनिधि चुनना और सभासद बननेके लिए प्रोत्साहित करना बेजा है। कांग्रेसका कोई नियम ऐसा नहीं है जिसके अनुसार वे कांग्रेसमें आनेसे रोकी जायें, परन्तु मुझे यह आशा थी कि लोकमत ही उन्हें कांग्रेससे दूर रखेगा और खुद उनमें भी इतना संकोच तो जरूर होगा कि वे अपनेको स्वयं ही दूर रखेंगी।

मैं चाहता हूँ कि मेरे ये शब्द उनतक पहुँचें। मैं उनसे आग्रह करूँगा कि वे कांग्रेसके रजिस्टरसे अपने नाम कटवा लें। भूल जायें कि उनकी कोई संस्था है। और शीघ्र ही, निश्चयपूर्वक अपने इस अनीतिपूर्ण व्यापारको त्याग दें। वे चरखेको बतौर साधनाके और बुनाई या दूसरे किसी अच्छे रोजगारको अपनी रोजीके तौरपर उसी हालतमें अख्तियार करें, इससे पहले नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१८१. तीन सवाल

एक सज्जनने बारीसालमें मुझसे तीन सवाल पूछे थे। उनको उत्तर सहित नीचे दे रहा हूँ:

१. क्या हमारी 'पतित बहनें' जिला या प्रान्तीय सम्मेलनों तथा अन्य प्रातिनिधिक मण्डलोंके लिए प्रतिनिधि चुनी जा सकती हैं? यदि नहीं तो फिर ये प्रतिनिधिके रूपमें बारीसालसे पिरोजपुर और जैसोरके सम्मेलनोंमें कैसे भेजी गईं?

कांग्रेसके मौजूदा विधानके अनुसार एक चरित्रहीन व्यक्ति भी, यदि उसे चुनकर भेजनेवाले मतदाता मिल जायें, कांग्रेसका प्रतिनिधि बननेका अधिकारी है। परन्तु वे सदस्य जो पतित बहनोंको, उन्हें उस रूपमें जानते हुए और उनके द्वारा उस पापमय पेशेका त्याग न होनेपर भी चुनते हैं, मेरे नजदीक बहुत अच्छे आदमी नहीं हैं। जिन सम्मेलनोंका जिक्र किया गया है, उनकी मुझे कोई जानकारी नहीं।

२. यदि कोई एक व्यक्ति या सुसंगठित मण्डल कांग्रेसका रुपया खा जाये या बर्बाद करे, बही-खाते आदि और जिला कांग्रेस कमेटीके रुपये तथा अन्य सम्पत्ति, नयी चुनी कार्य-समितिको, जिसे कि बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी विधिवत् मान्यता दे चुकी है, न दे तो रुपये-पैसे वसूल करने तथा किताबें और कांग्रेसकी अन्य सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिए क्या कार्रवाई करनी चाहिए?

यद्यपि मैं अब भी एक दृढ़ असहयोगी हूँ तो भी यदि मेरी मिन्नत-खुशामदसे काम न निकला तो मैं उनपर दीवानी या फौजदारी दावा करनेमें न हिचकूंगा — फिर वह चाहे मेरा पिता या पुत्र ही क्यों न हो। कांग्रेसका विधान और प्रस्ताव उसके उद्देश्योंको विफल करनेके लिए नहीं है।

३. जो हिन्दुस्तानी और यूरोपीय लोग, जिनमें सरकारी उच्च अधिकारी भी शामिल हैं, अबतक आपके लोकोपकारी कार्यके विरोधी रहे हैं, अब भी हैं और जो आपकी पिछली बंगाल-यात्राके समय जिन समारोहोंमें आप जाते थे, शरीक नहीं होते थे और होते भी थे तो बाधा डालनेके लिए ही, वे ही अब आपके स्वागतमें इतना उत्साह क्यों दिखा रहे हैं? आपकी समझमें इसका कारण क्या है? क्या ऐसा माननेका कोई कारण है कि उन लोगोंमें अब अहिंसात्मक असहयोगकी उच्च भावना पैदा हो गई है या इससे यह साबित होता है कि देशके सबसे बड़े राजनीतिक नेताके रूपमें आपकी शक्ति यदि बिलकुल नष्ट नहीं हो गई तो क्षीण अवश्य होती जा रही है?

मुझे पता नहीं कि सरकारने मेरे पिछले बंगालके दौरेके समय क्या-क्या बाधायें डाली थीं। परन्तु यदि सरकारी कर्मचारी आज मेरे स्वागतमें उत्साह दिखा रहे हैं —तो पत्रलेखक उक्त अनुमान निकालनेके लिए स्वतन्त्र हैं। मैं आशा करता हूँ कि पत्रलेखक महोदय स्वयं उस गलतीके शिकार न बनेंगे, जिसके शिकार उनके खयालके

मुताविक, सरकारी अधिकारीगण बने हुए प्रतीत होते हैं। क्योंकि सत्याग्रहीकी शक्ति आख्यानोंमें वर्णित उस पक्षीकी[1] शक्तिकी तरह है जो कि अपनी राखमें से पुन: उत्पन्न हो जानेकी क्षमता रखता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

१८२. सत्याग्रहियोंका कर्त्तव्य

कलकत्ता

२५ जून, १९२५

हुगलीकी जिला अदालतने हालमें एक फैसला सुनाया है। उसके अनुसार तारकेश्वरके मन्दिर और साथ-साथ महन्तकी मानी जानेवाली सारी सम्पत्तिके लिए एक 'रिसीवर' तैनात किया जानेवाला है। इसे देखते हुए सत्याग्रहियोंका क्या कर्त्तव्य है—यह वात हमसे पूछी गई है।'

हमारी राय तो यह है कि जव 'रिसीवर' उस सम्पत्तिको अपने अधिकारमें करने आये तब सत्याग्रही अविग्रहणका विरोध नहीं कर सकते और न 'रिसीवर' द्वारा उस जायदादका कब्जा लेनेका विरोध कोई अर्थ ही रखता है। सत्याग्रह तो महन्तके खिलाफ, वल्कि उसके तौर-तरीकोंके खिलाफ, किया गया था। अब वह महन्त काविज नहीं है और न्यायालयके निर्णयने महन्तको कब्जा नही दिया है। इसके विपरीत, उस निर्णयसे यह भी साफ हो जाता है कि यद्यपि महन्तने सारी मिल्कियतका पूरा या आंशिक कब्जा प्राप्त करनेकी कोशिश की थी लेकिन उसे सफलता नहीं मिली।

सत्याग्रहका उद्देश्य था मन्दिरसे सम्वन्धित समस्त अनुचित व्यापारको समाप्त करवाना और लक्ष्मीनारायण मन्दिरको आम जनताके प्रवेशके लिए खुलवाना। अब अदालतके फैसलेके अधीन पहलेके दोषोंका फिरसे प्रारम्भ या मन्दिर-प्रवेश-निषेधका पुन: रूढ़ होना सम्भव नहीं रह गया है। जवतक मन्दिरका प्रवन्ध निर्दोष रहता है और महन्तके हाथमें प्रवन्ध नहीं होता, तवतक सत्याग्रहियोंको इस वातसे कोई प्रयोजन नहीं कि कब्जा किसके पास है।

इसलिए सत्याग्रहियोंका यह कर्त्तव्य होगा कि माँगनेपर 'रिसीवर'को कब्जा दे दिया जाये। यदि फिर कभी प्रबन्धमें बुराइयाँ पैदा होने लगें तो उस समय स्थिति पर फिरसे विचार किया जा सकता है। जवतक न्यासकी व्यवस्था सही ढंगसे चलती रहे तबतक न्यासी कौन-कौन व्यक्ति बनते हैं, यह सोचनेकी जरूरत नहीं है। यदि आगे चलकर वादी महन्तसे साठ-गाँठ कर लेते है तो भी यह एक विचारणीय विषय होगा कि सत्याग्रहियोंको क्या करना चाहिए।

१. फीनिक्स।

गत ८ जूनको दार्जिलिंगमें देशबन्धुने उक्त बातोंपर अपनी अन्तिम सहमति दे दी थी और जरूरी माने जानेपर यह सब हमारे संयुक्त हस्ताक्षरों-सहित प्रकाशित किया जाना था। मुझे बताया गया है कि इस वक्तव्यका प्रकाशन जरूरी है। इसलिए हमारे संयुक्त वक्तव्यके रूपमें इसे प्रकाशित करनेमें मुझे कोई सकोच नहीं हो रहा है। इसके बाद मैंने ऐसा कुछ नहीं पाया कि मुझे अपनी राय बदलनी पड़ती।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ९-७-१९२५

१८३. पत्र : महाराजा बर्दवानको

२६ जून, १९२५

मैं यदि आपको यह न बतलाता कि आपके उस पत्रसे मेरा हृदय क्षुब्ध हुआ है जिसमें आपने स्मारक कोषके लिए अपने दान सम्बन्धी निर्णयकी बात लिखी थी तो मैं राजाओं और महाराजाओंका सच्चा मित्र — जैसा कि मेरा खयाल है कि मैं हूँ — नहीं कहला सकता था। मैं कहूँगा कि इससे आपका अपने देश भाइयोमें क्षीण विश्वास और उनके प्रति एक गलत मनोवृत्ति व्यक्त होती है। आप उस अपीलके हस्ताक्षरकर्त्ताओंमें अपना नाम प्रकाशित करानेकी अनुमति उदारतापूर्वक दे चुके हैं। यदि उसका कुछ भी अर्थ होता है तो वह यही होना चाहिए कि आप धन-संग्रहको सफल बनानेका दृढ़ संकल्प कर चुके हैं। लेकिन आप जो शर्तें लगा रहे हैं, उनके परिणामस्वरूप धन-संग्रहमें बाधाएँ उत्पन्न होंगी। यदि आपको — एक महाराजा हस्ताक्षरकर्त्ताको — यह अधिकार हो कि आप दानकी अदायगी इस शर्तपर करेंगे कि कोषकी राशि एक निश्चित रकमतक पहुँच जाये तो फिर अदना हस्ताक्षरकर्त्ताओंके हकके बारेमें क्या होगा? और यदि वे सभी ऐसी शर्तें लगाएँ तो भला संग्रह किस तरह एक कदम भी आगे बढ़ सकता है? जिन अनेक चंदोंकी उगाहीका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, उन सबमें मैंने कोषोंके प्रारम्भकर्त्ताओंके रूपमें हस्ताक्षर करनेवाले लोगोंको ही सम्बन्धित कोषोंकी सफलताके जमानतदारोंके रूपमें पाया है। मेरा खयाल है कि आपने यह सर्वथा अनुचित रुख किसी गलतफहमीके कारण अपनाया होगा, क्या आप उसको बदलनेकी कृपा करेंगे?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१८४. पत्र : शुएब कुरैशीको

२६ जून, १९२५

तुम हिन्दू-मुस्लिम झगड़ोंके बारेमें जो भी कुछ कहते हो वह बिलकुल सही है। मैं वही रास्ता अपना रहा हूँ जो उस्मानके जमानेमें पैगम्बरके साथियोंने अपनाया था। इस्लाम विरोधी गुटोंमें बँटकर टूट-बिखर गया तो वे गुफाओंमें चले गये थे। तो हम यों कह सकते हैं कि जबतक हिन्दू-मुसलमान कुत्ते-बिल्लीकी तरह झगड़ते हैं तबतकके लिए हम अपने ही अन्दर सिमटकर आत्मचिंतनमें लग जायें।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१८५. भाषण : कलकत्ताकी शोकसभामें[1]

२६ जून, १९२५

इसके बाद गांधीजीने कहा कि प्रस्ताव तैयार करके गुजराती समाजने अपना कर्त्तव्य-मात्र निभाया है, अधिक कुछ नहीं। १८ जूनका दिन देशबन्धुकी मृत्युपर शोक व्यक्त करनेका दिन था और मैं समझता हूँ कि इस सभामें उपस्थित लोगोंमें से अधिकांश देशबन्धुकी शवयात्रामें शरीक हुए थे। मैं पहले भी अपील कर चुका हूँ कि देशबन्धुका स्थायी स्मारक बनानेके लिए कमसे-कम दस लाख रुपयोंका कोष जमा किया जाये और स्मारक उसी तरहका हो जैसा कि उस कागजमें उन्होंने लिखा है, जिसे हम देशबन्धुकी वसीयत कह सकते हैं। मैं इस समय उसी काममें संलग्न था और जब सेठ आनन्दजी हरिदास तथा अन्य मित्र मेरे पास यह कहनेके लिए पहुँचे कि इस उत्सवकी अध्यक्षता आप कीजिए तब मैंने उनसे साफ कहा कि गुजराती समाजकी ओरसे मैं अपनी अपीलके उत्तरमें समुचित योगदानकी आशा रखता हूँ। मैंने उनसे यह भी पूछा कि क्या अपने हिस्सेकी रकम कोषमें देनेके लिए आपने कोई राशि इकट्ठी की है, लेकिन मुझे यह देखकर निराशा हुई कि ऐसा कोई प्रबन्ध पहलेसे नहीं किया गया था। मैं कामकाजी व्यक्ति हूँ और मेरे पास कोषके लिए संग्रह करनेको जितना भी समय है उसमें से एक भी मिनट नष्ट करना मैं पसन्द नहीं

१. चित्तरंजन दासकी मृत्युपर शोक मनानेके लिए शामको अल्फ्रेड थियेटरमें एक सभा की गई। गांधीजीने अध्यक्षता की और शोक प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास हो जानेके पश्चात् उन्होंने यह भाषण दिया।

करता। मैंने तो समझा था कि देशबन्धु-स्मारक कोषके लिए गुजराती समाजके हिस्से-का चन्दा लेनेके लिए ही मैं इस सभामें आया हूँ। और अपने गुजराती भाइयोंसे तो साफ और यहाँतक कि कड़ी बात बोलनेकी मेरी हमेशासे आदत रही है। मुझे इस बातकी प्रसन्नता है कि मेरे निवेदनोंका उत्तर गुजरातियोंने हमेशा ही उदारतापूर्वक दिया है। बुरे कामोंके लिए नहीं, बल्कि अच्छे कामोंके लिए विभिन्न प्रान्तोंमें प्रति-द्वन्द्विता पैदा करना मेरी आदत रही है। मैं पक्की तौरसे नहीं कह सकता कि जब स्वराज्य कायम होगा तब स्वराज्यका झण्डा फहरानेमें कौन-सा प्रान्त प्रथम रहेगा। लेकिन मुझे विश्वास है कि जो भी प्रान्त सच्चे अर्थोंमें समूचे देशके प्रति अपना कर्त्तव्य निभाता रहेगा, उसीको यह श्रेय प्राप्त होगा। जब मैंने तिलक स्वराज्य कोषके लिए एक करोड़ रुपयेकी अपील की थी तो गुजरातियोंने बहुत ही सराहनीय उदारता प्रदर्शित की थी। और मुझे यह सोचकर खुशी हो रही है कि आज शाम कलकत्तेके गुजरातियोंसे की गई मेरी अपील व्यर्थ नहीं जायेगी। आज व्यापारमें बहुत अधिक मन्दी है, सो मैं जानता हूँ, तथापि मुझे गुजराती समाजसे कमसे-कम दस लाख रुपये माँगने हैं; और मुझे आशा है कि जो कमी अभी रह गई है वह कोष संग्रहके लिए बचे आगामी तीन चार दिनोंमें पूरी कर दी जायेगी।'

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २७-६-१९२५

१८६. अपील : देशबन्धु श्रद्धांजलि-सभाके सम्बन्धमें

मुझे आशा है कि जनता पहली जुलाईकी तिथि याद रखेगी। जो लोग कलकत्ता-में देशबन्धु श्रद्धांजलि-सभाओंका आयोजन कर रहे हैं, वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि तीन सभाएँ करना आवश्यक है — एक तो विक्टोरिया मेमोरियलके उत्तरवाले मैदानमें सार्वजनिक सभा, दूसरी मिर्जापुर पार्कमें केवल महिलाओंके लिए और तीसरी टाउन हॉलमें, जहाँ टिकटों द्वारा प्रवेश हो। चूँकि पहली जुलाईको सारे भारतमें होनेवाली सभाएँ, किसी एक दलसे सम्बन्धित न होकर निर्दलीय किस्मकी रखी जा रही हैं, और चूँकि बहुतेरे लोगोंने जो देशबन्धुके राजनीतिक विचारोंसे सहमत नहीं थे, श्रद्धां-जलि-सभाओंमें उपस्थित होकर उनकी यादगारके प्रति आदरभाव व्यक्त करनेका अपना निश्चय प्रकट किया है, उचित यही समझा गया कि सार्वजनिक सभाके अलावा टाउन हॉलमें भी एक सभा ऐसी की जाये, जिसमें विभिन्न दलोंके लोग शरीक हों और जहाँ उपयुक्त भाषण दिये जायें। संयोजकोंके सामने कठिनाई यह है कि टाउन हॉलमें प्रवेशके लिए टिकट किसे-किसे भेजे जायें। मुझे मालूम हुआ है कि टाउन हॉलमें केवल

१. भाषणके बाद देशबन्धु-स्मारक कोषके लिए चन्दा किया गया। नकद राशि और दानके वादोंके रूपमें कुल मिलाकर करीब ७,००० रु० आये।

१२०० लोगोंके बैठनेके लिए स्थान है। कुछ स्थान अवश्य ही सुरक्षित रखने होंगे, बाकीके लिए श्रीयुत एन० सी० सेनके पास ९८, बेलतला रोड, भवानीपुरके पतेसे अर्जी भेजी जानी चाहिए। वे आगामी इतवारतक ली जा सकेंगी। और यदि अर्जियों-की संख्या उपलब्ध स्थानोंसे अधिक हुई तो लाटरी द्वारा उन लोगोंके नाम निश्चित किये जायेंगे, जिन्हे प्रवेशपत्र दिया जाना चाहिए। ऐसी सार्वजनिक सभाओंमें उपस्थिति नियंत्रित रखनेके सम्बन्धमें जो आशंकाएँ हैं, उनको मैं जानता हूँ। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि जनता बेचारे संयोजकोंकी कठिनाईको महसूस करेगी। वे चाहते हैं कि टाउन हॉलमें सभी विचारोंके लोगोंका प्रतिनिधित्व हो। सार्वजनिक सभामें शायद अधिक भाषण न हो सकें या सम्भव है, वहाँ एक भी भाषण न हो। फिर भी उन लोगोंको जो अपनी भावनाएँ व्यक्त करना चाहते हैं, इसका कोई अवसर न मिल पाना खेदजनक होगा। ऐसा अवसर टाउन हालमें मिल सकता है।

इसलिए मैं आशा करता हूँ कि टाउन हॉलकी सभाको सफल बनानेमें जनता प्रबन्धकोंके साथ हार्दिक सहयोग करेगी। टाउन हॉलकी सभाकी अध्यक्षता करनेके लिए महाराजाधिराज वर्दवानने स्वीकृति देनेकी कृपा की है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २७-६-१९२५

१८७. पहली जुलाई

मैंने यह सलाह दी है कि देशबन्धुकी स्मृतिमें उनके श्राद्धके दिन हिन्दुस्तानके प्रत्येक गाँव और शहरमें सार्वजनिक सभा की जाए। उस दिन धार्मिक भावनावाले लोग उपवास या एकाहार भी करें। देशबन्धुके घरमें तो ये सब हो ही रहा है। उन्हें कीर्तन प्रिय था, इसलिए नित्य रातको कीर्तन भी किया जाता है। जो स्नानादि [धार्मिक विधियाँ] करना चाहें, वे उन्हें भी कर सकते हैं। मुख्य बात तो ठीक पाँच बजे सभा करना और उसमें प्रस्ताव स्वीकृत करना है। गुजरातमें जहाँ-जहाँ कांग्रेसका सन्देश पहुँच सकता है वहाँ-वहाँ सभाएँ करना वांछनीय है। इन सभाओंमें स्वीकृत प्रस्तावकी नकल गंगास्वरूप वासन्ती देवीको डाकसे भेज देना पर्याप्त होगा। प्रान्तीय कमेटी भी अपनी ओरसे एक तार द्वारा गाँवोंकी सूची भेजे, जिससे यह पता चल जाएगा कि किन-किन जगहोंमें सभाएँ हुई हैं। सभाओंमें शोक-प्रस्ताव और देशबन्धुके गुणोंका कीर्तन तो हो ही, किन्तु प्रत्येक सभामें उसके अलावा दूसरे कार्य भी किए जा सकते हैं। हम देशबन्धुकी पूजा उनके स्वराज्य प्राप्तिके लिए किए गए कार्योंके कारण करते हैं। यदि इस स्वराज्यकी स्थापना आज ही हो सके तो देशबन्धुकी आत्माको पूर्ण शान्ति मिलेगी। यह कार्य इस समय हमारी शक्तिसे बाहर है। किन्तु स्वराज्यको समीप लाना हमारी शक्तिसे बाहर नहीं है।

राजा और रंक, मजदूर और मालिक, बूढ़े और बालक, स्त्री और पुरुष, हिन्दू और मुसलमान सब स्वराज्यको समीप लानेके लिए क्या कर सकते हैं? ऐसा कौन-सा

कार्य है, जिसे सब लोग कर सकते हैं। ऐसा कार्य एक है, और वह है खादीका प्रचार। सब लोग शुद्ध खादी पहननेका निश्चय कर सकते हैं और यज्ञार्थ अर्थात् देशके निमित्त आधा घंटा नित्य चरखा चलानेकी प्रतिज्ञा कर सकते हैं। इसमें किसीको कोई कठिनाई नहीं हो सकती। इस प्रकार लोग नित्य देशबन्धुका स्मरण कर सकते हैं। यदि इस प्रकारकी प्रतिज्ञा लाखों लोग लें तो क्या नहीं हो सकता। हम विदेशी कपड़ेका सर्वथा त्याग कर सकते हैं। इससे हममें आत्मविश्वास पैदा होगा। देशबन्धु चाहते थे कि लोगोंमें आत्मविश्वास आए। वे चाहते थे कि हम लोग स्वावलम्बी बनें; इसलिए हमें स्वावलम्बी बनना चाहिए। वे चाहते थे कि हम हिन्दू, मुसलमान और पारसी आदि सब लोग संगठित हों। हम चरखेके द्वारा ऐसा संगठन साध सकते हैं। इसी कारण मैं तो चाहता हूँ कि सभी लोग खादी पहनने और चरखा चलानेकी प्रतिज्ञा अवश्य करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-६-१९२५

१८८. कुछ संस्मरण

इस अंकमें लिखनेके लिए और क्या बात सूझ सकती है?

पहाड़-जैसे देशबन्धु उठ गये; अखबार उन्हींकी चर्चासे भरे हुए हैं। देशबन्धुकी छोटी-छोटी बातें भी उनमें बहुत चावसे छापी जा रही हैं। 'सर्वेंट'ने विशेषांक ही निकाला है। 'बसुमती' बंगालका सबसे बड़ा समाचारपत्र है। वह विशेषांक निकालनेकी तैयारियाँ कर रहा है। श्रीमती वासन्ती देवीके पास हजारसे ज्यादा शोक-सूचक तार आ चुके हैं; और अभी सुदूर देशोंसे आते जा रहे हैं। जगह-जगह शोक-सभाएँ हो रही हैं। शायद ही ऐसा कोई शहर, जहाँ कांग्रेसका झण्डा फहराता है, बचा होगा जहाँ सभा न की गई हो।

कलकत्ता गत १८ तारीखको पागल ही हो गया था। अंक-शास्त्री कहते हैं कि वहाँ दो लाखसे कम आदमी इकट्ठे न हुए होंगे। इसके अलावा स्त्री-पुरुष रास्तोंपर या ट्रामोंकी छतोंपर खड़े थे, तारके खम्भोंपर चढ़े हुए थे और झरोखोंमें प्रतीक्षामें बैठे थे।

साथ भजन-कीर्तन तो था ही। पुष्पोंकी वृष्टि हो रही थी। शव खुला हुआ था; परन्तु उसपर फूलोंके हारोंका ढेर लगा था।

शवयात्राके आगे स्वयंसेवक फुलवारी लेकर चल रहे थे, जिसमें फूलोंसे सज्जित चरखा रखा था। शवयात्रा स्टेशनसे साढ़े सात बजे चलकर तीन बजे श्मशानमें पहुँची और साढ़े तीन बजे शवका अग्नि-संस्कार आरम्भ किया गया।

श्मशान घाटपर भीड़ उमड़ पड़ रही थी। भीड़के रेलेको रोकना बहुत ही कठिन हो रहा था। मैं समझता हूँ कि यदि मुझे हट्टे-कट्टे लोगोंने अपने कन्धोंपर बिठाकर इस उमड़ती हुई भीड़के आगे ऊँचा न कर दिया होता तो भयंकर दुर्घटना हो जाती।

मुझे दो-तीन सशक्त मनुष्योंने बारी-बारीसे अपने कन्धोंपर उठाया। मैं कन्धोंपर बैठे-बैठे ही लोगोंको आगे बढ़नेसे रोकता और अपनी-अपनी जगह बैठनेके लिए समझाता। लोग जबतक मुझे देख सकते थे तबतक तो बैठे रहते, किन्तु अन्यत्र अशान्तिकी आशंका होनेपर, मेरे उस ओर ले जाये जानेपर, मेरी पीठ फिरते ही फिर खड़े हो जाते। वे सभी आपेसे बाहर हो रहे थे। हजारों आँखें अर्थीपर लगी हुई थीं। जब अग्निदाह शुरू हुआ तब वे अधीर हो उठे। सब बरबस खड़े हो गये और चिताकी ओर अग्रसर हुए। यदि एक भी क्षणका विलम्ब होता तो सबके चितापर आ गिरनेका अन्देशा था। अब क्या करें? मैंने लोगोंसे कहा — 'अब काम पूरा हुआ, अतः आप सब अपने-अपने घर चले जायें', और जो भाई मुझे उठाये हुए थे उनसे कहा 'अब आप मुझे इस भीड़में से निकाल ले चलें।' मैं लोगोंसे पुकार-पुकारकर और इशारेसे कहता गया कि वे मेरे पीछे-पीछे चले आयें। इसका असर बहुत अच्छा हुआ, हजारोंकी वह भीड़ वापस चल पड़ी और इस तरह दुर्घटनासे बच गई। चिता चन्दनकी लकड़ीसे रची गई थी।

ऐसा मालूम होता था मानो लोग वन-भोजके लिए आये हों। गम्भीरता तो सबके चेहरेपर थी, परन्तु ऐसा नहीं मालूम होता था कि वे शोकमग्न हैं। कुटुम्बियोंका और मेरा शोक स्वार्थमय लगता था। हमारा तत्त्वज्ञान खत्म हो गया था, लोगोंका कायम रहा, क्योंकि वे तटस्थ थे। उनमें देशबन्धुके प्रति सम्मानका भाव तो पूरा था; किन्तु उनकी पूजा निःस्वार्थ थी। वे तो इस भारतपुत्रको, अपने इस बन्धुको, प्रमाण-पत्र भेंट करनेके लिए आये थे। वे अपनी आँखोंसे और चेष्टासे ऐसा कहते हुए दिखाई देते थे — 'दास, तुमने बहुत अच्छा काम किया; तुम्हारे जैसे हजारों हों।'

देशबन्धु-जैसे भव्य थे, वैसे ही भले भी थे। मुझे दार्जिलिंगमें इसका पूरा अनुभव हुआ। वहाँ उन्होंने धर्म-सम्बन्धी बातें कीं। जिन बातोंकी छाप उनके ऊपर गहरी पड़ी थी, उनकी चर्चा की। वे धर्मका अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उत्सुक थे। 'दूसरे देशोंमें कुछ भी हो, परन्तु इस देशका उद्धार तो अहिंसाके मार्गसे ही सम्भव है। मैं यहाँके नवयुवकोंको दिखा दूँगा कि हम अहिंसाके मार्गपर चलकर स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं।' 'यदि हम नेक बन जायेंगे तो अंग्रेजोंको नेक बना लेंगे।' इस अन्धकार और दम्भमें मुझे सत्यके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। दूसरेकी हमें आवश्यकता भी नहीं है।' 'मैं तमाम दलोंमें मेल कराना चाहता हूँ। बाधा सिर्फ इतनी ही है कि हमारे लोग भीरु हैं। उनमें एकता करानेके प्रयत्नमें होता यह है कि स्वयं हमारे भीरु बन जानेका भय रहता है। आप जरूर सबको मिलानेकी कोशिश करें और —से[1] मिलें, — पत्रके[2] सम्पादकको समझायें कि मेरी और स्वराज्यदलकी निन्दा करनेसे क्या लाभ? मैंने भूल की हो या अनुचित कार्य किया हो तो वे मुझे बतायें। मैं उनका समाधान न कर सकूँ तो वे मेरी जी-भर कर निन्दा कर सकते हैं।' 'आपके चरखेका रहस्य मैं दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक समझता जाता हूँ। मेरा कन्धा दर्द न करे और कताईके सम्बन्धमें बिलकुल जड़ न होऊँ तो मैं सूत

१ व २. मूलमें यहाँ दो नाम छोड़ दिये गये हैं।

कातना तुरन्त सीख लूँ। एक बार सीखनेपर फिर नियमपूर्वक कातनेमें मेरा जी न ऊबेगा। परन्तु सीखनेमें तो जी ऊब जाता है। देखो न, तार बार-बार टूट जाता है।' 'परन्तु आप ऐसा किस तरह कह सकते हैं कि स्वराज्यके लिए क्या नहीं किया जा सकता?' 'हां, हां, यह तो ठीक ही है। मैं सीखनेसे इनकार कब करता हूँ? मैं तो अपनी कठिनाई बताता हूँ। पूछे न बासन्ती देवीसे कि मैं ऐसे कामोंमें कैसा जड़ हूँ?' बासन्ती देवीने उनकी हां-में हां मिलाई और कहा, "यह बात सच है। उन्हें अपना सन्दूक खोलना हो तो ताली लगाने मुझे आना पड़ता है।" मैंने कहा, 'यह तो आपकी चालाकी है। इस तरह आपने देशबन्धुको अपंग बना रखा है, जिससे उन्हें सदा आपकी खुशामद करनी पड़े और आपका मुँह ताकना पड़े।' हँसीसे कमरा गूँज उठा। देशबन्धु बीचमें ही बोले, 'आप एक महीने बाद मेरी परीक्षा ले। उस समय मैं मोटा सूत कातना न भिलूंगा।' मैंने कहा—'ठीक है। आपके लिए सतीश बाबू शिक्षक भी भेज देंगे। आप पास हो जायँगे तो समझ ले कि स्वराज्य नजदीक आ गया।' ऐसे सब विनोदोंका वर्णन करने लगूं तो अन्त नहीं आ सकता।

कुछ संस्मरण तो ऐसे हैं जिनका वर्णन हो ही नहीं सकता।

फिर भी मैं जिस प्रेमका अनुभव वहां कर रहा था उसकी कुछ झलक यहाँ न दूं तो मैं कृतघ्न माना जाऊंगा। वे मेरी छोटी-छोटी-सी बातकी सँभाल रखते थे। मेवे कलकत्तेसे खुद मँगवाते। दार्जिलिंगमें बकरी या बकरीका दूध मिलना मुश्किल होता है; इसलिए उन्होंने ठेठ तलहटीमें पांच बकरियाँ मँगवाकर अपने घर बाँध रखी थीं। वे मेरी जरूरतकी एक-एक चीजका इन्तजाम किये बगैर न रहते थे। हमारे कमरोंके बीच तो सिर्फ एक दीवार ही थी। वे सुबह होते ही नित्यकर्मसे निवृत्त हो मेरी राह देखने लगते। वे स्वयं चारपाईपर ही बैठते थे, क्योंकि उनकी चारपाई अभी छूटी नहीं थी। वे मेरी पालथी भरकर बैठनेकी आदतसे वाकिफ थे। इसलिए वे मुझे कुर्सीपर नहीं बैठने देते थे और अपने सामने अपनी चारपाईपर ही बैठाते थे। वे गद्देपर भी खास तौरपर कुछ बिछवाते और तकिया भी लगवाते। मैं उनसे विनोद किये बिना न रह सका। मैंने कहा, 'यह दृश्य तो मुझे चालीस बरस पहलेकी याद दिलाता है। जब मेरी शादी हुई थी तब हम दोनों वर और वधू इस तरह बैठे थे। अब यहां पाणिग्रहणकी कसर रहती है।' मेरे इतना कहते ही देशबन्धुकी मुक्त हँसीसे सारा घर गूंज उठा। देशबन्धु जब हँसते तो उनकी आवाज दूरतक गूँज जाती थी।

देशबन्धुका हृदय दिनपर-दिन कोमल होता जाता था। उनके लिए मांस-मछली खाना रिवाजके खिलाफ न था। फिर भी जब असहयोग शुरू हुआ तब उन्होंने मांसाहार, मद्यपान और धूम्रपान तीनों चीजें छोड़ दी थीं। कुछ दिन बाद वे फिर आरम्भ हो गई थीं। परन्तु उनकी वृत्ति इनको छोड़नेकी ही रहती थी। अभी कुछ दिनसे उनका सम्पर्क राधास्वामी सम्प्रदायके एक साधुसे हुआ था। तबसे उनकी निरामिष भोजनकी उत्सुकता बढ़ गई थी। अतः जब मैं दार्जिलिंग गया तब उन्होंने निरामिष भोजनका प्रयोग पुन. प्रारम्भ कर दिया था और जबतक मैं वहाँ रहा, तबतक घरमें मांस-मछली नहीं आने दिया। उन्होंने मुझसे अनेक बार कहा था—'यदि मुझसे हो

सका तो अब मैं मांस-मछली छुऊँगा भी नहीं। वे मुझे पसन्द भी नहीं और मैं समझता हूँ कि उनसे हमारी आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधा आती है। मेरे गुरुने मुझसे खास तौरपर कहा है कि मुझे साधना करनी हो तो मांसाहार छोड़ ही देना चाहिए।'

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-६-१९२५

१८९. काठियावाड़का प्रयोग

इस समय काठियावाड़में जो प्रयोग चल रहा है, उसके सम्बन्धमें सम्मेलनके मन्त्रीने लिखा है:[1]

मैं बंगालमें हुए अनुभवसे देखता हूँ कि यदि काठियावाड़-जैसा प्रयोग बंगालमें करनेके साधन उपलब्ध हो तो वहाँ काठियावाड़की शर्तोंपर पूनियाँ लेनेवाले लोगोंकी भीड़ लग जाए। किन्तु मैं तो भूल गया कि बंगालमें तो पूनियाँ देनेकी जरूरत ही नहीं होगी, क्योंकि वहाँ तो कातनेवाले अपने हाथसे रुई पींज लेते हैं और पूनियाँ बना लेते हैं। वहाँ तो केवल सस्ती रुई मिलनी चाहिए और बुनाईकी दर आधी कर दी जानी चाहिए। वहाँ तो बहुत-से लोग रुई तो रुई कपास लेकर भी सूत कात देनेके लिए तैयार हो जाते हैं, क्योंकि वे स्वयं कपासको ओटना जानते हैं और ओटते भी हैं। काठियावाड़में पूनियाँ तो खप गई हैं; किन्तु इसका परिणाम क्या निकलता है, अभी यह देखना बाकी है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-६-१९२५

१९०. देशबन्धु चिरंजीव हों!

जब लोकमान्यका देहावसान हुआ तब मैं सौभाग्यसे बम्बईमें मौजूद था। जब देशबन्धुके देहका अग्नि-संस्कार हुआ तब भी दैवने मुझपर ऐसी ही कृपा की; अथवा यह कहूँ कि विधाता तबतक रुका रहा जबतक मेरी यात्राका प्रथम चरण पूरा न हो गया, क्योंकि यदि अग्नि-संस्कार एक दिन पहले हो जाता तो मैंने जो दृश्य कलकत्तेमें देखा, मैं उसे न देख पाता।

जिस तरह लोकमान्यके अवसानके समय बम्बई शोकसे पागल हो गई थी, उसी तरह देशबन्धुके समय कलकत्ता शोकसे पागल हो गया था। जैसे वहाँ अगणित स्त्री-पुरुष दर्शन करने, आँसू बहाने और प्रेम प्रदर्शित करने उमड़ पड़े थे वैसे ही वे यहाँ

1. यहाँ नहीं दिया गया है। उसमें काठियावाड़ राजनैतिक परिषद्की खादी उत्पादनकी योजनाकी प्रगतिका विवरण दिया गया था।

भी उमड़ पड़े। उस समयकी तरह इस समय भी एक भी जाति या प्रजाति ऐसी न थी जिसके लोग उनके प्रति आदरभाव दिखानेके लिए जमा न हुए हों। जब गाड़ी स्टेशनपर आई तब वहाँ एक अंगुल-भर भी जगह खाली नहीं थी। जैसे लोकमान्यके मृतदेहको कन्धा देनेके लिए लोग एक-दूसरेकी स्पर्धा करते थे वैसे ही वे इस समय भी इसके लिए अधीर थे।

दोनों समय जनताका अपना राज्य हो गया था। लोग पुलिसके नियन्त्रणमें नहीं रहे थे; बल्कि कहना चाहिए पुलिस स्वेच्छासे लोगोंके नियन्त्रणमें आ गई थी। सरकारी अमल जान-बूझकर मुल्तवी कर दिया गया था, और लोगोंका अमल चल रहा था। उस दिन लोगोंने जो चाहा वह किया। जिस बातको देशबन्धु अपनी जीविताबस्थामें करना और देखना चाहते थे, उसे लोगोंने उनके परलोक गमनके समय कर दिखाया था।

यह घटना क्या कोई छोटा-मोटा पदार्थ-पाठ हमें सिखाती है? प्रेमपाश क्या नहीं कर सकता? लोगोंने उस दिन भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी — सबको भुला दिया था, और उस कष्टको सहनेके लिए उनसे किसीको प्रार्थना नहीं करनी पड़ी थी।

किसी छत्रपतिके देहान्तके समय भी इस तरह जन-समुद्र नहीं उमड़ता। जिन्हें समाज संन्यासी मानता है, उनके देहान्तपर भी लोग ध्यान नहीं देते, अखबारोंमें लेख नहीं लिखते और उनके बारेमें तार नहीं भेजते; परन्तु किस धर्मके अनुसार यहाँ छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, राजा-रंक और हिन्दू-मुसलमान बिना बुलाये पलक मारते ही एकत्र हो गये? वह धर्म है राष्ट्रधर्म। जो मनुष्य इस धर्मका अवलम्बन करता है, आज लोग उसीको धर्मवान माननेके लिए तैयार हैं और जो मनुष्य इसी एक धर्मका पालन करता है वे उसके दोष भी भूल जानेके लिए तैयार हैं। इसमें एक रहस्य है। लोग ऐसा मूर्खतावश नहीं करते। निर्विकार तो एक ईश्वर है। मनुष्य-मात्रमें दोष होना सम्भव है। पर मनुष्य भी यदि पूरी तरह स्व-धर्मका पालन करे तो उसके दोष छिप जाते हैं और अन्तमें उनका क्षय हो जाता है।

इस समय राष्ट्रधर्म ही धर्म हो गया है, क्योंकि उसके बिना अन्य धर्मोंका पालन ही असम्भव है। आज राजसत्ताने सर्वत्र लोकजीवनके प्रत्येक अंगको आच्छादित कर लिया है। जहाँ राजसत्ता लोकसत्ता है, वहाँ लोग कुल मिलाकर सुखी हैं। जहाँ राजसत्ता प्रजाके प्रतिकूल है, वहाँ लोग दुखी हैं, निःसत्व हैं और धर्मके नामपर अधर्मका आचरण करते हैं, क्योंकि भयके वश रहनेवाला मनुष्य धर्माचरण कर ही नहीं सकता। इस महाभयसे मुक्त होना अर्थात् आत्मदर्शन करनेका पहला पाठ सीखना यही राष्ट्रधर्म है। राष्ट्रप्रेमी हमें क्या शिक्षा दे रहे हैं? आप लोग चक्रवर्तीसे भी न डरें। आप मनुष्य हैं। मनुष्यका धर्म है कि वह ईश्वरके सिवा किसीसे न डरे। उसे न तो पंचम जॉर्ज डरा सकते हैं और न उनके प्रतिनिधि। लोकमान्यने राजदण्डका भय सर्वथा त्याग दिया था। इस कारण क्या सामान्य जन और क्या पण्डित, सभी उन्हें पूजते थे; क्योंकि उनसे उन्हें बल मिलता था। देशबन्धुने भी राजसत्ताका डर बिलकुल छोड़ दिया था। उनके नजदीक वाइसराय और दरबान दोनों एक-जैसे थे। उन्होंने अन्तःचक्षुओंसे देख लिया था कि अन्ततः दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार

वाइसरायसे डरना कायरता है, उसी तरह दरबानको डराना भी कायरता है। इसमें सूक्ष्म आत्मदर्शन आ जाता है। यही राष्ट्रधर्म है। इस कारण लोग जाने या अनजाने, अनिच्छासे भी, राष्ट्रधर्मके पालनकर्ताओंको पूजते हैं। लोकमान्य ब्राह्मण थे। उनका धर्म-ग्रन्थोंका ज्ञान पण्डितोंके लिए भी गर्वनाशक था। परन्तु उनकी पूजा की जाती थी, इसका कारण उनका वह ज्ञान न था। देशबन्धु ब्राह्मण नहीं थे। वे वैद्य समाजमें जन्मे थे। परन्तु लोगोंको उनके वर्णसे कोई सरोकार न था। देशबन्धुको संस्कृतका ज्ञान नहीं था। उन्होंने धर्मग्रन्थोंका अध्ययन भी नहीं किया था। उन्होंने सिर्फ राष्ट्रधर्मका पालन किया था। उन्होंने निर्भयता साधी थी। इस कारण उनके आगे शास्त्रज्ञ भी झुकते थे। इसीलिए इस अविस्मरणीय दिन लोगोंके साथ उन्होंने भी अपने आँसू बहाये। राष्ट्रधर्मका अर्थ है — व्यापक प्रेम। वह विश्व-प्रेम नहीं है; परन्तु उसका एक बड़ा भाग है। वह प्रेमका धवलगिरि नहीं; परन्तु प्रेमका दार्जिलिंग है। वहाँसे धवलगिरिकी सुवर्णकान्ति दिखाई देती है, और देखनेवाला मनमें सोचता है — यदि प्रेमका दार्जिलिंग सुहावना है तो वह प्रेमका धवलगिरि जो यहाँ मेरे सामने जगमगा रहा है, कितना सुहावना होगा? राष्ट्रप्रेम विश्वप्रेमका विरोधी नहीं, बल्कि उसका नमूना है। राष्ट्रप्रेम अन्तमें मनुष्यको अवश्य ही विश्वप्रेमके शिखरपर ले जाता है। इसीलिए लोग राष्ट्रप्रेमीकी बलिहारी जाते हैं। लोगोंने कुटुम्ब प्रेमका स्वाद तो चख लिया है! इसलिए उनके हृदयमें उसके लिए मोह नहीं है। वे ग्राम-प्रेमको कुछ-कुछ समझते हैं। परन्तु राष्ट्रप्रेमको तो लोकमान्य या देशबन्धु-जैसे ही समझ सकते हैं। चूँकि लोग खुद भी ऐसा बनना चाहते हैं, वे इसीलिए उन्हें पूजते हैं।

देशबन्धुकी उदारता असीम थी। उन्होंने लाखों कमाये और लाखों खरचे। उन्होंने किसीको भी रुपयेकी सहायता देनेसे इनकार नहीं किया; यहाँतक कि कर्ज करके भी सहायता की। उन्होंने गरीबोंके मुकदमे बिना फीस लिए लड़े। कहते हैं कि उन्होंने श्रीयुत अरविन्द घोषके मुकदमेमें नौ महीनेतक परेशानी उठाई। अपनी गाँठसे रुपये खरचे और एक पाई भी फीस नहीं ली। इस उदारतामें उनके राष्ट्र-प्रेमकी अभिव्यक्ति है।

वे मुझसे भी लड़े; परन्तु क्या मुझे परेशान करने या गिरानेके लिए? नहीं, वे लड़े तो देशसेवाके लिए और उसीके सिलसिलेमें। जो वाइसरायसे नहीं डरता था वह मुझसे क्या डरता? उनकी विचारसरणी थी 'यदि सगे भाईका भी काम मुझे राष्ट्र-प्रगतिके खिलाफ दिखाई देगा तो मैं उसका भी विरोध करूँगा।' सबकी विचार-सरणी ऐसी ही होनी चाहिए। हमारा आपसी विरोध सगे भाइयोंके विरोधकी तरह था। हम दोनों ही एक-दूसरेसे अलग होना नहीं चाहते थे। चाहते तो वह राष्ट्र-प्रेमकी न्यूनता होती। इस कारण यद्यपि ऐसा दिखता था कि हम एक-दूसरेसे अलग हो रहे हैं फिर भी हम एक-दूसरेके नजदीक आते जा रहे थे। यह हमारे हृदयकी परीक्षा थी। देशबन्धु इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये किन्तु मुझे अभी उत्तीर्ण होना है। अभी मुझे देशबन्धु और उनके अन्य साथियोंसे वह प्रेम निभाना है। यदि मैं उसमें विफल हो जाऊँ तो आप मुझे परीक्षामें अनुत्तीर्ण समझें।

देशबन्धुकी पिछले तीन-चार मासकी प्रगति अद्भुत थी। उनकी उग्रताका अनुभव तो बहुतोंने किया होगा; किन्तु उनकी नम्रताका अनुभव मुझे फरीदपुरसे[1] जो होने लगा सो बढ़ता ही गया। उनका फरीदपुरका भाषण बिना विचारे नहीं लिखा गया था। वह विचारोंकी परिपक्वताका सुन्दर पुष्प है। मैंने उसमें भी इस परिपक्वताकी प्रगति होती हुई देखी है और यह प्रगति दार्जिलिंगमें चरम अवस्थाको पहुँच गई थी। मैं इन पाँच दिनोंके सस्मरणोंका वर्णन करते हुए थकता ही नहीं हूँ। उस समय उनके हर कार्यसे, हर बातसे, प्रेम ही प्रेम टपकता था। उनका आशावाद बढ़ता जाता था। वे अपने प्रतिपक्षियोंपर कटाक्ष कर सकते थे, परन्तु उन पाँच दिनोंमें मुझे उसका तनिक भी अनुभव न हुआ। उलटा उन्होंने बहुतोंके सम्बन्धमें जो बातें कहीं मैंने उनमें से एकमें भी तनिक भी कटुता नहीं देखी। सर सुरेन्द्रनाथ उनका विरोध बराबर कर रहे थे। फिर भी श्री दासको उनके प्रति अपने व्यवहारमें मिठास ही बरतनी थी। उन्हें उनके हृदयपर विजय प्राप्त करनी थी। वे मुझसे यही काम लेना चाहते थे। उनकी सलाह थी कि मैं जितनोंको मिला सकूँ उतनोंको मिलानेकी कोशिश करूँ।

अब आगे लडाई किस प्रकार लड़ें, स्वराज्य-दलको क्या करना चाहिए और उसमें चरखेका क्या स्थान है, इत्यादि बातें भी विस्तारसे हुईं। हमने बंगालके लिए एक योजना भी तैयार की। शायद वह कभी कार्यान्वित की जाये; किन्तु कार्यकर्त्ता कहाँ हैं?

मैं दार्जिलिंगसे हलका मन लेकर चला था। मेरा भय दूर हो गया था। मुझे अपना मार्ग—स्वराज्यका मार्ग स्पष्ट दिखाई दे रहा था। किन्तु अब क्षितिजपर बादल घिर आये हैं। लोकमान्यके देहावसानके समय मैं चिन्तित हो गया था। तब एकसे प्रार्थना करनेके बजाय अनेकोंसे प्रार्थना करनेकी स्थिति आ गई थी। मैं लोकमान्यको अपना दुःख सुनाकर उनसे उसकी निवृत्ति करा सकता था। उसके बजाय अब मुझे अनेकोंके सामने दुःख रोना था; किन्तु फिर भी मैं जानता था कि वे उसे दूर न कर सकेंगे और अब ऐसा समय आ गया है जब उलटे मुझे उनके आँसू पोंछने होंगे।

मैं देशबन्धुके अवसानसे अधिक विपत्तिमें पड़ गया हूँ। देशबन्धुका अर्थ था सारा बंगाल। मेरे लिए उनकी सही मिलनेका अर्थ था मेरे हाथ दर्शनी हुण्डीका आना। यहाँ-तक तो दोनोंके वियोगका दुःख बराबर है। परन्तु लोकमान्यके अवसानके समय रास्ता सीधा था। लोगोंके मनमें नई आशाएँ थी। उन्हें अपनी शक्ति आजमानी थी और नये प्रयोग करने थे। तब हिन्दू और मुसलमान भी एक हो गये मालूम होते थे।

परन्तु अब? अब तो सिरपर आकाश है और पाँव तले धरती। नये प्रयोग मेरे पास हैं नहीं। हिन्दू और मुसलमान तो लड़नेकी तैयारियाँ कर रहे हैं। ऐसा लगता है मानो लोग धर्मोंके लिए राष्ट्रधर्मको छोड़ बैठे हों। ब्राह्मण और अब्राह्मण भी लड़ रहे हैं। सरकारने मान लिया है कि वह अब हिन्दुस्तानमें मनमानी कर सकती है। लगता है मानो सविनय-अवज्ञा दूर चली गई है। ऐसे समयमें जब एक

१. यहाँ १९२५ में २ से ४ मईतक चित्तरंजन दासकी अध्यक्षतामें बंगाल प्रान्तीय कृषि परिषद् हुई थी।

मामूली योद्धाका भी उठ जाना खलता है; दस हाथवाले दासका उठ जाना तो असह्य ही हो गया है।

फिर भी मैं ठहरा आस्तिक; इससे मेरी हिम्मत नहीं टूटी है। ईश्वर जैसा चाहे वैसा खेल खेल सकता है। उसका क्या दुःख और क्या सुख? जिन घटनाओंपर अपना नियन्त्रण नहीं है वे अनुकूल या प्रतिकूल कोई भी रूप लें, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। मुझे अपने कर्त्तव्यका ज्ञान है; भले ही वह गलत हो। जबतक वह मुझे उचित मालूम होता है तबतक यदि मैं उसका पालन करता हूँ तो मैं अपनी जिम्मेवारीसे मुक्त हो जाता हूँ। मैं ऐसे तत्त्वज्ञानका सहारा लेकर अपने मनको आश्वासन दे रहा हूँ। मेरा स्वार्थ मुझे देशबन्धुके वियोगको भूलने ही नहीं देता।

परन्तु देशबन्धुके लिए मृत्यु ही कहाँ है? देशबन्धु दासका देहावसान ही तो हुआ है। इससे क्या उनके गुणोंका अन्त हो सकता है? उनके गुण तो मौजूद ही हैं। हम उन गुणोंको अपना लें तो देशबन्धु हम सबके भीतर जीवित ही हैं। जिस मनुष्यने इस संसारकी सेवा की हो वह नहीं मरता। राम और कृष्ण चले गये, यह कहना ही मिथ्या है। राम और कृष्ण तो इस समय भी अपने असंख्य पुजारियोंके हृदयोंमें जीवित हैं। इसी तरह हरिश्चन्द्र भी। हरिश्चन्द्रका अर्थ उनका शरीर नहीं, उनका सत्य है। वे सत्यके अनेक पुजारियोंके भीतर जीवित हैं। यही बात देशबन्धुके सम्बन्धमें भी सत्य है। देशबन्धुका क्षणिक देह गया, क्या इससे उनके सेवाभाव, उदारता, देशप्रेम और निडरता आदि गुण भी चले गये? थोड़े या बहुत अंशमें ये गुण समाजमें बढ़ते ही जायेंगे।

इसलिए देशबन्धु मर जानेपर भी जीवित हैं। जबतक हिन्दुस्तान है तबतक देशबन्धु भी हैं ही। इसीलिए आइए, हम कहें: "देशबन्धु चिरंजीव हों!"

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-६-१९२५

१९१. गंगा-स्वरूप बासन्ती देवी

मैंने कुछ वर्ष पूर्व स्वर्गीया रमाबाई रानडेसे अपनी भेंटका वर्णन[1] किया था। जहाँतक मुझे उनका परिचय मिला है, वे एक आदर्श विधवा थीं।

इस बार मेरे नसीबमें एक महान् वीरकी पत्नीके वैधव्यकी आरम्भिक दशाका चित्र देना बदा है।

वासन्ती देवीसे मेरा सामान्य परिचय १९१९ से था; किन्तु उनसे मेरा प्रगाढ़ परिचय १९२१ में हुआ था। मैंने उनकी सरलता, चतुराई और उनकी अतिथि-सेवाकी बातें बहुत सुनी थीं और मुझे उनका कुछ अनुभव भी हुआ था। दार्जिलिंगमें मेरा सम्बन्ध जैसे देशबन्धुसे बढ़ा था वैसे ही वासन्ती देवीसे भी बढ़ा था, किन्तु उनके विधवा हो जानेके बाद तो उनसे मेरा यह परिचय बहुत ही बढ़ गया है। कहा जा

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ४६३-६४।

सकता है कि वे जब दार्जिलिंगसे श्री दासका शव लेकर कलकत्ता आईं तभीसे मैं उनके पास रहा हूँ। उनके विधवा होनेके बाद उनसे मेरी पहली मुलाकात उनके दामाद-के घर हुई थी। वे बहुत-सी स्त्रियोंसे घिरी बैठी थीं। वे सधवा थीं तब मेरे कमरे-में पहुँचनेपर वे स्वयं सामने आती और मुझसे बात करती थी। किन्तु अब विधवा होनेपर वे मुझसे क्या बात करती? वे काठकी पुतलीकी तरह बहुत-सी बहनोंमें स्तब्ध बैठी थीं। मेरी आँखें एक मिनटतक तो उन्हें ढूँढ़ती ही रहीं। माँगमें सिंदूर, ललाटपर कुंकुमका टीका, मुँहमें पान, हाथमें चूड़ियाँ और साड़ीपर लेस और हँस-मुख चेहरा — जब मुझे इनमें से एक भी चिह्न न दिखा तब मैं बासन्ती देवीको कैसे पहचानता? अतः जहाँ उनके होनेका अनुमान लगाया था, मैं वहाँ जाकर बैठ गया। और उनका मुँह ताकने लगा। उन्हे देखना असह्य हो गया। पहचानमें तो वे आ गयी; किन्तु मुझे अपना रोना रोकना मुश्किल हो गया। ऐसी अवस्थामें छातीको पत्थर बनाकर मैं आश्वासन कैसे देता?

उनके मुखपर सदाकी भाँति सहज हास्य आज कहाँ था? मैंने उन्हें सान्त्वना देने, प्रसन्न करने और उनसे कुछ शब्द पानेके बहुत प्रयत्न किये। तब कही बहुत समय बाद मैं कुछ सफल हुआ।

बासन्ती देवी कुछ मुस्कराईं।

मुझे कुछ हिम्मत हुई और मैंने कहा,

'आपको रोना नही चाहिए। आप रोयेंगी तो सब रोयेंगे। मोना (बड़ी लड़की) बड़ी मुश्किलसे चुप की जा सकी है। बेबी (छोटी लड़की) की हालत तो आप जानती ही हैं। सुजाता (पुत्रवधू) फूट-फूटकर रो रही थी; वह शायद अब चुप हो गई है। आप दया करें। हमें आपसे तो अभी बहुत काम लेना है।'

उस वीरांगनाने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया: 'मैं नहीं रोऊँगी। क्या करूँ, मुझे रोना आता ही नहीं।' मैं इसका मर्म समझ गया और उससे मुझे संतोष हो गया। रोनेसे शोकका भार हलका होता है। इस विधवा बहनको भार तो हलका नहीं करना था, बल्कि वहन करना था; फिर वे रोती क्यों? अब मैं कैसे कह सकता था — "लो चलो, हम भाई और बहन जी-भर कर रो लें और अपना शोक कम कर लें?"

हिन्दू विधवा दुःखकी प्रतिमा है। उसने ससारके समस्त दुःखका भार अपने ऊपर ले लिया है। उसने दुःखको सुख मान लिया है और उसे अपना धर्म बना लिया है।

बासन्ती देवी सब तरहके भोजन करती थीं। १९२० तक तो उनके यहाँ छप्पन भोग तैयार होते थे और सैकड़ों लोग भोजन करते थे। वे पानके बिना एक मिनट नहीं रह सकती थीं और अपनी पानकी डिबिया सदा पास रखती थी।

किन्तु अब उनकी दशा यह थी, शृंगार-मात्रका त्याग, पानका त्याग, मिष्टान्नोंका त्याग और मांस-मछलीका भी त्याग। शेष था केवल पतिका ध्यान और परमात्माका ध्यान।

मै कितनी ही बहनोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे अपना शृंगार कम करें। बहुत-सी बहनोसे कहता हूँ कि वे व्यसनोंको छोड़ दें। किन्तु कोई विरली ही छोड़ती है।

परन्तु विधवा होनेपर? हिन्दू स्त्री विधवा होते ही अपने व्यसनों और शृंगारको ऐसे ही छोड़ देती है, जैसे साँप केंचुलीको छोड़ देता है। इसके लिए उसे न तो किसीके कहने-सुननेकी आवश्यकता है और न किसीकी सहायताकी। रिवाज! तुम क्या नहीं करा सकते?

इस दुःखको सहन करना धर्म है या अधर्म? हमने यह बात अन्य धर्मोंमें तो देखी नहीं। इस बारेमें हिन्दू-धर्मशास्त्रियोंने कहीं-कुछ भूल तो नहीं की? मुझे तो वासन्ती देवीको देखकर इसमें भूल दिखाई नहीं देती, बल्कि धर्मकी शुद्ध भावना दिखाई देती है। वैधव्य हिन्दू-धर्मका शृंगार है। धर्मका भूषण वैराग्य है, भोग-विलास नहीं, फिर दुनिया और कुछ कहे तो कहती रहे।

परन्तु हिन्दू-शास्त्र किस वैधव्यका गुण-कीर्तन और स्वागत करते हैं? उस पन्द्रह वर्षकी मुग्धाके वैधव्यका नहीं, जो विवाहका अर्थ भी नहीं जानती। वैधव्य बाल-विधवाओंके लिए धर्म नहीं है, बल्कि अधर्म है। कामदेव वासन्ती देवीको स्वयं आकर ललचायें तो वह भस्म हो जाये। वासन्ती देवीके शिवकी तरह तीसरी आँख है। परन्तु पन्द्रह वर्षकी बालिका वैधव्यकी महिमाको क्या समझ सकती है? उसके लिए तो वह अत्याचार ही है। मुझे बाल-विधवाओंकी वृद्धिमें हिन्दू-धर्मकी अवनति दिखाई देती है। मैं वासन्ती देवी-जैसी नारीके वैधव्यमें शुद्ध धर्मका पोषण देखता हूँ। वैधव्य सब तरह, सब जगह और सब समय अनिवार्य सिद्धान्त नहीं है। वह उसी स्त्रीके लिए धर्म है जो उसका पालन कर सके।

रिवाजोंके कुएँमें तैरना तो अच्छा है, किन्तु उसमें डूब मरना आत्महत्या है।

जो नियम स्त्रियोंके लिए हो वही पुरुषोंके लिए भी होना चाहिए। रामने यह व्यवहारमें कर दिखाया। वे सती सीताका त्याग न सह सके और वे अपने किये त्यागसे स्वयं ही जले। जबसे सीता गईं तबसे उनका तेज घट गया। उन्होंने सीताकी स्थूल देहका तो त्याग किया, किन्तु उसे अपने हृदयकी स्वामिनी बनाकर रखा। उस दिनसे उन्हें न तो शृंगार भाया और न दूसरा वैभव-विलास ही; और वे कर्त्तव्य समझकर तटस्थ वृत्तिसे राज्यकार्य करते हुए शान्त रहे।

जबतक पुरुषवर्ग वासन्ती देवीकी तरह कष्ट नहीं सहता और विविध भोग-विलासोंको नहीं छोड़ता तबतक हिन्दू-धर्म अधूरा है। "एकको मधु और दूसरेको माहुर", ईश्वरके दरबारमें ऐसा उलटा न्याय नहीं हो सकता और नहीं होगा। परन्तु आज तो हिन्दुओंमें पुरुषोंने इस ईश्वरीय कानूनको उलट दिया है। उन्होंने स्त्रीके लिए वैधव्यका विधान करके अपने लिए श्मशान-भूमिमें ही दूसरे विवाहकी योजनाका अधिकार रखा है।

वासन्ती देवीने अबतक किसीके सामने आँसूकी एक बूँदतक नहीं गिराई है। फिर भी उनके चेहरेपर खुशीकी चमकका कहीं पता नहीं है। उनकी मुखाकृति देखकर लगता है मानो वे लम्बी बीमारीसे उठी हों। मैंने यह हालत देखकर उनसे निवेदन किया कि वे मेरे साथ कुछ समयके लिए बाहर घूमने चलें। वे मेरे साथ मोटरमें तो बैठ गईं, परन्तु बोलती क्या? मैंने बहुत-सी बातें चलाईं। वे उन्हें सुनती रहीं, परन्तु उन्होंने उनमें भाग नहीं लिया। वे घूमने तो गईं, परन्तु पछताईं। उन्हें सारी रात

नींद नहीं आई। 'जो भोग मेरे पतिको अतिप्रिय था वह आज मुझ अभागिनीने भोगा। क्या यह कोई शोक मनाना है?' उनकी सारी रात ऐसे ही विचारोंमें गई। भोंवल (उनका लड़का) मुझे यह बात बता गया। आज मेरा मौन-दिवस है। मैंने कागजपर लिखा है—'हमें माताजीके दिमागमें से यह पागलपन निकालना ही होगा। अपने प्रियतमको प्रिय लगनेवाली बहुत-सी बातें हमें उसके वियोगके बाद करनी ही पड़ती हैं। माताजी विलासके लिए मोटरमें नहीं बैठी थीं, केवल आरोग्यके लिए बैठी थीं। उन्हें स्वच्छ हवाकी बहुत जरूरत थी। हमें उनका बल देना है और इस तरह उनके शरीरकी रक्षा करनी है। पिताजीके कामको चमकाने और बढ़ानेके लिए हमें उनके शरीरकी आवश्यकता है। तुम यह बात माताजीसे कह देना।'

भोंवलने कहा, 'माताजीने तो मुझसे कहा था कि आपसे यह बात ही न कही जाये। परन्तु मुझसे रहा नहीं गया, मैं इसलिए यहाँ आया हूँ। अभी तो यही उचित मालूम होता है कि आप उन्हें मोटरमें बैठनेके लिए न कहें।'

बेचारा भोंवल! जो किसीकी मानता ही न था आज बकरी-जैसा बन गया है! प्रभु, उसका कल्याण करें।

पर इस साध्वी विधवाका क्या? उन्हें वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी मुझे असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खौलते तेलके कड़ाहेमें पड़ा नाचता था और मुझ-जैसे दूरसे देखनेवाले उसके दुःखकी कल्पना करके काँपते रहे। सतियो! तुम अपने इस दुःख-सहनमें दृढ़ रहना! वह दुख नहीं, सुख है। तुम्हारा पुण्य स्मरणकर बहुत-से पार उतर चुके हैं और बहुत-से पार उतरेंगे।

वासन्ती देवीकी जय!

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-६-१९२५

१९२. दोष किसका ?

एक स्वयंसेवक लिखता है:[1]

मुझे इन शब्दोंकी सचाईका अनुभव यहाँ बंगालमें सब जगह होता है। हमने गाँवोंमें जानेका विचार अभी-अभी किया है। पहले तो लोग गाँवोंके लोगोंसे चीजें लेनेकी नीयतसे वहाँ जाते थे। उनको कुछ देनेके विचारसे उनके पास जाना तो अभी शुरू हुआ है। इतने कम समयमें हम उनका विश्वास कैसे प्राप्त कर सकते हैं? कई बार तो बेटेको बापका विश्वास प्राप्त करनेमें वर्षों लग जाते हैं। हमें अपनी खोई हुई साख फिर जमानी है। इसलिए अधीर होनेसे कुछ हासिल न होगा। कुछ लोग सेवाके नाममें अपना उदर-निर्वाह करते हैं। गाँवोंके लोगोंके पास अनुभवके सिवा

१. यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। इसमें लेखकने अपने अनुभवके आधारपर कहा है कि यदि ग्रामीण-जन कार्यकर्ताओंका विश्वास नहीं करते तो इसमें दोष कार्यकर्ताओंका ही है।

ऐसा दूसरा कौन-सा साधन है, जिससे वे ऐसे लोगों और सच्चे कार्यकर्त्ताओंमें अन्तर कर सकें? इसीलिए स्वयंसेवकोंको अपने भीतर धीरज, शान्ति, स्वार्थहीनता आदि गुणोंका विकास करना पड़ता है। जनताके पास तो अनुभवके सिवा कोई दूसरा ज्ञान नहीं होता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-६-१९२५

१९३. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको

२९ जून, १९२५

प्रिय चार्ली,

तुम्हारा पत्र और 'फादर फरगिव देम' अनुच्छेदपर तुम्हारा लेख मिला। तुम्हारे लेखका मैं इस्तेमाल कर सकूँ उससे पहले मेरे पास मूल पत्रका आ जाना जरूरी है। कृपया उसे खोजकर भेजो। मुझे जुलाईके अन्ततक बंगालमें ही रहना होगा। आशा है कि बड़े साहबका[1] कष्ट कुछ हलका हुआ होगा। उन्हें मेरा स्नेह-सन्देश दें और कहें कि मैं उनकी बराबर याद करता रहता हूँ।

तुम्हारा,
मोहन

श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज
द्वारा प्रिंसिपल
सु० रुद्र
सोलन
शिमला हिल्स

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०४९) से।

१. अनुमानतः सुशीलकुमार रुद्र, जो बीमार थे।

१९४. पत्र : देवदास गांधीको

सोमवार [२९ जून, १९२५][1]

चि० देवदास,

यदि मैं यह कार्ड न लिखूं तो फिर शायद पत्र ही न लिख सकूँ। तुम्हारा सुन्दर पत्र मुझे मिल गया है। उसकी शैली और गुजराती दोनों बहुत अच्छी हैं। अब तुम 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में कुछ लिखना आरम्भ कर दो तो अच्छा हो। मैं तो धनसंग्रहमें व्यस्त हूँ। कृष्णदासको पत्र नहीं मिला। वा कातती है, यह बहुत अच्छी बात है। ओता गांधीकी सारी सन्तानके नाम-धाम तो मैं भी नही बता सकता। तुमने इस सम्बन्धित सामग्रीका संग्रह आरम्भ किया है, सो ठीक ही है। उत्तमचन्द बापाके पुत्र तो छः थे, यह सुना है। खुशालभाई अधिक बता सकेंगे। बालगंगाधर आ गया, इससे मुझे प्रसन्नता हुई है। उससे यह कह देना। उसके सम्बन्धमें मुझे भय तनिक भी नहीं है। कल्याणकृतकी दुर्गति होती ही नहीं।[2] बालकृष्णकी भूलें भी आखिरकार उसके विकासमें ही सहायक हैं।

मैं देशबन्धुका श्राद्ध यथोचित रूपमें कर रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २०४५) की फोटो-नकलसे।

१९५. पत्र : जमनालाल बजाजको

सोमवार [२९ जून, १९२५][3]

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने इस बार अलवरके सम्बन्धमें कुछ अलग ढंगसे लिखा तो है। मुझे आशंका है कि वहाँ जानेके सम्बन्धमें कोई निश्चय करनेमें कुछ समय लगेगा। ऐसा लगता है कि मैं तो अगस्त शुरू होनेके पहले तो नहीं ही जा सकूँगा। मैं जुलाईका आखिरी हफ्ता आश्रममें ही बिताना चाहता हूँ। और उसके बाद भ्रमण करूँगा। तुम १६ तारीखको तो आ ही रहे हो। मैंने वहाँसे साबरमती तार दिया था, वह तुम्हें मिल गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८५४) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरमें कलकत्ता, ३० जून, १९२५ है। सोमवार २९ जूनको था।

२. गीता, अध्याय ६-४०।

३. डाककी मुहरमें कलकत्ता, ३० जून, १९२५ है।

१९६. पत्र : मणिबहन पटेलको

[कालीघाट
कलकत्ता]
सोमवार [२९ जून, १९२५][1]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिला। पिताकी सेवा करनेके प्रसंग ढूंढ़ती रहना। वस्तुतः वे ढूंढ़ने नहीं पड़ते। फिर भी तुमने जो लिखा है सो मेरी समझमें आ गया है। डाह्याभाई 'नवजीवन' में जाता ही है तो उसे वहाँ चित्त लगाकर काम करना चाहिए। स्वामीका[2] अनुशासन माननेमें बहुत लाभ है। वह सुन्दर तालीम है। वे मजदूरीका ही काम क्यों न सौंपे, वह उसे भी दिल लगाकर करे। मैं कभी थोड़े वक्तके लिए आ जाऊँगा, परन्तु कब आ सकूँगा यह तो ईश्वर ही जाने। बापूके स्वास्थ्य-समाचार मुझे देती रहना। बापूके अंग्रेजी हिज्जे कच्चे हैं; अतः तुम्हारे भी वैसे ही रहें, यह क्या जरूरी बात है? बापके गुणोंका अनुसरण किया जाता है, दोषोंका कदापि नहीं।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो — ४ : मणिबहेन पटेलने

१९७. तार : सुधीर रुद्रको[3]

कलकत्ता
३० जून, १९२५

आपके दुःखमें मेरा हृदय और मेरी दुआएँ आपके साथ हैं। ईश्वर आपको क्षति सहनेकी भरपूर शक्ति देगा। स्नेह।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ६०५०) से।
सौजन्य : श्रीमती रुद्र, इलाहाबाद

१. डाकघर-मुहरके अनुसार।
२. स्वामी आनन्दानन्द।
३. यह तार गांधीजीने प्रोफेसर सुशील कुमार रुद्रके देहान्तपर कलकत्तासे ३० जूनको भेजा था।

१९८. भाषण : यूनिवर्सिटी इन्स्टीटयूट, कलकत्तामें[1]

३० जून, १९२५

महात्माजीने . . . देशबन्धुकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि देशबन्धु जीवन-भर एक सरापा योद्धा ही रहे। उन्होंने अनेक संघर्षोंमें भाग लिया और प्रतिद्वन्द्वियोंको कभी नहीं बख्शा। किन्तु जहाँतक मुझे याद है, उन्होंने कभी किसीकी परेशानीका अनुचित लाभ नहीं उठाया। दार्जिलिंगमें उनके सहवासमें बीते मेरे अन्तिम पाँच दिन कभी भुलाये नहीं जा सकते, क्योंकि उन दिनोंमें मैं उनके जीवनके श्रेष्ठ गुणोंको जान सका था। उन्हें अपने किसी विरोधीके प्रति कोई द्वेष नहीं था। वे अपने देशके हितके काममें लगे हुए हर व्यक्तिसे सहयोग करनेको सदैव तत्पर रहते थे। चित्तरंजन दासने समूचे देशको अपने सच्चे प्रेमसे जीत लिया था; इसीलिए उन्हें देशबन्धुकी उपाधिसे विभूषित किया गया था। उन्हें यह उपाधि देशवासियोंने देशके हितमें किये गये उनके महान् त्यागके प्रति आदरभाव व्यक्त करनेके उद्देश्यसे दी थी। पूर्वी बंगालके अपने दौरेमें मैं हजारों युवा और वृद्ध लोगोंके सम्पर्कमें आया। उनकी भावनाओंसे मैंने समझ लिया है कि उनके दिलोंमें देशबन्धु दासके प्रति कितना स्नेह, प्यार और आदर है। मेरे पास अब भी रोजाना विद्यार्थियोंके ऐसे सैकड़ों पत्र आ रहे हैं जिनमें उनकी पवित्र और प्रेमपूर्ण स्मृतिके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित हुआ करती है। देशबन्धु बंगालके नवयुवकोंके लिए पिता-तुल्य थे। उनकी छत्रछाया प्रत्येक नवयुवकको संरक्षण प्रदान करती थी। मेरा तो खयाल है कि उनकी मृत्युसे सम्पूर्ण विद्यार्थी समाजने अपना सच्चा नेता खो दिया है। यदि ईश्वर उन्हें कुछ दिन और जीवित रखता तो वे नवयुवकोंको उनके लक्ष्यतक पहुँचानेमें उनके मार्गदर्शक बन सकते थे। उनकी उदारता और विद्यार्थियोंके प्रति उनका प्रेम भी असीम था। मैं यहाँ भारतमाताके उस महान् सपूतका गुणगान करने नहीं आया हूँ बल्कि मैं चाहता हूँ कि बंगालके नवयुवक यह समझकर कि देशबन्धुने उनके लिए कितना-कुछ किया है, उस सबके लिए- उनके कृतज्ञ हों। मुझे विश्वास है कि बंगालके नवयुवक देशबन्धु दासके लिए समुचित स्मारक खड़ा करनेमें मेरी मदद करेंगे। मैं यह नहीं चाहता कि आप लोग अपना पैसा ही मुझे दें, मैं तो यह भी चाहता हूँ कि आप लोग अपने अभिभावकों, मित्रों और सम्बन्धियोंके पास जायें और इस कामके लिए उनसे धन माँगें। महात्माजीने अपने भाषणके अन्तमें कहा कि बंगालके नवयुवकों-

१. गांधीजीकी अध्यक्षतामें हुई इस सभामें विद्यार्थी और कलकत्ताके प्रमुख नागरिक बहुत बड़ी संख्यामें शामिल हुए थे।

को चाहिए कि वे स्वराज्य-प्राप्तिकी खातिर देशबन्धुके अधूरे कामको पूरा करनेका प्रयत्न करें।[1]

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १-७-१९२५

१९९. अपील : देशबन्धु-स्मारक कोषके लिए[2]

१ जुलाई, १९२५

किसी एक ही विषयपर मौलिक लेख लिखते चले जानेकी मेरी क्षमता बहुत ही सीमित है। किन्तु सम्पादक महोदयने देशबन्धुके बारेमें मुझसे कुछ लिखनेको कहा है। मैं उनकी बात मानकर कुछ लिखनेका यह सुअवसर हाथसे न जाने दूंगा। देशबन्धुके व्यक्तित्व और कृतित्वके जो उत्तम मूल्यांकन पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं, उनमें अपनी ओरसे कुछ नया जोड़नेकी अपेक्षा मेरे मनमें उन्हींका सर्वोत्तम प्रयोग करनेकी बात अधिक उठ रही है। देशबन्धु जो महान् विरासत हमारे लिए छोड़ गये हैं, हमें चाहिए कि हम अपने कामों द्वारा अपनेको उसके योग्य सिद्ध करें। स्मारक कोषके लिए सैकड़ों स्त्री-पुरुषोंने जो चन्दा दिया है उसके लिए मैं दाताओंके प्रति आभार प्रकट करता हूँ। लेकिन यदि हमें थोड़े ही समयके अन्दर दस लाख जमा कर लेना है, जैसा कि हमें करना ही चाहिए तो हजारों नहीं लाखों लोगोंको दान देना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि जो लोग इन पंक्तियोंको पढ़ें वे फिरसे किसी अपीलकी प्रतीक्षा न करके शीघ्र अपना चन्दा भेजनेकी कृपा करेंगे। उन्हें चाहिए कि यथासम्भव अधिकसे-अधिक धन भेजें, न कि थोड़ा-सा भेजकर यह सोचें कि इतना ही हो सका। वे अपने मित्रोंसे चन्दा माँगें, इसके लिए उन्हें किसी प्रमाणपत्रकी आवश्यकता न होगी। वे स्वयं अपने-आप स्वयंसेवक बन सकते हैं। इसमें समयकी बचत है और अधिकसे-अधिक अच्छे परिणामों और कमसे-कम धोखाधड़ीकी सम्भावना है।

मैं जानता हूँ कि लोग स्वराज्य हासिल करनेको अधीर हो रहे हैं। कुछका विचार है कि देशबन्धुके स्मारकके रूपमें केवल एक अस्पताल बनवा देना उस व्यक्ति-की स्मृतिका यथोचित सम्मान करना नहीं होगा। जिसने अपना जीवन स्वराज्यके लिए अर्पित कर दिया। ऐसा सोचनेवाले व्यक्ति देशबन्धुको नहीं जानते। उनकी नजरोंमें किसी भी भारतीय द्वारा किया गया कोई भी श्रेष्ठ कार्य स्वराज्यकी दिशामें एक कदम था। प्रत्येक सफल सामूहिक प्रयत्न स्वराज्यकी दिशामें एक बहुत बड़ा कदम है। हमें राजनैतिक सत्ता तो मिलेगी ही। हम उससे बहुत दिनोंतक वंचित नहीं रखे जा सकते। वह सत्ता चाहे जब प्राप्त होगी, होगी — अनेकों द्वारा समान

१. लगभग २५०० रु० तत्काल इकट्ठे हो गये और ये रुपये इंस्टीट्यूटके सदस्योंकी तरफसे पहली किस्तके रूपमें गांधीजीको दिये गये।

२. यह अपील मूलतः १-७-१९२५ के फॉरवर्डके देशबन्धु-विशेषांकमें प्रकाशित हुई थी।

उद्देश्यके लिए किये गये परिश्रमके परिपक्व फलके रूपमें ही। कोषका चन्दा — विशेष करके यदि वह लाखों लोगोंसे मिलता है, फिर उस कोषमें एक-एक धेला करके ही धन क्यों न आया हो — इस बातका ही नहीं कि हममें सच्चा प्रेम है बल्कि इसका भी द्योतक होगा कि हममें संगठन करनेकी क्षमता भी है। इसलिए कोषके लिए दान देना ही फिलहाल देशबन्धुकी सेवाओंकी कद्र करनेका सबसे अच्छा तरीका है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, १४-७-१९२५

२००. भाषण : देशबन्धुके श्राद्ध-दिवसपर

कलकत्ता

१ जुलाई, १९२५

मैं आश्रममें अनेकबार प्रवचन देता हूँ, किन्तु देता हूँ अपने ही लोगोंके सम्मुख। वे मेरी बात समझते हैं और मुझे निभाते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रसंग आनेपर मैं 'गीता' में से कुछ अंश उद्धृत करता हूँ, फिर भी मेरा भाषण धार्मिक प्रवचन नहीं कहा जा सकता। मेरे विचारसे धर्मका अर्थ है धर्मका आचरण। प्रवचनकी आवश्यकता हो सकती है; किन्तु प्रत्येक धार्मिक मनुष्य प्रवचन दे सके, ऐसा नहीं है। यद्यपि यह सच है कि प्रवचनकर्ताका जीवन धर्मनिष्ठ होना चाहिए।

मेरे लिए 'गीता' शाश्वत मार्गदर्शिका है। मैं अपने हर कार्यके लिए 'गीता' में से आधार खोजता हूँ और यदि वह आधार नहीं मिलता है तो मैं उस कार्यको नहीं करता हूँ या अनिश्चित रहता हूँ। इसलिए जब मैंने घबराहटके बावजूद बोलना स्वीकार किया है तब सोचता हूँ कि मुझे मृत्यु और जन्मके रहस्यपर कुछ कहना चाहिए। जब-जब मेरे कुटुम्बियोंकी या स्नेहियोंकी मृत्युका अवसर आया है, तब-तब मैंने 'गीता' का ही आश्रय ढूँढ़ा है। 'गीता' यही बताती है कि मृत्यु शोक करनेकी वस्तु हो ही नहीं सकती। यदि कभी मेरी आँखोंसे किसी समय आँसू निकले हैं तो वे अनिच्छासे ही; और उसका कारण है मेरी निर्बलता। जब मैंने देशबन्धुकी मृत्युका समाचार सुना तब मैं स्तब्ध हो गया और मेरी आँखोंमें आँसू आ गये। मैं इस बातपर विचार करता हूँ तो वह मुझे निर्बलताका ही परिणाम मालूम होता है। आइए, आज हम 'गीता' से कुछ आश्वासन प्राप्त करें।

मैंने बहुत बार कहा है कि 'गीता' एक महारूपक है। मैं नहीं समझता कि इसमें दो पक्षोंके युद्धका वर्णन है। जब मैंने जेलमें[1] 'महाभारत' पढ़ा तब मेरी यह धारणा और भी पुष्ट हो गई। मुझे तो 'महाभारत' स्वतः एक महाधर्मग्रन्थ मालूम

१. यरवदा जेलमें।

होता है। उसमें ऐतिहासिक घटनाएँ तो है; परन्तु वह इतिहास नहीं। हम सर्प-सत्र-जैसी कथाका शब्दार्थ करें तो हमें उससे सन्तोष कैसे हो सकता है? तब तो अन्ध-विश्वासोंसे हमारा दम ही घुटने लग जायेगा। कवि स्वयं डंकेकी चोट कहता है, मैं इतिहासकार नहीं हूँ। 'गीता' में हमारे हृदयके अन्दर चल रहे युद्धका वर्णन है और उस युद्धका वर्णन करनेके लिए लेखनी कितनी ही स्थूल ऐतिहासिक घटनाओंका उपयोग करती है; परन्तु उसका उद्देश्य तो है हमारे हृदयमें प्रकाश डालकर हमसे उस प्रकाशमें उनकी ऊहापोह करवाना। हम जब दूसरे अध्यायके अन्तमें आते हैं तब ऐसी शंका नहीं की जा सकती कि किसी ऐतिहासिक युद्धकी बात चल रही है। अर्जुनका स्थितप्रज्ञके लक्षण जाननेकी इच्छा प्रकट करना और भगवान्‌का युद्धमें प्रवृत्त अर्जुनको उन लक्षणोंको बताने लगना विचित्र मालूम होता है।

परन्तु मेरा विषय तो है आपको मृत्युका रहस्य बताना। यदि आप मेरी तरह ही यह मानते हों कि 'गीता' एक रूपक है तो आप 'गीता' के अनुसार मृत्युका रहस्य भी समझ सकेंगे।

नासतो विद्यतेभावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः।। २-१६

सारा रहस्य इस श्लोकमें भरा हुआ है। अनेक श्लोकोंमें बार-बार कहा गया है कि शरीर 'असत्' है। 'असत्' का अर्थ 'माया' नहीं, ऐसी वस्तु नहीं जो कभी, किसी रूपमें उत्पन्न न हुई हो, बल्कि उसका अर्थ है क्षणिक, नाशवान और परिवर्तन-शील। फिर भी हम अपने जीवनका सारा व्यवहार ऐसा मानकर ही करते हैं मानो हमारा शरीर शाश्वत हो। हम शरीरको पूजते हैं और उससे चिपटे रहते हैं। यह सब हिन्दू धर्मके विरुद्ध है। यदि हिन्दू धर्ममें कोई बात सूर्यके प्रकाशकी तरह स्पष्ट रूपसे कही गई है तो वह है शरीरका और दृश्य पदार्थोंका असत् भाव। फिर भी हम जितना मृत्युसे डरते हैं और मरे हुओंके लिए जितना रोते-पीटते हैं, उतना शायद ही कोई अन्य धर्मावलम्बी डरते या रोते-पीटते हों। 'महाभारत' में तो उलटा यह कहा गया है कि रुदनसे मृत आत्माको सन्ताप होता है और 'गीता' इसलिए लिखी गई है कि लोग मृत्युको भीषण वस्तु न मानें। मनुष्यका शरीर प्रवृत्ति करते-करते थक जाता है और मृत्यु शरीरको दुःखसे मुक्त करती है। मैं ज्यों-ज्यों देशबन्धुके सतत प्रवृत्तिमय जीवनपर विचार करता हूँ त्यों-त्यों मुझे लगता है कि वे आज जीवित हैं। जब उनका शरीर था तब वे पूर्ण जीवित न थे, किन्तु वे आज सोलहों आने जीवित हैं। हमने अपने स्वार्थके कारण मान लिया है कि उनका शरीर ही महत्त्वकी वस्तु थी, जबकि हमें 'गीता' यह सिखाती है — और मैं प्रतिदिन यह अधिकाधिक अनुभव करता जाता हूँ कि अशाश्वत वस्तुके लिए की गई यह सब चिन्ता निरर्थक और व्यर्थका कालक्षेप है।

'असत्' का भावार्थ है कि असत्‌का अस्तित्व नहीं होता और जो सत् है उसका नाश कभी नहीं हो सकता। शेक्सपियरका यह कहना भारी भूल है कि मनुष्यका किया शुभ कर्म उसके साथ मिट्टीमें दब जाता है, और अशुभ ही संसारमें जीवित

रहता है। शुभ और सत् ही नित्य होता है। संसार भलाई कर जानेवाली आत्माओं-का ही नित्य स्मरण करता है। दुनिया असत् और अशुभको आसानीसे भूल जाती है और शुभका ही स्मरण रखती है। हम रामचन्द्रजीका उदाहरण ही लें। मैं तो रामको अवतार मानता हूँ। परन्तु मैं यह नहीं मानता कि जब वे सशरीर होंगे तब उन्होंने कोई भी दोष नहीं किया होगा। परन्तु आज हम उन्हें 'पूर्ण पुरुष' मानते हैं। हम कृष्णको भी पूर्णावतार मानते हैं। आज लाखों-करोड़ों हिन्दुओंमें एक भी मनुष्य ऐसा नहीं जो राम या कृष्णके दोष निकाले। इससे भी 'नासतो विद्यते भावो' — इस श्लोकका रहस्य प्रकट होता है — दुनियाने उनके शाश्वत शरीरका अर्थात् गुणोंका ही संग्रह किया। उनके अशाश्वत शरीर — दोष इत्यादि — का ज्ञान किसीको नहीं है। हम देशबन्धुका अनुकरण करना चाहते हैं। तब क्या हम उनके शरीरका अनुकरण करेंगे? क्या हम उनके शरीरको पूजते थे? यदि ऐसा होता तो क्या उनका प्यारा बेटा उनके शरीरका अग्निदाह कर देता?

अतः 'गीता' इस श्लोकमे पुकार-पुकारकर कहती है कि हम अपने जीवनमें सत्य-को धारण करके जियें और माया, असत्य और पाखण्डका त्याग करें। वाणी प्रायः असत्य हो जाती है; वह पाखण्ड बन जाती है। क्रोध असत्य है, काम, मोह, मद आदि असत्य हैं। हमें इन तमाम सर्पोंके विनाशके यज्ञका अनुष्ठान करना है। स्थूल सर्प तो बेचारा शरीर-को ही कष्ट देता है; परन्तु ये सर्प तो हमारी रग-रगमें प्रविष्ट हो जाते हैं और उनसे हमारे आत्माको भी हानि पहुँचनेका भय उत्पन्न हो जाता है। परन्तु आत्माको हानि पहुँच ही नहीं सकती। वह तो अविनाशी है। यदि हम इस बातको समझ ले कि सत् क्या है तो हम जन्म-मृत्युका रहस्य भी समझ जायें। जिस प्रकार रसायन-शास्त्री कहते हैं कि मोमबत्तीके जलनेसे उसके किसी मूल तत्त्वका नाश नहीं होता है उसी प्रकार जब शरीर निष्प्राण होनेपर जला दिया जाता है तब उसका कोई तत्त्व नष्ट नहीं होता। जन्म और मृत्यु एक ही वस्तुकी दो दशायें हैं। हम अपने स्वजनोंकी मृत्युपर रोते-धोते हैं इसका कारण हमारा स्वार्थ ही है। मुझे उस दिन श्मशान-घाट-पर उस भारी भीड़के चेहरेपर शोककी छाया न देखकर पहले तो चिढ़ मालूम हुई; मैंने मनमें कहा — इन लोगोंको कुछ भी होश नहीं है; इन्हें प्रसंगकी गम्भीरताका भी खयाल नहीं है — परन्तु पीछें मेरी समझमें आ गया कि वे ही सचाईपर थे। इस देहके छूटनेसे उनका स्वार्थ हत नहीं हुआ था; वे तो एक भव्य जीवनका सम्मान करनेके लिए ही आये थे — वे तो उनकी की हुई सेवाओंके साक्षी होनेके लिए और "धन्य है ऐसा जीवन! धन्य है ऐसा जीवन!" कहनेके लिए ही आये थे। हमारे शोककी अपेक्षा उनका आनन्द अधिक सच्चा और सार्थक था। गंगा-स्वरूप बासन्ती देवी, जिन्हें मैं श्री दासकी मृत्युके बाद देखनेपर पहले दिन पहचानतक नहीं सका था, धन्य हैं। उन्होंने तो मेरे सामने एक आँसूतक नहीं गिराया। हमें तो अपने मुखपर भी उदासी नहीं लानी चाहिए और विषाद भी नहीं करना चाहिए। हम तभी कह सकते हैं कि हमने शरीरकी क्षणभंगुरता समझ ली है। विवाह दो शरीरोंका नहीं होता। दो आत्माएँ शारीरिक भोग-विलासके लिए नहीं, बल्कि अपने भव्य विकासके

लिए एकत्र हुई थीं। अब उनमें से एकका शरीर छूटनेपर उनका वह सम्बन्ध उलटा अधिक दृढ़ हो गया। इसलिए आज हम यहाँ आँसू बहानेके लिए एकत्र नहीं हुए हैं। हमें चाहिए कि हम उनके गुणों अर्थात् उनके अमर शरीरका स्मरण करें और उनके गुणोंका ताना-बाना अपने जीवनमें बुन लें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-७-१९२५

२०१. प्रश्न-माला

१४ मई, १९२५ के 'यंग इंडिया' में फरीदपुरके अछूत जातिके किन्हीं सज्जनोंके साथ आपकी भेंटका जो विवरण[1] छपा है उसमें आपने उनसे आत्मशुद्धिके विचारसे कुछ काम करनेका अनुरोध किया है। किन्तु आत्मशुद्धिसे आपका मतलब क्या है? आत्मशुद्धिके बाहरी लक्षण क्या हैं? आत्मशुद्धिमें कायिक, मानसिक और वाचनिक, तीनों शुद्धियाँ आती हैं, अथवा इनमें से कोई एक ही?

आत्मशुद्धिका मतलब है मन, वाणी या शरीरकी समस्त अशुद्धियाँ दूर करना। इन 'अछूत' मित्रोंसे अनुरोध किया गया था कि वे बुरी बात न सोचें, झूठ न बोलें अथवा किसीसे गाली-गलौज न करें तथा शरीरको भली-भाँति स्नान-मज्जन, शुद्ध भोजन द्वारा — मुरदार मांस अथवा अन्य अशुद्ध भोजन, मद्य या अन्य मादक पदार्थोंको त्याग कर — पवित्र रखें।

२. यदि कोई जाति अथवा व्यक्ति उस स्तरतक पहुँच जाता है तो क्या उसके साथ अछूत-जैसा व्यवहार किया जा सकता है?

यदि कोई व्यक्ति उस स्तरतक नहीं पहुँचता — हममें से अनेक उस आदर्श स्थितितक नहीं पहुँच सकते, तो भी वह अछूत नहीं माना जा सकता। यदि यह मानदण्ड हमपर लागू किया जाये तो हमें भी उसे प्राप्त करनेमें कठिनाई होगी।

३. हिन्दू जातिके समस्त वर्गोंमें खान-पान अथवा पूजाके विषयमें कोई एकता नहीं है। आपके खयालसे उनमें इस तरहकी एकता उत्पन्न करनेके लिए पहला कदम क्या है?

मैं इस प्रकारकी एकता उत्पन्न करनेका कोई प्रयत्न नहीं कर रहा हूँ। मैं जिस ऐक्यके लिए लालायित हूँ, वह हृदयोंका ऐक्य है। यह सभी बन्धन-बाधाओंसे परे है तथा उनके होते हुए भी कायम रह सकता है। हम उसी एक परमात्माकी विभिन्न सूत्रोंमें और विभिन्न नामोंसे आराधना करते हैं।

४. यह सुझाव दिया गया है कि यदि पूजाके सार्वजनिक स्थानोंमें तथा जलपान आदिकी दुकानोंमें साफ-सुथरे हिन्दुओंको प्रवेशकी अनुमति दे दी जाये तो वह एकता उत्पन्न करनेकी दिशामें पहला कदम होगा। इस विषयमें आपकी सम्मति क्या है?

१. देखिए "अस्पृश्योंके साथ बातचीत", ३-५-१९२५ या इससे पूर्व।

पूजाके सार्वजनिक स्थान उन सभीके लिए खुले होने चाहिए जो सामान्य शिष्टाचारके नियमोंका पालन करें। पोशाकमें सफाईके स्तरका निश्चय कौन करेगा? ये बातें तो कानून द्वारा नहीं, बल्कि लोकमत द्वारा नियन्त्रित की जाती हैं। यदि कोई जलपान आदिकी दुकान स्वयं स्वच्छ है तो वह निस्सन्देह उन लोगोंको सौदा बेचनेसे इनकार कर देगी जो गन्दे हैं। यदि वह ऐसा न करे तो उसकी ग्राहकी टूटने लगेगी। लेकिन यदि कोई मिष्टान्नविक्रेता किसी 'अछूत' को अपना सौदा बेचनेसे उसके अछूत कहे जानेके कारण इनकार करता है तो उसे अपना धन्धा चलानेका कोई अधिकार नहीं है।

५. आपका अस्पृश्यताका अर्थ कठिन है। उच्च वर्णोंके हिन्दू भी अपने उन बच्चोंका, जिनका उपनयन संस्कार नहीं हुआ है, छुआ पानी नहीं पीते और पकाया हुआ खाना नहीं खाते। क्या आप इसे अस्पृश्यता कहते हैं?

मैं इसे अस्पृश्यता नहीं कहता। मैंने बीसियों बार साफ-साफ कहा है कि हिन्दूधर्ममें पंचम वर्ण जैसी कोई चीज नहीं है। इसलिए अछूतोंको वे सभी अधिकार मिलने चाहिए जो चारों वर्णोंको सामान्यतः प्राप्त हैं।

६. कुछ लोगोंका सुझाव है कि पानी पीनेपर बहुत ज्यादा जोर देनेके बजाय उच्च जातिके सवर्ण हिन्दुओंके मनसे ऊँच-नीचकी भावना दूर करने तथा उनमें आपसी प्रेम और सहायताका भाव बढ़ानेके लिए प्रयत्न करना बेहतर होगा। क्या आप इस सुझावसे सहमत हैं?

मैं इस सुझावसे वहीं सहमत हूँ जहाँ उससे पाखण्डपर पर्दा नहीं पड़ता। आप किसी पेड़की परीक्षा उसके फलसे ही करेंगे। मैं खाने और पीनेपर कभी जोर नहीं देता। मैं ऐसा तभी करता हूँ और करना चाहता हूँ जब कोई आदमी किसी अस्पृश्यका छुआ पानी पीनेसे इसलिए इनकार करता है कि वह अछूत कहलाता है। क्योंकि उसका यह इनकार उसके ऊँचेपनके घमण्डका सूचक होता है।

७. इस ध्येयकी प्राप्तिका आसान और सीधा तरीका सामूहिक धार्मिक कथा-कीर्तनों तथा धार्मिक मेलों द्वारा, जिनमें लोग चाहे वे किसी भी मत और जातिके हों, वैष्णव धर्मकी शिक्षाओंका प्रचार करना है। यह तरीका चार सदियोंसे भी अधिक कालसे प्रचलित है। इस सुझावके विषयमें आपकी क्या सम्मति है?

मैंने कीर्तनोंके असरके बारेमें पूरी तरह विचार नहीं किया है। लेकिन मैं किसी भी अच्छे तरीकेका जिससे दम्भपूर्ण उच्चताकी भावनाकी यह दीवार ढहे, स्वागत करनेके लिए तैयार हूँ।

८. यह बात लगभग मानी हुई ही है कि बंगालमें हिन्दू जाति नष्ट हो रही है। आपके खयालसे उसके इस क्रमिक ह्रासका मुख्य कारण क्या है? उसका यह ह्रास किन उपायोंसे रोका जा सकता है? यह भी सभी मानते हैं कि हिन्दुओंका ऊँचाई, शक्ति तथा जीवटकी दृष्टिसे शारीरिक ह्रास हुआ है। उनमें इन गुणोंका उत्कर्ष फिर कैसे किया जा सकता है?

मैंने भी ऐसे विवरण देखे तो हैं; लेकिन हिन्दुओंके ह्रासका मुझे कोई सबूत नहीं मिला है। फिर भी मुझे इस कथनपर विश्वास करना चाहिए कि हम शारीरिक रूपमें दुर्बल होते जा रहे हैं। इसके कारण स्पष्ट हैं। हमारी बढ़ती हुई गरीबी तथा बाल-विवाह इस ह्रासके दो बड़े कारण हैं। एकका निराकरण चरखेसे किया जा सकता है, तथा दूसरेका व्यक्तियों द्वारा अपने लड़कों और लड़कियोंके विवाह तबतक न करनेके दृढ़ निश्चयसे जबतक उनकी उम्र १६ वर्षसे अधिक तथा २० वर्षके लगभग न हो जाये। विवाह जितनी देरीसे किया जाये, उतना ही अच्छा है। मैं तो इस विचारका हूँ कि चाहे कितना ही बड़ा खतरा क्यों न उठाना पड़े, लड़कों या लड़कियोंका विवाह तबतक न किया जाना चाहिए जबतक वे खासी बड़ी आयुके और गृहस्थीका बोझा उठाने योग्य तथा पूर्ण स्वस्थ न हों। इसका उपाय यह है कि जो लोग सुधारकी आवश्यकता समझते हैं, वे स्वयं इस विचारपर अमल शुरू करें तथा अपने पड़ोसियोंको वैसा करनेके लिए समझायें-बुझायें। जो लोग सुधार करना चाहते हैं तथा खतरेकी सम्भावना कमसे-कम करना चाहते हैं उन्हें अपने बच्चोंको, वे आज जैसे वातावरणमें रहते हैं उससे अधिक स्वस्थ तथा शुद्ध वातावरणमें रखना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-७-१९२५

२०२. मेरी अक्षमता

यदि मैं सहायताके अभिलाषी हर व्यक्तिको उसकी इच्छानुसार सन्तुष्ट कर पाता तो मेरे गर्वका ठिकाना न रहता। पर मेरी नितान्त अक्षमताका यह नमूना लीजिए :

> यदि आप मुसलमानोंसे गोवध बन्द कराके गोरक्षा नहीं कर सकते तो फिर आपका नेतापन और महात्मापन किस मर्जकी दवा है? जरा विचारिये तो, अलवरके अत्याचारोंके सम्बन्धमें आप किस तरह जान-बूझकर चुप्पी साधे हुए हैं; और पण्डित मालवीयजीको निजाम सरकारने अपनी रियासतमें आनेसे रोक कर उनका जो अपमान किया है उसके सम्बन्धमें आपकी चुप्पी तो अक्षम्य ही है। पण्डित मालवीयजीको आप अपना आदरणीय बड़ा भाई कहनेमें गौरव अनुभव करते हैं, उन्हें पहले दरजेका लोकसेवक मानते हैं और खुद आप ही ने उन्हें मुसलमानोंके प्रति किसी प्रकारका वैरभाव रखनेके दोषसे मुक्त बताया है।

एकने नहीं अनेकोंने यही बातें कही हैं। पत्रकी यह पहली फटकार प्राप्त फट-कारोंमें आखिरी है और यह मेरे लिए कहावतका 'अन्तिम तिनका' साबित हुई है। मेरे सामने एक तार रखा हुआ है, जिसमें कहा गया है कि मैं मुसलमानोंसे अनुरोध करूँ कि वे आगामी बकरीदपर गायकी कुर्बानी न करें। मैंने सोचा कि यही समय है कि मैं लोगोंको कमसे-कम अपनी खामोशीका कारण तो बतला दूँ। पण्डितजी

सम्बन्धी आरोपको तो मैं हजम कर जानेको तैयार था, हालाँकि वह मेरे एक प्रिय मित्रने ही लगाया है। उन्हें मेरी कीर्तिको धक्का पहुँचनेका बड़ा डर था। उन्होंने सोचा, इससे मुझे लोग मुसलमानोंसे डर जानेका दोषी ठहरायेंगे और क्या-क्या न कहेंगे। परन्तु मैं अपने इस विचारपर दृढ़ रहा कि पण्डितजीके प्रवेश-निषेधके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंमें कुछ न लिखूँ। मुझे इस बातका जरा भी डर न था कि इससे पण्डितजीके मनमें मेरे बारेमें गलतफहमी होगी। और मैं जानता था कि पण्डितजीको मेरी छत्रछायाकी कोई आवश्यकता नहीं। दुनियावी सत्ता द्वारा जारी की गई सभी निषेध-आज्ञाएँ उनके लिए कोई चीज नहीं हैं। उनका तत्त्वज्ञान उनका सम्बल है। मैंने कितने ही कठिन अवसरोंपर उन्हें बहुत नजदीकसे देखा है। वे उन सभी अवसरोंपर अडिग रहे। वे अपने कामको समझते हैं और उसे करते हुए न अनुकूल समयमें फूल उठते हैं, न प्रतिकूल समयमें विचलित होते हैं। इसलिए जब मैंने उस निषेध आज्ञाके बारेमें सुना तो खूब हँसा। राजाओंके ढंग अनोखे ही हुआ करते हैं। मैं जानता था कि मैं 'यंग इंडिया' में चाहे जितना लिखूँ, श्रीमान् निजाम अपने फरमानको वापस लेनेको राजी न होंगे। यदि उनसे मेरी जान-पहचान होती तो मैं हैदराबादके नवाब साहबको सीधा पत्र लिखता और उनसे विनयपूर्वक कहता कि पण्डितजीपर रोक लगानेसे आपकी रियासतका कोई फायदा नहीं हो सकता; इस्लामका तो बिलकुल ही नहीं। मैं तो उन्हें यह भी सलाह देता कि यदि पण्डितजी हैदराबादमें आयें तो उनको अपना मेहमान बनाइएगा। मैं हजरत पैगम्बर तथा उनके साथियोंके जीवनसे ऐसी मिसालें भी पेश करता। परन्तु मुझे उनसे परिचयका सौभाग्य प्राप्त नहीं है। मैं जानता था कि पत्रोंमें लिखी बात शायद उनके कानतक पहुँचे भी नहीं। ऐसी अवस्थामें सिवा मौजूदा मनमुटावको बढ़ानेके उससे और कुछ हासिल न होता। और यदि मैं उस मनमुटावको घटा नहीं सकता तो बढ़ाना भी नहीं चाहता था; अतः मैंने चुप रहना ही उचित समझा। इस समय जो मैं लिख रहा हूँ इसका उद्देश्य उन हिन्दुओंको, जो मेरी बात सुनना चाहते हों, यह सलाह देना है कि वे इस घटनासे चिढ़ न उठें और इसे इस्लामके या मुसलमानोंके खिलाफ शिकायत करनेका आधार न बनायें। इस निषेधाज्ञाका मूल कारण निजाम साहबकी मुसलमानियत नहीं है। मनमानी कार्रवाई निरंकुश शासनपद्धतिका एक लक्षण ही है — फिर शासक हिन्दू हो या मुसलमान। देशी राज्योंको नष्ट करनेका प्रयत्न न करके हमें उनकी तानाशाहीको रोकनेका ही उपाय अवश्य सोचना चाहिए। वह उपाय है, प्रबुद्ध और प्रबल लोकमत तैयार करना। जिस तरह ब्रिटिश भारतमें यह कार्य आरम्भ हुआ है, उसी तरह वहाँ भी होना चाहिए। यहाँ देशी राज्योंसे स्वभावतः ज्यादा आजादी है; क्योंकि यहाँका शासनकार्य सीधा सम्राट् द्वारा होता है, और देशी राज्योंकी तरह सम्राट्के ताबेदारों द्वारा नहीं। इस कारण वे ब्रिटिश प्रणालीके दोषोंको तो अपने यहाँ ले लेते हैं; पर ब्रिटिश शासन अपने लिए हानिसे बचनेकी जो तदबीरें कर लेता है, उन्हें वे नहीं अपना पाते। इसलिए भारतके देशी राज्योंमें सुव्यवस्थाका आधार ज्यादातर राजाके चरित्र और अवसर-विशेषपर उसके मनकी मौज ही रहती है, वहाँ कोई विधान नहीं,

या यों कहें कि देशी राज्योंकी सरकारको विनियमित करनेवाले विधान नहीं हैं। इससे हम इसी नतीजेपर पहुँचते हैं कि देशी राज्योंमें सच्चा सुधार तभी सम्भव है जब ब्रिटिश शासनप्रणालीका लौह नियन्त्रण ब्रिटिश भारतमें सुलभ अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रताके वातावरणसे कुछ प्रभावित तो हो, और इस तरह उसमें कुछ ढिलाई तो आये। इस वातावरणको स्थापित करनेका श्रेय जनताकी अनुशासनबद्ध शक्तिको ही है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि सब पत्रकारोंको अपनी जबान बन्द कर लेनी चाहिए। राज्योंके दोषोंका उल्लेख करना पत्रकारिताका एक आवश्यक अंग है। वह लोकमत उत्पन्न करनेका एक साधन भी है। हाँ, मैं यह जरूर कहूँगा कि मेरा क्षेत्र बहुत मर्यादित है। मैंने पत्रकारिताको पत्रकारिताकी खातिर नहीं अपनाया है, बल्कि जिसे मैंने अपना जीवनका ध्येय समझा है उसके सहायकके रूपमें अपनाया है। मेरे जीवनका ध्येय है — अत्यन्त संयमपूर्ण जीवन और संयत उपदेशके द्वारा सत्याग्रहके अद्भुत अस्त्रका प्रयोग सिखाना — सत्याग्रह, सत्य और अहिंसासे सीधा फलित होनेवाला व्यवहार है। मैं यह प्रत्यक्ष दिखलानेके लिए उत्सुक ही नहीं, अधीर हूँ कि जीवनकी अनेकानेक बुराइयोंको दूर करनेका अहिंसाके सिवा कोई उपाय नहीं है। यह एक ऐसा प्रबल द्रावक रस है जिसके द्वारा वज्र हृदय भी पिघले बिना नहीं रह सकता। इसलिए मेरी श्रद्धाका तकाजा है कि मुझे क्रोध या द्वेषसे प्रेरित होकर कुछ नहीं लिखना चाहिए। मुझे ऐसी कोई बात नहीं लिखनी चाहिए जो निरर्थक हो। मुझे लोगोंमें रोष उत्पन्न करानेभरके लिए कोई बात नहीं कहनी चाहिए। पाठकोंको इस बातकी कल्पनातक नहीं हो सकती कि प्रति सप्ताह विषयों और शब्दोंके चुनावमें मुझे कितने संयमसे काम लेना पड़ता है। मेरे लिए यह एक अच्छी खासी तालीम है। इसके द्वारा मुझे अपने अन्तःकरणमें झाँकने और अपनी कमजोरियोंको जाननेका अवसर मिलता है। अकसर मेरा मिथ्याभिमान मुझे कोई तेज बात लिखने और कोई कड़ा विशेषण लगानेको प्रेरित करता है। यह एक बड़ी कठिन अग्निपरीक्षा है, पर साथ ही इन गन्दगियोंको दूर करनेकी बढ़िया मश्क भी है। पाठक 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंको सँवारे हुए रूपमें देखते हैं, और रोमाँ रोलाँकी तरह शायद यह भी सोचते हों कि 'यह बुड्ढा कितना नेक आदमी होगा!' तो फिर दुनिया इस बातको जान ले कि अपने भीतर मैं यह नेकी बड़ी सावधानी और प्रार्थनाके बाद ला पाता हूँ। और यदि इसे कुछ लोगोंने, जिनकी रायोंको मैं अपने हृदयमें मान देता हूँ, स्वीकार किया है तो पाठक इस बातको समझ लें कि जब यह नेकी मेरे लिए एक बिलकुल स्वाभाविक वस्तु बन जायेगी अर्थात् जब कोई भी बुरा काम करना मेरे लिए असंभव हो जायेगा और जब किसी तरहका कठोर या दर्पपूर्ण भाव, फिर वह क्षण-भरके लिए क्यों न हो, मेरे विचार-जगतमें नहीं आने पायेगा, तभी — केवल तभी मेरी अहिंसा दुनियाके लोगोंके हृदयोंको द्रवित कर पायेगी। मैंने अपने या पाठकोंके सामने कोई असम्भव आदर्श या अग्नि-परीक्षा नहीं रखी है। वह तो मनुष्यका परमाधिकार और एक जन्मसिद्ध अधिकार है। हमने यह स्वर्ग खो दिया है तो हमें उसे फिर प्राप्त करना ही है। यदि इसमें बहुत समय लगे तो वह सारे

मन्वन्तरका एक अणु-मात्र है। 'गीता' में भगवान कृष्णने यह कहकर कि हमारे करोड़ों दिन ब्रह्माके सिर्फ एक दिनके बराबर हैं, इसी भावको प्रकट किया है।[1] इसलिए हमें चाहिए कि हम अधीर न हों और अपनी कमजोरीके कारण यह न मान बैठें कि अहिंसा दिमागकी कमजोरीका लक्षण है। ऐसा नहीं है।

पर अब मेरा अधिक लिखना जरूरी नहीं है। अब पाठक समझ गये होंगे कि मैं अलवरके विषयमें क्यों चुप था। मेरे पास ऐसे तथ्य भी नहीं थे कि मैं कुछ लिखता। मेरी किसी बात या लेखपर निजाम साहबकी तरह अलवरके महाराजा भी तिरस्कारपूर्ण भावसे हँस सकते हैं। अबतक जो बातें प्रकाशित हुई हैं वे यदि सच हैं तो उन्हें घोरतम डायरशाही ही समझना चाहिए। पर मैं जानता हूँ कि फिलहाल मेरे पास इसका कोई इलाज नहीं है। इन बड़े-बड़े आरोपोंके सम्बन्धमें पर्याप्त रूपसे सन्तोषदायक सार्वजनिक जांच करानेके निमित्त पत्रकार लोग जो उद्योग कर रहे हैं उसे मैं आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। मैं देख रहा हूँ कि पण्डितजीकी राजनीतिक पटुता धीरे-धीरे, चुपचाप अपना रास्ता बना ही रही है। तब फिर मुझे चिंतित होनेकी क्या आवश्यकता है? जो सज्जन मेरे पास नुस्खोंके लिए आते हैं, वे इस बातको जान लें कि मैं कोई अमोघ औषधि बांटनेवाला कविराज नहीं हूँ और न मेरे पास कोई बड़ा औषध-भण्डार ही है। मैं तो टटोल-टटोलकर चलनेवाला एक विशेषज्ञ हूँ और मेरी छोटी-सी जेबमें मुश्किलसे दो रसायन हैं जो एक-दूसरेसे भिन्न भी नहीं हैं। और वह विशेषज्ञ फिलहाल इन दोषोंको दूर करनेकी अपनी सामर्थ्यहीनता स्वीकार करता है।

गो-प्रेमियोंसे तो मैंने पहलेसे ही कह रखा है कि अब मैं हिन्दुओं और मुसलमानोंपर अपना प्रभाव माननेका दावा नहीं करता जैसा कि कुछ समय पहले करता था। जबतक मैं उस शक्तिको पुनः प्राप्त न कर लूं, गोमाता अपने इस बच्चेको माफ कर देगी। मैं अपनेको उसका विनम्र बच्चा ही मानता हूँ। उसके प्राणके साथ मेरा प्राण सम्बद्ध है। वह जानती है कि मैं उसके साथ विश्वासघात नहीं कर सकता। यदि उसके दूसरे भक्त नहीं समझते तो कमसे-कम वह मेरी अक्षमताको अवश्य ही समझती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-७-१९२५

१. सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥ ८।१७

२०३. टिप्पणियाँ

अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक

मुझसे कहा गया है कि जिस तरह मैंने बंगालके मित्रोंकी सलाहसे अखिल बंगाल देशबन्धु स्मारकका श्रीगणेश किया है उसी तरह मैं उनके अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारकका भी सूत्रपात करूँ। मैं पाठकोंको यकीन दिलाता हूँ कि यह बात मेरे ध्यानके बाहर बिलकुल नहीं रही है। मैं अपने उन मित्रोंसे, जो यहाँ मेरे पास हैं, सलाह मशविरा कर रहा हूँ। पर अभीतक हम उसका कोई सूत्र नहीं बना पाये हैं। अखिल बंगाल स्मारकके सम्बन्धमें निर्णय करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई थी। देशबन्धु न्यास-पत्रने हमारे लिए ध्रुवतारेका काम दिया था। परन्तु अखिल भारतीय स्मारक बनाना इतना आसान नहीं है। उसमें देरी होना अनिवार्य है, किन्तु सम्भवतः इस अंकके प्रकाशित होनेतक कोई निर्णय हो चुकेगा। फिलहाल मैं हरएक मनुष्यको यह विश्वास दिलाता हूँ कि इस सम्बन्धमें घोषणा करनेमें अनावश्यक विलम्ब न किया जायेगा। मुझे इसमें रत्ती-भर शक नहीं कि देशबन्धुका अखिल भारतीय स्मारक अवश्य बनाया जाना चाहिए। देशके कोने-कोनेसे जो शोकसन्देश आये हैं वे देशबन्धुकी सार्वत्रिक लोकप्रियताके अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण हैं।

एक 'क्रान्तिकारी'का पत्र

श्रीमती वासन्ती देवीने मुझे किसी क्रान्तिकारीका भेजा हुआ एक गुमनाम पत्र लाकर दिया है। उससे मैं यह अंश देता हूँ:

> इस समय जब मैं आपको यह पत्र लिखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ मेरी आँखोंसे आँसू गिर रहे हैं और उनसे मेरी दृष्टि धुँधली हो रही है। आपसे मिलनेके लिए मैंने १४८ नम्बर कोठीमें जानेका प्रयत्न किया था, किन्तु मैं आपके सामने खड़ा होनेका साहस ही संचय नहीं कर सका। वहाँका दृश्य तो हृदयविदारक है।
>
> देशबन्धुकी मृत्युसे एक महान् पुरुष, शायद देशका महानतम पुरुष, उठ गया है। अब उनकी जगह लेनेवाला कोई नहीं रहा। उन्होंने जब अपनी फलती-फूलती वकालत और शानदार आमदनी छोड़ी तब तो उनको बहुत लोग जान गये थे; लेकिन मैं तो उन्हें उससे भी बहुत पहलेसे जानता था — तबसे जब वे अलीपुर काण्ड सम्बन्धी मुकदमेमें श्री अरविंद घोषकी पैरवी करनेके लिए मानो किसी एकान्त स्थानमें से निकल आये थे। मैं उनसे तभीसे प्रेम करने लगा था। मैं उनका अत्यन्त आदर करता था और उनका प्रशंसक तथा भक्त था। वे भी, यद्यपि हम क्रान्तिकारियोंसे राजनीतिक बातोंमें सहमत नहीं थे तथापि हमें सदा

अपने हृदयमें स्थान देते थे। मेरे यह कहनेका आधार यह है कि मैं उन लोगोंमें से हूँ जो बंग-भंगके दिनोंमें 'अराजकतावादी' कहे जाते थे और जो अब भी 'क्रान्तिकारी' कहे जाते हैं; यद्यपि उनके लिए इन दोनों ही विशेषणोंका प्रयोग करना अयथार्थ है। वे जानते थे कि हमारे सम्बन्धमें बहुत भ्रान्ति है, हमें गलत रूपमें पेश किया जाता है और हम बहुत बदनाम किये जाते हैं, इसलिए कि हम अपने देशकी, जो हम सभीकी मातृभूमि है, स्वतन्त्रतासे प्रेम करते हैं। वे हम सभीसे भाईकी तरह प्यार करते थे और हमें सदा ठीक रास्तेपर चलानेका प्रयत्न करते थे। आज हमें उनका वियोग बहुत दुःखद हो रहा है। हम उनकी मृत्युसे शोक विह्वल हो रहे हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि आज देशमें कोई ऐसा मनुष्य नहीं रहा जिससे हम संकटके समयमें सहायता माँग सकें।

नेता आयेंगे और चले जायेंगे; किन्तु देशबन्धु दास अब कभी पैदा न होंगे। वे लोगोंमें आशा और स्फूर्ति भरते थे। वे राष्ट्रके पूज्य थे। वस्तुतः हम उनसे सदा ही सहायता और मार्गदर्शन ले सकते थे और वे जानते थे कि वे हमसे चाहे जो सेवा ले सकते हैं; इतना ही नहीं, बल्कि हम उनके निर्देशपर अपने प्राण भी दे सकते हैं। मेरी प्यारी बहन, मैं अब आपको यह विश्वास दिलाता हूँ कि हम आपकी हर तरह की सेवाके लिए, बल्कि आपकी खातिर प्राणतक देनेके लिए तत्पर हैं और सदा रहेंगे।

जिन अंशको मैंने छोड़ दिया है उसमें लेखकने फिर सहानुभूतिका आश्वासन दिया है। यह पत्र देशबन्धुके क्रान्तिकारी — हलचल सम्बन्धी विचारोंका स्वयंस्फूर्त प्रमाण है। बंगालके युवकोंके हृदयपर उनके अधिकारका कारण यह है कि उनके दोषोंके रहते हुए भी वे एक पिताकी तरह उनकी चिन्ता रखते थे। वे उन्हें इसलिए प्रेम नहीं करते थे कि वे उनके तरीकोंको पसन्द करते थे, बल्कि इसलिए कि वे उन तरीकोंको उनसे छुड़वाना चाहते थे। क्या वे लोग जो कि उनके जीते-जी उनकी बात नहीं मानते थे, उनकी आत्माकी इस आवाजको सुनेंगे — 'भारतकी मुक्तिका मार्ग हिंसा नहीं है?' क्या वे अपने विचारोंकी अपेक्षा उनके परिपक्व निर्णयपर विश्वास करेंगे?

एक गलती?

हमें मन्त्री जिला कांग्रेस कमेटी, पबनाका यह पत्र मिला है।[1]

मैं पत्रको पसन्द करता हूँ क्योंकि उसमें मुझसे यह अपेक्षा की गई है कि मैं जो-कुछ कहूँ या लिखूँ वह अधिकसे-अधिक शुद्ध तथा पूर्णतः निष्पक्ष हो। जहाँतक

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें गांधीजीका ध्यान "खादी प्रतिष्ठान", ४-६-१९२५ के शीर्षकसे छपे लेखकी एक भूलकी ओर खींचा गया था। लेखमें गांधीजीने पबनाके सत्संग आश्रमके सम्बन्धमें लिखा था कि वह कोमिल्लाके अभय आश्रमके ढंगका खादी उत्पादन केन्द्र है। पत्रलेखकने लिखा था कि आश्रममें खादीका काम बिल्कुल नहीं किया जाता और वह वस्तुतः विदेशी वस्तुकी बिक्रीमें सहायता देता है।

भी इन्सानके लिए सम्भव हो सकता है मैं इस अपेक्षाके अनुरूप कार्य करनेके लिए उत्सुक रहता हूँ। लेकिन पूरी सावधानी रखनेके बावजूद मैं कुछ लोगोंके प्रति अन्याय तथा कुछ लोगोंके प्रति अनुचित रूपसे पक्षपात कर सकता हूँ। अन्ततः तो दोनों ही अवस्थाओंमें अन्याय होता है। यह भी सम्भव है कि उस व्यक्ति अथवा संस्थाकी, जिसकी अनुचित रूपसे प्रशंसा की जाती है उस व्यक्ति अथवा संस्थासे अधिक हानि हो जिसकी अनुचित रूपसे निन्दा की जाती है। लेकिन इस मामलेमें मैं अत्यन्त सचेत रहा हूँ तथा मन्त्रीकी कही लगभग प्रत्येक बात कभी सत्य रही हो, पर वह उस समय सत्य नहीं थी जब मैंने यह लेख लिखा था। मैं उक्त संस्थाओंके गुणोंकी तुलनात्मक जाँच नहीं कर रहा था और न उनके हिसाब-किताबकी ही तुलना कर रहा था। मैंने तो केवल यही कहा था कि यह लेख लिखते समय खादी-उत्पादक संस्थाओंकी संख्या उतनी थी और मैंने उनका निरीक्षण किया था। मैंने इनमें 'सत्संग आश्रम'को भी सम्मिलित कर लिया, यद्यपि वह इस प्रवृत्तिमें अभी हालमें ही सम्मिलित हुआ है। मैं जब आश्रममें गया तब मैंने वहाँ ४०से अधिक चरखे चलते देखे थे। सूत कातनेवालोंमें संस्थापककी पत्नी और उनके रिश्तेदार भी थे। मुझे वहाँपर बुनी हुई खादी भी दिखाई गई थी; लेकिन इस सबके अलावा देशबन्धुने, जिनके कहनेपर मैं आश्रम देखने गया था, मुझे कहा था कि आश्रमके संस्थापकने निश्चय किया है कि सूत कातना तथा खादी बुनना इसका एक मुख्य कार्य रहेगा। आश्रमके प्रबन्धकने, जिसने मुझे आश्रम दिखाया था, उनके उस कथनकी पुष्टि की थी। यदि मैं इस सारे सबूतके बाद भी आश्रमको खादीके उत्पादन केन्द्रोंमें शामिल न करता तो मैं अन्याय करता। मैं यह मानता हूँ कि इस समय सत्संग आश्रम और अभय आश्रमका कोई मुकाबला नहीं किया जा सकता। अभय आश्रम अधिक नहीं तो उतना ही पुराना है जितना पुराना खादी प्रतिष्ठान और उसकी स्थापना मुख्य रूपसे खादी तथा चरखेके प्रचारके लिए ही की गई थी। इसका उत्पादन खादी प्रतिष्ठानसे कुछ ही कम है तथा उसकी शाखाएँ कई जगह हैं। लेकिन इस लेखको लिखनेमें मेरा हेतु उनके सापेक्ष गुणोंको जाँचना न था; बल्कि जनताके ध्यानमें यह बात लाना था कि बंगालमें खादीके प्रचारकी सम्भावना कितनी है तथा इसके लिए मुख्य नमूनेकी खादी संस्था कौन-सी है। यदि यह सत्य है कि पवनामें सत्संग आश्रमके तत्त्वावधानमें विदेशी वस्त्रोंकी बिक्रीके लिए एक गोदाम चलाया जाता है तो मुझे उससे निश्चय ही दुःख होगा।

क्रान्तिकारी बननेके लिए प्रयत्नशील

आपने जो-कुछ लिखा है वह इतना तात्त्विक और जटिल है कि वह मेरी समझमें नहीं आ सकता। अतः हमें फिलहाल मान लेना चाहिए कि हममें मतभेद है और जबतक आप मुझे मेरी यात्रामें कहीं मिल नहीं जाते तबतक हमें एक-दूसरेके लिए परमात्मासे सुबुद्धि देनेकी प्रार्थना करनी चाहिए। आपने सूत कातनेके साथ-साथ रुई धुननेका जो विचार किया है वह मुझे ठीक जँचता है। मैं आशा करता हूँ कि आप चरखे और धुनकीकी गुप्त शक्तियोंकी खोज कर सकेंगे। आपमें सूत कातनेकी जैसी धुन है वैसी धुन आप अपने आसपासके लोगोंमें पैदा करनेका प्रयत्न कर सकते

है। यदि वह प्रयत्न सफल हो जाये और वह सफल हो सकता है और जो क्रान्तिकारी बन चुके हैं या बननेवाले हैं या उसके लिए प्रयत्नशील हैं, वे अपनी सर्वमान्य प्रतिभा और शक्तिको इस महान् कार्यमें लगा दें तो उन्हें पता चलेगा कि इस देशकी मुक्तिके लिए रक्तमय क्रान्तिकी आवश्यकता नहीं है। मेरे ये मित्र मुझे चरखेको गुंजित करनेमें सहायता दें, वे ग्रामीणोंको कार्यरत और सुखी बनानेमें मेरा हाथ बँटायें और यदि हम तब भी अंग्रेजोंको न्यायके कठघरेमें खड़ा न कर सकें तो वे मेरी आतिशयिक दुर्बलताके उन क्षणोंमें मुझे धर दबा सकते हैं और सम्भवतः अपने मतमें दीक्षित भी कर सकते हैं। उस अवस्थामें वे मुझसे अन्य मत-परिवर्तितोंकी तरह हिंसात्मक प्रवृत्तियोंमें उनसे भी आगे निकलनेकी अपेक्षा कर सकते हैं।

अस्पृश्यताके सम्बन्धमें एक प्राचीन मत

जब मैं शान्तिनिकेतनमें था, श्री एन्ड्रयूजने मुझे तमिलके यशस्वी कवि वेमनाका अस्पृश्यतापर निम्नलिखित उद्धरण दिया था:

किताब – २

१३५. उसको परिया (पंचम) न मानो जो जन्मतः परिया है; जो अपनी प्रतिज्ञा भंग करता है वह उससे भी पतित है। जो परियाको धिक्कारता है, वह उससे भी बुरा है।

१५६. तुम शूद्रको देखते हो तो उसे गालियाँ क्यों देते हो? यह केवल असभ्य भाषा है। यह आत्मा जो परियामें बोलता है, किस जातिका है?

किताब – ३

१११. "वे चिल्लाते हैं: तू अपवित्र तथा अस्वच्छ है, मुझे मत छू!" अपवित्रताकी क्या सीमाएँ हैं? इसका स्रोत क्या है? सभी मानव-शरीर समान रूपसे अस्वच्छ हैं, अपवित्रता तो शरीरमें हमारे जन्मके साथ ही पैदा होती है।

१६२. जो जन्मतः शूद्र हैं तथा फिर भी शूद्रोंको गालियाँ देते हैं; जो अपनेको द्विज मानते हैं तथा अपनी पदवीमें विश्वास करते हैं; यदि वे फिर भी अपने मनको वशमें नहीं रख सकते तो वे शूद्रोंसे भी नीच हैं।

१६४. यदि किसी मनुष्यके हृदयमें अभीतक परियाके संस्कार भरे हैं और वह फिर भी परिया लोगोंसे घृणा करता है तो वह समस्त शुभ संस्कारोंसे हीन होनेपर भी द्विज कैसे हो सकता है?

२१७. यदि हम इस सृष्टिको ध्यानपूर्वक देखें और जाँचें तो हम देखेंगे कि उसमें सभी वर्ण समान उत्पन्न हुए हैं। तभी सब बराबर हैं; निश्चय ही सभी मनुष्य भाई-भाई हैं।

२२३. पृथ्वीपर उस आदमीसे अधिक अधम दूसरा कोई आदमी नहीं है जो दूसरोंको शूद्र कहकर उनसे घृणा करता है। वह बादमें नरक जायेगा।

२२७. हम परियाको निरन्तर गालियाँ क्यों देते हैं? क्या उसमें वैसा ही मांस और रुधिर नहीं है जैसा हममें है? तब वह परमात्मा किस वर्णका है जो उस परियामें (तथा अन्य मनुष्योंमें भी) व्याप्त है?

२३१. कोई मनुष्य भले ही जन्मसे पंचम हो, यदि वह अपने हृदयको शुद्ध रखता है तो वह पंचम नहीं है। जो अपनी वासनाओंपर काबू नहीं रख सकता वह पतितोंसे भी पतित है।

२३४. वशिष्ठकी माँ वेश्या थी तथा पत्नी शूद्रा; फिर भी वशिष्ठ भगवान रामके गुरु बने। वे कठोर तपस्यासे ब्राह्मण बन गये थे। लेकिन यदि तुम उनके वर्णकी ओर देखो तो उनका वर्ण क्या था?

उद्धरणोंसे मालूम होता है कि हिन्दुओंके हृदय तथाकथित अछूतोंके प्रति अमानुषिक व्यवहारसे अति दुःखित थे। वेमनाने अपने ही भाई-बन्दोंको गिराने तथा दबानेकी जोरदार और असन्दिग्ध भाषामें भर्त्सना की है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-७-१९२५

२०४. देशबन्धु-स्मारक कोष

मित्रोंने मुझे जोर देकर कहा है कि जो स्मारक-कोष जुटाया जा रहा है, उसके हितमें पूर्वनिर्धारित दौरेके लिए मेरा फिलहाल कलकत्ता न छोड़ना आवश्यक है। मैं यहाँ अपनी उपस्थितिकी उपयोगिता जरूर समझता हूँ, लेकिन सतकौड़ी बाबूसे बातचीतके बाद मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि दौरेका पूर्व प्रकाशित कार्यक्रम छोड़ना नहीं चाहिए। आखिरकार जो चन्दा लगातार चला आ रहा है, वह उन हजारों लोगोंकी ओरसे ही तो आ रहा है जो अपने हृदयोंमें कृतज्ञता महसूस करते हैं। व्यक्तिगत रूपसे मेरे मनमें यह आशंका कभी नहीं उठी कि बंगाल उदारतापूर्वक चन्दा न देगा। हमारा राष्ट्र कृतघ्न नहीं है और कृतज्ञतामें कोई दूसरा प्रान्त बंगालसे बढ़कर हो ही नहीं सकता। समुचित उद्देश्य सामने आनेपर बंगाल ऊँचेसे-ऊँचे स्तरतक उठनेकी क्षमता रखता है। और देशबन्धुके सम्मानमें स्मारक खड़ा करनेसे अधिक उचित पवित्र तथा आवश्यक उद्देश्य और कौन-सा हो सकता है? इसलिए मैं चन्दोंके लगातार आते रहनेको निरापद करनेके लिए कलकत्तेमें अपनी उपस्थिति परमावश्यक नहीं मानता और इस पूरे विश्वासके साथ दौरा सम्पन्न करूँगा कि दान अटूट क्रमसे तबतक आता रहेगा जबतक दस लाखकी पूरी रकम इकट्ठी नहीं हो जाती। यह लेख लिखते समय मुझे ज्ञात हुआ है कि अभीतक आई हुई रकम २,४०,००० रु० से ऊपर है; जिसमें से ६१,००० रु० से अधिक तो आजका ही चन्दा है, जो अभी कोषाध्यक्षके पास पहुँचना है। यदि चन्दा इसी प्रकार आता रहा, और न आते रहनेका कोई कारण नहीं है तो इस महीनेके मध्यतक हम दस लाख जमा कर लेंगे। यह बात कि हम

जूनके अन्ततक पूरी रकम जमा नहीं कर पाये, बंगालको दोषी नहीं ठहराती। सम्भावना थी, लेकिन सम्भावना-भर ही थी कि हमारे पासके बचे हुए आठ दिनोंमें चन्दा पूरा इकट्ठा कर लिया जाता। इसकी सफलताके लिए सर्वांगपूर्ण संगठन अथवा योग्यता और थोड़े-से लोगोंमें पूरी रकम उगाहनेकी प्रबल इच्छा, यही बातें जरूरी थी। मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि मैं जहाँ-कहीं भी गया हूँ, मैंने देनेकी इच्छा पाई है, लेकिन व्यापारमें बहुत मन्दी आ जानेके कारण बड़ी रकमें देनेकी क्षमताका अभाव है। और यह भी स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर लेना चाहिए कि भारतमें कहीं भी हम इतने संगठित नहीं हो पाये हैं कि थोड़े-से समयमें ही छोटी-छोटी रकमें देनेवालों तक पहुँच सकें। यह देशबन्धुकी स्मृतिके प्रति श्रद्धाका द्योतक है कि जैसा-तैसा संगठन जिसे कि समिति खड़ाकर पाई है, उसके जरिये भी छोटी रकमें इस तरह आ रही हैं। कमसे-कम ६ कार्यकर्ता तो रुपये प्राप्त करनेमें सुबहसे रातके दस बजेतक और इससे भी देरतक जुटे रहते हैं। उन क्लर्कोंकी सूचीका इसमें उल्लेख नहीं किया गया है जिन्हें सर राजेन्द्रनाथने चन्दे प्राप्त करने और आने, पैसे और धेले देनेवालोंके नामोंकी बहुत लम्बी सूचियोंकी नकल करनेके काममें लगा रखा है। इसलिए मैं अपने मनमें चन्दोंकी वसूलीके बारेमें किसी प्रकारसे शंकित हुए बिना अपना बंगालका शेष दौरा खतम करनेका काम शुरू करूँगा। परन्तु मैं इस दौरेके कार्यक्रममें उल्लिखित स्थानोंमें निमन्त्रित करनेवाले सज्जनोंको इस बातसे भी अवगत कराना चाहूँगा कि दौरेमें मेरा मुख्य कार्य देशबन्धुका जीवन्त सन्देश सुनाना और स्मारकके लिए चन्दा इकट्ठा करना होगा। मैं आशा करता हूँ कि वे विभिन्न स्थानोंमें मेरे जानेका कार्यक्रम इस बातको नजरमें रखते हुए बनायेंगे कि अधिकसे-अधिक रकम जमा की जा सके। मेरा विश्वास है कि वे स्वागत-प्रबन्धोंपर अधिक धन खर्च नहीं करेंगे। निवेदन है कि किसी प्रकारकी सजावट न की जाये और स्वागतके लिए जमा रकमोंको यथासम्भव अधिकसे-अधिक बचाया जाये और वह धन स्मारक कोषमें दे दिया जाये, जैसा कि उत्तरी कलकत्तामें पहलेसे ही किया जा रहा है। मैं यहाँपर इस बातका कृतज्ञतापूर्वक उल्लेख करना चाहता हूँ कि बंगालके सभी हिस्सोंसे, और भारतके अन्य उन सभी भागोंसे जहाँ बंगाली जा बसे हैं, मनीऑर्डर धड़ाधड़ आ रहे हैं और अनेक रकमें तार द्वारा प्राप्त हो रही हैं।

मैं यह भी बता दूँ कि जो लोग १४८, रसा रोडपर फिलहाल चन्देकी रकमें प्राप्त कर रहे हैं, मेरी कुछ दिनोंकी अनुपस्थितिमें, जो आगामी शनिवारके तीसरे पहरसे शुरू होकर आनेवाले बुधवारतक जारी रहेगी, अपना काम जारी रखेंगे। मैं इसी माह ही ९ तारीखको बृहस्पतिवारको — कलकत्ता लौटनेकी आशा करता हूँ और उसी दिन सिराजगंज तथा अन्य स्थानोंके लिए चल दूँगा। वहाँसे फिर रविवार बारह तारीखको सुबह लौटूँगा।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २-७-१९२५

२०५. चूड़ियोंकी वर्षा

मैदानमें आमसभाका दृश्य अनोखा था।[1] स्वयंसेवकों द्वारा की गई व्यवस्था बहुत ही अच्छी थी। पूर्ण शान्तिके साथ प्रस्ताव पारित हो जानेतक एक भी व्यक्ति अपने स्थानसे नहीं हिला। इतना विशाल श्रोता-समुदाय साराका-सारा पूरे एक मिनट तक मौन खड़ा रहा। मैंने बंगालमें पहले कभी इतनी उच्च कोटिकी, इतनी मर्यादा-पूर्ण, इतने गाम्भीर्यपूर्ण वातावरणमें और इतनी श्रद्धापूर्ण कोई सभा नहीं देखी। मैं उन लोगोंको जो मैदानमें एकत्र हुए और उन स्वयंसेवकोंको जिन्होंने सभाका प्रबन्ध किया, बधाई देता हूँ। मुझे खेद है कि यद्यपि मेरी इच्छा बहुत थी, मैं टाउन हॉलकी सभामें शरीक न हो सका। स्त्रियोंकी सभामें मुझे एक घंटेसे ऊपर रुकना पड़ा यानी वहाँ मैं पौने आठ बजेतक रहा। इस सभाका दृश्य अनोखा ही था। भारतकी इन श्रद्धालु बेटियोंने अपीलके उत्तरमें सोनेकी चूड़ियाँ, अँगूठियाँ और कंठहारोंकी वर्षा कर दी। ५०० रु० के अलावा, सोनेकी ६० चूड़ियाँ, ६ जंजीरें, १६ अँगूठियाँ, जिनमें कुछ जड़ाऊ थीं, और २०-से ऊपर बुन्दे प्रदान किये। मुझे आशा है कि कलकत्तेकी महिलाएँ सभामें शुरू किये गये कामको जारी रखेंगी और जिन्हें उस सभामें शरीक होनेका मौका नहीं मिल पाया, वे अपना हिस्सा भेज देंगी। महिलाओंसे चन्दा वसूल करनेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए सबसे सरल तरीका यह है कि वे अपने मित्रवर्गमें ही चन्दा वसूल करते जायें। मुझे पता चला है कि इससे पहले अवसरोंपर अनधिकृत लोगोंने चन्दा इकट्ठा करनेमें धोखेबाजी की है, और चूंकि चन्दा इकट्ठा करनेके प्रमाणपत्र भी जाली बना लिये गये थे, इसलिए समितिने महिलाओंको अधिकार-पत्र देनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं ली है। इसी कारणसे मैं इस बातपर जोर दे रहा हूँ कि जो लोग चन्दा इकट्ठा करें वे केवल अपने मित्रोंसे ही चन्दा लें, ताकि धोखाधड़ीकी सम्भावना न रहे।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २-७-१९२५

१. देखिए "अपील: देशबन्धु श्रद्धांजलि-सभाके सम्बन्धमें", २७-६-१९२५ से पूर्व।

२०६. हिन्दुओंको सलाह[1]

कलकत्ता
२ जुलाई, १९२५

उन हिन्दू बस्तियोंमें जहाँ गांधीजीने हिन्दुओंको सम्बोधित किया मौलाना आजाद भी मौजूद थे। श्री गांधीने कहा कि आप लोग लाठियाँ फेंक दें, हृदयसे वैरभाव निकालकर उसे स्वच्छ बनायें। आप लोगोंने मुसलमान भाइयोंको मारा-पीटा सो बुरा किया है। मुझे खबर मिली है कि हिन्दुओंकी आँखोंके सामने कोई कुर्बानी नहीं की गई थी और यदि कुर्बानी की भी गई थी तो हिन्दुओंको मनुष्योंकी हत्या करनेका कोई अधिकार नहीं था। जिस प्रकार हिन्दू-शास्त्रोंका आदेश है कि गोरक्षा की जाये, उसी प्रकार यह भी आदेश है कि गोरक्षाकी खातिर मानवोंकी रक्षा की जाये। उन्हें मनुष्योंके प्राण लेनेका कोई हक नहीं है। गोहत्याकी अपेक्षा मानवोंकी हत्या करना अधिक बड़ा अपराध है। यदि हिन्दू धर्मका यह अर्थ है कि किसी गलत कामको उससे भी बड़ा अपराध करके सही बनाया जाये तो मैं ऐसे हिन्दू-धर्मका अनुयायी नहीं हूँ। श्री गांधीने आगे कहा:

यदि आपने अपराध किया है तो मैं आपकी मदद करने नहीं आया हूँ। मैं अपराधीसे कहूँगा कि वह आगे आये और कहे: 'मैंने मनुष्योंको जानसे मार दिया है या उन्हें जख्मी किया है।' वह पुलिसके समक्ष अपना अपराध स्वीकार करे और जेल जाये या सूलीपर चढ़े।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३-७-१९२५

२०७. वक्तव्य: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको

कलकत्ता
२ जुलाई, १९२५

शामके करीब चार बजे जब मैं स्मारकके हस्ताक्षरकर्त्ताओंकी सभामें था, श्री जे० एम० सेनगुप्तने सभाको सूचित किया कि एक आदमी यह सूचना लाया है कि खिदरपुर गोदीकी कुली बस्तीमें भीषण दंगे शुरू हो गये हैं। खबर लानेवाला आदमी बाहर खड़ा हुआ है। हमने तत्काल उस आदमीको अन्दर आनेको कहा और उसकी बात सुनकर मैंने श्री सेनगुप्तको सुझाव दिया कि वे टेलीफोन करके पता लगायें कि वास्तवमें मामला क्या है। अस्तु उन्होंने मोटरसे स्वयं वहाँ जाकर स्थितिका पता

१. बकरीदके मौकेपर कलकत्तेमें हुए दंगोंके अवसरपर। देखिए अगला शीर्षक भी।

लगाना पसन्द किया। उपद्रवस्थलपर पहुँचकर उन्होंने टेलीफोनसे मौलाना अबुल कलाम आजादसे कहा कि वे भी वहाँ पहुँचें और मुझे भी साथ लेते आयें। मौलाना साहब आये और हम तत्काल मोटरसे खिदरपुर गये। करीब साढ़े पाँच बज चुके थे। रास्तेमें हमने बहुत-से उत्तेजित मुसलमानोंको यह कहते सुना कि अनेक मुसलमान मार डाले गये हैं। उनके पास लाठियाँ थीं। मौलाना साहबने उन्हें शान्त किया और उनसे कहा कि वे और मैं मामलेकी जाँच करने जा रहे हैं और हुआ चाहे जो हो उसका बदला लेनेकी बात उन्हें नहीं सोचनी चाहिए, जिसे वे हिन्दुओंकी ज्यादती मानते हैं। उन्होंने मौलाना साहबकी बात सुनी और तितर-बितर हो जानेको राजी हो गये। जब हम उसी बस्तीके फाटकपर पहुँचे तब हमें श्री सेनगुप्त मिले। उन्होंने हमें बताया कि जब वे वहाँ पहुँचे तब लोग खुलकर लड़ रहे थे। लड़ाई बन्द हुई परन्तु कठिनाईके साथ। वहाँ पहुँचनेके सभी रास्तोंपर तैनात पुलिस किसीको अन्दर नहीं जाने देती थी और ऐसा लगा कि अहातेसे सब बाहरी लोग हटा दिये गये थे। फिर हम कुलियोंकी बैरकोंकी तरफ गये और रास्तेमें लाठियोंसे लैस हिन्दुओंकी एक बड़ी भीड़ देखी। यह पूछनेपर कि आप लोग यहाँ क्यों जमा हैं, उन्होंने कहा कि वे वहाँ आत्मरक्षाके लिए जमा हुए हैं, क्योंकि उन्हें मुसलमानोंके हमलेका अन्देशा है। मैंने उनसे कुछ देर बात की और उन्हें बताया कि हमें जो सूचना मिली है, उससे जाहिर होता है कि हिन्दुओंने ही मुसलमानोंको निर्दयतापूर्वक मारा है, जिनकी तादाद हिन्दुओंकी अपेक्षा बहुत कम थी। और मैंने उनसे यह भी कहा कि यदि उन्होंने गलत काम किया है तो उन्हें क्षमा माँगनी चाहिए। उनमें से एकने कहा कि प्रथाके विपरीत लाइनोंमें एक गाय मारी गई है, उसीसे कुली उत्तेजित हो उठे थे। फिर हम उस जगह गये जहाँ गायके मारे जानेकी बात बताई गई थी। वहाँ पहुँचनेपर हमने पाया कि जहाँ गाय मारे जानेका स्थान दिखाया गया था वहाँ किसी भी गायके मारे जानेका कोई चिह्न नहीं था। कुछ हड्डियाँ वगैरह अवश्य पड़ी थीं। वहाँ मौजूद मुसलमानोंने हमें बताया कि गाय एक मसजिदमें मारी गई थी और खाल उतारनेके पश्चात् माँस उनके घरोंमें गाड़ी द्वारा लाया गया था। वहाँ कोई खून या गोवध सूचक कोई चिह्न नहीं था। जब हम लोग पूछताछ कर रहे थे उस समय पुलिस कमिश्नर श्री टेगर्ट मौजूद थे। मेरे निष्कर्षके अनुसार दोष सरासर हिन्दुओंका ही लगता है। मैंने वही कहा भी और इसका तीव्र प्रतिवाद नहीं किया गया। हिन्दुओंने मुसलमानोंसे क्षमा-याचना भी की थी और उनसे कहा कि हम अब ऐसी गलती कभी नहीं करेंगे। उस समयतक पुलिस कमिश्नरके पास जो खबर पहुँची थी, उसके अनुसार कोई मौत नहीं हुई थी, हालाँकि अनेकों आहत मुसलमानोंमें से दोकी हालत गम्भीर थी। मौलाना साहबने मुसलमानोंको शान्त किया और उनको बताया कि उन्हें बढ़ा-चढ़ाकर दी गई खबरोंको कोई महत्त्व नहीं देना चाहिए और अभीतक कोई मौत नहीं हुई है। उन्होंने उनसे कहा कि आप सब लोग चुपचाप तितर-बितर हो जायें। मुसलमान राजी हो गये। हमने जो सुना है और देखा उसे सच माना जाये तो इस बातमें कोई सन्देह नहीं रहता कि हिन्दू कुली सरासर गलतीपर थे और उन्होंने बेकसूर

मुसलमानोंको चोट पहुँचाई थी और वे कमसे-कम एक मौतके लिए, जिसका अब मुझे निश्चित पता चल गया है, जिम्मेदार थे। 'एसोसिएटेड प्रेस' के प्रतिनिधिने मुझे जो खबर भेजी है उसके अनुसार अस्पताल भेजे गये हिन्दुओंमें से एक भी जख्मी नहीं था। बिना जख्मी हुए लोगोंको अस्पताल भेजना बहुत ही भद्दी और बेजा बात है। मैं तो आशा करता हूँ कि अनाचार करनेवाले हिन्दू अपनेको अधिकारियोंके हवाले कर देंगे।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३-७-१९२५

२०८. भाषण: खड़गपुरकी सार्वजनिक सभामें

४ जुलाई १९२५

महात्माजी इंडियन इंस्टीटयूटसे इंडियन रिक्रिएशन ग्राउंडमें गये। वहाँ करीब २०,००० लोग एकत्र थे। वे सभी जमीनपर बैठे थे। बंगाल नागपुर रेलवेके बहुत-से यूरोपीय अधिकारी भी सभामें उपस्थित थे और वे उत्सुकतासे महात्माजीको देख रहे थे। महात्माजीने हिन्दीमें भाषण दिया।[1] उन्होंने बकरीदके दिन खिदरपुरमें हुए खेद-जनक हिन्दू-मुस्लिम दंगेका उल्लेख करते हुए कहा कि इसमें पूरी तरहसे हिन्दुओंका कसूर है। उन्होंने जोरदार शब्दोंमें हिन्दू-मुस्लिम एकताकी वकालतकी और आशा व्यक्त की कि हिन्दू मुसलमानोंकी धार्मिक रस्मोंमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे। उन्होंने मुसल-मानोंसे भी प्रार्थना की कि वे अपने हिन्दू भाइयोंकी भावनाओंको अपने कार्योंसे ठेस न पहुँचायें।

अन्तमें उन्होंने देशबन्धु स्मारक कोषमें चन्दा देनेकी अपील की और वहींकी-वहीं एक बड़ी रकम इकट्ठी हो गई।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ७-७-१९२५

१. मूल भाषण उपलब्ध नहीं है।

२०९. समस्याएँ

एक मित्र लिखते हैं:[1]

इस भाषामें सुधार करनेकी आवश्यकता है। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने ऐसा कहा हो कि गलत तौरपर सत्याग्रह किये जानेमें भी चिन्ताकी बात नहीं है। गलत तौरपर की गई प्रत्येक बात अवश्य ही खतरनाक है। मैंने यह जरूर कहा है कि सत्याग्रहीके आग्रहमें गलती हो तो उसका दुःख खुद उसीको भोगना पड़ेगा और यह ठीक है। जिसके प्रति सत्याग्रह किया गया हो उसे दुःख हो तो उसका जिम्मेवार सत्याग्रही नहीं हो सकता। सत्याग्रहीका उद्देश्य प्रतिपक्षीको दुःख पहुँचाना होता ही नहीं है। प्रतिपक्षी अपने आप दुःख माने या दुखी हो तो सत्याग्रहीको उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मैं शुद्ध भावसे उपवास करूँ और उससे मेरे साथियोंको दुःख हो तो उसे सहन कर लेना ही मेरे लिए ठीक होगा।

इस उदाहरणमें कहा गया है कि 'बापको गुस्सा आ गया था।' सत्याग्रही तो क्रोधित होता ही नहीं, अनिच्छासे हो जाये तो जबतक रोष उतर न जाये तबतक सत्याग्रही रोषका अवसर देनेवालेके विरुद्ध कोई भी कार्रवाई न करेगा। फिर बहुत विचार करनेके बाद भी उसे ऐसा लगे कि माँ-बापने जो व्यवहार किया है वह दोष-युक्त जरूर है तो उसे सुधारनेकी कोशिश करे और उसके ऐसा करते हुए, सोलहों आना विनयका पालन करते हुए भी, यदि उसके माँ-बाप आत्मघात कर लें तो सत्याग्रही इस सम्बन्धमें निःशंक रहे। माँ-बाप यदि अज्ञानवश होकर खुदकुशी करें तो उसके जिम्मेवार वे खुद हैं। माँ-बाप जब खुद ही दुःख मोल लें तो उसके लिए बेटा कैसे जिम्मेवार हो सकता है? माँ-बाप जब बेटेको पापाचरणके लिए कहें और लड़का उसके अनुसार आचरण न करे और इसके फलस्वरूप माँ-बाप आत्महत्या कर लें तो इसमें लड़केका क्या दोष? प्रह्लादने रामनाम लेनेका आग्रह किया। इससे हिरण्यकशिपु क्रुद्ध हुआ और अन्तमें उसका नाश हुआ। इसकी जिम्मेवारी प्रह्लादपर बिलकुल नहीं आती। रामने पिताके वचनका पालन किया। उसके कारण दशरथकी मृत्यु हुई। उसके दोषी राम नहीं कहे जा सकते। प्रजा दुःख-सागरमें डूब रही थी, फिर भी रामने अपना हृदय कठिन करके अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया। सत्यवतीको असीम दुःख होनेपर भी भीष्म अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहे। इसमें याद रखने लायक बात यह है कि सत्याग्रही अपना धर्म किसीके सिखानेसे नहीं सीख सकता। वह तो स्वयं स्फुरित होना चाहिए। रामने वन जानेसे पूर्व गुरुजनोंसे परामर्श नहीं किया था। यह कहनेवाले धर्माचार्य मौजूद थे कि वन जाना पाप है और न जाना पाप नहीं है फिर भी उन्होंने वन जाकर अपने धर्मका पालन किया और अपना नाम अमर किया। हमारे इस दुखी देशमें कायरता इस हदतक बढ़ गई है कि लोग बात-बात

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

पर आत्मघात करने, अनशन करने आदिकी धमकियाँ देते हैं। ऐसी धमकियोंकी परवाह नहीं की जा सकती, चाहे हम यह भी क्यों न जानते हों कि धमकीका सच हो जाना सम्भव है। मैं सत्याग्रही-अनशन और दुराग्रही-अनशनका भेद 'नवजीवन' में कई बार स्पष्ट कर चुका हूँ।

वही मित्र एक दूसरा उदाहरण पेश करते हैं, जो यहाँ दे रहा हूँ:[1]

पतिका धर्म है कि वह मर्यादाके अनुसार और यथाशक्ति पत्नीके रहने, खाने और पहननेका प्रबन्ध करे। धनी अवस्थामें पति जैसा सुखोपभोग करा सका है, वैसा गरीब होनेपर नहीं करा सकता। यदि पति अज्ञानवश आमोद-प्रमोद करे, शराब पीए और विदेशी वस्त्र पहने एवं अपनी पत्नीको भी ऐसा ही करने दे तो उचित यह है कि ज्ञान हो जानेपर वह इन बातोंको स्वयं छोड़ दे और अपनी पत्नीसे भी छुड़वा दे। यहाँ विवेकके लिए स्थान है। दुनियामें सामान्य व्यवहार यह देखा जाता है कि पत्नीको पतिके विचारके अनुकूल रहना चाहिए। परन्तु पति पत्नीसे अथवा पिता अपने पुत्र-पुत्रियोंसे कोई काम बलात् नहीं करा सकता। यदि कोई स्वयं खादी पहनना आरम्भ करनेपर अपनी पत्नीको अथवा वयस्क पुत्रों और पुत्रियोंको खादी पहननेके लिए विवश करे तो यह पाप है; परन्तु वह उनके लिए विदेशी वस्त्र खरीदनेके लिए बाध्य नहीं है। यदि यह उसके वयस्क बेटोंको उचित न लगे तो वे अलग हो सकते हैं। परन्तु पत्नीका मामला नाजुक है। पत्नी सहसा अलग नहीं हो सकती। उसमें सामान्यतः अपनी जीविकार्जन करनेकी शक्ति नहीं होती; अतः मैं ऐसे प्रसंगोंकी कल्पना कर सकता हूँ जब पत्नी समझानेसे न माने तो उसको विदेशी वस्त्र खरीद कर देना कर्त्तव्य हो जाता है। विदेशी वस्त्रका त्याग एक धर्म छोडकर दूसरा धर्म ग्रहण करनेके समान है। पति जितनी बार अपना धर्म बदले पत्नीको भी उतनी ही बार धर्म बदलना चाहिए, यह नियम नहीं है और होना भी नहीं चाहिए। पतिको पत्नीका और पत्नीको पतिका विधर्म सहन करना चाहिए। इसलिए यदि इस स्थितिमें पति पत्नीके लिए विदेशी वस्त्र खरीदे तो उसकी धमकीसे डरकर नहीं बल्कि यह समझकर खरीदे कि पत्नीसे जबर्दस्ती नहीं करनी चाहिए। फर्ज करें कि पत्नी स्वयं विदेशी कपड़ा पहनना चाहती है, इतना ही नहीं बल्कि वह यह भी चाहती है कि उन्हें उसका पति भी पहने और यदि पति उसकी बात नहीं मानता तो वह आत्महत्याकी धमकी देती है; तब पतिको चाहिए कि वह उसकी धमकीकी परवाह हरगिज न करें।

तीसरा उदाहरण इस तरह है:[2]

मेरे मनमें इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि पिताको अपार दुःख होता हो तो भी पुत्रको उचित है कि वह अस्पृश्यता त्याग दे। यहाँ भी वैसी ही सावधानी बरतनेकी जरूरत है जैसी मैंने पहले उदाहरणमें सुझाई है। यह निष्ठुरताकी बात

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें कहा गया था कि एक स्त्रीने अपने पतिको धमकी दी है कि ५०० रुपयेका विदेशी कपड़ा खरीदकर न दोगे तो मैं आत्मघात कर लूँगी।

२. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें कहा गया था कि एक पिताने अपने पुत्रको यह धमकी दी है कि यदि तुम अस्पृश्योंको स्पर्श करोगे या उनके मुहल्लेमें जाओगे तो मैं प्राण दे दूँगा।

ऐसे लोगोंके लिए नहीं लिखी गई है जिन्होंने मेरे लेखोंको पढ़कर अस्पृश्यताको महा-पाप मान लिया है। यह तो केवल उनके लिए ही लिखी गई है जिन्हें यह हार्दिक विश्वास हो गया है कि अस्पृश्यता महापाप है। इसका अर्थ यह हुआ कि जबतक हम केवल बुद्धिसे इस बातके कायल हो पाये हैं तबतक पिताकी आज्ञाकी अवहेलना नहीं की जा सकती, क्योंकि उसका पालन करना हृदयका गुण है। यदि किसीके कहनेसे प्रह्लादने रामका नाम लेनेका आग्रह किया होता तो उसका धर्म था कि वह पिताके मना करनेपर रामका नाम लेना छोड़ देता।

चौथा और आखिरी दृष्टान्त यह है:[1]

मैं पति-पत्नीका धर्म यह नहीं मानता कि यदि उनमें से एक विकार-वश हो तो दूसरा उसकी वासनाको तृप्त करनेके लिए बाध्य है। एक विकार-वश होनेपर दूसरेको भी उस विकारमें सम्मिलित करे तो वह बलात्कार है। पति या पत्नीको बलात्कारका अधिकार नहीं है। विकार आगकी तरह है। वह मनुष्यको सूखी घासकी तरह जलाता है। सूखी घासके ढेरमें एक तिनकेको सुलगा दें, बस सारा ढेर भस्म-सात् हो जायेगा। हमें हरएक तिनकेको अलहदा-अलहदा जलानेका कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। एकके मनमें विकार उत्पन्न होता है तो उसका प्रभाव दूसरेपर होता है। दम्पतीमें से एकके मनमें विकार उत्पन्न होनेपर दूसरा निर्विकार रह सके तो मैं उसकी हजार बार वन्दना करता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-७-१९२५

२१०. मनोरंजक शिक्षा

हमें अंग्रेजी स्कूलोंमें खगोलकी कुछ जानकारी दी जाती है; अथवा यों कहें कि मेरे वक्तमें दी जाती थी। गुजराती स्कूलोंमें तो वह दी ही कैसे जा सकती थी? अंग्रेजी स्कूलोंमें भी उसके बारेमें जो-कुछ बताया जाता था वह भी इस प्रकारसे बताया जाता था कि शिक्षकको एक बार भी आकाशमें छात्रोंको तारे दिखानेकी बात कभी सूझती ही न थी। फिर यदि सूझती भी तो वह बेचारा बताता क्या? मुझे इसमें शंका है कि यदि उसे कोई मंगल ग्रह दिखानेके लिए कहता तो वह दिखा सकता था या नहीं। फिर भी यह विषय आकाशके ग्रह और तारोंके पहचाननेके सम्बन्धमें है, इस कारण यह आकाशमें उन्हें दिखाकर ही पढ़ाया जाना चाहिए।

उस समय ऐसा कुछ भी नहीं किया जाता था। मैं यह तो जानता था कि यदि यह विषय आकाश दिखाकर पढ़ाया जाए तो इसमें बहुत रस आ सकता है, किन्तु इसका विशेष ज्ञान तो मुझे यरवदा तीर्थमें ही हुआ। वहाँ हमें बाहर खुलेमें

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें कहा गया था कि पतिने ब्रह्मचर्यका व्रत ले लिया है। उसके चारों बच्चे जो उत्पन्न हुए थे मर गये हैं। पत्नी चाहती है कि उसके और सन्तान हो।

सोनेकी अनुमति प्राप्त थी, इससे मेरी तारोंसे वार्ता करनेकी इच्छा बहुत तीव्र हो गई थी। किन्तु मुझे तारोंकी भाषा तो आती नहीं थी, अतः मैं उनसे क्या बात कर सकता था? मुझे तारोंकी यह भाषा पुस्तकसे सीखनी चाहिए थी किन्तु वह सम्भव नहीं हो सका; क्योंकि मैं तो वहाँ दूसरा काम आरम्भ कर बैठा था। मुझे वहाँ छः वर्ष बिताने थे, इसलिए मुझे यह आशा थी कि मैंने 'उपनिषद्' आदि पढ़नेका जो निश्चय किया है वह पूरा हो जानेपर मैं इन नभवासियोंसे बात करना सीख लूँगा।

किन्तु मेरे भाग्यमें तो निरंजनका निधन देखना बदा था, अतः मैं यरवदा जेलमें जी-भर कर नहीं रह सका। बीमारीके बहाने विधाताने मुझे वहाँसे बाहर ढकेल दिया और मैं ग्रह-मण्डलके ज्ञानसे वंचित रह गया। मुझे भाई शंकरलालसे ईर्ष्या होती है। वे हर रातको हाथमें पुस्तक लेकर नभचारी नक्षत्रोंकी पहचान करनेमें लग गए हैं। इस विषयका अध्ययन मनोरंजक ढंगसे कैसे किया जा सकता है, इसका नमूना एक हस्तलिखित समाचारपत्रमें मेरे सम्मुख प्रस्तुत है। मैं इसे नीचे उद्धृत करता हूँ:[1]

यदि पाठकोंको इस उद्धरणमें वर्णित आनन्दका अनुभव करना हो तो जिस रातको आकाशमें बादल न हों उस रातमें वे आकाशपर दृष्टि डालें। यदि उनको ग्रहोंका ज्ञान बिलकुल न हो तो उनकी स्थिति मेरी-जैसी ही दयनीय होगी। किन्तु वे इसमें से तुरन्त निकल आएँ। वे कोई ऐसी गुजराती पुस्तक मँगाकर उसे पढ़ जाएँ, जिससे वे मनोरंजक ढंगसे खगोल विद्या सीख सकें। यदि उनको यह पूछना हो कि यह पुस्तक कहाँसे मँगाई जाए तो वे गुजरात विद्यापीठसे पूछ लें। यदि वहाँसे यह जानकारी न मिले अथवा पुस्तक उपलब्ध नहीं है, ऐसी सूचना मिले तो वे गुजरात विद्यापीठको जो चन्दा देते हों वह उसे देना बन्द कर सकते हैं; किन्तु यदि पुस्तक मिल जाए और उन्होंने विद्यापीठको कभी चन्दा न दिया हो तो शुरू कर दें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-३-१९२५

२११. टिप्पणियाँ

देशबन्धुकी महायात्रा

शास्त्रोंमें कहा है कि जिस प्रकार कोई गृहस्थ अपने घरके जीर्ण हो जानेपर नये गृहमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार देहस्थ आत्मा एक देहके जीर्ण होनेपर उसका त्याग करती है, दूसरा नया तैयार करती है और उसमें रहती है। जिस तरह गृहस्थको पुराना टूटा-फूटा मकान भी सहवासके कारण छोड़ना अच्छा नहीं लगता, उसी तरह जीवको भी दीर्घ सहवासके कारण इस देहको छोड़ना अच्छा नहीं लगता, भले ही पैर फूलकर खम्भे बन गये हों, या शरीर छीज-छीजकर हड्डियोंका ढाँचा-भर रह गया हो या साँस लेना दूभर हो चुका हो। फिर भी नया घर बन जानेपर हम

१. यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है।

पुरानेको भूल जाते हैं। उसी प्रकार जीवको नया घर मिल जानेपर पुराने घरकी यादतक नहीं रहती। ऐसा है मृत्यु और जन्मका खेल। इस स्थितिमें भय और शोकका कारण ही क्या है? मौतको मौत न समझते हुए, महायात्रा समझना ही ज्यादा ठीक है।

इस महायात्रामें यदि हमें देशबन्धुकी आत्माको शान्ति देनी हो तो हमारे पास एक ही इलाज है। हम उनके जितने सद्गुणोंको अपने भीतर उतार सकें, उन सबको उतारें। उनके बहुत-से सद्गुण तो अवश्य ही उतारे जा सकते हैं। उनकी-जैसी अंग्रेजी चाहे हमें न आ सके, उन-जैसे वकील चाहे हम सब न बन सकें और कौंसिलमें काम करनेकी उनकी-जैसी शक्ति चाहे हममें न हो, परन्तु हमारे मनमें उनकी तरह देश-प्रेम तो हो ही सकता है। हम उनकी-जैसी उदारता सीख सकते हैं। उनके बराबर धनका दान हम चाहे न कर सकें, परन्तु यथाशक्ति देना ही बहुत देना है। विधवाके दिये एक ताँबेके छल्लेकी कीमत महाराजाके अपनी करोड़ोंकी सम्पत्तिसे दिये गये हजार रुपयोंकी कीमतसे ज्यादा है। देशबन्धुने खादी पहननेके बाद फिर खानगीमें या बाहर उसका त्याग नहीं किया। क्या हम खादी पहनेंगे? देशबन्धुने महीन खादी कभी नहीं माँगी। उन्हें तो मोटी खादी ही पसन्द थी। देशबन्धुने कातनेका प्रयत्न किया था; जिन्होंने ऐसा नहीं किया है, क्या वे अब करेंगे?

अखिल भारतीय स्मारक

इस समय उनका स्मारक बनानेके लिए बंगालमें रुपया इकट्ठा किया जा रहा है। किन्तु क्या उनका कोई अखिल भारतीय स्मारक बनाये बिना काम चल सकता है? मैं यहाँ बंगालके स्मारकके लिए धनसंग्रह करनेमें व्यस्त हूँ, इसलिए मित्रोंसे परामर्श नहीं कर सका हूँ। किन्तु मैं स्वयं तो विचार कर ही रहा हूँ। यह काम किस प्रकार किया जाना चाहिए, इस सम्बन्धमें देशबन्धुका वसीयतनामा मेरे पास है। यह बंगालके वसीयतनामेकी तरह लिखित तो नहीं है; किन्तु है लिखित-जैसा ही। मैं इस सम्बन्धमें इस अंकमें विशेष नहीं लिखूँगा; किन्तु अगला अंक निकलनेसे पहले तो मेरी अपील[1] प्रकाशित हो चुकेगी।

पाठकोंको अपनी थैली खोलनेके लिए तैयार हो जाना चाहिए। चूँकि रुपया यथाशक्ति देना है, इसलिए घबरानेको कोई जरूरत नहीं है। देशबन्धुने जो रुपया दिया वह किसी भयसे नहीं दिया था, बल्कि स्वेच्छासे दिया था। रुपया देनेमें उन्हें हर्ष होता था। उन्होंने अपनी लाखोंकी वकालत एक क्षणमें छोड़ दी थी। ऐसा उन्होंने दुःखी मनसे नहीं, बल्कि इसलिए किया कि [देशकी उपेक्षा करके] वकालत करना उन्हें बर्दास्त नहीं हुआ। इसलिए मेरे सुझावसे किसीको घबराना नहीं चाहिए। देशमें ज्यों-ज्यों जागृति होती जाती है और जब-जब आकस्मिक संकट आते हैं त्यों-त्यों और तब-तब लोगोंको अपनी कमाईमें से थोड़ा-बहुत हिस्सा अवश्य देना चाहिए और उसके लिए तैयार रहना चाहिए। प्रेमका अर्थ केवल आँसू बहाकर बैठ रहना नहीं

१. देखिए "अपील: अखिल भारतीय देशबन्धु-स्मारकके लिए", २२-७-१९२५।

है। जबानी जमा-खर्च करना भी प्रेम नहीं, झूठी बकवास है। प्रेम तो मौन रहकर कुछ देने और कुछ करनेमें है। पितृभक्त पुत्र भाटकी तरह पिताके गुणोंका गान नहीं करता रहता; बल्कि पिताकी सम्पत्तिको सँभालता, सुधारता और बढ़ाता है। पिताकी सच्ची सम्पत्ति तो उसके सद्गुण हैं। वह उनको अपने जीवनमें उतारकर अपने पिताकी और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाता है। उसी प्रकार यदि हम देशबन्धुके सच्चे उत्तराधिकारी हैं तो हमें उनकी विरासतको सुरक्षित रखनेके लिए यथाशक्ति धन देना चाहिए।

कलकत्तेके गुजराती

गुजरातसे तो मेरे घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। मुझे कड़वी बातें कहनेकी टेव तो है ही, और इस टेवको हिन्दुस्तानने सह लिया है। किन्तु ज्यादासे-ज्यादा कड़वी बातें तो मैं गुजरातियोंसे ही कहता हूँ। वे उनका अर्थ उलटा नहीं समझते और मेरी कड़वी बातोंको वैद्यकी दवाओंकी तरह आरोग्यवर्धक मानकर मुझसे और भी अधिक प्रेम करते हैं। ऐसा अनुभव मुझे गत सप्ताह कलकत्ताके गुजरातियोंका हुआ। उन्होंने देशबन्धुके निधनपर शोक प्रकट करनेके लिए एक सभा की थी।[1] उन्होंने उसमें मुझे बुलाया और सभापति बनाया था। कार्यकर्ताओंने मुझे यह वचन दिया था कि वे धन-संग्रह भी करेंगे। मैंने देखा कि उन्होंने धनसंग्रह नहीं किया था। इस कारण मुझे दो कड़वी बातें कहनी पड़ीं। शोकसभा तो एक ही अच्छी लगती है, अनेक नहीं। शोक सभा मृत्युके दिन की गई थी। अब पहली जुलाईको देश-भरमें होगी। तब बीचमें दूसरी और जातीय सभा करनेका हेतु तो एक ही हो सकता है कि उसमें कोई रचनात्मक कार्य किया जाये या धनसंग्रह किया जाये। इस समय बंगालके गुजराती और मारवाड़ी आदि कुछ ऐसा ही कार्य करनेमें जुट सकते हैं। मैंने उनसे यह बात कही। इससे गुजरातियोंको रोष नहीं आया; किन्तु उन्होंने मेरी बातका मर्म समझ लिया और जिस नाट्यशालामें सभा हो रही थी उसीमें ऊपरकी गैलरियोंसे रुपयोंकी वर्षा होने लगी और तत्काल ६,००० से ज्यादा रुपया इकट्ठा हो गया। यदि उसमें कोई कम रुपया देता था तो उसे टोकनेवाले लोग भी तैयार थे। मुझे कहा गया है कि बहुत-से लोगोंने जितना दे सकते थे, उतना रुपया नहीं दिया है। मैं चाहता हूँ कि यदि ऐसी बात हुई हो तो वे लोग भूल सुधार लें। इस टिप्पणीका उद्देश्य तो कलकत्ताके गुजराती भाइयोंका आभार मानना ही है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-७-१९२५

१. देखिए "भाषण: कलकत्ताकी शोकसभामें", २६-६-१९२५।

२१२. पत्र : महादेव देसाईको

[६ जुलाई, १९२५][1]

चि० महादेव,

तुम्हें [जुदा होनेपर] जो दुःख हुआ, मैंने उसे तो समझ ही लिया है। क्या यही दुःख किसी दिन स्थायी नहीं हो जायेगा? अतः इस समय इतना अनिवार्य दुःख सह लो।

मुझे मोतीलालजीका तार मिला था। तुम वासन्तीदेवीसे मिल लेना। उनसे पूछकर वहींसे तार दे देना। यदि १४८ [रसा रोड]में उनकी सार-सम्भाल ठीक तरह हो सके तो वे अवश्य हमारे साथ रहें। फिर भी इस सम्वन्धमें वासन्तीदेवी जो चाहें वही करना ठीक है।

मुझे यहाँ भी तुम्हारा पत्र मिल गया है। वह चीज अवतक तो 'फॉरवर्ड' को भेज दी होगी। कभी-न-कभी तो वह छपेगी ही। उसकी नकल श्यामवावूको भेज देना।

खड़गपुरमें ५०० रु० और . . . में[2] ५०० रुपये चन्देके मिले हैं। दूसरोंने भी रुपया देनेकी आशा तो बँधा ही दी है। यहाँ मिदनापुरमें जितना मिल जाये उतना ही ठीक। राजेन्द्र वावू यहाँसे जुदा हो गये। वे यहाँसे पुरुलिया गये हैं।

वापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

वासन्ती देवीसे रोज मिलना। 'यंग इंडिया' के लिए दो कालम लायक सामग्री गाड़ीमें लिखी थी। यह हुआ तुम्हारे . . . के[3] पत्रका उत्तर।

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४३२) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

२. यहाँ अक्षर अस्पष्ट हैं।

३. यहाँ अक्षर अस्पष्ट हैं।

२१३. पत्र : महादेव देसाईको

आषाढ़ बदी १ [७ जुलाई, १९२५][1]

चि० महादेव,

तुम्हें कुछ-न-कुछ तो लिखूं ही। तुम्हारी भेजी हुई डाक मिल गई है। खादी प्रतिष्ठानके पतेपर भेजी हुई डाक अभी यहाँ नहीं पहुँची है। वहाँ जानेपर धन-संग्रहके सम्बन्धमें पत्रोंमें कुछ लिखूंगा। पत्रोंमें मेरे भाषणोंका सार तो छपता ही होगा। वह लेख ठीक है। मैंने यहाँ [मिदनापुरमें] रानीको चरखेका पाठ दिया है। उन्होंने कातनेकी प्रतिज्ञा भी की है। मैं चीनीसे पूछताछ तो अवश्य करूँगा। यदि वह रखा जा सके तो मैं उसे जरूर रखना चाहता हूँ। तुम उसे अपने पास रख लेना। वह हिन्दुस्तानी सीख ले तो अच्छा है। मैं कल दिनमें चार बार सोया। अभी मेरी सोनेकी भूख मिटी नहीं है। मुझे चाँदीके बर्तनोंमें खाना तो बहुतोंने सिखाया है, अब यहाँ शुद्ध सोनेके बर्तनोंमें खाना सीख रहा हूँ। लकड़ीकी मेरी रकाबी और उसमें सोनेका कटोरा! ऐसी पूजा कैसे स्वीकार की जा सकती है? मैं तो देखता ही रह गया। रानीसे मैंने एक शब्द भी नहीं कहा। क्या ईश्वर मेरी परीक्षा ले रहा है? वह कबतक मेरी ऐसी परीक्षा लेता रहेगा? इस देशमें कैसी श्रद्धा है? रक्षा करो, प्रभु, रक्षा करो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४३०) की फोटो-नकलसे।

२१४. भाषण : मिदनापुरके छात्रोंके समक्ष[2]

७ जुलाई, १९२५

गांधीजीने कहा कि समारोहके प्रारम्भमें छात्रों द्वारा मेरा स्वागत करनेसे मुझे प्रसन्नता हुई है। आगे बोलते हुए उन्होंने बताया कि मेरे वर्तमान दौरेका उद्देश्य देशबन्धु दासके उपदेशोंको कार्यरूप देना और उनके स्मारकके लिए चन्दा इकट्ठा करना है। देशबन्धुने अपना समस्त जीवन और सम्पत्ति युवकोंके कल्याणमें लगा दी थी। उनको युवकोंसे, विशेषकर छात्रोंसे, बहुत आशा थी और वे उनपर बहुत भरोसा रखते थे। महात्माजीने कहा कि इस यशस्वी देशभक्तके जीवनको बाह्य और आन्तरिक

१. डाककी मुहरसे।

२. यह भाषण छात्रों द्वारा भेंट किये गये मानपत्रके उत्तरमें दिया गया था। गांधीजीने भाषण हिन्दीमें दिया था। मूल भाषण उपलब्ध नहीं है।

दो रूपोंमें देखा जा सकता है; किन्तु उनका बाह्य जीवन उनके आन्तरिक जीवनको पूर्ण बनानेमें सहायक-भर होनेका प्रयत्न था। देशबन्धु राष्ट्रको शक्तिशाली बनाकर उसे स्वतन्त्र देखना चाहते थे। जहाँतक उनके बाह्य जीवनका सम्बन्ध है वह केवल धनी और शिक्षित लोगोंके लिए था जबकि उनके आन्तरिक जीवनका अनुकरण गरीब-अमीर, शिक्षित-अशिक्षित, बालक-बालिका, युवा और वृद्ध सभी समान रूपसे कर सकते थे। अपने जीवनके अन्तिम छः या नौ महीनोंमें उन्होंने गाँवोंके पुनर्गठन तथा पुनर्निर्माणके आदर्शको — जिसमें प्रत्येक आयु और सामाजिक स्तरके पुरुष और स्त्री भाग ले सकते थे — लोगोंके सम्मुख रखनेका प्रयत्न किया।

छात्रोंका ध्यान इस ओर खींचते हुए गांधीजीने कहा कि गाँवोंमें कार्य आरम्भ करनेका सबसे उत्तम और आसान तरीका प्रत्येक घरमें चरखेको दाखिल करना है। इस सम्बन्धमें दार्जिलिंगमें मैंने उनसे लम्बी बातचीत की और हम दोनों ही इस बातपर सहमत थे। देशबन्धुने अपनी मृत्युके कुछ दिन पहले बाबू सतकौड़ीपति रायको भी यह सब सूचित किया था। यह एक बड़े दुःखकी बात है कि अपने देशवासियोंके लिए तैयार की गई अपनी उस योजनाको पूरा करनेके लिए वे आज हमारे बीच नहीं हैं। यदि आपके मनमें अपने देशबन्धुके प्रति कुछ भी प्रेम व श्रद्धा है तो आपको प्रतिदिन कमसे-कम आधा घंटा कातने, कभी विदेशी कपड़ा न पहनने और तत्परता तथा लगनसे गाँवोंके पुनर्निर्माणका कार्य शुरू करनेकी शपथ लेनी होगी। अन्तमें उन्होंने छात्रोंसे अपील की कि अपने माता-पितासे आज्ञा लेकर वे यथाशक्ति देशबन्धु-स्मारक कोषमें चन्दा दें। उन्होंने उनसे सोनेके बटन तथा अन्य विलासिताकी वस्तुएँ, अपने नित्यके खर्चसे, यहाँतक कि दो-तीन दिन उपवास रखकर भी, पैसा बचाकर उसे कोषमें देनेको कहा। इस प्रकारका त्याग छात्रोंके लिए कोई नया नहीं है। अपने पिछले ३०–४० सालके राजनीतिक जीवनमें मुझे ऐसी सहायता बहुत बार मिली है। विशेषकर पिछले मलाबार बाढ़ सहायता-कोषमें। पर मैं आपको इस बातके लिए आगाह किये देता हूँ कि यदि आप यह त्याग स्वेच्छासे नहीं करते तो मैं एक भी पाई नहीं लूँगा। आप अपनेमें से या अपने बुजुर्गोंमें से किसीको अपना नेता चुन लें और उसकी मार्फत चन्दा इकट्ठा करें तथा नित्य कातने और कभी विदेशी कपड़ा इस्तेमाल न करनेकी शपथ लें।[1]

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ८-७-१९२५

१. उस दिन बादमें गांधीजीने महिलाओंकी सभामें तथा शामको सार्वजनिक सभामें गाँवोंके पुनर्निर्माणकी आवश्यकता, कताई, हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि विषयोंका उल्लेख करते हुए भाषण दिये। सभाओंमें उन्हें विभिन्न संस्थाओंने मानपत्र भी भेंट किये थे।

२१५. भाषण: बांकुड़ाकी सार्वजनिक सभामें[1]

८ जुलाई, १९२५

महात्माजीने कहा कि इस जिलेमें आकर मैंने अनिल बाबूकी विभिन्न गति-विधियों तथा लोगोंके मनपर उनके प्रभावके बारेमें सुना। अनिल बाबूके कार्यको चलाते रहनेकी दिशामें जनताको उत्साहित करते हुए गांधीजीने बताया कि वे जल्दी ही जेलसे रिहा हो जायेंगे। इसके बाद उन्होंने कहा कि मैं देशबन्धुके सन्देशका प्रचार करनेके लिए, उस दिवंगत महापुरुषने हमें त्याग, अनथक कर्मशीलता, मातृभूमिके प्रति अनन्त श्रद्धा और दीन-दुखी जनोंके प्रति प्रेमकी जो शिक्षा दी, उसीको आप लोगोंके हृदयमें उतारनेके लिए जगह-जगह घूम रहा हूँ।

गांधीजीने कहा कि आप केवल चन्दा देकर अथवा अपना नाम [स्वयंसेवकोंमें] लिखाकर ही नहीं वरन् गांवोंके पुनर्निर्माणके द्वारा स्वराज्य दलके कार्यको उत्तेजन दें। सबका कौंसिलोंमें प्रवेश पाना सम्भव नहीं है; पर पुनर्निर्माणका कार्य सब कर सकते हैं। जहाँतक चरखा और गाँवोंके पुनर्निर्माणका प्रश्न है, जब दार्जिलिंगमें हमारी चर्चा हुई उस समय मैं और देशबन्धु एक मत थे। जबतक गाँवोंका उत्थान नहीं किया जाता हमें स्वराज्य कैसे मिल सकता है? गाँवों और शहरोंको जोड़नेवाला एकमात्र साधन चरखा है। तमाम अकालों, बीमारियों तथा अन्य विपत्तियोंका कारण भारतकी गरीबी है। यह बात मैंने कांग्रेसके प्रारम्भिक कालमें भारतके पितामह दादाभाई नौरोजीके लेखोंसे समझ ली थी। हम उस गरीबीसे छुटकारा कैसे पा सकते हैं? चरखेको अपनानेसे आप चरखेकी सम्भावनाओंपर विचार करें। अन्तमें गांधीजीने देशबन्धु स्मारक कोषमें चन्दा देनेकी अपील की। इसपर बहुत-से रुपये-पैसे और आभूषण आने शुरू हो गये और सभा समाप्त हुई।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ११-७-१९२५

१. सभामें गांधीजीको जनता, जिला बोर्ड, नगरपालिका तथा बाँकुड़ा सम्मेलनोंकी ओरसे मानपत्र भेंट किये गये थे, जिनका उत्तर उन्होंने हिन्दीमें दिया। मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

२१६. टिप्पणियाँ

दो कठिनाइयाँ

एक प्रसिद्ध व्यक्तिने एक मित्रकी मार्फत नीचे लिखे सवाल 'यंग इंडिया' में उनका जवाब देनेके लिए मेरे पास भेजे हैं:

> १. आप मानते हैं कि अस्पृश्यता अकेले हिन्दू धर्मपर ही नहीं, सारी मनुष्य जातिपर एक धब्बा है। तब फिर आप उसके सुधारकोंका दायरा सिर्फ हिन्दुओंतक ही सीमित क्यों रखते हैं? हिन्दुओंकी तरह मुसलमान भी उसे सुधारनेमें हाथ क्यों न बँटायें?
>
> २. आप मुतवातिर हिन्दू-मुस्लिम एकतापर जोर देते हैं। पर क्या आप मेहरबानी करके यह बतायेंगे कि आपने इस्लाम या मुसलमानोंके लिए प्रत्यक्ष काम क्या किया है?

पहले सवालके बारेमें तो मैं यह कहूँगा कि यद्यपि अस्पृश्यताका पाप अकेले हिन्दू समाजपर ही नहीं, सारी मनुष्य जातिपर कलंक है तो भी यह एक ऐसा सवाल है जिसे हिन्दू धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य सवालोंकी तरह खुद हिन्दुओंको ही हल करना चाहिए। मिसालके तौरपर देवदासियोंके सवालको ही लीजिए। यह प्रथा कोई ऐसी-वैसी बुराई नहीं है। यह भी मनुष्य जातिपर एक लांछन है। फिर भी कोई अहिन्दू इस बुराईको उस रूपमें दूर करनेका इरादा नहीं करता जिस रूपमें कि हिन्दू कर रहे हैं। कारण स्पष्ट है। इन बुराइयोंको भीतरी सुधारके द्वारा दूर किया जाना चाहिए — बाहरसे जबरदस्ती लाद कर नहीं। ऐसा केवल हिन्दू ही कर सकते हैं। हाँ, मुसलमान, ईसाई तथा अन्य अहिन्दू सज्जन हिन्दू धर्मकी अन्य बुराइयोंकी तरह उसपर भी टीका-टिप्पणी करना चाहें तो शौकसे करें। वे सुधारकोंको अपना नैतिक सहयोग भी दे सकते हैं। परन्तु यदि वे इससे आगे जाकर कुछ करना चाहेंगे तो उनके ऊपर हिन्दू धर्मके खिलाफ बुरे इरादे रखनेका इल्जाम लगाये जानेकी सम्भावना पैदा हो जायेगी।

जहाँतक इल्जामका सम्बन्ध है, मुझे सिर्फ उसका उल्लेख करके ही सब्र रखना होगा। अगर मैं इस दिशामें अपने किये गये कामोंको गिनाने लगूँ तो वह एक नामुनासिब बात होगी। यदि मुझे मुसलमानोंके सामने यह साबित करना पड़े कि मैंने एकताके लिए प्रत्यक्ष क्या-कुछ किया है तब तो यही प्रकट होगा कि मैंने कुछ नहीं किया है और इसलिए मुझे इस प्रश्नमें निहित निन्दाको तबतक शिरोधार्य ही करना होगा, जबतक मेरी नेकनीयती अपने आप साबित नहीं हो जाती। पर आम मुसलमानोंके साथ इन्साफ करते हुए मुझे इतना तो जरूर कह देना चाहिए कि यह पहला मौका है जब मुझसे अपनी सेवाका प्रमाणपत्र तलब किया गया है। फिर भी,

मैं कहता हूँ कि सब्र रखकर इन्तजार करना भी सेवा करना ही है। यदि इन प्रसिद्ध सज्जनकी तरह बहुतसे मुसलमान मेरे सेवाकार्यकी जाँच करना चाहते हैं तो मैं उनसे कहूँगा कि वे इसमें अपना सिर न खपायें, इस आश्वासनपर कि मैं उनकी सक्रिय रूपसे न सही प्रार्थनापूर्वक तटस्थ रहकर अप्रत्यक्ष रूपसे सेवा ही कर रहा हूँ।

वैद्योंकी शिकायत

मेरे वैद्यों और हकीमोंकी आलोचना करनेपर वैद्योंके दिलपर बहुत चोट पहुँची है। वे मुझपर मस्तिष्ककी दुर्बलताका दोष लगाते हैं और अपने प्रति मुझे अहिंसक नहीं मानते। मुझे खेद है कि मेरे कारण उनके दिलको चोट पहुँची। परन्तु मैं अपनेको अपराधी नहीं मान सकता। मैंने आयुर्वेदकी आलोचना नहीं की है। आलोचना उनकी की है जो वैद्य बननेका पाखण्ड रचते हैं। इनमें से भी मैंने सबकी नहीं बल्कि उन अधिकांशकी ही आलोचना की है जो झूठे दावे करते हैं और जिसके लिए मैंने उनको दोष दिया है। देशी दवाओं और वनस्पतियोंकी जाँच-पड़तालके प्रस्तावका समर्थन करने और कुछ वैद्योंके अख्तियार किये हुए ढंगकी निन्दा करनेमें कोई पारस्परिक विरोध नहीं है। यहाँतक कि मेरे कलकत्तेमें आयुर्वेदिक कालेजकी नींव डालने और कविराजोंको चेतावनी देनेमें भी कोई विरोध नहीं है। पूनाके वैद्य मेरी मित्रभावसे की हुई आलोचनाको अस्वीकार कर सकते हैं। इससे मुझे खेद तो होगा, परन्तु इस अस्वीकृतिसे मेरा अनुभवजन्य निश्चय बदलेगा नहीं। मैंने जो-कुछ कहा है उसके लिए मेरे पास बहुत-से प्रमाण हैं। मैं ऐसी हर वस्तुको जो प्राचीन और महान् है पसन्द जरूर करता हूँ, परन्तु उसकी नकल मुझे कतई पसन्द नहीं। मैं नम्रतापूर्वक इस बातको माननेसे इनकार करता हूँ कि प्राचीन पुस्तकोंमें जिस विषयपर जो-कुछ लिखा है वही उसका अन्त है, उसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। प्राचीन वस्तुओंके समझदार उत्तराधिकारीकी हैसियतसे मैं यह चाहता हूँ कि अपनी विरासतको बढ़ाऊँ। प्रतिवादियोंको जानना चाहिए कि कुछ कविराजोंने मेरी आलोचनाको पसन्द किया है और वे उसपर विचार भी कर रहे हैं। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि वह आक्षेप उनके लिए नहीं था जो लोग नम्रतापूर्वक अपनी आर्थिक हानिका विचार किये बिना वैज्ञानिक रीतिसे खोज कर रहे हैं। उनकी संख्या ऊँगलियोंपर गिनने लायक है। मैं उनकी वृद्धि देखना चाहता हूँ।

कताई-प्रस्ताव

अहमदाबादमें अ० भा० कां० क० द्वारा पारित कताई-प्रस्तावको पाठक भूले न होंगे। उसके अनुसार जो सूत अ० भा० खादी बोर्डको प्राप्त हुआ है, उसके उपयोगका नीचे लिखा ब्यौरा मुझे उक्त बोर्डकी ओरसे मिला है।[1]

इस छोटे-से ब्यौरेसे हम कुछ सीख सकते हैं। जितना माल तैयार होना चाहिए था या हो सकता था उसके मुकाबलेमें यह माल कुछ नहीं है। परन्तु इस प्रयत्नसे तो यह प्रकट हो ही जाता है कि तफसीलकी बातोंमें थोड़ी-सी भी असावधानीसे हर

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें सूतके हल्के दरजेके होनेका उल्लेख था।

तरहकी तरक्कीमें कितनी रुकावट आ जाती है। संगठन एक यन्त्रकी तरह है। यन्त्रमें छोटी-सी भी कील ढीली पड़ जाये तो सारा यन्त्र ढीला पड़ जाता है; वह बेकार भी हो सकता है, उसी तरह संगठनमें जरा भी अव्यवस्था होनेसे उसके कार्यमें और अपेक्षित परिणामोंमें दोष पैदा हो जाता है। जो लोग कताई-सदस्यताका काम कर रहे हैं, उनको इस तीन महीनेके प्रयोगसे शिक्षा लेनी चाहिए।

यह खादी सस्ती नहीं की गई सो केवल इसलिए मालकी तादाद बहुत कम थी, और यह निर्णय करना कठिन था कि सस्तेपनका लाभ किसको मिलना चाहिए। कातनेवाले सावधान हो जायें! इसपर से यह स्पष्ट हो जाता है कि विदेशी कपड़ेका बहिष्कार और सारे देशकी जरूरत-भरके लिए खादी तैयार करनेका दारोमदार आपके ही ऊपर है।

कताई एक नई आदत

एक प्रतिष्ठित अमरीकी सज्जन कताईका अभ्यास करते हैं। वे लिखते हैं:[1]

अपने अनुभवोंका वर्णन लिख भेजनेमें माफी माँगनेकी कोई बात नहीं है; क्योंकि अमरीका हो या भारत मानव-प्रकृति सब जगह एक-सी है। केवल वर्णनकी शैली भिन्न है और शायद वह 'यंग इंडिया'के पाठकोंको नई जान पड़ेगी। स्वेच्छया कताई करनेवाले उन लोगोंको भी जिन्हें अब उसका अभ्यास हो गया है, प्रारम्भमें इन्हीं कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था, जिनकी इन अमरीकी सज्जनने बात की है। मनमें दृढ़ संकल्प हो तो काफी है। उससे आनेवाली कठिनाइयोंका अनुमान हो जाता है और सफलतापूर्वक उनका सामना करनेकी शक्ति भी मिल जाती है। अपनी कठिनाइयोंका उपरोक्त विश्लेषण मूल्यवान है क्योंकि जिन बातोंको हम बिना जाने अनुभव करते रहे हैं, उन्हें उन्होंने स्पष्ट कर दिया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-७-१९२५

२१७. दुःखद जानकारी

यह पत्र[2] मुझे चटगाँवमें दिया गया था और तबसे यह मेरी बंडीकी जेबमें ही रखा है ताकि मैं अवसर मिलते ही जल्दीसे-जल्दी इसका उत्तर दे सकूँ। पाठकोंको मालूम है कि पतित बहनोंको बुराईके मार्गसे हटानेका प्रयत्न किया गया था। किन्तु उसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ है कि इस बुराईको खुली छूट मिल गई है। मैं जानता हूँ कि वेश्यावृत्ति एक भयंकर बुराई है और वह बढ़ रही है। अवगुणमें गुण देखने और कलाके पवित्र नामपर या किसी दूसरी झूठी भावनाकी आड़ लेकर बुराईको नजर-

१. यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है। उसमें लेखकने नियमित कताई करनेकी एक आदत बना लेनेके लिए बौद्धिक और मानसिक प्रयत्नोंकी आवश्यकतापर जोर दिया था और कहा था कि प्रारम्भमें भावनाको बुद्धिकी सहायतासे बल देते रहना जरूरी हो सकता है।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें वेश्यालयों, सिनेमाघरों, शराबखोरी और धूम्रपानकी बुराइयोंके बारेमें लिखा गया था।

अंदाज करनेकी प्रवृत्तिके कारण इस पतनकारी व्यसनपर एक तरहके मिथ्या सम्मानका पर्दा पड़ गया है। यह मिथ्या सम्मान ही इस नैतिक कोढ़के लिए उत्तरदायी है और यह बात तो प्रत्येक व्यक्तिको आसानीसे समझमें आ सकती है। लेकिन मेरा पत्रलेखक जैसी भयंकर स्थिति बताता है, मैंने उसकी कल्पना नहीं की थी। मुझे लगता है कि उसने इस बुराईको बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बताया है, क्योंकि मुझे अपने दौरेमें विभिन्न सूत्रोंसे इसके समर्थनमें प्रमाण मिले हैं। नास्तिकताके इस युगमें जहाँ लोगोंका ईश्वरमें विश्वास नहीं रह गया है या केवल कहने-मात्रका विश्वास रह गया है, और जिसमें सुखों और भोगोंकी बहुलता है, यह भयंकर बुराई हमें पतनकी याद दिलाती है जबकि वह लगभग चरम उत्कर्षपर था। अतः इसके निराकरणका उपाय बताना सुगम नहीं है। इसका निराकरण कानूनसे नहीं किया जा सकता। लन्दनमें यह बुराई बड़े जोरोंपर है। पैरिस इसके लिए बदनाम है और वहाँ तो उसने एक चलनका रूप ले लिया है। यदि कानूनसे इसका निराकरण किया जा सकता तो ये अत्यन्त संगठित राष्ट्र अपनी राजधानियोंको इस बुराईसे मुक्त कर लेते। मेरे जैसे सुधारक कितना ही क्यों न लिखें, इस खराबीमें कोई खास कमी नहीं हो सकती। हमारे ऊपर इंग्लैंडका राजनैतिक प्रभुत्व तो बुरा है ही। उसका सांस्कृतिक प्रभुत्व उससे भी बुरा है। क्योंकि एक ओर हम उसके राजनैतिक प्रभुत्वको नापसन्द करते हैं और इसलिए उसका विरोध करनेका प्रयत्न करते हैं; किन्तु दूसरी ओर हम उसके सांस्कृतिक प्रभुत्वसे चिपटे रहते हैं और मोहवश यह अनुभव नहीं करते कि जैसे ही हमपर उसका सांस्कृतिक प्रभुत्व पूरा-पूरा जमा, हमारे लिए उसके राजनैतिक प्रभुत्वका विरोध करना सम्भव ही नहीं होगा। मेरे इस कथनसे कोई इस गलतफहमीमें न पड़े कि अंग्रेजी राज्यसे पहले भारतमें वेश्यावृत्ति नहीं थी। फिर भी मैं इतना अवश्य कहता हूँ कि वह तब इतनी व्यापक नहीं थी, जितनी आज है। वह ज्यादासे-ज्यादा थोड़े-से राजा-रईसोंतक ही सीमित थी। अब तो इसके कारण देशके युवकोंका तेजीसे नाश हो रहा है। मैं इन्हीं युवकोंसे देशके लिए कुछ किये जानेकी आशा बाँधे हूँ। जो नवयुवक इस बुराईमें फँसे हैं, वे स्वभावतः बुरे नहीं हैं। वे मजबूर होकर और बिना विचारे उसमें जा फँसे हैं। इस दुष्कर्मसे इन युवकोंकी और समाजकी जो हानि हुई है, उन्हें इसका अनुभव करना चाहिए। उन्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि इस भयंकर विनाशसे उनकी और देशकी रक्षा केवल कठोर संयम पालन द्वारा ही हो सकती है। वे जबतक ईश्वरका ध्यान नहीं करते और प्रलोभनसे बचनेमें उसकी सहायता नहीं माँगते, तबतक कोरा संयम, फिर चाहे उसका पालन कितनी ही कठोरतासे क्यों न किया जाये उनके लिए अधिक लाभप्रद नहीं होगा। 'गीता' में महर्षिने ठीक ही कहा है कि 'मनुष्य निराहार रहकर शरीरको संयममें रख सकता है, किन्तु फिर भी वासना बनी रहती है। वासनाका क्षय तो तभी होता है जब मनुष्य ईश्वरके प्रत्यक्ष दर्शन कर लेता है।'[1] प्रत्यक्ष दर्शन करनेका अर्थ है यह स्पष्ट अनुभूति कि वह हमारे

१. विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं, रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥ **भगवद्गीता २-५९।**

हृदयोंमें आसीन है — वैसे ही जैसे बच्चेके हृदयमें मातृस्नेहकी अनुभूति होती है। इसके लिए बच्चोंको किसी प्रमाणकी जरूरत नहीं होती। माँके मनमें प्रेम है, क्या वह इसके सम्बन्धमें तर्क करता है? क्या वह उसे दूसरोंके सम्मुख सिद्ध कर सकता है? वह तो गर्वपूर्वक कहता है: 'माँके मनमें प्रेम है।' ऐसा ही ईश्वरके अस्तित्वके सम्बन्धमें होना चाहिए। वह तर्कसे सिद्ध नहीं होता, बल्कि वह अनुभव किया जाता है। हमें तुलसीदास, चैतन्य, रामदास और अध्यात्मवादके अन्य असंख्य गुरुओंके अनुभवकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, जैसे कि हम अपने सांसारिक गुरुओंके अनुभवकी उपेक्षा नहीं करते।

पत्रलेखकने पूछा है कि कांग्रेसजन उसके द्वारा गिनाये हुए काम, जैसे नाट्यगृहमें जाना आदि कर सकते हैं या नहीं। मैं कह चुका हूँ कि मनुष्यको कानूनसे अच्छा नहीं बनाया जा सकता। यदि मुझमें लोगोंको समझाने-बुझानेकी शक्ति होती तो मैं कुख्यात स्त्रियोंको अभिनेत्रियोंका काम करनेसे अवश्य रोकता। मैं लोगोंको शराब पीने और तम्बाकू पीनेसे भी रोकता। जिन पतनकारी विज्ञापनोंसे प्रसिद्ध मासिक और दैनिक पत्रोंके भी पृष्ठ गन्दे बने रहते हैं मैं उन विज्ञापनोंको निश्चय ही रोकता और हमारे कुछ मासिक पत्रोंके पृष्ठ जिस अश्लील साहित्य और जिन अश्लील चित्रोंसे दूषित किये जाते हैं, मैं निश्चित रूपसे उन्हें भी रोकता। लेकिन अफसोस है कि मुझमें समझाने-बुझानेकी शक्ति नहीं है। यदि मुझमें वह शक्ति होती तो मुझे बहुत प्रसनता होती। लेकिन इन बातोंको राज्य या कांग्रेसके कानूनों द्वारा नियन्त्रित करना ऐसा उपाय होगा जो शायद स्वयं इस दोषसे भी अधिक सदोष होगा। आवश्यकता सज्ञान, विवेकयुक्त, स्वस्थ और शुद्ध लोकमत बनानेकी है। ऐसा कोई कानून नहीं है जो चौकोंको पाखानेके रूपमें और बैठकोंको अस्तबलोंके रूपमें प्रयुक्त करनेसे रोकता हो। परन्तु लोकमत या लोकरुचि ऐसी व्यवस्थाको सहन नहीं करेगी। कभी-कभी लोकमतके विकासकी गति बड़ी मन्द होती है, लेकिन केवल वही एक-मात्र प्रभावकारी उपाय है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-७-१९२५

२१८. त्यागका शास्त्र

कलकत्तेकी एक सभामें मैंने कहा था कि 'देशबन्धुने मुसलमानोंके सम्बन्धमें त्यागके शास्त्रको पराकाष्ठापर पहुँचा दिया है।' मेरे इस कथनपर आपत्ति उठाई गई है। इस आपत्तिका कारण यह है कि त्याग शब्दका आशय यह समझा गया कि देशबन्धुने मुसलमानोंपर ऐसा कोई अनुग्रह किया है, जिसके वे लोग अधिकारी नही थे। आक्षेपकर्त्ताओंने अपनी यह राय बना ली है कि हिन्दू लोग मुसलमानोंके साथ बहुत-कुछ वैसा ही वर्ताव करते हैं, जैसा कि अंग्रेज लोग हम सबके साथ करते हैं—अर्थात् पहले तो हमसे सब-कुछ छीन लिया और अब उसे अनुग्रहके नामसे दानके रूपमें मुट्ठी दो मुट्ठी दे देते हैं।

मैंने उस दिन सभामे जो कहा था वह मुझे मालूम है। मैंने अपने उस भाषणकी रिपोर्ट नही पढ़ी है, तो भी उस सभामें मैंने जो-कुछ कहा, उसपर मैं कायम हूँ। मै बिना किसी झिझकके कहता हूँ कि सिवा पारस्परिक त्यागके इस दुखी देशके उद्धारकी कोई आशा नही। हमे तुनकमिजाज नही बनना चाहिए और सूझ-बूझको एकदम तिलांजलि नही दे देनी चाहिए। किसीके लिए त्याग करनेका अर्थ उसपर अनुग्रह करना नही है। प्रेम-प्रदत्त न्यायका नाम त्याग और नियम-प्रदत्त न्यायका नाम दण्ड है। प्रेमीकी दी हुई वस्तु न्यायकी मर्यादासे बहुत आगे जाकर भी हमेशा जितना वह देना चाहता है, उससे कम होती है; क्योंकि वह और अधिक देनेके लिए उत्सुक रहता है। और उसे इस बातका अफसोस होता रहता है कि उसके पास देनेको और कुछ नही बचा। यह कहना कि हिन्दू लोग अंग्रेजोंकी तरह पेश आते हैं, उनको बदनाम करना है। हिन्दू यदि चाहे भी तो ऐसा नही कर सकते और मै कहता हूँ, खिदरपुरके मजदूरोंकी पशुताके बावजूद, हिन्दू और मुसलमान, दोनों, एक ही नावमें बैठे हुए हैं। दोनोंकी अधोगति हो रही है। असलमें उनकी हालत प्रेमियो-जैसी है—उन्हे उस हालतमे आना होगा—वे चाहे या न चाहें। इसलिए मुसलमानोके प्रति हरएक हिन्दूका और हिन्दुओंके प्रति मुसलमानका व्यवहार सिर्फ न्यायकी भावनासे ही नही बल्कि समर्पण और त्यागकी भावनासे प्रेरित होना चाहिए। वे दोनों एक-दूसरेके प्रति किये गये अपने-अपने कार्योंका बावनतोला पाव रत्ती हिसाब रखकर दूसरेसे उदारताकी अपेक्षा नहीं रख सकते। उन्हें हमेशा परस्पर सदा एक दूसरेका ऋणी समझकर चलना होगा। कानूनी इन्साफके नाते कोई भी मुसलमान मेरी आँखोंके सामने रोजाना गोवध कर सकता है। किन्तु मेरे साथ उसका जो प्रेम है वह उसे ऐसा नहीं करने देता—यहाँतक कि वह अपने हकका खयाल छोड़कर मेरी मुहब्बतकी खातिर कभी-कभी गोमांस खानेसे बाज आता है और फिर भी समझता है कि उसने सिर्फ वही किया है जो कि उसे करना चाहिए था। कानूनी इन्साफ तो मुझे इस बातकी इजाजत देता है कि मै जाकर मुहम्मद अलीके कानोंके पास, जब वे नमाज पढ़ रहे हों, बाजे बजाऊँ या राग अलापूँ; पर मै अपने हकका खयाल

छोड़कर उनके जजबातका खयाल करता हूँ, वहाँ किसीके साथ जोरसे बातचीत करनेके बजाय बहुत ही धीमे स्वरमें बोलता हूँ और फिर भी समझता हूँ कि यह मैंने मौलाना साहबपर कोई मेहरबानी नहीं की। बल्कि इसके विपरीत यदि मैं ठीक उसी वक्त जब वे नमाज पढ़ रहे हों अपने घंटा-घड़ियाल बजानेके कानूनी हकका प्रयोग करूँ, तो मैं एक नागवार शख्स माना जाऊँगा। यदि देशबन्धुने कुछ ही पद मुसलमानोंसे न भरे होते तो भी कानूनी इन्साफकी अपेक्षा पूरी हो जाती; पर उन्होंने अपने हकोंकी सीमासे आगे बढ़कर मुसलमानोंकी इच्छाका विचार किया और उनकी भावनाको तुष्ट किया। मुसलमानोंको प्रसन्न करनेका जो कोमलभाव देशबन्धुके दिलमें था, वही उनकी मृत्युको जल्दी ले आनेका कारण बना। मैं जानता हूँ कि जब उन्होंने देखा कि कानूनी न्याय उन्हें अनधिकृत जमीनपर गाड़े गये मुर्दोंको कब्रोंसे बाहर निकालनेके लिए मजबूर कर रहा है, तब उनके दिलको कितना भारी धक्का लगा था। वे मुसलमानोंके भावोंको जरा भी धक्का नहीं लगने देना चाहते थे — फिर उनकी भावना अनुचित ही क्यों न हो। ऐसा करना पद्धति छोड़कर चलना था — अपनी पद्धति नहीं, दुनियाकी पद्धति। फिर उन्होंने कभी खयाल न किया कि मुसलमानोंके भावोंका इतनी सूक्ष्मताके साथ विचार करके वे उनके साथ कोई मेहरबानी या उनपर कोई एहसान कर रहे हैं। प्रेम कभी कुछ माँगता नहीं है, वह तो हमेशा देता ही है। वह सदा सहता है — क्रोध नहीं करता, बदला नहीं लेता।

इसलिए न्याय, निरे न्यायकी यह दुहाई विचारहीन क्रोध और अज्ञानसे भरा मानसिक विस्फोट ही है — फिर वह दुहाई चाहे हिन्दुओंकी तरफसे दी जा रही हो, चाहे मुसलमानोंकी तरफसे। जबतक हिन्दू और मुसलमान कोरे इन्साफके राग अलापते रहेंगे तबतक वे एक-दूसरेके नजदीक नहीं आ सकते। न्यायकी — कोरे न्यायकी सर्वोपरि उक्ति तो है 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'। जो चीज अंग्रेज हासिल कर चुके हैं, उसका वे तिल-भर भी क्यों छोड़ने चले? और हिन्दुस्तानी लोग राज्यकी बाग-डोर अपने हाथमें आ जानेपर अंग्रेजोंसे वे तमाम चीजें क्यों न छीनें, जिनसे उनके बाप-दादोंने इन्हें वंचित किया था? फिर भी जब हम आपसमें निपटारा करने बैठेंगे, — और किसी दिन हमें बैठना ही होगा, — तो हम इस तथाकथित न्यायकी तुलापर नाप-जोख न करेंगे। बल्कि हमें उस समय 'त्याग' के उस विचलित कर देनेवाले रूपसे, जिसे दूसरे शब्दोंमें प्रेम, सौहार्द या भ्रातृभाव कहते हैं, काम लेना होगा। और यही बात हम हिन्दुओं और मुसलमानोंको, एक-दूसरेके सिर काफी फोड़ चुकने, निर्दोषोंका मनों खून बहा चुकने और अपनी बेवकूफीको समझ चुकनेके बाद करनी पड़ेगी। तब हमारी आँखें खुल जायेंगी और हम समझेंगे कि मित्रता न बदला लेती है और न न्याय-न्यायकी पुकार करती है; उसकी विधि तो त्याग केवल त्याग ही है। तब हिन्दू गोवधको अपनी आँखोंके सामने देखकर कुछ न कहेंगे; और मुसलमान भी मानेंगे कि हिन्दुओंका दिल दुखानेके लिए गोरक्षा करना इस्लामकी धर्माज्ञाओंके खिलाफ है। जब वह सुदिन आयेगा तब दोनों एक-दूसरेके गुण ही देखेंगे। एक-दूसरेके दोष हमारी दृष्टिमें बाधक न होंगे। वह दिन बहुत दूर भी हो सकता है और बहुत नज-

ठीक भी। पर मेरा दिल तो कहता है कि वह जल्दी ही आ रहा है। मैं तो सिर्फ उसी उद्देश्यपूर्तिके लिए काम करूँगा, दूसरेके लिए नहीं।

हाँ सावधानीके तौरपर, यह कह देना अनुचित न होगा कि मेरे त्यागका अर्थ सिद्धान्तका त्याग नहीं है। मैंने इस बातको उसी सभामें साफ कर दिया था और फिर यहाँ उसी बातको जोर देकर कह रहा हूँ। पर हम आज जिस बातके लिए लड़ रहे हैं वह सिद्धान्त किसी हालतमें नहीं है, वह मिथ्याभिमान और पूर्वसंचित द्वेषभाव है। हम गुड़ तो खाते हैं पर गुलगुलोंसे परहेज करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-७-१९२५

२१९. एक खामोश समाजसेवी

गत ३० जूनको आचार्य सुशील [कुमार] रुद्रका देहान्त हो गया। वे मेरे एक आदरणीय मित्र और खामोश समाजसेवी थे। उनकी मृत्युसे मुझे दुःख हुआ है। मैं चाहता हूँ कि पाठक भी इसमें मेरा साथ दें। भारतकी मुख्य बीमारी है उसकी राजनीतिक गुलामी। इसलिए वह उन्हींको जानता है जो इस गुलामीको दूर करनेके लिए उस नौकरशाहीसे खुलेआम संघर्ष करनेको आगे आते हैं, जिसने उसके विरुद्ध अपनी जल और थलकी सेना तथा धन-बल और कूटनीतिकी अपनी तिहरी मोर्चाबन्दी कर रखी है। इससे स्वभावतः उसे उन कार्यकर्त्ताओंका पता नहीं रहता, जो जीवनके अन्य कार्यक्षेत्रोंमें निःस्वार्थ भावसे काम करते हुए अपनेको गला देते हैं और जो केवल राजनीतिक क्षेत्रमें काम करनेवालोंसे कम उपयोगी नहीं होते। सेंट स्टीफेन्स कालेज, दिल्लीके भूतपूर्व प्रधानाचार्य सुशील कुमार रुद्र ऐसे ही विनम्र कार्यकर्ता थे। वे उच्चकोटिके शिक्षाशास्त्री थे। प्रधानाचार्यकी हैसियतसे सर्वत्र लोकप्रिय हो गये थे। उनके और उनके विद्यार्थियोंके बीच एक प्रकारका आध्यात्मिक सम्बन्ध था। यद्यपि वे ईसाई थे, तथापि उनके हृदयमें हिन्दू धर्म और इस्लामके लिए भी जगह थी। इन धर्मोंको वे बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते थे। उनका ईसाई धर्म उन्हें यह नहीं सिखाता था कि वही एक धर्म है और अकेले ईसा मसीह ही जगतके तारनहार हैं तथा जो व्यक्ति इसे न मानता हो वह नरकगामी होगा। अपने धर्मके गौरवपर दृढ़ रहते हुए भी, वे अन्य मजहबोंको सहन करते थे। वे राजनीतिका अध्ययन बड़े चाव और ध्यानसे करते थे। गरमदलीय कहे जानेवाले लोगोंके प्रति जहाँ वे अपनी सहानुभूतिका प्रदर्शन नहीं करते थे वहाँ वे उसे छिपाते भी न थे। जबसे — १९१५ से — मैं आफ्रिकासे भारत लौटा, मैं जब कभी दिल्ली जाता, उन्हींका अतिथि बनता था। रौलट कानूनके सिलसिलेमें जबतक मैंने सत्याग्रह नहीं छेड़ा था, तबतक सब बदस्तूर चलता रहा। ऊँचे हलकोंमें उनके कितने ही अंग्रेज मित्र थे। उनका सम्बन्ध एक खालिश अंग्रेज मिशनसे था। अपने कालेजके वे पहले ही हिन्दुस्तानी प्रधानाचार्य थे। इसलिए मैंने अपने मनमें सोचा कि उनके साथ

मेरे घनिष्ठ सम्बन्ध जारी रखने और उनके घरमें मेरे ठहरनेसे कहीं उनका सर नीचा हो जाये और उनके कालेजको अनावश्यक संकटका सामना न करना पड़े। इसलिए मैंने दूसरी जगह ठहरनेकी इच्छा प्रकट की। उनका जवाब अपने ढंगका निराला ही था — 'लोग जितना सोचते हैं, मेरा मजहब उससे कहीं गहरा है। मेरे कुछ मत तो मेरे जीवनके घनिष्ठ अंग हैं। वे गहरे और दीर्घकालके मनन और प्रार्थनाके बाद स्थिर किये गये हैं। मेरे अंग्रेज मित्र उन्हें जानते हैं। यदि अपने सम्माननीय मित्र और अतिथिके रूपमें मैं आपको अपने घरमें ठहराऊँ तो वे इसका गलत अर्थ कदापि नहीं लगा सकते। और यदि कभी मुझे इन दो बातोंमें से कि अंग्रेजोंके अन्दर जो-कुछ भी मेरा प्रभाव है वह चला जाये या आप मेरे न रहें किसी एक को चुनना पड़े तो मैं जानता हूँ कि मैं किसे पसन्द करूँगा। आप मुझे नहीं छोड़ सकते।' तब मैंने पूछा, 'लेकिन मुझसे तो हर किस्मके लोग मिलनेके लिए आते हैं; यह भी तो सोचिए। जब मैं दिल्लीमें आया हुआ होऊँ तब आप अपने मकानको सराय कदापि नहीं बना सकते।' उन्होंने उत्तर दिया, 'सच पूछें तो मुझे यह सब पसन्द है। आपके पास जो मित्र आते हैं, मैं उन्हें पसन्द करता हूँ। यह देखकर मुझे आनन्द होता है कि आपको अपने मकानमें ठहरानेके बहाने मेरे हाथों कुछ देशसेवा हो रही है।' पाठक शायद न जानते होंगे कि खिलाफतके दावेको साकार रूप देनेके लिए जो पत्र[1] मैंने वाइसरायको लिखा था उसका विचार और मसविदा प्रधानाचार्य रुद्रके मकानमें ही तैयार हुआ था। वे तथा चार्ली एन्ड्रयूज उस मसविदेमें सुधार सुझानेवाले व्यक्ति थे। उन्हींके घर आतिथ्यमय वातावरणमें बैठकर असहयोग आन्दोलनकी कल्पना की गई थी, उसे रूपबद्ध किया गया था। मौलानाओं, दूसरे मुसलमानों और अन्य मित्रों तथा मेरे बीच जो खानगी सलाह-मशविरा हुआ करता था, उसकी कार्रवाईको वे बड़ी दिलचस्पी परन्तु खामोशीके साथ देखते रहते थे। उनके तमाम कार्य धर्म भावसे ही प्रेरित होते थे। ऐसी हालतमें उन्हें ऐहिक सत्तासे भयभीत होनेका कोई कारण न था — धर्मभाव तो सांसारिक सत्ताके अस्तित्व और उपयोग तथा मित्रता की कद्र करनेमें उनका मददगार होता था। उन्होंने अपने जीवनमें यह बात चरितार्थ कर दिखायी थी कि धर्म-ज्ञानसे संतुलित और सही विवेक उत्पन्न होता है, जिसके फलस्वरूप मनुष्यके विश्वास और धर्मके बीच सुन्दर सामञ्जस्य स्थापित होता है। आचार्य रुद्रने अपनी ओर अत्यन्त उच्च चरित्रवाले लोगोंको आकर्षित कर रखा था। बहुतोंको इस बातका पता भी नहीं होगा कि श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज हमें आचार्य रुद्रकी बदौलत ही प्राप्त हुए हैं। वे जुड़वाँ भाई जैसे थे। उनका पारस्परिक स्नेह यह बताता था कि आदर्श मैत्री क्या वस्तु है। आचार्य रुद्र अपने पीछे दो लड़के और एक लड़की छोड़ गये हैं। वे वयस्क हैं और अपना काम-काज सम्हाले हुए हैं। वे जानते हैं कि उनके शोकमें उनके उच्च हृदय पिताके कितने ही मित्र और प्रशंसक उनके साथ हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-७-१९२५

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ५४६-४९।

२२०. सुलहका अवसर[1]

फरीदपुरके सन्देशका जैसा आशय श्री चटर्जीने समझा है, वैसा मैं नहीं समझता। देशबन्धुने अपनी स्थितिको यहाँतक साफ कर दिया था कि वे पूर्ण उत्तरदायी स्वराज्यके लिए १९२९ तक रुकनेको तैयार हैं; पर शर्त यह है कि सरकार एक सम्मानपूर्ण समझौता करनेका प्रस्ताव करे, जिससे कि जनताके प्रतिनिधि सरकार द्वारा प्रस्तुत योजना कार्यान्वित कर सकें। वे शर्तें क्या हों, इसका निर्णय किसी गोलमेज सम्मेलनमें सब लोग बैठकर सुहृद्-भावसे चर्चा करके तय करें। देशबन्धुके लिए यह असम्भव था कि वे पहले ही से, बिना ठीक-ठीक जाने कि मुडीमैन समितिके अल्पमतवालोंकी सिफारिशें क्या हैं, उन्हें मंजूर कर लेते। मेरी खुदकी स्थिति तो बिलकुल सीधी-सादी है। सुधारोंमें मेरी दिलचस्पी मेरे अविकृत प्रतिनिधियों अर्थात् स्वराज्यवादियों — के द्वारा ही है। उन्होंने इस विषयमें विशेषज्ञता प्राप्त की है और वे इसमें जो भी करेंगे वह मुझे मंजूर होगा। फिलहाल तो मैं ब्रिटिश सरकारके सामने सिवा अपनी कमजोरीके और कुछ पेश नहीं कर सकता। अपनी इस कमजोरीकी हालतमें तो मैं इस बातका इन्तजार-भर कर सकता हूँ कि इंग्लैंड सच्चे दिलसे मैत्रीका हाथ बढ़ाये। जब वह ऐसा करेगा तब मैं अपनी तरफसे बिना शर्त लड़ाई खत्म कर दूँगा। पर इस कमजोरीकी हालतमें भी मैं अपने अन्दर यह समझनेकी शक्ति अवश्य पाता हूँ कि हमारे लिए क्या जीवनदायी है और क्या नहीं, और मुझमें इतनी शक्ति भी है कि यदि जीवनदायक प्रस्तावके स्थानपर उससे विपरीत कोई चीज सामने रखी जाये तो मैं उसे अस्वीकृत कर दूँ। मैं अपनेको धोखा नहीं दे सकता। मैं तबतक किसी ठोस वस्तुकी उम्मीद नहीं कर सकता जबतक मेरा निर्धन देश शक्तिशाली नहीं बन जाता। इसलिए मुझे तो शक्तिसंचय करना होगा। और चूँकि मैंने अपने साधनोंमें हिंसाको स्थान नहीं दिया है, मेरा दारोमदार चरखेपर या उसी-जैसी अन्य वस्तुपर अथवा देशबन्धुके अधिक व्यापक शब्दोंमें कहूँ तो देहातके पुनरुत्थानपर है तथा यदि आवश्यक हो तो सविनय अवज्ञापर है।

जहाँतक देशके विभिन्न दलोंकी एकताका सवाल है, मुझे डर है कि स्वराज्यवादियों और नरमदलवालोंके मतभेद कुछ बातोंमें बुनियादी हैं। कुछ बेहतर स्थितियोंमें सुधारोंको स्वीकृत कर लेने-मात्रसे मतभेद मिट जाना लाजिमी नहीं है। यदि मैं इस भेदको अपनी धारणाके अनुसार एक वाक्यमें कहूँ तो वह यह है — यदि सरकार लोगोंकी न्यायोचित माँगको स्वीकार न करे तो स्वराज्यवादी एक नियत समयके बाद उसपर प्रहार करनेकी बात सोचते हैं और नरमदलीय लोग सरकारको अपने तर्कों द्वारा राजी करके जो-कुछ मिल सके वही हथियानेकी। इसलिए नरमदलके लोग

१. श्री बी० सी० चटर्जीने गांधीजीको ३ जुलाई, १९२५ को एक पत्र लिखा था। यह उसीके उत्तरमें है। पत्रके लिये देखिए परिशिष्ट २।

स्वराज्यवादियोंके साथ एक हदतक ही चल सकते हैं। पर हो सकता है कि मैं गलतीपर होऊँ — शायद हूँ भी। [प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक डिकिन्सके पात्र] बारकिसकी तरह मैं तो हमेशा ही राजी हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-७-१९२५

२२१. दो प्रजातियाँ नहीं

आशा है पाठक निम्न पत्रको दिलचस्पीसे पढ़ेंगे :

यह बात मेरे ध्यानमें कई बार आई है कि आपने हिन्दुओं और मुसलमानोंका उल्लेख भारतकी दो 'प्रजातियों' के रूपमें किया है। मेरी नम्र सम्मतिमें इन दो धार्मिक समुदायोंको 'प्रजातियाँ' कहना हानिकर तो है; किन्तु उनको दो 'राष्ट्र' कहनेकी अपेक्षा कम हानिकर है। आपके एक मुसलमान संवाददाताने एक बार ऐसा प्रयोग किया था। (देखिए यंग इंडिया, २४-७-१९२४ पृष्ठ २४४)। सच्चाई यह है कि मुसलमान भारतीयोंमें से (मैं उन्हें इसी नामसे पुकारूँगा और जैसा वे अपने आपको पुकारनेके अभ्यस्त हैं, उस तरह उन्हें भारतीय मुसलमान नहीं कहूँगा) लगभग ९० प्रतिशत उसी 'प्रजाति' या 'प्रजातियों' के हैं जिनके हिन्दू हैं, क्योंकि उनके पुरखे भारतीय थे और भारतमें ही मुसलमान बने थे। शेष १० प्रतिशत मुसलमान भारतीयोंके रक्तमें तुर्कों, तातारों, अरबों, पठानों, ईरानियों या अबीसिनियाके लोगोंके रक्तका थोड़ा मिश्रण हो सकता है। फिर भी पीढ़ियोंतक आपसी विवाह सम्बन्धोंसे उसमें इतना भारतीय रक्त मिल गया है कि इन १० प्रतिशत लोगोंको भी प्रजातिकी दृष्टिसे बिना किसी जोखिमके ९९ प्रतिशत इसी देशकी जाति कहा जा सकता है। असलमें भारतके हिन्दू और मुसलमान दो प्रजातियोंके लोग नहीं हैं, ठीक ऐसे ही जैसे इंग्लैंडके प्रोटेस्टेंट और कैथॉलिक दो प्रजातियोंके लोग नहीं हैं। यह प्रश्न ऐसा है जिसके सम्बन्धमें इतिहास, मानव-शरीर रचना शास्त्र और नृवंश विज्ञानसे काफी सही सबूत प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके अलावा उनके रक्तकी प्रजातीय रचना चाहे-कुछ भी हो, इस तथ्यसे इनकार नहीं किया जा सकता कि वे सभी शत-प्रतिशत अपने बापदादोंकी तरह भारतमें पैदा हुए थे, भारतमें रह रहे हैं, भारतमें मरेंगे और भारतमें ही दफनाये जायेंगे। और भारत एक देश है और इसलिए वे उसी एक राष्ट्रके लोग हैं जिसके हिन्दू। आवश्यकता केवल यह है कि वे अपने आपको भारतीय राजनीतिमें भारतीय मुसलमान नहीं, बल्कि मुसलमान भारतीय मानें।

उक्त बातें थोड़े हेरफेरसे ईसाई भारतीयोंपर भी लागू होती हैं; जिनका भारतके जातीय समुदायमें तीसरा महत्त्वपूर्ण स्थान है। कदाचित् भारतमें या अन्यत्र किसी भी धार्मिक समुदायमें एक ही प्रजाति नहीं है। निश्चय ही हिन्दू भी एक प्रजातिके लोग नहीं हैं। तब किसी एक समुदायको एक प्रजाति क्यों कहना चाहिए? हमारे ईसाई भाइयोंको भी अपने देशकी राजनीतिमें अपने-आपको ईसाई भारतीय मानकर चलना चाहिए, जैसा कि मिस्र, फिलिस्तीन, चीन, जापान और फिलिपाइनमें उनके धर्मबन्धु कर रहे हैं।

पत्रलेखकका पक्ष इतिहासकी दृष्टिसे ठीक है। जो शब्द किसी विशेष अर्थमें चल पड़े हैं, उनके प्रयोगकी आदत छोड़ना कठिन है। "दो समुदाय" शब्दोंपर भी यही आपत्ति की जा सकती है। मैं केवल यही वचन दे सकता हूँ कि भविष्यमें सावधानी बरतूंगा। सावधान पत्रलेखक 'यंग इंडिया' की भाषाको तथ्योंके अनुकूल रूप देनेके प्रयत्नमें इसी प्रकार सदैव सतर्क रहें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-७-१९२५

२२२. पत्र : वसुमती पण्डितको

[कलकत्ता]
[९ जुलाई, १९२५]

चि० वसुमती,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया। क्या लिखूं, कुछ सूझता नहीं; तुम्हारे इन शब्दोंका अर्थ यह तो नहीं है कि तुम चिन्तामें डूबी हो; यदि ऐसा हो तो तुम चिन्ता करना छोड़ दो। चिन्ताका तो कोई कारण है ही नहीं। वन जानेसे तो क्षोभ होना ही नहीं चाहिए। यदि कोई दूसरा कारण हो तो मुझे लिखना। आश्रममें जाते हुए तुम्हें क्षोभ तो कदापि नहीं होना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :] मेरा कार्यक्रम तो अनिश्चित है। यह पूरा मास तो यहीं जायेगा।

गुजराती पत्र (एस० एन० ९२१६)की फोटो-नकलसे।

२२३. भाषण : स्वराज्यवादी पार्षदोंके समक्ष[1]

९ जुलाई, १९२५

महात्माजीने कहा कि सेनगुप्त कलकत्ता निवासी हैं या नहीं, आप लोगोंको इस प्रकारकी छोटी-छोटी बातोंके फेरमें नहीं पड़ना चाहिए। बड़ी बात तो यह है कि वे स्वराज्यदलके नेता हैं और बंगाल कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष हैं। आपको उसी आदमीको मेयर चुनना चाहिए जिसे आप पहले ही नेता चुन चुके हैं। आप इस तरहके उग्र वादविवादमें न पड़ें। यदि काम करनेकी उन्हें पूरी छूट दी गई तो श्री सेनगुप्त निगमके लिए बहुत उपयोगी साबित होंगे। आपको उनपर कोई बन्धन नहीं लगाना चाहिए, फिर राजनीतिक अथवा नगरके मामलोंमें उनका अनुकरण करना-न-करना लोगोंपर निर्भर करता है। देशबन्धुके प्रत्येक कार्यमें उनका साथी होनेके कारण श्री सेनगुप्तको विरासतमें बहुत-कुछ मिला है जिससे वे कभी विमुख नहीं होंगे। यदि उन्हें अपने साथियोंका सहयोग और शुभ कामनायें मिल गईं तो उनका शासन बड़ा सुखद होगा और वह समृद्धि लायेगा।[2]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १०-७-१९२५

१. यह सभा कलकत्तामें शरतचन्द्र बसु और जे० एम० सेनगुप्तमें से किसी एकको कलकत्ता नगर-निगमका मेयर चुननेके लिए हुई थी। बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने पार्षदोंको सेनगुप्तको चुननेके लिए प्रेरित करनेके उद्देश्यसे गांधीजी तथा मौलाना अबुल कलाम आजादको नियुक्त किया था। सेनगुप्तके सम्बन्धमें मुख्य एतराज उनका कलकत्ताका निवासी न होना था; वे मूलतः चटगांवके थे। अपने एक घंटेके भाषणसे जिसका पूरा विवरण उपलब्ध नहीं है, गांधीजीने पासा ही पलट दिया और सेनगुप्त ६ के मुकाबले ३१ मतसे चुन लिये गये।

२. सेनगुप्तको मेयर बनानेसे सम्बन्धित गांधीजीके विचारोंके लिए देखिए "कलकत्ताके मेयर", १६-७-१९२५।

२२४. दार्जिलिंगके संस्मरण

[१० जुलाई, १९२५]

मैंने पाठकोंसे एक तरहसे वादा ही किया था कि जो पाँच दिन मैंने देशबन्धुके साथ दार्जिलिंगमें बिताये हैं उनका पवित्र संस्मरण उपस्थित करूँगा। मैं कह चुका हूँ कि वे मेरे जीवनके अत्यन्त मूल्यवान् संस्मरणोंमें से हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतता है त्यों-त्यों उनका मूल्य और भी बढ़ता जाता है। इसका कारण भी मुझे पाठकोंको बता देना चाहिए। यद्यपि मैं देशबन्धुके घर इससे पहले भी रह चुका था, तथापि हमारी वह भेंट बिल्कुल राजनैतिक थी। हम दोनों अपने-अपने अंगीकृत कार्योंमें बहुत व्यस्त थे। परन्तु दार्जिलिंगमें बात दूसरी थी। वहाँ देशबन्धु पूरी तरह मेरे थे। वे वहाँ आरामके लिए गये थे, परन्तु मैं तो उनके साथ केवल हृदय खोलकर बातें करनेके लिए ही गया था। आरामके लिए मेरा दार्जिलिंग जाना तो इसका एक बहाना-भर था। यदि देशबन्धु वहाँ न होते तो मैं हिमाच्छादित धवलगिरिका आकर्षण होते हुए भी वहाँ न जाता। उन दिनों मुझे वे पेंसिलसे पर्चियाँ लिखकर भेज देते थे। एक बार एक पर्चीमें उन्होंने यह लिखा, 'याद रखिए, आप मेरे अधिकार-क्षेत्रमें हैं। मैं स्वागत-समितिका अध्यक्ष हूँ। आपको अपने दौरेमें दार्जिलिंग भी रखना है। यह आदेश है।' अच्छा होता, मैं उनकी इन प्यारी चिटोंको सँभाल कर रख लेता; परन्तु अफसोस! उनकी हालत भी मेरे अन्य ऐसे सैकड़ों कागजों-जैसी ही हुई। मैंने कठिनाई बताई कि मुझे कार्यसमितिके सब सदस्योंको लाना पड़ेगा। उन्होंने तारसे उत्तर दिया 'तब समितिके सब सदस्योंको ही ले आयें। मैं उनके रहनेका प्रबन्ध कर दूँगा। बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी सदस्योंके आने-जानेका खर्च देगी। मैं सतकौड़ीको तारसे यह निर्देश दे रहा हूँ।' मैं कार्यसमितिके सदस्योंको दार्जिलिंग नहीं ले जा सकता था, परन्तु मैंने यह वादा कर दिया कि समितिकी बैठकके बाद जितना जल्दी हो सकेगा, आऊँगा। तदनुसार मैं वहाँ गया। मैं उनके पास सिर्फ दो दिनके लिए गया था। किन्तु उन्होंने मुझे पाँच दिन वहाँ रोका। उन्होंने वासन्ती देवीसे श्री फूकनको कहला दिया कि वे असमका दौरा तीन दिनके लिए और मुल्तवी रखें तथा मेरा बंगालका दौरा तीन दिनके लिए खुद मुल्तवी कर दिया। मैं इन सब बातोंका जिक्र यह दिखलानेके लिए कर रहा हूँ कि हम दोनों एक-दूसरेके साथ रहनेके लिए कितने उत्सुक थे। और अब जो घटना हुई है, उससे जान पड़ता है कि देशबन्धुकी दिन-दिन समीप आती हुई दीर्घ निद्रा मानो हमारे इस घनिष्ठ मिलनकी भूमिका ही थी।

वे रोगशय्यापर न थे बल्कि स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। उनकी सार-सँभाल रखनेकी बहुत आवश्यकता थी। परन्तु वे मेरे तथा मेरे साथियोंके आरामकी छोटीसे-छोटी बातपर स्वयं ही ध्यान देते थे। उन्होंने व्यवस्था अवश्य ही बहुत बड़े पैमानेपर की थी। उन्होंने नीचे मैदानसे पाँच बकरियाँ मँगवाई थीं। उन्होंने कभी एक भी जून

मेरे दूधका नागा नहीं होने दिया। मुझे वासन्ती देवीके बहन-जैसे स्नेहपूर्ण सत्कारका अनुभव तो पहले भी बहुत बार हुआ था; परन्तु दार्जिलिंगमें मेरी देखभाल खुद देश-बन्धुने अपने जिम्मे ली थी। और उसमें मुझे किसी किस्मकी कृत्रिमता मालूम नहीं होती थी। अतिथिसत्कार तो उनके कुलका विशिष्ट गुण है। उन्होंने अपने मुक्तहस्त अतिथि-सत्कारकी कई कथाएँ सुनाई थीं। अपरिचित जनों अथवा राजनैतिक प्रतिपक्षियोंके प्रति उनके भारी आदरभावका परिचय दार्जिलिंगमें ही मुझे मिला। हमने बंगालमें हाथकताई और खादी कार्य करनेके लिए एक योजना निश्चित की थी। श्री दासके ,कहनेसे सतीश बाबू, जो खादी प्रतिष्ठान चलाते हैं, इस योजनाके सम्बन्धमें सलाह करनेके लिए यहाँ बुलाये गये थे। मैंने उनसे पूछा कि आप, सतीश बाबूको कहाँ ठहराना चाहते हैं? उन्होंने कहा, 'क्यों इसी घरमें।' 'मैंने कहा, किन्तु यहाँ तो पहले ही से काफी आदमी हैं।' उन्होंने तुरन्त कहा, 'नहीं, नहीं, वे तो मेरे कमरेमें भी ठहराये जा सकते हैं।' मैं उनकी और श्रमसे क्लांत उनकी पत्नीकी बात सोच रहा था; किन्तु वे सतीश बाबूके आरामके बारेमें सोच रहे थे। उन्होंने कहा, 'इसके अलावा सतीश बाबू समझते हैं कि उनके बारेमें मेरे खयाल अच्छे नहीं हैं। उनसे मेरा परिचय बहुत ही कम है। आप जानते ही हैं, मैं अपने मित्रोंकी चिन्ता नहीं करता, क्योंकि उन्हें मेरे बारेमें गलतफहमी नहीं हो सकती। परन्तु हमें सतीश बाबूको तो जरूर यहीं ठहराना होगा।'

उन्होंने बंगालके भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलोंके सम्बन्धमें भी बातें कीं। मैंने एक मौकेपर स्वराज्य दलपर लगाये गये घूसखोरी तथा भ्रष्टाचारके आरोपोंका जिक्र किया। मैंने उनसे यह भी कहा कि सर सुरेन्द्रनाथने मुझे बंगालसे जानेसे पहले एक बार फिर अपने घर बुलाया है। उन्होंने कहा, 'आप जरूर जायें और उन्हें ये सब बातें बतायें जो आपके और मेरे बीच हुई हैं। आप उनसे कहें कि मैं घूस और भ्रष्टाचारके तमाम आरोपोंका तीव्र खण्डन करता हूँ। अगर स्वराज्यदलपर लगाया गया एक भी आरोप सत्य सिद्ध किया जा सके तो मैं सार्वजनिक जीवनसे हट जानेके लिए तैयार हूँ। सच्ची बात तो यह है कि बंगालके राजनैतिक जीवनमें पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और पीठ पीछे निन्दाकी प्रवृत्ति व्याप्त हो गई है। स्वराज्यदलकी यह आकस्मिक उन्नति और सफलता कुछ लोगोंके लिए असह्य हो गई है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप दलपर लगाये गये तमाम आरोपोंकी जाँच करें और अपना निश्चित निर्णय दें। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि मैं अप्रामाणिकताको आपकी तरह ही अनुचित मानता हूँ। मैं जानता हूँ कि हमारा देश अप्रामाणिक साधनोंसे स्वतन्त्र नहीं हो सकता। यदि आप तमाम दलोंको एकत्र कर दें या कमसे-कम उनकी एक-दूसरेपर आरोप-प्रत्यारोपकी प्रवृत्ति मिटा दें तो आप देशकी भारी सेवा करेंगे। आप श्याम बाबू और सुरेश बाबूसे खास तौरपर बात करें। यदि उन्हें मुझपर अविश्वास है या किसी तरहका सन्देह है तो वे मुझसे आकर क्यों नहीं कहते? हमारे विचार चाहे जुदे-जुदे हों, परन्तु इस कारण हमें एक-दूसरेको गालियाँ देनेकी आवश्यकता नहीं है।' मैंने बीच ही में कहा, 'ऐसा ही आरोप 'फॉरवर्ड' पर भी है। उसके बारेमें आप क्या कहते

हैं? मैं तो अखबार पढ़ता नहीं हूँ; परन्तु मैंने 'फॉरवर्ड'के बारेमें भी ऐसी शिकायतें सुनी हैं।' वे बोले, 'हां, 'फॉरवर्ड'के बारेमें भी ऐसी शिकायतें सुननेमें आई हैं। 'फॉरवर्ड' दोषी हो सकता है। आप जानते ही हैं कि जैसे आप 'यंग इंडिया' में लिखते हैं और उसकी व्यवस्था करते हैं, मैं 'फॉरवर्ड' में न वैसे लिखता हूँ और न उसकी व्यवस्था देखता हूँ। फिर भी अगर लोग ऐसी बातें मेरे ध्यानमें लायेंगे तो मैं उनकी जांच जरूर करूँगा और दोषोंको दूर कर दूंगा। मै समझता हूँ कि आपने 'फॉरवर्ड'को हमेशा अपने बचावमें लिखते हुए देखा होगा; परन्तु बचाव करनेमें भी मर्यादाका उल्लंघन किया जा सकता है। आप जानते ही हैं कि मैं इन दिनों 'फॉरवर्ड'के अतिशयोक्तिके एक मामलेकी जाँच कर रहा हूँ। जो बातें मेरे सामने रखी गई हैं यदि वे सच हैं तो यह अतिशयोक्ति अक्षम्य है। आप यकीन मानें, मैंने इस सम्बन्धमें बहुत कड़ी चिट्ठी लिखी है। यहाँतक कि मैंने इस अतिशयोक्ति करने-वाले लेखकको भी बुलाया है।' इस तरह बातें चलती रहीं। इनमें मुझे प्रतिपक्षीके प्रति न्याय करने तथा तमाम दलोंमें एकता करानेके लिए देशबन्धुकी सच्ची उत्सुकता दिखाई दी।

मैंने पूछा, 'सर्वदलीय सम्मेलन या जैसा श्री केलकरका सुझाव है, अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठक बुलानेके सम्बन्धमें आपकी क्या राय है?' उन्होंने जवाब दिया, 'मैं फिलहाल ऐसा नहीं चाहता। अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठक बुलानी फजूल है, क्योंकि हम स्वराज्यवादियोंको अपना व्यवहार सच्चा रखना ही होगा। हमें नये मताधिकारको पूरा-पूरा मौका अवश्य देना चाहिए। मैं आपसे कहता हूँ, कि चरखेके सम्बन्धमें मेरी स्थिति आपकी-जैसी ही होती जा रही है। मुझे डर है कि हम स्वराज्यवादियोंने सब जगह सचाईसे काम नहीं किया है। आप ठीक ही कहते हैं कि बंगालमें तो आपका विरोध किसी भी दलने नहीं किया है। परन्तु अगर मैं बिछौनेपर न पड़ा होता तो मैं चरखेको जबरदस्त रूपसे सफल करके दिखा देता। मैं कहता हूँ कि मैं चरखेका प्रचार पूरे मनसे करना चाहता हूँ और मै उसके संगठनमें आपकी मदद भी लेना चाहता था; परन्तु आप देखते ही हैं कि मैं किस तरह लाचार हो गया हूँ। इस साल तो मताधिकारमें परिवर्तन किया ही नहीं जा सकता; उलटा हम सब लोगोंको उसे पूरा मौका देना चाहिए। मैं इसके सम्बन्धमें महाराष्ट्रीय मित्रोंको लिखने वाला हूँ।'

उन्होंने प्रस्तावित सर्वदलीय सम्मेलनके सम्बन्धमें कहा, 'हम यह सम्मेलन इसी समय न करें। मैं लॉर्ड बर्कनहेडसे बड़ी-बड़ी चीजोंकी आशा रखता हूँ। वे एक मजबूत विचारके आदमी हैं और मैं ऐसे आदमीको पसन्द करता हूँ। वे भाषणोंसे जैसे मालूम होते हैं वैसे खराब नहीं हैं। यदि हम बैठक करेंगे तो हमें मौजूदा हालतपर कुछ-न-कुछ जरूर कहना होगा। मैं नहीं चाहता कि जितना वे अभी देनेके लिए तैयार हों, हम उससे ज्यादाकी माँग करें और उन्हें उलझनमें डालें। मैं यह भी नहीं चाहता कि हम अपनी माँग सामान्यतः वे जितनी समझते हैं उससे कम बताकर उन्हें स्तब्ध कर दें। अभी हमें ठहरकर देखना चाहिए। इससे हमारा कुछ नुकसान

न होगा। यदि उनका वक्तव्य सन्तोषजनक न हुआ तो उस समय सब दलोंका सम्मेलन करना और सबकी एक ही कार्य-योजना निश्चित करना ठीक होगा। मुझे प्रस्तावित सम्मेलन न करनेका यह एक नवीन कारण मालूम हुआ। इसलिए मैंने उनसे कहा, 'जबतक आप या मोतीलालजी न चाहेंगे और सब दलोंके प्रतिनिधियोंकी ओरसे उसकी माँग न की जायेगी तबतक मैं सम्मेलन नहीं बुलाऊँगा। परन्तु मुझे यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि मुझे वैसा विश्वास नहीं, जैसा आपको है। आप हिन्दू-मुसलमानोंके मतभदोंको देखें; वे बढ़ते ही जा रहे हैं। आप ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंके झगड़ोंका खयाल करें। बंगालमें राजनैतिक दलोंको देखें। यह साफ जाहिर हो रहा है कि हम आज जितने कमजोर हैं उतने कमजोर कभी न थे। और क्या आप मेरी इस बातसे सहमत नहीं हैं कि अंग्रेजोंने कमजोरोंको कभी कुछ नहीं दिया है? मैं समझता हूँ कि हम इंग्लैंडसे किसी बड़ी चीजकी उम्मीद तभी कर सकते हैं जब हम इतनी शक्ति प्राप्त कर लें कि किसीके रोके रुक न सकें। देशबन्धु आतुरतासे बोले, 'आप तो तार्किककी तरह बात कर रहे हैं। मैं आपसे वह कह रहा हूँ जो मेरा दिल कहता है। मेरे दिलमें यह प्रेरणा हो रही है कि हमें कोई बड़ी चीज मिलनेवाली है।' इसपर मैंने आगे बहस नहीं चलाई। मैंने ऐसी बलवती श्रद्धाके सामने सिर झुका दिया। मैंने उनसे कहा कि अंग्रेजोंके चरित्रके प्रति मेरे मनमें बहुत आदरभाव है और उनमें मेरे कुछ ऐसे मित्र हैं जिनका मूल्य और महत्त्व आँकना असम्भव है। परन्तु मैंने देखा कि अंग्रेजोंपर उनकी श्रद्धा मुझसे भी अधिक थी। अंग्रेजोंको जानना चाहिए कि उन्होंने देशबन्धुके निधनसे अपना कितना महान् मित्र खो दिया है।

कलकत्ताके पीरके मामलेसे उन्हें बहुत ज्यादा परेशानी थी। उनकी तीव्र इच्छा थी कि मैं उसके निबटारेके लिए जो-कुछ कर सकूँ, अवश्य करूँ। उन्होंने कहा, 'मैं चाहता हूँ कि मुसलमानोंकी भावनाका ध्यान रखकर उन्हें खुश रखा जाये। आशा थी कि कब्रके गिर्द दीवार बना देनेसे इसे लेकर चलनेवाली बातें खत्म हो जायेंगी। किन्तु चूँकि कब्रको खोदनेके बारेमें तीव्र आन्दोलन किया जा रहा है, मैं आड़े नहीं आ सकता। स्पष्ट ही कानून अनधिकृत भूमिमें मुर्दे गाड़नेके खिलाफ जान पड़ता है। इसके लिए अनुमति देनेका अधिकार न सुभाषको था और न सुहरावर्दीको। फिर भी मैं जो-कुछ करूँगा उसमें मुझे मुसलमानोंकी रजामन्दी तो चाहिए ही। मैं उन्हें इस बातपर राजी करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ कि वे खुद उस शवको वहाँसे हटा लें। मुझे पूरी आशा है कि वे मेरी बातको अवश्य मान लेंगे।'

हमने तारकेश्वरके मामलेपर भी चर्चा की। फलतः हमने एक वक्तव्य[1] तैयार किया और तय हुआ कि आवश्यकता हो तो उसपर हम दोनों हस्ताक्षर करें। हमारी बातचीत डा० बेसेंटके घोषणापत्रपर भी हुई। चूँकि उन्होंने उसका उत्तर जल्दी देनेका वचन दिया था, इसलिए उसपर अन्य बातोंसे पहले विचार करना जरूरी था। हमारी बातचीतका परिणाम यह हुआ कि डा० बेसेंटको पत्र लिख दिया गया।[2]

१. देखिए "सत्याग्रहियोंका कर्त्तव्य", २५-६-१९२५।

२. देखिए "एनी बेसेंटको लिखे पत्रका मसविदा", ४-६-१९२५।

किन्तु चरखा और खादीकी चर्चामें ही हमारा अधिक समय जाता था — खास तौरपर देहातके पुनरुत्थानके सिलसिलेमें। इसके लिए उन्होंने कोई डेढ़ लाख रुपया भी इकट्ठा कर रखा था। मैंने उनसे कहा कि आपकी योजना इतनी बड़ी है कि पूरी-की-पूरी एक साथ अमलमें नहीं लाई जा सकती। मैंने प्रताप बाबूका तैयार किया ढाँचा देखा है और मुझे वह बिलकुल पसन्द नहीं है, क्योंकि वह मुझे तो बिलकुल अव्यवहार्य मालूम होता है। इसे देशबन्धु नहीं देख पाये थे। सच तो यह है कि देशबन्धु भी सहमत थे कि वह चलने लायक नहीं है। प्रताप बाबूने स्वयं भी मान लिया था कि वह चलने लायक नहीं है। मैंने देशबन्धुसे कहा कि चरखेको गाँव सम्बन्धी तमाम प्रवृत्तियोंका मध्यबिन्दु बनाया जाना चाहिए। अन्य तमाम प्रवृत्तियाँ उसके आसपास घूमती रहें और जहाँ चरखा जम सके वहींसे उनकी शुरुआत की जा सकती है। इनके अतिरिक्त यह ग्राम-संगठनका काम राजनैतिक उखाड़-पछाड़ोंसे तो मुक्त रहे और एक ऐसे लोगोंकी समितिके जिम्मे कर दिया जाये जो उसके विशेषज्ञ हों। उसे स्थायी अधिकार दे दिये जायें और उसका एकमात्र काम ग्रामसेवा करना रहे। आप सतीश बाबूसे ऐसी समिति बनाने और कांग्रेसकी तरफसे इस कामको सँभाल लेनेका अनुरोध करें। मैंने यहा अपने कथनका सार मात्र दिया है। देशबन्धु मेरे कथनसे न केवल सहमत ही हुए, बल्कि उन्होंने उसको नोट भी कर लिया। वे उसे तुरन्त ही कार्यान्वित करनेके लिए उत्सुक थे। उन्होंने कहा कि आपके दार्जिलिंग रहते हुए ही मैं सतीश बाबूसे इस सम्बन्धमें बातचीत कर लेना और फिर कांग्रेसकी समितिको इसके सम्बन्धमें आवश्यक प्रस्ताव स्वीकृत करनेकी हिदायत दे देना चाहता हूँ। अतः सतीश बाबू तुरन्त बुलाये गये। वे आ गये। पहले तो हम तीनोंने साथ बैठकर सलाह की, फिर मैं दूसरे काममें लग गया और देशबन्धु अकेले सतीश बाबूसे विविध बातें करते रहे। तय हुआ कि सतीश बाबू संस्थाके पहले सदस्य हों, सतकौड़ी बाबू दूसरे हों और दोनों मिलकर एक तीसरा सदस्य चुनें। ग्रामकोषका एक हिस्सा तुरन्त उनके हवाले कर दिया जाये और मैं जलपाईगुड़ीमें मिलनेवाली थैलीका एक अंश उस मण्डल या समितिको दे दूँ। यदि आवश्यक हो तो संस्था लोक हितकारिणी संस्थाओंके कानूनके अनुसार रजिस्टर करा ली जाये; जिससे उसकी बुनियाद मजबूत हो जाये। देशबन्धुने कहा था कि वे इस कामके लिए सम्बन्धित कानूनका अध्ययन करेंगे। देशबन्धुने प्रताप बाबूसे इस सारी चर्चा और इस निर्णयका जिक्र किया था और उन्हें इसके अनुसार काम करनेकी हिदायतें भी दे दी थीं।

यह थी चरखेके प्रति और उसके द्वारा ग्रामसंगठन करनेकी उनकी धुन। उन्होंने कहा, 'यदि लॉर्ड बर्कनहेड हमें निराश कर देंगे तो मैं नहीं जानता कि हम कौंसिलोंमें क्या करेंगे, परन्तु मैं यह अवश्य जानता हूँ कि हमें आपके चरखेके कार्यक्रमको जरूर आगे बढ़ाना चाहिए और अपने गाँवोंका संगठन करना चाहिए। हमें अपने राष्ट्रको फिर उद्यमशील बना देना चाहिए। हमें कौंसिलोंको शक्ति देनी चाहिए। मुझे बंगालके नवयुवकोंको सँभालना चाहिए। मुझे सम्भव हो तो सरकारकी सहायतासे और आवश्यक हो तो उसके बिना भी, यह प्रत्यक्ष दिखा देना चाहिए कि स्वराज्य

बिना हिंसाके प्राप्त किया जा सकता है। मैंने देशके उद्धारके लिए अहिंसाको आपके समान ही अन्तिम रूपसे अपना धर्म बना लिया है। अहिंसाके बिना सविनय अवज्ञा नहीं की जा सकती। और सविनय अवज्ञाकी शक्तिके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। सच पूछा जाये तो हमें सविनय अवज्ञा करनेकी आवश्यकता ही नहीं होगी, परन्तु हममें उसकी क्षमता अवश्य आ जानी चाहिए। मुझे अपने अधीर नौजवानोंके लिए काम जरूर खोजना चाहिए। मैं आपकी इस बातसे सहमत हूँ कि यदि हम सावधान न रहेंगे तो हमारे कार्यकर्त्ता-वर्गमें भ्रष्टाचार फैलनेका खतरा है। मैंने अपने गुरुसे[1] तमाम कार्योंमें सत्यके पालनका मूल्य सीख लिया है। आप कमसे-कम कुछ दिन उनके साथ रहें तो अच्छा। आपकी और मेरी आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु उन्होंने मुझे वह बल प्रदान किया है जो मुझमें पहले न था। मैं पहले जिन बातोंको अस्पष्ट रूपसे देखता था, वे अब मुझे साफ-साफ दिखाई देती हैं।'

पर मैं अब इस बातचीतका अधिक विवरण नहीं दे सकता। मैं पाठकोंसे सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि वह बातचीत अन्तमें आध्यात्मिक चर्चामें अथवा प्रवचन-में परिणत हो गई है। उन्होंने तो इन बातोंकी अनन्त बारा ही बहा दी थी कि वे आजकल क्या कर रहे हैं और सशक्त हो जानेके बाद क्या करना चाहते हैं। उनके उस प्रवचनमें मुझे उनकी गम्भीर आध्यात्मिक प्रकृतिके दर्शन हुए। मुझे उनकी इस प्रकृतिके बारेमें अबतक कुछ मालूम नहीं था। मुझे पता नहीं था कि उनमें भी यह धुन उतनी ही प्रबल है जितनी अन्य अनेक प्रख्यात बंगालियोंमें है। अबसे कोई चार साल पहले उन्होंने मुझे गंगाके किनारे एक कुटी बनाकर रहनेकी बात कही थी। उन्होंने वह बात बादमें सैसून अस्पतालमें भी दुहराई थी। मैं उनकी इस बात-पर मन-ही-मन हँसा था और मैंने उनसे दिल्लगीमें कहा था कि जब आप कुटी बना लेंगे तब उसमें मेरा भी हिस्सा अवश्य रहेगा। परन्तु मैंने दार्जिलिंगमें अपनी यह भूल समझी। उनमें कुटीकी इच्छा जितनी प्रबल थी उनका उतना लगाव राजनीतिसे न था। वे राजनीतिमें तो परिस्थितिसे मजबूर होकर ही पड़े थे।

पाठकोंको यह सोचनेकी जरूरत नहीं है कि हमारी बातचीत जिन विषयोंपर हुई थी वे सब समाप्त हो चुके हैं। मैंने तो याददाश्तसे खास-खास बातें लिखनेकी ही कोशिश की है। उन्होंने कुछ यूरोपियों और भारतीयोंका चरित्र-चित्रण भी किया था; मैंने वह छोड़ दिया है।

हम मुख्यतः चरखेके सम्बन्धमें नित्य बातचीत करते थे और नियमसे नित्य चरखा भी चलाते थे। वह पूरा घर एक कताई-घर बन गया था। महादेव, सतीश बाबू और मैं कुशल कताई शिक्षकका काम करते थे। हम सभी देशबन्धुको कातना सिखाते। उन्होंने पटनामें मन लगा कर कताई सीखना शुरू कर दिया था। उन्होंने राजेन्द्र बाबूसे कहा था कि कोई कताई शिक्षक दें। किन्तु वे तब बीमार होनेके कारण उसमें अधिक प्रगति नहीं कर सके थे। दार्जिलिंगमें उन्हें अधिक प्रगति करनेकी आशा थी। वे कहते थे कि मेरे बायें कन्धेमें दर्द है; किन्तु जब यह चला जायेगा तब मैं अधिक

१. राधास्वामी सम्प्रदायके। देखिए "कुछ संस्मरण", २८-६-१९२५।

कताई करूँगा। किन्तु मैं अपने हाथोंसे काम करनेमें बहुत कच्चा हूँ। मेरी पत्नीसे पूछें कि मैं इस बारेमें कितना लाचार हूँ। वासन्ती देवीने कहा, 'वे ठीक ही कहते हैं। वे अपनी सन्दूकका ताला खोलते हैं तब भी मुझे बुलाते हैं।' मैंने कहा, 'स्त्रियाँ बहुत तेज होती हैं। आप छोटी-छोटी बातोंमें भी अपने पतिको लाचार करती हैं, जिससे उनपर आपका प्रभुत्व बना रहे।' इसपर देशबन्धु बहुत जोरसे हँसे। ऐसा लगा मानो उनकी हँसीकी गूँजसे सारी धरती हिल जायेगी। वे फूट-फूटकर रो भी सकते थे और उसी तरह जोर-जोरसे हँस भी सकते थे। किन्तु वे रोते थे एकान्तमें — ऐसे ही जैसे उनकी पत्नी रोती है। उन्होंने इस गहन शोकमें अपने अत्यन्त प्रिय परिजनोंके सम्मुख भी रोना अशोभनीय माना है। किन्तु देशबन्धु विशाल लोक समुदायोंके सम्मुख हँस सकते थे और लोगोंको हँसा सकते थे। हमारी गम्भीर बातचीत भी मुक्त हँसीसे आरम्भ होती जो घर-भरमें सुनाई देती। वे जानते थे कि मुझे पालथी लगाकर बैठना अच्छा लगता है। वे चारपाईमें लेटे थे। मैं कुर्सीपर बैठा था। मैं कभी अपने पैर लटका लेता और कभी कुर्सीमें ही पालथी लगा कर बैठनेका प्रयत्न करता। वे मेरी इस बेचैनीको बरदाश्त न कर सके। इसलिए उन्होंने अपनी चारपाईपर अपने सामने एक तकिया रखवा लिया और बिस्तरपर ही एक सूती गलीचा बिछवा कर मुझे उसपर बिठा दिया। मैंने उसपर आरामसे उनके सामने बैठते हुए कहा, 'इसे देखकर मुझे एक बातकी याद आ गई है; आप जानते हैं किस बातकी? बात चालीस साल पहले की है। मैं और मेरी पत्नी जब हमारा ब्याह हुआ तब ऐसे ही बैठे थे। अब केवल एक बात और करनी रहती है — पाणिग्रहण। कह नहीं सकता, इस सम्बन्धमें वासन्ती क्या कहेंगी'। इसपर सारा घर जोरकी हँसीसे गूँज उठा। दुःख है यह हँसी अब कभी सुनाई न देगी।

ये संस्मरण ८ जुलाईको बाँकुड़ामें लिखे गये थे। लॉर्ड बर्कनहेडका भाषण कलकत्ते में ९ तारीखको छपा और मैंने उसे उसी दिन सामान्यतः देखा। मैं ये टिप्पणियाँ १० तारीखको लिख रहा हूँ। मैंने अब यह भाषण गौरसे पढ़ लिया है। उससे इन संस्मरणोंका मूल्य और भी बढ़ जाता है। मैं कह सकता हूँ कि लॉर्ड बर्कनहेडके इस भाषणसे देशबन्धुको कितनी चोट लगी होती। किसी भी तरह सही, उनका यह खयाल बन गया था कि लॉर्ड बर्कनहेड कोई बहुत बड़ा काम कर दिखानेवाले हैं। मेरी नाकिस रायमें तो इस भाषणसे घोर निराशा होती है, इस कारण नहीं कि उसके द्वारा हमें कुछ मिला नहीं है, बल्कि इस कारण कि उससे भारत-मन्त्रीपर तथ्योंसे बिलकुल उलटी बात कहनेकी जिम्मेदारी आती है। उनकी हर एक मुख्य बातका देशके प्रायः प्रत्येक शिक्षित मनुष्यने खण्डन किया है, फिर चाहे वह किसी भी दलका हो। सबसे भारी दुःखकी बात तो यह है कि वे अपनी कही सभी बातोंपर शायद विश्वास भी करते हैं। अंग्रेजोंमें आत्मवंचनाकी गजबकी शक्ति होती है। हाँ, इसमें कोई शक नहीं कि वे इससे कितनी ही दिक्कततलब हालतोंमें से निकल जाते हैं; परन्तु उससे दुनियाको, जिसके एक बड़े भागपर उनकी हुकूमत है, अपरिमित हानि पहुँचती है। वे भ्रमवश यह विश्वासकर लेते हैं कि वे यह सब पूर्णतः नहीं तो मुख्यतः दुनियाके लाभके लिए करते हैं।

यदि हो सका तो मैं इस अनोखे अभिनयकी समीक्षा आगामी अंकमें करनेकी चेष्टा करूँगा। इस बीच हमारा कुछ कर्त्तव्य उस मृत आत्माके प्रति है जिसने अंग्रेजोंको भारतवर्षके सम्बन्धमें पहलेसे अधिक विचार करनेपर मजबूर किया है। अगर वे जीवित होते तो इस समय क्या करते? इसमें निरुत्साहित होनेका कोई कारण नहीं और न रोष करनेका कोई कारण है। लॉर्ड बर्कनहेडसे कुछ उम्मीद रखनेकी कोई कारण-सामग्री हमारे पास न थी। उन्होंने भारतमें अंग्रेजी शासनकी प्रशंसामें जो-कुछ कहा है वह कोई नई बात नहीं है। कोई परिश्रमी उपसम्पादक भी लॉर्ड बर्कनहेडके ख्यातनामा पूर्वाधिकारियोंके भाषणोंमें से ऐसी ही बातोंके उद्धरण प्रायः इन्हीं शब्दोंमें प्राप्त कर सकता है। यह भाषण क्या है; हमें अपने पक्षको सुव्यवस्थित बनानेकी चेतावनी है। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है मैं इसके लिए उनका कृतज्ञ ही हूँ। मेरे सामने देशबन्धुका नुस्खा मौजूद है। मैंने वह पाठकोंके सामने पेश भी कर दिया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-७-१९२५

२२५. पत्र: महादेव देसाईको

सिराजगंजसे आते हुए
शुक्रवार [१० जुलाई, १९२५][1]

चि० महादेव,

गाड़ी बहुत हिल रही है। लिखना जरूरी था इसलिए लिख रहा हूँ। 'यंग इंडिया' की सामग्री यहाँसे शायद सीधी भेजनी पड़े। वह अभी तैयार नहीं हुई है; इसलिए शायद असम मेलसे ही भेजी जायेगी। उक्त न्यासपत्र ले रखना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:] यहाँ शायद तीन हजारके लगभग रुपये इकट्ठे हो जायेंगे।

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४३१) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजी १० जुलाई, १९२५को सिराजगंज गये थे।

२२६. गुरुद्वारा कानून[1]

[११ जुलाई, १९२५]

अकाली आन्दोलनकी शुभ समाप्तिपर सिख और पंजाब सरकार दोनों बधाईके पात्र हैं। इसके लिए देशके सैकड़ों बड़ेसे-बड़े वीरोंको आत्म-बलिदान देनेकी जरूरत हुई और हजारों वीर अकालियोंको जेल जाना पड़ा। जेलमें उन्हें क्या-क्या दुःख भोगना पड़ा, जनता उससे परिचित ही है। ऐसा अद्भुत बलिदान व्यर्थ नहीं जा सकता था। हमें आशा करनी चाहिए कि गुरुद्वारोंका सुधार अब अबाध गतिसे निरन्तर होता रहेगा। सरकारने अकाली कैदियोंको छोड़ दिया है और अखण्ड पाठ सम्बन्धी शर्तोंकी पाबन्दीमें ढिलाई कर दी है। वह इसके लिए भी बधाईकी पात्र है। मैं देखता हूँ कि सरकारने अखण्ड पाठ तथा कैदियोंकी रिहाईपर जो शर्तें लगाई हैं उनसे कुछ असन्तोष उत्पन्न हुआ है। अभी मेरे लिए इस सम्बन्धमें कोई राय देना मुश्किल है। इस टिप्पणीको लिखते समय (११-७-१९२५ को) मुझे सिर्फ एक छोटा-सा अखबारी तार ही मिला है। परन्तु यदि वे शर्तें अपमानित करनेवाली न हों और सिर्फ बतौर सावधानीके अथवा सरकारकी प्रतिष्ठा बनाये रखनेके लिए लगाई गई हों तो मैं आशा करता हूँ कि अकाली मित्र उनपर अनावश्यक आपत्ति न करेंगे। उनका मुख्य उद्देश्य तो गुरुद्वारोंमें सुधार करना था। वह पूरा-पूरा सिद्ध हो गया है। मैं दूसरी बातें बहुत छोटी नहीं तो गौण अवश्य मानता हूँ। ऐसी हालतमें अकाली लोग कैदियोंकी रिहाई तथा अखण्ड पाठ सम्बन्धी सरकारकी लगाई शर्तोंका अर्थ बहुत खींचकर न लगायें तो अच्छा होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-७-१९२५

२२७. यह तो बलात् संयम है

एक बाल-विधवाने, जिसने अपना नाम-पता भी लिखा है, अपना रोना इस प्रकार रोया है:[2]

मेरे नाम ऐसे पत्र प्रायः आते रहते हैं, यही नहीं बल्कि मैं जहाँ-तहाँ बाल-विधवाओं-की दशा देखता भी रहता हूँ। मैं असंख्य बहनोंके सम्पर्कमें आता हूँ, इसलिए उनके दुःखको समझ सकता हूँ। पुरुष उनके दुःखमें जितना अधिकसे-अधिक हाथ बँटा सकता है, उतना बँटानेके लिए मैं स्त्री-सम बन गया हूँ — और वैसा बननेके लिए और भी अधिक प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं बहुत-सी बहनोंकी माँकी कमी पूरी करनेकी कोशिश करता हूँ। इस कारण मैं इस बहनके दुःखको भली-भाँति समझता हूँ।

१. यह १७-७-१९२५ के हिन्दुस्तानमें भी प्रकाशित हुआ था।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। लेखिकाने इसमें गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे विधवाओंके प्रश्नको भी उसी प्रकार उत्साहसे हाथमें लें जिस प्रकार उन्होंने अस्पृश्योंके प्रश्नको लिया है।

मेरा यह दृढ़ मत होता जाता है कि दुनियामें बालविधवा-जैसी कोई वस्तु होनी ही नहीं चाहिए। बाल और विधवा, ये दो परस्पर विरोधी शब्द हैं। वैधव्य धर्म नहीं है, संयम धर्म है। बलात्कार और संयम ये दोनों परस्पर विरोधी हैं — एकसे मनुष्यकी अधोगति होती है और दूसरेसे उन्नति। बलात् पालन किया गया वैधव्य पाप है, किन्तु स्वेच्छासे पालन किया गया वैधव्य धर्म है, आत्माकी शोभा है और समाजकी पवित्रताकी ढाल है। यह कहना कि पन्द्रह सालकी बालिका विवेकपूर्वक वैधव्यका पालन करती है, अपनी उद्धतता और अज्ञान प्रकट करना है। पन्द्रह वर्षकी बालिका वैधव्यके कष्टोंको क्या जान सकती है? माता-पिताका धर्म है कि वे उसके विवाहके लिए हर तरहकी सहूलियतें कर दें। एक कुरीतिके अधीन होना कायरता है और उसका विरोध करना पुरुषार्थ।

पाटीदारोंकी[1] विवाह-विधिके सम्बन्धमें और उनमें प्रचलित प्रथाओंके सम्बन्धमें मैंने बहुत-कुछ सुना है। अतः मुझे इस बहनके पत्रमें कोई अतिशयोक्ति नहीं दिखाई देती।

मैं युवती विधवाओंको क्या सलाह दूँ? इसका विचार करते समय मुझे अपनी अक्षमताका भान हो जाता है। उन्हें विवाह करनेकी सलाह देना तो आसान है, परन्तु वे विवाह किससे करें? उनके लिए वरकी खोज कौन करे? क्या वे गैर-बिरादरीमें ब्याह कर लें? क्या उन्हें खोजनेसे वर नहीं मिल सकता है? क्या वे विज्ञापनसे वर ढूँढ़कर विवाह करें? क्या विवाह कोई सौदा है? जहाँ लोकमत विरुद्ध अथवा उदासीन है वहाँ बाल-विधवाओंके लिए वर खोजना लगभग असम्भव है। और यदि सुयोग्य वर न मिले तो मैं उन्हें हर किसीसे विवाह-सूत्रमें बँध जानेकी सलाह कैसे दे सकता हूँ?

इसलिए मैं तो इन बाल-विधवाओंके माता-पिताओं तथा अभिभावकोंसे ही प्रार्थना कर सकता हूँ। परन्तु 'नवजीवन' उनके हाथोंमें कहाँ पहुँचता है? ये लोग तो प्रायः अखबार ही नहीं पढ़ते। ऐसा धर्म-संकट उपस्थित है।

फिर भी मैं विधवाओंको इतनी सलाह तो दे ही सकता हूँ कि वे शान्तिपूर्वक कष्ट सहन करें। वे अपने पुरुष या स्त्री अभिभावकोंके सामने अपना हृदय खोलकर रखें और उन्हें अपनी तमाम इच्छाएँ बतायें। यदि वे उनकी बात फिर भी न समझें या न मानें तो वे इसकी चिन्ता न करें और यदि उन्हें योग्य वर मिल जाये तो उससे ब्याह कर लें। ऐसा वर खोजनेके लिए जिस तरह दमयन्ती, सावित्री और पार्वतीने तप किया उसी तरह वे भी इस युगके अनुकूल और इस युगमें सम्भव तप करें। वह तप क्या है — अभ्यास। विधवाके लिए अभ्यास — शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अभ्यास — से बढ़कर मनको स्थिर करनेवाली दूसरी वस्तु नहीं। वे अपना एक-एक क्षण चरखेको देकर शारीरिक तप करें; अक्षर-ज्ञान प्राप्त करके मानसिक तप करें और आत्म-शुद्धि करके तथा आत्माकी पहचान करके आध्यात्मिक तप करें। उनके बड़े-बूढ़े उन्हें इन तीन कार्योंसे नहीं रोक सकते। और यदि रोकें भी तो उनका वह प्रयत्न व्यर्थ होगा। इन कार्योंको करनेका अधिकार सभीको है। यदि वह अधिकार विधवाओंको न दिया जाये तो वे अवश्य सत्याग्रह करें।

१. गुजरातकी पटेल जाति।

मैं जानता हूँ कि यह उपाय भी कठिन है। परन्तु सदुपाय कठिन दिखाई देते हैं, पर वास्तवमें कठिन नहीं होते। यह भगवद् वाक्य है।

यदि विधवाओंके अभिभावक न समझेंगे तो पछतायेंगे, क्योंकि मैं हर जगह दुराचार होता देखता हूँ। विधवासे बलात् संयम सधवानेसे उसकी, कुटुम्बकी या धर्मकी, किसीकी भी रक्षा नहीं हो सकती। मैं अपनी आँखोंके सामने इन तीनोंका नाश होता देखता हूँ।

बाल-विधवाओंके संरक्षक पुरुष परिस्थितिको समझें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-७-१९२५

२२८. 'नवजीवन' बन्द करें

'नवजीवन' के एक पाठकने लम्बा पत्र लिखा है। मैं उसका सार अपनी भाषामें देता हूँ, क्योंकि उसकी भाषा संक्षिप्त नहीं की जा सकती है। उनका कहना है:

> 'नवजीवन' में केवल चरखेकी ही चर्चा भरी रहती है, इससे पाठक ऊब गये हैं। आप जैसे प्रति मास एक शिक्षण अंक निकालते हैं यदि वैसे ही प्रति मास 'चरखा अंक' भी निकालें तो उसमें पैसेकी बचत होगी और लोग शायद उसे पढ़ेंगे भी। चूँकि आप 'नवजीवन' लाभकी दृष्टिसे नहीं निकालते, इसलिए आपको ऐसी सलाह दी जा सकती है। यदि आपको 'नवजीवन' प्रति सप्ताह निकालना जारी ही रखना हो तो आप उसकी मार्फत लोगोंको किसी नई प्रवृत्तिकी जानकारी दें और वह ऐसी हो जिससे अंग्रेजोंके मनमें भय उत्पन्न हो। आप तुर्कीकी ओर देखें, उसने क्या किया? हम इस संसारमें तो यही देखते हैं, 'भय बिनु होय न प्रीति'।

मुझे ऐसी सलाह देनेवाले लोग विरले नहीं हैं। कभी-कभी उनकी शंकाओंका समाधान करनेमें 'नवजीवन' का हेतु स्पष्ट करनेका अवसर मिलता है, इसलिए इस विषयकी चर्चा अप्रासंगिक नहीं। यह तो नहीं कह सकते कि 'नवजीवन' में चरखेकी ही चर्चा भरी रहती है; हाँ, यह कहा जा सकता है कि चरखेकी चर्चाको प्रधानता दी जाती है। किन्तु उसके जितने ग्राहक बचे हैं उनकी संख्या देखते हुए मैं कह सकता हूँ कि उन्हें मात्र चरखेकी ही चर्चा भी अप्रिय नहीं है।

'नवजीवन' द्रव्योपार्जनका साधन नहीं है। वह प्रत्येक प्रवृत्तिका प्रचार-साधन भी नहीं है। वह तो केवल मेरे विचारोंके प्रचारका ही साधन है। 'नवजीवन' कर्ज लेकर नहीं चलाया जा सकता; उसका खर्च विज्ञापनकी आमदनीसे भी नहीं निकाला जा सकता। वह एक या अनेक मित्रोंसे दान लेकर पाठकोंको मुफ्त भी नहीं दिया जा सकता। 'नवजीवन' के पाठक खुद अपनेको उसका मालिक समझें। 'नवजीवन' उनके लिए मेरा साप्ताहिक पत्र है। उन्हें जबतक उसमें दिये गये विचार

पसन्द आते हैं तबतक वे उसे मूल्य देकर लें और सँभाल कर रखें; क्योंकि मैं प्रति सप्ताह उसमें अपना आत्मा उंडेलता हूँ और जानता हूँ कि जिस रचनामें कोई अपढ़ मनुष्य भी अपना आत्मा उंडेलता है उसको पढ़ने और उसपर विचार करनेमें कल्याण है।

'नवजीवन' सत्याग्रहका अमूल्य मार्ग बतानेका साधन है। कह सकते हैं कि मैं इस सत्याग्रहका उपयोग बतानेके लिए ही जीता हूँ। यह नई चीज नहीं है; किन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि मैं पुरानी चीजको ही नई भाषामें और नये ढंगसे पल्लवित करके प्रकाशित कर रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि सत्याग्रहके ही द्वारा स्वराज्य मिल सकता है। स्वराज्य हमारी साँस है। वह हमारे पास नहीं है, इससे हमारी अवस्था उस मनुष्यकी-सी हो रही है जो साँस ही न ले पा रहा हो। यदि मैं लोगोंको सत्याग्रहके मूलतत्त्व समझा सकूँ तो मेरा, देशका और संसारका मार्ग सरल हो जायेगा। मैं यह बात भली-भाँति जानता हूँ। हाँ, सम्भव है कि उस मार्गके बता पानेके पहले ही मेरा देहान्त हो जाये।

परन्तु ऐसा हो भी तो कोई हानि नहीं। यह अटल नियम है कि पुण्यकर्मका नाश कभी नहीं होता।

सत्याग्रह चरखके बिना असम्भव है। अन्न भूखों मरते मनुष्यका ईश्वर है। इसीसे उपनिषद्ने कहा है, 'अन्नं वै ब्रह्म' अर्थात् अन्न ही ब्रह्म है। अन्न मनुष्यके शरीर बलसे उत्पन्न होता है। चूँकि हम पूरे शरीरबलका उपयोग नहीं करते; इसलिए हमें अपर्याप्त अन्न मिलता है। यहाँ लोग सालमें चार महीने आलस्यमें गुजारते हैं। इसका परिणाम कुल मिलाकर यह हुआ है कि लोग क्षीण हो गये हैं। चरखा लोगोंको सबल बनानेका और उनकी भूख मिटानेका एकमात्र अनुपम साधन है। वर्षाकी एक बूँदका कुछ असर नहीं होता; परन्तु जब असंख्य बूँदें इकट्ठी हो जाती हैं तब उनकी पोषक शक्ति ऐसी हो जाती है कि वह सारी दुनियाको हर साल नवीन चेतना देती है। इसी तरह एक चरखेका असर भले ही कुछ न होता दिखाई दे; परन्तु चरखा-समुदायकी शक्ति वर्षाके बिन्दुओंके समुदायके बराबर तो अवश्य है — और एक तरहसे तो उससे भी अधिक है। यदि पानीकी एक ही बूँद गिरती है तो वह व्यर्थ जाती है। बहुत-सी बूँदें असमय गिरती हैं तो वे भी हानि करती हैं। किन्तु चरखा एक भी चलाया जाये तो उससे एक आदमीको तो लाभ पहुँचता ही है। चरखेके लिए असमय तो होता ही नहीं। इसीलिए इस चरखेके अभिक्रम (प्रारम्भिक उद्यम) का नाश नहीं और इसमें प्रत्यवाय (हानि) भी नहीं; प्रत्युत इसके अल्प उपयोगसे भी मनुष्य महाभयसे मुक्त होता है।[1]

मेरा यह दृढ़ विचार है। इस कारण यदि 'नवजीवन' चरखेकी चर्चाको प्रधानता न दे तो फिर उसके लिए कोई कार्य नहीं रह जाता।

१. नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ भगवद्गीता २-४०

परन्तु चरखा शान्ति-पाठ है। वह आत्म-शुद्धिका सशक्त साधन है। आत्मशुद्धिके दूसरे साधन भी हैं किन्तु उनका विचार 'नवजीवन' में प्रसंगोपात्त किया जाता है और किया जाता रहेगा। समस्त लेखोंका मूल तो एक ही होगा — आत्मशुद्धि, स्वराज्य और सत्याग्रह। 'नवजीवन' का उद्देश्य है आन्तरिक शक्तिको बढ़ाकर स्वराज्य प्राप्त करना। इसलिए यदि 'नवजीवन' में कौंसिल-प्रवेश और ऐसे अन्य विषयोंकी चर्चा भी किसी रूपसे की ही जाती है तो वहींतक की जाती है जहाँतक उसका सम्बन्ध आत्मशुद्धि या आत्मशक्तिके विकाससे है। 'नवजीवन' फिलहाल पाठकोंको गरमागर्म तीखी चीजें नहीं दे सकता, क्योंकि उससे कुछ लाभ नहीं। केवल टीका-टिप्पणीमें समय खोना व्यर्थ है। टीका-टिप्पणी तभी उचित होती है जब उसके पीछे कुछ बल हो। जो लोग इस बातको समझते हैं वे 'नवजीवन' के महत्त्वको अवश्य जान जायेंगे और उसका त्याग नहीं करेंगे। जबतक उसके पाठकोंकी संख्या पर्याप्त रहेगी, वह तबतक चलेगा। किन्तु जब उसकी ग्राहक संख्या एक निश्चित सीमासे कम हो जायेगी तब मुझे उसे बन्द करनेमें न एक क्षणका विलम्ब होगा और न क्षोभ।

और 'नवजीवन' के बन्द हो जानेपर भी मेरा चरखा तो कदापि बन्द न होगा। क्योंकि उसको चलानेके लिए तो मुझे मित्रोंकी भी आवश्यकता नहीं होती।

लेखककी दूसरी सलाह यह है कि मैं अंग्रेजोंके मनमें भय उत्पन्न करनेवाली कोई बात लिखूँ। यह तो मेरे स्वभावके विरुद्ध है, अतः यह मुझसे नहीं हो सकता। मैं तो अंग्रेजोंको प्रेमसे जीतना चाहता हूँ। सम्भव है कि हिन्दुस्तान ऐसा न कर सके और भय पैदा करनेका मार्ग ग्रहण करे। वह ऐसा कर सकता है। परन्तु इसके लिए उसे मेरी सहायताकी आवश्यकता नहीं होगी;, क्योंकि मैं उस तरहका सिपाही नहीं हूँ। मैं जिन-जिन हथियारोंकी तजवीज कर सकता हूँ उन सबका मूल प्रेम अथवा सत्य ही होता है। मेरी तजवीजमें भूल हो सकती है — हेतुमें कभी नहीं।

यह है, 'नवजीवन' की और मेरी मर्यादा।

एक अन्य पाठकने एक दूसरा सुझाव दिया है। मैं यहाँ उसका भी विवेचन कर दूँ। उसका कहना है कि 'नवजीवन' का पाँच पैसा मूल्य पाठकोंके लिए बहुत अधिक है। अतः यदि उसका मूल्य एक पैसा कर दिया जाये तो उसके ग्राहक बहुत-से लोग बन जायेंगे और 'नवजीवन' को पाससे घाटा न देना पड़ेगा। जो हिसाब-किताबके बारेमें कुछ जानते हैं वे समझ सकते हैं कि किसी वस्तुका मूल्य एक निश्चित सीमासे कम रखें तो उस अवस्थामें ज्यों-ज्यों उसकी खपत बढ़ती है त्यों-त्यों उसका घाटा भी बढ़ता है। इसका अर्थ यह है कि जो वस्तु लाभके साथ बेची जा रही हो उसीकी खपत बढ़नेमें लाभ रहता है। जो पत्र हानि उठाकर निकाला जाता हो, उसकी खपत बढ़नेसे तो हानि ही बढ़ेगी। जब 'नवजीवन' का प्रकाशन आरम्भ किया गया तब वह हानि उठाकर ही निकाला जाता था। उसका चन्दा हिसाब लगानेपर जो उचित लगा वही रखा गया है। वह लागतसे कुछ अधिक है, अतः जब उसके ग्राहक बढ़ते हैं तब उसका लाभ भी बढ़ता है। यदि कोई मनुष्य यह कहे कि उसका मूल्य यह लाभका अंश निकालकर रखा जाये तो उसे जानना चाहिए कि यह लाभका अंश इतना

नहीं है कि उसके मूल्यपर उसके निकाल देनेका कोई खास असर हो।[1] 'नवजीवन' एक पैसे या दो पैसेमें बेचा जा सके, ऐसी स्थिति नहीं है। किन्तु इसके साथ मुझे यह भी बता देना चाहिए कि जहाँ जरूरत जान पड़ती है वहाँ वह बिलकुल बिना मूल्य ही भेजा जाता है। मेरी जानकारीमें ऐसे लोग अधिक नहीं हैं जिन्हें 'नवजीवन' का मूल्य देना भारी पड़ता हो, किन्तु जो, यदि यह मुफ्त मिल जाये तो, इस पत्रको पढ़नेके लिए उत्सुक रहते हों। यदि कोई ऐसे लोग हों तो मैं उनका नाम और पते अवश्य ही जानना चाहता हूँ। क्योंकि कुछ मित्रोंने 'नवजीवन' बिना मूल्य भेजनेके लिए रुपया देनेका वचन दिया है। मैं उसका उपयोग अधिकारी पाठकोंको पत्र देनेके लिए अवश्य करूँगा। ऐसे लोग व्यवस्थापकको पत्र लिखें। वे उचित समझेंगे तो उन्हें 'नवजीवन' बिना मूल्य या कम मूल्यमें दे देंगे। किन्तु पाठकोंको जानना चाहिए कि यह खर्च कोई-न-कोई मित्र ही उठायेगा। उसे 'नवजीवन' नहीं उठायेगा क्योंकि उसमें यह खर्च उठानेका सामर्थ्य नहीं रहा है।

लेखकका खयाल यह भी जान पड़ता है कि 'नवजीवन' अब भी 'यंग इंडिया' का घाटा पूरा करता है। ऐसी भी कोई बात नहीं है। 'यंग इंडिया' के प्रकाशनमें अब घाटा है ही नहीं। हाँ, 'हिन्दी नवजीवन' की स्थिति अभी वैसी अवश्य मानी जा सकती है। अभी उसकी ग्राहक संख्या इतनी नहीं हो सकी है कि वह स्वावलम्बी माना जा सके। अभी उसमें कमी-बेशी होती रहती है। किन्तु उसका खर्च भी अब अकेले 'नवजीवन' के पाठक नहीं उठाते। उसका खर्च समूचा संस्थान अर्थात् उसके समस्त विभाग उठाते हैं। इस खर्चको मित्र लोग उठा सकते थे; किन्तु वे जानते हैं कि यहाँ वह परिवार बाह्य सहायता स्वीकार न करनेकी अपनी प्रतिज्ञा नहीं त्याग सकता; तब वे इस प्रकारका आग्रह कैसे करें?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-७-१९२५

१. यहाँ नवजीवनके व्यवस्थापककी निम्नलिखित टिप्पणी थी:

गत ३० जूनको नवजीवनके सम्बन्धमें दो परिवर्तन करनेका निश्चय किया गया है:

एक: जब नवजीवनके कागजका वर्तमान संग्रह समाप्त हो जाये तब नवजीवनमें बढ़िया किस्मके कागजका उपयोग किया जाये।

दो: इस समय नवजीवनमें विशेष सामग्री देनेके उद्देश्यसे कोई परिशिष्टांक निकाला जाता है तो ग्राहकोंसे उसका मूल्य अलग लिया जाता है। अब यह बन्द करके (सितम्बर १९२५ से) नवजीवनका सातवां वर्ष आरम्भ होनेपर जब उसमें विशेष सामग्री दी जाये और उसके अतिरिक्त पृष्ठ छापे जायें तब वे जैसे पहले पाठकोंको बिना मूल्य दिये जाते थे, वैसे ही दिये जायें।

२२९. खादी प्रतिष्ठान

'नवजीवन' के पाठक जानते हैं कि मैं बंगाल खादी प्रतिष्ठानके कार्यसे कितना प्रसन्न हुआ हूँ। मेरे विवरणको पढ़कर भाई लक्ष्मीदासने[1] भाई मथुरादासको प्रतिष्ठानके निरीक्षणके लिए भेजा था। उन्होंने अपनी जाँचके फलस्वरूप अपना मत लिपिबद्ध करके उसकी एक नकल मुझे भेजी है। मैंने अपना निरीक्षण भले ही सावधानीसे क्यों न किया हो; किन्तु वह शास्त्रीय नहीं माना जा सकता। भाई मथुरादासका निरीक्षण शास्त्रीय है, क्योंकि उन्होंने इस विषयका विशेष-रूपसे अध्ययन किया है। उन्होंने अन्य संस्थाओंकी जाँच भी सावधानीसे की है और वे उनका हिसाब जबानी बता सकते हैं। इससे मैं उनके निरीक्षणको अपने निरीक्षणकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। मेरे निरीक्षणके विवरणसे पाठक मेरा मत जान सकते हैं; उन्हें उसमें प्रमाण कम मिलेंगे किन्तु शास्त्रीय निरीक्षणके विवरणमें पाठकोंको मेरे मतके समर्थक प्रमाण भी मिलेंगे। भाई मथुरादासका निरीक्षणका विवरण ऐसा होनेके कारण इसी अंकमें अन्यत्र दिया गया है।

मैं चाहता हूँ कि खादीके कार्यकर्त्ता उनके विवरणको ध्यानपूर्वक पढ़ें। खादी प्रतिष्ठानमें एक व्यापारिक पेढ़ीकी भाँति कार्यकर्त्ताओंसे विधिवत् काम लिया जाता है और उन्हें पूरा वेतन दिया जाता है। यह उस संस्थाकी विशेषता है। इसके बावजूद उस संस्थामें त्यागी लोग हैं। इसका पहला कारण यह है कि इसके दो मुख्य कार्यकर्त्ता, आचार्य राय और उनके दाहिने हाथ सतीश बाबू दोनों त्यागी हैं। इसका दूसरा कारण यह है कि व्यापारियोंके समान कार्यपद्धति रखनेपर भी इसके पीछे स्वार्थ नहीं है।

मैंने जलपाईगुडीके व्यापारियोंसे कहा था कि व्यापार हिंदुस्तानकी मुक्तिकी चाबी है। हमारे व्यापारियोंने इस व्यापारके लिए ही हिन्दुस्तानको पराधीन बनाया था। इसलिए जब व्यापारी वर्ग ही स्वार्थके बजाय परमार्थकी साधना करेगा तब हिन्दुस्तान जागृत होगा। यदि व्यापारी करोड़ों रुपये दानमें दें, तो वह काफी नहीं है। रुपये तो वे दे ही रहे हैं, किन्तु जब वे अपनी बुद्धि भी हिन्दुस्तानकी सेवामें लगा देंगे तभी यह कार्य सिद्ध होगा। ऐसा व्यापारी अपने लिए नहीं बल्कि हिन्दुस्तानके हितार्थ धनसंग्रहका विचार करेगा। फिर वह यह नहीं सोचेगा कि हिन्दुस्तानके हितार्थ भी किस धन्धेमें अधिक धन मिलेगा, बल्कि यह देखेगा कि किस धन्धेसे हिन्दुस्तानके अधिकसे-अधिक लोग गाँवोंमें अपने घरोंमें रहते हुए अधिकसे-अधिक कमाई कर सकते हैं। ऐसे कुछ व्यापारी हमें मिले हैं, इसीलिए तो वह प्रगति हो रही है जिसे हम देख रहे हैं। यह प्रगति साधारण त्रैराशिकसे जानी जा सकती है।

मैं सतीश बाबूके कार्यकी सराहना करता हूँ, क्योंकि उन्होंने अपना लाखोंका व्यापार छोड़ा है और अपनी बुद्धि, कुटुम्ब और धन खादी प्रचारके निमित्त अर्पित

१. साबरमती आश्रमके लक्ष्मीदास आसर।

कर दिये हैं। किन्तु फिर भी उनको अपने इस त्यागका तनिक भी खयाल नहीं है, अथवा कहना चाहिए कि उन्हें इसका तनिक भी अभिमान नहीं है; क्योंकि उन्हें इस त्यागमें सुखकी अनुभूति मिली है। वे इस त्यागके विना रह नहीं सकते।

पाठक इस सराहनासे यह न समझें कि सतीश बाबूके कार्यकी आलोचना व्यापारिक दृष्टिसे की ही नहीं जा सकती। किन्तु यदि की जा सकती हो तो इसमें उनका दोष नहीं है। इसका कारण इस कार्यविषयक उनके ज्ञानकी कमी है। यह कमी अनुभवसे दूर हो जायेगी। हम तो इतना ही चाहते हैं कि इस तरहके दूसरे बहुतसे कुशल व्यापारी अपना सर्वस्व त्याग कर अपने स्वार्थके लिए नहीं, किन्तु देशके हितके लिए खादीका व्यापार करने लगें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १२-७-१९२५

२३०. टिप्पणियाँ

पिछले वर्ष अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने सूत कातनेके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पास किया था, उसके अन्तर्गत अखिल भारतीय खादी बोर्डको जो सूत मिला है उसने उसका संक्षिप्त विवरण मुझे भेजा है। विवरण इस प्रकार है:[1]

इस विवरणसे हमें कुछ महत्त्वपूर्ण शिक्षा मिलती है। हर संस्था एक यन्त्रकी तरह होती है। जैसे यन्त्रकी एक भी कील ढीली हो तो यन्त्र उस हदतक कमजोर हो जाता है और कभी-कभी तो टूट भी जाता है। वैसा ही सब संस्थाओंके और मुख्यतः रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाओंके सम्बन्धमें है। यदि उनकी छोटीसे-छोटी विगतकी भी सावधानी न रखी जाये तो उनके उत्पादनमें अन्तर आ जाता है। कमजोर सूत, जो ठीक बटा न हो, ठीक तरह अटेरा हुआ न हो और ऐसा प्रत्येक दोष खादीको कमजोर बनाता है, बुनाईका दाम बढ़ाता है और उससे बुनाईमें भी देर लगती है। हम यह भी देखते हैं कि खादीके उत्पादनमें जो शिथिलता हुई है उसका कारण केवल कताईके दोष ही हैं।

कातनेवाले चेतें

इस खादीकी कीमत बाजार भावसे रखी गई है। क्योंकि इसकी मात्रा इतनी कम है कि उसकी कीमत घटाकर बेचनेका कोई अर्थ नहीं होता और कीमत घटानेके बाद उस खादीको लेनेका प्रथम अधिकार किसे रहे, यह प्रश्न भी उठता है। ऐसा प्रश्न इस थोड़ी-सी खादीके सम्बन्धमें नहीं उठना चाहिए, इस कारण भी मैंने इस खादीको बाजार भावसे बेचनेकी सलाह दी है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १२-७-१९२५

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

२३१. सम्मति: दर्शक-पुस्तिकामें[1]

१२ जुलाई, १९२५

अच्छी पुस्तकें पढ़ना अच्छा है; पर हम उत्कृष्ट साहित्यमें जो-कुछ पढ़ें उसे अपने जीवनमें उतारना कहीं अधिक अच्छा है।

मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ६०५१) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: सार्वजनिक पुस्तकालय, इलाहाबाद

२३२. भाषण: राजशाहीकी सार्वजनिक सभामें[2]

१२ जुलाई, १९२५

मानपत्र तथा भेंट[3] देनेवालोंको धन्यवाद देनेके बाद गांधीजीने बताया कि मेरे इस दौरेके दो उद्देश्य हैं। उनमें पहला देशबन्धु स्मारकके लिए १० लाख रुपया इकट्ठा करना है। मुझे पूरी आशा है कि राजशाहीके बड़े-बड़े जमींदार, वकील और व्यवसायी स्मारक कोषमें समुचित दान देंगे। मैं प्रत्येकसे यथाशक्ति योग देनेका अनुरोध करता हूँ। लाखों लोग देशबन्धु दासके निधनपर दुःखित हैं। देशबन्धुके प्रति इस अगाध प्रेमका उपयोग मैं हिन्दुस्तानकी शक्ति और सामर्थ्यको बढ़ानेकी दिशामें करना चाहता हूँ। हमारा पहला कर्त्तव्य देशबन्धुके स्मारकमें यथाशक्ति दान देकर उनकी इच्छाओंको पूरा करना है।

देशबन्धुके साथ दार्जिलिंगमें हुई अपनी बातचीतका हवाला देते हुए महात्माजीने बताया कि देशबन्धुने जोर देकर यह बात कही थी कि गाँवोंके पुनर्गठनके बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता तथा इस पुनर्गठनके लिए सबसे आवश्यक चीज है चरखा। मैं आपसे दिवंगत देशबन्धुकी इच्छाके अनुसार काम करनेका अनुरोध करता हूँ अर्थात् (१) आप नियमसे प्रतिदिन आधा घंटा कातें, (२) खद्दर पहनें और (३) हिन्दू और मुसलमान आपसमें मेलसे रहें। दार्जिलिंगमें मेरे और देशबन्धुके बीच हुई बातचीतका यही एक मुख्य विषय था।

१. गांधीजीने यह टिप्पणी राजशाही सार्वजनिक पुस्तकालयकी दर्शक-पुस्तिकामें लिखी थी।

२. सभामें गांधीजीको स्वागत समिति, नगरपालिका, जिला व स्थानीय बोर्डों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओंकी ओरसे मानपत्र भेंट किये गये थे। उत्तरमें दिये गये गांधीजीके हिन्दी भाषणका बंगलामें अनुवाद सतीशचन्द्र दासगुप्तने किया था। मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

३. कलम नामक जगहमें बने पीतलके बर्तन और एक पेटी चरखा भेंटमें दिये गये थे।

महात्माजीने आगे बोलते हुए कहा कि देशबन्धुको किसी व्यक्तिसे घृणा नहीं थी तथा उन्होंने अपने जीवनसे यह प्रदर्शित कर दिया था कि अस्पृश्यताका धर्ममें कोई स्थान नहीं है। यदि वास्तवमें आपके मनमें देशबन्धुके प्रति प्रेम और अनुभूति हैं तो मैं आपसे उनकी इच्छाओंके अनुसार कार्य करके स्वराज्य प्राप्त करनेका अनुरोध करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १७-७-१९२५

२३३. प्रश्नोंके उत्तर[1]

जैसोर जाते हुए गाड़ीमें
[१४ जुलाई, १९२५ या उससे पूर्व][2]

प्रश्न (१) क्या आप यह सोचते हैं कि आप कांग्रेसके सदस्य बने रहें, इसीलिए उसके सिद्धान्तोंको बदल दिया जाना चाहिए। आपके विचारसे क्या यह रद्दोबदल आवश्यक है? आपको जो सिद्धान्त मान्य है, क्या आप उसकी व्याख्या करेंगे।

उत्तर: यदि मताधिकारके नियममें रद्दोबदल किया ही जाना हो तो खरीदकर सूत देना बन्द कर दिया जाना चाहिए।

(२) यदि मतदानकी पात्रताके लिए वार्षिक चन्देके साथ-साथ विकल्पके रूपमें सूतकी एक निश्चित मात्रा देनी भी हो तो क्या यह आपको मान्य होगा?

ऐसी हर बात जो स्वराज्य दलको मान्य है मुझे भी मान्य है।

(३) यदि कांग्रेस सूत सम्बन्धी सदस्यताकी शर्तको समाप्त कर देती है और स्वराज्यवादियोंको विधानसभाओंमें राजनीतिक कार्यको निश्चित करनेका अधिकार देनेके बजाय कौंसिलोंके कार्यके साथ-साथ अपना स्वयंका राजनीतिक कार्यक्रम बनाती है तो क्या आप उसे कार्यान्वित करनेमें मदद देंगे?

इस समय तकके अपने विचारोंको देखते हुए मैं समझता हूँ कि मैं ऐसी संस्थाका नेतृत्व नहीं कर सकूँगा।

(४) आपकी रायमें कौंसिलोंके अन्दर और बाहर कांग्रेसका कार्यक्रम क्या होना चाहिए?

वर्तमान कार्यक्रम ही।

(५) क्या आप यह समझते हैं कि केवल संवैधानिक आन्दोलनके बलपर ही अंग्रेजोंको स्वराज्य देनेपर बाध्य किया जा सकता है?

१. बॉम्बे क्रॉनिकलने विभिन्न राजनीतिक दलोंके नेताओंके पास राजनीतिक एकतासे सम्बन्धित कुछ प्रश्न उनके विचार जाननेके लिए भेजे थे।

२. गांधीजी १३ जुलाईको कलकत्ता और १४ जुलाईको जैसोरमें थे। यह निश्चित नहीं है कि गांधीजी कलकत्तासे जैसोरके लिए १३ जुलाईको रवाना हुए थे या १४ को।

मैं ऐसा नहीं सोचता।

(६) यदि असंवैधानिक आन्दोलन आवश्यक हो तो आप कांग्रेसको किस या किस-किस प्रकारकी सीधी कार्रवाई करनेकी सलाह देंगे? क्या आप करबन्दीको मुद्दा बनाकर विधानसभाओंका चुनाव लड़नेकी सिफारिश करेंगे?

इस समय तो कर न देनेके बजाय सविनय अवज्ञा ही उपयुक्त सीधी कार्रवाई होगी।

(७) क्या आप स्वयं विदेशी कपड़ा पहनना छोड़नेको तैयार हैं? यदि आप अब भी इसे इस्तेमाल करते हैं तो क्या आप स्वदेशी आन्दोलनकी सहायता करनेके लिए इसे छोड़ देंगे?

मैं विदेशी कपड़ा नहीं पहनता। जहाँतक मेरा सवाल है खद्दर पहनना स्वदेशीके लिए अत्यावश्यक है।

(८) यदि आप अपने जिलेसे कौंसिलके सदस्य चुन लिये जाते हैं तो क्या वर्तमान परिस्थितियोंमें आप मन्त्रीपद मंजूर करेंगे?

ईश्वरको लाख धन्यवाद; मैं कानूनन इसके अयोग्य हूँ।

(९) यदि रीडिंग बर्कनहेडकी बातचीतसे आपको निराशा हुई है तो रोषपूर्ण सभाओं व जुलूसोंके साथ-साथ आप जनताको और क्या कदम उठानेकी सलाह देंगे?

यदि मुझमें शक्ति हो तो इस निराशाका उपयोग मैं केवल एक ही सम्भव बातके लिए करूँ, वह है विदेशी कपड़ेका बहिष्कार।

(१०) यदि भारतीय राष्ट्रमण्डल विधेयककी मुख्य व्यवस्थाएँ आपको सन्तोष-प्रद लगती हैं तो अक्तूबर, १९२६ से पहले इसके ब्रिटिश संसद द्वारा पास न किये जानेकी हालतमें क्या आप कांग्रेससे कर न देनेके मुद्देको लेकर चुनाव लड़नेकी सलाह देंगे?

इसका उत्तर ऊपर दिया जा चुका है।

(११) क्या आप यह समझते हैं कि रचनात्मक कार्यक्रमको उत्तेजन देनेके लिए स्वराज्यवादी सरगर्मीसे कार्य कर रहे हैं?

सब जगह और सभी स्वराज्यवादी ऐसा नहीं कर रहे हैं।

(१२) आपकी रायमें क्या कांग्रेसियों और इंडिपेंडेंटों अथवा नरमदलीय लोगोंके दृष्टिकोणों तथा राजनीतिक तौर-तरीकोंका अन्तर इतना महत्त्वपूर्ण है कि उनमें आपसी समझौता करके कोई संयुक्त कदम नहीं उठाया जा सकता?

दीखता तो ऐसा ही है। पर मैं चाहता हूँ कि ऐसा न हो।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २१-७-१९२५

२३४. सत्यपर कायम रहो

बकरीदके दिन खिदरपुरमें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें जो दंगा हुआ मैंने उसका हाल देकर पाठकोंको चिन्तामें नहीं डाला, हालाँकि मैं खुद दंगेके कुछ घंटे बाद संयोगसे मौकेपर जा पहुँचा था। मैंने खिदरपुरसे रसा रोड लौटते ही एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे काफी देर मुलाकात अवश्य की थी[1]। उसमें मैंने सोच-विचारके उपरांत अपनी यह राय दी थी कि हिन्दू मजदूरोंका कार्य बिलकुल अनुचित था। मेरे इस वक्तव्य-को पढ़कर कुछ हिन्दू मुझपर बहुत नाराज हुए हैं और उन्होंने मुझे इस बातपर कि मैंने हिन्दुओंका दोष बताया, चिट्ठियाँ लिखकर बहुत गालियाँ दी हैं और जली-कटी सुनाई हैं। उनमें से एक लेखक कहते हैं कि मैं अपना कोई मुसलमानी नाम रख लूँ। मैं इन पत्रोंका उल्लेख यहाँ यह दिखानेके लिए करता हूँ कि हमारे कुछ लोगोंमें अपने मजहबके लिए अंधा जोश किस हदतक बढ़ गया है। हम अपना कोई भी दोष देखना ही नहीं चाहते। जब किसी धर्म-विशेषके बहुसंख्यक अनुयायियोंकी सामान्य स्थिति ऐसी हो जाती है तब समझ लेना चाहिए कि वह धर्म अस्त हो रहा है; क्योंकि असत्यकी नींवपर स्थित कोई बात अधिक समयतक नहीं टिक सकती।

मैं तो यह कहनेका साहस करता हूँ कि बिना किसी रिआयतके हिन्दू मजदूरोंका दोष बताकर मैंने हिन्दूधर्मकी सेवा ही की है। मेरी इस स्पष्टोक्तिपर खुद मजदूरोंने भी नाराजगी नहीं दिखाई थी; बल्कि उलटी उसके लिए कृतज्ञता ही व्यक्त की थी। उनको अपने कृत्यपर पश्चात्ताप हुआ, उन्होंने अपने कसूरको कबूल किया और सच्चे दिलसे उसके लिए मुआफी माँगी।

मैंने जो-कुछ खुद अपनी आँखोंसे देखा और अपने मनमें अनुभव किया, मैं उसे न कहता तो क्या करता? क्या मैं गुनहगारोंको बचानेके लिए सचाईको छिपाता? जब आधी रातके वक्त हर जगह जा पहुँचनेवाले संवाददाता मेरे पास पहुँचे तब क्या मैं उनसे बातचीत करनेसे इनकार कर देता? उस समय जब कि सत्य कहनेका प्रसंग था, यदि मैं सत्य कहनेमें आगापीछा करता तो मैं अपनेको हिन्दू कहनेका अधिकार खो देता; अपनेको कांग्रेसके सभापति पदके अयोग्य साबित करता और एक सत्याग्रहीके तौरपर अपने नामको धब्बा लगाता। हिन्दू लोग मुसलमानोंपर जो अपराध लगाते हुए नहीं सकुचाते उन्हें चाहिए कि वे स्वयं उसे न करें अर्थात् पहले बुरा काम करना और फिर झूठ बोलकर उसे छिपाना।

एक पत्रलेखक कहते हैं, जब दिल्लीमें हिन्दुओंने आपकी सहायता चाही तब तो आपने यह कह दिया, 'क्या करूँ, निरुपाय हूँ'; जब लखनऊमें आपको बुलाया गया तो आपने टालमटोल कर दी; किन्तु अब जब हिन्दुओंको दोषी ठहरानेका अवसर आया तब आप फौरन मौकेपर जा धमके और आपने उनके सम्बन्धमें बिना विचारे अपना

१. देखिए "वक्तव्य: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको", २-७-१९२५।

फतवा दे दिया। पाठक इस बातको जान लें कि मैं वहाँ हिन्दुओंकी तरफसे एक हिन्दूके द्वारा निमन्त्रण मिलनेपर तथा पहलेसे वहाँ गये हुए श्री सेनगुप्तके बुलानेपर गया था। मेरी बेवसीके रहते हुए भी जब दरअसल लड़ाई हो रही हो और खासकर जब दोनों पक्षोंकी तरफसे बुलावा आये तो मुझे उनको बचानेके लिए वहाँ दौड़ जाना चाहिए। जब मुझे किसी झगड़ेको निपटानेके लिए या रोकनेके लिए एक पक्षके लोग बुलाते है, तब चूँकि एक वर्ग-विशेषके हिन्दुओं और मुसलमानोंपर अब मेरा प्रभाव नहीं रहा है इसलिए मैं अपनी लाचारी बता देता हूँ। मैं समझता हूँ कि इन दोनों हालतोंका अन्तर इतना साफ है कि उसे खोलकर बतानेकी आवश्यकता नहीं है।

परन्तु पत्रलेखक कहते हैं और मुझसे मिलनेके लिए आये हुए हिन्दुओंके एक शिष्टमण्डलने भी कहा कि आपने हिन्दुओंकी जो तीव्र भर्त्सना की है उससे मुसलमानोंको निर्दोष लोगोंपर हमला करनेका प्रोत्साहन मिला है और मुसलमान गुण्डोंके हाथों बाजारमें हिन्दू दुकानदारोंके लुटने-पिटनेका खतरा पैदा हुआ है। यदि मेरे हिन्दुओंके कुकृत्योंकी निन्दा करनेका फल यह हो कि मुसलमान लोग कुकृत्य करने लगें तो इससे मुझे दुःख होगा। परन्तु इतना होते हुए भी मैं उचित काम करनेसे पीछे न हटूँगा। फिर मुसलमानोंकी बदलेकी कार्रवाइयोंसे हिन्दू डरे भी क्यों? यदि हिन्दू मेरे अहिंसा और सहिष्णुताके उपायका अनुसरण न कर सकें और मैं जानता हूँ कि जमीन-जायदादवाले लोगोंके लिए वह मुश्किल है तो हिन्दुओंके लिए जो उपाय सम्भव हो उससे आत्मरक्षा करना उचित ही होगा। हम चाहे हिन्दू हों चाहे मुसलमान, हम जब अपनी भीरुता छोड़ देंगे और आत्मरक्षा करनेकी कला सीख लेंगे, हम तभी मनुष्य कहला सकेंगे। जो लोग स्वयं अपनी रक्षा करना न सीखकर औरोंके द्वारा अपनी रक्षा करना पसन्द करते हैं उनके सिरपर एक खास खतरा हमेशा मँडराता रहता है और वे चाहे कितनी ही आँखें क्यों न मूँदे, वह टल नहीं सकता। मेरी खिदरपुरके हिन्दुओंकी भर्त्सनासे उन लोगोंकी भर्त्सना अवश्य ही नहीं होती है जो आक्रमण किये जानेपर उनसे अपनी रक्षा करते हैं। यदि मैं देखता कि हिन्दुओंने पहले खुद मार-पीट नहीं की है, बल्कि आत्मरक्षाके लिए हर तरहके संकटोंका सामना किया है और उसमें प्राण भी दिये हैं तो मैं उनकी वीरताकी प्रशंसा करता। परन्तु जहाँतक मुझे पता है, खिदरपुरमें उनकी संख्या बहुत भारी थी और उन्होंने खुद मारपीट शुरू की थी। मुसलमानोंने उसके लिए कोई कारण नहीं दिया था। जिस तरह मैंने गुलबर्गा और कोहाटमें किये गये मुसलमानोंके कुकृत्योंकी, जो मेरी रायमें बिलकुल अनावश्यक थे, सहज ही भर्त्सना की थी, मैं उसी प्रकार उत्तेजनाका कारण मिले बिना की गई इस हिंसाकी भर्त्सना भी बिना झिझके करूँगा। मैं एक वारके जवाबमें दो वार करनेकी बात भी समझ सकता हूँ; परन्तु किसी किस्मकी उत्तेजना या खास मौकेपर उत्तेजनाके कारणके बिना किये गये वारके सम्बन्धमें अपने मनको कैसे समझा सकता हूँ?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-७-१९२५

२३५. 'टमानी हॉल' क्या है?

देशबन्धुकी स्मृतिमें जो श्रद्धांजलि-सभा की गई थी, उसमें मैंने उनपर लगाये गये टमानी हॉलके तरीके बरतनेके आरोपके विरुद्ध जो सफाई दी थी, उसपर आपत्ति की गई है। आपत्तिका आधार है श्रद्धांजलि-सभामें ऐसी बातका उल्लेख करना। मेरा खयाल है कि सुरुचि क्या होती है, मैं यह समझता हूँ। मैं क्या कर रहा हूँ सो मैं जानता था। मैं कलकत्ताके छात्रोंके सम्मुख देशबन्धुका जीवनवृत्त प्रस्तुत कर रहा था। मेरे मनमें देशबन्धु द्वारा टमानी हॉलके तरीके अख्तियार करनेकी जो दबी-दबी चर्चा चलती रहती है, मौजूद थी। और चूँकि इस मामलेमें उनके साथ हुई बातचीत भी मुझे बिलकुल स्पष्ट याद थी, इसलिए मुझे ऐसा लगा कि यदि मैं छात्रोंको यह निश्चय न करा दूँ कि वह आरोप निराधार है तो मैं अपने साथीकी पवित्र स्मृतिके प्रति झूठा बनूँगा। आखिर हम अपने प्रसिद्ध देशवासियोंकी स्मृतिको उनके दोषोंपर आवरण डालकर तो सम्मानित नहीं करना चाहते। हमें इस बातकी छूट होनी चाहिए कि हम अपने वीरोंकी स्मृतिको सदा अपने हृदयमें रखनेके साथ ही उनके प्रमाणित दोषोंको भी स्वीकार करें। झूठी सुरुचि, सुरुचि नहीं है। यदि देशबन्धु टमानी हॉलके तरीके बरतनेके दोषी हैं तो हम इस तथ्यको स्वीकार करें और उनके उदात्ततम गुणोंको अपने हृदयमें रखते हुए उनके इन खास तरीकोंसे सावधान रहें। लेकिन चूँकि मेरा विश्वास था कि वे इन तरीकोंको बरतनेके दोषी नहीं हैं, इसलिए इस बातको कहनेका विश्वविद्यालय संस्थानमें मुझे जो अवसर[1] मिला, मैंने उसे एक बहुत उपयुक्त अवसर माना।

लेकिन टमानी हॉलके तरीके क्या हैं? यदि इनके सम्बन्धमें मेरी जानकारी सही है तो यह उन गुप्त और प्रकट दुरभिसन्धियोंको दिया गया नाम है जिनका आश्रय अमरीकामें एक वर्ग-विशेषके लोग अपना स्वार्थ साधनेके लिए तथा निगमों और पदोंपर कब्जा करनेके लिए लेते थे और उसके लिए जालसाजी, रिश्वतखोरी और हर तरहके सार्वजनिक भ्रष्टाचारका उपयोग करनेमें भी नहीं झिझकते थे। देशबन्धुके अत्यन्त विश्वस्त सहायकोंने और दार्जिलिंगमें स्वयं देशबन्धुने इन आरोपोंका तीव्रतम प्रतिवाद किया था और उनकी जाँच करने एवं रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचारका आरोप सिद्ध होनेपर उसकी सार्वजनिक निन्दा करनेके लिए कहा था। यहाँ टमानी हॉलके तरीकोंके पहले अनिवार्य लक्षणका स्पष्ट अभाव है। देशबन्धु और उनके सहायकोंका कोई निजी स्वार्थ नहीं था। असल बात तो यह है कि ऐसे लोग उनके साथ अधिक टिक ही नहीं सकते थे; इसलिए यदि किसीने किसीको रिश्वत भी दी थी तो वह निःस्वार्थ-भावसे दी थी। यों मैं स्वयं रिश्वतमें ऐसा कोई फर्क नहीं करता। देशबन्धु भी नहीं करते थे। उन्होंने मुझसे जोर देकर कहा था कि सरकारने रिश्वतखोरी या भ्रष्टा-

१. देखिए "भाषण: युनिवर्सिटी इंस्टीट्यूट, कलकत्तामें", ३०-६-१९२५।

चारका एक पूर्ण शास्त्र ही रच डाला है; इसलिए हम चाहनेपर भी अपने देशको भ्रष्ट तरीकोंसे मुक्त नहीं कर सकते। सच तो यह है कि हमारी वर्तमान पीढ़ीमें हमने एक सुशिक्षित अनुशासनबद्ध और सुगठित राजनैतिक दलको कौंसिलों और विधानसभाओंमें पहली बार ही काम करते देखा है। इसलिए ऐसा दल रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचारके बिना सुगठित रह सकता है, यह कुछ लोगोंको सम्भव ही मालूम नहीं होता। सरकारने इस दलको बदनाम करनेका यथाशक्ति पूरा प्रयत्न किया है। दलके विरोधी राजनैतिक दलोंने उसके विरुद्ध रिश्वतखोरीकी हर अफवाह और चर्चाको ध्यानसे सुना है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कुछ लोग सचमुच यह मानते हैं कि देशबन्धुने दलको सुगठित रखने और कौंसिलमें नाजुक मौकोंपर दूसरोंका समर्थन प्राप्त करनेके लिए जिन साधनोंका आश्रय लिया है उसमें से रिश्वतखोरी भी एक है।

जहाँतक मैं जानता हूँ, इस आरोपका कोई आधार नहीं है। अगर कोई व्यक्ति देशबन्धुके विरुद्ध इस आरोपको साफ-साफ सिद्ध कर सकता हो तो उससे देशबन्धुकी स्मृतिको कोई हानि नहीं पहुँचेगी। जो-कुछ चुपचाप कहा जाता है, यदि उसे जनता निश्चित रूपमें जान ले तो यह ज्यादा अच्छा है। आखिर यह आरोप केवल देशबन्धुके विरुद्ध तो नहीं है, बल्कि वह स्वयं उनके विरुद्ध न हो कर उनके दलके विरुद्ध है। यद्यपि वे अब हमारे बीचमें नहीं हैं। लेकिन उनका दल तो मौजूद है? यदि मैं दलके बारेमें कुछ भी जानता हूँ तो मुझे इतना मालूम है कि अपने विरुद्ध भ्रष्टाचार-के प्रमाण प्रस्तुत किये जानेपर उसमें कड़ी कसौटीपर खरा उतरनेकी सामर्थ्य है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-७-१९२५

२३६. कलकत्ताके मेयर

कलकत्ताके मेयरके चुनावके मामलेमें मेरे हस्तक्षेपपर[1] बंगालके कुछ मित्रोंने रोष प्रकट किया है। सामान्य शिष्टताका यही तकाजा है कि मैं इस सम्बन्धमें अपनी स्थिति प्रकट कर दूँ। इस राष्ट्रीय क्षतिके बाद जब मैंने यह निश्चय किया कि बंगालके इस महानतम संकटके समयमें मैं उसको सहारा दूँगा और जहाँतक सम्भव होगा मैं उसको ढाढ़स बँधाऊँगा एवं वासन्ती देवीको और साथ ही पितृहीन बच्चोंको भी सान्त्वना दूँगा, तब मैंने यह भी तय कर लिया था कि मैं उनमें से किसीसे भी जबरदस्ती अपनी बात नहीं मनवाऊँगा और फिर भी वे चाहेंगे तो नम्रतापूर्वक सेवा के लिए तैयार रहूँगा। एक दिवंगत मित्र और साथीके प्रति मेरा यह एक सीधा-सादा कर्त्तव्य था। अखिल भारतीय देशबन्धु-स्मारक कोषकी स्थापनाके कारण, जिसमें मुख्यतः मेरा हाथ था, मेरा बंगालमें रुकना लाजिमी हो गया था। बादकी घटनाओंसे यह सिद्ध हो गया है कि मेरा यह निर्णय कितना सही था।

१. देखिए "भाषण: स्वराज्यवादी पार्षदोंके समक्ष", ९-७-१९२५।

लेकिन मैंने यह आशा नहीं की थी कि मुझे देशबन्धुके स्थानमें कलकत्ताके मेयरका चुनाव करनेमें परामर्श देना पड़ेगा या मार्गदर्शन करना पड़ेगा। यह एक ऐसा काम था जिससे खुशीके साथ मैं अपना हाथ खींच लेता। लेकिन प्रायः एक सिपाहीकी कोई मर्जी नहीं होती। इस चुनावमें दिलचस्पी रखनेवाले दलोंने यह मामला मेरे सामने रखा। और मैं इस दायित्वको टाल नहीं सका, क्योंकि मैं ईमानदारीसे यह नहीं कह सकता था कि यह कार्य मेरे सामर्थ्यसे बाहर है। और फिर तो इस भँवरमें एक बार पड़नेके बाद इसमें से निकलना मेरे लिए तबतक मुश्किल ही हो गया, जबतक कांग्रेस-नगरपालिका दलने इसे विधिवत् तय नहीं कर दिया।

मैंने जो परामर्श दिया वह सही था या नहीं, उसमें नगरका हित था या नहीं, यह निःसन्देह एक ऐसी बात है जिसके बारेमें विभिन्न मत हो सकते हैं। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने वही परामर्श दिया जो मेरी रायमें देशके लिए और महलोंकी इस नगरीके लिए सर्वोत्तम था। मेरे सामने मापदण्डके रूपमें एक परम्परा और एक नीति मौजूद थी। लेकिन मेरा कर्त्तव्य यह था कि मैं वही काम करूँ जिसे मेरी रायमें देशबन्धु जीवित होते तो करते और जो किसी भी तरह सर्व-विदित और सर्वमान्य नैतिक सिद्धान्तोंसे विरुद्ध नहीं है। कांग्रेसने चार वर्ष पूर्व अपने हितकी दृष्टिसे और रचनात्मक कार्यक्रमको बढ़ानेकी दृष्टिसे नगरपालिकाओं और जिला बोर्डोंपर कब्जा करनेका फैसला किया था। इस कब्जेके पीछे खयाल यह नहीं है कि सफाईकी देखभाल ज्यादा अच्छी हो; बल्कि यह है कि और भी अधिक राज-नैतिक सत्ता प्राप्त हो। इस आकांक्षामें कोई बुराई नहीं है। सरकारने स्वयं अपनी बनाई हुई इन संस्थाओंका उपयोग सफाईमें सुधारकी अपेक्षा अपनी सत्ता मजबूत करने और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए अधिक किया है। मुझे मालूम है कि लन्दन काउंटी कौंसिलके चुनाव राजनैतिक प्रश्नोंको लेकर लड़े जाते हैं। और जब राज-नैतिक उत्तेजना बढ़ जाती है तब नगरपालिकाके चुनावोंका उपयोग राजनैतिक वाता-वरण नापनेके लिए एक सांकेतिकाके रूपमें किया जाता है। और यदि राजनैतिक उद्देश्योंके लिए नगरपालिकाओंका उपयोग करना इंग्लैंडमें आवश्यक माना जाता है तो इस देशमें जहाँ समस्त जाति एक विदेशी जातिके राजनैतिक शासनके नीचे दबी पड़ी है, इसकी आवश्यकता और भी अधिक है। यदि हम एक बार सरकार द्वारा निर्मित तन्त्रका उपयोग करना उपयुक्त मान लेते हैं तो हमारे लिए राजनैतिक सत्ता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे नगरपालिकाओंकी संस्थाओंपर कब्जा करना एक अनिवार्य कदम हो जाता है। देशबन्धुने कलकत्ता नगरनिगमपर इसी उद्देश्यसे कब्जा करके उसका उपयोग कांग्रेसकी या स्वराज्यदलकी, जिसका अर्थ बंगालमें एक ही होता है, सत्ता मजबूत करनेके लिए अत्यन्त प्रभावकारी रूपसे किया था। क्या उन्होंने ऐसा करके निगमके हितकी उपेक्षा की थी? मैं जोरसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि उन्होंने उसकी उपेक्षा नहीं की। इसके विपरीत नगरपालिकाके सम्बन्धमें उनकी आकांक्षा इतनी ही ऊँची थी, जितनी राजनीतिके सम्बन्धमें।

तब उनकी जगह निगमका मेयर किसे बनाया जाता? उनका पद किसको दिया जाये, यह तय करना भी उनके द्वारा स्थापित दलके अधिकारकी बात थी।

यह पद उसको देना उचित था जो दलके महान् प्रधानकी परम्पराको सर्वोत्तम रूपसे निभा सकता था और अपने दलकी प्रतिष्ठामें वृद्धि कर सकता था। साथ ही यह भी मानी हुई बात है कि विशुद्ध नगरपालिकाकी दृष्टिसे वह दलमें भी सर्वोत्तम व्यक्ति हो, यही उचित था। मेरी रायमें जे० एम० सेनगुप्त ऐसे योग्यतम व्यक्ति थे, जिनमें ये सब गुण हैं। और यदि उन्होंने स्वराज्यदलका नेतृत्व करनेकी कृपा की तो वे उस निमित्तसे प्राप्त होनेवाली सभी प्रकारकी सहायताके पात्र थे जो उन्हें श्री देशबन्धुके कर्तव्योंको शोभाजनक रूपसे और प्रतिष्ठापूर्वक वहन करनेके योग्य बनानेके लिए दी जा सकती थी।

लेकिन क्या वे इन तीनों कर्त्तव्योंका भार उचित रूपसे उठा सकते हैं? वे प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष चुने ही जा चुके थे। वे क्या स्वराज्यदलका नेतृत्व करते रहकर कांग्रेसके रचनात्मक कार्यको पूरा कर सकते है और साथ ही कलकत्ताके मेयरके भारी उत्तरदायित्वको निभा सकते हैं? यदि वे इन तीनों पदोंके कार्य-भारके नीचे दब जायें तो उन्हे इन तीनों पदोंका सम्मान देनेसे क्या लाभ? मेरा उत्तर यह है कि अपने सामर्थ्यके सम्बन्धमें सर्वोत्तम निर्णय तो श्री सेनगुप्त ही कर सकते थे। यदि वे सत्ताकी आवश्यकता महसूस करके उसे प्राप्त करना चाहते थे तो उनको उसका दिया जाना ही उचित था। उसे उनपर बलात् लादना ठीक नहीं होता। यदि श्री सेनगुप्त कोई कुचक्री है और देशके हितकी अपेक्षा अपना स्वार्थ ही अधिक सिद्ध करते हैं तो निःसन्देह यह प्रयोग एक खतरनाक प्रयोग करना कहलाता। उस अवस्थामें उनको स्वराज्यदलका नेता बनाना भी खतरनाक था। यदि वे सन्देहसे परे हैं और उनको अपने कामको पूरा करनेके लिए मेयरके पदकी जरूरत है और यदि वे उसके भारको गौरवास्पद रूपमें वहन कर सकते है तो उन्हें मेयरका पद देना उचित है। देशबन्धुके उत्तराधिकारीकी बात तो दूर, कांग्रेसी कहलानेवाला कोई व्यक्ति भी केवल सम्मानकी खातिर सम्मानकी माँग नही कर सकता। मेरी दृष्टिमें श्री सेनगुप्तकी स्थिति मैक्स्विनी-जैसी है जो अपने सम्मानके लिए नहीं, बल्कि उस खतरेका सामना करनेके लिए जो ऊँचे पदके कारण उनके सामने मौजूद था, कॉर्कके लार्ड मेयर बनना चाहते थे। देशबन्धुके उत्तराधिकारीकी स्थिति सम्भवतः मैक्स्विनीकी स्थितिसे भी ज्यादा खतरनाक है। मैक्स्विनीने अपनी जानकी बाजी लगा दी थी। देशबन्धुके उत्तराधिकारीको अपनी समस्त ख्याति दाँवपर लगानी पड़ी। देशबन्धुने त्याग और सम्मानका जो मापदण्ड छोडा है उससे तनिक भी हटते ही उनके उत्तराधिकारीकी ख्याति जीवन-भरके लिए समाप्त हो सकती है और उनकी यह जीवित मृत्यु शारीरिक मृत्युसे ज्यादा बुरी होगी। श्री सेनगुप्त द्वारा कलकत्ताके मेयरके पदकी माँगका समर्थन करते हुए यह बात मैंने अपने मनमें सोची और अपने मित्रोंको समझाई और कांग्रेस दल तथा कांग्रेस नगरपालिका दलने मेरे इस तर्कको समझा और सराहा और यह कहते हुए मुझे प्रसन्नता होती है कि थोड़े-से लोगोंकी असहमतिके साथ श्री सेनगुप्तकी नामजदगीको मंजूर किया, मैं यह आशा करता हूँ कि वे उनका भार जितना हल्का कर सकते हैं, उतना करेंगे। मुझे अपने मनमें कोई सन्देह नहीं है कि श्री सेनगुप्त देशबन्धु द्वारा स्थापित ऊँचे मानदण्डके अनुकूल आचरण करनेका प्रयत्न करेंगे।

लेकिन कोई इसे सदाके लिए एक मिसाल न समझ लें। विशुद्ध सिद्धान्तकी दृष्टिसे किसी एक व्यक्तिको, चाहे वह कितना ही योग्य क्यों न हो, तीन महत्त्वपूर्ण पद सौंपना अनुचित है। कोई भी आदमी तीन-तीन भारी कामोंको पूरी तरहसे नहीं निभा सकता। हर आदमीके सामने अपनी शक्ति बढ़ानेका प्रलोभन भी बहुत अधिक होता है। जो प्रलोभन टाला जा सकता है उसके प्रति किसीके मनमें लोभ उत्पन्न करना अनुचित है। इसके अलावा, राजनैतिक दल चाहें तो नगरपालिकाओंको अपने अधिकारमें ले भले ही लें; किन्तु उनका सक्रिय राजनीतिज्ञोंको नगरपालिकाओंकी जिम्मेदारी सौंपना अनुचित होगा। इस गुलामीमें भी हमें नगरपालिका-सम्बन्धी मामलोंको उनके गुण-दोषके आधारपर ही तय करना चाहिए और नगरपालिका-सम्बन्धी मामलोंके ऐसे विशेषज्ञ तैयार करने चाहिए जो नगरपालिका-सम्बन्धी अपने कर्त्तव्योंको पूरा करनेमें राजनैतिक पहलूका विचार न करें। यदि हम इन सब दृष्टियोंसे सावधान नहीं रहेंगे तो नगरपालिकाओंपर कब्जा करनेका हमारा प्रयोग निश्चय ही असफल हो जायेगा। नगरपालिकाओंके कार्योंको सँभालनेके लिए एक विशेष प्रशिक्षणकी आवश्यकता है; और उसके लिए एक व्यस्त राजनीतिज्ञ सदा उपयुक्त नहीं होता। इसलिए नगरपालिकाका सदस्य जबतक नगरपालिकाकी कुर्सीपर बैठा हुआ है तबतक यदि वह राजनीतिसे सर्वथा मुक्त रहे तो इससे सम्बन्धित राजनैतिक दलको अधिकसे-अधिक लाभ पहुँचता है, यह ठीक उसी तरहकी बात है जैसे कोई व्यक्ति न्यायाधीशका पद ग्रहण करनेपर वकील या राजनीतिज्ञ नहीं रहता। मैंने नगरपालिकाके कार्योंका प्रेमी होते हुए और उनको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानते हुए भी एक व्यक्तिको इन तीनों पदोंका भार ग्रहण करनेकी खतरनाक सलाह क्यों दी, इसका कारण यह है कि मैं मानता हूँ कि यह समय असाधारण है, उसके लिए कोई कड़ा ही नहीं खतरनाक कदमतक उठानेकी जरूरत है। देशबन्धु दास-जैसे लोग हमेशा पैदा नहीं होते। उनके निधनसे एक ऐसा स्थान रिक्त हो गया है जिसका भरना किसी आदमीके लिए सम्भव नहीं है। जिस आदमीको उनका भार उठाना है उसको असाधारण सहायकोंकी आवश्यकता है और यदि उसमें साधारण योग्यता और ईमानदारी है तो उसे सहायता मिलनी चाहिए। लेकिन जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मुझे आशा है कि यह प्रयोग मेरे जीवनमें पहला और अन्तिम प्रयोग रहेगा। मैंने अपने पूरे दायित्वको और इस कार्यके खतरेको समझते हुए इसका समर्थन किया है। ईश्वर श्री जे॰ एम॰ सेनगुप्तको इसके लिए आवश्यक बुद्धि और शक्ति दे। कलकत्ताके नागरिक विश्वास रखें कि एक सक्रिय राजनीतिज्ञको मेयरकी तरह चुननेमें मंशा कलकत्ताके नागरिक जीवनके स्वस्थ विकासमें बाधा पड़ने देनेका नहीं है। इससे पहले भी ऐसा हुआ है। हमारे सामने श्री फीरोजशाह मेहता इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। निगमका उनसे अच्छा अध्यक्ष या उनसे अच्छा पार्षद पहले कभी नहीं हुआ। पिछले वर्ष श्री विट्ठलभाई पटेलने उसी परम्पराको निबाहा और उनके विरोधी भी स्वीकार करते हैं कि उन्होंने अपने ऊँचे पदका कार्यभार बड़ी योग्यतासे और निष्पक्षतासे वहन किया है जबकि विट्ठलभाई पटेल तो हर तरह एक सक्रिय राजनीतिज्ञ ही हैं। मैंने

अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए वस्तुतः नगरपालिकाके आचारका उच्चतम स्वरूप सामने रखा है। हमें इस स्तरका नगरपालिका-आचार भारतमें अभी विकसित करना है और मैं आशा करता हूँ कि इसका गौरव कांग्रेसको मिलेगा। किन्तु यह बात तभी बनेगी जब हमें ऐसे लोग मिलेंगे जो अपनी महत्त्वाकांक्षाकी पूर्ति उसी समय मानेंगे जब उनके नगरोंकी नालियाँ और पाखाने बिलकुल साफ-सुथरे रहने लगेंगे, जब वे सस्तेसे-सस्ते भावोंमें शुद्धसे-शुद्ध दूध जुटा सकेंगे एवं उनके शहर वेश्यागमन और शराबखोरीसे मुक्त हो जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-७-१९२५

२३७. टिप्पणियाँ

स्मारकके सम्बन्धमें दौरा

मैं इस समय बंगालमें जो दौरा कर रहा हूँ वह स्मारक सम्बन्धी दौरा बन गया है। मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं इस समय कलकत्ता छोड़ूँ और जबतक १० लाख रुपये इकट्ठे नहीं हो जाते तबतक यहाँसे जाऊँ। लेकिन, मैंने जिन जिलोंमें जानेका वचन दिया है उन जिलोंके लोगोंको निराश कर सकनेका मुझमें साहस नहीं है। लेकिन मैंने उन लोगोंको चेतावनी दे दी है कि इस बार मेरा दौरा देशबन्धु-स्मारक कोषके लिए धनसंग्रह करने और उनका सन्देश देनेके निमित्त होगा। केवल स्मारकके दृष्टिकोणसे मुझे यह दौरा करते हुए प्रसन्नता होती है। गरीब लोगोंने — स्त्री-पुरुष दोनोंने ही सर्वत्र आश्चर्यजनक तत्परता दिखाई है। उनको समझाने-बुझानेकी कोई जरूरत नहीं पड़ी। उन्होंने माँगते ही यथाशक्ति पूरा सहयोग किया है। मैंने अकसर देखा है कि बूढ़ी विधवाएँ अपने पल्लेकी गाँठ खोलकर उसमें बँधी हुई रकम दे देती हैं। अकसर मेरी यह इच्छा है कि मैं ऐसे दानको लौटा दूँ; लेकिन जब मैंने इसपर दुबारा विचार किया तो मैंने उसके बारेमें अपने मनको समझा ही नहीं लिया, बल्कि मुझे ऐसा लगा कि उसको स्वीकार करना एक प्रिय कर्त्तव्य ही है। क्या देशबन्धुने अपना सर्वस्व दान नहीं कर दिया था और जो अस्पताल बनाया जायेगा, क्या उससे संकटग्रस्त स्त्रियोंको लाभ नहीं मिलेगा? क्या जल्दी ही तैयार होनेवाली उस संस्थामें, कुछ गरीब विधवाओंको नर्स बननेका प्रशिक्षण नहीं दिया जायेगा? यह ईश्वरीय नियम है कि जो मनुष्य किसी अच्छे उद्देश्यके लिए अपना सर्वस्व दे देता है उसको उससे दस गुना फल मिलता है। मैं इस नियमपर सन्देह क्यों करूँ? सम्पन्न लोगोंने भी धन देनेमें आनाकानी नहीं की। मुझे शहरोंमें यह आशा न थी कि स्त्रियोंकी सभाओंमें जेवर मिलेंगे। लेकिन ये नेक बहनें कहीं भी जेवर देनेमें नहीं चूकीं। सिराजगंजमें दो बहनोंने अपनी सोनेकी भारी-भारी जंजीरें दान कर दीं। यह भी उल्लेखनीय है कि उन चारों जगहोंमें जहाँ इन टिप्पणियोंको लिखनेके समयतक

मैं जा चुका हूँ, स्त्रियोंकी सभाओंमें जो धन इकट्ठा हुआ है, वह पुरुषोंकी सभाओंमें इकट्ठी की गई राशिके बराबर ही है; यद्यपि पुरुषोंकी सभाओंमें उपस्थिति हजारोंकी होती थी और स्त्रियोंकी सभाओंमें हजारसे भी कम हुआ करती थी।

गरीबीकी निशानी

इस धनसंग्रहके दौरान मुझे कई बातें देखने और समझनेका मौका मिला है। इसने जनसाधारणकी गरीबीकी मूरत आँखोंके सामने खड़ी कर दी। मैं हजारों लोगोंसे कोषमें चन्दा ले रहा हूँ। सभी सभाओंमें एक-एक पैसा देनेवाले तो बहुतायतसे होते हैं। बहुत-से लोगोंने धेलेतक दिये हैं। इसका कारण यह नहीं है कि लोग इससे ज्यादा रकम देना नहीं चाहते थे; बल्कि इसका कारण, जहाँतक मैं जानता हूँ, यह है कि उनके पास ज्यादा था ही नहीं। उन्होंने मेरे सामने आकर अपनी गाँठें खोलीं या अपनी जेबें खाली कीं।

मौन कार्यकर्त्ता

सिराजगंजसे ईशरदीतक हमने एक पैसेन्जर गाड़ीमें यात्रा की है। यह गाड़ी एक ब्रांच लाइनपर चलती है। इसपर स्टेशन १०–१० मिनट बाद आ जाते हैं। स्टेशनोंपर गाँवोंके लोग सैकड़ों की संख्यामें और कहीं-कहीं तो हजारोंकी संख्यामें इकट्ठे हुए और उन्होंने चन्दा दिया। इस सारे जबर्दस्त प्रदर्शनकी व्यवस्था बंगालके मौन निःस्वार्थ युवकोंने की है। उनके नाम अखबारोंमें कभी नहीं छपेंगे। वे शायद यह चाहते भी नहीं कि उनकी चर्चा की जाये। उनका खरा काम ही उनका विज्ञापन है। यदि वे न होते तो गाँवोंके लोगोंको कुछ पता ही न चलता। ये नवयुवक उनके चलते-फिरते अखबार हैं। क्यों कि ये लोग न तो पढ़ना जानते हैं और न लिखना। जो थोड़े-से लोग पढ़ना या लिखना जानते भी हैं वे इतने गरीब हैं कि अखबार नहीं खरीद सकते। इस व्यवस्थाका सारा श्रेय भारतके इन वीर और त्यागी सेवकोंको प्राप्त है। इन स्टेशनोंपर हुई हर मुलाकात अत्यन्त व्यवस्थित, शान्तिपूर्ण, गम्भीर और कामकाजी ढंगसे हुई। स्वराज्य निश्चय ही इन युवकोंकी मार्फत मिलेगा, जिन्हें अपने देशसे प्रेम है। मुझे रेल अधिकारियोंका उल्लेख करना भी न भूलना चाहिए। बड़ेसे-बड़े और छोटेसे-छोटे अधिकारीतक ने मेरी इससे पहलेकी यात्रामें असाधारण शिष्टता और जागरूकता दिखाई है; लेकिन अब मुझे पहलेसे भी ज्यादा उनकी सहायताकी जरूरत है। छोटे स्टेशनोंपर कुछ ही मिनटोंमें हजारों लोगोंसे रुपया इकट्ठा करनेका काम कोई साधारण काम नहीं है; फिर भी वह सफलतापूर्वक किया गया है क्योंकि मेरे कामको यथासम्भव हलका बनानेमें लोगों और स्वयंसेवकोंके साथ इन अधिकारियोंने भी सहयोग दिया है। यह ध्यान रहे कि मुझे सभी स्टेशनोंपर गाड़ीसे उतरना, भीड़में जाना, रुपया इकट्ठा करना और समयपर अपने डिब्बेमें वापस आना पड़ता था। लोगोंसे अधिकतम योगदान प्राप्त करनेमें देशबन्धु अपने जीवनकालमें जितने शक्तिशाली थे, मरकर वे उससे अधिक शक्तिशाली हो गये हैं। उनके देशवासी यह अनुभव करते हैं कि वे उनके प्रति और इसीलिए अपने देशके प्रति ऋणी हैं।

घरका क्या हो?

लोग इस बातमें सन्देह कर रहे हैं कि अस्पताल उसी इमारतमें जो दो पीढ़ियोंसे देशबन्धुके परिवारकी सम्पत्ति है, खोला जायेगा या नहीं। मेरा खयाल है कि जिस अपीलपर लॉर्ड सिन्हा और अन्य लोगोंने हस्ताक्षर किये हैं उसमें यह बात साफ-साफ बता दी गई थी। वह इमारत अस्पतालके लिए और ऐसे ही दूसरे कामोंके लिए न्यासियोंके हाथमें आ चुकी है। उसकी कीमत तीन लाखसे ज्यादा है, किन्तु उसपर दो लाखसे ज्यादा कर्ज है। यह कर्ज स्वभावतः उस रुपयेमें से चुकाया जायेगा जो इस समय इकट्ठा किया जा रहा है। लेकिन तब स्मारकके न्यासियोंके हाथोंमें दो लाख रुपये देकर तीन लाखकी सम्पत्ति आ जायेगी। दूसरे शब्दोंमें कहूँ तो जब न्यासी १० लाख रुपये इकट्ठे कर चुकेंगे तब उनकी पूँजी ११ लाख हो जायेगी।

शंकालुओंसे

क्या मैं सचमुच दस लाख रुपया इकट्ठा करना चाहता हूँ? क्या मुझे ऐसा कर पानेकी आशा है? कई व्यक्ति अब भी मुझसे प्रश्न करते हैं। मुझे अभीतक एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला है जिसने स्मारक कोषके लिए कुछ देनेसे इनकार किया हो। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि अगर बंगाल इसके लिए दस लाख रुपये नहीं देता तो मुझसे उसे ठीकसे पहचाननेमें भूल हुई कहलायेगी। इस रकमको इकट्ठा करनेके लिए सिर्फ समय और संगठनकी आवश्यकता है। मुझे इस विषयमें रत्ती-भर भी सन्देह नहीं है कि हम यह कोष इकट्ठा कर पायेंगे।

उत्साहप्रद नहीं?

स्मारकका उद्देश्य उत्साहप्रद नहीं है, इस आरोपका उत्तर मैं स्थानीय रूपसे दे चुका हूँ। शंका उठानेवाले लोगोंका अभिप्राय यही है कि इस कोषका उपयोग राजनैतिक कार्योंके लिए किया जाता तो अच्छा होता। लेकिन मैं उन्हें याद दिला दूँ कि अपील निकालनेवालोंके सामने कोई विकल्प ही न था। जो लोग देशबन्धुकी स्मृतिका सम्मान करना चाहते हैं वे यदि उनकी इच्छाका पालन न करते तो वह उनका सम्मान करना न होता। मैं यह मानता हूँ कि उनकी स्मृतिको अमर बनानेके लिए उनके पीछे अवशिष्ट हम लोग जो-कुछ इकट्ठा कर सकते हैं उसमें से पहले वही काम किया जाना चाहिए जिससे उनकी इच्छा पूरी होती हो। देशबन्धुने जब अपनी सम्पत्ति सौंपी थी तो वे जानते थे कि वे क्या कर रहे हैं। उन्होंने जान-बूझकर उसे राजनैतिक कार्यके लिए नहीं बल्कि धार्मिक कार्यके लिए दानमें दिया था। इसलिए उनके पीछे यहाँ रह जानेवाले लोगोंका कर्त्तव्य इतना ही नहीं है कि हम राष्ट्रके लिए इस घरको ले लें, बल्कि यह भी है कि दान करनेवाला जिस-जिस उद्देश्यके लिए उसका उपयोग करना चाहता था उसको उसी उद्देश्यके लिए काममें लाया जाये। इसलिए मेरी रायमें इस इमारतमें स्त्रियोंको अस्पताल और नर्सोंके शिक्षण-की संस्था बनानेके लिए बंगाल नैतिक-रूपसे कर्त्तव्यबद्ध है। मैंने सुना है कि बंगाली कुछ जगह स्थानीय स्मारक बनानेके लिए रुपया इकट्ठा कर रहे हैं। मुझे आशा है

कि प्रत्येक नगरमें उस महान् देशभक्तके अनुरूप स्मारक बनाया जायेगा; लेकिन उसके लिए अभी उपयुक्त समय नहीं आया है। मेरी विनम्र सम्मतिमें हर बंगालीकी, जिसे देशबन्धुकी स्मृति प्रिय है, प्रतिष्ठा इसीमें है कि वह स्थानीय स्मारकके लिए एक भी पैसा देनेसे पहले अखिल बंगाल स्मारकके लिए १० लाख रुपये इकट्ठा करनेका काम पूरा करे। बंगालके बाहर रहनेवाले बंगाली सचेत हो जायें। उन सबने अभी अपना रुपया नहीं भेजा है। वे सब बंगाली, जो देशबन्धुसे परिचित थे, पूरा जोर नहीं लगायेंगे तो रुपया इकट्ठा करनेमें अनुचित विलम्बकी सम्भावना है। इसलिए मुझे आशा है कि जो बंगाली इन टिप्पणियोंको पढ़ेंगे वे अपने-अपने क्षेत्रोंमें अधिकसे-अधिक चन्दा लेनेके लिए पूरी शक्तिसे जुट जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-७-१९२५

२३८. शंका-निवारण

आजकल मुझे देशबन्धु स्मारकके लिए द्रव्य इकट्ठा करने कई सज्जनोंके यहाँ जाना पड़ता है। ऐसे धनिक महाशयोंमें श्री साधुराम तुलारामजी भी एक हैं। उनके यहाँसे चन्दा तो अच्छा मिला ही; साथमें वहाँ कुछ धर्मकी चर्चा भी हुई। चर्चामें अस्पृश्यताका विषय भी आया। किसी महाशयने मुझसे कहा कि अखबारोंमें ऐसी खबर छपी है कि जिनको हम अस्पृश्य मानते हैं, मैं उनसे रोटी-बेटी व्यवहार करनेको भी कहता हूँ। इस शंकाका मैंने जब निवारण किया तो उन भाइयोंको जिन्होंने प्रश्न किया था, वह आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ और उन्होंने मुझसे कहा कि जो बात आपने यहाँ कही है उसका सारांश आप 'हि० न० जी०' में दे दीजिए। मैंने उनकी सलाहको मान लिया। उत्तरका सारांश मैं यहाँ देता हूँ।

प्रथम तो जनताको मालूम होना चाहिए कि मैं अखबार नहीं पढ़ता हूँ; और यदि पढ़ भी लेता हूँ तो जो-जो गलत बयानियाँ मेरे नामपर छपती हैं, उन सबको दुरुस्त करना मेरे लिए असम्भव है। इसलिए जिस किसीके मनमें शंका पैदा हो वह मुझे पूछ लें कि मैंने क्या कहा था। जैसे इसी अस्पृश्यताके विषयमें किसीका यह छाप देना कि मैं अस्पृश्य भाइयोंके साथ रोटी-बेटी व्यवहार चाहता हूँ या मैं उसको उत्तेजना देता हूँ, भूल है। मैंने हजारों बार स्पष्ट रूपमें कह दिया है कि अस्पृश्यता-नाशका यह अर्थ कभी नहीं है कि रोटी-बेटी व्यवहारकी मर्यादा तोड़ दी जाये। रोटी-बेटी व्यवहार किसके साथ किया जाये और किसके साथ नहीं, यह एक जुदा ही बात है और फिलहाल उसका निर्णय करनेकी कोई आवश्यकता मुझे प्रतीत नहीं होती। मेरा तो यह भी विश्वास है कि दोनों प्रश्नोंको साथ मिलानेसे जिस सुधारको हम आवश्यक मानते हैं उसमें भी बाधा आ जायेगी। अस्पृश्यताको दूर करना प्रत्येक हिन्दू-धर्मावलम्बीका कर्त्तव्य है। इसके साथ किसी भी दूसरे विषयको मिलानेसे हानि होगी।

हाँ, जल-ग्रहण करनेके विषयमें मुझे कुछ कहना है। यदि हम शूद्रके हाथसे स्वच्छ जल ग्रहण करें; हम करते भी हैं और हमें करना भी चाहिए तो फिर हम अस्पृश्यके हाथसे भी स्वीकार करें। मैं तो चार वर्ण ही मानता हूँ। अस्पृश्य-जैसा कोई पाँचवाँ वर्ण ही नही है। इसलिए हम अस्पृश्यताको मिटाकर अस्पृश्य माने जानेवाले हिन्दुओंका दु:ख दूर करें, हिन्दू धर्मकी शुद्धि करें और शुद्ध बनें। दूसरे शब्दोंमें इस बातको कहूँ तो निन्दा और घृणाके लिए किसी धर्ममें स्थान नही है। अस्पृश्यतामें घृणाभाव है। इस घृणाभावको हम मिटा दे। हिन्दू धर्म सेवाधर्म है। अस्पृश्य कहे जानेवाले लोगोंको हम सेवासे वंचित क्यों रखें?

हिन्दी नवजीवन, १६-७-१९२५

२३९. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

१६ जुलाई, १९२५

प्रिय च० राजगोपालाचारी,

चाहे जो हो, मुझे आपकी कुशलताका पत्र तो मिलते ही रहना चाहिए। इस समय मेरी मन:स्थिति ऐसी ही है। शारीरिक और बौद्धिक तौरसे मैं जिस वातावरणमें रहता हूँ, मुझपर उसका बिलकुल असर नही पड़ता; पर वहाँ मेरी परीक्षा तो होती ही रहती है। मेरी आत्मा जिस संसारमे रहती है वह भौतिक दृष्टिसे मुझसे दूर है; पर उसका मुझपर असर पड़ता है और मैं चाहता हूँ कि असर पड़े भी। आप उसी संसारमें रहते हैं; और शायद मेरे सबसे नजदीक हैं। मेरी यह आन्तरिक इच्छा है कि जो-कुछ भी मैं करता हूँ या सोचता हूँ, उसपर आपकी स्वीकृतिकी मुहर हो। हो सकता है कि मैं हर बातमें आपकी स्वीकृति न पा सकूँ; पर आपका निर्णय जाननेकी अभिलाषा मुझे अवश्य रहती है।

अब आप समझ गये होंगे कि दूसरे बहुत-से कारणोंके अतिरिक्त मैं आपके पत्रकी किसलिए प्रतीक्षा करता रहता हूँ। आप मुझे हर सप्ताह, पोस्टकार्ड ही क्यों न हो, पत्र अवश्य लिखें। महादेव, देवदास, प्यारेलाल आपको अपने पत्रों द्वारा यहाँकी गति-विधियोंसे अवगत कराते रहेंगे।

आपको अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना चाहिए।

आपकी साधना इसीमे है कि आप अपने क्षेत्रका विकास करें तथा हाथ-कताईके अपने सिद्धान्तको व्यवहारिक रूप दे। यदि अन्तमें यह व्यावहारिक सिद्ध न हो तो भी इससे हमारी और संसारकी कोई हानि नही होगी क्योंकि मैं जानता हूँ कि इस कार्य-क्रममें हमारा पूर्ण विश्वास है। यदि इसमें कोई सहज खराबी नही है तो हाथ-कताईका हमारा सिद्धान्त तभी व्यावहारिक माना जा सकता है जब भारतके असंख्य गाँवोंमें, घरोंमें खाना बनानेके समान ही, बिना किसी संरक्षणके हाथ-कताई और खादी अपने पैर जमा लेंगी।

जो-कुछ मैं कहना चाहता था, उसके लिए निश्चय ही यह एक बड़ी भूमिका हो गई। पिटका एक तथा केलप्पनके कई पत्र आये हैं। मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि स्थानीय जनताका खयाल कुछ और न हो तो हमें पूर्वी द्वारपर एक सत्याग्रही बिठाये रखना चाहिए। हो सकता है आपका निर्णय कुछ और हो। आप केलप्पनको पत्र लिख दें। वह एक अच्छा और कामका आदमी लगता है।

सस्नेह,

आपका,

बापू

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२४०. पत्र : डब्ल्यू० एच० पिटको

दौरेपर
१६ जुलाई, १९२५

प्रिय श्री पिट,

आपके लम्बे और दिलचस्प पत्रके[1] लिए धन्यवाद। आपके पत्रके बारेमें मैं फिलहाल समाचारपत्रोंमें कुछ नहीं लिखूंगा। पर मुझे लगता है कि सिद्धान्त और अनुशासनकी दृष्टिसे जहाँ प्रवेश निषिद्ध है वहाँ किसी सत्याग्रहीको तैनात करना आवश्यक है। मेरे विचारसे राज्यकी ओरसे इस सम्बन्धमें एक सुस्पष्ट घोषणा की जानी चाहिए। अस्पृश्योंकी दशा पराश्रितों-सी नहीं होनी चाहिए। पर पहले ही की तरह मैं जल्दीमें कुछ भी नहीं करूँगा और कोई भी अगला कदम उठानेसे पहले आपको लिखूंगा। तथापि मुझे आशा है कि प्रवेश सम्बन्धी निषेध जो अभीतक बरकरार है, बिना किसी सीधी कार्रवाईके शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा। और दूसरे मन्दिरोंके बारेमें क्या रहा?[2]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११०९८) की फोटो-नकलसे।

1. यह पत्र उपलब्ध नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इससे पहले पिटने गांधीजीको एक तार भेजा था, जो इस प्रकार था : "विस्तारसे लिख रहा हूँ। अभी कोई फैसला न लें।"
2. पिटके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट ३। इससे पहले पिटको गांधीजी द्वारा केलप्पनको भेजे तारकी एक प्रति मिली प्रतीत होती है, जिसमें वाईकोम मन्दिरके केवल पूर्वी द्वारपर धरना देनेका सुझाव था; परन्तु यह तार उपलब्ध नहीं है।

२४१. पत्र : मणिबहन पटेलको

[कालीघाट
कलकत्ता]
गुरुवार [१६ जुलाई, १९२५][1]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें दूसरी चूड़ियोंकी भी अभी जरूरत हो तो लिखना। डाकसे भेज दूंगा। डाह्याभाई कलकत्तेके राष्ट्रीय मैडिकल कालेजमें पढ़ेगा? वह अच्छा चल रहा दीखता है। अथवा डाह्याभाईकी हार्दिक इच्छा क्या है? मैं इतना काममें फँसा हूँ कि लम्बे पत्र लिख ही नहीं पाता।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो — ४ : मणिबहेन पटेलने

२४२. प्रस्ताव : स्वराज्यदलकी बैठकमें[2]

कलकत्ता
१६ जुलाई, १९२५

१. स्वराज्यदलकी यह महापरिषद् देशबन्धु चित्तरंजन दासकी असमय मृत्युके कठोर आघातपर समस्त राष्ट्रके साथ दुःखी है और ऐसा अनुभव करती है कि दलने अपना संस्थापक, उसे कठिनाइयोंमें गिरनेसे बचानेवाला, बंगालमें उसे एकके बाद एक विजय दिलानेवाला, दलमें आत्मबलिदान और अनुशासनका मानदण्ड स्थापित करनेवाला, सच्चा मार्गदर्शक खो दिया है। दल उनके ऋणसे कभी उऋण नहीं हो सकता। परिषद् श्रीमती वासन्ती देवी और उनके परिवारके प्रति अपनी संवेदना प्रकट करती हैं।

२. अखिल भारतीय स्वराज्यदलकी महापरिषद् २ मई, १९२५को फरीदपुरमें दलके दिवंगत नेता देशबन्धु चित्तरंजन दास द्वारा दिये गये भाषणमें प्रकट किये गये हिंसा सम्बन्धी उनके विचारों तथा उसमें हिंसाकी कठोर भर्त्सना, सरकारके साथ सम्मानजनक सहयोग करने और उनकी शर्तोंका पूर्ण समर्थन करती है।

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२. सम्भवतः प्रस्तावोंका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था। अखिल भारतीय स्वराज्यदलकी महापरिषद्की बैठक पं० मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें १४८, रसा रोडपर हुई थी। गांधीजी और सरोजिनी नायडूको उसमें विशेष तौरपर आमन्त्रित किया गया था।

तथापि परिषद् परम आदरणीय भारत मन्त्री द्वारा हाल ही में लॉर्ड सभामें की गई घोषणापर खेद प्रकट करती है, क्योंकि इसमें दिवंगत अध्यक्ष द्वारा पेश किये गये प्रस्तावकी कोई प्रतिक्रिया दिखाई नहीं पड़ती, इतना ही नहीं बल्कि उस घोषणाकी शैली और भाषा कुछ ऐसी है कि उससे सम्मानजनक सहयोग असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है।

इसलिए परिषद् इस घोषणाके आधारपर स्वराज्यदलकी नीतिमें किसी प्रकारका परिवर्तन करनेका कोई कारण नहीं देखती। फिर भी यदि भारत सरकार द्वारा की जानेवाली अन्तिम घोषणा, जिसका जिक्र लॉर्ड बर्कनहेडने किया है, देशकी इस समयकी आवश्यकताओंको देखते हुए उचित हुई तो वह इसपर दुबारा गौर करनेको तैयार है।

[अंग्रेजीसे]

फॉरवर्ड, १७-७-१९२५

२४३. भाषण : स्वराज्यदलकी बैठकमें[1]

कलकत्ता
१६ जुलाई, १९२५

बैठककी कार्रवाई समाप्त होनेपर गांधीजीने उपस्थित लोगोंके सम्मुख सदस्यताके लिए कताईकी शर्त न हटानेके प्रश्नपर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि यहाँ स्वराज्यवादियोंमें से काफी बड़ी संख्यामें लोग उपस्थित हैं। यदि आप लोग कहें कि कताईकी शर्त हटा दी जानी चाहिए तो इसके लिए मुझे अ० भा० कां० कमेटीकी बैठक बुलानी होगी। व्यक्तिगत रूपसे मैं यह मानता हूँ कि कताई-सदस्यताके लिए पिछले छः महीनोंमें बहुत काम किया गया है और मुझे आशा है कि शेष आधे वर्षमें और भी अधिक काम होगा। पर फिर भी यदि आप इस शर्तको हटाना ही चाहते हैं तो मैं इसमें और देर नहीं करूँगा।[2]

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १९-७-१९२५

१. पण्डित मोतीलालकी अध्यक्षतामें देशबन्धुके निवासपर हुई स्वराज्यदल महापरिषद्की इस बैठकमें गांधीजीको विशेष रूपसे बुलाया गया था। बैठकमें श्रीमती सरोजिनी नायडू, सर्वश्री वि० झ० पटेल, न० चि० केलकर, डॉ० अणे, डॉ० मुंजे, टी० प्रकाशम्, एस० श्रीनिवास आयंगार, रंगास्वामी अय्यंगार और जे० एम० सेनगुप्त भी उपस्थित थे।

२. इसपर जे० एम० सेनगुप्त और पं० मोतीलाल नेहरूने कहा कि स्वराज्यवादियोंको कांग्रेसके साथ किये समझौतेपर कायम रहना चाहिए। इसे तोड़ना स्वराज्यवादियोंका, जो सब कांग्रेसी हैं, कांग्रेसकी नीतिसे हटना ही होगा।

२४४. भाषण : स्वराज्यदलकी बैठकमें[1]

कलकत्ता
१७ जुलाई, १९२५

महात्माजीने, जो बैठकमें उपस्थित थे स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि यदि आप सदस्यता-सम्बन्धी कताईकी शर्तको हटाना ही चाहते हैं तो मैं आपकी माँगको एकदम मानकर अ० भा० कां० कमेटीकी बैठक बुलाऊँगा। किन्तु फिर मेरे सम्मुख कांग्रेसकी कार्य-समितिकी अध्यक्षतासे त्यागपत्र देकर चरखा और खद्दरके प्रसारके लिए प्रचार करनेके अलावा और कोई चारा नहीं रह जायेगा। मैं स्वराज्यवादियोंको समझौतेसे मुक्त करके कांग्रेसके समादेशके प्रति उनके उत्तरदायित्वसे उन्हें पूरी तरह बरी करनेको तैयार हूँ। समझौतेके अनुसार कताई-सदस्यताका पूरे एक सालतक लागू रहना अनिवार्य था और इसी कारण अधिकतर स्वराज्यवादी इसे पूरे एक कार्यकाल तक लागू रखनेके पक्षमें थे। पर बहुमत यदि इस शर्तको हटानेके पक्षमें है तो उनकी इच्छाको ध्यानमें रखते हुए इस समझौतेको तोड़ दिया जाना चाहिए। अन्तमें उन्होंने कहा कि यदि कांग्रेस कताई-सदस्यताको समाप्त कर देती है तो जिस प्रकार कांग्रेसमें रहते हुए देशबन्धु दासने स्वराज्य दलकी स्थापना की थी उसी प्रकार मैं एक कताई-संस्थाकी अलग स्थापना करूँगा।[2]

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १८-७-१९२५

१. स्वराज्यदलकी यह बैठक कताई-सदस्यताको समाप्त करनेके प्रश्नपर चर्चा करनेके उद्देश्यसे चित्तरंजन दासके दामाद एस० मी० रायके निवास स्थानपर हुई थी।

२. निश्चित हुआ कि सितम्बरके अन्त या अक्तूबरके आरम्भमें कताई सदस्यतापर विस्तारसे चर्चा करनेके लिए अ० भा० कां० कमेटीकी बैठक बुलाई जाये। विवरणके अनुसार, "बैठकके अन्तमें गांधीजीने पण्डित मोतीलाल नेहरूको एक पर्ची लिखकर भेजी कि चूँकि कांग्रेसमें बहुमत स्वराज्यवादियोंका है, इसलिए स्वराज्यदलके अध्यक्षके नाते पण्डितजीको ही कांग्रेस कार्यसमितिकी अध्यक्षता भी सँभाल लेनी चाहिए। स्वराज्यवादियोंके खेमेमें इससे हलचल मच गई क्योंकि ज्यादातर स्वराज्यवादी गांधीजीका मार्गदर्शन खो देना पसन्द नहीं करते थे। अन्तमें तय यह हुआ कि वर्षकी शेष अवधितक गांधीजी अ० भा० कां० कमेटीके अध्यक्ष बने रहें; किन्तु यदि अ० भा० कां० कमेटीकी अगली बैठकमें कताई-सदस्यता हटा देनेका निर्णय लिया जाये तो वे त्यागपत्र दे देंगे और एक कताई-संस्थाकी अलगसे स्थापना करेंगे।"

२४५. वंचनासे भरा भाषण

[१८ जुलाई, १९२५]

लॉर्ड बर्कनहेडका ऐलान दो अर्थोंमें वंचना करनेवाला है। वह दूसरी मर्तबा पढ़नेपर उतना कठोर नहीं लगता जितना पहली मर्तबा पढ़नेपर लगा था; परन्तु उसे दूसरी मर्तबा पढ़नेपर उससे भी ज्यादा निराशा होती है, जितनी पहली मर्तबा पढ़नेपर हुई थी। उन्होंने सोच-समझकर कठोरतापूर्ण बातें नहीं कही हैं। मानो नर्मीसे जो कहा है बेतहाशा कहा है। उन्होंने जो महसूस किया या कहना चाहिए उन्हें जो महसूस कराया गया वही उन्होंने कह दिया है। उनके वादे भी केवल देखनेमें ही लुभावने हैं। यदि हम उन्हें ध्यानसे देखें तो उनमें हरएकपर यह छाप पड़ती है कि उन वादोंको करनेवाला इस बातको जानता है कि उसे उनको पूरा करनेकी जरूरत कभी नहीं पड़ेगी। अच्छा, हम पहले उसी वादेको लें जो सबसे अधिक प्रलोभनकारी है। व्यवहारतः उसका भाव यह है—'आप अपना संविधान तैयार कर लें और हम उसपर विचार करेंगे।' क्या यह हमारा ३५ सालका अनुभव नहीं है कि हमने अपने खयालके मुताबिक बिलकुल निर्दोष प्रार्थनापत्र भेजे हैं और वे 'गौरसे विचार करनेके बाद' अस्वीकार कर दिये गये हैं? ऐसा अनुभव होनेपर हमने १९२०में भिक्षा-नीति छोड़ दी और निश्चय किया कि हम अपने ही उद्योगपर निर्भर रहेंगे, भले ही हम उस प्रयत्नमें नष्ट-भ्रष्ट ही क्यों न हो जायें। लॉर्ड बर्कनहेड हमसे 'मुंशीपन' नहीं चाहते। वे तो हमें 'तेग बहादुरी' दिखानेका न्यौता देते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि इस निमन्त्रणको कोई न तो स्वीकार करेगा—और न स्वीकार कर ही सकता है। इसका प्रमाण उस भाषणमें ही मौजूद है। उनके सामने मुडीमैन समितिके अल्पमतकी अर्थात् डॉ० सप्रू और श्री जिन्नाकी रिपोर्ट मौजूद थी। डॉ० सप्रू और श्री जिन्ना दो निहायत होशियार वकील हैं जिन्होंने कभी असहयोग करनेका कुसूर नहीं किया है, और उनमें से एक तो वाइसरायकी कौंसिलके कानूनी सदस्य भी रहे हैं। उन्हें तथा उनके साथियोंको जवाब यह मिला है कि उनमें इस बातकी समझ नहीं है। उस संविधानपर जिसे पण्डित मोतीलाल नेहरू तैयार करें और परम माननीय श्रीनिवास शास्त्री और मियाँ फजली हुसैन-जैसे लोग पुष्ट करें, अधिक अनुकूल विचार किये जानेकी सम्भावना है? क्या लॉर्ड बर्कनहेडका यह प्रस्ताव असावधान लोगोंको फँसानेके लिए बिछाया गया जाल नहीं है? फर्ज करें कि मौजूदा हालकी जरूरत रफा करनेके लिए सच्चाईसे कोई संविधान तैयार किया जाता है, उसे बेजा बताकर उसके बजाय कोई बहुत ही छोटी-सी चीज देनेका प्रस्ताव नहीं किया जायेगा? मैं जब मुश्किलसे २५ सालका था तभी मुझे यह विश्वास करना सिखाया गया था कि यदि तुम समझो कि तुम चार आनेसे संतुष्ट हो सकते हो तो वह चार आने

१. वाइसरायके कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य।

पानेके लिए तुम्हें सोलह आनेकी माँग करनी चाहिए; किन्तु मैं इसे कभी नही सीख पाया; क्योंकि मेरा मत तो यह था कि हमें जितनेकी जरूरत हो हम उतना ही माँगें और उतना न मिले तो उसके लिए लड़ें। परन्तु यह बात मेरे ध्यानमें अवश्य ही आ गई थी कि पूर्वोक्त व्यावहारिक सलाहमें बहुत-कुछ सत्यांश है।

यदि माँगके साथ बल, फिर वह हिंसात्मक हो या अहिंसात्मक, हो तो बेहूदासे-बेहूदा संविधानपर भी तुरन्त विचार किया जायेगा। यह बात अंग्रेजोंके बारेमें, जो कमसे-कम एक प्रकारके बलका मूल्य तो भली-भाँति जानते ही हैं, खास तौरसे लागू होती है।

भारतकी वह अथक सेविका डॉ० बेसेंट एक विधेयक तो इंग्लैंड ले ही गई हैं। उसपर कितने ही प्रसिद्ध भारतीयोंने दस्तखत किये हैं। यदि कुछ अन्य लोगोंने उसपर दस्तखत नही किये हैं तो उसका कारण यह नहीं है कि वे उससे सन्तुष्ट नहीं थे, बल्कि उसका कारण यह है कि वे जानते हैं कि वह रद्दीकी टोकरीमें डाल दिया जायेगा; उसकी गति इसके सिवा दूसरी न होगी। उसपर दस्तखत न करनेका कारण यह है कि दस्तखत न करनेवाले लोग उसकी बिना सोचे-समझे की जानेवाली रद्दगीसे होनेवाले राष्ट्रके अपमानमें भागी होना नही चाहते। जरा लॉर्ड बर्कनहेड कहें तो कि क्या वे भारतके लोकमतको बहुतांशमें प्रदर्शित करनेवाले किसी एक दल द्वारा या एकाधिक दलों द्वारा तैयार किये गये किसी युक्तिसंगत संविधानको मंजूर कर लेंगे? यदि वे ऐसा कहें तो वह संविधान एक सप्ताहमें ही बनकर तैयार हो जायेगा। वे सार्वजनिक रूपसे डॉ० बेसेंटको यह आश्वासन दे दें कि पण्डित मोतीलाल नेहरू और अन्य लोगोंके, वे जिनके नाम लें, दस्तखत कर देनेसे उसके स्वीकृत होनेकी पूरी-पूरी सम्भावना है तो मैं इस बातका जिम्मा लेता हूँ कि मैं उसपर उनके दस्तखत करा दूँगा। पर बात यह है कि लॉर्ड बर्कनहेडके प्रस्तावमें सचाईकी गन्ध तक नहीं है।

भारतमन्त्रीने जो-कुछ देनका प्रस्ताव किया है, उसमें ईमानदारी नही दिखाई देती; लेकिन इसमें उनका कुसूर नहीं है। हम अभीतक किसी बातका दावा करनेके लिए तैयार जो नही हैं। इसलिए स्वभावतः ब्रिटिश सरकारका काम यही हो जाता है कि वह हमें कुछ देनेकी बात करे और हमारा काम है कि हम उसे फिलहाल काफी न समझें तो लेना नामंजूर कर दें। नये प्रधान सेनापतिने जिसे अप्राप्य कहा है, हमारे लिए तो वही एक चीज इस लायक है कि हम उसके लिए जियें, लड़ें और मरें। मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार कभी अप्राप्य नही हो सकता और लोकमान्यने हमें बताया है कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। स्वराज्यकी परिभाषा है — अपना शासन स्वयं करना; भले ही कुछ समयतक वह कुशासन भी हो। हम अंग्रेज और हिन्दुस्तानी, इस समय भारी दिमागी उलझनमें फँसे हैं। लॉर्ड बर्कनहेड समझते हैं कि ब्रिटिश सरकार हम भारतीयोके सुख-सुविधाकी न्यासी है, किन्तु हम मानते हैं कि उसने हमें अपने स्वार्थके लिए गुलामीकी जंजीरोंमें जकड़ रखा है। न्यासी अपने प्रतिपालितकी आयका ७५ फीसदी मेहनतानामें कदापि वसूल नहीं करता।

लॉर्ड बर्कनहेड कहते हैं कि भारतमें ९ मजहब और १३० भाषाएँ हैं; वह एक राष्ट्र नहीं हो सकता। हमारा कहना है कि समस्त व्यावहारिक उद्देश्योंकी पूर्तिकी दृष्टिसे और बाह्य आक्रमणोंसे रक्षाके मामलेमे हम जरूर एक राष्ट्र हैं। वे समझते है कि असहयोग एक भयंकर गलती थी। हममें से बहुसंख्यक लोग मानते हैं कि उसीने इस सोते हुए राष्ट्रको घोर निद्रासे जगाया है और इसीके बदौलत राष्ट्रको अकूत बल मिला है। स्वराज्यदल उसी बलका अप्रत्यक्ष परिणाम है। वे कहते हैं कि ब्रिटिश सरकारने हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़ोंमें 'अपने हाथ साफ रखे हैं।' पर प्रायः हर भारत-वासीका यह निश्चित विश्वास है कि हमारे अधिकांश झगड़ोंके लिए मुख्यतः ब्रिटिश सरकार ही जिम्मेवार है। वे मानते हैं कि हमें उनसे सहयोग करना लाजिमी है। हम कहते हैं कि जब उनका हेतु अच्छा होगा या उनका हृदय-परिवर्तन होगा, हम उनके साथ सहयोग करेंगे। वे कहते हैं कि कोई गुणी नेता सुधारोंका उपयोग करनेके लिए खड़ा नहीं हुआ। हम कहते हैं कि दूसरोंकी बात जाने दें। श्री शास्त्री और श्री चिन्तामणिको ही लें; सुधारोंको सफल बनानेके लिए तो वे ही पर्याप्त गुणी पुरुष थे; परन्तु समस्त सद्भावके बावजूद उन्होंने अनुभव किया कि वह सम्भव नहीं है। देशबन्धुने इससे निकलनेका एक रास्ता दिखाया था। उनका वह प्रस्ताव अभी कायम है।

पर उनके प्रस्तावका उत्तर उसी भावसे मिलनेकी क्या कोई आशा है जिस भावसे वह रखा गया है? अंग्रेजोंको और हमको दृष्टिभेदके कारण एक-दूसरेकी बात उलटी नजर आती है। तब क्या कोई ऐसी योजना प्राप्त करनेकी सूरत है जिसपर हम दोनों सहमत हो सकें।

हाँ, ऐसी सूरत अवश्य है।

अभी हम दोनों कौमोंकी हालत अस्वाभाविक है — एक शासक है, दूसरा शासित। हम भारतवासियोंको यह खयाल करना छोड़ देना चाहिए कि हम शासित हैं। यह हम तभी कर सकते हैं जब हमारे पास किसी किस्मका बल हो। १९२१ में हमें लगता था कि हम समझते हैं, वह बल हममें है। इसीसे हमने सोचा था कि स्वराज्य एक सालके भीतर-भीतर मिल रहा है। पर अब तो कोई भविष्यवाणी करनेका साहस नहीं हो सकता। अतः हमें वह बल, सत्याग्रहका शान्तिमय बल, इकट्ठा करना चाहिए। तब हम एक-दूसरेके बराबर हो जायेंगे। यह कोई डर या धमकी नहीं है। यह तो अटल वस्तुस्थिति है। और यदि इन दिनों मैं 'शासकों' की कार्रवाइयोंकी आलोचना नियमित रूपसे नहीं करता तो इसका कारण यह नहीं है कि सत्याग्रहीके भीतर रहने-वाली मेरी अग्नि बुझ गई है। बल्कि उसका कारण यह है कि मैं वाणी, लेखनी और विचारमें मितव्ययी हूँ। जिस दिन मैं तैयार हो जाऊँगा मैं अपनी वाणीका खुला उप-योग करूँगा। मैंने लॉर्ड बर्कनहेडकी इस घोषणाकी आलोचना करनेका साहस खासकर बंगालके और आमतौरपर भारतके वियोग-व्यथित लोगोंको यह बतानेके लिए किया है कि लॉर्ड बर्कनहेडके भाषणकी अनचाही तीक्ष्णताको मैं भी उन्हींकी तरह अनुभव करता हूँ। मैं यह भी बताना चाहता हूँ कि पण्डित मोतीलाल जहाँ विधानसभामें

लड़ेंगे और देशबन्धुकी जगह स्वराज्यदलका नेतृत्व करेंगे, वहाँ मैं भी सत्याग्रहके लिए वातावरण तैयार करनेमें कोई कोर-कसर न रखूँगा, और यह ऐसा काम है जिसके लिए मैं और बातोंकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त हूँ। गीताके गायकने कहा भी है:

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

स्वधर्म (कर्त्तव्य) के पालनमें मर जाना भी श्रेयस्कर है; परधर्म तो भयावह होता है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २३-७-१९२५

२४६. टिप्पणियाँ

चोर-नीति

मैंने कभी कल्पना भी न की थी कि मुझे इस शीर्षककी टिप्पणी और वह भी गुजरातकी राष्ट्रीय प्रवृत्तिके सम्बन्धमें लिखनी पड़ेगी। किन्तु यह अनसोची बात हो गई है। गुजरात खादी-मण्डलने निम्न प्रस्ताव पारित किया है:

> चूंकि मण्डलके लिए कुछ उधार रकमोंको वसूल करना कठिन हो गया है और उनकी वसूलीके लिए दावे दायर करनेकी नौबत आ गई है, इसलिए यह निश्चय किया जाता है कि इन उधार रकमोंका विवरण पूरे तथ्यों सहित प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी मारफत गांधीजीको भेज दिया जाये और उनका उत्तर आनेपर इन रकमोंकी वसूलीके लिए उचित कारंवाई की जाये।

यह प्रस्ताव एक दो खास व्यक्तियोंके मामलोंको ध्यानमें रखकर पारित किया गया है। इनमें से एक व्यक्तिका नाम और पता मुझे मिल गया है। किन्तु मैं इसी समय उनका नाम प्रकट करना नहीं चाहता। मैं यह भी नहीं चाहता कि फिलहाल खादी मण्डलको अदालतमें दावा दायर करनेकी सलाह दूं। मैं इस सम्बन्धमें अपना यह विचार प्रकट कर चुका हूँ कि कांग्रेसके प्रस्तावोंका मंशा कांग्रेसको नुकसान पहुँचाना नहीं है। वे प्रस्ताव जब प्रस्तुत किये गये थे तभी यह मान लिया गया था कि सदस्य कमसे-कम एक-दूसरेको तो धोखा न देंगे और कांग्रेसके कार्यके सम्बन्धमें पारस्परिक व्यवहारमें ईमानदारी बरतेंगे। किन्तु अपने सामने मौजूद चिट्ठीसे प्रकट है कि कांग्रेसके सदस्य खादी-मण्डलके विश्वसनीय कार्यकर्त्ता लोग ही, खादी-मण्डल द्वारा उधार दी गई रकमोंको नहीं लौटा रहे हैं। इस सम्बन्धमें मध्यस्थ लोग भी अपना वचन पूरा नहीं कर रहे हैं। यदि कांग्रेसके अदालतोंके बहिष्कारसे सम्बन्धित प्रस्तावको ऐसे लोगोंके मामलेमें ही लागू करना पड़े तब तो कांग्रेसको ही अपना दिवाला निकालना पड़ेगा।

क्या कोई गुजराती इस चोर-नीतिका भी त्याग कर देगा? चोर-नीतिका अर्थ वह नीति जिसका पालन चोर भी परस्पर करते हैं। वे चोरी करते हैं, उनके इस

कार्यमें तो अनीति है ही; किन्तु वे एक-दूसरेकी चीजें नहीं चुराते। यदि वे एक-दूसरेसे लेन-देन करते हैं तो उसमें शुद्धता बरतते हैं। क्या गुजराती इतने पतित हो गये हैं कि वे नीतिका इतना पालन भी न करेंगे? मेरी विनती है कि जिन्होंने खादी मण्डलकी उधार रकमें अभीतक न दी हों तो वे जिन रकमोंको मंजूर करते हैं, कमसे-कम उनका हिसाब तो दे ही दें।

सबके-सब ब्रह्मचारी

मेरे अभिमानके कारण कहें या अज्ञानके कारण अथवा दोनोंके कारण कहें, मैं यह खयाल करता था कि अपने तमाम लड़के-लड़कियोंको ब्रह्मचारी रखनेका प्रयत्न करनेवाला मैं शायद अकेला ही हूँगा अथवा मेरे कुछ साथी ही होंगे। परन्तु मेरा यह गर्व चूर-चूर हो गया है और मेरा अज्ञान दूर हो गया है। यहाँ मेरे साथ जो स्वयंसेवक हैं उनमें एक यहाँकी प्रान्तीय कमेटीके मन्त्रीका भतीजा है। वह स्वयं ब्रह्मचारी है, यही नहीं, बल्कि उसके पिताने निश्चय किया है कि वे उसके शेष भाइयोंको भी ब्रह्मचारी रखेंगे। जो लड़का स्वयं ब्रह्मचारी न रहना चाहे वे उसके लिए योग्य कन्या खोजनेके लिए तैयार हैं; वे उनमें से किसीपर जब्र करना नहीं चाहते। वे अभी अपने लड़कोंको ऐसी ही तालीम दे रहे हैं जिससे वे ब्रह्मचर्यका पालन करें। उनके सब बेटे जवान हैं और अपने-अपने काम-धन्धेमें लगे हैं। वे अबतक स्वेच्छासे ब्रह्मचारी हैं। मैं देखता हूँ कि बंगालमें इसी तरह कन्याओंको भी तालीम दी जाती है। यद्यपि उनकी संख्या कम है तथापि प्रयत्न तो किया ही जा रहा है। यह प्रयत्न पाश्चात्य सभ्यताके प्रभावका फल नहीं है, बल्कि ऐसी चेष्टा करनेवाले माता-पिता केवल धार्मिक भावसे प्रेरित होकर ही ऐसा कर रहे हैं।

दाहिना बनाम बायाँ

कोई भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि दाहिने और बायें हाथमें भेद कैसे आरम्भ हुआ और कुछ कामोंको दाहिने हाथसे और कुछको बायें हाथसे ही करनेकी प्रथा क्यों पड़ी? परन्तु परिणाम तो हम देखते ही हैं कि बहुतेरे कामोंमें बायें हाथका उपयोग नहीं किया जाता। इससे वह बेकाम हो गया है और हमेशा दाहिने हाथसे कमजोर भी रहता है।

किन्तु जापानमें यह बात नहीं है। वहाँ सभीको लड़कपनसे ही दोनों हाथोंसे एक-सा काम लेना सिखाया जाता है। इसलिए उनकी शारीरिक उपयोगिता हमारी शारीरिक उपयोगितासे अधिक हो जाती है।

मैं ये विचार अपने वर्तमान अनुभवके फलस्वरूप पाठकोंके लाभार्थ उपस्थित करता हूँ। मुझे जापानियोंके सम्बन्धमें इस बातको पढ़े कोई २० सालसे अधिक हो गये हैं। मैंने जबसे यह बात पढ़ी है तभीसे बायें हाथसे लिखनेका अभ्यास आरम्भ कर दिया था और फलतः मुझे इसकी थोड़ी-बहुत आदत हो गई है। मैंने यह मानकर कि मुझे अवकाश नहीं है, बायें हाथसे दाहिनेके बराबर तेजीसे लिखनेका मुहावरा नहीं डाला। मुझे इसपर इस समय अफसोस हो रहा है। मेरा दाहिना हाथ मेरी

इच्छाके अनुसार लिखनेका काम नही देता; उसमें अधिक लिखनेसे दर्द होने लगता है। मुझे यह लोभ अभीतक बना ही हुआ है कि जहाँतक हो सके, मैं अपनी हाथसे लिखनेकी शक्तिको कायम रखूँ। इस कारण मैंने अब फिर बायें हाथसे लिखना शुरू किया है। अब मुझे इतना अवकाश तो है नही कि मैं सब-कुछ बायें ही हाथसे लिखूँ और दाहिने हाथकी जैसी तेजी उसमें ला दूँ। फिर भी वह कठिनाईके समयमें मुझे मदद दे रहा है। इस कारण मैं अपना यह अनुभव पाठकोंके सामने पेश करता हूँ। जिन्हें अवकाश और उत्साह हो वे बायें हाथसे भी अभ्यास करें। समय आनेपर उनकी उपयोगिता सभी सिद्ध कर सकेंगे। बायें हाथसे केवल लिखनेका ही नही, दूसरी क्रियाओंका भी अभ्यास कर लेना लाभप्रद है। क्या हमने कितने ही ऐसे लोग नही देखे जिनके लिए चोट आदि लगनेके कारण दाहिना हाथ बेकाम हो जानेपर बायेंसे खाना खाना भी मुश्किल हो जाता है? इस लेखका सार कोई यह तो हरगिज न निकालें कि वे बायें हाथसे अभ्यास करनेके पीछे पागल ही हो जायें। साधारण तौरपर बायें हाथसे जितना अभ्यास किया जा सकता है, मैं इस टिप्पणीके द्वारा उतना ही करनेकी सलाह दे रहा हूँ। शिक्षकोंके लिए यह वांछनीय मालूम होता है कि वे यह सुझाव देकर बालकोंको लाभ पहुँचायें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १९-७-१९२५

२४७. उद्धार कब हो सकता है?

एक 'सेवक'ने अपने पत्रमें लिखा है:[1]

इसमें से मैंने वह भाग निकाल दिया है जिसमें 'सेवक' ने देशी राज्योंके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें लिखी थीं।

श्रद्धा किसीके देनेसे नही मिलती। इसलिए 'सेवक'को अपनी वांछित श्रद्धा स्वयं ही प्राप्त या अनुभव करनी होगी। परन्तु मैं उनका विचार-दोष बता सकता हूँ। राष्ट्रके कर्म-फलका अर्थ है उसके समस्त कर्मोंके योगका परिणाम। इसके अतिरिक्त यहाँ स्वराज्यका अर्थ संकुचित किया गया है। स्वराज्यका अर्थ है राजतन्त्रका अंग्रेजोंके हाथसे जनताके हाथमें आना। अतः यहाँ तो अंग्रेजों और भारतीयों दोनोंकी समाज-नीति अथवा राजनीतिका कर्म-फल निकालना होगा। समाजनीतिमें हमारे समाजकी संगठन शक्ति और निर्भयता आदि गुणोंका समावेश होता है। ये गुण जब प्रजामें आ जायें तब हम अपनी शासन-व्यवस्था अपने हाथमें ले सकते हैं। फिर इस समय तो स्वराज्यका अर्थ 'ब्रिटिश भारतकी स्वाधीनता'-मात्र है। उसका असर देशी-राज्यों-पर बहुत होगा, इसमें कोई शक नही। फिर भी देशी राज्योंका प्रश्न अलग रहेगा

1. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने लिखा था कि देशमें इस समय बहुत-सी बुराइयाँ फैली हुई हैं। जबतक ये बुराइयाँ नहीं जातीं तबतक देशका उद्धार कैसे होगा? क्या व्यक्तिकी तरह समाजको भी उसके कर्मोंका फल नहीं मिलता?

और बहुतांशमें ब्रिटिश भारतको स्वतन्त्रता मिलनेके बाद अपने-आप हल हो जायेगा। देशी राज्योंकी राजनीति कितनी ही बुरी हो, फिर भी ब्रिटिश भारतमें शक्ति हो तो वह आज स्वाधीन हो सकता है। इसलिए कर्म-फल निकालनेमें हमें ब्रिटिश भारतकी प्रजाके कर्मोका भी हिसाब लगाना होगा। यदि हम उस हिसाबमें देशी राज्योंको जोड़ेंगे तो फल गलत निकलेगा। वास्तवमें तो देशी राज्य भी अंग्रेजी सत्ताके ही प्रतीक हैं। वे उसीके अधीन हैं। वे उसके प्रति जवाबदेह हैं भी और नहीं भी हैं। कर देने और उस सत्ताके प्रति वफादार रहनेका जहाँतक सम्बन्ध है, वहाँतक वे उसके प्रति जवाबदेह हैं और प्रजाके और उनके सम्बन्धोंका जहाँतक ताल्लुक है वे लगभग स्वतन्त्र हैं। वे प्रजाके प्रति तो बेशक जवाबदेह नहीं हैं। इससे उनके आसपासके वायुमण्डलमें दोष-ग्रहणकी शक्ति बढ़ती है अथवा दूसरे शब्दोंमें कहें तो उनके सम्मुख अन्यायी बननेके अनेक प्रलोभन रहते हैं। वे जो-कुछ थोड़ा बहुत न्याय करते हैं उसका भी कारण है उनकी बची-खुची स्वतन्त्र नीति। खूबी तो यह है कि देशी राज्य बिलकुल निरंकुश होते हुए भी और अंग्रेजी सत्ताकी अनीतिके समर्थक होते हुए भी अबतक न्याय-नीतिकी यत्किंचित् रक्षा कर रहे हैं। इस स्थितिका श्रेय हिन्दुस्तानकी प्राचीन गौरवमयी सभ्यताको है।

इस प्रकार मैं देशी राज्योंका बचाव नहीं कर रहा हूँ। मैं तो वस्तुस्थितिको पहचानकर और 'सेवक' का विचार-दोष दिखाकर उसकी निराशा दूर करनेका प्रयत्न-मात्र कर रहा हूँ। देशी-राज्य चाहे कितने ही बुरे हों परन्तु यदि फिर भी ब्रिटिश सत्ताके अधीन रहनेवाले करोड़ों भारतवासी अपने योग्य सामाजिक गुणोंको व्यक्त कर सकें तो वे स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। देशी-राज्य इन गुणोंके विकासमें चाहें तो बहुत मदद कर सकते हैं। परन्तु यदि वे मदद न करें और विरोध करें तो भी राष्ट्र उन गुणोंको व्यक्त कर सकता है।

वे गुण क्या हैं, इसका विचार हम समय-समयपर कर चुके हैं — चरखा, खादी, हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारण। ये गुण अहिंसा द्वारा स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए आवश्यक हैं। यदि हमें तलवारके बलसे स्वराज्य प्राप्त करना हो तो फिर इनमें से किसी भी गुणकी जरूरत नहीं। परन्तु फिर वह स्वतंत्रता जनताकी स्वतन्त्रता न होगी, एक बाहुबल-धारीकी स्वतन्त्रता होगी। जनता तो कड़ाईसे निकलकर चूल्हेमें गिरेगी। गेहुँवे रंगके डायर श्वेतवर्णी डायरसे अधिक ग्राह्य न होंगे। तब तो देशी राज्योंकी जिस स्थितिका रोना 'सेवक' रो रहे हैं वही स्थिति सारे भारतकी होगी; क्योंकि जो समुदाय तलवारके द्वारा अंग्रेजोंसे सत्ता छीनेगा, क्या वह प्रजाके प्रति उत्तरदायी रहेगा? असि, तलवार, शमशीर, 'सोर्ड' सब एक ही वस्तुके पर्याय हैं।

देशी राज्योंसे अंग्रेजी राज्य जरूर नरम होगा। यही तो अंग्रेजी राज्यकी खूबी है। अंग्रेजोंको तो पक्ष-विशेषको प्रसन्न रखकर ही शासन चलाना पड़ता है। इसीलिए मध्यमवर्गी लोगोंको निरन्तर अन्याय नहीं सहना पड़ता। अंग्रेजोंके अन्याय-का क्षेत्र बड़ा है। इससे वह मात्रामें बहुत होते हुए भी व्यक्तिशः कम मालूम होता है और हम दीर्घकालसे उसके अभ्यस्त हो जानेके कारण उसको पहचान भी नहीं

पाते। दक्षिण अमरीकाके गुलामोंको चिर अभ्यस्त होनेसे गुलामी इतनी मीठी लगती थी कि जब वे गुलामीसे मुक्त किये गये तब उनमे से कुछ तो रोने लगे थे। वे कहाँ जायेंगे, क्या करेंगे, और किस तरह रोजी कमायेंगे, ये महाप्रश्न उनके सामने आ खड़े हुए थे। यही हालत हममें से बहुतों की है। हम अंग्रेजी राजनीतिके सूक्ष्म परन्तु घातक दुष्प्रभावको अनुभव नहीं करते। क्षयके रोगी वैद्योके सचेत करनेपर भी, गालोंकी लालीमे भुलावेमें पड़ जाते हैं। वे नहीं जानते कि यह लाली असली नहीं नकली है। वे अपने पैरोंके पीलेपनपर ध्यान नही देते।

मैं पाठकोंको फिर सावधान करता हूँ कि मैं देशी राज्योंकी हिमायत नही करता। मैं तो भारतकी दुर्दशा बताता हूँ। देशी राज्य भले ही खराब हों, परन्तु उनकी इस खराबीकी जड़ अंग्रेजी राज्य है। उथला विचार करनेसे अंग्रेजी राज्य भले ही देशी राज्योंसे अच्छा मालूम हो, परन्तु वास्तवमे वह देशी राज्योंसे अच्छा नही है। अंग्रेजी राज्य-पद्धति प्रजाके शरीर, मन और आत्माका नाश करती है। देशी-राज्य मुख्यतः शरीरका नाश करते हैं। यदि अंग्रेजी राज्यके स्थानमे प्रजा-राज्य कायम हो जाये तो मैं देशी राज्योंमे सुधार हुआ जैसा ही मानता हूँ। किन्तु यदि अंग्रेजों या श्वेतवर्णियोंके बाहु-बलके राज्यकी जगह गेहुँआ रंगके लोगोंके बाहु-बलका राज्य हो जाये तो उससे न तो प्रजाको कुछ लाभ होगा और न राज्योंमें सुधार होगा। शान्तिपूर्वक विचार करने-वाला हर स्त्री-पुरुष अपने-आप इन दोनों उदाहरणोंकी सचाई समझ सकता है।

वातावरणमे अनिश्चितता होनेपर भी मैं चरखेकी और खादीकी प्रगतिको स्पष्ट देख रहा हूँ। अस्पृश्यता दूर होती ही जा रही है और हिन्दू-मुसलमान राजी-खुशीसे नही तो लड़-भगड़कर ठिकाने जरूर आ जायेंगे। इस कारण स्वराज्यकी शक्यताके विषयमे मेरी श्रद्धा अविचल है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १९-७-१९२५

२४८. राष्ट्रीय शिक्षा

एक गुजराती सज्जनने राष्ट्रीय शिक्षाकी दयनीय हालतका वर्णन करनेके बाद जो-कुछ लिखा है, उसका सार नीचे दे रहा हूँ:

> जहाँ विद्यार्थी राष्ट्रीय विद्यामंदिरोंको छोड़ रहे हों, कार्यकर्त्ता शिथिल हो रहे हों और लोग अपने लड़कोंको पढ़नेके लिए सरकारी शालाओंमें भेज रहे हों, जहां शेष बचे विद्यार्थी विद्यामंदिरोंमें आते वक्त ही खादी पहनते हों और स्नातकोंको यह सूझता ही न हो कि क्या धन्धा करें, वहाँ राष्ट्रीय शिक्षा कैसे टिक सकती है? क्या आप कोई मार्ग सुझायेंगे? आप यह तो अवश्य ही नहीं कहेंगे कि उन्हे चरखा चलाते जाना चाहिए।

सभी प्रवृत्तियोंमें सफलतातक पहुँचनेसे पहले उतार और चढ़ाव आते हैं। राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें भी ऐसा ही हो रहा है। जो लोग उतारके वक्त भी

राष्ट्रीय शिक्षामें अपना विश्वास बनाये रखेंगे, वे ही राष्ट्रीय शिक्षाकी गौरव-वृद्धि करेंगे। मेरा राष्ट्रीय शिक्षामें विश्वास है, इसलिए मैं तो इस उतारसे नहीं घबराता। मैं जानता हूँ कि जिसमें उतार आता है उसमें चढ़ाव भी अवश्य ही आता है। इसलिए विश्वासी लोग अपना विश्वास न त्यागें। स्नातकोंको धन्धा देनेका प्रश्न टेढ़ा है। राष्ट्रीय शिक्षाको अभी ऐसा स्वरूप प्राप्त नहीं हुआ है कि किसी भी स्नातकको धन्धेकी चिन्ता करनेकी जरूरत ही नहीं हो। कुछ स्नातक तो राष्ट्रीय शिक्षाके क्षेत्रमें खप जायेंगे। किन्तु अधिकांश स्नातकोंके लिए कोई धन्धा चाहिए और वह धन्धा खादीके क्षेत्रमें ही मिल सकता है। केवल यही राष्ट्रीय क्षेत्र प्राणवान है; अतः इसीमें अधिकसे-अधिक युवक खप सकते हैं। इस क्षेत्रके लिए तो बहुत-से स्नातक तैयार किये जाने चाहिये। सूत कातकर आजीविकामें वृद्धि करना निर्धनोंका और कताई-का प्रचार करनेके लिए सूत कातना यह मध्यम वर्गका काम है। मैं बंगालमें देख रहा हूँ कि इस प्रचार-कार्यको करके सैकड़ों युवक सामान्यतः अपनी आजीविका कमा सकते हैं। मैं इस सम्बन्धमें आँकड़े प्राप्त कर रहा हूँ। इसको जानकर लोगोंको हर्ष और आश्चर्य हुए बिना न रहेगा।

किन्तु इस कार्यमें वे ही युवक लग सकते हैं, जिनका खादीकी शक्तिमें विश्वास हो और जिनमें उसका काम सीखनेका धीरज हो। जिनकी चरखे और खादीमें श्रद्धा न हो, मैं मानता हूँ कि उनका राष्ट्रीय शिक्षामें पड़ा रहना व्यर्थ है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-७-१९२५

२४९. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

कलकत्ता

१९ जुलाई, १९२५

प्रिय पण्डितजी,

मैं पिछले कुछ दिनोंसे यह सोच रहा हूँ कि मैं देशबन्धुकी यादगार कायम रखनेके लिए और लॉर्ड बर्कनहेडके भाषणसे उत्पन्न स्थितिके सम्बन्धमें स्वयं अपनी तरफसे क्या विशिष्ट योगदान कर सकता हूँ। मैं इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि मुझे स्वराज्यदलको पिछले सालके करारके समस्त दायित्वोंसे मुक्त कर देना चाहिए। इस कार्यका फल यह होगा कि अब कांग्रेसके लिए प्रधानतः कताई संस्था बना रहना आवश्यक नहीं रह जायेगा। मैं मानता हूँ कि उस भाषणसे उत्पन्न परिस्थितिमें स्वराज्य-दलके बल और प्रभावको बढ़ानेकी आवश्यकता है। यदि मैं इस दलको मजबूत बनानेके लिए जो भी कदम उठा सकता हूँ उसे न उठाऊँगा तो मैं अपने कर्त्तव्यका पालन न करूँगा। यह तभी हो सकता है जब कांग्रेस प्रधानतः राजनैतिक संस्था बन जाये। मैं उस करारके अनुसार कांग्रेसका कार्य रचनात्मक कार्यक्रमतक ही मर्यादित है। मैं

समझता हूँ कि अब परिवर्तित दशामें, जो कि देशके सामने है, इस मर्यादाको कायम रखनेकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए मैं खुद ही आपको इस मर्यादाके बन्धनसे केवल मुक्त ही नहीं करता बल्कि मैं आगामी अ० भा० कांग्रेस कमेटीसे भी कहना चाहता हूँ कि वह भी ऐसा ही करे और कांग्रेसके समूचे तन्त्रको आपके हवाले कर दे जिससे आप उसमें ऐसे राजनैतिक प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकें, जिन्हे आप देशके हितके लिए आवश्यक समझें। असलमें मैं यह चाहता हूँ कि मैं जिन-जिन मामलोंमें अपनी अन्तरात्माको सामने रखकर आपकी और स्वराज्यदलकी सेवा कर सकता हूँ, आप उन सबमें मुझे अपना वशवर्ती समझें।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २३-७-१९२५

२५०. पत्र : देवदास गांधीको

सोमवार [२० जुलाई, १९२५][2]

चि० देवदास,

इस समय तो यहाँ ही लिख रहा हूँ। यह भी गनीमत है। तुमने मेरी सहायताका अर्थ अधिक समझ लिया है। जैसा तुम कहते हो वैसी सहायताके लिए तुम्हें मुरक्षित रखनेकी आवश्यकता मैं नहीं समझता। सभी विधान सभाओंमें जाते हों तो चले जायें। मैं तो उनमें जानेके लिए अथवा किसीको उनमें भेजनेके लिए तैयार नहीं हूँ। हमारा काम तो केवल चरखा ही है। यदि देशबन्धु जीवित रहते तो मुख्यतः यही काम करते। चरखेमें उनकी दिलचस्पी इतनी गहरी हो गई थी। किन्तु ये सब बातें तो जब मिलेंगे तब होंगी। फिलहाल तो सारा वक्त दस लाखकी रकम इकट्ठी करनेमें और पण्डितजीसे[3] बात करनेमें जाता है। अखबारोंकी सामग्री लिखनेके लिए तो शायद ही कुछ वक्त बचता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २१३२) की फोटो-नकलसे।

१. मोतीलालजीके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट ५।
२. डाककी मुहरमें "कलकत्ता, २१ जुलाई, १९२५" है। सोमवार २० जुलाईको था।
३. पं० मोतीलाल नेहरू।

२५१. पत्र : राजेन्द्र प्रसादको

२१ जुलाई, १९२५

प्रिय राजेन्द्र बाबू,

समय बचानेके लिए मुझे तुम्हें यह पत्र अंग्रेजीमें लिखना पड़ेगा। मेरा दाहिना हाथ काम नहीं दे रहा है। बायें हाथसे लिखनेमें बहुत समय लगता है। इसलिए मैं इस समय आशुलिपिककी मदद ले रहा हूँ। वैसे मैंने यह आज ही से शुरू किया है। अ० भा० कां० कमेटीकी बैठक पटनामें होना असम्भव लग रहा है। महाराष्ट्र और मद्रास एवं विशेषकर मद्रासके लोगोंको बहुत सख्त शिकायत है; और उनकी शिकायतोंमें काफी तथ्य है। इसलिए सबने बम्बईमें करना तय किया है। इस बार हम इस बैठकमें पूरी-पूरी उपस्थिति चाहते हैं; क्योंकि ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रस्तावोंपर चर्चा करनी है जो संविधान और नीतिमें रद्दोबदलसे सम्बन्धित हैं। मैं चाहता हूँ कि उन प्रस्तावोंपर, वे जैसे भी हों, चर्चा उस समय हो जब सभी सदस्य उपस्थित हों। किन्तु यदि मुझे सितम्बरके शुरूमें बिहार बुला सकना सम्भव लगे तो मैं तब आ सकता हूँ। पर मैं वहाँ कमसे-कम समय लगाना चाहूँगा। यदि तुम पूरे महीने मुझे रोकना चाहो तो वह भी हो सकेगा। यों तो चूँकि तुम मुझे पुरुलिया बुला रहे हो और चूँकि सभी कार्यकर्त्ता वहाँ आ रहे हैं, इस समय तुम्हारा मुझे अन्य केन्द्रोंमें ले जाना अनावश्यक ही होगा। पर यह सब तय करना तुम्हारा काम है। जो आदमी तुम्हारा सन्देश लेकर आया था उससे मैंने कह दिया है कि मैं १२ को पुरुलिया पहुँच जाऊँगा। फिर भी अगर तुम मेरा इससे भी पहले वहाँ पहुँचना जरूरी समझो तो सूचित तो करना ही। प्रबन्ध ऐसा रखो जिससे मैं ३० सितम्बरको बम्बई पहुँच जाऊँ। बिहारके सब सदस्योंको अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकमें शामिल होना चाहिए। चरखा-सम्बन्धी परिपत्र मैंने अभी नहीं पढ़ा है, मैं इसे अगले एक सप्ताहतक पढ़ लेनेकी आशा रखता हूँ और 'यंग इंडिया' के अगले अंकमें इसके बारेमें लिखूँगा। हाँ, अब अखिल भारतीय स्मारक सम्बन्धी विज्ञप्ति भी प्रकाशित हो जायेगी। जवाहरलाल इसके बारेमें पहले लिख ही चुके हैं। इस कोषकी पूरी रकम चरखे और खद्दरके प्रचारमें व्ययकी जायेगी। यद्यपि कोषकी अपीलमें ऐसी कोई बात नहीं कही गई थी पर जहाँतक सम्भव होगा एक प्रान्तमें इकट्ठी की गई रकम उसी प्रान्तमें खर्चकी जायेगी। तथापि सारा खर्चा अ० भा० [कां०] कमेटीकी मार्फत होगा...।[1]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६७९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. पूरा पत्र उपलब्ध नहीं है।

२५२. अखिल भारतीय स्मारक

[२२ जुलाई, १९२५ या उससे पूर्व][1]

हम नीचे दस्तखत करनेवाले लोगोंकी यह राय है कि देशबन्धु चित्तरंजन दासकी याद अमिट बनानेके लिए अखिल बंगाल स्मारककी तरह अखिल भारतीय स्मारक बनाना भी आवश्यक है। जिस तरह वे समस्त बंगालके थे उसी तरह समस्त भारतके भी थे। जिस तरह हम उनके अखिल बंगाल स्मारकके सम्बन्धमें उनकी आकांक्षा जानते हैं, उसी तरह हम उनके अखिल भारतीय स्मारकके सम्बन्धमें भी उनकी आकांक्षा जानते हैं। उन्होंने एक सालसे कुछ पहले अपना यह विचार स्पष्ट रूपमें प्रकट कर दिया था और अपने फरीदपुरके भाषणमें दुहरा भी दिया था कि उन्हें गाँवोंके पुनस्संगठनके द्वारा भारतको पुनरुज्जीवित करना और शान्तिपूर्ण विकासात्मक विधिसे स्वराज्य प्राप्त करना अतिशय प्रिय है। हम यह भी जानते हैं कि वे मानते थे कि इस कामका आरम्भ देहातोंमें हाथ-कताईका पुनरुद्धार और विकास करके तथा घर-घर खादीका प्रचार करके किया जा सकता है और यही ग्रामसगठनका मध्यबिन्दु है। यही एकमात्र ऐसी प्रवृत्ति है जो सारे देशके लिए सर्वसामान्य हो सकती है और फिर भी जो बहुत थोड़ी लागतसे चलाई जा सकती है। यही एकमात्र ऐसी प्रवृत्ति मानी जाती है, जिससे तुरन्त फल मिल सकता है, फिर वह चाहे जितना ही कम क्यों न हो? देशके तमाम लोग, वे चाहे अमीर हों या गरीब, बूढ़े हों या जवान, पुरुष हों या स्त्री, चाहें तो इसमें निजी रूपमें सहायता दे सकते हैं और जुट जा सकते हैं। देहातियोंसे शहरी लोगोंको एकरस बनानेका और शिक्षित लोगोंको उनसे परिचित करानेका इससे बढ़कर उपयोगी तरीका दूसरा नही है। यही एक ऐसी प्रवृत्ति है जो कि भारतके तमाम प्रान्तो और पन्थोंके लिए सामान्य हो सकती है और जो जबर्दस्त आर्थिक परिणाम उत्पन्न कर सकती है। अन्तमें, यद्यपि इसका राजनैतिक पक्ष भी है तथापि इसका रूप स्पष्टतः इतना आर्थिक और सामाजिक है कि इसमें उन सब लोगोंकी, बिना दल सम्बन्धी भेद-भावके, सहायता ली जानी चाहिए, जो चरखेको आर्थिक उत्थान और ग्रामसंगठनका एक महान् साधन मानते हैं।

ऐसी व्यवस्थामें हम उनका चरखे और खादीके सार्वत्रिक प्रचारसे बढ़कर कोई अन्य समुचित स्मारक नही सोच सकते और इसलिए हम इस कार्यके निमित्त धन देनेकी प्रार्थना करते हैं। हम इस स्मारकके लिए आवश्यक राशिकी मात्रा नियत नही कर रहे हैं; क्योंकि इसमें तो जितना धन मिलेगा, सबका-सब खप सकता है।

१. स्पष्ट है कि यह संयुक्त अपील २२ जुलाईको, गांधीजीकी एक दूसरी अपीलके जारी करनेके दिन ही, जिसमें इसका उल्लेख है, लिखी गई थी और उसपर उसी दिन हस्ताक्षर किये गये थे। देखिए अगला शीर्षक।

इसके लिए सर्वसाधारणकी ओरसे जो चन्दा मिलेगा वह इस बातका सूचक होगा कि उनका देशबन्धुके प्रति कितना आदरभाव है, वे उस महान् देशभक्तका स्मारक बनानेके लिए कितने उत्सुक हैं, वे ऐसे स्मारककी उपयोगितामें कितना विश्वास करते हैं, तथा उन लोगोंपर उनका कितना विश्वास है जो इस कोषके विनियोगकर्त्ता होंगे। वे लोग ये हैं — मो० क० गांधी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, मौलाना शौकत अली, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, श्रीमती सरोजिनी देवी, श्रीयुत जमनालाल बजाज और पण्डित जवाहरलाल नेहरू। इन्हें अपने साथ और लोगोंको शामिल करनेका भी अधिकार रहेगा। पण्डित जवाहरलाल नेहरूने न्यासियोंकी तरफसे अवैतनिक मन्त्रीका और श्री जमनालाल बजाजने खजांचीका काम करना स्वीकार किया है। चन्दा या तो जमनालालजी बजाजके नाम ३९५, कालबादेवी रोड, बम्बईके पतेपर या पण्डित जवाहरलाल नेहरूके नाम १०७ हीवेट रोड, प्रयागके पतेपर भेजा जाना चाहिए। चन्दादाताओंकी सूची हर हफ्ते पत्रोंमें प्रकाशित की जायेगी।

मो० क० गांधी

मोतीलाल नेहरू	सरोजिनी नायडू	श्यामसुन्दर चक्रवर्ती
रवीन्द्रनाथ ठाकुर	नीलरतन सरकार	विधानचन्द्र राय
अबुल कलाम आजाद	जे० एम० सेनगुप्त	शरत् चन्द्र बोस
प्रफुल्लचन्द्र राय	सी० एफ० एन्ड्रयूज	नलिनी रंजन सरकार
जमनालाल बजाज	वल्लभभाई पटेल	सत्यानन्द बोस
	बी० एफ० भरूचा	

(अन्य लोगोंके हस्ताक्षर बादमें दिये जायेंगे)

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २३-७-१९२५

२५३. अपील : अखिल भारतीय देशबन्धु-स्मारकके लिए

१४८, रसा रोड
कलकत्ता
२२ जुलाई, १९२५

मैं समझता हूँ कि अखिल भारतीय देशबन्धु-स्मारकके लिए की जा रही अपीलसे अखिल बंगाल देशबन्धु कोषके लिए धनराशि इकट्ठा करनेमें किसी प्रकार की अड़चन पैदा नहीं होगी। अखिल भारतीय कोषको इकट्ठा करनेका काम काफी अरसेतक चलेगा। यह देखते हुए कि बंगाल अखिल बंगाल स्मारक कोषमें पर्याप्त पैसा दे चुका है, बंगालमें अखिल भारतीय स्मारक कोषके लिए पैसा इकट्ठा करनेका काम तीन महीने और यदि आवश्यकता हो तो और भी अधिक समयतक शुरू नहीं किया जाना चाहिए। बंगालका ध्यान अखिल बंगाल कोषकी ओरसे नहीं हटाया जाना चाहिए। प्रत्येक बंगाली और बंगालमें रहनेवाले प्रत्येक प्रवासीके लिए बंगाल

कोषको पूर्ण सफल बनाना आत्मसम्मानकी बात माननी चाहिए। अबतक पाँच लाखसे ऊपर रुपया इकट्ठा हो गया है। मैं यह निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि यदि कार्यकर्त्ताओंने तत्परता नहीं दिखाई तो शेष रकमको इकट्ठा करनेमें पहले पाँच लाखकी रकम इकट्ठा करनेसे भी अधिक समय लग जायेगा।

श्रीयुत मणिलाल कोठारीने अपने कार्योंसे यह दिखा दिया है कि कोष इकट्ठा करनेमें माहिर लोग इस दिशामें क्या-कुछ कर सकते हैं। जो लोग चन्दा दे चुके थे उनमें से कुछको दुगुना और चौगुना देनेपर राजी करनेमें उन्होंने जो सफलता प्राप्त की है, उसे देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ अन्य लोगोंको भी दूसरी बार एक अच्छी रकम देनेके लिए तैयार किया जा सकता है। पर इसके अतिरिक्त स्कूल और कालेज भी हैं। उनमें उस कामके लिए कोई कोशिश ही नहीं की गई है। क्या इन संस्थाओंके प्रमुख अथवा स्वयं विद्यार्थी, जैसा कि मुझे महीनेके शुरूमें कहा गया था, छुट्टियोंके बाद कालिजों आदिके खुलते ही इस दिशामें काम करेंगे? कलकत्तेके व्यस्त हिस्सोंके बंगाली व्यापारियों और व्यवसायियोंके बीच अभीतक प्रायः कुछ भी नहीं किया गया है। मुझे इनमें से कुछके पास ले जाया गया था और तब मेरी समझमें आया कि यदि पूरी नहीं तो कोषकी पर्याप्त राशि यहाँसे इकट्ठी की जा सकती है। फिर विभिन्न सभी जिलोंने और कुछ अपवादोंको छोड़कर दूसरे प्रान्तोंके बंगालियोंने भी अपना हिस्सा नहीं भेजा है। क्या समय रहते मैं इन सभी भाइयोंसे अपने हिस्सेकी रकम भेज देनेकी आशा रखूँ।

अब थोड़ी अपने बारेमें सफाई भी। मैंने बंगालसे इस महीनेके मध्यतक जाने की आशा की थी; पर अब महीना समाप्त होनेसे पहले जानेकी कोई आशा नहीं दिखती। जो सज्जन देशबन्धुमें श्रद्धा रखते हैं और जो स्वयं चन्दा देने और दूसरोंको चन्दा देनेके लिए राजी करनेमें समर्थ हैं, मैं उनसे शीघ्रातिशीघ्र कोषको इकट्ठा करनेमें मदद देनेकी प्रार्थना करता हूँ।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
फॉरवर्ड, २३-७-१९२५

२५४. पत्र : शौकत अलीको

कलकत्ता
२२ जुलाई, १९२५

मेरे प्यारे दोस्त और बिरादर,

आपके दोनों पत्र मिले। मुझे अभी खुद लिखनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। मेरे दाहिने हाथमें कोई भी काम करनेकी ताकत नही है। उसे आराम चाहिए। इसीलिए बोलकर लिखवा रहा हूँ। शुएबसे मेरी लम्बी बात हुई। उसका कहना है कि वह 'कॉमरेड' के कामके लायक है ही नहीं; और यह सम्पादकीय कामकी अयोग्यताके कारण नहीं बल्कि इसलिए कि उसके स्वभावका उससे मेल नही बैठता। वह कहता है कि बुरी तरह नाकामयाब होनेके लिए ही वहाँ जानेमें क्या लाभ है। चूंकि अब मैं शुएबको जान गया हूँ, मुझे उसकी बातमें काफी वजन मालूम होता है। अगर फौरन और ठीक-ठीक मदद नहीं मिलती तो मेरा यह निश्चित मत है कि मुहम्मद अलीको दोनों पत्रोंको या कमसे-कम एकको बन्द कर देना चाहिए। हार निश्चित ही दिखाई देनेपर अच्छा सिपाही चतुराईसे पीछे हट जाता है। वह पूरी-पूरी बरबादी और कत्लेआमका इन्तजार नहीं करता रहता। फिर भी इस मामलेमें आप उससे ज्यादा जानते हैं। आपके व्यावहारिक ज्ञानमें मेरा आज भी वैसा ही अटल विश्वास है जैसा कि पहले था। इसलिए आप तय करके मुहम्मद अलीको उसपर अमल करनेके लिए कहें। मैं अखबार पढ़े बिना जितना हो सकता है आप दोनोंकी हलचलोंकी खबर रखता हूँ। हमारे लिए बल्कि और भी ठीक कहूँ तो आपके लिए भी लड़ाई अभी शुरू ही हुई है। मैं 'आपके लिए' सिर्फ इसलिए कहता हूँ, कि मैं तो लोग जिन्हें मुश्किलें, खतरे और शिकस्त कहते है, उनका अबतक आदी हो चुका हूँ। मेरा दिल और मेरी दुआएँ आपके साथ हैं।

दस लाखकी रकम इकट्ठा होनेतक मुझे कलकत्ता ही रहना है। यह एक कठिन काम है। पर गरीबसे-गरीब बंगालीको भी पैसे और धेला देते हुए देखकर मुझे बड़ा अच्छा लगता है। आपको यह तो पता ही होगा कि मैं स्वराज्यवादियोंके लिए क्या कर रहा हूँ, और अभीतक कितना क्या कर चुका हूँ। मैं जो-कुछ मदद कर सकता हूँ, करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ और खुद मुझे तो यही लगा है कि कांग्रेसको पूरी तरह उन्हीके हाथमें रहना चाहिए। इसलिए हम लोग जो कौंसिलों-में जाना ठीक नहीं मानते वे अगर कांग्रेसमें रहते है तो अपने बलपर रहें। इस बार मैंने समझौता करनेकी बातको टाल दिया है[1]। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कोई भी निर्णय लेनेके लिए पूरी तरह स्वतन्त्र होगी; मेरे या किसी दूसरेके हस्त-क्षेपका सवाल नही उठता। मेरी हदतक मुझे इस बातका पक्का विश्वास होता जा

१. देखिए "भाषण : स्वराज्यदलकी बैठकमें", १७-७-१९२५ की पाद-टिप्पणी २।

रहा है कि अन्य सब-कुछ छिन्न-भिन्न हो जानेके बाद भी कताई और खद्दर तो बने ही रहेंगे। बड़ेसे-बड़े तूफानके बीच अडिग रहनेवाली अगर कोई चीज है तो वह है जोरदार और खतरेसे खाली रचनात्मक कार्यक्रम। मेरी समझमें शुएब मेरे मनमें क्या है, सो समझ गया है और शंकरलाल भी; वह अभी यहाँ था। बाकीका सब आप उनसे तथा 'यंग इंडिया' से जान सकते हैं; जो दिन-ब-दिन दोस्तोंके नाम मेरे हफ्तेवाराना खतकी शक्ल अख्त्यार करता जा रहा है।

हृदयसे आपका,

मौलाना शौकत अली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३३९) की फोटो-नकलसे।

२५५. पत्र : कृष्णदासको

२२ जुलाई, १९२५

प्रिय क्रिस्टोदास,

मैंने सतीश बाबूसे हरदयाल बाबूके[1] नाम सौ रुपये भेजनेको कहा है। मेरे दायें हाथमें कुछ तकलीफ है। इसलिए पत्र बोलकर लिखवा रहा हूँ।

तुम्हारे बारेमें मुझे सतीश बाबूसे मालूम होता रहता है। तुम्हें जल्दीसे-जल्दी तन्दुरुस्त और तगड़ा हो जाना चाहिए। सारी मानसिक चिन्ताएँ एक तरफ रख दो। उम्मीद है, तुम जल्दीसे-जल्दी कोमिल्ला जा रहे हो। जमनालालजी आतराई जा रहे हैं। चाँदपुर रवाना होनेसे पहले शायद वे कुछ दिन वहाँ रुकेंगे। इसलिए तुम तबीयत सुधार लेनेके ख्यालसे एकदम कोमिल्ला जा सको तो ठीक होगा।

हृदयसे तुम्हारा,

बी० कृष्णदास
द्वारा राजा माधवसिंह
चाँदपुर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३३८) की माइक्रोफिल्मसे।

१. हरदयाल नाग।

२५६. पत्र : निशीथनाथ कुण्डूको

१४८, रसा रोड
कलकत्ता
२२ जुलाई, १९२५

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। दीनाजपुर कमेटीकी स्थितिके बारेमें मैंने देशबन्धुसे चर्चा जरूर की थी। उन्होंने मुझे बताया था कि इस समय प्रान्तीय कमेटीके लिए आपकी-जैसी किसी जिला कमेटीको कोई मदद दे सकना कठिन है। कमेटीके पास पैसा नहीं है। ऐसी स्थितिमें मैं यही सलाह दे सकता हूँ कि जिन कार्यकर्त्ताओंका खादीमें पूरा विश्वास है उन्हें चाहिए कि वे खादी प्रतिष्ठानके साथ पत्रव्यवहार करके उसके अन्तर्गत कार्य करें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ८०२१) की फोटो-नकलसे।

२५७. कताई-सदस्यता

गत १७ जुलाईको स्वराज्यवादियों और अन्य लोगोंकी एक अनौपचारिक सभा हुई।[1] उपस्थित जनोंमें सभी विचारोंके लोग थे। उन सभीको और मुझे भी यह जँचा कि मताधिकारमें परिवर्तन करना आवश्यक है और कांग्रेसके मताधिकारमें सूत-कताई विकल्पके रूपमें स्थायी बना दी जाये, केवल प्रयोगके रूपमें न रखी जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि मजदूरोंका कांग्रेसमें सीधे प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार स्थायी रूपसे स्वीकृत कर लिया गया। सभी लोगोंकी यह राय थी कि मताधिकारमें दूसरोंका कता सूत लेना बन्द कर दिया जाना चाहिए इससे लोगोंमें दम्भ उपजा है और बेईमानी भी पैदा हुई है। खुद-काता सूत या पैसा कितना दिया जाये यह प्रश्न अभी तय नहीं किया गया है। इसपर भिन्न-भिन्न रायें थीं। उपस्थित जनोंका बहुत बड़ा बहुमत इस बातके पक्षमें था कि खादी पहनना मताधिकारका स्थायी अंग मान लिया जाये। यह मेरी रायमें एक निश्चित लाभ हुआ है। तीसरी बात जो सर्वसम्मतिसे तय हुई यह है कि एक अखिल भारतीय चरखा संघ कायम किया जाये और वह कांग्रेसका एक अभिन्न अंग रहे। उसे इस बातका पूरा अधिकार दे दिया जाये कि वह कांग्रेसके

१. देखिए "भाषण : स्वराज्यदलकी बैठकमें", १७-७-१९२५।

कताईके कामका संचालन करे और कांग्रेसके कारकुनके तौरपर कताई-सदस्यतामें भेजे जानेवाले सूतको प्राप्त करे और उसकी जाँच करे। यदि ये सिफारिशें मंजूर हो गईं तो इनका फल यह होगा कि स्वराज्यवादी कांग्रेसके सूत्रधार बन जायेंगे और अखिल भारतीय चरखा संघ स्वराज्य दलका स्थान ग्रहण कर लेगा।

इन प्रस्तावोंपर अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी १ अक्तूबरको होनेवाली बैठकमें विचार किया जायेगा। इस बैठकमें सदस्योंकी आजादीपर किसी किस्मकी कैद न रहेगी। यहाँतक कि वे लोग भी, जो इस अनौपचारिक बैठकमें शरीक थे, अपनी वहाँ दी हुई रायसे बँधे न होंगे। यदि आगे विचार करनेपर उनकी राय बदल जाये तो वे इन प्रस्तावोंके, जो उस बैठकमें रखे जायेंगे खिलाफ राय देनेके लिए आजाद होंगे। अ० भा० कांग्रेस कमेटीके सदस्य उनमें अपनी इच्छाके अनुसार संशोधन पेश करने और आलोचना करनेके लिए भी स्वतन्त्र रहेंगे। हर शख्स एक कांग्रेसीकी हैसियतसे, अधिक ठीक कहें तो अपनेको एक हिन्दुस्तानी समझकर बिना किसी दल या पक्षके दायित्वका लिहाज किये अपनी राय देगा। पाठक पं० मोतीलालजीके नाम लिखे गये मेरे पत्रसे[1] देखेंगे कि मैंने स्वराज्यदलको अपना कर्त्तव्य समझकर पिछले सालके करारके दायित्वसे मुक्त कर दिया है। अ० भा० कांग्रेस कमेटीमें उपस्थित किये जानेवाले प्रस्तावोंपर गुण-दोषकी दृष्टिसे ही विचार किया जाना चाहिए। मैं नहीं चाहता कि कोई भी सदस्य, फिर वह स्वराज्यवादी हो या अपरिवर्तनवादी, मेरी मनःतुष्टिका खयाल करके अपनी राय दे। हम एक प्रजामत्तात्मक संविधान बनानेके लिए प्रयत्नशील हैं। हर व्यक्तिको चाहिए कि वह अपनी अन्तरात्माके अनुकूल मत व्यक्त करे, किसी व्यक्ति-विशेषकी बात न सोचे, फिर चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो। मेरे नजदीक न कोई परिवर्तनवादी है और न अपरिवर्तनवादी। वे लोग जो कि कौंसिलोंमें जानेके हामी हैं तथा वे लोग जो कि उसके खिलाफ हैं, दोनों समान रूपसे देश-सेवा करते हैं; बशर्ते उनका कुछ करना या न करना देशप्रेमसे प्रेरित हो। बेशक, मैं तो उन लोगोंसे, जिन्हें कौंसिलोंके प्रवेशमें शुद्ध रूपसे अन्तःकरणकी आपत्ति नहीं है, यह भी कहूँगा कि वे स्वराज्यवादीदलमें तुरन्त शरीक हो जायें और उसे मजबूत बनायें।

मैं आशा करता हूँ कि अ० भा० कांग्रेस कमेटीका हर सदस्य उसकी अगली बैठकमें उपस्थित होगा और कार्रवाईमें शरीक होकर अपनी राय देगा। जहाँतक मेरी बात है, मैं यह नहीं चाहता कि यह मामला बहुमतसे तय किया जाये। जो-कुछ तय किया जाये वह लगभग सर्वसम्मतिसे तय किया जाना चाहिए।

इस प्रस्तावका हेतु कांग्रेसके संविधानमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करना है। मामूली तौरपर अ० भा० कांग्रेस कमेटीको संविधानमें दखल देनेकी जरूरत नहीं होती। परन्तु ऐसा समय भी आता है जब ऐसा न करना संस्थाके प्रति गैर-वफादारीका काम हो जाता है। यदि देशका भारी लोकमत उसमें परिवर्तन करना चाहता है और उसमें देर-दारकी गुंजाइश नहीं है तो अ० भा० कांग्रेस कमेटीके लिए निहायत मुनासिब होगा कि वह उसमें परिवर्तन कर दे और उस परिवर्तनके परिणामोंको एवं कांग्रेस द्वारा की

१. देखिए "पत्र : मोतीलाल नेहरूको", १९-७-१९२५।

गई अपने कार्यकी निन्दाको अंगीकार करे। जब कोई कारकुन अपने मालिकके हितका काम करता है तब उसे हमेशा इस बातका हक होता है कि वह स्वयं जोखिममें पड़कर भी मालिककी इच्छाके विषयमें अनुमान लगाये। आज जो अवस्था है उसमें मैं यह बेखटके कहता हूँ कि यदि अ० भा० कांग्रेस कमेटीके सदस्योंका एक बड़ा बहुमत पूर्वोक्त परिवर्तन करना चाहता है तो उसके लिए राष्ट्रका तीन महीनेका कीमती वक्त हिचकिचाहटमें व्यर्थ खोना अनुचित होगा। कांग्रेसके कानपुर अधिवेशनको, जिस मामलेका फैसला अ० भा० कांग्रेस कमेटी ही भली-भाँति कर सकती है, उसकी लम्बी चर्चासे मुक्त रखा जाना चाहिए। उसका समय दूसरे बड़े-बड़े प्रश्न तय करनेके लिए खाली रखा जाना चाहिए।

और यह बात भी ध्यानमें रहे कि मेरी पूर्वोक्त योजनाके अनुसार कांग्रेस प्रधानतः उस अर्थमें राजनैतिक संस्था हो जायेगी, जिस अर्थमें राजनैतिक शब्द मामूली तौरपर प्रचलित है। स्वराज्यवादी उसके राजनैतिक होनेके बजाय खुद कांग्रेसके बन जायेंगे और यह उचित भी है। यही वह छोटेसे-छोटा जवाब है, जो अ० भा० कांग्रेस कमेटी लॉर्ड बर्कनहेडको दे सकती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-७-१९२५

२५८. दमनका फल

एक प्रतिष्ठित अमरीकी सज्जनने मुझे डाक्टर मिलरकी 'रेसेज, नेशन्स ऐंड क्लासेज' नामक पुस्तकसे निम्न ज्ञानवर्धक अंश भेजा है:

> किसी भी दलित समूहमें अनेक परस्पर-द्वेषी गुट बन जाते हैं। आयरलैंडके लोग इसके लिए बदनाम हैं। सभी दलित राष्ट्रोंमें मतभेदोंका पाया जाना इसी बातका उदाहरण प्रस्तुत करता है। वहाँ अलग-अलग गुट स्वतन्त्राताके लिए अपने अलग संघर्षमें शक्ति केन्द्रित करते हैं और संघर्षके लिए अपने खास तरीके चुनते हैं। और जब ये गुट यह देखते हैं कि एक संयुक्त उद्देश्य पूरा करनेके लिए उन्हें साथ-साथ काम करनेकी जरूरत है तो तुरन्त ध्यान मतभेदोंकी ओर खींचा जाता है; भले ही ये मतभेद बहुत छोटे-छोटे ही क्यों न हों, फिर भी इन्हें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। स्वतन्त्र होनेपर व्यक्तियों और दलोंमें पाई जानेवाली मानसिक विकृतिका यह विशेष रूप धीरे-धीरे लुप्त हो जायेगा; लेकिन यह बात स्वीकार की जानी चाहिए कि सीमित स्वतन्त्रताका अनिवार्य परिणाम यही होता है।

फिर वे मित्र पूछते हैं, 'इससे क्या भारतकी स्थितिपर प्रकाश नहीं पड़ता?' इससे सचमुच भारतकी स्थितिपर प्रकाश पड़ता है और यही कारण है कि डाक्टर

बेसेंट जैसे लोग साम्प्रदायिक मतभेदोंके बावजूद स्वतन्त्रता प्राप्त करनेमें लगे हैं। इस तरह दोनों व्यक्तियोंके लिए अवकाश है जो मतभेदोके होनेपर भी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं उनके लिए भी और जो स्वतन्त्रताका मार्ग प्रशस्त करनेके लिए मतभेदोंको मिटाना चाहते हैं, उनके लिए भी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-७-१९२५

२५९. टिप्पणियाँ

"अलवर हत्याकाण्ड"

लोग जिसे 'अलवर हत्याकांड' कहते हैं उसके सम्बन्धमें कलकत्तेकी कार्यसमिति-में श्री जमनालाल बजाजने एक प्रस्ताव उपस्थित किया था कि एक जाँच समिति नियत की जाये। बरसोंसे कांग्रेसकी यह परम्परा चली आई है कि वह रियासतोंके भीतरी मामलोंमें हस्तक्षेप न करे। कार्य समितिके सदस्योंने अनुभव किया कि यह परम्परा अच्छी है और इसको तोड़ना नादानी होगी। तब श्री जमनालालजीने इसपर जोर न दिया। फिर भी मैंने उनसे यह कहा था कि मैं 'यंग इंडिया'में इस प्रश्नकी चर्चा करूँगा। और अपनी इस निजी रायके कारण बताऊँगा कि क्यों कांग्रेसको रियासतोंके भीतरी मामलोंमें दखल न देना चाहिए। यदि कोई चाहे तो इसे समय-सावकता या चतुराई भी मान सकता है। इसमें ये दोनों बातें हैं ही; शायद इससे कुछ अधिक भी है। यह बात साफ कुबूल कर लेनी होगी कि खुद ब्रिटिश इलाकेमें कांग्रेसको अपने आदेशोंका पालन करवानेका जितना अधिकार है उतना रियासतोंमें उसके पास नहीं है। इसलिए दूरदर्शिता कहती है कि जहाँ कार्य यदि नादानी नहीं तो व्यर्थका प्रयत्न हो, वहाँ अकर्म ही श्रेष्ठ होता है। पर यदि अकर्म दूरदर्शितापूर्ण हो तो वह लाभकारी भी है। कांग्रेस रियासतोंको दिक करना नहीं चाहती। वह तो उनकी मदद करना चाहती है। वह उनको नष्ट नहीं करना चाहती, उनमें सुधार करना चाहती है और कांग्रेस अपनी इस सदिच्छाका परिचय कुछ भी हस्तक्षेप न करके देती है।

परन्तु कांग्रेसके अलग रहनेका यह अर्थ नहीं है कि कांग्रेसजन अपनी तरफसे कुछ न करें। जिनका रियासतोंसे कुछ भी सम्बन्ध है वे अवश्य ही अपने प्रभावका उपयोग करेंगे। स्थानीय समितियाँ दुःखी लोगोंकी सहायता और निर्देशन कर सकती हैं, जहाँतक राजसत्तासे उनका संघर्ष न आये। कांग्रेस वहाँ किसी कांग्रेसीके कार्योंपर अंकुश भी नहीं रखती और न वह उन्हें नियमित ही करती है। क्योंकि जब वे कोई काम वहाँ करते हैं तब कांग्रेसीकी हैसियतसे नहीं करते हैं अतः उन्हें कांग्रेसको बीचमें नहीं लाना चाहिए।

तब क्या रियासतोंकी प्रजा कांग्रेससे जो कि एक राष्ट्रीय संस्था होनेका दावा करती है, किसी तरहकी सहायताकी उम्मीद न करे? मुझे खेद है कि इसका उत्तर

अंशतः 'नहीं' होगा। वे किसी तरहकी प्रत्यक्ष सहायताकी आशा न करें। हां, अप्रत्यक्ष सहायता उन्हें जरूर मिलती है। क्योंकि जिस दर्जेतक कांग्रेस कार्यदक्ष और शक्तिशाली होती चलती है उसी दर्जेतक रियासतोंकी प्रजाकी दशा अच्छी होती जाती है। कांग्रेसका नैतिक प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे देशके कोने-कोनेमें हुए बिना नहीं रह सकता। ऐसी अवस्थामें मैं आशा करता हूँ कि अलवरके दुःखी लोग इस बातको समझ लेंगे कि यदि कांग्रेस उन्हें कोई सीधी सहायता नहीं पहुँचा सकती तो इसका कारण इच्छाका अभाव नहीं बल्कि क्षमता और अवसरका अभाव है।

आंग्ल भारतीयोंके लिए

डाक्टर मोरेनोने मुझे नीचे लिखे प्रश्न उत्तरके लिए दिये हैं:

> १. आंग्ल भारतीयोंके वर्तमान कष्ट बहुत शोचनीय हैं और ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, स्थिति ज्यादा खराब होती जा रही है। जो लोग बेकार हैं वे दान नहीं चाहते, काम चाहते हैं। मेरी समझमें औद्योगिक काम-धन्धे उन्हें ज्यादा मुआफिक होंगे। आप क्या उपाय बताते हैं?

खुशीकी बात है कि ये बेकार लोग दान नहीं चाहते। पर यह कहनेके लिए मैं माफी चाहूँगा कि बेकार लोगोंके लिए हाथ बुनाई एक औद्योगिक धन्धा हो सकता है। यों मैं यह कुबूल करता हूँ कि आंग्ल भारतीय भाई अपनी मौजूदा तालीमके कारण बुनाईके योग्य नहीं रहे हैं; जिनमें असाधारण दृढ़ संकल्प हो उनकी बात अलग है। अनुमानित बातपर सलाह देना मुश्किल है। उत्साही और दानवीर आंग्ल भारतीय भाइयोंका काम है कि वे बेकार लोगोंकी गणना करवायें और फिर इस बातपर विचार करें कि उनके लिए कौनसा धन्धा मुआफिक होगा और तब उसकी तालीम उन्हें दें।

> २. आंग्ल भारतीय जैसी जातिको कताई और चरखेके सम्बन्धमें आपकी विचार प्रणालीके अनुकूल बनानेके लिए काफी लम्बे अर्सेतक बहुत सक्रिय प्रचार कार्यकी आवश्यकता है। पर यदि ये लोग यह दिखा सकें कि ये आपके तैयार किये कार्यक्रमके विरुद्ध नहीं हैं तो क्या आप इतनेसे संतुष्ट हो सकेंगे?

हाँ, मैं इस बातसे सहमत हूँ कि एक व्रतके रूपमें भी कताईको अपनानेमें आंग्ल भारतीय भाइयोंके समुदायको कुछ समय लग सकता है; परन्तु खादी पहननेमें तो देरी करनेका कोई कारण ही नहीं है। खादीकी बनी जाकेट उतना ही काम देती है जितना कि विदेशी कपड़ेकी बनी जाकेट; और बिछौनेकी चादरें तो मिलकी मामूली चादरोंसे कहीं मुलायम लगती हैं। जनताके साथ आत्मीय भावका अनुभव करनेपर ही आंग्ल भारतीय भाइयोंको खद्दर पहननेकी इच्छा होगी। मेरी रायमें राष्ट्रीयताकी सच्ची भावनाकी पहली सीढ़ी यही है।

> ३. आंग्ल भारतीय जाति भारतकी एक अल्पसंख्यक जाति है। आपके सब दलोंको सम्मिलित करनेके कार्यक्रममें उसका क्या स्थान होगा?

जो व्यवहार दूसरी अल्पसंख्यक जातियोंके साथ किया जायेगा ठीक वही आंग्ल भारतीय जातिके साथ किया जायेगा।

४. भविष्यमें आप भारतके लिए जो संयुक्त कांग्रेस बनाना चाहते हैं उसमें आपकी कताई-सदस्यता और अबतक आंग्ल भारतीयोंको कांग्रेसमें शामिल न किये जानेकी बातको ध्यानमें रखते हुए आप आंग्ल भारतीयोंके प्रतिनिधियों-को किस आधारपर चुनेंगे?

हाल ही में जो परिवर्तन नजवीज हुआ है उसके अनुसार सूतकी बात रद्द करके रुपया लिया जायेगा। यदि अबतक आंग्ल भारतीय भाई कांग्रेसमें शरीक नहीं हुए हैं तो इसका बड़ा कारण उनकी अनिच्छा ही है। यदि यह कहा जाये कि कांग्रेसको उनकी सहायता प्राप्त करनेके लिए खास तौरपर उद्योग करना चाहिए था तो मैं इतना ही कह सकता हूँ जो लोग अपनेको विदेशी और हिन्दुस्तानियोंसे श्रेष्ठ समझते हों, जैसा कि अबतक आंग्ल भारतीय भाई करते आये हैं, उनके बारेमें ऐसा उद्योग करना कठिन है।

५. आप जानते ही हैं कि हमारी आंग्ल भारतीय जातिमें इन दिनों दो किस्मकी प्रवृत्तियाँ हैं—कुछ लोग तो यूरोपीयोंकी ओर झुक रहे हैं और कुछ हिन्दुस्तानियोंकी ओर। आप सारी आंग्ल भारतीय जातिको (अ) अपने लाभके लिए तथा (ब) भारतके लाभके लिए क्या सलाह देते हैं?

मुझे इस दुःखदायी प्रवृत्तिका पता है। मेरी रायमें तो आंग्ल भारतीय भाइयोंके लिए गौरवपूर्ण काम यही हो सकता है कि वे अपना भाग्य उन लोगोंके साथ जोड़ लें जिनके बीच वे पैदा हुए हैं और जिनके बीच उन्हें रहना और जीवन बिताना है। अंग्रेजोंका पुछल्ला बनकर रहनेका उनका निरर्थक प्रयत्न उनको स्थायी तथा उन्नतिशील जीवनमार्ग अपनानेसे रोकता है। यूरोपीय बननेकी आकांक्षा अस्वाभाविक है। अपने भारतीय माता या पिताकी तरफ तथा भारतीय वातावरणकी तरफ मुड़ना उनके लिए अत्यन्त स्वाभाविक और गौरवपूर्ण है। यह उनके लिए तथा उनकी मातृभूमि, भारतवर्ष, दोनोंके लिए हर मानीमें लाभदायक होगा।

अनावश्यक अपव्यय

राजशाहीकी महिला सभा एक अत्यन्त सुन्दर आयोजन था। यूनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूटकी बहनोंकी सभाकी तरह वहाँ भी रुपयों और गहनोंकी वर्षा हो गई थी। सच तो यह है कि बहनोंने सभी जगह ऐसा ही किया है। पर राजशाहीमें तो उनकी वर्षा होती ही चली गई। एक बहुत बड़ी कताई-प्रतियोगिताका भी आयोजन किया गया था जिसमें कोई दो सौसे ज्यादा महिलाओंने भाग लिया। उनमें एक महिला बारीक सूत कातनेमें बहुत निपुण थी। उनका काता हुआ सूत अपर्णा देवीके, जो हालमें सर्वप्रथम आई हैं, सूतसे भी बढ़िया था। वे स्वयं बहुत महीन सूतसे बुनी हुई एक साड़ी पहने थीं। उन्होंने बताया कि यह सूत उन्होंने स्वयं काता था। पर इस बहनका चरखा भी दूसरे सभी लोगोंकी तरह बहुत आवाज करता था। वे सबके सब खिलौने ही थे। जिनपर पर्याप्त सूत काता ही नहीं जा सकता था। ये चरखे बाबू तारकनाथके बनाये हुए थे। वे इनके प्रति बहुत उत्साही हैं। पर उनका

उत्साह अन्धा है। वे यन्त्रोंकी कुछ थोड़ी जानकारी जरूर रखते हैं पर चरखोंके बारेमें कुछ नहीं जानते। मुझे लगता है कि वे कताईके सिद्धान्तोंके बारेमें भी कुछ नहीं जानते। मैं उनसे यही प्रार्थना करूँगा कि वे अपने चरखे राजशाहीकी सुसंस्कृत और देशभक्त बहनोंपर न लादें। यदि वे लाभकी दृष्टिसे ये चरखे बनाते हैं तो वे इन चरखोंको वापस लेकर ठीक चरखे बनायें। यदि उन्हें बनानेका हेतु सेवा है तो इन निकम्मे चरखोंको तोड़ दें, चरखोंका वैज्ञानिक अध्ययन करें और जबतक सर्वोत्तम चरखेको अच्छी तरह देख न लें तबतक दूसरा चरखा न बनायें। मैंने बंगालमें सिर्फ तीन ऐसे नमूनेके चरखे देखे हैं, जिन्हें अच्छा माना जा सकता है। इन तीनोंमें से खादी प्रतिष्ठानका चरखा मुझे सबसे अच्छा लगा है। दूसरा यह है जिसे दुआ डण्डोके कार्यकर्ता काममें ला रहे हैं। उसकी विशेषता यह है कि तकुआ तिरछा लगाया जाता है। तीसरा बंगालका पुराने ढंगका चरखा है जिसकी पाटी छोटी, चक्र भारी और तकुआ लम्बा है। अच्छे चरखेकी पहचान है (१) वह शोर न करे और, (२) साधारण कातनेवाला भी उससे दस अंकका कमसे-कम चार सौ गज सूत प्रति घंटा कात सके। मुझे मालूम हुआ है कि दूसरे दोनों नमूनोंके चरखोंसे प्रति घंटा दस अंकका ६०० गज सूत काता जा सकता है। खादी प्रतिष्ठानके चरखेपर तो मेरे सामने ८५० गज सूत प्रति घंटा काता गया। इस चरखेपर प्रतिष्ठानके सभी कार्यकर्त्ता ४०० गज प्रति घंटा कात लेते हैं। चरखे बनानेवालोंको यह मालूम होना चाहिए कि ऐसे शोर मचानेवाले चरखे, जिनसे औसत सूत भी नहीं काता जा सकता, बेचकर वे खादी-प्रचारके कार्यका अहित ही करेंगे। मैं कार्यकर्त्ताओंको चेतावनी देना चाहता हूँ कि वे पेशेवर या स्वेच्छया कताई करनेवालोंको ऐसे घटिया किस्मके चरखे न दें। उन्हे मालूम है कि मेरे द्वारा बताये गये स्तरके चरखे उन्हें आसानीसे मिल सकते हैं। यदि बंगालमें किसीके पास कोई अच्छा चरखा है तो वह उसे मेरे पास भेज दें। मैं वादा करता हूँ कि उसकी अविलम्ब जाँच की जायेगी और निर्णय तुरन्त बता दिया जायेगा। जनसाधारणके लिए कताई जिन्दगी और मौतका सवाल है। जो इसके प्रचार-कार्यमें लगे है वे इस बातका ध्यान रखें कि थोड़ी-सी जानकारीसे जबर्दस्त हानि बचाई जा सकती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-७-१९२५

२६०. भाषण: मारवाड़ी अग्रवाल सम्मेलन, कलकत्तामें

[२४ जुलाई, १९२५ से पूर्व]

सभापति महोदय, भाइयो और बहनो,

आपने मुझको यहाँ आनेका निमन्त्रण दिया और अब आप मुझसे कुछ सुनना चाहते हैं। इन दोनों बातोंके लिए मैं एहसान मानता हूँ। इस पत्रकमें दिये गये आजके प्रस्तावोंका मैंने निरीक्षण कर लिया है। इसमें विधवा विवाहका प्रश्न उठाया गया है। और मेरा हवाला दिया गया है। इसपर मैं यही उचित समझता हूँ कि आपसे कुछ न कहूँ। मैं इसके बारेमें 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' में कह चुका हूँ। जो भाई मेरे ख्यालातोंको समझना चाहते हैं तो मैं उनसे यह निवेदन करूँगा कि वे वहाँ जो कहा गया है उसे पढ़ लें। इससे आपका समय भी बच जायेगा और आपका समाधान हो जायेगा।

सिद्धान्तकी दृष्टिसे हिन्दू समाजके अनेक सुधारोंके विषयमें मैं दो बातें आपसे कह देना चाहता हूँ। आपमें से कितने ही भाइयोंके साथ मेरा हार्दिक परिचय है। विधवा विवाहके बारेमें जो-कुछ मेरा मत है उसे मैंने 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' में प्रकट कर दिया है; पर यहाँपर इतना अवश्य कह देना चाहता हूँ कि मैं एक सुधारक होते हुए भी जिस बातको स्वीकार कर लेता हूँ वह धर्मके विरुद्ध नहीं होती।

मैं जानता हूँ कि मेरी सुधारवृत्ति पश्चिमसे प्रभावित नहीं है। कुछ लोग मुझे पाश्चात्य सभ्यताका प्रचारक कहकर मेरी टीका करते हैं। अपने ऐसे टीकाकारोंको मैं नादान समझता हूँ। उन्होंने न तो मेरे विचारोंको समझा है और न मेरे साथ रहकर मेरे जीवनके रहस्यको ही। जिस बातको मैं स्वीकार कर लेता हूँ — सत्याग्रही होनेके कारण मैं उसपर बराबर दृढ़ रहता हूँ। यहाँ सत्याग्रहका अर्थ प्रचलित सत्याग्रह नहीं है। वास्तवमें सच्चे अर्थमें सत्यका ही आग्रह करना सत्याग्रह है। जिस पाश्चात्य सिद्धान्तका मैं प्रचार करना चाहता हूँ उसे मैं स्पष्ट कह देता हूँ। जैसे आयुर्वेदके विषयमें मैंने कहा था कि पाश्चात्य देशोंसे आरोग्य प्राप्त करनेके विषयमें जितना हमें सीखना है, सिखाना उससे बहुत कम है।

मैं अपनेको सनातनी हिन्दू समझता हूँ। जब विधर्मियों द्वारा इस धर्मपर चोट की जाती है तब हमें आन्तरिक क्लेश होता है। किन्तु मैंने हमेशा कहा है कि मैं वर्णाश्रम धर्मको मानता हूँ; परन्तु इसमें जो जातीय भेदभाव आ गये हैं उन्हें मैं मिटाना चाहता हूँ। मैं हिन्दू धर्मको अहिंसासे ओत-प्रोत धर्म समझता हूँ।

इस समय जातीय बहिष्कारके हथियारको आप अपने म्यानमें रखें। यह समय जातीय बहिष्कारका नहीं है। एक आदमीने अपनी अबोध विधवा बालिकाका विवाह कर दिया, इसपर आप उसका बहिष्कार कर देते हैं। परन्तु एक आदमी व्यभिचारी और मांसाहारी है; उसका आप बहिष्कार नहीं करते। इस प्रकारके जातीय बहिष्कृतों-

की एक पृथक् जाति बन जायेगी और आपसमें ही द्वेष फैलेगा। मैं १८८७ में विलायत गया था। जब वापस आया तब — मेरी जातिमें भी कई फिर्के हैं — उनमें से कुछने तो मुझे मिला लिया और कुछने मेरा बहिष्कार कर दिया। फिर भी मेरा जातिवालोंसे कोई विरोध नहीं है। मैं अपना काम अहिंसात्मक नीतिसे लेता हूँ। मैं उनको कष्ट नहीं देना चाहता। मैं अन्त्यजोंके साथ खा लेता हूँ। मैं मुसलमानोंके साथ भी खा लेता हूँ। इसपर मेरी जातिके कुछ लोगोंने विरोध न किया। जातिवाले भोजमें मुझे नहीं बुलाते; परन्तु कुटुम्बियोंको बुलाते हैं। हम सुधारककी निन्दा न करें। उसका बहिष्कार न करें। यदि आप हिन्दू संगठन करते हैं तो छोटी बातोंको मोटी न मानें और मोटीको छोटी न मानें। आज जब जातिके अन्दर वर्णसंकर हो गया है और व्यभिचार व्यापक हो गया है, और हम अपनी लज्जाकी रक्षा नहीं कर पाते तो फिर बहिष्कार किसका करें। इससे बेहतर तो यही है कि हम अपना ही बहिष्कार करें, यही आत्मशुद्धि है। हाँ, मैं आपसे यह भी कहना चाहता हूँ कि बहिष्कारके शस्त्रका दुरुपयोग न करें।

मुझे यह देखकर परम सन्तोष है कि हिन्दुओंमें मारवाड़ी समाज धनसम्पन्न समाज है। मैं यह जानता हूँ कि यह समाज धन पैदा करना जानता है और धन पैदा करता भी है। मुझसे यह बात भी छिपी नहीं है कि मारवाड़ी कौम उदारतामें भी काफी बढ़ी-चढ़ी है। मारवाड़ी जाति जिस प्रकार धन कमाना जानती है वैसे ही वह उसे खर्च भी करती है। यह बात मैं खूब जानता हूँ। पर इतना होते हुए भी इस मारवाड़ी कौममें एक बातकी कमी है; और वह कमी बहुत बड़ी है। वह है धनका अपव्यय। मारवाड़ी धन भी कमाते हैं और उसे सत्कार्यमें लगाते भी हैं। उनकी इच्छा रहती है कि उनके हाथों कोई धर्मकार्य हो। पर तो भी वे साधारणतः अपने धनको ठीक तौरपर खर्च नहीं करते। इसलिए मेरा इस मारवाड़ी कौमसे अनुरोध है कि वह अपने धनका सदुपयोग करनेकी इच्छासे उसका व्यय करते समय कुछ बातोंको ध्यानमें रखा करे। धनका व्यय करनेके पहले विचार बहुत ही आवश्यक होता है। आप धनके व्ययका विचार मनमें लाते समय उसके सदुपयोगपर गहराईसे विचार कर लिया करें। आप दानी और उदार हैं केवल इसीलिए आपको विचारसे बहुत अधिक काम लेना चाहिए। आप लोगोंको मालूम होगा कि अमरीकामें आप लोगोंमें से भी बड़े-बड़े लखपती और करोड़पति मौजूद हैं। वहाँ कारनेगी नामका एक करोड़पति धनी पुरुष रहता था; मुझे मालूम नहीं कि अबतक वह जीवित है या नहीं — उसका यह स्वभाव था कि वह सभी काम अपने ही विचारोंकी धुनमें आकर करता था; वह दूसरा क्या सोचते हैं इसपर कोई ध्यान नहीं देता था। एक बार उसके मनमें यह समाई कि रुपयेका कुछ सदुपयोग करना चाहिए। बस, वह अपना धन स्काटलैंड भेजने लगा — पुस्तकालयोंके लिए। पर वहाँके अध्यापकोंने कारनेगीको पत्र लिखा कि अपने द्रव्य भेजना बन्द करके स्काटलैंडकी रक्षा कीजिए। इसलिए हमें चाहिए कि हम यह बात पहले ध्यानमें रखें कि धन देना किस प्रकार चाहिए। हमेशा कोई भी कार्य भलीभाँति सोचकर करना चाहिए। आपको धन देते समय विवेक और विचारसे

काम लेना बहुत अधिक आवश्यक है। क्योंकि आपको यह समझ लेना चाहिए कि यदि विवेक और विचारसे काम लिये बिना धन खर्च किया जाये तो उसके सदुपयोगकी सम्भावना बहुत कम हो जाती है। इसलिए आप जैसी उदार कौमके लिए विचार और विवेककी बड़ी जरूरत है।

पारसी कौमपर तो मैं मुग्ध ही हूँ। मैं आज यहाँ कहना चाहता हूँ कि उदारतामें प्रथम पद पारसियोंका और दूसरा यहूदियोंका है। मुझे इससे बड़ा संकोच होता है कि तीसरा हिन्दुओंमें मारवाड़ियोंका है। पारसी जाति कितनी अधिक उदार है और कमसे-कम धनका व्यय करते समय वह किस विचार और विवेकसे काम लेती है यह मैंने स्वयं देखा है। इसलिए यहाँपर अधिक न कहकर केवल इतना ही अनुरोध करता हूँ कि आप (मारवाड़ी) भाई यह बता दें कि हम हिन्दुओंमें भी एक जाति ऐसी है जो धन कमाने और उसका व्यय करनेमें एक ही है।

गोरक्षाके सम्बन्धमें मेरे विचार सबपर विदित हैं। मैंने बार-बार कह दिया है कि यह कार्य बहुत अच्छा है। पर मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इस कामकी पद्धतिमें सुधारकी आवश्यकता है। मैंने स्वयं इस काममें हाथ डाला है। पर मुझे सहायता नहीं मिली है। मेरा अनुभव भी उस दिशामें अच्छा है। मैंने कोई ३० वर्षों तक इसे सोचा-समझा है। कुछ तपश्चर्या भी कर ली है। मुझे सहायता मिलनेकी बात तो ऐसी है कि मैंने एक मारवाड़ी सज्जनसे गोरक्षा-कोषका खजानची बननेका अनुरोध किया और उन्होंने इनकार कर दिया; यद्यपि उनको कोषाध्यक्ष बनानेमें मेरा उद्देश्य उनसे रुपयेकी अत्यधिक सहायता लेना नहीं था, पर इतना सब होते हुए भी मैं जोर देकर यह बात कह देना चाहता हूँ कि अगर मारवाड़ी कौम गोरक्षा नहीं कर सकती अथवा वह गायोंको नहीं बचा सकती तो मैं नहीं जानता कि दूसरी कौन-सी जाति है जो ऐसा कर सकती है। दूसरे शब्दोंमें हिन्दुओंमें अगर मारवाड़ी गोरक्षा नहीं कर सकते तो कोई नहीं कर सकता। पर गोरक्षामें अनेक बातोंकी जरूरत है। इसमें जितने द्रव्यकी आवश्यकता है उतनी ही बुद्धि और समयकी भी है। इसलिए इस प्रश्नपर विचार करते समय इन तीनों बातोंपर और इनसे सम्बन्धित अन्यान्य बातोंपर भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। तभी हमें अपने इस काममें सन्तोषजनक सफलता प्राप्त हो सकती है।

अन्तमें इतने धैर्य और शान्तिपूर्वक आपने मेरी बातें सुनीं इसके लिए मैं आपका एहसान मानता हूँ और ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह आप लोगोंका कल्याण ही कल्याण करे।

आज, २४-७-१९२५

२६१. पत्र : मेडेलीन स्लेडको[1]

१४८, रसा रोड
कलकत्ता
२४ जुलाई, १९२५

प्रिय बहन,

मुझे आपका पत्र[2] पाकर खुशी हुई। उसका मुझपर गहरा असर हुआ। आपने जो ऊनके नमूने भेजे हैं, वे बढ़िया हैं।

आप जब आना चाहें खुशीसे आ सकती हैं। अगर मुझे मालूम हो जाये कि आप किस जहाजसे आ रही हैं, तो जहाजपर आपको लेने कोई आ जायेगा और साबरमती आनेवाली गाड़ीतक आपको छोड़ जायेगा। लेकिन इतना याद रखिए कि आश्रम-जीवन आरामका जीवन नहीं है। वह कठोर है। हरएक आश्रमवासी शरीरश्रम करता है। इस देशकी जलवायुका भी विचार कर लेना चाहिए। ये बातें मैं आपको डरानेके लिए नहीं, परन्तु सिर्फ चेतावनीके तौरपर लिख रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

चूंकि मेरे दायें हाथको आरामकी जरूरत है, इसलिए पत्र बोलकर लिखा रहा हूँ।

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ५१८२) से।
सौजन्य : मीराबहन

१. मीरा बहन (जन्म १८९२–) सन् १९२५के नवम्बरमें आश्रममें आई और उसके बाद बराबर गांधीजीके साथ उनकी प्रवृत्तियोंमें भाग लेती रहीं।

२. देखिए परिशिष्ट ६।

२६२. पत्र : कोण्डा वेंकटप्पैयाको

१४८ रसा रोड
कलकत्ता
२४ जुलाई, १९२५

प्रिय वेंकटप्पैया,

आपका पत्र अपनी पूर्णता, स्पष्टता तथा उसे यथासम्भव संयत बनाये रखनेके आपके निश्चयके कारण मुझे पसन्द आया।

मेरी अपनी स्थिति तो साफ ही है। कांग्रेसने स्वराज्यवादी दलको अपने राजनीतिक कार्यक्रमको आगे बढ़ानेका कार्य सौंपा है। अतः प्रत्येक कांग्रेसी यह कह सकता है कि स्वराज्यवादी दल उसकी ओरसे राजनीतिक कार्यक्रमको चलाता है और जब भी उसे यह लगे कि वह स्वराज्यवादियोंकी गतिविधियोंका पूर्णतः समर्थन नही कर सकता, वह कांग्रेसको छोड़ सकता है अथवा कांग्रेसमें रहकर उसका विरोध कर सकता है। किन्तु मेरी स्थिति तो ऐसी है कि न मैं उसे छोड़ सकता हूँ और न ही उसमें रहकर उसका विरोध कर सकता हूँ। यदि मैं कौंसिलोंमें कांग्रेसका किसी प्रकारका राजनीतिक प्रतिनिधित्व चाहता ही हूँ तो मैं उसकी लड़नेकी सामर्थ्यके कारण केवल स्वराज्यदलको ही यह काम सौंप सकता हूँ। ऐसा मैं सिद्धान्ततः कौंसिल-प्रवेशके विरोधमें होते हुए भी कह सकता हूँ। एक भारतीयके नाते मुझे चोर और पुलिसमें से एकको चुनना है; यद्यपि अहिंसामें विश्वास रखनेके कारण दोनों ही मेरे लिए समान रूपसे त्याज्य हैं। एक सामाजिक प्राणी होनेकी अपनी जिम्मेदारीसे मैं कभी भी मुँह नहीं मोड़ सकता और इसलिए मुझे ऐसा चुनाव तो हमेशा करना ही पड़ेगा। इसी कठिनाईको देखते हुए हमारे ऋषि-मुनियोंने उन लोगोंके लिए, जो अपने बन्धु-बान्धवोंके कार्यके सम्बन्धमें किसी प्रकारका उत्तरदायित्व नही लेना चाहते, गुफाओंमें रहनेका विधान किया। वे आदमियोंकी बस्तियों-भरसे ही नही बचते बल्कि उनके हाथका पैदा किया हुआ अन्न भी ग्रहण नही करते; वे केवल कन्दमूल-फल खाकर बसर करते हैं जिनके उत्पादनमें आदमीका कोई निमित्त नही होता। मैं अपने आपको उस स्थितिके योग्य नहीं समझता। मैं मानव-समाजमें रहता हूँ और इसलिए जहाँ-कहीं भी यह अनिवार्य होता है, अपनी मतिके अनुसार, जिनका मैं अन्यथा समर्थन नही कर सकता, ऐसे बहुतसे कार्योंके लिए अपने-आपको जिम्मेदार मानता हूँ। इसी प्रकार मेरे सामने अभी ऐसी स्थिति नही आई है कि मुझे कहना पड़े कि मैं कांग्रेसमें नही रहना चाहता। स्वराज्यदलको सौंपे गये कार्यका क्षेत्र निश्चित रूपसे सीमित है। सामान्य राजनीतिक कार्यकी हदतक ही मैं उसे अपना मुख्तार मानता हूँ। उनके व्यक्तिगत चरित्र और व्यवहारकी जिम्मेदारी मैं अपनी नही मानता। मालूम नही, मैं अपनी बात समझाकर कह सका हूँ या नही। लॉर्ड बर्कनहेडके भाषण और निस्सन्देह देशबन्धुके निधनके कारण मैंने जो कदम उठाया है, उससे आप परिचित हैं। अब मुझे

और अधिक समयतक कांग्रेसको प्रमुख रूपसे एक राजनीतिक दल बननेसे नहीं रोकना चाहिए, इसीलिए मैंने पण्डितजीको पत्र लिखा।[1] पर जबतक कि वह स्वयं भी उसी मतके न हों, किसी भी कांग्रेसीको मेरे इस निर्णयके अनुसार नहीं चलना चाहिए। यह केवल मेरा अपना व्यक्तिगत विचार है; और चूँकि मैं यह नहीं मानता कि कोई भी दूसरा उसे किसी भी रूपमें माननेको बाध्य है, मैंने सोचा कि इस समय उसको प्रकट करनेसे स्वराज्यदलको बल मिलेगा और इसीलिए मैंने बिना किसी हिचकके वह पत्र लिख दिया। जहाँतक आपका सम्बन्ध है, अपने यहाँकी परिस्थितियोंको तो आप जानते ही हैं; इसलिए अगर आपको ऐसा लगे कि स्वराज्यदलको आपके अप्रत्यक्ष समर्थन देनेका अर्थ मैं स्वराज्यवादियोंके व्यक्तिगत विचार और व्यवहारको समर्थन देना लगा सकता हूँ तो आप स्वराज्यदलके विरोधमें कुछ भी न कहनेके अपने अटल निश्चयकी रक्षा करते हुए कांग्रेससे अपना सम्बन्ध-विच्छेद करनेमें जरा भी न हिचकें। इस बारेमें और अधिक 'यंग इंडिया' में देखिए।

आशा है कि एक अक्तूबरको आप बम्बईमें होंगे। इस बीच आप अपने विचार बताते हुए पत्र अवश्य लिखें। मेरे दाहिने हाथको आरामकी आवश्यकता है इसलिए पिछले तीन दिनसे आशुलिपिककी सहायता ले रहा हूँ।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३४०) की फोटो-नकलसे।

२६३. भाषण: क्रिस्टोदास पालकी पुण्यतिथिपर[2]

२४ जुलाई, १९२५

सभापति महोदय और दोस्तो,

देरीसे पहुँचनेके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ, पर आपको यह तो पता ही है कि आजकल मेरे सम्मुख कितनी कठिनाइयाँ हैं। मेरे पास ऐसा एक भी मिनट नहीं है जिसे मैं अपना कह सकूँ और इसी कारण यह विलम्ब हुआ। मैं कार्यक्रममें रुकावट डालनेके लिए आपसे तथा श्री वर्ड्सवर्थसे भी जिनके भाषणको बीचमें रोककर मुझे समय दिया गया, क्षमा-याचना करता हूँ। मैं अपने देशवासियों तथा अन्य लोगोंका, जो मेरी स्थितिको देखते हुए मुझे सब जगह इस प्रकारकी सुविधाएँ देते हैं, अत्यन्त आभारी हूँ।

मैं यह मानता हूँ कि क्रिस्टोदासके बारेमें मुझे बहुत कम मालूम है। मेरे जीवन-का स्वर्णकाल भारतसे बाहर आफ्रिकामें बहुत ही व्यस्ततामें बीता है तथा भारतमें क्या हो रहा है इसकी जानकारी रखनेमें मैं असमर्थ रहा। यद्यपि यह आत्मस्वीकृति

१. देखिए "पत्र: मोतीलाल नेहरूको", १९-७-१९२५।

२. यह सभा क्रिस्टोदास पालकी ४१ वीं पुण्यतिथिके अवसरपर यूनिवर्सिटी इंस्टीट्यूट, कलकत्तामें आयोजित हुई थी।

बड़ी ही अपमानजनक है, परन्तु आपके सामने मुझे अपना यह अज्ञान स्वीकार करना ही चाहिए। इसके साथ ही यहाँ इस समारोहमें आमन्त्रित किये जानेपर मैं अपने-आपको सम्मानित हुआ अनुभव करता हूँ। मेरे लिए यह एक प्रसन्नताका विषय है कि मुझे आप लोगोंके साथ अपने एक महान् देशवासीकी स्मृतिमें श्रद्धांजलि अर्पित करनेका मौका मिला। उनके पौत्रने कृपा करके उनकी रचनाओंसे सम्बन्धित कुछ साहित्य मुझे दिया और अपने कुछ खाली समयमें कल मैं उन्हे देख गया। उनके लेखोंमें एक जगह स्वराज्यसे सम्बन्धित एक अनुच्छेद मेरे सामने आया। मुझे यह माननेमें तनिक भी संकोच नही कि अपने उस कठिन समयमें इस महान् व्यक्तिने वे सब बातें सोच ली थी जिन्हे कार्यरूप देनेके लिए आजकल हम यथासम्भव अपना पूरा जोर लगा रहे है। उनकी रचनाओंमें मैंने अन्य विषयोंके सम्बन्धमें भी उनके विचार पढे। अपनी युवावस्थामे मैं इतना जानता था कि वे अपने समयके एक महान् पत्रकार तथा एक निर्भीक देशभक्त थे। पर उनकी निर्भीकतामें परिष्कृत और शिष्ट विनम्रता-का सयोग था; उन्होंने जो-कुछ भी लिखा उसमे कही भी कटुताका समावेश नही होने दिया। वर्तमान पीढ़ीको स्वतन्त्रता प्राप्तिके अपने संघर्षके लिए उस महान् आत्मासे मिले इस सन्देशको गाँठमें बाँधकर रखना चाहिए। हमें उनकी निर्भीकता और नम्रताका अनुकरण करना चाहिए; क्योंकि नम्रताके विना निर्भीकता मात्र गाल बजाना है।

जो युवक यहाँ उस महान् देशभक्तका सम्मान करनेको इकट्ठे हुए है, उन्हें उनके जीवनका यह एक पाठ याद रखना चाहिए कि उन्होंने अपने अन्तिम समय तक नम्रताको कभी नहीं छोड़ा। उसके विपरीत हमें उनकी स्मृतिको इसलिए भी सँजोये रखना चाहिए कि उन्होंने इस सत्यको भी कभी नजरअन्दाज नही किया कि जिस व्यक्तिको विरोधियोंसे काम लेना है तथा जिसे अनिच्छुक लोगोंसे स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है, उसे और भी शिष्ट और नम्र बनना चाहिए। इसी बातको मैं अपने शब्दोंमें कहूँ तो अहिंसायुक्त निर्भीकता ही सच्ची निर्भीकता है। प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा दिये गये उस एक शब्दमें मैंने सारे गुणोंको समाविष्ट कर लिया है। यदि यह सत्य है कि हिन्दूधर्म अहिंसासे संसिक्त है तब जीवनके प्रत्येक कार्यमें हमें इसे सर्वोच्च स्थान देना चाहिए।

मेरे बाद आनेवाले वक्ता जो उनके जीवनसे अधिक सम्बद्ध रहे है, निस्सन्देह उनके अन्य गुणोंके बारेमें आपको बहुत-सी बातें बतायेंगे। पर मेरी तुच्छ रायमें उनकी असंख्य विशेषताओंमें से कोई ऐसी विशेषता नही बता सकेगे जैसी कि मैंने आप लोगोंको बताई है। उसे आप जीवनमें उतार सकते है और सँजोकर रख सकते है। उस महान् व्यक्तिकी स्मृतिमें हमारा यहाँ इकट्ठा होना एक उत्तम बात है पर यह और भी उत्तम हो, यदि हम उनके गुणोंको, आंशिक तौरपर ही सही अपने जीवनमें उतार लें।

ईश्वर आपको और मुझे ऐसा करनेकी शक्ति दे जिससे हम अपने कामको और अधिक सुचारू ढंगसे कर सकें।

[अंग्रेजीसे]

फॉरवर्ड, २५-७-१९२५

२६४. भाषण: यूरोपीय संघकी बैठकमें[1]

कलकत्ता
२४ जुलाई, १९२५

इसके बाद महात्मा गांधीने भाषण दिया।

उन्होंने खड़े होकर भाषण न देनेके लिए क्षमायाचना की और बताया कि ५ या ६ वर्ष पूर्व मुझे अतिसारका भयानक प्रकोप हो गया था। उसके कारण मेरा शरीर शक्तिहीन हो गया है। मैं आपके संघको मुझे आमन्त्रित करनेके लिए धन्यवाद देता हूँ।

सहयोगके लिए तो मैं व्याकुल हो रहा हूँ।[2]

गांधीजीने आगे कहा कि जब कभी मुझे यूरोपीयोंसे कहीं और किसी भी सिलसिलेमें मिलनेका अवसर आता है तो मुझे सचमुच प्रसन्नता होती है। और चूंकि मेरी नीति अहिंसाकी है इसलिए मुझे स्वयं तो किसी भी प्रकारकी कोई क्षति पहुँचनेका भय नहीं है।

आप लोग जो भी प्रश्न करना चाहें, कर सकते हैं और जो-कुछ कहना चाहें कह सकते हैं। मैं उसे सद्भावपूर्वक ग्रहण करूँगा। विधाताने इंग्लैंड और भारतको एक साथ ला खड़ा किया है और वह भी एक अच्छे उद्देश्यके लिए; अर्थात् मानवताकी सेवाके लिए। मैं व्यक्तिगत रूपसे यूरोपीयोंके दृष्टिकोणको समझनेका अवसर हाथसे कभी जाने नहीं देता। इसी भावनाको लेकर मैं आज इस शामको आपके पास आया हूँ और आपसे यही भावना अपनानेकी प्रार्थना करता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि इसमें बजाय भारतीयोंके अंग्रेज लोग पहले आगे बढ़ेंगे।

महात्माजीने कहा कि मैं स्पष्ट रूपसे स्वीकार करता हूँ कि जो विषय मुझे दिया गया है वह विशेष आकर्षक नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह विषय अन्य अनेक विषयोंके मुकाबिले विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। आज मुझे जिस विषयपर बोलना है वह है "कलकत्ताके मेयरके चुनावमें मैंने हस्तक्षेप क्यों किया?"[3] मैंने सुना है कि मेरी कार्रवाईसे यूरोपीय और भारतीय दोनों ही नाराज हैं। किन्तु हस्तक्षेप मैंने अपनी मर्जीसे नहीं किया था।

१. यह बैठक डब्ल्यू० डब्ल्यू० पेजकी अध्यक्षतामें ग्रेंड होटलमें हुई थी; गांधीजीके भाषणके पहले श्री पेजने उनके परिचयमें कुछ शब्द कहे थे।

२. २५ जुलाई, १९२५ के इंग्लिशमैनमें प्रकाशित रिपोर्टके अनुसार गांधीजीने कहा कि कुछ समय पूर्व एक अंग्रेज मित्रने मुझे लिखा था कि यद्यपि आप अपनेको असहयोगी कहते हैं फिर भी आप सहयोगके लिए व्याकुल रहते हैं। मैंने उनको लिखा कि आप ठीक कहते हैं।

३. देखिए "कलकत्ताके मेयर", १९-७-१९२५।

मैंने श्री जे० एम० सेनगुप्तकी नामजदगीका समर्थन क्यों किया, किसी औरका क्यों नहीं? जैसा कि आप लोग जानते हैं, मैं कुछ महीनोंसे कहता आ रहा हूँ कि जहाँतक भारतीय राजनीतिका सवाल है, मैंने स्वराज्यवादियोंको अपना मुख्तार बना दिया है। मैंने देखा है कि वे त्यागकी क्षमता रखते हैं, अपने देशसे तो प्रेम करते ही हैं, और फिर भी अंग्रेजोंसे घृणा नहीं करते। इसीलिए मैंने अपना भाग्य स्वराज्यवादियोंके साथ जोड़ दिया है। मैंने आपके इतिहासका अध्ययन किया है। मैंने आपकी कुछ संस्थाओंको विकसित होते देखा है, उदाहरणके लिए दक्षिण आफ्रिकामें आप लोगों द्वारा संचालित कुछ संस्थाओंको अपनी आँखोंके सामने बढ़ते हुए देखा है। आज भारतमें स्वराज्यवादी दल सबसे शक्तिशाली राजनीतिक दल है। यह नहीं कि हम यह बात जान ही नहीं सकते बल्कि हम यह जाननेकी परवाह ही नहीं करते कि यूरोपीयों और भारतीयोंमें एक दूसरेसे इतना अलगाव क्योंकर पैदा हो गया है।

अंग्रेजोंके सबसे बड़े हितैषियोंमें से एक हमारे बीचसे उठ गया है। उसका स्थान अभी खाली है। उनके अनुयायियोंमें उसका जैसा जादू किसीके पास नहीं है। वे उसका भार उठानेमें असमर्थ हैं।

इन्हीं शब्दोंमें महात्माजीने स्वर्गीय श्री चित्तरंजन दासका उल्लेख किया।

इसके बाद वे बोले कि मेरे दिमागमें पहला विचार यह आया था कि कलकत्ताका मेयर कोई मुसलमान होना चाहिए। मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रश्नमें कितनी दिलचस्पी लेता हूँ।[1]

यदि आपके बीच कोई योग्य और ईमानदार मुसलमान हो — उसके इन दोनों गुणोंके बारेमें फैसला तो केवल आप ही करेंगे — और यदि वह निगमकी सेवा दत्तचित्त होकर कर सकता है तो मेरा कर्त्तव्य होगा कि मैं इस पदके लिए उसके नामकी सिफारिश करूँ।

किन्तु दूसरे ही दिन एक मुसलमान नेता, मौलाना अबुल कलाम आजाद, मेरे पास आये। उन्होंने मुझसे कहा कि कोई भी मुसलमान इस पदके योग्य नहीं है, इसलिए उन्होंने मुझसे श्री जे० एम० सेनगुप्तकी सिफारिश करनेको कहा। अब सोचिए मौलाना अबुल कलाम आजादका न तो निगमसे ही कोई सम्बन्ध था और न स्वराज्यवादी दलसे ही। किन्तु वे भारतके योग्यतम मुसलमानोंमें से हैं। मैंने मौलानासे पूछा कि वे श्री जे० एम० सेनगुप्तको क्यों चाहते हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया, "क्या आप स्वराज्यवादी दलमें एकता रहे, यह नहीं चाहते?"

गांधीजीने कहा कि मुझे चटगाँवमें श्री जे० एम० सेनगुप्तसे मिलनेका सुअवसर मिला था। श्री सेनगुप्तने कौंसिलमें विशेष योग्यताका परिचय दिया है। वे बंगाल स्वराज्यवादी दलके नेता तथा बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष हैं। मुझे यह स्वीकार करना होगा कि मेरे विचारमें यदि उन्हें योग्य सहायक मिलें तो वे अपने कन्धोंपर इन तीनों पदोंका भार सँभाल सकते हैं। और यदि श्री सेनगुप्त मेयरका

१. अनुवर्ती दो अनुच्छेद २५-७-१९२५ के इंग्लिशमैनमें छपे विवरणसे लिये गये हैं।

उत्तरदायित्व सम्भाल सकते हैं और कलकत्ताके नागरिकोंकी दृढ़तापूर्वक सेवा कर सकते हैं तो श्री सेनगुप्तका उपर्युक्त पद प्राप्त करना सर्वथा उपयुक्त है।

मेरा खयाल है कि मैंने आपको इसका कारण पूरी तौरपर बता दिया है कि मैंने श्री जे० एम० सेनगुप्तका नाम मेयरके पदके लिए क्यों पेश किया है। मैं उन आपत्तियोंसे अपरिचित नहीं हूँ जो अखबारोंमें उठाई गई हैं। मैं आपको निर्भीकतापूर्वक और सचाईके साथ यह बताना चाहता हूँ कि मैंने उनके नामकी सिफारिश किस कारण की है। यदि आपका यह खयाल है कि श्री सेनगुप्त अपने व्यक्तिगत या अपने दलके स्वार्थको सिद्ध करनेके लिए ही निगममें गये हैं तो यह सही नहीं है। यकीन कीजिए कि आप गलतीपर हैं। मैंने सुना है कि इसे 'टमानी हॉल' कहा गया है। किन्तु आप इस बातको अपने दिमागसे निकाल दें। इस प्रकारके तरीकोंको त्यागनेवालोंमें मेरा नाम सबसे आगे होगा। जिन तरीकोंके जरिये मेरा देश ऊपर उठ सकता है, वे ईमानदारीके ही तरीके हैं। यदि मैंने अपनेको कलकत्ताके मामलोंमें डाला है तो मैंने वैसा आपकी सेवा करनेके उद्देश्यसे ही किया है। मैंने इस प्रश्नपर हर पहलूसे विचार कर लिया है। श्री सेनगुप्तमें मेयरके पदका उत्तरदायित्व निभानेकी पूरी योग्यता है और यदि मैं उनकी हिमायतमें यह न कहता तो अन्याय होता कि यदि श्री सेनगुप्तके विरुद्ध कोई बात नहीं है तो उन्हें कलकत्ताका मेयर चुन लिया जाना चाहिए।[1]

उन्होंने कहा कि मैं सर ह्यूबर्ट कारके 'राजनीतिक सत्ताका दुरुपयोग करके अपना घर भरना' इन शब्दोंको पसन्द नहीं करता, क्योंकि संसारकी राजनीतिमें यह एक बहुत ही प्रचलित सिक्का है।[2] एक आपत्ति यह उठाई गई है कि श्री सेनगुप्त कलकत्ताके लिए एक बिलकुल अजनबी व्यक्ति हैं। मैं यह बात पहले नहीं जानता था। श्री सेनगुप्तकी शिक्षा कलकत्तेमें हुई है और उन्होंने अपने जीवनका सर्वोत्कृष्ट भाग इसी नगरमें व्यतीत किया है।

मैं यह सिद्धान्त निर्धारित करना पसन्द करूँगा कि अन्य सब बातें समान होनेपर राजनीतिक दल जिसे भी सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति समझे, उस व्यक्तिको निर्वाचित करनेका उसे अधिकार है।[3]

१. सर ह्यूबर्ट कार, हैरी हॉब्स तथा अन्य सदस्योंने अपने भाषणोंमें सेनगुप्तके मेयर पदके लिए निर्वाचनके प्रस्तावकी आलोचना की थी। गांधीजीने उन्हें इसका उत्तर संक्षेपमें दिया।

२. २५ जुलाई, १९२५ के इंग्लिशमैनमें छपी रिपोर्टके अनुसार गांधीजीने कहा था: "...यदि यह राजनीतिक स्वार्थसाधना है तो यह सारे संसारमें अत्यन्त व्यापक रूपसे प्रचलित है। यह देखकर कि यह राजनीतिक संसारमें दीर्घकालसे प्रचलित है इसके लिए कुछ कम ग्लानिसूचक शब्द प्रयुक्त करना अधिक अच्छा होगा।"

३. इंग्लिशमैनकी रिपोर्टके अनुसार गांधीजीने आगे कहा: "जबतक दलका स्वार्थ निगमके उच्चतम स्वार्थसे नहीं टकराता तबतक यदि वह राजनीतिक दल अपनी स्थितिको अच्छा बनानेके अवसरका लाभ उठानेसे चूकता है तो वह अपने प्रति हिंसा करता है। . . . गांधीजीने कहा कि आप लोग सर ह्यूबर्ट कारके इस कथनकी ओर जरा भी ध्यान न दें कि यह एक राजनीतिक स्वार्थसाधना है, क्योंकि स्वयं सरकारने राजनीतिक स्वार्थसाधनाका मार्ग अपनाया है।

महात्मा गांधीने आगे कहा कि श्री सेनगुप्तने वादा किया है कि जबतक वे मेयरके पदपर रहेंगे तबतक वे अपने राजनीतिक विचारोंका उपयोग नहीं करेंगे। अब बताइए इस पदके लिए एक प्रशिक्षित वकीलकी अपेक्षा और कौन व्यक्ति बेहतर हो सकता है? उन्होंने स्वर्गीय सर फीरोजशाह मेहताका उल्लेख करते हुए कहा कि सर फीरोजशाह मेहता बम्बई निगमके मेयर थे तथा अपने दलके नेता भी थे।

जिस श्रेष्ठताके साथ उन्होंने बम्बई नगरपालिकाको चलाया वैसे कोई भी नहीं चला पाया। स्वराज्यवादी दलने भारतमें अनुसरित किसी भी सिद्धान्तका उल्लंघन नही किया है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २५-७-१९२५

२६५. मेरा धर्म

इस संसारमे केवल परमात्मा ही अविचल और निर्विकार है। अन्य सब वस्तुओंकी उन्नति अथवा अवनति होती है। जो संस्था परिवर्तनकी आवश्यकता होनेपर भी बदलती नही है, समझना चाहिए कि उसका अन्त निकट आ रहा है। कांग्रेस तो अभी अपनी बाल्यावस्थामें है। अभी उसे बहुत ऊँचा उठना है, इसलिए उसमें परिवर्तन तो होते ही रहेंगे। इसके संविधानमें जो दोष दिखाई दिये हैं वे दूर किये जाने चाहिए।

इसके अतिरिक्त देशबन्धुके निधनसे और लॉर्ड बर्कनहेडके भाषणसे स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई है कि कांग्रेसके संविधानमें उचित परिवर्तन तो अविलम्ब कर दिये जाने चाहिए।

मैं बेलगांवके अधिवेशनके बाद देख रहा हूँ कि मताधिकारकी धारामें परिवर्तन करनेकी माँग लगातार की जा रही है।[1] मैं यह भी देख रहा हूँ कि शिक्षित वर्ग मेरी कार्य-पद्धतिसे असन्तुष्ट रहता है। बहुत-से शिक्षित लोग चाहते हैं कि कांग्रेस कमेटियोंको राजनैतिक अर्थात् विधानसभाओंसे सम्बन्धित मामलोंमें भाग लेना चाहिए।

मै इनमें से किसी भी माँगके आड़े नही आना चाहता। इसका अर्थ यह नही है कि मैं स्वयं इन परिवर्तनोंको करवाना चाहता हूँ। किन्तु मैं लोकमतको समझने, मानने और उसका मान करनेवाला हूँ। किन्तु जब मुझे लोकमत अनुचित लगता है तब मैं स्वयं जोखिम उठाकर — लोगोको जोखिममें डाल कर नहीं — उसका विरोध करना अपना धर्म भी मानता हूँ। इस समय तो मेरे सम्मुख विरोध करनेका कोई कारण नहीं है। कांग्रेसके लोकमतका अर्थ है शिक्षितवर्गका मत। कांग्रेस शिक्षितवर्गकी

१. दिसम्बर १९२४ में हुए अधिवेशनमें कांग्रेसकी सदस्यताके लिए सूत कातना अनिवार्य कर दिया गया था।

ही कृति है। कांग्रेस अथवा शिक्षितवर्गने देशकी बहुत सेवा की है। शिक्षितवर्गसे मेरा जो मतभेद है, उसके कारण मैं उसकी सेवाओंको नहीं भुला सकता। मेरी दृष्टिसे तो मुझे शिक्षितवर्गको साथ रखकर ही कांग्रेसको ग्रामवासियोंकी संस्था बनानेका प्रयत्न करना चाहिए। जबतक हम स्वयं शरीरश्रम करके कांग्रेसमें सम्मिलित न होंगे तबतक कांग्रेसमें गाँवोंके लोगोंका सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं हो सकेगा। किन्तु मैं यह बात शिक्षितवर्गको नहीं समझा सका हूँ। कुछ थोड़े-से व्यक्ति इस बातको समझ गये हैं, किन्तु पूरा वर्ग तो इसे नहीं समझा है। मुझे धीरज रखकर शिक्षितवर्गको कांग्रेसमें सम्मिलित करनेका मार्ग जितना सरल किया जा सके उतना सरल कर देना चाहिए। मैं अपना दायित्व देशबन्धुके जीवित रहते हुए इतना नहीं समझता था। वे और मोती-लालजी शिक्षितवर्ग और मेरे बीच कड़ीके समान थे। उनमें से एकका निधन होनेसे मोतीलालजीकी परेशानीको समझना मेरा स्पष्ट धर्म हो गया है।

मैं देखता हूँ कि शिक्षितवर्गने हाथ-कता सूत खरीद कर देना भी बोझ माना है, क्योंकि उन्हें सूत कातनेमें श्रद्धा है ही नहीं। इसका परिणाम यह हुआ है कि कांग्रेसमें दम्भ और असत्यका प्रवेश हो गया है। वही सूत अलग-अलग लोगोंने चन्देमें दिया, ऐसा भी हुआ है। इस अनर्थके होनेका भय मेरे सम्मुख बेलगाँवमें ही प्रकट किया गया था। किन्तु मैंने उनकी परवाह नहीं की थी। मैंने यह मान लिया था कि नियमको तो सभी मानेंगे और कोई भी असत्याचरण न करेगा। किन्तु मेरा यह अनुमान झूठा निकला। इसलिए मुझे लगता है कि सूत खरीदकर देनेकी धारा जरूर रद्द की जानी चाहिए। मुझे पण्डितजी और दूसरे स्वराज्यवादियोंने बताया था कि स्वराज्यदल और मेरे बीच जो समझौता[1] हुआ है उसके कारण स्वराज्यवादी इस नियमको रद्द करवानेकी इच्छा रखते हुए भी एक वर्षतक उसको रद्द करनेकी माँग नहीं कर सकते। इसलिए मैंने निश्चय किया है कि मैं उनको इस समझौतेसे मुक्त कर दूँगा; लेकिन मैं स्वयं जैसा परिवर्तन वे कराना चाहते हैं, उससे सहमत न होऊँगा। मैं उनको इस आशयका पत्र भी लिख चुका हूँ।

मुझे यह मालूम हुआ है कि सब स्वराज्यवादी खरीदकर सूत देनेके बजाय पैसा देनेकी पुरानी प्रथाको फिर बहाल कराना चाहते हैं। सबका निश्चय यह जान पड़ता है कि जिन्हें अपना श्रम लोगोंको देना है, उनको कांग्रेसमें स्थायी रूपसे स्थान दिया जाये। मुझे तो इससे बहुत सन्तोष हुआ। मैं इतनी सहिष्णुताका स्वागत करता हूँ। इसका अर्थ यह हुआ कि कांग्रेसमें सूत कताईका स्थान सदाके लिए रहा। अब यह देखना है कि ऐसे श्रद्धालु सूत कातनेवाले कितने निकलते हैं। यदि अखिल भार-तीय कांग्रेस कमेटी यह परिवर्तन[2] कर दे तो सूत कातनेवालोंकी परीक्षा हो जायेगी।

मताधिकारकी धाराका दूसरा भाग खादी पहननेके नियमके सम्बन्धमें है। अधिकांश स्वराज्यवादी इस शर्तको हटाना नहीं चाहते। यदि शिक्षितवर्ग इस शर्तका सचाईसे पालन कर सके तो मैं इसे हिन्दुस्तानका परम सौभाग्य समझूँगा। अभीष्ट यह

१. गांधी-नेहरू-दास समझौता, जिसकी पुष्टि बेलगाँव कांग्रेसमें की गई थी।

२. सितम्बरमें होनेवाली बैठकमें।

है कि अब जो भी परिवर्तन स्वीकार किया जाये वह प्रयोग रूपमें न हो, सदस्योंकी इच्छासे स्थायी कर दिया जाये।

तीसरी बात कांग्रेसमें स्वराज्यदलके स्थानके सम्बन्धमें है। इस समय स्वराज्यदलको कांग्रेसके एलची या मुख्तारका स्थान प्राप्त है। दल इसके बजाय कांग्रेसके नेता या मुखियाका स्थान प्राप्त करना चाहता है। मुझे ऐसा लगता है कि इस समय हमारे सामने जो स्थिति उपस्थित है उसमें कांग्रेसमें स्वराज्यवादियोंकी सभी गतिविधियोंका बहिष्कार कायम रखना उचित नहीं है। इसके बजाय यह उचित मालूम होता है कि स्वराज्यवादियोंकी खास प्रवृत्ति ही कांग्रेसकी मुख्य प्रवृत्ति बन जाये और सूत कताई और खादी प्रचारका कार्य हमारे इन्हीं प्रतिनिधियोंकी मार्फत हो। कांग्रेसके नामकी नौकाकी जितनी आवश्यकता स्वराज्यवादियोंको है या हो सकती है उतनी चरखेकी प्रवृत्तिके लिए नहीं है। चरखेकी प्रवृत्तिकी सफलता केवल रचनात्मक कार्यपर निर्भर है। इसके विपरीत स्वराज्यवादियोंकी प्रवृत्ति लोकमत तैयार करनेपर निर्भर है। इसलिए मेरा विचार यह है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी अपनी अगली बैठकमें स्वराज्यवादियोंको कांग्रेसमें प्रमुख बना दे और सूत कताईकी प्रवृत्तिको चलानेके लिए एक नई संस्था बना दे तथा उसे कांग्रेसका अंग बनाकर इस प्रवृत्तिकी जिम्मेदारी सौंप दे। ऐसा करनेसे खादी-प्रचारमें भी एक प्रकारकी सुविधा होगी और कताई संस्था मतोंपर निर्भर न रहनेसे लोकमतके परिवर्तनके जोखिमसे भी बच जायेगी। सूत कताईके पक्षमें लोकमत बन जानेपर उसका प्रचार केवल धन और व्यवस्थापर अर्थात् व्यापार-कुशलतापर निर्भर रहेगा। इसलिए वह संस्था कांग्रेसकी व्यापार संस्था बन जानी चाहिए। ऐसा लगा था कि जो नेता कलकत्तामें इकट्ठे हुए थे[1] उनका मत ऐसा करनेके पक्षमें भी था।

मुझे अपना कर्त्तव्य तो बिलकुल स्पष्ट दिखाई देता है। मुझे अपनी शक्ति और अपने सिद्धान्तके अनुसार स्वराज्य दलकी सहायता करनी चाहिए, कांग्रेसकी प्रधान प्रवृत्ति राजनीतिमें भाग लेना बन जाये, इसका विरोध नहीं करना चाहिए और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको इस आशयका सुधार करनेका सुझाव देना चाहिए कि लोग मताधिकारके लिए सूत खरीद कर देनेके बजाय पैसा ही दें। मुझे लगता है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें जो लोग मेरी भाँति अपरिवर्तनवादी हैं उनका कर्त्तव्य भी यही है। किन्तु कमेटीका इस बैठकमें कोई करार रखनेका विचार नहीं है। प्रत्येक सदस्य अपनी स्वतन्त्रताका उपयोग कर सकेगा। मैंने किसी कार्रवाईसे किसीको बाँधा नहीं है। मैंने स्वराज्यदलको बन्धनसे मुक्त कर दिया है। इसलिए स्वराज्यवादी और अपरिवर्तनवादी दोनों अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार मत दे सकेंगे और देंगे, मैं भी यही चाहता हूँ।

अब एक प्रश्न विचारणीय बच रहता है। कांग्रेसकी प्रतिनिधि समिति, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, कांग्रेसके बनाये नियममें परिवर्तन कर सकती है या नहीं?

१. १६ तथा १७ जुलाई, १९२५ को हुई कांग्रेस कार्यसमिति और स्वराज्यदलकी बैठकोंके सम्बन्धमें।

वह सामान्यतः तो नहीं कर सकती; किन्तु असामान्य स्थितियोंमें कांग्रेसके विशुद्ध लाभकी खातिर परिवर्तन अवश्य कर सकती है। मुख्तार या आढ़तिया मालिककी बाँधी हुई मर्यादासे बाहर नहीं जा सकता। किन्तु मुख्तार अपनी जोखिमपर और मालिकके लाभके लिए बहुत-कुछ करनेका साहस कर सकता है। उसके लिए जोखिम यह है कि मालिक उसका मुख्तारनामा रद्द कर सकता है। यदि मुख्तारको अपने जोखिमपर काम करते हुए आर्थिक हानि हो जाये तो वह उसे अवश्य सहन करेगा, क्योंकि कोई मुख्तार अपने मालिककी मंजूरीके बिना उसे जोखिममें तो नहीं डाल सकता। संक्षेपमें कहें तो अनुमति या अधिकारके बिना किये कार्यका लाभ उठानेका हक तो मालिकको है; किन्तु उससे हुई हानिको सहन करना उसका कर्त्तव्य नहीं है। उसी नियमसे यदि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी अपनी जिम्मेदारीपर बिना अधिकारके चाहे जैसा परिवर्तन करे तो उसके सामने दो जोखिमें आयेंगी। एक जोखिम यह है कि कांग्रेस उसके इस कार्यको अनुचित ठहराकर उनकी निन्दा कर सकती है। दूसरी जोखिम यह है कि यदि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी संकटके समय नियमसे परे हटकर जो कार्य करना उचित है उसे न करे तो उस हदतक वह भीरु और अशक्त समझी जायेगी।

किन्तु ऐसे परिवर्तन सदा तभी किये जाते हैं जब वे सर्वसम्मत हों। यदि उनका विरोध करनेवाले सदस्योंकी खासी संख्या हो तो ऐसा परिवर्तन करना अनियमित होनेके अतिरिक्त अनुचित भी है।

सदस्य मेरी सलाह या सिफारिशसे कुछ भी न करें। वे कांग्रेसका अर्थात् लोगोंका हित समझकर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें चाहे जो सर्वसम्मत परिवर्तन करें। मैं चाहता हूँ कि बैठकमें कोई भी सदस्य स्वराज्यवादी और अपरिवर्तनवादीकी वृत्ति लेकर न आये। सभी कांग्रेसके सदस्यके रूपमें, अच्छा हो भारतीयके रूपमें, आयें। मुझे आशा है कि इस महत्त्वपूर्ण बैठकमें सभी सदस्य उपस्थित होंगे। मैंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्योंको व्यर्थ कष्ट कभी नहीं दिया है। मैं उनको इस समय जो कष्ट दे रहा हूँ, वह विवश होकर ही दे रहा हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-७-१९२५

२६६. अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक

जैसे बंगालने देशबन्धुकी स्मृतिको स्थायी बनानेके लिए दस लाख रुपये इकट्ठे करनेकी प्रतिज्ञा की है और उनके पूर्वजोंके घरमें एक जनाना अस्पताल बनाने और रोगियोंके लिए परिचारिकाएँ प्रशिक्षित करनेका निश्चय किया है, वैसे ही समस्त देशको भी देशबन्धुकी पुण्यस्मृतिको अमर बनानेका निश्चय करना उचित है। यह कार्य किस प्रकार किया जाए इसके सम्बन्धमें मैंने बंगाली भाइयोंसे तो सलाह की ही है किन्तु मैं मोतीलालजीकी सलाह लिये बिना कोई सुझाव नहीं दे सकता, ऐसा मेरा मत था और इसी कारण मैंने अभीतक इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट नहीं किये थे। अब मैंने पण्डितजीसे, गंगास्वरूप बासन्ती देवीसे और देशबन्धुके मुख्य-मुख्य मित्रों और अनुयायियोंसे बात कर ली है तथा कुछ लोगोंके हस्ताक्षरोंसे अपील निकाल दी है, जिसका अनुवाद पाठक पहले पृष्ठपर पढ़ेंगे।[1]

मैं यह बता चुका हूँ कि चरखे और खादीके सम्बन्धमें देशबन्धुके विचार इतने सुदृढ़ हो गये थे कि हम उनका स्मारक बनानेके लिए इनके अतिरिक्त अन्य किसी भी कार्यको हाथमें नहीं ले सकते।

पूछा जा सकता है कि उनकी मूर्ति आदि क्यों न खड़ी की जाए? इसका उत्तर यह है कि ऐसे स्थानिक स्मृतिचिह्न तो बहुत-से शहरोंमें बनाए ही जायेंगे। हमें तो ऐसे कार्यका विचार करना चाहिए जिसके द्वारा उनको बालक-बालिकाएँ और राजा-रंक सभी स्मरण करें और जिससे हिन्दुस्तानका स्थायी हितसाधन हो और साथ ही जो अपनी शक्तिसे बाहर भी न हो। ऐसा कार्य तो चरखे और खादीका प्रचार ही है।

किन्तु विधानसभा सम्बन्धी प्रवृत्तिका क्या हो? क्या इसके द्वारा देशबन्धुकी स्मृति स्थायी हो सकती है? यह काम चलेगा; किन्तु यह प्रवृत्ति क्षणिक है, संकुचित है। हमें मालूम है कि देशबन्धुने भी यही कहा था। खादीकी प्रवृत्ति ही एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें सभी भाग ले सकते हैं और जो सबतक पहुँचती है।

लोकमान्यके निधनके समय भी जब उनका स्मारक बनानेकी बात शुरू हुई तब ऐसी ही शंकाएँ उठाई गई थीं। किन्तु पीछे सबने स्वीकार किया कि लोकमान्यने सारा समय "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है", इस सन्देशके प्रचारमें लगाया था। देशबन्धुका और हमारा काम इस सन्देशको हाथमें लेकर कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए व्यापक और स्थायी साधन ढूँढ़ना था। इसमें हमने चरखे और खादीके प्रचारको और उसके द्वारा विदेशी कपड़ेके बहिष्कारको प्रधान स्थान दिया था। इसी-लिए देशबन्धुका काम इन साधनोंका संगठन करना था। इसीलिए उन्होंने पिछले बारह महीनोंमें ग्राम-संगठनकी आवाज उठाई थी। यही बात उन्होंने विधान सभामें और मेयरके रूपमें भी कही थी। उन्होंने अपने फरीदपुरके भाषणमें[2] स्पष्ट कहा था कि विधि-

१. देखिए "अखिल भारतीय स्मारक", २२-७-१९२५ या उससे पूर्व।

२. मई, १९२५ में हुए बंगाल प्रान्तीय कृषि परिषद्के अध्यक्षपदसे दिया गया भाषण।

शास्त्रीगण विधानसभाओंका कार्य भले ही करते रहें; किन्तु दूसरे लोगोंको तो ग्राम-संगठनमें ही लगना है। देशबन्धु अन्तमें दार्जिलिंगमें इस निर्णयपर पहुँचे थे कि ग्राम-संगठनका अर्थ चरखा और खादी है। स्वराज्यके साधन रूपी सौरमण्डलमें चरखा सूर्य है। यह बात देशबन्धुको स्पष्ट दिख गई थी और उन्होंने अपने अनुयायियोंको इस सम्बन्धमें यह आदेश भी भेजा था कि वे चरखेके द्वारा ग्रामसंगठनका कार्य आरम्भ करें।

यही उनका राजनीतिक वसीयतनामा है। यही उनकी अन्तिम इच्छा है। वे जिस बीजको बोकर चले गए हैं, उसे पोषण देकर अंकुरित करना और वृक्ष बनाना हमारा धर्म है। इसलिए देशबन्धुकी स्मृतिको स्थायी बनानेवाला कार्य चरखेकी प्रवृत्तिमें वृद्धि करना ही हो सकता है।

हम यह विचार करें कि अब कितना धन इकट्ठा किया जाये; कितना धन इकट्ठा करना है, यह मैंने सदाकी भाँति इस बार नहीं बताया है क्योंकि इसकी कोई सीमा नहीं है। इसके अतिरिक्त जब मैं राशि निश्चित करता हूँ तब मेरे मस्तिष्कपर उसका बहुत भार पड़ता है और तब मैं उतनी राशि इकट्ठी करनेका आग्रह भी करता हूँ। इस बार भी मैंने राशि अपने मनमें तो निश्चित कर ली है; किन्तु मैं उसमें अपीलपर हस्ताक्षर करनेवाले मित्रोंको भागी बनाना नहीं चाहता, क्योंकि वे सद्भावसे और श्रद्धाके कारण राशिपर हस्ताक्षर करके मेरे प्रति उत्तरदायी तो बन जाएँगे; किन्तु उसको इकट्ठा करनेके लिए अपना पूरा समय अथवा अधिकांश समय न दे सकेंगे।

किन्तु पाठकोंको यह समझ लेना चाहिए कि हमें साठ करोड़ रुपयेका लेन-देन कर सकने योग्य पूँजीसे व्यापार करना है। इसके लिए तो जितना रुपया मिले उतना कम ही है। किन्तु मेरी अविचल श्रद्धा है कि ज्यों-ज्यों खादीकी प्रवृत्ति सफल होती दिखाई देगी त्यों-त्यों उसमें लोगोंका विश्वास बढ़ेगा और त्यों-त्यों अधिकाधिक पैसा भी मिलेगा।

हमने पत्रिकामें बताया है कि धनकी उपलब्धि तीन बातोंपर निर्भर है, देशबन्धुके प्रति भक्ति, खादी और चरखेमें श्रद्धा और न्यासियोंमें विश्वास। देशबन्धुके प्रति भक्तिका प्रदर्शन समस्त देशमें हुआ है। मेरा अनुभव है कि खादी और चरखेमें लोगोंकी श्रद्धा बढ़ती जाती है। न्यासियोंको लोग जानते हैं। जहाँ जमनालाल-जैसे निर्मल खजांची और जवाहरलाल-जैसा उतना ही सावधान और प्रामाणिक मन्त्री हो, वहाँ अविश्वासके लिए कोई स्थान ही नहीं हो सकता।

मैं चाहता हूँ कि कोई भी, दूसरे क्या देते हैं, इसका खयाल न करे। 'नवजीवन' के पाठक जितना धन देना चाहें वे उतना 'नवजीवन' को भेज दें। उसकी प्राप्ति 'नव-जीवन' में स्वीकार की जाएगी। यदि वे जमनालालजीको सीधा भेजें तो 'नवजीवन' में हिसाब रखने और फिर उसे खजांचीको भेजनेकी झंझट कम हो जाएगी।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २६-७-१९२५

२६७. विविध

दृश्य सेवा बनाम अदृश्य सेवा

एक मित्र लिखते हैं:[1]

यह विचारसरणी है तो बिलकुल उचित; परन्तु यह मेरे लेखसे उत्पन्न नहीं होनी चाहिए थी। जानमें या अनजानमें हम सब मुमुक्षु हैं। परन्तु मैंने उस लेखमें सिर्फ सेवकोंकी सेवाके मूल्यका विचार किया है। साथ ही मैंने प्रसंगोपात्त इस बातपर भी विचार किया है कि आजकल लोगोंको किस प्रकारकी सेवा सुहाती है। दुनिया सच्चे संन्यासियोंको शायद ही पहचान पाती है। वे तो अदृश्य रहकर अपना काम करते हैं। उनकी दृष्टिमें स्तुति और निन्दा तुल्य हैं अथवा यों कहें कि वे स्तुतिसे बहुत बचते हैं। मैंने उस लेखमें उस प्रकारके लोगोंका विचार ही नहीं किया है। फिर जो स्तुतिके लिए ही सेवा करते हैं उनकी सेवाकी कीमत नहीके बराबर है। ऐसे लोगोंके लिए तथा संन्यासी कहे जानेवाले लोगोंके लिए भी कीर्तिस्तम्भ स्थापित हुए हैं और स्थापित होते रहेंगे। परन्तु यहाँ तो मैंने देशबन्धु-जैसे व्यक्तिकी निःस्वार्थ सेवाका ही उल्लेख किया था और यह भी कहा था कि इस युगमें तो वे लोग पूजे जाते हैं जो लोगोंकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेके लिए खड़े होते हैं। ऐसे लोग अदृश्य रहें तो उनका काम शायद ही चले। कहनेका तात्पर्य यह है कि राजनैतिक क्षेत्रमें काम करनेवाले सेवक अदृश्य रह ही नहीं सकते। उन्हें हजारोंके सम्पर्कमें आना ही पड़ता है। इसलिए दुनिया उनकी सेवाकी कीमत आँके बिना नहीं रह सकती। हमें सिर्फ एक बात जान लेनी चाहिए। पाखण्डी लोग भी पाखण्डके बलपर अपने कीर्तिस्तम्भ बनवा गये हैं; इसलिए हमें चाहिए कि हम कोई भी काम कीर्तिके लोभसे न करें। हमें कीर्तिसे बचना चाहिए। परन्तु हम जब देशबन्धु-जैसे शुद्धभावी सेवकपर लोगोंको न्यौछावर होते हुए देखते हैं तब हम समझते हैं कि लोगोंमें पारमार्थिक सेवाको समझनेकी शक्ति बहुत है। इस सम्बन्धमें उनका अन्दाज जहाँ कभी-कभी गलत होता है, वहाँ वह ज्यादातर ठीक भी होता है। अहिंसात्मक और सत्यमय देश-सेवा आजका धर्म है। हमें उसमें स्तुति और निन्दाके विषयमें तटस्थ रहकर योग देना चाहिए।

स्वयंसेवकका धर्म

एक स्वयसेवक इस प्रकार लिखते हैं[2]

मैंने इसमें से एक अंश, जिसमें कुछ तथ्य दिये गये हैं निकाल दिया है। यह चेतावनी बिलकुल उचित है। इस चिट्ठीका सारांश यह है कि मनुष्यको लोभ नही

१. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-प्रेषकने नवजीवन, २८-६-१९२५ में छपे गांधीजीके "देशबन्धु चिरंजीव हों!" शीर्षक लेखपर कुछ टिप्पणी की थी।

२. यहाँ नहीं दिया गया है।

करना चाहिए और ऐसा कोई काम न करना चाहिए जिससे उसके अंगीकृत कार्यको हानि पहुँचे। हम जिनके यहाँ जाकर ठहरते हैं उसकी घर-गिरस्तीसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं होता। जहाँ सार्वजनिक सम्बन्ध हो वहाँ व्यक्तिगत सम्बन्धोंकी गुंजाइश ही कहाँ है? स्वयंसेवक जिस घरमें भी ठहरते हैं, उसमें खानगी नातेसे नहीं, बल्कि उसे अतिथि-गृह समझकर अपने कार्यके निमित्त ही ठहरते हैं। फिर अपनी शीलरक्षाका अभिलाषी पुरुष तो स्त्रीके साथ एकान्त सेवनसे सदा ही बचता है। यह केवल स्वयंसेवकोंका ही धर्म नहीं — यह तो मित्रका, अतिथिका, आश्रितका और सबका धर्म है। दम्पतीके कमरेके आसपास किसीको नहीं सोना चाहिए — यह सज्जनताका लक्षण है। दुर्भाग्यवश हमारे घरोंमें ऐसी व्यवस्था नहीं होती और हमें ऐसे विवेकका पालन करनेकी आदत भी नहीं होती। परन्तु दम्पतीके कमरेसे दूसरे लोगोंका सम्पर्क न रहे, इसकी आवश्यकता और औचित्यके विषयमें दो मत हो ही नहीं सकते। जहाँ ऐसी सुविधा न हो वहाँ स्वयंसेवकको चाहिए कि वह बहुत सावधानीसे रहे और ऐसा सम्भव न हो तो ठहरनेके लिए दूसरी जगह ढूँढ़े।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-७-१९२५

२६८. सन्देश : 'फॉरवर्ड' को

२७ जुलाई, १९२६

लोकमान्य स्वराज्यके लिए ही जिये और मरे। उन्होंने हमें यह विश्वास करना सिखाया कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं जानता हूँ कि जबतक हम चरखेको उसके प्राचीन गौरवके साथ अपने गाँवोंमें पुनः स्थापित नहीं करते, तबतक इस जन्मसिद्ध अधिकारको पुनः प्राप्त करना असम्भव है। और ऐसा तबतक सम्भव नहीं है जबतक हम शिक्षितवर्ग कताईकी सुन्दर और जीवनदायिनी कलाको नहीं सीख लेते और खद्दर नहीं पहनने लगते, फिर चाहे वह मोटा हो या महीन, महँगा हो या सस्ता। स्वराज्यके लिए कोई भी कीमत चुकाना महँगा नहीं है। तब यदि हम लोकमान्यकी स्मृतिका सम्मान करना चाहते हैं तो हमें प्रतिदिन कमसे-कम आधा घंटा कातने तथा खादी पहननेका निष्ठाके साथ संकल्प करना चाहिए और दूसरोंको भी इसी प्रकार करनेके लिए प्रेरित करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

फॉरवर्ड, १-८-१९२५

२६९. पत्र: बनारसीदास चतुर्वेदीको

कलकत्ता
श्रावण सुदी ६ [जुलाई २७, १९२५][1]

भाई बनारसीदासजी,

मेरी दाहिनी अंगुलीमें दर्द होनेके कारण मैं बायें हाथसे लीखता हुं. तुमारा पत्र मीला है. पैसेके लीये मैंने चि० छगनलालको लीखा है कि उसको कुछ उजर न हो तो बाकीके सब पैसे तुमको भेज दे. मैं समझता हुं कि हिसाब भी पीटीटको सीधा भेजते रहोगे. मैंने यह भी मान लीया है कि इस समय जो हम कर रहे है वह सब ठीक मी० पेटीटके साथके समझौताके अनुकूल है.

तुमारे पत्रके अंतीम हिस्सेमें मुझे रोष और निराशा प्रतीत होते हैं. ऐसा क्यों!

मोहनदासके वं० मा०

पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी
फिरोजाबाद
जिला आगरा

मूल पत्र (जी० एन० २५२०) की फोटो-नकलसे।

२७०. पत्र: डी० हनुमन्तरावको

१४८, रसारोड
भवानीपुर
[२८] जुलाई, १९२५

प्रिय हनुमन्तरावं,

मेरे दाहिने हाथको आरामकी जरूरत है, इसलिए मैं यह पत्र बोलकर लिखा रहा हूँ। आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। जबतक मैं आपको सबल, स्वस्थ और स्फूर्तिमय नहीं देखता तबतक मुझे सन्तोष नहीं होगा। मैं चाहता हूँ कि आप प्राकृतिक चिकित्साके एक चलते-फिरते विज्ञापन बन जायें।

मेरा विचार है और वह प्रतिदिन दृढ़तर होता जा रहा है कि जल चिकित्सा एक महत्त्वहीन पद्धति है। वास्तविक चिकित्साके रहस्यको समझना तो अभी बाकी ही है, और वह है हवा। हमें अभी एक कदम आगे बढ़ना है, किन्तु वह एक कदम ही बहुत

१. डाककी मुहर २८ जुलाई, १९२५ की है।

दूर है। हम ताजी हवा और जलवायुके परिवर्तनकी उपयोगिताको नहीं समझते। मैं चाहता हूँ कि आप विभिन्न स्थानोंकी जलवायुको तबतक बदल-बदल कर देखते रहें जबतक आपको ऐसा जलवायु नहीं मिल जाता जो आपको अनुकूल पड़े और जिसमें आप पूर्ण रूपसे स्वास्थ्य-लाभ कर सकें। श्री शर्माको जरूर भेजिए। मैं सम्भवतः अगस्तके अन्ततक कलकत्तामें हूँ; मध्यतक तो निश्चित रूपसे हूँ। हो सकता है कि बीचमें दो या तीन दिनके लिए वहाँ न रहूँ। मैं जितना फुरसतका समय दे पाऊँगा, देनेका प्रयास करूँगा। कृष्णैया कैसे हैं?

हृदयसे आपका,

श्री डी० हनुमन्तराव
डिगुमार्टी हाउस
बरहामपुर
गंजम जिला

टाइप की हुई अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०५९३) की फोटो-नकलसे।

२७१. पत्र : डब्ल्यू० एच० पिटको

१४८, रसा रोड
भवानीपुर
[कलकत्ता]
२८ जुलाई, १९२५

प्रिय श्री पिट,

आपका गोपनीय पत्र[1] मिला। मैं आपके पत्रमें निहित तर्कके बल और उसके पीछेकी सद्भावनाकी कद्र करता हूँ। हमारा मूलभूत मतभेद तो फिर भी बना ही हुआ है; क्योंकि हम दोनोंमें भेद स्वभावका है। इसके अलावा इस प्रश्नपर गौर करनेके हमारे दृष्टिकोणमें भी अन्तर है। फिर भी मेरा काम यथासम्भव, मित्र, शत्रु, तटस्थ उन सभी लोगोंसे मिलनेका है जो इस प्रश्नको सुलझानेमें दिलचस्पी रखते हैं। मैं इस समय श्री च० राजगोपालाचारीसे पत्रव्यवहार कर रहा हूँ। आप जानते ही हैं कि वे इस मामलेमें मेरे सहयोगी हैं, और उनके निर्णयपर मुझे सबसे अधिक भरोसा है। मैं उन्हें लिख रहा हूँ कि यदि आवश्यकता पड़े तो वे वाइकोम या त्रिवेन्द्रम् भी जायें। इस बीचमें सार्वजनिक रूपसे एक शब्द भी न कहूँगा। आपको सूचना दिये बिना तथा भलीभाँति सोच-विचार किये बिना आगे कोई कदम नहीं उठाया जायेगा। आपने मुझे यह विश्वास दिलाया है कि अधिकारी इस बुराईको दूर करनेके लिए पूरा जोर लगा रहे हैं और यह मेरे लिए एक बड़ा प्रलोभन है; इसीलिए मैं

१. देखिए परिशिष्ट ३।

आपका सुझाव स्वीकार करनेको तैयार हूँ किन्तु मैं अभी किसीसे परामर्श किये बिना ही इतनी दूर बैठकर निश्चिन्त भावसे अपना निर्णय देना ठीक नही समझता।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :] मेरा दाहिना [हाथ] काम नही कर रहा है।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९००) की फोटो-नकलसे।

२७२. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१४८ सरसा रोड
भवानीपुर
[कलकत्ता]
२८ जुलाई, १९२५

प्रिय च० रा०,

हाथको कुछ दिनोंतक आराम देनेकी जरूरत है। इसलिए मैं अपने पत्र बोल-कर लिखा रहा हूँ। आशा है आपको पिटका वह पत्र मिल गया होगा जिसे मैंने आपके पास भेजा था। मैं यह दूसरा पत्र तथा अपने उत्तरकी नकल[1] आपके पास भेज रहा हूँ। मैं केलप्पनका पत्र भी भेज रहा हूँ। कृपया सलाह दें। यदि चाहें तो आप कमिश्नरसे पत्रव्यवहार कर सकते हैं और स्वयं ही केलप्पनको लिख सकते हैं। जैसा कि आपको कमिश्नरको लिखे गये मेरे पत्रसे मालूम होगा, मैं उनके सुझावको स्वीकार करनेके लिए तैयार हूँ, किन्तु अभी मेरी समझमें नहीं आ रहा है कि क्या करूँ। स्वयंसेवकोंके दृष्टिकोणको समझना आवश्यक है। आपको केलप्पनके इस प्रस्तावपर भी विचार करना होगा कि उन्हें कार्य-विमुक्त किया जाये। मेरा खयाल है कि ऐसा करना आवश्यक होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११९०३) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र : डब्ल्यू० एच० पिटको", २८-७-१९२५।

२७३. : पत्र : के० केलप्पन नायरको

१४८, रसा रोड
भवानीपुर, (कलकत्ता)
२८ जुलाई, १९२५

प्रिय केलप्पन,

आपका पत्र[1] मिला। मुझे श्री पिटका भेजा हुआ एक लम्बा पत्र[2] भी मिल गया है। मैं उस पत्रकी एक नकल भेज रहा हूँ और साथ ही श्री पिट तथा श्री राजगोपालाचारीको भेजे गये अपने पत्रोंकी प्रतिलिपियाँ भी। कृपया श्री राजगोपालाचारीसे पत्रव्यवहार करके उन्हें अपने विचारोंसे अवगत करा दीजिए। यदि आश्रमके काममें इससे कोई व्यवधान न पड़े तो आपको कार्यमुक्त किया जा सकता है। तब आप अवश्य जा सकते हैं और केरल समितिका कार्यभार सँभाल सकते हैं।

आशा है कि अब आप बिलकुल स्वस्थ हो गये होंगे। कार्यकर्त्ताओंको बीमार नहीं पड़ना चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११११०२) की फोटो-नकलसे।

२७४. पत्र : फ्रेड ई० कैम्बेलको[3]

१४८, रसा रोड
कलकत्ता
२८ जुलाई, १९२५

प्रिय नवयुवक मित्र,

मुझे आपके पत्रकी[4] स्पष्टवादिता और निश्छलता पसन्द आयी। उसके लिए धन्यवाद!

१. देखिए परिशिष्ट ४।

२. देखिए परिशिष्ट ३।

३. कैम्बेलने अपनेको अमरीकाके केन्सास नगरका एक १५ वर्षीय किशोर बताया था।

४. कैम्बेलने अपने ४ मईके पत्रमें लिखा था: "कुछ दिन पूर्व मैंने अपने यहाँके ईसाई गिरजाघरमें एक उपदेश सुना था जिसमें पादरी महोदयने हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच मौजूद तनातनीको शान्त करनेके लिए किये जानेवाले आपके उपवासका एक सजीव विवरण दिया था . . . उन सज्जनने बताया था कि यद्यपि आप ईसाई नहीं हैं फिर भी आज आप ईसाके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। यह सुननेके बाद मैंने आपके बारेमें अधिक अध्ययन करनेका निश्चय किया। इस प्रयासमें मैंने अंग्रेजोंके साथ चलनेवाले आपके संघर्षके बारेमें पढ़ा। आपका उनके प्रति घृणा करनेका मुख्य कारण क्या है? क्या यह सौदागरीका मामला है? . . ."

लगता है कि आप यह मान ही बैठे हैं कि मैं अंग्रेजोंसे घृणा करता हूँ। आप ऐसा क्यों सोचते हैं? मेरे सैकड़ों अंग्रेज मित्र हैं। यदि मैं अंग्रेजोंसे घृणा करता हूँ तो मैं मुसलमानोंसे और उसी कारण हिन्दुओंसे भी प्रेम नहीं कर सकता। मेरा प्रेम बहिष्कारवादी नहीं है। यदि मैं आज अंग्रेजोंसे घृणा करूँ तो कल मुसलमानों और परसों हिन्दुओंसे भी घृणा करने लगूँगा। मैं घृणा करता हूँ उस शासन-प्रणालीसे जिसे अंग्रेजोंने मेरे देशपर थोपा है। इस शासनतंत्रने भारतके लोगोंका लगभग पूरे तौरपर आर्थिक और नैतिक विनाश कर दिया है। जिस प्रकार मैं अपनी पत्नी और अपने बच्चोंको उनकी अनेक त्रुटियोंके बावजूद प्यार करता हूँ, उसी प्रकार मैं अंग्रेजोंसे उस हानिकर शासन-प्रणालीके बावजूद प्यार करता हूँ, गलतीसे जिसके लिए उन्होंने अपनेको उत्तरदायी बना रखा है। अन्धा प्रेम, प्रेम नहीं होता। जो प्रेम अपने प्रेमपात्रोंकी त्रुटियोंकी ओरसे आँखें बन्द कर लेता है, वह पक्षपातपूर्ण और खतरनाक भी होता है। यदि आपको इस पत्रसे सन्तोष न हो तो आप मुझे पुनः अवश्य लिखें।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०५४७) की फोटो-नकलसे।

२७५. भाषण: ईसाई धर्म प्रचारकोंके समक्ष

२८ जुलाई, १९२५

[मुझे गत मासकी २८ तारीखको कलकत्तेमें ईसाई युवक-संघ (यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन) में मिशनरियोंके सम्मुख भाषण देनेका सौभाग्य मिला था। इस भाषण-का संकेतलिपिमें लिखा हुआ विवरण मुझे सुलभ कराया गया है और चूँकि यह भाषण ऐसा था जिसमें सबकी दिलचस्पी हो सकती है, इसलिए इसे संक्षेपमें मैं नीचे देता हूँ। इसमें मैंने किसी भी विशिष्ट विचार या शब्दावलीको नहीं छोड़ा है, किन्तु वर्णनात्मक अंशोंको छोड़ दिया है।

मो० क० गांधी]

शायद आपमें से बहुत कम लोग जानते होंगे कि ईसाइयोंसे — तथाकथित ईसाइयोंसे नहीं, बल्कि सच्चे ईसाइयोंसे मेरा सम्पर्क १८८९ से ही रहा है। तब मैं नौजवान था और लन्दनमें रहता था। जैसे-जैसे समय बीतता गया है, इस सम्पर्कमें भी प्रगाढ़ता और परिपक्वता आती गई है। दक्षिण आफ्रिका जाकर मैंने देखा कि मैं बहुत प्रतिकूल परिवेशमें पहुँच गया हूँ, किन्तु वहाँ भी मैंने सैकड़ों ईसाइयोंको अपना मित्र बना लिया। वहाँ मैं दक्षिण आफ्रिका जनरल मिशनके निदेशक स्वर्गीय श्री स्पें-

१. लगता है कि आगे भी कुछ पत्रव्यवहार हुआ। गांधीजीने उनको दूसरा पत्र भी लिखा था। देखिए खण्ड ३०, "पत्र: फ्रेड ई० कैम्बेल्को", २३-४-१९२६।

सर वाटनके सम्पर्कमें आया और वादमें रेवरेंड ए० मरे तथा अन्य कई ईसाइयोंसे भी मेरा सम्पर्क हुआ।

इसलिए आज इतने सारे मिशनरियोंसे मेरा परिचय होना कोई नवीन वात नहीं है। मेरे जीवनमें एक समय ऐसा भी आया था जव मुझपर मेरे एक वहुत ही सच्चे और घनिष्ठ मित्रने नजर गड़ा रखी थी (हँसी)। वे एक वहुत वड़े और नेक क्वेकर थे। उनका खयाल यह था कि इतना भला आदमी ईसाई न हो, यह कैसे हो सकता है! लेकिन मुझे वड़े दुःखके साथ उन्हें निराश करना पड़ा। दक्षिण आफ्रिकासे एक मिशनरी मित्र मुझे अव भी पत्र लिखा करते हैं और पूछते हैं, 'अव आप क्या सोचते हैं?' मैंने इनसे वरावर यही कहा है कि जहाँतक मैं जानता हूँ, जो ठीक है मैं वहीं सोच रहा हूँ। अगर इन मित्रोंका तात्पर्य यह रहा हो कि मैं [ईसाई ढंगसे] प्रार्थना करूँ तो उसका जवाव तो मैंने दे दिया है। वह जवाव यह है कि मेरे हृदय-तलसे निकली यह प्रार्थना कि प्रभु, मुझे रास्ता दिखाओ, और उस रास्तेपर चलनेके लिए वुद्धि और साहस दो, रोज ही मेरे कमरेके वन्द दरवाजेको पारकर उस सर्व-शक्तिमानतक पहुँचती है।

अपने एक ऐसे ही मित्रसे किये गये वादेके मुताविक मुझे लगा कि स्वर्गीय कालीचरण वनर्जीसे मिलना मेरा कर्त्तव्य है। मुझसे कहा गया था कि वे देशके महानतम भारतीय ईसाइयोंमें से हैं और मैं उनसे मिलूँ। सो मैं उनके पास गया। यह सव मैं आपको यह वतानेके लिए कह रहा हूँ कि सच्चा मार्ग ढूँढ़नेके लिए मैं कुछ उठा न रखूँ। इस खयालसे मैंने कितनी गहरी खोज की है। इसलिए स्वभावतः मैं उनके पास विलकुल खुला दिमाग लेकर और उनसे जो-कुछ सीख सकूँ, ग्रहण कर सकूँ, उसे सीखने, ग्रहण करने, की वृत्ति लेकर गया। और उनसे मैं मिला भी वहुत ही प्रभावकारी स्थितिमें। मैंने देखा कि श्री वनर्जी और मुझमें वहुत-कुछ समानता है। उनकी सादगी, उनकी विनय, उनकी हिम्मत और उनकी सत्यनिष्ठा — इन सभी चीजोंकी मैंने सदा सराहना की है। मैं जव उनसे मिला तव उनकी पत्नी मृत्यु-शय्यापर पड़ी थीं। इससे अधिक मर्मस्पर्शी दृश्यकी, मनुष्यकी प्रवृत्तियोंको इससे अधिक ऊर्ध्वमुखी वनानेवाली परिस्थितियोंकी, आप कल्पना भी नहीं कर सकते। यह सन् १९०१ की वात है। मैंने श्री वनर्जीसे कहा, 'मैं एक सत्यान्वेषीके रूपमें आपके पास आया हूँ। मैंने अपने कुछ अत्यन्त प्रिय ईसाई मित्रोंको यह वचन दिया था कि मैं सच्चे प्रकाशकी खोजके प्रयत्नमें कुछ भी उठा नहीं रखूँगा; मैं आपके पास अपने उस वचनको पूरा करनेके लिए ही आया हूँ।' मैंने उनसे कहा कि मैंने अपने मित्रोंको यह भरोसा दिलाया है कि यदि मैं उस प्रकाशको देख-भर सका तो कोई भी सांसारिक लाभ मुझको उस प्रकाशसे विलग नहीं रख सकता। मेरे और उनके वीच जो थोड़ी-सी वातचीत हुई, उसका वर्णन करनेमें मैं आपका समय नहीं लूँगा। हमारे वीच वहुत ही अच्छी और सौम्य ढंगकी वातचीत हुई। जव मैं वहाँसे चला तो मेरे मनमें कोई दुःख, अवसाद या निराशा नहीं थी, लेकिन यह सोचकर मैं कुछ उदास हो गया कि श्री वनर्जी भी मेरा समाधान नहीं कर पाये। ईसाई धर्मको मेरे सामने जिस रूपमें पेश

किया गया उसे हृदयंगम करनेका मेरा यह अन्तिम सचेष्ट प्रयत्न था। उस रूपमें आज मेरी स्थिति यह है कि यद्यपि मैं ईसाई धर्मकी बहुत-कुछ बातोंकी सराहना करता हूँ, फिर भी मैं रूढ़िगत ईसाईधर्मसे अपना तादात्म्य स्थापित करनेमें असमर्थ हूँ। मुझे आपसे पूरी नम्रताके साथ कहना होगा कि मैंने हिन्दू धर्मको जिस रूपमें जाना है, उस रूपमें वह मेरी आत्माको पूरी शान्ति देता है, उससे मेरा समस्त अस्तित्व आप्लावित है, और जो शान्ति मुझे 'भगवद्गीता' और 'उपनिषदो'से मिलती है, वह 'गिरि-प्रवचन'को पढ़कर भी नही मिलती। यह बात नही है कि मैं उसमें बताये गये आदर्शका मूल्य नही समझता, 'गिरि-प्रवचन'के कुछ मूल्यवान उपदेशोंकी मुझपर गहरी छाप भी पडी है, किन्तु मुझे आपके सामने स्वीकार करना चाहिए कि जब मेरा मन शंकाओं और निराशाओंसे घिर जाता है और जहाँतक दृष्टि जाती है, मुझे प्रकाशकी एक किरण भी नहीं दिखाई देती तब मैं 'भगवद्गीता' की शरण लेता हूँ और उसमें मुझे कोई-न-कोई शान्तिदायी श्लोक मिल ही जाता है और तब दारुण दु:खके बीच भी मैं तत्काल मुस्करा उठता हूँ। मेरे जीवनमें सांसारिक दु:ख और शोकके न जाने कितने प्रसंग आये हैं, और अगर वे मुझपर कोई खरोंच नहीं छोड़ पाये तो इसका कारण 'भगवद्गीता' की शिक्षा ही है।

मैंने ये सब बातें आपसे इसलिए कही हैं कि आपको मेरी स्थिति बिलकुल साफ-साफ मालूम हो जाये और तब यदि आप चाहें तो मैं आपसे निकटतर सम्पर्क स्थापित कर सकूँ। मैं आपको यह भी बता दूँ कि मैं 'बाइबिल' और उसकी टीकाओं तथा अपने ईसाई-मित्रों द्वारा दी गई ईसाई धर्मकी अन्य पुस्तकोंको पढ़कर ही नही रुका बल्कि मैंने मनमें सोचा कि यदि मुझे तर्क और बुद्धिके द्वारा ही अपने मनका सन्तोष प्राप्त करना है तो मुझे अन्य धर्मोंके ग्रन्थ भी पढ़ने चाहिए और तब कोई निर्णय करना चाहिए। तब मेरा ध्यान 'कुरान' की तरफ गया। यहूदी धर्ममें ईसाई धर्मसे जितना-कुछ अधिक है उसे भी मैं जहाँतक समझ सकता था, मैंने समझनेकी कोशिश की। मैंने जरथुस्त्रके धर्मका भी अध्ययन किया और अन्तमें मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा कि सभी धर्म ठीक हैं, किन्तु उनमें हरएकमें कुछ-न-कुछ कमी है। यह स्वाभाविक है और अनिवार्य भी है। क्योंकि उनकी व्याख्या हमने अपनी तुच्छ बुद्धि, और कभी-कभी संकुचित हृदयके धरातलपर की है, और अकसर तो हम उनका गलत अर्थ ही निकाल बैठे हैं। मुझे यह देखकर बहुत दु:ख हुआ कि सभी धर्मोंमें कतिपय मूल बातोंकी विभिन्न बल्कि परस्परविरोधी व्याख्याएँ की गई हैं। निदान मैंने अपने-आपसे कहा, ना; यह सब मेरे लिए नहीं है। यदि मैं अपनी आत्माको शान्ति देना चाहता हूँ तो मुझे अपना मार्ग स्वयं ही टटोल-टटोलकर खोज निकालना होगा। मुझे अपना ध्यान चुपचाप प्रभुपर केन्द्रित करना चाहिए और उसीसे रास्ता दिखानेको कहना चाहिए। संस्कृतमें एक सुन्दर श्लोक है, जिसमें कहा गया है, 'ईश्वर मनुष्यकी सहायता तभी करता है, जब वह सर्वथा असहाय और दीन हो जाता है।' आपमें से कुछ लोग तमिल देशके हैं। जब मैं तमिल सीख रहा था तब मैंने डा० पोपकी एक पुस्तकमें एक तमिल कहावत देखी थी, जिसका अर्थ यह है कि 'ईश्वर असहायोंका

सहायक है।' मैंने अपने जीवनका यह समस्त अनुभव आपको बता दिया है, ताकि आप उसपर विचार करें।

आप मिशनरी लोग यह सोचकर भारत आते हैं कि आप एक ऐसे देशमें जा रहे हैं जिसमें नास्तिक, मूर्तिपूजक और ईश्वरसे अपरिचित लोग रहते हैं। एक महान् ईसाई महात्मा बिशप हेबरने दो पंक्तियाँ ऐसी लिखी हैं जो मुझे बराबर खटकती रहती हैं "जहाँकी हर चीज मनको सुख पहुँचाती है, और मात्र मनुष्य ही नीच है।" अच्छा होता, उन्होंने ये पंक्तियाँ न लिखी होतीं। मैंने समस्त भारतकी यात्रा की है और उसमें मैंने जो-कुछ देखा है, वह इसके विपरीत है। समस्त पूर्वग्रहोंको मनसे दूर रखकर, सत्यकी सतत खोज करनेके लिए मैंने इस देशके एक सिरेसे दूसरे सिरे तककी यात्रा की है, और मैं नहीं कह सकता कि गंगा, ब्रह्मपुत्र और यमुनाके पवित्र जलसे अभिसिंचित इस सुन्दर भूमिमें रहनेवाले मनुष्य नीच हैं। वे नीच नहीं हैं, वे सत्य की खोज उतनी ही आकुलतासे कर रहे हैं जितनी आकुलतासे मैं और आप कर रहे हैं, बल्कि शायद मुझसे और आपसे ज्यादा आकुलतासे ही। यह मुझे फ्रेंच भाषाकी एक पुस्तककी याद दिलाता है, जिसका अनुवाद एक फ्रांसीसी मित्रने मेरे पढ़नेके लिए किया था। इस पुस्तकमें ज्ञानकी खोजमें किये गये काल्पनिक अभियानका वर्णन है। इन यात्रियोंका एक दल भारतमें उतरता है और उसको एक परियाकी छोटी-सी कुटियामें सत्य और प्रभुका मूर्तिमन्त रूप देखनेको मिलता है। मैं आपसे कहता हूँ कि अस्पृश्योंकी बहुत-सी ऐसी झोंपड़ियाँ हैं, जहाँ आपको निश्चय ही ईश्वरके दर्शन होंगे। वे तर्क-वितर्क नहीं करते, बल्कि अपनी इस आस्थापर दृढ़ हैं कि ईश्वर है। वे सहायताके लिए उसपर निर्भर रहते हैं और उनको वह सहायता मिलती भी है। इन उदात्त-चरित्र अस्पृश्योंके सम्बन्धमें भारत-भरमें अनेक कहानियाँ सुननेको मिलती हैं। उनमें कुछ लोग नीच हो सकते हैं, किन्तु उन्हींमें अत्यन्त उदात्त-चरित्र, आदर्श मनुष्य भी मिलते हैं। किन्तु क्या मेरा अनुभव केवल इन अस्पृश्योंतक ही सीमित है? नहीं। आज मैं आपको यह बात बता देना चाहता हूँ कि यहाँ ऐसे अब्राह्मण और ब्राह्मण भी हैं जो इतने अच्छे मनुष्य हैं, जितने अच्छे मनुष्य आपको पृथ्वीपर कहीं भी मिल सकते हैं। आज भारतमें ऐसे ब्राह्मण मौजूद हैं, जो आत्मत्याग, पवित्रता और विनम्रताकी प्रतिमूर्ति हैं। यहाँ ऐसे ब्राह्मण भी हैं, जो तन-मनसे अस्पृश्योंकी सेवामें लगे हैं। वे अस्पृश्योंसे किसी पुरस्कारकी अपेक्षा नहीं रखते, अलबत्ता सनातनी हिन्दुओंके क्षोभ और घृणाके पात्र जरूर बनते हैं। किन्तु वे इनकी चिन्ता नहीं करते, क्योंकि वे परियाओंकी सेवा करके परमात्माकी सेवा कर रहे हैं। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवोंके आधारपर इस बातके उदाहरण दे सकता हूँ। मैं पूरी विनम्रताके साथ इन तथ्योंको आपके सम्मुख केवल इस कारण प्रस्तुत करता हूँ कि आप इस देशको अधिक अच्छी तरह जान सकें, उस देशको, जिसकी सेवा करनेके लिए आप आये हैं। आप यहाँ इसलिए आये हैं कि आप भारतके लोगोंके कष्टोंको जान सकें और दूर कर सकें। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि आप यहाँ कुछ सोचनेकी वृत्ति लेकर भी आये हैं; और यदि भारतके पास आपको सिखानेके लिए कुछ हो तो आप उस ओरसे अपने

कान बन्द न करें, अपनी आँखें मूँद न लें और अपने हृदयके द्वारोंको बन्द न रखें, बल्कि इस देशमें जो भी अच्छी बातें हैं, उनको ग्रहण करनेके लिए अपने कान, अपनी आँखें, और सबसे बढ़कर अपने हृदयका द्वार खुला रखें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि भारतमें बहुत-सी अच्छी बातें हैं। आप इस भ्रममें न रहें कि 'सेंट जॉन' के प्रसिद्ध छन्दको दुहरा जानेसे ही कोई आदमी ईसाई बन जाता है। अगर मैंने 'बाइबिल' के मर्मको समझा है तो मैं कहूँगा कि ऐसे बहुत-से लोग हैं जिन्होंने ईसा मसीहका नाम नहीं सुना है या जिन्हें इस धर्मकी, ईसाई धर्मसंस्था द्वारा की गई व्याख्या मान्य नहीं है, फिर भी, यदि आज ईसा मसीह हमारे बीच सदेह आ जायें तो, जो उन्हें हममें से अधिकांश लोगोंकी अपेक्षा शायद वे ज्यादा स्वीकार्य होंगे। इसलिए आपसे मेरा निवेदन है कि आपके सामने जो समस्या उपस्थित है, उसपर आप आग्रह-मुक्त मनसे और नम्रताके साथ विचार करें।

आज प्रातः कुछ मिशनरियोंके साथ मेरी बातचीत हुई थी। बातचीत अनौपचारिक ढंगकी थी। यहाँ मैं उसका वर्णन नहीं करना चाहता। किन्तु इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि वे बहुत अच्छे आदमी हैं। वे मेरी बातको ठीक-ठीक समझना तो चाहते थे; फिर भी मुझे उनको यह समझानेके लिए करीब-करीब डेढ़ घंटे कोशिश करनी पड़ी कि मैंने जो-कुछ लिखा है, उसमें से अंग्रेजोंके प्रति दुर्भाव या घृणासे प्रेरित होकर कुछ भी नहीं लिखा है। इतनी-सी बात समझानेमें मुझे बड़ी कठिनाई हुई। सच तो यह है कि मैं उनको यह बात समझा भी सका या नहीं, सो नहीं जानता। यदि नमक अपना नमकीनपन छोड़ दे तो वह दुबारा काहेसे नमकीन बनाया जा सकता है? मेरे भीतर जो सत्य है, उसे यदि मैं इन तीन मित्रोंको, जो निश्चय ही मेरे पास समझनेकी वृत्तिसे आये थे, नहीं समझा सका तो दूसरोंको समझानेमें मेरा क्या हाल होगा? मुझे प्रायः ऐसा लगा है कि सत्यान्वेषीको चुप रहना चाहिए। मैं जानता हूँ कि मौनमें कार्य-साधनकी अद्‌भुत क्षमता है। मैं दक्षिण आफ्रिकामें ट्रैपिस्ट सम्प्रदायके ईसाइयोंके एक मठमें गया था। यह स्थान बहुत सुन्दर था। मठके अधिकतर सदस्य मौन व्रत लिये हुए थे। जब मैंने वहाँके प्रधानसे पूछा कि इस मौनका हेतु क्या है तो उसने कहा कि इसका हेतु स्पष्ट है। 'हम मानव प्राणी दुर्बल होते हैं। हम प्रायः यह नहीं जानते कि हम क्या कह रहे हैं। यदि हम उस मूक और क्षीण स्वरको सुनना चाहते हों, जो हमारे भीतर सदा उठता रहता है, तो स्वयं लगातार बोलते रहकर उसे नहीं सुना जा सकता।' उनकी सारगर्भित शिक्षाको मैंने समझ लिया। मैं मौनके रहस्यको जानता हूँ। इस समय आपके सामने बोलते समय भी मेरे मनमें यह प्रश्न उठ रहा है कि क्या यह अच्छा नहीं होता कि मैंने इन मित्रोंसे इतना ही कहा होता, "जब हमारे मनमें व्याप्त सन्देहका कुहासा फट जायेगा तब हम एक-दूसरेको ज्यादा अच्छी तरहसे समझ सकेंगे।" इस समय आपके सामने बोलते हुए अपनी दीनताका अनुभव हो रहा है। मैंने इन मित्रोंसे बहस क्यों की? लेकिन मैं आपसे ये बातें दो कारणोंसे कह रहा हूँ। एक तो यह कि वस्तुस्थितिको स्वीकार करना चाहता हूँ, और दूसरे मैं आपसे भी यह कहना चाहता हूँ कि यदि आप दूसरे पहलूको नहीं देखना

चाहेंगे, यदि आप यह समझनेको तैयार नहीं होंगे कि भारत क्या सोच रहा है तो आप अपनेको सच्ची सेवाके सौभाग्यसे वंचित कर देंगे। मैंने अपने मिशनरी भाइयोंसे कहा है कि 'आप सत्पुरुष तो हैं, किन्तु आप जिन लोगोंकी सेवा करना चाहते हैं, उन्हींसे आपने अपनेको अलग कर लिया है।' यहाँ मैं आपको उस बातचीतकी याद दिलानेका लोभ संवरण नहीं कर सकता जिसका वर्णन मैंने दार्जिलिंगमें मिशनरियों द्वारा संचालित भाषा-विद्यालय (लैंग्वेज स्कूल) में किया था।[1] पादरियोंका एक शिष्टमण्डल अपनी चीन यात्राकी योजनाके सम्बन्धमें लॉर्ड सेलिस्बरीसे मिला था। शिष्टमण्डल अपने इस काममें सरकारका संरक्षण चाहता था। जवाबमें लॉर्ड सेलिस्बरीने जो-कुछ कहा वह मुझे शब्दशः तो याद नहीं है, फिर भी उसका आशय बता देता हूँ। उन्होंने कहा: 'सज्जनो, यदि आप चीन जाना चाहते हैं और वहाँ ईसाई धर्मके सन्देशका प्रचार करना चाहते हैं तो आप राजसत्ताकी सहायता मत माँगिए। आप अपने प्राण हथेली-पर रखकर जाइए और यदि चीनके लोग आपको मार देना चाहें तो आप यह समझिए कि आप ईश्वरकी सेवा करते हुए मरे हैं। लॉर्ड सेलिस्बरीने ठीक ही कहा था। मिशनरी लोग राजसत्ताकी छायामें अथवा यदि आप चाहें तो कहूँ कि राज्यके संरक्षणमें भारत आते हैं और यह तथ्य उनके मार्गमें एक ऐसी बाधा उपस्थित कर देता है, जो अगम्य है।

यदि आप मुझे इस विषयमें आँकड़े दें कि आपने कितने अनाथोंका उद्धार किया है और उनको ईसाई धर्ममें दीक्षित किया है तो मैं उनको मान लूँगा। किन्तु उससे मैं यह नहीं मान पाऊँगा कि यही आपका पुनीत उद्देश्य है। मेरी रायमें आपका उद्देश्य इससे बहुत ही ऊँचा है। आप भारतमें सच्चे मनुष्यकी खोज करना चाहते हैं और यदि आप उनको पाना चाहते हैं तो आपको गरीबोंके झोंपड़ोंमें जाना होगा और सो भी उन्हें कुछ देनेके लिए नहीं बल्कि बने तो उनसे कुछ लेनेके लिए ही। मैं मानता हूँ कि मैं भारतके मिशनरियों और यूरोपीयोंका सच्चा मित्र हूँ, इसीलिए मैं आपको अपने हृदयतलकी सच्ची भावना बता रहा हूँ। मुझे आपमें सीखनेकी नम्रता और भारतके जनसाधारणसे तादात्म्य स्थापित करनेकी इच्छा दिखाई नहीं देती। मेरे मनमें जो-कुछ था, मैंने बिना किसी दुरावके आपसे साफ-साफ कह दिया। अब यही मनाता हूँ कि आपके हृदयपर इसकी अनुकूल प्रतिक्रिया हो।

भाषणके अन्तमें लोगोंसे प्रश्न पूछनेके लिए कहा गया। उनमें से सबसे ज्यादा महत्त्वके प्रश्न और उनके उत्तर नीचे दिये जा रहे हैं:

प्रश्न — आपके विचारसे मिशनरी लोग जनसाधारणसे तादात्म्य कैसे स्थापित करें?

यह प्रश्न कुछ चकरानेवाला है। लेकिन मैं कहूँगा, आप चार्ली एन्ड्र्यूजका अनुकरण करें।

एक श्रोताने पूछा: जनसाधारणके बीच और जनसाधारणके लिए मिशनरियोंको आप कौन-सा काम करनेका सुझाव देंगे?

१. देखिए "भाषण: ईसाई धर्म प्रचारिकाओंके समक्ष", ६-६-१९२५।

चूंकि, मुझे चुनौती दी गई है, इसलिए मुझे बेझिझक कहना होगा, "आप चरखे-का काम करें।" आप हँसते हैं; यह स्वभाविक है, किन्तु यदि आप जनसाधारणको मेरी तरह जान लें तो आप इस सीधे-सादे औजारको, जिसे लोग एक तकलीफदेह चीज मानते हैं, (यहाँ श्री गांधीने अपनी तकली दिखाई, जिसे वे अपने पास रखते हैं) देखकर गम्भीरतासे सोचनेको विवश हो जायेंगे। आप भूखी और क्षीण जनताको ईश्वरका साक्षात्कार नहीं करा सकते। उसका ईश्वर तो भोजन ही है। जब भूखे स्त्री-पुरुष जनरल बूथ द्वारा खोले असंख्य डीपुओंमें पहुँचते थे तो वे उन्हें एक-एक तश्तरी सूप पकड़ा देते थे। इस समय उनका क्या कर्त्तव्य था, इसका उन्हें ठीक-ठीक भान होना था। तश्तरी-भर सूप देनेके बाद वे उन्हें अपने दियासलाईके कारखानेके लिए तीलियाँ बनानेका काम दे देते थे और उसके बाद ही फिर कुछ खानेको देते थे। और जब यह सब हो जाता था तभी वे उनसे ईश्वरकी बात, धर्म चर्चा करते थे। भूखकी ज्वालामें भारतके करोड़ों लोगोंके जलते रहनेका कारण यह नहीं है कि भारतमें काफी अन्न पैदा नहीं होता। इसका कारण तो यह है कि उनके पास करनेको कोई काम नहीं है। और जो चीज करोड़ों लोगोंको रोजगार दे सकती है, वह चरखा ही है। मैं कलकत्तेके औद्योगिक मिशन हाउसको जानता हूँ। अपने ढंगसे यह एक अच्छी चीज है, लेकिन इससे तो इस समस्याका कुछ भी हल नहीं होता। समस्या यह है कि १९०० मील लम्बे और १५०० मील चौड़े इस विशाल भू-भागमें फैली लाखों-करोड़ों झोपड़ियोंको रोजगार कैसे मुहैया किया जाये। जबतक आप खुद इस कलाको नहीं सीखते और जिनका न अपने-आपमें कोई विश्वास रह गया है और न किसी चीज या व्यक्तिमें, उन लोगोंके सामने एक उदाहरण पेश करनेके लिए जबतक आप खुद कताई नहीं करते, तबतक ये लोग चरखेको नहीं अपनायेंगे। और जबतक आप और मैं खद्दर नहीं पहनते तबतक चरखा बेकार ही है। इसीलिए मैंने लॉर्ड रीडिंग या लॉर्ड विलिंग्डनसे भी बेहिचक कहा है कि जबतक वे स्वयं और उनके अरदली नीचेसे ऊपरतक खद्दरकी पोशाकमें न होंगे तबतक मुझे सन्तोष नहीं होगा।

एक तीसरे प्रश्नकर्त्ताने पूछा, 'क्या आप निश्चित रूपसे यह अनुभव करते हैं कि आपके भीतर साक्षात् ईसा मसीह विद्यमान है?'

यदि प्रश्नकर्त्ताका संकेत इतिहासमें उल्लिखित उस ईसा मसीहकी ओर है, जो क्राइस्ट भी कहलाते थे तो मुझे कहना चाहिए कि मैं ऐसा अनुभव नहीं करता। किन्तु यह एक विशेषण है, जो ईश्वरके नामका द्योतक है, तो मुझे कहना चाहिए कि मैं अपने भीतर ईश्वरकी — चाहे आप उसे क्राइस्ट कहें या कृष्ण अथवा राम — उपस्थिति अवश्य अनुभव करता हूँ। हमारे यहाँ ईश्वरके द्योतक सहस्र नाम हैं और यदि मैं अपने भीतर ईश्वरका अस्तित्व अनुभव न करता होता तो मैं प्रतिदिन जो इतना दुःख और नैराश्य देखता हूँ, उससे मैं पागल हो जाता और फिर मुझे हुगली-की धारामें ही शरण लेनी पड़ती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-८-१९२५

२७६. अपील : अखिल बंगाल देशबन्धु-कोषके लिए

अखिल बंगाल देशबन्धु स्मारक समितिने आखिर चन्दा लेना बन्द करनेके लिए अन्तिम तारीख ३१ अगस्त निश्चित कर दी है। मैं जनताको बतलाना चाहता हूँ कि पहले ऐसी कोई तिथि निर्धारित नहीं की गई थी। अन्तिम तारीखको अन्तिम ही होना चाहिए और उसे बदला नहीं जा सकता। फिर भी मैंने सुझाव दिया था कि हमें पहली जुलाईतक या उससे पहले पूरे १० लाख एकत्र करनेके लिए प्रयत्न करना चाहिए। इसमें हम असफल रहे, किन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि यह प्रयत्न किसी कसरके कारण हुआ है। हमारी इस असफलताका कारण संगठनका अभाव हैं। यदि हम इस सप्ताहके समाप्त होनेसे पहले ६ लाख रुपये एकत्र करनेमें सफल हो गये तो यह देशबन्धुकी स्मृतिके प्रति हमारी एक श्रेष्ठ श्रद्धांजलि होगी। इस सप्ताहके अन्ततक ६ लाख एकत्र करनेकी अवधिके ५ सप्ताह पूरे हो जायेंगे, इससे प्रति सप्ताह सवा लाखसे कुछ कम या करीब १७ हजार प्रतिदिन एकत्र करनेका औसत पड़ता है।

कुछ अधिक परिश्रम करनेपर भी, यद्यपि उसे सन्तोषजनक संगठन तो कदापि नहीं माना जा सकता, हम उपर्युक्त औसतके हिसाबसे रुपया इकट्ठा करनेमें सफल नहीं होंगे, क्योंकि बड़ी-बड़ी रकमोंका अधिकांश भाग तो आ ही चुका है। स्मारक समितिने पिछले अनुभवके कारण ही चन्दा प्राप्त करनेकी अन्तिम तारीख ३१ अगस्त निश्चित की थी। उस राशिको एकत्र करनेके लिए जिसे कि बंगालके लिए तथा देशबन्धुकी पवित्र यादगारको स्थायी बनानेके लिए एक क्षुद्र-सी राशि समझना चाहिए, यह काफी पर्याप्त समय है। लोग जानते होंगे कि तिलक स्वराज्य कोषके लिए धन एकत्र करनेके लिए केवल ३ मासका समय निश्चित किया गया था। यह मानकर कि ६ लाख रुपये इस मासके अन्तसे पहले ही एकत्र हो जायेंगे, ४ लाख एकत्र करनेके लिए ३२ दिन बचेंगे। इस हिसाबसे ठीक १२,५०० रु० प्रतिदिन एकत्र करनेका औसत आता है। यदि हम आगामी मासके अन्ततक इतने रुपये एकत्र कर लें, तो एकत्र करनेका हमारा औसत कदापि कम न माना जायेगा। जो लोग चन्दा एकत्र कर रहे हैं और जिनको बंगालकी प्रतिष्ठा तथा स्मारककी सफलताकी फिक्र है, मुझे आशा है कि वे दैनिक औसत अर्थात् १२,५०० रुपये प्रतिदिन उपलब्ध करनेको अपनी प्रतिष्ठा-का सवाल समझेंगे। मैं बंगाल-भरके स्कूलों और कालेजोंके प्रधानाचार्योंका उनके कर्तव्य-की ओर ध्यान आकर्षित करता हूँ। मैं जानता हूँ कि स्कूल जानेवाले लड़के और लड़कियाँ अपना थोड़ा-बहुत योग देनेके लिए उतने ही उत्सुक हैं, जितने कि अन्य कोई। वे केवल इस बातकी प्रतीक्षामें हैं कि उनसे अनुरोध किया जाये। मुझे यह भी मालूम है कि बहुत-से जमींदारोंने जिनपर देशबन्धुका कुछ कम उपकार नहीं है, अभीतक अपना चन्दा नहीं भेजा है, क्या मैं उनसे यह सविनय कह सकता हूँ कि वे अपना चन्दा बिना माँगे ही भेजनेकी कृपा करें?

सभी महिलाओंने अपने हिस्सेका चन्दा अभी नहीं दिया है। मुझे बताया गया है कि वे अपने चन्देको अपने पतियोंके चन्देमें शामिल समझती हैं। मैं इस विचारसे सादर अपनी असहमति प्रकट करता हूँ। जैसा कि मैंने तिलक स्वराज्य कोषके लिए चन्दा एकत्र करते समय किया था। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक महिला अपने गहने और जेबखर्च चन्देमें दे। उनसे मेरा निवेदन है कि जो-कुछ उनका अपना है उसको चन्देमे दे दें और फिर अपने जीवन साथियोंसे उन चीजोंकी माँग न करें। ऐसा करनेपर उन्हें हानिका अनुभव नहीं होगा, केवल दान देनेकी खुशी रहेगी। सैकड़ों बहनें पहले ही इस भावनासे चन्दा दे चुकी हैं। यदि शेष बहिनोंके लिए भी देशबन्धुकी यादगार एक बहुमूल्य निधि है और यदि महिलाओंके लिए महिला चिकित्सालय तथा नर्सोंके प्रशिक्षणके लिए भी एक इतनी ही अच्छी संस्था खुलवाना श्रेयस्कर कार्य माना जाये तो मेरा सादर निवेदन है कि महिलाएँ उक्त भावनाका अनुकरण करें।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
फॉरवर्ड, २९-७-१९२५

२७७. पत्र : शौकत अलीको

१४८, रसा रोड
कलकत्ता
२१ जुलाई, १९२५

मेरे प्यारे दोस्त व बिरादर,

एक पत्रिकाके सम्पादकने मेरे पास पैगम्बर साहबपर लिखा अपना एक लेख भेजा है। इस लेखके कारण अहमदाबादमें अत्यंत उत्तेजनापूर्ण वातावरणमें एक सभा आयोजित की गई। सम्पादक महोदयने मेरे पास 'खिलाफत' के २९ मईके अंककी एक प्रति भी भेजी है।

यह लेख अशिष्ट अथवा अपमानजनक नहीं है। मेरे विचारमें इस लेखमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसके कारण इतना तूफान उठ खड़ा होता। ऐसा नहीं लगता कि लेखकने पैगम्बरका कोई अच्छा जीवनचरित्र पढ़ा है। साथ ही यह भी कहना होगा कि यह लेख अज्ञानतासूचक जरूर है। उन्होंने 'कुरान पाक' तो हरगिज नहीं पढ़ा है। उन्होंने पैगम्बर साहबके जीवनका वैसा ही मूल्यांकन किया है जैसा कि हम यूरोपमें प्रकाशित होनेवाली साधारण आलोचनाओंमें पाते हैं। लेखकने मेरी राय माँगी है। मैंने उनसे उतना ही कहा है, जितना-कुछ आपसे। यदि 'खिलाफत' का उक्त अंक मेरे पास न भेजा गया होता- तो मैं आपको इस बारेमें तकलीफ न देता।

मेरे विचारमें 'खिलाफत' के लेखकने लोगोंके रोषको उकसाया है, जिसकी आवश्यकता न थी। मैंने जिज्ञासाके कारण उस अंकके अन्य भाग भी पढ़े हैं और

मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मुझे प्रस्तुत 'खिलाफत' अंककी भाषा, या उसकी सामान्य ध्वनि जरा भी अच्छी नहीं लगी। उसके अनुच्छेदोंमें 'मूर्ख, गधा, सरासर झूठ — आदि शब्दोंका खुलकर प्रयोग किया गया है। मेरे विचारमें आपको इस पत्रिकाकी भाषापर नियन्त्रण रखना चाहिए। उसमें मैंने एक भी अनुच्छेद ऐसा नहीं पाया जो सुविचारित ढंगसे लिखा गया या शिष्टतापूर्ण हो। मुझे विश्वास है कि लेखक यह भी नहीं जानता कि उसने जिस भाषाका उपयोग किया है वह अशोभनीय है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

२७८. भाषण: आंग्ल-भारतीयोंकी सभामें[1]

२९ जुलाई, १९२५

अध्यक्ष महोदय तथा मित्रो,

मैं समझता हूँ कि बातचीतके शुरूमें ही आपको यह बतला देना ज्यादा ठीक रहेगा कि चुनिन्दा लोगोंके इस छोटेसे सुन्दर समारोहमें मैं कोई पहलेसे तैयार, बँधे-बँधाये किस्मका भाषण नहीं देना चाहता। मैं इसे बातचीतका रूप देना चाहता हूँ।[2]

अध्यक्षने जो उद्गार[3] अपने भाषणके अन्तमें व्यक्त किया है, मैं शुरूमें ही उसके विषयमें स्थिति स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। उन्होंने मेरे सामने जो दृष्टिकोण रखा है मैं उसकी कद्र करता हूँ। वफादारीके सम्बन्धमें मैं भी ऐसे ही उद्गार व्यक्त करता था। लेकिन आप जानते ही हैं कि मैं पिछले ६ सालसे वफादारीकी नहीं, गैरवफादारीकी बात कहता आ रहा हूँ। बात यह नहीं है कि मैं हर चीजके प्रति गैरवफादार हूँ, किन्तु मैं अवश्य ही समस्त असत्य, समस्त अन्याय और समस्त बुराइयोंके प्रति गैरवफादार हूँ। मैं अपने सम्बन्धमें किसीको धोखेमें रखना नहीं चाहता और इसलिए यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। मैं किसी संस्थाके प्रति तभीतक वफादार रहूँगा जबतक उससे मेरे विकासमें, राष्ट्रके विकासमें, सहायता मिलती है। यह लगते ही कि संस्था राष्ट्रके विकासमें सहायता देनेके बजाय उसमें बाधा डाल रही है, तुरन्त उसके प्रति गैरवफादार हो जाना मैं अपना परम कर्त्तव्य मानता हूँ। मैं यह कदापि नहीं कह सकता कि मैं वर्तमान सरकारके प्रति, अर्थात् वर्तमान शासनप्रणालीके प्रति वफादार हूँ। मैं जोर देकर कहता हूँ कि मैं जीवनका एक-एक क्षण इस शासनप्रणालीको, जो राष्ट्रके पौरुषको खा रही है, जो उसके सत्य और साधनोंको चूस रही है, जो इस

१. यह सभा शामको वेलेजली स्क्वेयरमें हुई थी।
२. यह अनुच्छेद ३०-७-१९२५ के फॉरवर्डमें छपी रिपोर्टसे लिया गया है।
३. डा० मोरेनोने कहा था कि वफादारी आंग्ल-भारतीयोंका धर्म है।

प्रणालीके संचालकों और उस प्रणाली द्वारा शासित लोगों, दोनोंको समान रूपसे गिराती है, नष्ट करनेमें लगा रहा हूँ।

लेकिन मेरे विचारमें जहाँ हम मानते हैं कि हममें इस अत्यन्त बुनियादी प्रश्न-पर ही मतभेद हो सकता है वहाँ हमें यह खोजनेका भी प्रयत्न करना चाहिए कि क्या आपके और मेरे बीच — आपके और इस सुन्दर देशमें (यदि मैं ऐसा कह सकूँ) रहनेवाले विशाल जनसमुदायके बीच — कई बातें ऐसी नहीं हैं जिनपर हम सहमत हो सकते हैं। भारतका भविष्य अन्ततः क्या होगा, यह हम नहीं जानते; या जानते हैं तो केवल इतना ही कि उसके भविष्यका निर्माण करना हमारे हाथमें है। भारतके साथ हम सबका भाग्य बँधा है। हम जैसा चाहेंगे उसका भविष्य वैसा ही होगा। किन्तु हम इससे अधिक नहीं जानते, क्योंकि हमारा उन करोड़ों लोगोंके दिमागपर कोई नियन्त्रण नहीं है, जिनसे भारत बना है। किन्तु प्रत्येक व्यक्तिको आशावादी बनना चाहिए और तभी इस देशका भविष्य उज्ज्वलतम हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि आज प्रत्येक व्यक्तिको अपने-आपसे यह कहनेमें समर्थ होना चाहिए कि, 'मैं इस देशके लिए जीवित हूँ, मैं इस देशके लिए ही मरूँगा।' इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप इस प्रश्नपर सेवाभावसे विचार करें और जब आपमें वह सेवाभाव होगा तब हम इस विघ्नकारी तत्त्व [वर्तमान शासनप्रणाली]को यहाँ से हटा सकते हैं। जब कोई आदमी सचमुच, सेवा करना चाहता है, तब उसके लिए 'वफादारी' या 'गैरवफादारी'का महत्त्व अधिक नहीं रहता।

मैं आज यहाँ अत्यन्त विनम्रताके साथ आपके प्रति पूर्ण मैत्री और शुभाकांक्षाकी भावना लेकर आया हूँ। अपने निरन्तर भ्रमणमें मैं केवल हिन्दुओंसे या केवल मुसल-मानोंसे ही नहीं मिला हूँ बल्कि मैंने जानबूझकर सभी प्रकारके और सभी स्थितियोंके लोगोंसे सम्पर्क स्थापित किया है। मुझे विश्वास है कि मैं उन सभी लोगोंसे मिला हूँ जो मुझसे मिलना चाहते थे, किन्तु अल्पसंख्यकोंसे मिलनेके लिए तो मैं स्वयं अपनी ओरसे आगे बढ़ा हूँ। चूँकि मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, इसलिए भारतमें बहुसंख्यक लोगोंके प्रतिनिधिके रूपमें उनसे मैत्री करना मैं अपना कर्त्तव्य मानता हूँ; फिर चाहे वे मेरी सलाहको अस्वीकार ही क्यों न करें। आपका समुदाय संख्याकी दृष्टिसे उतना भी बड़ा नहीं है, और इसलिए मुझे जब कभी आपसे मिलनेका अवसर मिला है, मैंने आपसे मिलनेमें संकोच नहीं किया है। किन्तु मुझे यहाँ यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आंग्ल-भारतीयोंने मेरी इस भावनाके अनुरूप खुले दिलसे अपना हाथ आगे नहीं बढ़ाया है।

आंग्ल-भारतीयोंसे मेरी मुलाकात सबसे ज्यादा रेलगाड़ियोंमें हुई है। क्योंकि कारण कुछ भी हो उन्हें सार्वजनिक सभाओंमें आनेमें संकोच होता है। इसका कारण शायद उनका यह खयाल है कि इन सभाओंमें गैरवफादार लोग इकट्ठे होते हैं। वफादारीको अपना सिद्धान्त बना लेनेके बाद आपको इन सभाओंमें आनेसे अरुचि होगी ही। किन्तु रेलगाड़ियोंमें तो मैं आपसे मुलाकात करनेमें कामयाब रहा हूँ।

आंग्ल-भारतीय भारतीयोंसे किस तरह अलग हो गये हैं, इसका एक उदाहरण देते हुए श्री गांधीने कुछ आंग्ल-भारतीय युवकोंके साथ अपनी भेंटका सजीव वर्णन

किया। उन्होंने कहा कि कुछ आंग्ल-भारतीय युवक और मैं एक ही गाड़ीमें अजमेरसे आ रहे थे। उन्होंने जबतक मुझे नहीं पहचाना तबतक वे अपने आम बोलचालकी अंग्रेजी अपभाषाका उपयोग करते रहे और मुझे उसे सुननेका अवसर देते रहे। किन्तु जैसे ही उन्होंने मुझे पहचाना तो उनका यह सहजभाव लुप्त हो गया और वे शिष्टताका प्रदर्शन करने लगे। और इन लड़कोंके व्यवहारसे भी मुझे आप लोगोंके आम जनतासे पृथक् होनेका पर्याप्त प्रमाण मिला। उनमें से एक युवकको भारतीय मिठाइयाँ अच्छी लगती थीं; किन्तु वह दूसरोंके सामने मिठाई खरीदनेका साहस नहीं करता था। उसने कहा, 'मैं ये मिठाइयाँ केवल तभी खाता हूँ जब कोई दूसरा वहाँ नहीं होता।' वह अपने-आपको भारतीय नहीं मानता था और यह नहीं चाहता था कि भारतीय उसकी गतिविधियाँ देखें। इसका कारण आपकी शिक्षा-दीक्षा है।

आप लोगोंके शरीरोंमें भारतीय रक्त है; इसपर आपको गर्व होना चाहिए, इसमें लज्जित होनेकी जरूरत नहीं है, पर मैं जानता हूँ कि जब कोई आपको इस बातकी याद दिलाता है तो आपको दुःख होता है।

श्री गांधीने इसके बाद एक आंग्ल-भारतीय युवककी चर्चा की और कहा उस युवकने मेरे सामने अपना हृदय खोलते हुए कहा था कि मुझे ४०० रुपये मिल रहे हैं, किन्तु इनसे मैं अपना गुजारा मुश्किलसे कर पाता हूँ। मुझे अपनी आयसे अधिक व्यय करना पड़ता है, क्योंकि मेरे लिए यह आवश्यक है कि मैं पूरा यूरोपीय दिखूँ।

उसकी गाथा सुनकर मेरा कलेजा टूक-टूक हो गया। मैंने अपने मनमें कहा कि यह मानवीयताके प्रति अपराध है। वह युवक ईसाई था और उसके आचरणमें कोई अनुचित बात नहीं थी; और ऊपरसे सब ठीक होनेपर भी उसके हृदयको यह घुन खाये जा रहा था कि वह कृत्रिम जीवन बिता रहा है।

मैंने आपको दो बड़े ही सटीक उदाहरण दिये। अब अपना मार्ग आपको ही चुनना चाहिए। आप क्या करेंगे? क्या आप असम्भव कार्यको करनेका प्रयत्न करेंगे या वैसे बनेंगे जैसा आपको होना चाहिए, अर्थात् क्या आप पूरे भारतीय बनेंगे? मैं आपसे एक बात और कह दूँ कि यदि आप दक्षिण आफ्रिका, आस्ट्रेलिया या किसी भी उपनिवेशमें जायें तो वहाँ जैसा व्यवहार मेरे साथ होगा वैसा ही आपके साथ भी होगा। आप रंगदार लोगोंके वर्गमें रखे जायेंगे और आपकी कोई सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं होगी। आपमें से जिन लोगोंकी चमड़ी गोरी है वे प्रवास अधिकारीको धोखा दे सकते हैं, किन्तु आपके सम्बन्धियों और सन्तानसे आपका भेद खुल सकता है। स्थिति यही है। वहाँ रंग सम्बन्धी प्रतिबन्ध बड़े ही सख्त हैं। वहाँ आपकी गिनती भी नैतिक दृष्टिसे कोढियोंमें की जायेगी। श्री मलान अब कहते हैं कि वे हमको दक्षिण आफ्रिकासे भगायेंगे नहीं, बल्कि हमें भूखों मारेंगे जिससे हम स्वयं भाग जायेंगे। और वे शुद्ध पाखंडका सहारा लेंगे। यह दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिबन्ध, जैसा लॉर्ड मॉर्ले कहते हैं, हमपर इंग्लैंडमें भी लागू होता है। अब इसके विरुद्ध लड़ना आपके हाथ है। यदि आप अपने भाग्यको भारतके उस जनसाधारणसे, आप जिसके अंश हैं, जोड़

लें तो आपका, मेरा और उस सरकारका भी, जिसके प्रति वफादार रहना आप अपना कर्त्तव्य समझते हैं, कल्याण ही कल्याण है।

आप एक सेतु बन सकते हैं, एक ऐसा आधार जुटा सकते हैं, जिससे होकर भारतीय और अंग्रेज दोनों कोई हानि या असुविधा उठाये बिना ही एक-दूसरेसे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं और सांस्कृतिक आदान-प्रदान कर सकते हैं। किन्तु यदि आप शिमलाकी ऊँचाई चाहते हैं तो वह ऊँचाई आपको मिल नहीं सकती। तब आपके भाग्यमें गरीबी ही रहेगी और भारतके भाग्यमें भी। आंग्ल-भारतीय-जैसा महत्त्वपूर्ण समाज जो कि बहादुरी और सूझबूझसे सम्पन्न है, इसीलिए सर्वनाशकी ओर जा रहा है कि आप स्पष्ट चीजको देखना नहीं चाहते और दुराग्रहपूर्वक असम्भवको सम्भव बनानेका प्रयत्न करते हैं। इस प्रक्रियासे आप जनसाधारणसे अलग होते जा रहे हैं। इस प्रकार आप भारतीयों और यूरोपीयों — दोनोंके द्वारा बहिष्कृत हो गये हैं।

श्री गांधीने एक और संस्मरण सुनाया जो एक बहुत ही सुसंस्कृत काठियावाड़ी आंग्ल-भारतीयके सम्बन्धमें था। उन्होंने कहा कि ये आंग्ल-भारतीय यूरोपीय ढंगका जीवन बितानेका प्रयत्न कर रहे थे और फिर भी वे सर्वत्र बहिष्कृत होते थे। उन्होंने कहा:

उनके दुःखमय जीवनका चित्र मेरे सम्मुख अब भी सजीव है।

हमारे राष्ट्रीय जीवनमें यह एक नाजुक समय है। मैं इस समय आपसे यह अवश्य कहना चाहता हूँ, 'आंग्ल-भारतीयो, आप दृढ़तापूर्वक और साहसपूर्वक यह तय करें कि क्या आप राष्ट्रसे अलग रहना चाहते हैं और क्या आप यूरोपीय ढंगका जीवन बिताना चाहते हैं।' ध्यान रखिए, मैं आपसे यह नहीं कह रहा हूँ कि आप अंग्रेजोंसे अलग हो जायें। चूँकि मैं आज स्वाभाविक जीवन बिता रहा हूँ, इसलिए मैं अंग्रेजोंकी पहले जितनी कद्र करता था, आज उससे भी ज्यादा करता हूँ। एक समय ऐसा था जब मैं भी यूरोपीयोंकी नकल करता था। तब मैं भी बहुत छोटी-छोटी चीजोंको अत्यधिक महत्त्व देता था। लेकिन मेरे जीवनमें एक ऐसा अनमोल क्षण आया कि मैंने उन सब चीजोंको हिन्द महासागरमें फेंक दिया और फिर उनकी ओर मुड़कर भी नहीं देखा। मैंने कहा: 'अब मैं ऐसा जीवन नहीं बिताऊँगा। अब मैं निजविककी शब्दावलिमें कहें तो, "सभ्यताका स्याहीसोख बनना" स्वीकार नहीं करूँगा।' इसलिए अब मैं ज्यादा स्नेह प्राप्त कर पाता हूँ और लोग ज्यादा आसानीसे मुझसे मिल-जुल पाते हैं। आज यूरोपमें मेरे जितने मित्र हैं, उतने मेरे जीवनमें पहले कभी नहीं रहे। उसका कारण यही है कि मैंने अपनी समस्त कृत्रिमताएँ त्याग दी हैं। मैं आपको असंस्कृत दिखाई दे सकता हूँ, पर दिखावटी शिष्टतासे यह गँवारूपन ज्यादा अच्छा होता है। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि आप नकल करनेकी आदत छोड़ दें, जनसाधारणकी बात सोचें और उनमें घुलमिल जायें। इससे आपका उत्थान हो सकता है और हम संसारको भारतीय मानव-समाजका ऐसा सुन्दर नमूना पेश कर सकते हैं, जिसमें सब जातियाँ अपनी-अपनी खूबियोंको कायम रखते हुए तथा अपने सर्वोत्तम गुणोंकी रक्षा करते हुए मिलजुल कर

रह सकती हैं। यह श्रेय आपको ही मिल सकता है, जरूरत इस बातकी है कि आप इसपर अमल करें।

मैंने आपके कर्त्तव्यकी बात कही। आप सम्भवतः जानना चाहेंगे कि मेरा कर्त्तव्य क्या है। हाँ, यदि मैं भारतका वाइसराय बना, जो मेरे खयालसे होनेवाली बात नहीं है तो मैं आपको और दूसरे अल्पसंख्यक लोगोंको चुनावका अधिकार देकर पूछूँगा कि आप क्या चाहते हैं। मैं सभी दलोंके नेताओंको बुलाऊँगा और उनके सामने अपना प्रस्ताव रखूँगा। फिर मैं सबसे पहले आपमें से उन लोगोंको बुलाऊँगा जो संख्याकी दृष्टिसे सबसे कमजोर हैं और उनसे पूछूँगा कि आप सब क्या चाहते हैं। नौकरियोंमें मैं एक समुचित परीक्षापर जोर दूँगा, अर्थात् मैं उम्मीदवारसे केवल यह पूछूँगा कि आपमें कितना पुरुषत्व या स्त्रीत्व है? क्या आपमें अवसरके अनुरूप कार्य करनेकी योग्यता है? जो स्त्री या पुरुष इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाते हैं, मैं उनमें से सबसे पहले सबसे छोटे अल्पसंख्यकवर्गके व्यक्तिको चुनूँगा। मैं इस तरह सब अल्पसंख्यकोंको न्यायसंगत आधारपर भारतके कल्याणका ध्यान रखते हुए तरजीह दूँगा। जब मैं इस शब्दावलिका उपयोग करता हूँ तब मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं कोई शब्दजाल नहीं रच रहा हूँ। मेरा उद्देश्य यह नहीं होगा कि केवल हिन्दुओंका कल्याण हो। भारतके कल्याणका अर्थ हिन्दुओं और मुसलमानोंका या किसी खास जातिका नहीं, बल्कि समस्त भारतका कल्याण है। मैं आपकी चापलूसी या मनुहार नहीं करूँगा, बल्कि जो आपका देय होगा वह आपको दे दूँगा।

श्री गांधीने इसके बाद कहा कि मेरी योजनाके अन्तर्गत सब अल्पसंख्यक जातियोंके हितोंकी तरह आंग्ल-भारतीयोंके हितोंकी भी रक्षा एक स्वैच्छिक समझौतेके द्वारा की जायेगी। इस समझौतेका समर्थन कानून द्वारा नहीं किया जायेगा जिसमें सदा तीसरे पक्षका होना निहित होता है; बल्कि यह समझौता बिलकुल स्वैच्छिक होगा, जैसा मेरा और स्वराज्यवादियोंका समझौता है। यह समझौता ऐसा ही होगा जैसे समझौतेका प्रस्ताव मैंने दिल्लीमें मुसलमानोंके सन्मुख रखा था। जबतक आप लोगोंका बहुसंख्यक जातियोंकी न्यायभावनामें विश्वास नहीं है तबतक आपको ऐसे स्वैच्छिक समझौतेका संरक्षण प्राप्त होना चाहिए। जो पक्ष इस समझौतेमें सम्मिलित होंगे वे उसके अनुसार कार्य करनेके लिए कर्त्तव्यबद्ध होंगे। यदि वे समझौतेकी उपेक्षा करेंगे तो वे स्वयं खतरेमें पड़ेंगे। आप आंग्ल-भारतीयोंसे मुझे यही कहना है कि यदि इस समझौतेका पालन न किया जाये, यदि पवित्र वचनोंको पूरा न किया जाये तो आप उन लोगोंसे, जो समझौतेको तोड़ें, बदला ले सकते हैं। अन्तमें श्री गांधीने कहा :

मैंने अपना हृदय चीरकर रख दिया है। जो-कुछ मेरे मनमें था वह मैंने बिना साज-सँवारके मैत्रीभावसे आपके सन्मुख रखा है। मेरी इच्छा है कि आप भी इसपर ऐसी ही भावनासे विचार करें।

श्री गांधीने इसके बाद लोगोंको प्रश्न पूछनेके लिए आमन्त्रित किया। इनमें सबसे पहले यह प्रश्न डाक्टर मोरेनोने किया: ऐसा लगता है कि भारतीयकरणकी

योजनामें आंग्ल-भारतीयोंपर विपरीत प्रभाव पड़ेगा; यदि ऐसा हुआ तो आपका रुख क्या होगा?

यदि यह बात मेरे हाथमें होगी तो मैं एक भी आंग्ल-भारतीयको नहीं हटाऊँगा।

आपने कांग्रेस स्वराज्यवादियोंको सौंप दी है। फिर भी आप सर्वदलीय कार्यक्रमकी बात करते हैं। हम आंग्ल-भारतीय स्वराज्यवादियोंके बाधा डालनेके हथकण्डोंका साथ कैसे दे सकते हैं?

मैंने कांग्रेस स्वराज्यवादियोंको नहीं सौंपी है। मैंने तो उनको उस समझौतेसे मुक्त कर दिया है जो उनके और मेरे बीच हुआ था। यदि मैं चाहूँ तो भी मैं कांग्रेसको किसीके हाथमें सौंप नहीं सकता। इसका अर्थ केवल यह है कि प्रत्येक सदस्य मताधिकारको बदलवाने या न बदलवानेके सम्बन्धमें स्वयं निर्णय कर सकता है। कांग्रेस, जो बेलगांवमें राजनीतिक संस्था बना दी गई थी, अब प्रधानतः राजनीतिक संस्थाके रूपमें परिवर्तित कर दी गई है। इसका परिणाम यह होगा कि उसमें अब राजनीतिक प्रस्ताव रखे जा सकेंगे और उन लोगोंके मार्गमें से जो कांग्रेसमें उसके अराजनीतिक संस्था होनेके कारण सम्मिलित नहीं हो पाते थे, प्रतिबन्ध हट जायेगा। वह स्वराज्यवादियोंकी संस्था नहीं रहेगी, वह प्रधानतः राजनीतिक संस्था बन जायेगी। यह सही है कि आज उसमें स्वराज्यवादियोंकी प्रधानता है; किन्तु उसका कारण यह है कि दूसरे लोग उससे अलग रहे हैं, और यदि उसमें उनकी अधिकता है तो इसका कारण यह है कि दूसरोंके पास कोई संगठन नहीं है। जहाँतक रुकावट डालनेका सम्बन्ध है, यह बात अनुचित हो सकती है, उचित भी हो सकती है। लेकिन आप निश्चय ही कांग्रेससे अलग रहकर स्वराज्यवादियोंको प्रभावित नहीं कर सकते। आप बड़ी संख्यामें कांग्रेसमें शामिल हों और यदि आप चाहें तो उसकी नीतिमें परिवर्तन करा लें।

एक प्रश्नमें उनसे पूछा गया कि जब आंग्ल-भारतीयोंको आनुपातिक प्रतिनिधित्वके अन्तर्गत कुछ मिलेगा ही नहीं, तब श्री गांधी उनके हितोंकी रक्षा कैसे कर सकते हैं। इसके उत्तरमें श्री गांधीने अपने स्वैच्छिक समझौतेका प्रस्ताव और भी स्पष्ट किया। उन्होंने कहा :

स्वराज्यकी योजना बनानेसे पहले मैं आपसे पूछूँगा कि आप क्या चाहते हैं। योजनाकी शर्तोंका दस्तावेज सार्वजनिक होगा। यदि हम मान लें कि योजनाके पीछे पर्याप्त लोकमत रहेगा और ईमानदारी बरती जायेगी तो आंग्ल-भारतीयों और अन्य अल्पसंख्यकोंके साथ सम्भवतः अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं किया जा सकेगा।

श्री गांधीसे यह प्रश्न पूछा गया कि उन्होंने श्रीमती बेसेंटके 'भारतीय राष्ट्रमण्डल विधेयक' (कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल) सम्बन्धी ज्ञापनपर हस्ताक्षर क्यों नहीं किये। इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि मैंने पहले ही कह दिया था कि यदि मुझे लॉर्ड बर्कनहेडका यह तार मिल जायेगा कि ज्ञापनपर मेरे हस्ताक्षर करनेके बाद विधेयक स्वीकार कर लिया जायेगा, तो मैं अपने हस्ताक्षर तारसे भेज दूंगा। लेकिन

मैंने विधेयकके समर्थकोंमें अपना नाम देनेसे केवल इसलिए इनकार कर दिया कि मैं अपमानित होना नहीं चाहता था। जब मैं यह जानता था कि यह बात बिलकुल निश्चित है कि विधेयक कूड़ेके ढेरमें फेंक दिया जायेगा, और विश्वास था कि उसकी कोई दूसरी गति नहीं हो सकती, तब मेरे लिए उसपर हस्ताक्षर करना सम्भव नहीं था। मैं पहले बहुत अपमान सह चुका हूँ, किन्तु मैं स्वयं कभी अपमानित होने नहीं गया। जब भी मेरे ऊपर अपमान थोपा गया, मैंने उसे हँसते-हँसते सहा। लेकिन इस विशिष्ट मामलेमें मेरा खयाल यह था कि यह तो अपमानको आमंत्रित करना होगा और मैं ऐसा करनेके लिए तैयार नहीं था। असलमें मुझे उसी दिन इसका संकेत मिल गया था।

उस संकेतका उल्लेख करते हुए श्री गांधीने कहा:

मैंने भारत सरकारके सम्मुख एक अत्यन्त व्यावहारिक, निर्दोष-सा सुझाव रखा था। पहले देशबन्धु दासने यह प्रस्ताव रखा था। आप जानते हैं कि राजनीतिक बन्दियोंके मामलेमें उनकी दिलचस्पी कितनी गहरी थी। मैंने सरकारसे कहा, 'क्या वह एक अनुग्रहका कार्य करेगी; इससे समस्त राष्ट्रपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा? क्या वह बन्दियोंको मुक्त कर देगी?' यदि सरकार ऐसा करती तो उससे दो उद्देश्य सिद्ध होते। यदि इन राजनीतिक बन्दियोंके मनमें कोई कटुता होती तो वह इससे दूर हो जाती, क्योंकि वे यह अनुभव करते कि उनको स्व० देशबन्धुके सम्मानार्थ मुक्त किया गया है और उनपर जो विश्वास किया जाता वे उसे भंग न करते। और यह सरकारकी सबसे बड़ी नैतिक विजय होती और उससे बातचीतके लिए वातावरण बन जाता। किन्तु नहीं। लॉर्ड बर्कनहेडने कहा कि वैरभाव दूर करनेके उद्देश्यसे भारतीय जो भी सुझाव दें वे उसपर विचार करनेके लिए तैयार हैं; किन्तु जो सुझाव दिया गया है वह व्यावहारिक नहीं है। मैं आपसे कहता हूँ कि मैंने जो सुझाव दिया है, उससे अधिक व्यावहारिक सुझाव देनेकी सूझबूझ मुझमें नहीं है। किन्तु वह रद्दीकी टोकरीमें फेंक दिया गया है। इसलिए यदि ये छोटी-छोटी चीजें नहीं मिल सकती तो उस बड़े भारतीय राष्ट्रमण्डल विधेयकपर विचार करनेसे क्या लाभ? श्रीमती बेसेंट प्रबल आशावादी हैं, और यद्यपि उनकी दिशा विपरीत है, वे मेरी ही तरह यह सोचती हैं कि उन्हें कार्य जारी रखना ही चाहिए।

एक अन्य मित्रने पूछा है कि आप संक्रमण-कालके लिए क्या सुझाते हैं; उदाहरणार्थ यदि हम अपना 'आंग्ल' विशेषण त्याग दें और कांग्रेसमें सम्मिलित हो जायें तो आप क्या करेंगे? उस अवस्थामें कुछ छोटे-मोटे विशिष्ट अधिकार, जो हमें इस समय प्राप्त हैं, छिन जायेंगे और उनके बदले हमें कुछ न मिलेगा।

यह प्रश्न अत्यन्त उचित है। आप कहते हैं कि कुछ बातोंके सम्बन्धमें आप यूरोपीयोंके वर्गमें रखे गये हैं। मैंने आपसे कहा है कि आप इन विशिष्ट अधिकारोंको त्याग दें। आपने 'भारतीय सहायक सेना' के लिए अपनी पात्रताका उल्लेख किया है। मैं सुझाव देना चाहता हूँ कि आप गर्वपूर्वक कहें: 'हम इनमें से कोई विशिष्ट

अधिकार नहीं लेंगे। ये तो हमें पतित और दरिद्र बनाते हैं।' मैं चाहता हूँ कि आप जनसाधारणकी दृष्टिसे विचार करें; आंग्ल-भारतीय अधिकारियों और धर्माचार्योंकी दृष्टिसे नहीं। आप लोगोंमें जो उच्चवर्ग है वह यूरोपीयोंमें मिलना चाहता है; किन्तु उसकी यह आकांक्षा पूरी होना असम्भव है। इसके विपरीत निम्नवर्ग इच्छा न होते हुए भी भारतीयोंमें मिल जायेगा। इस प्रकार अनिच्छापूर्वक मिलनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता। आप पूछेंगे कि स्वेच्छासे कैसे मिलें? मैं यह तो नहीं चाहता कि आप अपनी सुरक्षाके सम्बन्धमें कोई झूठा खयाल बनाकर उसमें डूब जायें; मैं तो आपसे यह कहूँगा कि आप अपने इस अस्वाभाविक रहन-सहनको त्याग दें। यदि आपके भारतीय हो जानेके बाद स्वयं भारतीय आपको धोखा दें तो आप भारतीयोंके विरुद्ध विद्रोह कर दें; किन्तु पुनः यूरोपीय बननेकी कामना न करें। मेरा अनुरोध है कि आपकी संख्या बहुत कम है, आप इस खयालसे आतंकित न हों। यह कभी-कभी एक विशेष लाभ होता है। मैंने तो इतनी बार कहा है कि मुझे केवल अकेले रह जाना भी पसन्द है, क्योंकि यह कृत्रिम बहुमत, जो मेरे प्रति जनसाधारणकी श्रद्धाका परिणाम है, मेरी प्रगतिके पथमें एक रोड़ा है। यदि मेरे पथमें यह रोड़ा न होता तो मैं आज ही सरकारकी सत्ता माननेसे इनकार कर देता। मैं अन्धा पूजाभाव पाकर तो गर्वसे फूल सकता हूँ और न पूजाभाव प्राप्त करनेके लिए अपने सिद्धान्तका रंच-मात्र त्याग ही कर सकता हूँ। यहाँ अंग्रेजोंकी संख्या अत्यल्प है। उनको यह भय नहीं है कि वे हड़प लिये जायेंगे। यह सच है कि उनकी सुरक्षाकी भावनाके पीछे संगीनोंका बल है। किन्तु यदि उन्हें समय रहते चेतावनी न दी गई तो यह बल उन्हें बर्बाद कर देगा। आप या तो अपने आत्मबलपर निर्भर रह सकते हैं या शस्त्र-बलपर। किन्तु आप अपने वर्तमान पतनको तो किसी भी हालतमें सहन नहीं करना चाहेंगे।

उनसे एक प्रश्न यह किया गया कि क्या आप आशावादी हैं और यदि आशावादी हैं तो आप भविष्यके सम्बन्धमें निराश क्यों हैं, क्योंकि लॉर्ड बर्कनहेड तो सदा पदारूढ़ नहीं रहेंगे? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा :

मैं तो अदम्य आशावादी हूँ; क्योंकि मैं अपने ऊपर विश्वास रखता हूँ। यह बात बहुत बड़ी गर्वोक्ति लगती है; क्या नहीं लगती? किन्तु मैं यह अत्यन्त ही नम्रतापूर्वक कहता हूँ। मेरा विश्वास है कि ईश्वरकी शक्ति सर्वोच्च है। मैं सत्यमें विश्वास करता हूँ; अतः मुझे देश या मानवजातिके भविष्यके उज्ज्वल होनेमें कोई सन्देह नहीं। लॉर्ड बर्कनहेड कुछ भी कहें, मैं तो ईश्वरमें विश्वास करता हूँ और वह मनुष्योंकी अति-चतुराईको विफल बनाता रहता है। वह जबर्दस्त जादूगर है और मैंने अपने-आपको उसीके हाथों अर्पित कर दिया है। किन्तु वह काम लेनेमें बड़ा सख्त है। आप अपनी पूरी शक्तिसे काम करेंगे, तभी वह आपको स्वीकार करेगा। मेरी दृष्टिमें सरकारमें परिवर्तन होनेका कोई अर्थ नहीं है। मैं तो आशावादी हूँ; क्योंकि मैं अपने-आपसे कई चीजोंकी अपेक्षा रखता हूँ। मैं जानता हूँ कि वे मेरे पास नहीं हैं, क्योंकि मैं अभी पूर्ण नहीं बन पाया हूँ। यदि मैं पूर्ण मनुष्य होता तो आपको

समझानेकी भी मुझे जरूरत नहीं होती। मैं जब पूर्ण मनुष्य हो जाऊँगा, तब मुझे बात कहनेकी देर न होगी कि राष्ट्र उसे सुन लेगा। मैं इस पूर्णताको सेवाके द्वारा प्राप्त करना चाहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-८-१९२५

२७९. टिप्पणियाँ

दादाभाई शताब्दी

दादाभाई नौरोजीकी सौवीं जयन्ती आगामी ४ सितम्बरको पड़ती है। श्री भरूचाने समयपर ही हमें इसकी याद दिला दी है। दादाभाईको उनके जीवनकालमें हम भारतका पितामह कहते थे और यह ठीक भी था। वे भारतीय राष्ट्रीयताके जन्मदाता थे। सबसे पहले उन्होंने ही कांग्रेसकी शब्दावलिमें 'स्वराज्य' शब्द जोड़ा था। वे स्वराज्यके उतने ही बड़े पैरोकार थे जितने कि स्वयं लोकमान्य। देशके प्रति उनकी सेवा सुदीर्घ, अविचल और निःस्वार्थ थी। उन्होंने हमको जनताकी दरिद्रताको ठीक-ठीक समझना सिखाया। इस विषयके सम्बन्धमें लिखे गये उनके लेख भारतीय देशभक्तोंके लिए आज भी पाठ्यपुस्तककी भाँति हैं। उन्होंने जो आँकड़े पेश किये थे वे आज भी अकाट्य हैं। उनके चरित्रपर कहीं कोई दाग नहीं। भारतमाताके इस एक उच्चादर्शपूर्ण पुत्र दादाभाई नौरोजीकी जन्म-शताब्दी हम किस रूपमें मनायें? कांग्रेसके झण्डेके नीचे आ चुकनेवाले सभी स्थानोंमें सभाओंका आयोजन तो होना ही चाहिए। मैं चाहता हूँ कि ये सभाएँ कामकाजी किस्मकी हों; और हमें निश्चित रूपसे अपने ध्येयकी ओर थोड़ा आगे ले जा सकें। हालाँकि दादाभाई पूरी तौरपर शिक्षित भारतके ही प्रतिनिधि थे, फिर भी उनको जनताका पूरा-पूरा खयाल था और वे उसके हितकी बात ही सोचते थे। उनकी आत्मा जनतामें ही रमी रहती थी। उन्होंने जिस स्वराज्यका सपना देखा था उसमें आम जनताका आर्थिक उत्थान भी शामिल था। चरखे और खद्दरके अलावा अन्य कौन-सी ऐसी चीज है जो समाजके उच्च वर्गोंको सर्वसाधारणके अधिक निकट ला सकता है? मेरा सुझाव है कि इन सभाओंमें देशबन्धु-स्मारक, चरखा और खद्दरके इस्तेमालके बारेमें प्रस्ताव पास किये जा सकते हैं। जहाँ भी खद्दरका अतिरिक्त भण्डार मौजूद हो, वहाँ स्वयंसेवक घूम-घूमकर खद्दर बेचनेके लिए एक पूरा दिन निश्चित कर सकते हैं। और जिन लोगोंके पास अवकाश हो, वे आजसे ही रोज दिनभर बढ़िया किस्मका सूत कातनेमें लगा सकते हैं और फिर उसे इन सभाओंमें राष्ट्रको अर्पित कर सकते हैं।

ये मेरे सुझाव ही हैं। जरूरी नहीं कि इनको सभी लोग स्वीकार कर लें। जिन लोगोंको ये पसन्द आयें वे अपने ढंगसे चल सकते हैं; पर आशा है कि सभी दल इस जन्म-शताब्दीको बिना किसी भेदभावके यथोचित ढंगसे मनायेंगे।

चीनकी दुर्गति

मैं आशा करता हूँ कि 'यंग इंडिया' के पाठकोंने कैंटन (चीन)की राष्ट्रीय सरकारके परराष्ट्र विभागके अधिकारीका भेजा लम्बा तार अन्य पत्रोंमें पढ़ ही लिया होगा। यह तो स्पष्ट ही है कि वह दुनियाके कई देशोंमें भेजा गया है।

मैं नहीं कह सकता कि चीनको उसकी इस विपत्तिमें भारतवर्ष क्या सहायता दे सकता है। हमें तो खुद ही सहायताकी आवश्यकता है। यदि अपने घरके काम-काजमें हमारी कुछ चलती होती तो हम भारतीय सिपाहियोंकी बन्दूकोंसे चीनके निर्दोष विद्यार्थियों तथा अन्य लोगोंके अन्धाधुन्ध भूने जानेके इस अपमान और पतन-कारक दृश्यको — यदि तारमें वर्णित कथाको सच मानें तो — कभी सहन नहीं कर सकते थे। फिलहाल हम तो सिर्फ परमात्मासे यही प्रार्थना कर सकते हैं कि वह उन्हें इन तमाम विपत्तियोंसे उबारे। परन्तु चीनकी स्थिति हमें इस बातकी याद दिलाती है कि हमारी यह गुलामी अकेले हमको ही हानि नहीं पहुँचा रही है, हमारे पड़ोसियोंको भी इससे हानि पहुँचती है। इससे यह बात भी बड़े जोरके साथ प्रत्यक्ष होती है कि भारतवर्षको अकेले उसीकी लूटके लिए पराधीन नहीं रखा जा रहा है, बल्कि उससे ग्रेटब्रिटेन महान् और प्राचीन चीन देशको लूटनेमें भी समर्थ बनता है।

यदि किसी जिम्मेवार चीनवासीके हाथमें ये पंक्तियाँ पहुँच जायें तो मैं उसका ध्यान उन साधनों और उपायोंकी ओर दिलाना चाहता हूँ, जिनका उपयोग हम यहाँ भारतमें कर रहे हैं। वे हैं अहिंसा और सत्य। चीनी इस बातको समझ लें कि संख्याके लिहाजसे उनका राष्ट्र पृथ्वीपर सबसे बड़ा है। उनकी प्राचीन परम्परा गौरव-शाली है और वे हमारी तरह पौरुषहीन भी नहीं बनाये जा चुके हैं। यदि वे सिर्फ अहिंसा और सत्यकी नीतिका अनुसरण करें तो उनकी विजय केवल निश्चित ही नहीं बल्कि बहुत निकट समझिए। निश्चय ही ४० करोड़ आत्माओंके राष्ट्रको यूरोपीयों तथा जापानियोंकी महत्वाकांक्षाके बोझसे कुचले जानेकी कोई आवश्यकता नहीं। चीन अपने बिलकुल आन्तरिक शान्तिमय प्रयत्नोंके द्वारा बाहरी लूटसे अपनेको मुक्त कर सकता है। यदि वह विदेशी मालके बहिष्कारमें सफल हो जाये तो इससे विदेशी सत्ताओंके सामनेसे, जिस प्रलोभनके लिए वे उसपर अपना आधिपत्य कायम रखना चाहते हैं, वह दूर हो जायेगा।

अखिल भारतीय चरखा संघ

कांग्रेसके मुख्यतः राजनीतिक संस्था बन जानेके बाद भी यदि वह किसी-न-किसी रूपमें जनताका प्रतिनिधित्व करना चाहेगी तो भारतमें चरखा संघ स्थापित किये बिना काम न चलेगा। चरखा संघ मताधिकारके कताई-सम्बन्धी अंशको नियमित और विकसित करेगा तथा कताई सदस्योंके दिये गये सूतको ग्रहण करेगा और केवल हाथकताई और खादीपर अपनी शक्ति केन्द्रित करेगा।

यदि इसकी स्थापना हुई तो यह संघ एक बिलकुल व्यावसायिक संस्था होगी। उसे एक स्थायी मण्डल होना चाहिए और कांग्रेसकी राजनीतिके उतार-चढ़ावका उसपर

किसी तरह कोई असर न होना चाहिए। इसलिए उसका कार्याधिकारी मण्डल भी काफी स्थायी किस्मका होना चाहिए। उसे खादी सेवासंघ भी कायम करना होगा। वह दूर-दूरके देहातमें चरखेका सन्देश ले जाकर ग्राम-संगठनका प्रतिनिधि होगा और उसे विकसित करेगा तथा पहली बार देहातियोंसे धन खींचकर शहरोंमें ले जानेके बजाय देहातियोंकी आयमें वृद्धि करेगा। इसके द्वारा हम शान्तिके साथ देहातोंमें प्रवेश करेंगे और कुछ समय बाद वहाँसे वास्तविक राष्ट्रीय जीवनका प्रवाह शुरू हो जायेगा। इसे एक ऐसा जबरदस्त सहयोगी-प्रयत्न होना चाहिए जैसा कि दुनियामें अभीतक नहीं हुआ। इसमें यदि बुद्धिका पर्याप्त प्रयोग किया गया, साधारण त्यागसे काम लिया गया, ईमानदारीका अवलम्बन किया गया और धनवानों और मध्यम वर्गके लोगोंकी तरफसे साधारण सहायता भी प्राप्त हो गई तो इसकी सफलता निश्चित है। देखें, भारतके भविष्यमें क्या बदा है।

एक गलतफहमी

एक प्रतिष्ठित मुसलमान सज्जनने एक अन्य व्यक्तिकी मार्फत, जो हम दोनों ही का मित्र है, मुझे दो प्रश्न भेजे थे जिनपर १६ जुलाईके[1] 'यंग इंडिया' में चर्चा की गई थी। इनके सम्बन्धमें इस मित्रने मुझे लिखा है कि मैंने दूसरे प्रश्नको गलत समझा है।

> यदि उन्होंने वह प्रश्न पूछा होता तो मैं आपको उसका उत्तर देनेके लिए एक मिनट भी बर्बाद करनेके लिए न कहता। यदि कोई मुसलमान आपसे वह प्रश्न पूछे तो वह स्पष्ट उसकी अशिष्टता ही होगी, लेकिन उस बेचारेने अपना दूसरा प्रश्न उस रूपमें पूछा ही नहीं था। उसने तो यही कहा था, 'महात्माजी दोनों सम्प्रदायोंके बीच प्रेम और एकताकी बात करते हैं, किन्तु इस समय इससे काम नहीं चलेगा। उन्हें अभीष्ट एकता प्राप्त करनेके लिए कोई ठोस योजना बनानी पड़ेगी, कोई ऐसी योजना जो बंगालमें श्री चित्तरंजन दास द्वारा किये गये समझौतेसे मिलती-जुलती हो।'

मुझे दुःख है कि मैंने प्रश्नको गलत समझा, यद्यपि मेरा खयाल यह है कि उस प्रश्नको मैंने जिस रूपमें समझा था उससे मैं इतना चौंक गया था कि मैंने अपने मित्रसे उसे दूसरी बार लिखनेके लिए कहा था। फिर भी यदि प्रश्नकर्ता मित्रने दिल्ली सम्मेलनकी कार्रवाई और उसमें रखी हुई मेरी ठोस योजना पढ़ी और समझी होती तो इस प्रश्नको वर्तमान रूपमें भी पूछनेकी जरूरत नहीं थी। मैं उस योजनापर अब भी कायम हूँ और महसूस करता हूँ कि जब हममें फिर समझ आ जायेगी तब हमें इसीका आश्रय लेना पड़ेगा। संक्षेपमें योजना इस तरह है: एक निर्वाचक मण्डल ऐसे मताधिकारके अन्तर्गत बनाया जाना चाहिए जिसमें वे सब लोग आ जायें जो मतदाता सूचीमें शामिल किये जानेकी जिम्मेदारियोंको समझ सकते हों और जो संख्याकी दृष्टिसे

१. यहाँ ९ जुलाई होना चाहिए। देखिए "टिप्पणियाँ", ९-७-१९२५का उपशीर्षक "दो कठिनाइयाँ"।

एक जातिका दूसरीके साथ जो अनुपात है उसका ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करते हों। फिर भी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वको कानूनन मान्यता न दी जाये। मुसलमानोंको कितने अनुपातमें प्रतिनिधित्व दिया जाता है, इसकी चिन्ता मुझे कभी नहीं रही। मैं केवल एक चीजसे बचना चाहता हूँ और वह है भेदभावको कानूनी मान्यता देना। मैं नहीं चाहता कि सरकार विभिन्न जातियोंके प्रतिनिधित्वको निश्चित करे और उसके अमलकी व्यवस्था करे। हममें आपसमें चाहे फूट भी हो, अगर हममें सच्ची राष्ट्रीय चेतना है तो हम अवश्य ही सरकारके सम्मुख एक मत होकर, एक स्वरसे अपनी बात रख सकते हैं। सरकारकी दृष्टिमें मुसलमान, हिन्दू, ईसाई, सिख, पारसी, ब्राह्मण या अब्राह्मणका कोई भेद नहीं रहना चाहिए। उसके लिए तो हम सबको राष्ट्रवादी ही होना चाहिए। सम्भव है, यह हल सभीको मंजूर न हो; किन्तु यह तो नहीं कहा जा सकता कि मैं प्रेम और एकताकी बात करता हूँ, पर कोई ठोस योजना पेश नहीं करता। मैं इस योजनाको स्वीकार करानेके लिए आन्दोलन नहीं करता, क्योंकि मैंने यह बात मान ली है कि दोनों जातियोंके नेताओंपर मेरा प्रभाव नही रहा है।

कांग्रेसमें भ्रष्टाचार

मेरे पास हफ्ते-दर-हफ्ते शिकायत-भरे ऐसे पत्र आते रहते है जिनमें कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंमें फैले हुए भ्रष्टाचार और अनुशासन हीनताकी और कुछ स्वार्थसेवियों द्वारा संस्थाका इस्तेमाल किये जानेकी शिकायतें रहती हैं। इस तरहका सबसे हालका पत्र देखिये। पत्रपर लेखकके हस्ताक्षर बाकायदा मौजूद हैं:

> ...कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष...ने कांग्रेसके लगभग १,३०० सदस्य बनाये, लेकिन उन्होंने न तो चन्दा जमा कराया और न ही कोई हिसाब दिया।
>
> मन्त्री और...उचित-अनुचितका कोई खयाल किये बिना कमेटीकी वार्षिक बैठक बहुत दिनोंसे इसलिए नहीं बुला रहे हैं कि कहीं उनको पदसे हटा न दिया जाये। नियमोंकी कोई परवाह न करते हुए, मंजूरी लिये बिना ही अदायगियाँ कर रहा है;...काफी बदनाम आदमी है वह चन्दा इकट्ठा करता है पर ऊपरके अधिकारियोंको उसका कोई हिसाब नहीं देता।

उपर्युक्त अभियोगपत्रमें कई अन्य आरोप लगाये गये हैं। यह शिकायत भी आई है कि देशमें कई जगहोंपर कांग्रेस कमेटियाँ जनतासे प्राप्त धनको कुछ ऐसी मदोंपर खर्च करती रहती हैं जिनपर वह खर्च नही कर सकती। आशा है कि जिम्मेदार कांग्रेसी लोग अपने-अपने संगठनोंकी जाँच करेंगे और भ्रष्टाचार या गबन दिखाई पड़नेपर उसका भण्डाफोड़ करने तथा उसे दूर करनेका प्रयत्न करेंगे।

देशबन्धु और हाथकताई

श्रीयुत प्रिय रायने एक नई किस्मका चरखा तैयार किया है और वे उसे बिलकुल निर्दोष बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। चरखेके बारेमें उन्होंने लिखा है:

> मेरी इच्छा है कि मैं आपको यह भी बतला दूँ कि देशबन्धु मेरे चरखेके बारेमें क्या सोचते थे और उसे किस रूपमें देखना चाहते थे। मैंने उनको

अपने चरखेके सूतसे तैयार कम्बल, दरियाँ, कोटके कपड़े और अन्य कई कपड़े दिखलाये थे और मुझे उनके सामने खुलकर अपनी भावनाएँ व्यक्त करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मुझे भुलाये नहीं भूलता कि उन्होंने कितने उत्साह और ध्यानके साथ चरखे और कताईके बारेमें बातें कीं और सुनी थीं। उन्होंने ही मुझे समझाया था कि शिक्षित नवयुवकोंमें भी चरखेको लोकप्रिय बनानेकी अपार सम्भावनाएँ मौजूद हैं। चरखेमें मैंने जो थोड़ा-सा सुधार किया है, उसे देखकर उनको सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई थी और अपने स्वभावके अनुरूप ही उन्होंने मुझसे एक ऐसी योजना तैयार करनेका अनुरोध किया था जिसके अन्तर्गत वे मेरे चरखेको शुरूमें प्राथमिक पाठशालाओंमें और बादमें बड़े-बड़े क्षेत्रोंमें चालू करा सकें। इसका खर्च कलकत्ता निगमको उठाना था। मेरे पास तब वैसी कोई योजना तैयार नहीं थी और इसके तैयार होनेसे पहले ही कालने उनको हमसे छीन लिया। अब पता नहीं इस योजनाको अमली रूप दिया भी जा सकेगा या नहीं, पर मैं इतना अवश्य कह देना चाहता हूँ कि जो भी इस कामको आगे बढ़ायें, मैं उनको अपनी विनम्र सेवाएँ अर्पित करनेको तैयार हूँ।

मैं इस चरखेको जानता हूँ। इसे कुर्सीपर बैठे-बैठे पैरोंसे चलाया जा सकता है और दोनों हाथ खाली रह सकते हैं। परन्तु अभी मैं सार्वजनिक उपयोगके लिए इसकी सिफारिश नहीं कर सकता, क्योंकि यह प्रति घंटे जितना सूत कातता है वह साधारण चरखेसे कहीं कम रहता है।

प्रियबाबूके चरखेसे प्रति घंटे अधिकसे-अधिक ३०० गज सूत काता जा सकता है, जबकि खादी प्रतिष्ठान द्वारा तैयार चरखेसे ८५० गजतक काता जाता है। यदि प्रियबाबू इसमें कुछ ऐसा सुधार कर सकें जिससे कि इसके द्वारा खादी प्रतिष्ठानके चरखेके मुकाबले ज्यादा सूत काता जा सके तो फिर इसे लोकप्रिय बनानेमें कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

बहुत महँगा

जमशेदपुरके एक पत्रलेखकने लिखा है कि खद्दर साधारण लोगों या मध्यम-वर्गके लोगोंके लिए बहुत महँगा है; यह ज्यादा नहीं टिकता; यह बहुत जल्दी मैला हो जाता है और इसे साफ करनेमें अतिरिक्त खर्च आता है। उन्होंने आगे लिखा है कि क्या आप कृपा करके विस्तारसे यह बतायेंगे कि इस स्थितिमें हम जैसे लोग खद्दर कैसे पहन सकेंगे?

यद्यपि इस तरहके सवालोंका जवाब इन पृष्ठोंमें पहले दिया जा चुका है, फिर भी उन्हें बार-बार दोहराना व्यर्थ नहीं जायेगा। इस समय एक गज खद्दर निस्सन्देह मिलके एक गज कपड़ेसे महँगा है। लेकिन मेरा अनुभव प्रायः यह है कि जिन लोगोंने खद्दर अपना लिया है उसकी पोशाकमें जाने या अनजाने सादगी आ गई है। वे जब मिलका कपड़ा पहनते थे तब उन्हें जितने कपड़ेकी जरूरत पड़ती थी, उन्हें अब

खद्दर पहननेपर उतने कपड़ेकी जरूरत नहीं रहती। खद्दर मिलके कपड़ेके बराबर नहीं चलता, ऐसा अनुभव सभी लोगोंका नहीं है। शुरू-शुरूकी हालतमें हाथका कता सूत कम बटदार होता था। इसलिए उस सूतसे बना हुआ खद्दर निस्सन्देह टिकाऊ नहीं होता था। लेकिन अब उसकी किस्म बेहतर हो गई है। मैं समझता हूँ कि यदि खद्दर घरपर धोया जाये तो वह धोबीसे धुलाये जानेकी अपेक्षा दूना ज्यादा चलेगा। मैं मानता हूँ कि यदि खद्दर धुलनेके लिए धोबीको दिया जाता है तो उसकी धुलाई-का खर्च मामूली सूती कपड़ेकी धुलाईके खर्चसे ज्यादा आयेगा। इसका एकमात्र उपाय यह है कि खद्दर घरपर ही धोया जाये। इसमें परेशानी माननेकी जरूरत नहीं है। खद्दरको रात-भर साबुनके पानीसे भिगोकर रख देनेसे वह बहुत जल्द बिलकुल साफ हो जाता है।

पत्रलेखक जब यह कहते हैं कि खद्दर बहुत जल्दी मैला हो जाता है तब मेरा खयाल है कि उनका मतलब यही होता है कि सफेद होनेसे उसपर मैल ज्यादा दिखता है। यदि उस मैलको छिपानेका खयाल हो तो इसका उपाय यह है कि जिस तरह मिलके कपड़ेको रँगा जाता है, बिलकुल उसी तरह इसको भी रंग लिया जाये। इस समय रंगीन खद्दर बहुत बड़ी मात्रामें उपलब्ध है। लेकिन मैं यह बात मान लेता हूँ कि यदि मध्यमवर्गके लोग कीमत और दूसरी बातोंमें खद्दरकी तुलना मिलके बने हुए कपड़ेसे करेंगे तो खद्दर लोकप्रिय नहीं बन सकता। मध्यमवर्गके लोगोंको खद्दरके उपयोगकी प्रेरणा राष्ट्रीयताके विचारसे मिलनी चाहिए और उनसे आशा की जाती है कि वे उसको लोकप्रिय बनानेके लिए स्वयं असुविधा भी सह लेंगे।

यदि सरकार जनताकी होती तो वह कानून बनाकर खद्दरकी रक्षा करती। लेकिन यह देखते हुए कि सरकार विदेशी है और यदि वह खद्दरकी विरोधी नहीं है तो उसके प्रति उदासीन अवश्य है। खद्दरके राष्ट्रीय महत्त्वमें विश्वास रखनेवाले लोगों-का कर्त्तव्य है कि वे असुविधाएँ सहन करके और ज्यादा खर्च उठाकर भी खद्दरको जितना चाहिए उतना संरक्षण दें। खद्दरको इस प्रकार संरक्षण देनेकी जरूरत भारतमें उसके सर्वत्र फैल जानेतक रहेगी। केवल ५ वर्ष पहले मैंने बहुत मोटा और खराब बुना हुआ खद्दर १७ आने गज बेचा था। अब उतना बुरा खद्दर कहीं दिखाई नहीं पड़ता। इसका विकास आश्चर्यजनक तेजीके साथ हुआ है, यहाँतक कि भारतके उसी भागमें उससे अच्छा खद्दर अब नौ आने गज बिकता है। खद्दरकी कीमत कम करनेका पूरा प्रयत्न किया जा रहा है और यदि अखिल भारतीय देशबन्धु चरखा स्मारक सफल हो जाता है, और जो योजना इस समय विचाराधीन है वह कार्यान्वित कर दी जाती है तो मुझे आशा है कि कीमतें और गिर जायेंगी।

मैं चाहता हूँ कि पाठक उस बातको याद करेंगे जो मैंने चटगाँवमें कही थी। वह यह थी कि यदि खद्दर महँगा है तो स्वतन्त्रता उससे भी ज्यादा महँगी है और जो व्यक्ति जनसाधारणसे सहानुभूति रखता है वह यह नहीं चाहेगा कि उसे संक्रमण-कालमें खद्दरके लिए जो ज्यादा कीमत देनी पड़ती है वह जनसाधारणको न मिले।

अपमान और चरखा

एक पत्रलेखक लिखता है:

> सौभाग्य या दुर्भाग्यसे एक धनी आदमीकी, जो एक सरकारी पदाधिकारी है, कुछ दिन पहले मुझसे मारपीट हो गई। इससे मेरी भावनाओंको ठेस पहुँची और उसने मुझे हरजाना दिया। मुझे उससे हरजानेके रूपमें १० रुपये लेनेके लिए मजबूर होना पड़ा। मैं यह सोचता हूँ कि इस रकमका सर्वोत्तम उपयोग यही होगा कि मैं इसे आपको भेज दूँ और आप कृपा करके इससे उन लोगोंके लिए, जो सचमुच पात्र हों, चरखा खरीद दें।

दानी व्यक्तिने जो यह बुद्धिमानी-भरा निर्णय किया है इसपर उसे मैं बधाई देता हूँ। चूँकि यह पत्र मुझे उस दिन मिला जिस दिन मैंने अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारकके लिए अपील प्रकाशित की और चूँकि इस स्मारकका उद्देश्य चरखेका सन्देश फैलाना है, इसलिए मैं इस रकमको खजाँचीको भेज रहा हूँ ताकि इस रकमसे जितने चरखे मिल सकें खरीदकर सुपात्रोंको दे दिये जायें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-७-१९२५

२८०. कांग्रेस और राजनैतिक दल

मैं श्री सत्यानन्द बोसके पत्रका नीचे लिखा अंश सहर्ष छाप रहा हूँ। बोस महाशय एक परखे हुए कांग्रेसी हैं और मेरा उनसे परिचय तभीसे है जब मैं दक्षिणी आफ्रिकामें था और जब उन्होंने मेरे स्वर्गीय साथी सोराबजी अडाजानियाकी सहायता दी थी।

> आपके कांग्रेसको स्वराज्यदलको सौंपनेके प्रस्तावसे लोगोंके मनमें कुछ आशंका पैदा हुई है।
>
> कहा जा रहा है कि अबसे कांग्रेस स्वराज्यदल संगठनका पुछल्ला बन जायेगी और देशके सार्वजनिक जीवनमें उसका वैसा प्रमुख स्थान नहीं रहेगा। आपने उससे पिछले साल जो करार किया था उसमें कहा गया था कि स्वराज्य-दल केन्द्रीय विधान सभामें तथा प्रान्तीय विधानसभाओंमें कांग्रेसकी तरफसे काम करेगा। उसे देखते हुए यह आशंका और भी समुचित जान पड़ती है।
>
> निस्सन्देह, आपने उस पिछले करारको रद कर दिया है। परन्तु यह आशंका भी की जा रही है कि एक नये करारके द्वारा स्वराज्यदलको 'खुले शब्दों' में कांग्रेसके संचालन और नियन्त्रणका अधिकार दे दिया जायेगा।
>
> मैं खुद तो इस बातपर विश्वास नहीं कर सकता कि आप या पण्डित मोतीलाल नेहरू इस मार्गको अपनानेका विचार करते हैं।

यह बात निर्विवाद है कि कांग्रेसमें और उसके बाहर स्वराज्यदलका बहुमत है; इसलिए अभी तो अंशतः कांग्रेसपर उसीका नियन्त्रण रहेगा। परन्तु यह स्थिति उस करारसे भिन्न है जो उस दलको, अन्य तथ्यों और विचारोंका खयाल न करें तो भी, प्रधान स्थान दे देगा।

कांग्रेस ब्रिटेनकी पार्लियामेंटकी तरह होनी चाहिए। ब्रिटेनकी पार्लियामेंटमें विभिन्न राजनीतिक दलोंके लोग रहते हैं और जिनका उस समय बहुमत होता है वे उसके कामोंका संचालन और नियन्त्रण करते हैं। यह स्थिति चुनावके परिणामस्वरूप होती है; वह किसी बाहरी करारके द्वारा उत्पन्न नहीं होती। हमारी राष्ट्रीय कांग्रेसमें भी ऐसी ही वैधानिक व्यवस्था होनी चाहिए।

मेरा अनुरोध है कि आप अपनी स्थिति स्पष्ट करें। जो लोग स्वराज्यवादी नहीं हैं उनको भी कांग्रेसमें आनेकी प्रबल इच्छा हो रही है। आशा है, उनके रास्तेमें रुकावट डालनेवाला कोई काम नहीं किया जायेगा।

कांग्रेस पहलेकी तरह ही प्रधान राष्ट्रीय संस्था रहनी चाहिए — फिर इस समय उसकी बागडोर चाहे किसी भी दलके हाथमें रहे।

पुनश्च :

लिखित करार कृत्रिम, अवैधानिक और अनावश्यक होते हैं और उनका फल मतभेद और फूट होता है। करार बदले तो जा सकते हैं, परन्तु मैं कहता हूँ कि करारकी जरूरत ही क्या है?

मैं नहीं समझता कि पण्डित मोतीलाल नेहरूके नाम लिखे मेरे पत्रमें कोई ऐसी बात है जिससे सत्यानन्द बाबूके पत्रमें व्यक्त शंका उत्पन्न हो सकती हो। मेरे उस पत्रका आशय सिर्फ इतना ही था कि मेरे कारण बेलगाँवमें कांग्रेसके विशुद्ध राजनैतिक कार्योंपर जो रोक लगाई गई थी वह हटा दी जाये।

पिछले वर्ष मेरी यह राय थी कि यदि भारतका शिक्षित समुदाय अपनी सारी शक्ति रचनात्मक कार्यक्रममें केन्द्रित कर दे और उसे अपना प्रधान कार्य बना ले तो हम स्वराज्यके बहुत नजदीक पहुँच जायेंगे। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मेरी यह राय अभीतक कायम है। परन्तु मैं कुबूल करता हूँ कि मैं लोगोंको इस बातका पूरी तरह विश्वास करानेमें सफल नहीं हो पाया हूँ। ऐसी हालतमें मुझ-जैसे आदमीको, जिसने अपना हित जनसाधारणके हितसे एक कर रखा है और जिसका समस्त शिक्षित समाजके विचारसे मूलभूत मतभेद है, कांग्रेसका विकास और मार्गदर्शन नहीं करना चाहिए; बल्कि शिक्षित भारतीयोंको इसे करने देना चाहिए और उनके कार्यमें कोई बाधा नहीं डालनी चाहिए। मैं उनपर अपने विचारोंका असर अब भी डालना चाहता हूँ, परन्तु कांग्रेसका नेतृत्व करके नहीं; बल्कि इसके विपरीत जहाँतक सम्भव हो चुपचाप उनके हृदयपर अपना प्रभाव डालकर — जैसा कि मैं १९१५ और १९१९के बीच करता था। भारतके शिक्षित समाजने भारी कठिनाइयोंके बावजूद देशकी जो महान् सेवा की है, मैं उसे स्वीकार करता हूँ। उनकी अपनी एक कार्यप्रणाली है

और उनका राष्ट्रीय जीवनमें अपना एक विशिष्ट स्थान है। अन्य लोग चाहे कुछ भी कहें, किन्तु मैं इस बातकी तरफसे अपनी आँखें नहीं मूँद सकता कि शासकोंके मनपर स्वराज्यदलके अनुशासनबद्ध प्रतिरोधका सिक्का बैठा है। मेरे लिए इस कार्य-में सहायता देनेका सबसे अच्छा ढंग यही हो सकता है कि मैं उनके रास्तेमें से हट जाऊँ और अपनी सारी शक्ति एकमात्र रचनात्मक कार्यमें लगा दूँ। मैं चाहता हूँ कि मैं इसे कांग्रेसकी सहायतासे और उसीके नामपर करूँ; किन्तु वहींतक करूँ जहाँतक भारतका शिक्षितवर्ग मुझे उसकी अनुमति दे।

मैं इस बातको मानता हूँ कि भारतके शिक्षित लोग ही कांग्रेसको गति देंगे, न कि मैं या वे जिन्होंने फिलहाल राजनैतिक दृष्टिसे विचार करना बन्द ही कर रखा है। मेरी रायमें हमारे राष्ट्रीय विकासमें दोनोंके लिए स्थान है और हर दल अपने-अपने दायरेमें रहता हुआ एक दूसरेके कार्यका पूरक और सहायक हो सकता है। चरखे और खादीमें मेरी श्रद्धा पूर्ववत् है। यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसमें देशके सबसे ज्यादा आगे बढ़े हुए नौजवानोंकी शक्तियाँ लग सकती हैं। यह एक ऐसा उद्योग है जिसके लिए एक नहीं, सौ नहीं, बल्कि हजारों स्त्री-पुरुषोंके एकाग्रचित से लगनेकी आवश्यकता है। मैं चरखे और खादीकी आवश्यकता या उपयोगिताके विवादमें पड़ना नहीं चाहता। अब समय आ गया है जब खादीके सम्बन्धमें जो-जो बातें मैंने कही हैं उनपर अमल करके दिखा दिया जाये और ऐसा करनेमें मैं सब इच्छुक लोगोंका सहयोग और सद्भाव प्राप्त करना चाहता हूँ। यह तभी हो सकता है जब मैं चरखेकी प्रवृत्तिको कांग्रेसके राजनैतिक अखाड़ेसे अलग कर लूँ। अतएव चरखा और खद्दर कांग्रेसमें अपने उस स्थानपर कायम रहेंगे जो कि राजनैतिक वृत्तिके लोग खुशीके साथ उसे दे सकते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकमें मेरी सलाह मान ली गई तो कांग्रेसके मार्गमें से राजनैतिक प्रचारकी रुकावट बिलकुल दूर हो जायेगी। और फलतः स्वराज्यदल अपने पृथक् संगठनके द्वारा नहीं, बल्कि खुद कांग्रेसके द्वारा ही अपना काम करेगा और यह वह किसी नये करारके अन्तर्गत नहीं, बल्कि अपने और मेरे बीच मौजूद इस समझौतेके तोड़ दिये जानेके और उसके फलस्वरूप कांग्रेसके संविधानमें और कांग्रेसके इस समझौतेको अमलमें लाने-वाले प्रस्तावमें सुधार कर दिये जानेके कारण करेगा। उस समझौतेने असहयोगको स्थगित करके तमाम राजनैतिक दलोंके लिए कांग्रेसका दरवाजा खोल दिया था। अब उस समझौतेके तोड़ दिये जानेपर वह दरवाजा और विस्तृत हो जायेगा, क्योंकि अब राजनैतिक वृत्तिके लोगोंके मार्गमें से कांग्रेसकी प्रवृत्तिको रचनात्मक कार्यक्रमतक ही मर्यादित रखनेकी बाधा हट जायेगी। वे स्वराज्यदलमें शामिल होनेसे हिचकते थे और मानते थे कि वे कांग्रेसमें अपनी शक्ति और योग्यताका पर्याप्त उपयोग नहीं कर सकते। परन्तु अब, इस प्रतिबन्धके दूर किये जानेपर वे चाहें तो पूरे उत्साहसे कांग्रेसमें शरीक हो सकते हैं, कांग्रेसके मंचसे किन्हीं भी राजनैतिक प्रस्तावोंको उप-स्थित कर सकते हैं और स्वराज्यवादियोंसे टक्कर लेकर उनपर तथा देशपर अपना प्रभाव डाल सकते हैं।

अब उनके रास्तेमें अनिवार्य कताई-सदस्यता बाधा नहीं डालेगी। उन्हें केवल अनिवार्य रूपसे खादीको अपनी राष्ट्रीय पोशाक मानना होगा। परन्तु सम्भव है कि अ० भा० कांग्रेस कमेटी मताधिकारके खादी-सम्बन्धी अंशको भी रद्द कर दे। यदि ऐसा अवसर भी आ जाये तो मैं उसके रास्तेमें बाधक न होऊँगा — हाँ, इसमें कोई शक नहीं कि इससे मुझे बहुत दुःख होगा, क्योंकि मैं मानता हूँ कि उस अवस्थामें शिक्षित भारत-वासी उस एकमात्र प्रत्यक्ष और ठोस कड़ीको भी तोड़ डालेंगे जो उन्हें आम जनतासे जोड़ती है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि अ० भा० कांग्रेस कमेटी खादीको कांग्रेसके मताधिकारमें स्थायी स्थान देगी। क्या हम घरेलू उद्योग-धन्धों और दस्तकारियोंको प्रोत्साहन नहीं देना चाहते? क्या हम उन लाखों बहनोंको, जो बेकार रहती हैं, और जो कुछ पैसे रोजी भी कमा सकें तो खुश होंगी, चरखेके द्वारा कुछ पैसोंकी आमदनी नहीं करने देना चाहते? मुझे मालूम हुआ है कि हाथकताई कांग्रेसके मता-धिकारमें पैसेके विकल्पके रूपमें कायम रखी ही जायेगी। मैं समझता हूँ कि इसपर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। ऐसी अवस्थामें यदि मेरे प्रस्तावोंको अ० भा० कांग्रेस कमेटी मंजूर कर लेगी तो हर शिक्षित भारतवासीके लिए कांग्रेसमें सम्मिलित होना और देशबन्धुकी मृत्यु और लॉर्ड बर्कनहेडके भाषणसे उत्पन्न परिस्थितिके अनुरूप एक संयुक्त राष्ट्रीय राजनैतिक कार्यक्रम बनाना शक्य हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-७-१९२५

२८१. कांग्रेसमें बेकारी

जब मैं अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारकके उद्देश्यके सम्बन्धमें मित्रोंसे विचार-विमर्श कर रहा था तब कुछ मित्रोंने कहा, 'जो लोग जेलमें हैं, या निर्वासित हैं, और कांग्रेसजन असहयोगके कारण बेकार हैं और भूखों मर रहे हैं उनके आश्रितोंकी सहायता करना इस स्मारकका एक-मात्र नहीं तो एक उद्देश्य क्यों नहीं हो?' बंगालमें रहते हुए मेरे सामने यही सवाल अनेक रूपोंमें आ चुका है। मेरी रायमें इस कार्यके निमित्त जिस कोषका सुझाव दिया गया है उसे देशके तमाम दलोंसे और सारे देशमें एकत्र करना सम्भव नहीं है। राजनैतिक कैदियों और नजरबन्दोंके कुटुम्बियोंके भरण-पोषणका सवाल ऐसा है जिसके लिए बड़े एहतियातसे काम लेनेकी जरूरत है और यह बात प्रान्तोंपर ही छोड़ देनी चाहिए कि हर प्रान्त उसे, अपनी स्थितिको देखते हुए जिस विधिसे हल करना अधिकसे-अधिक उपयुक्त समझे उस विधिसे हल करना तय करे। इस कामके लिए स्थायी कोष बनानेकी बातको भी मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती। मुझे इस विषयका दक्षिण आफ्रिकाका अमली तजरबा है और कुछ-कुछ यहाँका भी है। मैंने उससे यह देख लिया है कि बहुत बार कुपात्रोंको सहायता मिल जाती है और पात्र वंचित रह जाते हैं। किसी दूरवर्ती सम्भावित कार्यके लिए स्थायी कोष बनाना उन लोगोंके सामने एक प्रलोभन रखना है, जो दानके धनसे निर्वाह

करना बुरा नहीं समझते। मुझे बेईमानी करनेकी गुंजाइशोंसे बचनेके लिए दक्षिण आफ्रिकामें एक आश्रम स्थापित करना पड़ा था। उसमें जिन्हें सहायताकी आवश्यकता थी और जो उसके पात्र थे, ऐसे लोगोंके रहन-सहन और खानपानका और उनकी देखभालका इन्तजाम था। इस प्रबन्धके द्वारा हजारों रुपयोंका अपव्यय बचाया जा सका था। वहाँ हर सच्चे संकटग्रस्तको आश्रय दिया जाता था, प्रत्येक मनुष्यके प्रति पूर्ण न्याय किया जाता था, लोग आदर्श स्थितियोंमें रखे जाते थे, उनसे उपयोगी काम कराया जाता था और जो कुटुम्ब वहाँ रहते थे उनके बच्चोंको शिक्षा दी जाती थी। वहाँ इतना काम उस एक व्यवस्थासे ही सम्भव हो गया था। मैंने १९२१ की भारी हड़तालके बाद चटगाँवमें भी यही पद्धति सुझाई थी। जबतक राजनैतिक कैदियों या नजरबन्दोंकी व्यवस्थाके लिए मेरे सुझाये उपायों-जैसे शीघ्र-प्रभावकारी उपायोंसे काम न लिया जायेगा तबतक दानके धनके दुरुपयोगका खतरा रहेगा। सच्ची लड़ाई तो, यदि बड़े पैमानेपर होती है, तो आगे आयेगी। हम जो आजादी हासिल करना चाहते हैं हमें उसकी पूरी-पूरी कीमत चुकानी होगी और यदि हम भविष्यमें आनेवाले संकटकालके लिए सोच-विचारकर कोई समुचित योजना नहीं बनायेंगे तो हमारे सम्मुख आजादीकी लड़ाईमें भूखसे व्याकुल होकर असम्मानपूर्ण आत्मसमर्पण करनेकी सम्भावना रहेगी। इसीलिए मैं स्मारककी बातसे पृथक्, इस विषयके गुणावगुणके आधारपर, जिसे राजनैतिक संकट कहा जा सकता है उसमें फँसे लोगोंकी सहायतार्थ कोई स्थायी कोष बनानेके विरुद्ध हूँ।

बेकार कांग्रेसजनोंका प्रश्न इससे अधिक जरूरी और स्थायी प्रकारका है। यद्यपि हम इस विषयमें प्रस्ताव पास कर चुके हैं तथापि अबतक हम अखिल भारतीय कांग्रेस सेवामण्डल या प्रान्तीय सेवामण्डलतक स्थापित करनेमें सफल नहीं हो पाये हैं। इसका कारण संकल्प ही नहीं, बल्कि योग्यताकी कमी है। मैंने खुद इसे दो बार हल करनेकी चेष्टा की थी; परन्तु मैं मानता हूँ कि मैं कोई रास्ता नहीं निकाल सका। मैं न तो यह तय कर सका कि इस सेवाके अन्तर्गत अधिकसे-अधिक कितना पैसा दिया जाये और न इस सेवाका वर्गीकरण ही कर सका। ऐसी अवस्थामें जहाँ-कहीं ऐसी प्रणालीकी स्थापनाका प्रयत्न किया गया वहीं यह आवश्यक मालूम हुआ कि इस प्रश्नको हाथ न लगाया जाये और हर शख्सका मामला उसके गुणावगुणके आधारपर तय किया जाये। अभी शायद कोई नियमित सेवा मण्डल स्थापित करना तो सम्भव नहीं है, परन्तु मुझे इसमें कोई शक नहीं कि उसकी वेतन-दरें और पद्धति दोनों धीरे-धीरे बन रही हैं।

रचनात्मक कार्यकी दो शाखाएँ ऐसी हैं जिनमें कांग्रेसके सबसे अधिक कार्यकर्ता लगे हुए हैं। एक तो है खादी और दूसरी, जो खादीसे कुछ कम व्यापक है, शिक्षा है। परन्तु इन प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें भी हर प्रान्तको अपनी-अपनी योजनाकी जिम्मेदारी स्वयं ही लेनी होगी; और चूँकि ये सेवाएँ भी आम तौरपर स्थानीय लोगों द्वारा दिये गये चन्दोंपर ही निर्भर हैं, इसलिए यह सिद्धान्त यहाँ भी बहुत हदतक लागू होता है कि वही सेवाकार्य जीवित रहनेके योग्य है जिसके लिए स्थानिक जनोंकी

सहायता मिलती है, क्योंकि उस सेवाकी कद्रदानीकी कसौटी सेवित जनोंकी सहायता ही है। खुद कांग्रेसका अस्तित्व भी इसी बातपर अवलम्बित है कि उसके द्वारा एक स्थानिक आवश्यकताकी पूर्ति होती है। यह उस सरकारकी तरह नहीं है जो ऊपरसे लाद दी जाती है, और इसलिए जिनपर शासन करना चाहती है उनकी सहायतापर निर्भर नहीं होती। खादी-सेवा और शिक्षा-सेवा दोनोंके सम्बन्धमें हम यह मानकर चल रहे हैं कि सम्बन्धित लोगोंको लगातार काम करते जाना है और सेवा करनेकी अपनी योग्यता बढ़ाते जाना है। मैंने स्वयं अपने मार्गदर्शनके लिए सामान्यतः यह मान लिया है कि यदि इन दोनोंमें से किसी भी प्रवृत्तिके लिए स्थानिक सहायता नही मिलती तो इसका कारण उन सेवाकार्योंमें लगे हुए कार्यकर्ताओंमें कौशल या योग्यताका अभाव होता है। मेरे सामने ऐसे एक भी मनुष्यकी मिसाल नही है जो पात्र हो; किन्तु जो फिर भी भूखों मरा हो। मेरे सामने कांग्रेसके ऐसे कार्यकर्ताओंकी मिसालें मौजूद हैं जिनकी परिस्थिति विकट है, परन्तु जो वृत्तिके अनिश्चित होनेपर भी ईमानदारीसे जिन्दगी बसर कर रहे हैं। मुझे अन्देशा है कि इस स्थितिका सामना हम सबको क्रमशः और-और ज्यादा करना पड़ेगा, और भले ही हममें से कुछ लोगोंने अभीतक राष्ट्रीय जीवनमें आई हुई सादगी और सख्तीको बर्दाश्त करना नहीं सीखा हो और भले ही कुछ अपनी पुरानी आरामतलबीकी आदतोंकी वजहसे अपेक्षित सादगी और सख्तीको बर्दाश्त करनेके नाकाबिल हों, किन्तु मैं समझता हूँ कि यह बात तो स्पष्ट हो ही गई होगी कि अखिल भारतीय देशबन्धु-स्मारक संकटग्रस्त लोगोंको सहायता देनेवाली या कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंको धन्धा देनेवाली संस्थाका रूप क्यों नहीं ले सकता। हाँ, यह मानी हुई बात है कि इन स्मारकके वर्तमान उद्देश्यमें ये दोनों बातें अप्रत्यक्ष रूपसे आ जाती हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-७-१९२५

२८२. खेती बनाम खद्दर

एक एम० ए०, बी० एल० लिखते हैं:[1]

इस पत्रमें बेकारीका जो सवाल उठाया गया है उसपर मैंने दूसरी जगह विचार किया है। लेकिन चूँकि इस पत्रलेखकके अतिरिक्त अन्य लोगोंने भी खद्दरके सिलसिलेमें खेतीके प्रश्नको उठाया है, इसलिए मेरा अपने इस वकील पत्रलेखकके अनुरोधपर विचार करना शायद ठीक ही होगा।

मैं सबसे पहले उनको यह बता दूं कि उनका यह खयाल गलत है कि उन्हें अपने खेती सम्बन्धी प्रयोगको 'आश्चर्यजनक रूपसे सफल' बनानेके लिए केवल दो हजार रुपये ऋण लेनेकी ही जरूरत है। असल बात यह है कि खेतीके लिए भी

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें एक वकीलने गांधीजीसे बेरोजगारीकी समस्या हल करनेके उद्देश्यसे खेती और लघु उद्योगोंमें लगानेके लिए एक करोड़ रुपया इकट्ठा करनेका अनुरोध किया था।

उतना ही अध्यवसाय और अध्ययन जरूरी है जितना वकालतके लिए। पत्रलेखक इस भ्रममें भी पड़े मालूम होते हैं कि भारतमें खद्दरका सन्देश वस्त्रहीनोंको कपड़ा देनेके उद्देश्यसे प्रचारित किया जा रहा है। इसके विपरीत खद्दरका प्रयोजन भी ठीक वही है, जो धानका है। चरखेसे लाखों लोगोंको अतिरिक्त काम मिलेगा, *जिसका अर्थ* होगा अतिरिक्त आमदनी और इस आमदनीसे वे अपने उस नाकाफी आहारकी कमी पूरी कर सकेंगे। आज तो उनको पर्याप्त मात्रामें आहार भी सुलभ नहीं है।

भारतमें खेती कोई मृतप्राय धन्धा नहीं है। इसकी कमियाँ दूर करके इसमें सुधार करनेकी ही जरूरत है। लेकिन खेतीमें सुधार तभी सम्भव है जब यहाँ राष्ट्रीय सरकार हो। यहाँके जनसाधारणका एकमात्र धन्धा खेती है, पर इससे उन्हें अपने शरीर-निर्वाहके लिये समुचित रूपसे आवश्यक जीविका नहीं मिल पाती। इसलिये खेतीके क्षेत्रमें व्यक्तिगत रूपसे किये जानेवाले किसी भी प्रयासका जनतापर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि पत्रलेखक अपने धन्धेसे वस्तुतः ऊब गये हैं और उसे छोड़ना चाहते हैं, तो उन्हें शेखचिल्ली-जैसे मनसूबे नहीं बाँधने चाहिए। उन्हें सूत कातनेमें दक्षता प्राप्त करनी चाहिए और वे देखेंगे कि वे अपने निर्वाहके लिए ही सूत नहीं कात रहे हैं, बल्कि वैसी संस्थाओंके निर्माणमें लगे हैं जो बंगालमें सूत कातने और खद्दर बनानेका प्रचार करनेके लिए चलाई जा रही हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-७-१९२५

२८३. वक्तव्य: समाचारपत्रोंको

३० जुलाई, १९२५

मौलाना अबुल कलाम आजादने मुझे सूचित किया है कि कुछ ही दिन हुए मैंने यूरोपीय संघमें जो भाषण[1] दिया था उसका विवरण अखबारोंमें छपा है। उसके फलस्वरूप मुसलमानोंमें काफी वादविवाद उठ खड़ा हुआ है और वे कुछ चिढ़ भी गये हैं। इसका कारण यह है कि कुछ मुसलमान सज्जनोंने मेरे भाषणका यह अर्थ निकाला है कि मेरी निगाहमें कोई ऐसा योग्य और ईमानदार मुसलमान नहीं आया जिसे मेयरके पदपर प्रतिष्ठित किया जा सके और मौलाना साहबने भी मुझसे यही बात कही थी। अब मैंने अपने भाषणकी वह रिपोर्ट पढ़ ली है जिससे यह अर्थ निकाला गया है। यद्यपि यह रिपोर्ट मेरे भाषणकी शब्दशः रिपोर्ट नहीं है तथापि उस प्रकाशित विवरणसे जो अर्थ निकाला गया है सो नहीं निकलता।

मैंने जो-कुछ कहा था वह यह था कि यदि किसी मुसलमान सज्जनका नाम पेश किया जाता और यदि उसे मैं स्वयं जानता होता तो उसकी योग्यता और ईमान-

१. देखिए "भाषण: यूरोपीय संघकी बैठकमें", २४-७-१९२५।

दारीका निर्णय उन मित्रोंपर जो मेरे पास आये थे, न छोड़कर मैं स्वयं बिना किसी शर्तके उसका नाम स्वीकार किये जानेकी सिफारिश करता।

यह निश्चित है कि मौलानाने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे कभी मुझसे ऐसा नहीं कहा कि उन्होंने जे० एम० सेनगुप्तके नामकी इसलिए सिफारिश की थी कि निगम या उसके बाहर कोई ऐसा योग्य और ईमानदार मुसलमान नहीं है जो इस विशिष्ट पदका अधिकारी माना जाता। उन्होंने तो केवल यह कहा था कि उनकी इस सिफारिशके पीछे एक राजनीतिक उद्देश्य है — वह यह कि स्वराज्यवादी दलको उनके सुविख्यात नेताके अभावमें यथासम्भव आकस्मिक सहायता दी जाये। मेरे भाषणकी रिपोर्टसे चाहे कोई भी अर्थ निकाला जा सकता हो, लेकिन जनता मेरे इस आश्वासनको सही मानेगी कि मेरे और मौलानाके विचारमें यह बात कभी भी नहीं आई कि ऐसा कोई ईमानदार और योग्य मुसलमान है ही नहीं, जिसके नामकी सिफारिश इस पदके लिए की जा सके। चूंकि कलकत्तामें मौलानाके अलावा किसी अन्य मुसलमानको मैं पर्याप्त रूपसे नहीं जानता हूँ इसलिए निस्सन्देह मेरे लिए यह कहना हास्यास्पद होता कि कोई ऐसा ईमानदार और योग्य मुसलमान है ही नहीं, जिसे इस पदपर स्थापित किया जा सके। वस्तुतः यदि मौलाना साहबने मुझे उपर्युक्त सुझाव न दिया होता या वह सुझाव मुझे ठीक न जँचा होता, तो मैं श्री सुहरावर्दीके दावेको पूरा करनेके प्रयत्न जारी रखता, क्योंकि मुझे उनकी योग्यताके बारेमें कुछ-कुछ मालूम हो चुका था और उनके डिप्टी मेयरके पदपर प्रतिष्ठित हो चुकनेके कारण उनकी ईमानदारीके बारेमें विश्वास करनेका मुझे अधिकार था।

[अंग्रेजीसे]

फॉरवर्ड, ३१-७-१९२५

२८४. पत्र : 'स्टेट्समैन' को

१४८, रसा रोड
कलकत्ता
३१ जुलाई, १९२५

आजके 'स्टेट्समैन' में 'सविनय अवज्ञा' शीर्षकसे जो लेख निकला है, मैं यह पत्र उसके उत्तरमें भेज रहा हूँ। आशा है, आप इसे स्थान देनेकी कृपा करेंगे। आपको देशमें सविनय अवज्ञाका वायुमण्डल तैयार करनेकी मेरी इच्छामें और यूरोपीय संघमें दिये गये उस भाषणके इन शब्दोंमें कि 'मैं सहयोगके लिए मर रहा हूँ' — विसंगति दिखाई देती है। मैंने यूरोपीय संघमें वह भाषण २४ जुलाईको दिया था। 'यंग इंडिया' गुरुवारको प्रकाशित होता है और मैं उसके लिए लेख उससे पहले, शनिवारको लिखता हूँ। आपने सविनय अवज्ञाका जो हवाला दिया है वह २३ जुलाईके 'यंग इंडिया' में छपा है। मैंने ये तारीखें इसलिए दी है कि आपको यह मालूम हो सके

कि सविनय अवज्ञाकी तैयारीका खयाल यूरोपीय संघमें दिये गये भाषणके बाद पैदा नहीं हुआ।

मुझे सविनय अवज्ञाकी और सहयोगकी इच्छामें कोई विसंगति नहीं दिखाई देती। आपको याद होगा कि मैंने यूरोपीय संघमें यह बात एक पुरानी घटनाके सिलसिलेमें कही थी। असहयोगके दौरेके जमानेमें एक अंग्रेजने मुझे चिढ़ाते हुए कहा था कि आप राग तो असहयोगका अलापते हैं, किन्तु छटपटा रहे हैं सहयोगके लिए। मैंने तत्काल उनसे कहा कि बेशक, बात ऐसी ही है और यह बिलकुल ठीक है। और मैं कहता हूँ कि मेरी स्थिति आज भी वही है। अन्यायका सविनय प्रतिकार मेरे नजदीक कोई नया सिद्धान्त या आचार-नियम नहीं है। इसमें मेरा विश्वास सदासे है और मैंने इसपर अपने जीवनमें सदा आचरण किया है। देशको सत्याग्रहके लिए तैयार करनेका अर्थ है अहिंसाके लिए तैयार करना। देशको अहिंसाके लिए तैयार करनेका अर्थ है, उसे रचनात्मक कार्योंके लिए संगठित करना; और रचनात्मक कार्य और चरखा दोनों मेरे लिए पर्यायवाची शब्द हैं। स्पष्ट ही आपका विचार यह जान पड़ता है कि मुझे असहयोग या सत्याग्रह करनेपर पछतावा हुआ है। यह बात हरगिज नहीं है। मैं अब भी पक्का असहयोगी हूँ। यदि मैं भारतके शिक्षितवर्गको अपने मतका बना सकूँ तो मैं आज ही पूरा असहयोग घोषित कर दूं। परन्तु मैं ठहरा अमली आदमी। जो हकीकत मेरी आँखोंके सामने है, मैं उसे देखता हूँ। मैं अपने कुछ अत्यन्त आदरणीय साथियोंको यह विश्वास करानेमें सफल नहीं हो सका हूँ कि हमने १९२०में जिस प्रकारका असहयोग शुरू किया था उससे वर्तमान अवस्थामें भी देशका हित-साधन हो सकता है। वह इसीलिए स्थगित है। परन्तु मैं आपसे यह हकीकत नहीं छिपा सकता कि यदि मैं अपने उन साथियोंको फिर अपने विचारका कायल कर सकूँ तो मैं जरूर ही कांग्रेससे कहूँ कि वह फिर लड़ाईका शंख फूंक दे।

अपने कमजोर रहते हुए मैं खुद सरकारसे स्वेच्छापूर्वक सहयोग करनेका इच्छुक नहीं हूँ; वह तो गुलामका-सा सहयोग होगा। मैं अपनी कमजोरी तसलीम करता हूँ; इसलिए केवल सहयोगकी इच्छा करके सन्तोष मान लेता हूँ, और अपनी शक्ति बढ़ाकर उस इच्छाको पूर्ण करना चाहता हूँ। यदि मैं हिंसात्मक साधनोंका कायल होता तो मैं उसे कभी न छुपाता और उसका जो कुछ नतीजा होता उसे भोग लेता। मैं देशसे पुकार-पुकारकर और असन्दिग्ध भाषामें कह देता कि इस देशको तबतक आजादी नहीं मिल सकती या उसके लिए सरकारसे तबतक सम्मानपूर्वक सहयोग करनेकी कोई गुंजाइश नहीं है जबतक वह अंग्रेजी संगीनोंका मुकाबला अपनी संगीनोंसे करनेके लिए तैयार नहीं होता। परन्तु बात यह है कि मैं तो संगीनोंके सिद्धान्तमें विश्वास ही नहीं करता। मैं तो यह भी मानता हूँ कि दुर्भाग्यसे या सौभाग्यसे, यह सिद्धान्त भारतमें कदापि सफल नहीं होगा। सो इसके लिए एक दूसरे शस्त्रकी आवश्यकता है, और वह है सविनय अवज्ञा।

आपकी रायमें वह हिंसाकी ही तरह खतरनाक है, और यदि यही राय सरकारकी भी हो, तो उसे मेरी प्रवृत्तियोंपर रोक लगानी होगी, क्योंकि मैं जेलसे छूटनेके बाद

निरन्तर अपनेको या देशको सत्याग्रहके योग्य बनानेका उद्योग कर रहा हूँ। मैं आपको अत्यन्त नम्रतापूर्वक सूचित करता हूँ कि यदि मैं अपने क्रान्तिकारी मित्रोंका पूर्ण सहयोग प्राप्त कर सकूँ — उनकी प्रवृत्तियोंको पूर्णतः बन्द करा सकूँ और अहिंसाका सामान्य वायुमण्डल उत्पन्न कर सकूँ तो मैं आज ही सामूहिक सत्याग्रहकी घोषणा कर दूँ और इस तरह सम्मानपूर्ण सहयोगका मार्ग प्रशस्त करूँ। मैं मानता हूँ कि मैं १९२१में ऐसा नहीं कर पाया था और जब मैंने देखा कि चौरीचौराके लोगोंने मुझे धोखा दिया है तो मैंने सत्याग्रहको उसके आरम्भकी घोषणाके चौबीस घंटेके भीतर ही मुल्तवी कर देने और उसके बाद उसके फलस्वरूप देशमें फैलनेवाले व्यापक निराशाके परिणामोंका जोखिम उठानेमें कोई झिझक नहीं दिखाई थी।

और मैं जो हिन्दू-मुस्लिम एकता, चरखा और खादीकी लगातार इतनी रट लगाता रहा हूँ सो इसलिए कि सत्याग्रहके लिए आवश्यक अहिंसा समाजमें रूढ़ हो गई है, मैं इसका इत्मीनान कर लेना चाहता हूँ। मैं कबूल करता हूँ कि मैंने हिन्दुओं और मुसलमानोंमें अति निकट भविष्यमें एकताकी आशा छोड़ दी है। हाँ, अस्पृश्यता धीरे-धीरे परन्तु निश्चय ही मिट रही है और चरखा भी धीरे-धीरे परन्तु निश्चय ही प्रगति कर रहा है। परन्तु इस बीच देशका निर्दयतापूर्ण शोषण तो तेजीसे जारी ही है। इसलिए मैं किसी-न-किसी तरहकी ऐसी कारगर व्यक्तिगत सत्याग्रहकी योजनापर विचार कर रहा हूँ जिससे इस दरिद्र देशके कष्ट कम न हों तो कमसे-कम उन लोगोंको जिन्होंने अहिंसाको अपना सिद्धान्त मान लिया है, यह समझकर कुछ तसल्ली हो जाये कि उन्होंने अपनी तरफसे देशको उस दासतासे छुड़ानेमें, जो सारी कौमको निःसत्व बना रही है, कोई बात नहीं उठा रखी है।

मैं यह फिर कबूल करता हूँ कि अभी मेरे पास इसकी कोई योजना तैयार नहीं रखी है, क्योंकि यदि रखी होती तो मैं उसे आपसे या देशसे न छिपाता। परन्तु मैं आपके सामने अपने मनकी सारी चिन्तन-विधि रख रहा हूँ। मुझे झूठा दिखावा करके अंग्रेजोंका सद्भाव प्राप्त करने या बनाये रखनेकी कोई इच्छा नहीं है। जिस तरह सरकार भारतके राजनीतिज्ञोंके सामने शर्तें पेश करते समय अपने अस्तित्व और स्थायित्वको सुनिश्चित करनेके लिए किसी किस्मका एहतियात बरतने या तैयारी करनेमें कसर नहीं रखती, उसी तरह मैं चाहता हूँ कि मेरा देश भी उस साधनको प्रखर बनानेमें कोई कसर न रखे, जिसका प्रयोग वह उस समय कर सकता है जबकि सरकार उसकी इच्छाओंकी पूर्ति न कर सके।

आप जानते ही होंगे (क्योंकि अब वह पत्र-व्यवहार प्रकाशित हो चुका है) कि देशबन्धुने डॉ० बेसेंटके विधेयक सम्बन्धी घोषणापत्रपर दस्तखत नहीं किये हैं। उसका एक कारण यह था कि उसमें उस साधनके प्रयोगकी गुंजाइश नहीं थी, जिसका प्रयोग विधेयकके अस्वीकृत किये जानेकी अवस्थामें किया जा सकता हो। वह साधन सत्याग्रह है। क्या आप यह पसन्द करेंगे कि जब देशका सारा पौरुष नष्ट हो जाये और वह हिंसात्मक या अहिंसात्मक किसी तरहके प्रतिकारके लिए सर्वथा अयोग्य हो जाये तब कहीं जाकर ब्रिटिश सरकार सुलहकी शर्तें पेश करे या स्वराज्यदल या किसी दूसरे दलके

प्रस्तावपर विचार करे? यदि बात ऐसी ही हो तो मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि कोई भी आत्माभिमानी भारतवासी ऐसी गिरानेवाली शर्त स्वेच्छासे कबूल न करेगा।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
स्टेट्समैन, १-८-१९२५

२८५. भाषण: कलकत्ताकी सार्वजनिक सभामें[1]

३१ जुलाई, १९२५

महात्मा गांधीने जो इस सभाके अध्यक्ष थे, कहा कि दिवंगत देशभक्तको जो दो चीजें बहुत प्रिय थीं उनमें से एक थी हिन्दू-मुस्लिम एकता; वे निश्छल भावसे, पूर्ण हिन्दू-मुस्लिम एकताके हामी थे। वे स्वदेशीके भी एक जबरदस्त हिमायती थे। जिस जमानेमें रसूल जीवित थे, वह जमाना अपेक्षाकृत पुराना था और मैं आप लोगोंको उनका सन्देश मौजूदा जमानेकी भावनाको सामने रखकर समझाना चाहता हूँ। १९२० में राष्ट्रके लिए जो कार्यक्रम तैयार किया गया था उसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा स्वदेशी, दोनोंपर काफी जोर दिया गया था। किन्तु हमने इन दोनों चीजोंको नया अर्थ दिया। हमने तब निर्णय किया कि इतना ही काफी नहीं है कि कुछ शिक्षित भारतीय ही कन्धेसे-कन्धा मिलाकर चलें, साथ-साथ काम करें और सम्भवतः सामाजिक रूपसे भी आपसमें मिलें-जुलें। उन दिनों हमें यह आवश्यक जान पड़ा कि उस सन्देशको जनतातक पहुँचाया जाये। हम इस कार्यको अभी आधा भी नहीं कर पाये हैं, सच तो यह है कि उसे प्रारम्भ भी नहीं किया गया है। सभी लोग हिन्दू-मुस्लिम एकता चाहते हैं, किन्तु वह केवल बातोंसे नहीं मिल सकती। जब हिन्दू थोड़े-से भी प्रत्युपकार अथवा पुरस्कारकी इच्छा किये बिना मुसलमानोंकी सेवा करना सीख लेंगे और मुसलमान लोग भी उसी निष्काम भावसे हिन्दुओंकी सेवा करना सीखेंगे, तभी, केवल तभी हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित होगी। स्वदेशीका नया अर्थ यह नहीं है कि हम किसी वस्तुके — फर्ज कीजिये घड़ी या हार्मोनियमके — भिन्न-भिन्न पुर्जोंको बाहरसे आयात कर लें और फिर यहाँ उनसे पूरी वस्तु तैयार करके उसे स्वदेशीके नामसे पुकारने लगें। अब स्वदेशीका अर्थ यह हो गया है कि वस्तुका प्रत्येक हिस्सा भारतमें ही बनाया गया हो। हमारी समझमें अब यह बात आ गई है कि अगर हम स्वदेशीका विकास चाहते हैं तो हमें सबसे पहले खद्दर अपनाना चाहिए। उसीमें स्वदेशीके सब पहलू सन्निहित हैं। शब्दकोशके अनुसार स्वदेशीका यह आधुनिक अर्थ है और जबतक हम इस चीज — खद्दर — को नहीं अपना लेते तबतक अब्दुर्रसूलके प्रिय स्वप्नको हम साकार नहीं बना सकते।

१. यह सभा अब्दुर्रसूलकी आठवीं बरसीके अवसरपर एल्बर्ट हॉलमें आयोजित की गई थी।

महात्मा गांधीने भाषण जारी रखते हुए कहा कि मैंने आज तीसरे पहर देखा कि चोरबागानमें मारबल पैलेस नामक निवासस्थानके सामने सैकड़ों कंगालोंको भोजन दिया जा रहा था। यह दृश्य उन लोगोंके लिए जो कलकत्ताके भूखे लोगोंमें हररोज भोजन बाँटनेका आयोजन करते हैं, न तो उत्कर्षकारी है और न सम्मानजनक ही। वे यही नहीं जानते कि वे कर क्या रहे हैं। वे इस बातसे अनभिज्ञ हैं कि उनके इस भ्रममूलक औदार्यके द्वारा भारतको ऐसी हानि पहुँच रही है जो कभी पूरी होनेवाली नहीं है। जिन स्त्री-पुरुषोंको भोजन दिया जा रहा है उनमें से एक भी व्यक्ति अपाहिज नहीं है। इन भोजन करनेवालोंके हाथ-पैर उतने ही अच्छे हैं जितने इस व्यवस्थाको करनेवालोंके। क्या उनका खयाल है कि जो लोग अपनी आजीविकाके लिए काम कर सकते हैं, उन्हें खाना खिलानेमें कोई पुण्य है? जो लोग इसे पुण्य समझते हैं उनसे मेरा मतभेद है। उन्हें यूरोपीय लेखकों द्वारा अज्ञानवश या नासमझीके कारण कभी-कभी दिये गये प्रमाणपत्रसे हर्षित न हो जाना चाहिए कि भारतमें अनाथालय जैसी कोई चीज है ही नहीं। इन यूरोपीय लेखकोंका विश्वास है कि भारतमें गरीबों और भूखोंको भोजन देनेकी स्वसंगठित प्रणाली है जिसके फलस्वरूप अनाथालय खोलने या चलानेकी जरूरत ही नहीं रहती। यह कथन आंशिक रूपसे ही सच है और इस प्रणालीसे भारतका कोई हित नहीं हुआ है। हम आज निठल्लोंको भोजन दे रहे हैं। उनमें से कुछ तो चोर हैं। यदि यह प्रथा आगे भी जारी रही तो मुझे इस अभागे देशका भविष्य उज्ज्वल नजर नहीं आता। इसलिए हमें इस प्रथासे सावधान हो जाना चाहिए। मैंने ये बातें परोपकारियोंकी आलोचना करनेके लिए नहीं कहीं हैं। क्या ही अच्छा होता कि वे मेरी सुननेको तैयार होते। तब मैं उनसे कहता कि आप अपनी परोपकारिताको इस प्रकार गलत ढंगसे प्रयुक्त न करें बल्कि उन स्त्री-पुरुषोंको कुछ काम दें। क्या आपने कभी इस बातपर गौर किया है कि ये लोग बेकार क्यों हैं? भारतके लाखों लोग अपना समय व्यर्थ ही क्यों खो रहे हैं? भारत वक्तको यों ही बरबाद करनेवालोंका राष्ट्र नहीं है। यदि ऐसा होता तो हमारा राष्ट्र कबका समाप्त हो गया होता। हकीकत यह है कि उनके लिए पर्याप्त काम ही नहीं है और इसलिए हमारा यह शानदार मुल्क हमारी अज्ञानताके कारण, हममें सच्ची देशभक्तिके अभावके कारण ऐसे लोगोंका समुदाय बढ़ा रहा है जिसका खेतोंकी उपजपर गुजारा नहीं हो सकता। इसलिए इसका उपाय यह है कि उनके लिए आजीविकाके साधन उपलब्ध किये जायें। चरखेसे अधिक अच्छा आजीविकाका साधन इन लाखों लोगोंके लिए अन्य क्या हो सकता है? इसलिए यदि भारतके शिक्षित लोग जनताको हीन बनानेवाली गरीबीको दूर करना चाहते हैं तो उन्हें नित्य कमसे-कम आधा घंटा चरखा स्वयं कातना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
फॉरवर्ड, १-८-१९२५

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

सरदार जोगेन्द्रसिंहका पत्र

इधर कुछ वर्षोंसे जिन मसलोंसे रात-दिन आपका दिलोदिमाग जूझता रहा है, उन्हींके बारेमें आपको कुछ लिखते मुझे संकोच होता है। मैं सचमुच ही ऐसा मानता हूँ कि उनके बारेमें आपको कोई राय देनेका मुझे शायद हक नहीं है। अगर है भी तो सिर्फ इस बिनापर कि गाँवोंकी जिन्दगीसे मेरा सम्पर्क बहुत पासका रहा है। असल भारत तो गाँवोंमें ही बसता है और गाँवोंके जीवनको मैं जितना जानता हूँ, उतना चन्द ही राजनीतिज्ञ जानते होंगे। हो सकता है कि गाँवोंके उद्‌गार सुनने-समझनेसे आपको यथार्थको समझनेमें कुछ मदद मिले।

मैं कई बरस पहले लाहौरमें श्री पादशाहके साथ आपसे मिला था। हम लोगोंने चरखा और शक्ति-चालित मशीनोंके आर्थिक पहलूपर चर्चा की थी। मैं आपकी रायसे सहमत नहीं हुआ था। और आज भी मेरा वही खयाल है कि मानव-प्रकृति अपने-आपसे, आसपासके वातावरणसे और अब तो सारे संसारमें व्याप्त वातावरणसे ऊपर उठकर उसके विरुद्ध काम करनेमें समर्थ नहीं हो सकती। मैं इतना जरूर मानता हूँ कि यदि कभी मानव-प्रकृतिको दिव्य प्रकाशकी झलक मिल जाये तो उसके लिए सरल जीवन और उच्च विचार ही मानवीय सुखका सबसे सच्चा मार्ग है। मेरी समझमें यह बात भी आती है कि लोग जिन चीजोंको नापसन्द करते हैं यदि वे उनसे असहयोग करना और कष्ट-सहनको स्वीकार करना सीख लें तो वे अपनी इच्छा-को प्रभावपूर्ण बना सकते हैं, एक ऐसी शक्ति अपने अन्दर पैदा कर सकते हैं जो सबको झुका दे और जिसमें विनाश और विध्वंसका कोई जोखिम भी न रहे, जैसा कि युद्धों और क्रान्तियोंके बाद दिखाई पड़ता है।

ईश्वरने आपको एक सन्देशके प्रचारका काम सौंपा है। वह सन्देश है शान्तिको सुनिश्चित बनानेवाला, सद्‌भावनापर आधारित स्वतन्त्रताका सन्देश; मानव-सभ्यताको, आज वह अपने अन्दर अपेक्षित शील और नैतिक संयम पैदा किये बिना, प्राकृतिक शक्तियोंका अंधाधुंध उपयोग करते जानेके जिस आत्मघातक रास्तेपर चल रही है, उनसे बचानेका सन्देश। प्राच्य देशोंमें तो अनादि कालसे शील और नैतिक संयमकी इस आवश्यकताको आधारभूत आवश्यकता माना जाता रहा है। आप अपने सन्देशका प्रचार करते रहें। काल उसे कभी-न-कभी जनताके हृदयमें उतार ही देगा। मातृभूमिके प्रति आपका प्रेम आपको प्रेरित करता है कि आप अपने सिद्धान्तोंके जरिए वर्तमान तात्कालिक समस्याओंके हल निकालनेका प्रयास करें। आपको इस बातपर भी राजी

कर लिया गया है कि आप दूसरे लोगोंको समझौतों और करारोंकी नीतिपर चलकर भी देख लेने दें, क्योंकि राजनीतिज्ञोंको तनिक भी कहीं झुके बिना सत्यके अनुशीलनका कट्टरपंथी मार्ग अपनानेकी बजाय समझौते और करारोंका रास्ता कहीं ज्यादा पसन्द आता है। वे एक लम्बे अर्सेसे किसी एक सर्वसम्मत योजनाके आधारपर लोगोंके व्यक्तिगत स्वार्थोंको हल करके उनको एकजुट करनेकी कोशिश करते आ रहे हैं और सोचते हैं कि विधानसभाओंमें लगातार बाधाएँ खड़ी करते रहकर स्वराज्य हासिल कर लिया जायेगा। यों इन कोशिशोंको शुरूसे ही असफलताका मुँह देखना पड़ा है, किन्तु मुझे नहीं लगता कि इससे उनका भ्रम दूर हो सका है। जो भी हो, आपका धर्म तो यही है कि आप अपने मार्गपर चलते रहें, आप और वे ज्यादा दूरतक साथ-साथ नहीं चल सकते। आपके निकट सबसे महत्त्वपूर्ण काम है आपका अपनी सारी शक्तिको मूलभूत प्रश्नोंमें लगाना। आप दुनियाको दिखा दें कि असहयोग सार-रूपमें सहयोग ही है और सैन्य-शक्तिसे कहीं अधिक सबल है। न्याय-प्रिय व्यक्ति सहिष्णुता और सद्भावसे प्रेरित होकर विरोधियोंमें समझदारी और विवेक जगानेकी खातिर स्वयं कष्ट-सहनको स्वीकार करके अन्यायको पराजित करनेके लिए जो सहयोग करते हैं, वही असहयोग है। भारतको इसकी जरूरत है, लेकिन भारतसे कहीं ज्यादा यूरोपको; और सच तो यह है कि सारे संसारको इसकी जरूरत है। यही एक चीज है जो 'लीग ऑफ नेशन्स' को, उसके इरादेको कामयाब बनानेकी शक्ति दे सकती है। यही एक चीज है जो शस्त्रहीन राष्ट्रोंको उनकी गरिमा और प्रतिष्ठा बनाये रखने और अपने महत्त्वको सुरक्षित रखनेकी शक्ति प्रदान कर सकती है और यही एक शक्ति है जो शान्ति और सुरक्षाकी परवाह न करके अपना सिक्का जमानेकी धुनमें होड़ लगाते हुए राष्ट्रोंकी आँखोंके आगेका वह अन्धकार दूर कर सकती है जो उनको युद्धोंके गर्तमें ढकेल देता है। नया विश्व इस नूतन सन्देशकी राह ताक रहा है। ईश्वरने आपको जितनी भी शक्ति दी है, उस समूची शक्तिके साथ इस सन्देशका उदघोष कीजिए।

भोजनकी समस्या भी उतनी ही अहम है जितनी कि शान्तिकी समस्या। आपने अपने ध्वजपर चरखा अंकित करके छोटे-बड़े सभी राष्ट्रोंकी आर्थिक स्वाधीनताके प्रतीकको सर्वोच्च स्थान दिया है। शारीरिक सुखों, भौतिक वैभव और असीमित उत्पादनके लक्ष्यके पीछे आँखें मूँदकर बेतहाशा भागते-फिरनेसे मानवको सुख नहीं मिलेगा। ये चीजें तो मानवकी लिप्साकी अग्निको और अधिक प्रज्वलित कर देती हैं। हर परिवारको अपनी जरूरतके लायक ही पैदा करना चाहिए और जिन जरूरी वस्तुओंका उत्पादन वह स्वयं नहीं कर सकता उनको उसे अपने पास-पड़ोसके क्षेत्रोंसे हासिल करना चाहिए। व्यापारको वस्तु-विनिमयका रूप दीजिए, उसे एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रोंके अन्धाधुन्ध शोषणका, ऐसी संगठित प्रतियोगिताका, रूप मत लेने दीजिए, जिसका नये सिरेसे विश्वके आर्थिक सम्बन्धोंके उदारतापूर्ण समायोजनके बिना असफल होकर रह जाना एक निश्चित बात है। आप अपने अमलमें चरखेको एक प्रतीकके रूपमें ही रखिए। उसे गाँवोंके आधुनिकीकरणका प्रतीक बनाइये। हमें गाँवोंमें विद्युत-शक्ति

पहुँचाकर, कपड़ेकी बुनाई, जलकी व्यवस्था, तेल निकालने और ऐसे हजारों अन्य उद्यमोंमें उसका उपयोग करना चाहिए। हमारे घने बसे गाँवोंमें इनकी बड़ी जरूरत है। विद्युत शक्तिका उपयोग हमें गाँवोंके लिए पर्याप्त भोजन और वस्त्र जुटानेमें करना चाहिए। आप इस बातसे बिलकुल ही बेखबर कैसे हो सकते हैं कि कोई भी देश अब इस नये युगके प्रभावसे सर्वथा अछूता नहीं रह सकता। यह नया युग आश्चर्यजनक करतबों और यन्त्रोंका युग है और अब इसे नित-नये आविष्कार और मानवीय प्रकृति दोनों मिलकर संचालित कर रहे हैं। आप गाँवोंके कार्यकर्त्ताओंको गाँवोंमें ही नये-नये आविष्कारोंसे, नये-नये यन्त्रोंसे लैस कर सकते हैं, मानवीय प्रकृतिको अधिक उदात्त बनानेके लिए आप उनमें एक आध्यात्मिक सेवाभाव संचरित कर सकते हैं और अनेक सदियोंतक प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी भारतको सीधा खड़ा रहने योग्य बनानेवाले आदर्शों और परम्पराओंको जीवन्त बनाये रखनेके लिए कथाओंकी पुरानी पद्धतिको पुनः अपनाकर आप कर्म, प्रेम और श्रमके आचार-नियम उनके मनमें बैठा सकते हैं।

आपने जिन समस्याओंके हलका बीड़ा उठाया है उनमें सबसे प्रधान है — हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना। मुझे पूरा यकीन है कि हृदय और बुद्धिमें महान मैत्रीभावको आप अंग्रेजोंतक विस्तृत रखना चाहते हैं। मेरा खयाल है कि आप अपने तईं स्वयं सहमत न होते हुए भी समझौतों और राजनीतिक दृष्टिसे की गई सुलहोंकी कामयाबीकी गुंजाइशके बारेमें सोचने लगे हैं और आप इस बातपर सहमत हो गये हैं कि आपके मित्रगण अपने-अपने तरीकोंको इस्तेमाल करके देख लें। वे लोग इस मामलेमें नाकामयाब हो चुके हैं, इसलिए अब आप उनसे कह सकते हैं कि वे आपको अपने ही तरीकेसे काम करने दें। हो सकता है कि जनता आज आपके पीछे न चले, पर अन्तमें सत्यकी ही विजय होगी। आप अपना एक मूर्त उदाहरण पेश करके लोगोंमें सौहार्द और समझदारीका दीप जला सकते हैं और स्वयं एकताकी भावनापर अमल करके एकता पैदा कर सकते हैं। इससे अधिक कुछ करना तो किसी भी मनुष्यके वशमें नहीं है। अवसरवादी हिन्दू और मुसलमान मुँहसे तो एकताकी बात करते हैं, किन्तु यह तोता-रटन्त ही है; उनका वास्तवमें इसपर कोई विश्वास नहीं है। ऐसे लोगोंके मनमें कभी एकताकी भावना नहीं आयेगी। वे शक्ति और पद हथियाना चाहते हैं। ऐसे लोगोंको आप उनके मनकी अन्ध गुहाओंमें ही रहने दीजिए, जिनमें युगों-युगोंसे अंधेरेका ही राज है। फूट पैदा करनेवाली बातोंकी छानबीन करके उनके कारणोंको दूर किया जाना चाहिए; धर्मके नामपर प्रचलित अन्ध-श्रद्धाओंका निराकरण किया जाना चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच खान-पानकी छुआछूत मिटाइये, मुसलमान यदि यही चाहें तो उनको गायकी कुरबानी देने दीजिए, यदि वे मन्दिरोंको सचमुच अपवित्र करना चाहे तो मन्दिरोंके द्वार खोल दीजिए। मन्दिरोंके द्वार खोलकर मित्रोंके रूपमें उनको आमन्त्रित कीजिए और वे जहाँ भी अपने धार्मिक जुलूस ले जाना चाहें, उन्हें ले जाने दीजिए और पीपलके वृक्षोंको काटने दीजिए। हिन्दुओंको यह सब बर्दाश्त ही नहीं करना चाहिए, बल्कि

इन जुलूसोंमें स्वयं भी शामिल होना चाहिए। मुसलमानोंको भी चाहिए कि वे हिन्दुओंको उनकी इच्छानुसार शंख बजाने और ध्वजाएँ लेकर चलनेकी आजादी दें। मुसलमानोंको इकबालके ये शब्द सदा याद रखने चाहिए "ये दोनों एक बड़ी लम्बी मंजिलके हमराही हैं और दोनों रातके अंधेरेमें भटक गये हैं।"

इतना कीजिए, बाकी सब अपने-आप हो जायेगा। इस कामकी जरूरत गाँवोंमें, मन्दिरोंमें, मस्जिदोंमें और शहरोंमें — उन सभी जगहोंपर है जहाँ कुछ अधिक सद्भावनापूर्ण लोग मिल सकते हों। इस बातकी मुनादी फिरवा दी जानी चाहिए कि अब आगेसे हम इन बातोंको लेकर आपसमें नहीं लड़ेंगे और हिन्दू अपने मन्दिरों तथा मुसलमान अपनी मस्जिदोंके द्वार एक-दूसरेके लिए खोल देंगे और दोनों एक-दूसरेके त्यौहारोंमें खुलकर हिस्सा लेंगे।

राजनीतिक समस्या महत्त्वपूर्ण तो है, लेकिन इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है जनताकी जरूरतें पूरी करना, उनकी सेवा करना। एक मौसम हल चलानेका होता है, एक बीज बोने और फिर एक फसल काटनेका होता है। बुरे ढंगसे खेती करनेवाला किसान अपने खेतको गलत ढंगसे जोतता-बोता है और फिर जब कटाईके वक्त खेतमें जाता है तो रोता है। कुशल किसान बड़े धीरजके साथ बार-बार जुताई करता है और बड़ी भरी-पूरी फसल काटता है। हम अभी जुताईके मौसममें ही हैं। हमें ज्यादा अच्छी शिक्षा, अधिक भोजन, बेहतर मकानों और अधिक बड़े पैमानेपर जातियों तथा धार्मिक आस्थाओंके हेल-मेलकी जरूरत है। यदि आधुनिक उपकरणों और साधनोंको पूरी तौरपर मनुष्यके वशमें रखकर नियन्त्रित किया जाये तो उनसे खेतीके उत्पादनमें और मनुष्यको नैतिक एवं शारीरिक रूपसे अधिक उन्नत बनानेमें बड़ी सहायता मिल सकती है। इस दिशामें भी कुछ काम कीजिए। विद्युत-शक्तिको झोंपड़ियों और मकानों और खेतोंमें मानवकी सेवामें लगाइए और हर मनुष्यको परिपक्व होनेमें मदद दीजिए। प्रेम, आत्म-निर्णय और स्वतन्त्रताके अपने सन्देशका खूब प्रचार कीजिए। मानव ही अपने भाग्यका विधायक है और जब वह इस सत्यकी अनुभूति कर लेगा तब सभी तात्कालिक समस्याएँ सरलतासे अपने-आप हल होती चली जायेंगी। मैंने यह सुझाव सिर्फ इसलिए रखे हैं कि आपको यह समझनेमें आसानी पड़े कि जनताको जरूरत किस चीजकी है, इसलिए नहीं कि मैं इन चीजोंके बारेमें कोई बहुत अधिक ज्ञान रखता हूँ। राजनीतिकी खूबी यह है कि वह अकसर सत्यपर एक रहस्यका आवरण चढ़ा देती है और इस प्रकार स्थायी तथा प्राथमिक महत्त्वकी चीजोंकी अपेक्षा अस्थायी तथा महत्त्वहीन चीजोंको अधिक उभारकर पेश कर देती है।

यंग इंडिया, २५-६-१९२५

परिशिष्ट २

बी० सी० चटर्जीका पत्र

३-७-१९२५

सम्पादक,
यंग इंडिया,

महोदय,

आपने हालमें घोषणा की है कि भविष्यमें देशबन्धुके फरीदपुरके भाषणको आधार मानकर ही कार्य किया जायेगा। इस घोषणासे लोगोंके हृदयोंमें आशा और प्रेरणाका संचार हुआ है। कारण यह कि घोषणामें यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि आपने देशके सभी कार्यकर्त्ताओंको फिरसे एक मंचपर खड़े होनेकी दावत दी है। फरीदपुर सम्मेलनके अध्यक्षीय भाषणमें यह महान् उद्देश्य बड़े ही स्पष्ट रूपमें सामने रखा गया था। उस भाषणकी आपके द्वारा ताईद किये जानेका अर्थ यही लगाया जा सकता है कि आप उस उद्देश्यको स्वीकार करते हैं। मैं अपनी बात थोड़ी स्पष्ट कर दूँ। देशबन्धुने अपना यह सुविचारित मत सभीको जता दिया था कि यदि सरकार मुडीमैन कमेटीके अल्पमत द्वारा की गई सिफारिशोंपर अमल करने लगे और बंगाल आर्डिनैंसके अधीन नजरबन्द किये गये लोगोंको रिहा कर दे तो अच्छा यही रहेगा कि देश 'सुधारों'को स्वीकार कर ले। उन्होंने अपनी इस एक घोषणासे ही स्वराज्य दल और अन्य राजनीतिक दलोंके बीच मतभेदोंकी गुंजाइश खतम कर दी है। समूचा 'लिबरल' दल (उदारपंथी दल), और सच कहें तो सुधारोंमें विश्वास करनेवाले वे सभी लोग जिनमें आत्म-सम्मान और देशाभिमानकी भावना है, तबतक मॉंटेग्यु चेम्सफोर्ड योजनासे अपनेको अलग रखनेके लिए वचनबद्ध हैं जबतक कि सरकार अल्पमत द्वारा तैयार की गई रिपोर्टको वैधानिक रूप देकर उसे लागू नहीं कर देती। क्योंकि उस रिपोर्टके पीछे उन लोगोंका व्यावहारिक अनुभव है जिन्होंने 'सुधारों' को पूरी ईमानदारीके साथ क्रियान्वित करनेमें अपनी लोकप्रियताको बरकरार रखनेकी भी कोई परवाह नहीं की। और दूसरी चीज यह है कि भारतीय कहलाने योग्य कोई भी व्यक्ति 'बंगाल आर्डिनैंस' जैसे कानूनका कष्ट भोगते हुए ग्रेट ब्रिटेनके साथ सहयोग करनेकी बात मनमें नहीं ला सकता। मतभेदोंके बावजूद आपके प्रति हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करनेवाले समस्त राष्ट्रवादी भारतीयोंकी ओरसे, मैं अपने अन्तरकी पुकार और उत्कट भावातिरेकके साथ आपसे आग्रह करता हूँ कि आप अपनी स्वाभाविक स्पष्टवादिताके साथ सारे देशको स्पष्ट बतला दें कि सरकार यदि वास्तवमें देशबन्धुके दोनों सुझावोंको क्रियान्वित कर दे तो आप 'सुधारों'का समर्थन करेंगे या नहीं।

आपका स्वीकृति-सूचक उत्तर आपके अपने व्यक्तित्व और भारत देशके भाग्यके इतिहासमें एक सर्वथा नवीन और, मुझे कहनेकी अनुमति दीजिए कि, एक अधिक

महत्त्वपूर्ण अध्यायका सूत्रपात करेगा। उसके परिणामस्वरूप आपके ध्वजके नीचे समूचा भारत आ खड़ा होगा; सभी स्वराज्यवादी, लिबरलपन्थी तथा राष्ट्रवादी, वास्तवमें भारत माताके सभी सपूत मिलकर आपके उद्देश्यके प्रति सच्चे रहनेकी एक बार फिर प्रतिज्ञा करेंगे। इसमें यदि कुछ लोग पीछे रह भी जायेंगे तो वही जो चाँदीके चन्द टुकड़ों या कुछ तमगोंके लिए अपने भाइयोंका साथ छोड़ सकते हैं। इतिहासने ऐसे व्यक्तियोंको कभी नहीं गिना और न वह कभी गिनेगा ही। आप अपनी एक ही घोषणासे ग्रेट ब्रिटेन और एकताबद्ध भारतके बीचकी मौजूदा स्थितिको स्पष्ट कर देंगे; आप स्पष्ट कर देंगे कि भारतके लिए उत्तरदायी शासनकी व्यवस्था करनेके प्रश्नपर कौन-सा पक्ष अधिक सच्ची भावनासे काम कर रहा है। ग्रेट ब्रिटेन सचमुच ही भारतको उत्तरदायी शासनके मार्गपर आगे बढ़ाना चाहता है या वह अपने जी हुजूरोंको ही तरह-तरहसे पुरस्कृत करना चाहता है? फरीदपुरमें दिये गये देशबन्धुके अन्तिम सन्देशकी आपकी इस पुष्टिके फलस्वरूप पुनः एकताबद्ध हुए देशभक्तोंके आगामी सम्मेलनके मंचसे आप इसी एक प्रश्नका उत्तर सरकारसे माँगेंगे। ग्रेट ब्रिटेनकी ईमानदारीकी कसौटी यही होगी कि वह मंत्रियोंके मार्गमें आड़े आनेवाली छोटी-मोटी बाधाओंको दूर करने और एकता-बद्ध भारतकी बिना मुकदमे नजरबन्दोंकी रिहाईकी माँगों पर कितनी तत्परतासे अमल करता है। और आपके नेतृत्वमें चलनेवाले हम लोगोंकी सत्यनिष्ठाकी कसौटी यह होगी कि इंग्लैंड द्वारा भारतकी दोनों माँगें स्वीकृत होनेके बाद हम 'सुधारों' को क्रियान्वित करनेमें कितना हार्दिक सहयोग देते हैं।

कृपया उन लोगोंकी बातोंपर कान मत दीजिए जो प्रतिष्ठाको लेकर लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं। मुझे यकीन-सा है कि आपके कुछ अनुयायी आपसे कहेंगे कि आप इंग्लैंडके सामने कोई प्रस्ताव न रखें, क्योंकि उससे आपकी प्रतिष्ठापर आँच आयेगी। परन्तु मुझे आपपर पूरा भरोसा है और इसीसे मैं आश्वस्त हूँ कि व्यक्तिगत प्रतिष्ठाका प्रश्न — जो अहम्मन्यतासे पीड़ित इस देशके लिए एक अभिशाप है — आपके सीधे-सच्चे जीवन-पथको कभी मोड़ नहीं सकता, न मोड़ पायेगा। अन्तमें मैं एक बार फिर आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप इंग्लैंडको अपनी ईमानदारी सिद्ध करने और भारतको अपनी खोयी हुई एकता पुनः प्राप्त करनेका यह एक अवसर अवश्य दें।

बी० एस० चटर्जी

यंग इंडिया, ९-७-१९२५

परिशिष्ट ३

डब्ल्यू० एच० पिटका पत्र

प्रियवर श्री गांधी,

मैं आपको एक लम्बा-सा पत्र लिख रहा था कि तभी डाकिया आपका १६ तारीखका पत्र लेकर आया। पत्रके लिए धन्यवाद! आपका बड़ा सौजन्य है कि आपने बंगालमें अनेक और इतने महत्त्वपूर्ण कामोंमें व्यस्त रहते हुए भी मुझे पत्र लिखनेका समय निकाल लिया।

१. मुझे श्री केलप्पन नायरके नाम आपके उस तारकी प्रति मिल चुकी है, जिसमें आपने उनको वाइकोम मन्दिरके केवल पूर्वी द्वारपर धरना देनेकी सलाह दी है। मैं उसीके बारेमें आपको लिख रहा हूँ। मेरा खयाल था कि आपने पूरी स्थिति-को और मेरे सुझावको गलत ढँगसे समझा है, परन्तु आपके पत्रसे मैंने देखा कि आपने उक्त सलाह अपने सामने मौजूद सभी तथ्योंपर पूरी तरहसे विचार करनेके बाद और अपने तईं कुछ समुचित कारणोंसे ही दी थी।

२. आप चाहते हैं कि सरकार सड़कोंके उपयोगके बारेमें एक बिल्कुल ही स्पष्ट घोषणा करे। आपको शायद यह मालूम नहीं है कि त्रावणकोरमें सम्राट्की ओरसे एक प्रख्यापन पहले ही जारी किया जा चुका है और उसे कानूनी सत्ता प्रदान की गई है। उसमें सभी सार्वजनिक सड़कोंको महाराजाकी प्रजाके लिए समान रूपसे सुलभ घोषित किया गया है। वह प्रख्यापन विस्तारित किया जा सकता है अथवा नहीं या न्यायालयोंने कभी भी प्रामाणिक तौरपर उसकी व्याख्या की है अथवा नहीं, यह बात सन्दिग्ध है। बड़े-बड़े कट्टर सनातनी लोग अब न्यायालयमें जाकर एक ऐसा आदेश निकलवानेकी कोशिश करनेकी बातें कर रहे हैं कि वाइकोम मन्दिरके आसपासकी सभी सड़कें अवर्ण हिन्दुओंके लिए बन्द कर दी जायें। मैं समझता हूँ कि उन्होंने ऐसा किया तो उनको सफलता नहीं मिलेगी और इस प्रश्नका सदाके लिए निबटारा हो जायेगा और जो भी हो, मेरी अपनी जानकारीके मुताबिक तो अभी दूसरा कोई प्रख्यापन जारी होनेकी सम्भावना नहीं है। और खुद मैं इसकी आवश्यकता भी नहीं समझता।

३. एक मुद्दा और है। इसका मैंने अभीतक आपसे उल्लेख नहीं किया है, मगर आपको इसपर गौर करना चाहिए। त्रावणकोरके अधिकारियोंको इस बातका ध्यान तो रखना ही पड़ेगा कि राज्य जिस धर्मको मानता है उससे सम्बन्धित परम्परागत पूजा और विधियोंका काम बिना किसी बाधाके विधिवत् सम्पन्न हो। वास्तवमें, कुछ अधिकारियोंने वचन दे रखा है कि यदि मन्दिरको जानेवाली सड़कोंके इस्तेमालके बारेमें कुछ हेरफेर कर दिया जाय तो भी उनके कारण सार्वजनिक पूजामें कोई

व्यवधान उपस्थित नहीं होगा। फिलहाल इस वचनको पूरा करनेमें कुछ कठिनाईका सामना करना पड़ रहा है और सचमुच यह वचन अभी हर मायनेमें पूरा भी नहीं किया जा सका है। यदि थोड़ा और समय मिले तो अधिकारी लोग सभी कठिनाइयों पर पार पा लेंगे, लेकिन उनको सावधान रहना पड़ेगा और फूंक-फूंककर ही कदम आगे बढ़ाना होगा।

ऐसी कोई कार्रवाई करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता, जिससे सार्वजनिक पूजामें आम तौरपर कोई बाधा खड़ी हो जाये। पूर्वी मार्गपर आपके स्वयंसेवकोंके अधिकारको लेकर तो वे सनातनी हिन्दू भी खतरा महसूस करने लगे हैं जो इस बातपर सहमत हो गये थे कि स्वयंसेवक जहाँतक आगे बढ़ चुके थे, वहाँ बने रहें। पूर्वी द्वारमें प्रवेश करनेकी आपकी इस मूक धमकीसे अधिकारियोंको भी परेशानी हो रही है। अधिकांश लोग इस बातको स्वतः सिद्ध मानते हैं कि आप वहाँ प्रवेश करनेमें पूर्णतः समर्थ हैं, लेकिन आगे बढ़ना तो क्या, आगे बढ़नेकी धमकी देनेका भी यह उपयुक्त अवसर नहीं है।

मैं निस्संकोच भावसे स्पष्ट कह सकता हूँ कि पूर्वी मार्गपर धरना देना आपके अपने लक्ष्यके लिए अत्यन्त हानिकारक होगा और मैं पूरे आत्मविश्वासके साथ कहता हूँ कि अधिकांश स्थानीय लोकतन्त्रवादी लोग और सभी अवर्ण हिन्दू नेता मेरे इस कथनका समर्थन करेंगे। अधिकारियोंको शान्त वातावरणकी जरूरत है, क्योंकि ऐसे ही वातावरणमें वे उन सनातनी हिन्दुओंके साथ सफलतापूर्वक निबट सकते हैं जिनको अपने धर्म या समुदायके हितोंपर आँच आती दिखाई दे रही है। ऐसी हर चीज, जिससे वातावरणमें अविश्वास फैलनेकी सम्भावना है, प्रगतिके मार्गमें बाधक है, मैं आपकी इस बातकी कद्र करता हूँ कि सिद्धान्त और अनुशासनका तकाजा है कि स्वयंसेवकोंको पीछे नहीं हटना चाहिए, परन्तु मुझे इस बातपर शंका है कि क्या मुट्ठीभर स्वयंसेवकोंके नैतिक धर्मको बीस लाख अवर्ण हिन्दुओंके हितोंसे अधिक मत्त्हव देना चाहिए। इसे देखते हुए, मैं आपके सामने ये मुद्दे रख रहा हूँ:

(१) कि पूर्वी मार्गके धरनेसे अधिकारी लोगोंको सनातनी हिन्दुओंको शान्त करनेमें कठिनाई महसूस होती है।

(२) कि अधिकारी लोग हिन्दुओंके विशाल बहुमतको अपने साथ लिये बिना कोई भी कदम नहीं उठा सकते और न वे उठायेंगे ही।

(३) कि यदि आप स्वयंसेवकोंको पीछे हटा लें तो प्रगति सुगम हो जायेगी और मैं कहूँगा कि आप कृपया इस बातपर गौर करें कि क्या आपके विचारसे स्थानीय रूर *Ruhr* पर कब्जा बनाये रखना आप अभी भी जरूरी समझते हैं? क्या आप स्थायी धरनेको वापस लेकर मन्दिरके पूर्वमें सभी प्रदर्शनोंको बन्द नहीं करा सकते?

देवस्वोम कमिश्नर, श्री आर० कृष्ण पिल्ले मन्दिरोंवाले अन्य स्थानोंके सनातनी हिन्दुओंके साथ बातचीत कर रहे हैं। उनको विश्वास है कि यदि वातावरण शान्त

रहा तो वे उनको कमसे-कम सार्वजनिक उपयोगकी आम सड़कोंके इस्तेमालपर केवल अपने ही अधिकारके दावेसे विरत कर ही लेंगे।

सादर,

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११०९९) से।

परिशिष्ट ४

के० केलप्पनका पत्र

सत्याग्रह आश्रम
वाइकोम
१८ जून, १९२५

प्रियवर महात्माजी,

फर्स्ट क्लास (प्रथम श्रेणी)के मजिस्ट्रेट और पुलिसके असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट (सहअधीक्षक) देवस्वोम अधिकारियोंके साथ यहाँ पहुँच गये हैं। उनका कहना है कि यदि मैं सत्याग्रह बन्द कर दूँ तो वे विवादग्रस्त मार्गोंमें से आधे मार्गोंको (संलग्न मानचित्र देखिए)[1] सार्वजनिक घोषित करनेके लिए तैयार हैं। हम इस हलको स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि यह वास्तवमें कोई हल ही नहीं है। वाइकोमके मन्दिरोंके इन मार्गोंसे तो हमें कभी कोई निस्बत ही नहीं रही। हम तो एक सिद्धान्तके लिए लड़ रहे हैं। हम तो शुरूसे यही कहते आ रहे हैं कि किसी भी व्यक्तिको अन्त्यज होनेके आधारपर सार्वजनिक मार्गोंके उपयोगसे वंचित नहीं किया जाना चाहिए। अब आधे मार्गोंको उनके लिए बन्द रखकर सरकार सचमुच इसी मतकी पुष्टि करेगी कि एक जाति-विशेषके लोगोंके लिए कुछ मार्ग बन्द किये जाने चाहिए। सत्याग्रह बन्द करनेका अर्थ यही होगा कि हम उसी पुराने सिद्धान्तको स्वीकार कर लेंगे जिसका प्रतिपादन अब त्रावणकोर सरकार एक नये सिरेसे कर रही है। हम कतई ऐसा नहीं कर सकते। इसीलिए मैंने कह दिया है कि हम संघर्ष बन्द नहीं कर सकते।

यह इलाज तो रोगसे भी बदतर है। हम अभीतक लोगोंको यह आशा तो बँधाये रख सकते थे कि अन्तमें विजय हमारी ही होगी। लेकिन सत्याग्रह बन्द करनेके बाद तो हम लोगोंके सामने सिर सीधा करके भी नहीं चल सकेंगे। पूर्वी मार्ग क्यों नहीं खोला गया? यह तो नहीं है कि इस व्यवस्थासे किसी भी मार्गपर हमारे प्रवेशका विरोध करनेवाले सवर्ण लोग सहमत हो गये हों। यदि ये तीनों मार्ग उनके विरोधके बावजूद खोले जाने हैं तो चौथा मार्ग खोल देनेपर भी उनको आपत्ति नहीं

१. यह नहीं दिया जा रहा है।

परिशिष्ट ६

मेडेलिन स्लेडका पत्र

६३, बेडफोर्ड गार्डन्स
कैम्पडेन हिल,
लन्दन, वेस्ट – ८
पेरिस
२९ मई, १९२५

परमादरणीय गुरुदेव,

अपने प्रथम पत्रके उत्तरके लिए मैं आपको हृदयसे धन्यवाद देती हूँ। मैंने तो ऐसी आशातक करनेका साहस नहीं किया था कि आप उत्तर देंगे। आपका एक-एक शब्द मैंने बड़ी ललकके साथ हृदयंगम कर लिया है, और अब मैं आपको फिर पत्र लिखनेका साहस कर रही हूँ। क्योंकि मैंने स्वयं ही अपने लिए परीक्षाका जो वर्ष चुना है, उसका आधेसे-अधिक बीत चुका है।

मेरी प्रथम प्रेरणामें किंचित भी कमी नहीं आई है, बल्कि आपकी सेवा करनेकी मेरी इच्छा अधिकाधिक उत्कट होती गई है। मेरे अन्तरको प्रेरित करनेवाली प्रेरणाकी तीव्रताको व्यक्त करना शब्दोंके बसका नहीं; इसीलिए मैं अपने समूचे हृदयसे ईश्वरसे यह माँगती हूँ कि मुझे अपने हृदयका प्रेम आचरणमें व्यक्त करनेकी सामर्थ्य दे। मैं जो भी काम करूँगी वह कितना ही तुच्छ क्यों न हो पर उसके पीछे एक बिलकुल ही सच्चा मन, एक परम शुद्ध भावना तो होगी ही।

और अब मैं आपसे एक अनुरोध करती हूँ — अन्तरकी गहराइयोंसे निकला एक अनुरोध :

आप मुझे अपने आश्रममें आनेकी अनुमति दीजिए ताकि मैं वहाँ रहकर कताई और बुनाई सीख सकूँ, और नित्य प्रतिके जीवनमें आपके आदर्शों और सिद्धान्तोंपर अमल करना सीख सकूँ, और बेशक, यह सीख सकूँ कि मैं भविष्यमें आपकी सेवा किस रूपमें करनेकी आशा कर सकती हूँ। आपके उद्देश्यकी एक सुयोग्य सेविका बननेके लिए मैं ऐसी तालीम निहायत जरूरी समझती हूँ, और यदि आप मुझे इस रूपमें स्वीकार करें तो मैं अपनी ओरसे भरसक प्रयत्न करूँगी कि आपकी बिलकुल ही अयोग्य शिष्या सिद्ध न हो पाऊँ।

इस बीच मेरी तैयारी यथा-शक्ति जारी है। मैं कताई और बुनाई करती हूँ (केवल ऊनसे ही, क्योंकि फ्रांस और इंग्लैंडमें रुईसे कातना-बुनना शायद कोई जानता ही नहीं)। मैं अनेक कृपालु भारतीय मित्रोंकी सहायतासे हिन्दुस्तानीके पाठोंको पढ़ती हूँ। और इससे कितनी नई बातें सामने आ रही हैं। मैं भारतीय विचारधारासे जितनी अधिक परिचित होती जाती हूँ उतना ही अधिक मुझे ऐसा लगता है मानो बहुत

हम अपने पूर्व-निर्धारित मार्गपर आगे बढ़ते रहें और देशको इस दायित्वहीन एवं अहम्मन्य शासनकी चुनौतीका कारगर जवाब देनेके लिए तैयार करें, फरीदपुरके उस महत्त्वपूर्ण भाषणके शब्दोंका प्रयोग करें तो हम कह सकते हैं कि "हम संघर्ष करेंगे, लेकिन औचित्यपूर्ण साधनोंसे, यह ध्यान रखते हुए कि जब समझौतेका समय आये, जो निश्चय ही आयेगा, तब हमें दम्भकी भावनासे नहीं, बल्कि शोभनीय विनम्रताके साथ सुलह वार्तामें भाग लेना है, जिससे कि हमारे बारेमें यह कहा जा सके कि संकट कालकी अपेक्षा सफलताके अवसरपर हमारा आचरण अधिक शालीनतापूर्ण रहा।" अब आपने हमें कांग्रेसकी एकजुट शक्तिका सहारा देकर इस योग्य बना दिया है कि हम देशबन्धुका सन्देश पूरा कर दिखायें। अब ऐसी शुभ परिस्थितियोंमें हमें परिणामके बारेमें कोई भी शंका नहीं रह गई है, क्योंकि परिणाम तो वही हो सकता है जो सभी युगोंमें, सभी देशोंमें निरपवाद रूपसे देखनेको मिला है — अर्थात् अन्ततः शक्तिपर सत्यकी विजय।

आपने स्वराज्यवादी दलको समझौतेके दायित्वसे बड़ी उदारताके साथ बरी कर दिया है। मैं उस समझौतेके बारेमें दो शब्द कहना चाहता हूँ। आप जानते ही हैं कि मैं और देशबन्धु दोनोंने ही वर्ष-भरके दौरान समझौतेकी शर्तोंमें किसी भी फेर-बदलकी बात नहीं सोची थी। हम चाहते थे कि उसपर पूरे तौरपर अमल करके देखा जाये। व्यक्तिगत रूपसे हम उसकी सफलतामें हर तरहसे योग देना चाहते थे। हम दोनों ही व्यस्तता और बीमारीके कारण इस दिशामें उतना-कुछ नहीं कर पाये जितना कि हम चाहते थे, परन्तु मैं आपकी इस बातसे सोलहों-आने सहमत हूँ कि हालकी घटनाओंके फलस्वरूप एक बिलकुल ही नई परिस्थिति पैदा हो गई है और इस परिस्थितिमें कांग्रेसको तत्काल प्रमुख रूपसे एक राजनीतिक संगठन बनकर अपने आपको इस स्थितिके अनुरूप ढाल लेना चाहिए। इसलिए मैं आपके प्रस्तावका स्वागत करता हूँ। लेकिन इसका यह अर्थ नही होता कि कांग्रेसको किसी भी मामलेमें अपना रचनात्मक कार्यक्रम त्याग देना चाहिए। हमारे सारे प्रयत्न विफल हो जायेंगे, यदि उनको समूचे राष्ट्रकी संगठित शक्तिका बल न मिला।

अब हम पूर्ण आत्मविश्वासके साथ विधान परिषदोंमें और उनके बाहर देशमें अपना काम कर सकेंगे और यदि देशमें कभी संगठित कार्रवाईकी जरूरत पड़ी तो कहनेकी जरूरत नहीं कि स्वराज्यवादी दल उसमें पूरे मनसे सहायता देगा।

हृदयसे आपका,
(ह०) मोतीलाल नेहरू

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-७-१९२५

सामग्रीके साधन-सूत्र

'अमृतबाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक। सर्व प्रथम १८६८ में इसका प्रकाशन बंगला साप्ताहिकके रूपमें प्रारम्भ किया गया था। १८९१ से इसे दैनिक पत्रका रूप दे दिया गया।

'आज': वाराणसीसे प्रकाशित हिन्दी दैनिक।

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और, गांधीजीसे सम्बन्धित कागज-पत्रोंका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

'नवजीवन' (१९१९–३१): गांधीजी द्वारा सम्पादित अहमदाबादसे प्रकाशित गुजरातीका एक साप्ताहिक, जिसका प्रकाशन कभी-कभी सप्ताहमें दो बार भी होता था। इस पत्रका प्रकाशन ७ सितम्बर, १९१९ को प्रारम्भ किया गया, किन्तु मूलतः यह 'नवजीवन अने सत्य' नामक गुजराती मासिक (१९१५–१९१९) था। १९ अगस्त, १९२१ से इसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित होने लगा।

'फॉरवर्ड': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक। इसके संस्थापक चित्तरंजन दास थे।

'बापुना पत्रो — मणिबहेन पटेलने' (गुजराती): सं० मणिबहेन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) अनु० मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, जो स्वराज्य आश्रम, बारडोलीमें सुरक्षित है।

'यंग इंडिया' (१९१८–३१): बम्बईमें जमनादास द्वारकादास द्वारा प्रारम्भ किया गया अंग्रेजीका साप्ताहिक; ७ मई, १९१९ से गांधीजीकी देख-रेखमें यह सप्ताहमें दो बार प्रकाशित होने लगा; अक्तूबर, १९१९ से गांधीजीके सम्पादनमें अहमदाबादसे साप्ताहिकके रूपमें छपने लगा।

'सर्चलाइट': पटनासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

साबरमती संग्रहालय: पुस्तकालय तथा संग्रहालय, जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात सुरक्षित हैं।

'स्टेट्समैन:' कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स': दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक। १८७८ में इसका प्रकाशन साप्ताहिकके रूपमें शुरू हुआ था, फिर १८८३ से यह सप्ताहमें तीन बार छपने लगा और १८८९ से दैनिक बन गया।

भटकनेके बाद आखिरकार अपने घरमें पहुँच रही हूँ — वह घर जो मुझसे कबका छूट गया था।

मैं अपना जीवन अधिकसे-अधिक सरल बनाती जा रही हूँ — जितना कि इन परिस्थितियोंमें सम्भव है। मैंने सभी किस्मकी शराब, बीअर इत्यादिका पान करना बिलकुल छोड़ दिया है, और मैं अब किसी भी तरहके मांसका सेवन नहीं करती।

मेरे हृदयमें अपार आह्लाद और तीव्र विकलता है — आह्लाद इस बातका कि मैंने अपना सर्वस्व आपको और आपकी जनताको अर्पित कर दिया है और विकलता इस बातकी कि मेरे पास न्यौछावर करनेके लिए इतना कम — एक कण-मात्र है।

मैं उस दिनके लिए ललक रही हूँ जब मैं भारत-भूमिपर पैर रखूँगी। लेकिन अभी तो पाँच लम्बे महीने पड़े हुए हैं। मैं ६ नवम्बरको बम्बई पहुँचूंगी और यदि आश्रम आनेकी अनुमति मिल गई तो उसी शाम गाड़ी पकड़कर दूसरे दिन सुबह अहमदाबाद पहुँच जाऊँगी।

तो अनुमति है आदरणीय गुरुदेव?

इस पत्रका उत्तर स्वयं लिखनेका कष्ट उठानेकी बात कृपया मत सोचिए, पर आप इसके उत्तरमें किसीके जरिये एक-दो शब्द शायद कहलवा दे सकते हैं।

सदा ही आपकी विनम्र और सबसे निष्ठावान सेविका,

मेडेलिन स्लेड

[पुनश्च :]

अपने काते हुए ऊनके दो छोटे-से नमूने साथ भेज रही हूँ।

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०५४१) से।

सामग्रीके साधन-सूत्र

'अमृतबाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक। सर्व प्रथम १८६८ में इसका प्रकाशन बंगला साप्ताहिकके रूपमें प्रारम्भ किया गया था। १८९१ से इसे दैनिक पत्रका रूप दे दिया गया।

'आज': वाराणसीसे प्रकाशित हिन्दी दैनिक।

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और, गांधीजीसे सम्बन्धित कागज-पत्रोंका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

'नवजीवन' (१९१९–३१): गांधीजी द्वारा सम्पादित अहमदाबादसे प्रकाशित गुजरातीका एक साप्ताहिक, जिसका प्रकाशन कभी-कभी सप्ताहमें दो बार भी होता था। इस पत्रका प्रकाशन ७ सितम्बर, १९१९ को प्रारम्भ किया गया, किन्तु मूलतः यह 'नवजीवन अने सत्य' नामक गुजराती मासिक (१९१५–१९१९) था। १९ अगस्त, १९२१ से इनका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित होने लगा।

'फॉरवर्ड': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक। इसके संस्थापक चित्तरंजन दास थे।

'बापुना पत्रो — मणिबहेन पटेलने' (गुजराती): सं० मणिबहेन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) अनु० मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, जो स्वराज्य आश्रम, बारडोलीमें सुरक्षित है।

'यंग इंडिया' (१९१८–३१): बम्बईमें जमनादास द्वारकादास द्वारा प्रारम्भ किया गया अंग्रेजीका साप्ताहिक; ७ मई, १९१९ से गांधीजीकी देख-रेखमें यह सप्ताहमें दो बार प्रकाशित होने लगा; अक्तूबर, १९१९ से गांधीजीके सम्पादनमें अहमदाबादसे साप्ताहिकके रूपमें छपने लगा।

'सर्चलाइट': पटनासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

साबरमती संग्रहालय: पुस्तकालय तथा संग्रहालय, जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात सुरक्षित हैं।

'स्टेट्समैन:' कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स': दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक। १८७८ में इसका प्रकाशन साप्ताहिकके रूपमें शुरू हुआ था, फिर १८८३ से यह सप्ताहमें तीन बार छपने लगा और १८८९ से दैनिक बन गया।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१ मईसे ३१ जुलाई, १९२५ तक)

१. मई: गांधीजी सुबह कलकत्ता पहुँचे।

'अमृतबाजार पत्रिकामें' प्रकाशित सन्देशमें जनतासे खद्दर खरीदनेका अनुरोध किया।

'स्टेट्समैन' के प्रतिनिधिके साथ हुई भेंटमें निकट भविष्यमें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता स्थापित हो जानेकी आशा व्यक्त की।

एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे भेंट की।

मिर्जापुर पार्कमें आयोजित सार्वजनिक सभामें दिये गये भाषणमें जनतासे हिंदी सीखनेका अनुरोध किया और कहा कि यदि जनता रचनात्मक कार्यक्रमको सफल बनानेमें सहायता करे तो "हमारी बेड़ियाँ स्वयमेव टूटकर गिर जायेंगी।"

२. मई: फरीदपुरमें औद्योगिक प्रदर्शनीका उद्घाटन किया।

अखिल बंगाल हिन्दू सम्मेलनमें दिये गये भाषणमें अस्पृश्यताको दूर करनेकी अपील की तथा शिक्षित लोगोंसे चरखा और खद्दर अपनानेको कहा। बंगाल प्रान्तीय युवक सम्मेलनमें भाषण करते हुए तरुणोंको ब्रह्मचर्यका पालन करने तथा शुद्ध जीवन बितानेकी सलाह दी।

३. मई: मुसलमानोंकी सभामें भाषण दिया।

छात्रों द्वारा मानपत्र भेंट करनेपर उनसे सूत कातनेका अनुरोध किया; अस्पृश्योंके साथ हुई बातचीतमें उन्हें राष्ट्रीय कार्योंमें लग जानेकी सलाह दी।

फरीदपुर नगर निगमने अभिनन्दन-पत्र भेंट किया।

चित्तरंजन दासकी अध्यक्षतामें हुई बंगाल प्रान्तीय परिषद्में गांधीजीने कहा कि स्वराज्य-प्राप्ति केवल अहिंसा और कताई द्वारा ही सम्भव है।

४. मई: बंगाल प्रान्तीय परिषद् की बैठकमें भाग लिया।

५. मई: प्रवर्तक आश्रम, चन्द्रनगरमें भाषण दिया।

६ मई: सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीसे उनके निवास स्थानपर मिले।

अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय अस्पतालका शिलान्यास किया।

७ मई: कवि-गुरुके जन्म-दिवसपर उन्हें शुभकामनाएँ दीं।

बौद्ध विहार, कलकत्तामें आयोजित बुद्ध जयन्ती समारोहकी अध्यक्षता की।

पूर्वी बंगालकी यात्रा आरम्भ की।

८. मई: लोहागंज (ढाका) में भाषण दिया और वहाँ उन्हें ५,५०० रु० की थैली भेंट की गई।

मलिकन्दाकी सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

९. मई : दिघीरपुरकी राष्ट्रीय पाठशाला देखने गये। सार्वजनिक सभामें संघ निकायने अभिनन्दन-पत्र भेंट किया।
तालटोलाके कार्यकर्त्ताओंकी सभामें भाषण दिया।
मलखानगरमें भाषण दिया।
एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे भेंट की।
१०. मई : पूरन बांजारके व्यापारी संघकी सभामें भाषण दिया।
चाँदपुरकी सार्वजनिक सभाओंमें मानपत्र प्राप्त किये और भाषण दिये।
चाँदपुरकी राष्ट्रीय पाठशालामें छात्रोंसे मिले और उनसे प्रतिदिन सूत कातनेका आग्रह किया।
१२ मईसे पूर्व : हरदयाल नागके साथ हुई भेंटमें स्वराज्यवादियोंसे मौलिक विषयों-पर मतभेद होनेका खण्डन किया।
१२ मई : सुबह चटगाँव पहुँचे।
सार्वजनिक सभामें कहा, "खद्दरके बिना सविनय अवज्ञा असम्भव है।"
१३ मई : विद्यार्थियों और व्यापारियोंकी सभाओंमें भाषण दिये।
लॉर्ड मैस्टन ब्रिटिश संसदके दोनों सदनोंकी भारतीय मामलोंसे सम्बन्धित संयुक्त समितिके अध्यक्ष निर्वाचित हुए।
१४ मई : गांधीजीने नवाखलीमें सार्वजनिक सभा और स्त्रियोंकी सभामें भाषण दिये।
जिला अध्यापक संघके प्रतिनिधियोंसे भेंट की।
१५ मई : कोमिल्लाकी सार्वजनिक सभामें अभिनन्दन-पत्र भेंट किये गये;
गांधीजीने विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण दिया।
कोमिल्लाके अभय आश्रममें गये।
विक्रमपुरके कार्यकर्त्ताओंके समक्ष भाषण दिया और घोषणा की कि मैं कांग्रेससे अलग संगठन बननेके खिलाफ हूँ।
१६ मई : कोमिल्लामें स्त्रियोंकी सभामें बोलते हुए उन्हें सीताके आदर्शका अनुकरण करनेको कहा।
१७ मई : ढाकाकी सार्वजनिक सभामें लोगोंसे अपना काम अपनी मातृभाषा या हिन्दीमें चलानेका अनुरोध किया।
श्यामपुरमें नेशनल कालेज अस्पतालकी इमारतका शिलान्यास किया।
१९ मई : मैमनसिंहमें महिलाओंकी सभामें भाषण दिया।
महाराजाके महलमें आयोजित एक सभामें साम्प्रदायिक एकता तथा कताईकी आवश्यकतापर भाषण दिया।
जमींदारोंसे बातचीत की।
२१ मई : दीनाजपुरके अस्पृश्योंको अपनी दशाके सम्बन्धमें अधीर न होनेकी सलाह दी।
सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण दिया।

स्थानीय जमींदारोंसे दी गई भेंटमें चरखेके आर्थिक और राजनैतिक महत्त्वपर जोर दिया।

२२ मई: वोगूड़ामें कार्यकर्त्ताओंके स्कूलमें भाषण दिया।

सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

तलोड़ामें डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय द्वारा संचालित खादी केन्द्रका निरीक्षण किया।

२५ मई: 'फॉरवर्ड' को दिये सन्देशमें चरखा कार्यक्रमको आगे बढ़ानेकी आवश्यकतापर जोर दिया।

२८ मई: कलकत्ता लौटकर एक सभामें युवकोंसे गाँवोंमें जाने तथा जनताके साथ मिलकर काम करनेका अनुरोध किया।

२९ मई: बोलपुर पहुँचकर शान्तिनिकेतनके लिए रवाना हुए।

३० मई: रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे मिले और उन्हें चरखा तथा खद्दरका कार्यक्रम विस्तारपूर्वक समझाया।

३१ मई: शान्तिनिकेतनके विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण करते हुए उनसे आधा घंटा चरखा कातनेके लिए कहा।

डॉ० मोरेनोके साथ आंग्ल-भारतीय प्रश्नपर सविस्तार बात की।

३ जून: दार्जिलिंग पहुँचे; चित्तरंजन दासके साथ रहे।

६ जून: ईसाई धर्म प्रचारिकाओंके समक्ष भाषण देते हुए अपने आन्दोलनका उद्देश्य आत्मशुद्धि बताया तथा लोगोंकी सेवा करनेपर जोर दिया।

१० जून: जलपाईगुड़ीमें व्यापारियों और व्यवसायियोंसे अनुरोध किया कि वे अपने धनको और सूझबूझको भारतके कल्याणके लिए इस्तेमाल करें।

११ जून: नवाबगंज में विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण दिया।

१२ जून: नवाबगंज जिलेमें उपशीके बिझारी स्कूलमें गये।

भोजेश्वरकी सभामें भाषण दिया।

१३ जून: मदारीपुरकी सार्वजनिक सभामें भाषण दिया और सार्वजनिक पुस्तकालयका निरीक्षण किया।

१४ जून: बारीसालकी सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

ऑक्सफोर्ड मिशनका बुनाई विभाग देखने गये और कहा कि कताई ही एकमात्र पूरक धन्धा बन सकता है, बुनाई नहीं।

१६ जून: दार्जिलिंगमें चित्तरंजन दासका देहावसान।

१७ जून: खुलनामें गांधीजीको चि० र० दासके स्वर्गवासका समाचार मिला; देशभाइयोंसे अपील की: "उन्होंने (चि० र० दासने) काम जहाँ छोड़ा है, वहींसे उसे हमें उठा लेना चाहिए।"

सार्वजनिक सभामें चि० र० दासको श्रद्धांजलि अर्पित की।

१८ जून: कलकत्तामें चित्तरंजन दासकी शवयात्रामें शरीक हुए।

२२ जून: देशबन्धु-स्मारक कोषके लिए अपील जारी की।

२३ जून: म्युनिसिपल मार्केट, कलकत्ताकी सभामें शामिल हुए।

२४ जूनसे पूर्व: 'स्टेट्समैन' और सर्चलाइट' के प्रतिनिधियोंसे भेंट दी।

२४ जून: 'इंग्लिशमैन'के प्रतिनिधिको दी गई भेंटमें स्वराज्यवादी दलमें कोई फूट होनेका खण्डन किया तथा कलकत्तामें एक महीना और ठहरनेकी इच्छा व्यक्त की।

२६. जून: चित्तरंजन दासकी मृत्युपर गुजरातियों द्वारा आयोजित एक शोकसभाकी अध्यक्षता की।

२८ जून: 'नवजीवन'में पहली जुलाई (देशबन्धुका श्राद्ध-दिवस) को देशभरमें शोक-सभाएँ आयोजित करने तथा चरखा चलानेकी प्रतिज्ञा लेनेके लिए अपील की।

३० जून: यूनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट, कलकत्तामें शोक-सभाकी अध्यक्षता की।
प्रोफेसर सुशील कुमार रुद्रका देहान्त।

१ जुलाई: चित्तरंजन दासके श्राद्धमें भाग लिया।
सार्वजनिक सभामें भाषण दिया; स्त्रियोंकी सभामें देशबन्धु-स्मारक कोषके लिए चूड़ियाँ और धन प्राप्त हुआ।

२ जुलाई: खिदरपुर, कलकत्तामें बकरीदके मौकेपर हिन्दू-मुस्लिम दंगा भड़क उठा। गांधीजी अबुल कलाम आजादके साथ दंगाई क्षेत्रोंमें गये और दोनों सम्प्रदायोंके लोगोंको शान्त किया।
एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको दिये गये वक्तव्यमें हिन्दुओंको दोषी ठहराया।

४ जुलाई: खड़गपुरमें इंडियन इन्स्टीट्यूटका निरीक्षण किया; बादमें इंडियन रिक्रिएशन ग्राउंडमें आयोजित विशाल सभामें भाषण देते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकताकी आवश्यकतापर जोर दिया।

५ जुलाई: 'नवजीवन'में "दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास" का धारावाहिक प्रकाशन, जो उपवास तथा अन्य कारणोंसे रुक गया था, फिरसे आरम्भ किया।

७ जुलाई: मिदनापुरमें छात्रोंकी सभा, महिलाओंकी सभा तथा सार्वजनिक सभाओंमें भाषण दिये।

९ जुलाई: स्वराज्यवादी पार्षदोंकी सभामें उनसे जे० एम० सेनगुप्तको मेयर चुननेका आग्रह किया।

१२ जुलाई: राजशाहीका सार्वजनिक पुस्तकालय देखने गये; सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

१६ जुलाई: स्वराज्यवादी दलकी महापरिषद्की बैठकमें भाषण दिया। इसमें मोतीलाल नेहरू भी उपस्थित थे।

१७ जुलाई: स्वराज्यवादी दलकी महापरिषद्की बैठकमें कहा कि यदि स्वराज्यवादी कताई सदस्यताको समाप्त करना ही चाहते हैं तो मैं उनकी माँगको मान लूंगा, लेकिन फिर कांग्रेसकी अध्यक्षतासे त्यागपत्र दे दूंगा।

१९ जुलाई: मोतीलाल नेहरूको बेलगाँव समझौतेके समस्त दायित्वोंसे मुक्त करते हुए पत्र लिखा।

२४ जुलाईसे पूर्व: कलकत्तामें मारवाड़ी अग्रवाल सम्मेलनमें दिये भाषणमें बाल-विवाह-की निन्दा की।

२४ जुलाई: क्रिस्टोदास पालकी पुण्यतिथिके अवसरपर युनिवर्सिटी इन्स्टीटयूटमें आयोजित सभामें भाषण दिया।

ग्रैंड होटलमें हुई यूरोपीय संघकी बैठकमें भाषण देते हुए कलकत्ताके मेयरके चुनावमें अपने हस्तक्षेपका स्पष्टीकरण किया।

२७ जुलाई: 'फॉरवर्ड' को दिये सन्देशमें लोकमान्यकी स्मृतिका सम्मान करनेके हेतु कातने और खद्दर पहननेका अनुरोध किया।

२८ जुलाई: कलकत्तामें यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशनमें ईसाई धर्मप्रचारकोंके समक्ष भाषण दिया।

२९ जुलाई: वेलेजली स्क्वेयरमें हुई आंग्ल-भारतीयोंकी सभामें भाषण दिया।

३१ जुलाई: कलकत्ताकी सार्वजनिक सभामें हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा गरीबीको दूर करनेके लिए चरखा कातनेकी आवश्यकतापर जोर दिया।

शीर्षक-सांकेतिका

अपील, —अखिल बंग देशबन्धु-स्मारक कोषके लिए, २८७-८८; —अखिल बंगाल देशबन्धु-कोषके लिए, ४५६-५७; —अखिल भारतीय देशबन्धु-स्मारकके लिए, ४१६-१७; —देशबन्धु श्रद्धांजलि-सभाके सम्बन्धमें, २०९-१०; —देशबन्धु स्मारकके लिए, २८६-८७; —देशबन्धु स्मारक कोषके लिए, ३२६-२७

टिप्पणियाँ, —२०-२५, ५३-५४, ९५-९७, ११९-२२, १४१-४५, १५३-५५, १६०-६२, १६६-७२, १७८-८१, १९८-२०३, २२२-२५, २५३-५८, २९५-३००, ३३६-४०, ३४९-५१, ३५६-५८, ३८४, ३९५-९८, ४०७-९, ४२३-२६, ४६६-७२

तार, —उर्मिला देवीको, २६०; —के० केलप्पन नायरको, २७४; —वासन्ती देवी दासको, २५९; —मुहम्मद अलीको, २५९; —मोतीलाल नेहरूको, २७३; —मोना दासको, २६१; —वल्लभभाई पटेलको, २६१; —वाइकोम सत्याग्रह आश्रमको, २६३; —शौकत अलीको, २६२; —सतकौड़ीपति रायको, २६०; —सरोजिनी नायडूको, २६२; —सुधीर रुद्रको, ३२४; —सुशील कुमार रुद्रको, २९३

पत्र, —एस० ए० वझेको, १९१; —कल्याणजी मेहताको, १५१; —कृष्णदासको, ४१९; —के० केलप्पन नायरको, ४४८; —कोण्डा वेंकटप्पैयाको, ४३१-३२; —चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको, ३९९-४००, ४४७; —चित्तरंजन दासको, २३६-३७; —जमनालाल बजाजको, १७६-७७, २३१, ३२३; —जितेन्द्रनाथ कुशारीको, १९०; —जी० वी० केतकरको, ८९; —जी० वी० सुब्बारावको, १९०; —डब्ल्यू० एच० पिटको, ४००, ४४६-४७; —डी० हनुमन्तरावको, ४४५-४६; —देवचन्द पारेखको १८४, २८८; —देवदास गांधीको, १२२, ३२३, ४१३; —न० चि० केलकरको, १६०; —नारणदास गांधीको, २०८-९, २८९-९०; —निशीथनाथ कुंडूको, २०८, ४२०; —पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको, १७५; —फ्रेड ई० कैम्बेलको, ४४८-४९; —बनारसीदास चतुर्वेदीको, ४४५; —बृजकृष्ण चांदीवालाको, २६, ७८; —मगनलाल गांधीको, ७३; —मणिबहन पटेलको, ९९, १८४-८५, २३३-३४, ३२४, ४०१; —मदाम आंत्वानेत मिरबेलको, २४९; —महादेव देसाईको, ३५२, ३५३, ३७६; —महाराजा बर्दवानको, ३०७; —मुहम्मद अलीको, १२८; —मेडेलीन स्लेडको, ४३०; —मोतीलाल नेहरूको, २४७-४८, ४१२-१३; —रवीन्द्रनाथ ठाकुरको, ५९, १२७; —राजा महेन्द्र प्रतापको, २४७; —राजेन्द्रप्रसादको, ४१४; —वर्ल्डके सम्पादकको, २२०; —वसुमती पण्डित-

को, ९८-९९, २३१-३२, २८९, ३६७; –शरत् चन्द्र बोसको, २४९-५०; –शुएब कुरैशीको, ३०८; –शौकत अलीको, ४१८-१९, ४५७-५८; –सी० एफ० एन्ड्रयूजको, ९८, ३२२; –'स्टेट्समैन' को, ४७९-८२

पत्रका अंश, –मथुरादास त्रिकमजीको लिखे, १२९

पत्रका मसविदा, –एनी बेसेंटको लिखे, २०७

प्रस्ताव, –स्वराज्यदलकी बैठकमें, ४०१-२

बातचीत, –अस्पृश्योंके साथ, १२-१६; –एक मुसलमान सज्जनसे, १०९-१०; –का अंश, ६५-६६; –जल्पाईगुड़ीमें स्वयंसेवकोंसे, २२१; –ढाकाके विद्यार्थियोंके साथ, १२५-२६; –मैमनसिंहके जमींदारोंसे, १३२; –रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे, १७७-७८; –विक्रमपुरके कार्यकर्त्ताओंसे, १०६

भाषण, –अखिल बंगाल हिन्दू सम्मेलनमें, १०-११; –अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें, १३०-३१; –अष्टांग आयुर्वेद विद्यालयके शिलान्यास समारोहमें, ४२-४५; –आंग्ल-भारतीयोंकी सभामें, ४५८-६६; –ईसाई धर्मप्रचारकोंके समक्ष, २०९-११, ४४९-५५; –कलकत्ताकी शोक-सभामें, ३०८-९; –कलकत्ताकी सार्वजनिक सभामें, ४-९, १७३-७५, ४८२-८३; –कार्यकर्त्ताओंके स्कूल, बोगूड़ामें, १४८-४९; –कोमिल्लाकी सार्वजनिक सभामें, १०२-३; –कोमिल्लामें, १०४-५; –क्रिस्टोदास पालकी पुण्यतिथिपर, ४३२-३३; –खड़गपुरकी सार्वजनिक सभामें, ३४५; –खुलनाकी सार्वजनिक सभामें, २६५-६७; –चटगाँवकी सार्वजनिक सभामें, ८९-९३; –चाँदपुरकी राष्ट्रीय पाठशालामें, ७६; –चाँदपुरकी सार्वजनिक सभामें, ७७; –चाँदपुरमें, ७४-७६; –जलपाईगुड़ीकी सार्वजनिक सभामें, २२१; –ढाकाकी सार्वजनिक सभामें, १२३-२५; –तलोड़ामें, १५०; –तालटोलाके कार्यकर्त्ताओंकी बैठकमें, ६७-६८; –दिघीरपुरकी सार्वजनिक सभामें, ६६-६७; –दीनाजपुरकी सार्वजनिक सभामें, १४५-४६; –दीनाजपुरके अस्पृश्योंके समक्ष, १४५; –दीनाजपुरके विद्यार्थियोंके समक्ष, १४६; –देशबन्धुके श्राद्ध-दिवसपर, ३२७-३०; –नवाखलीकी सार्वजनिक सभामें, १००-१; –नवाखलीमें, १०२; –नवाबगंजके विद्यार्थियोंके समक्ष, २३२; –नेशनल कॉलेज, श्यामपुरमें, १२७; –पूरन-बाजारके व्यापारी संघमें, ७४; –प्रवर्तक आश्रम, चन्द्रनगरमें, ४१-४२; –फरीदपुरकी औद्योगिक प्रदर्शनीमें, ९; –फरीदपुरमें, २६-२७; –बंगाल प्रान्तीय परिषद्में, २८-३६; –बंगाल प्रान्तीय युवक सम्मेलनमें, ११-१२; –बाँकुड़ाकी सार्वजनिक सभामें, ३५५; –बारीसालकी सार्वजनिक सभामें, २४६; –बुद्ध-जयन्तीके अवसरपर, ६०-६३; –बोगूड़ाकी सार्वजनिक सभामें, १४९-५०; –भवानीपुर, कलकत्तामें, १९२; –भोजेश्वरकी सार्वजनिक सभामें, २३५; –मदारीपुर-

की सार्वजनिक सभामें, २३७; –मदारीपुरके सार्वजनिक पुस्तकालयमें, २३८; –मलखानगरमें, ६९-७१; –मलिकन्दामें ६५; –महिलाओंकी सभा, मैमनसिंहमें, १२९-३०; –मानपत्रके उत्तरमें, १७-१८; –मारवाड़ी अग्रवाल सम्मेलन, कलकत्तामें, ४२७-२९; –मिदनापुरके छात्रोंके समक्ष, ३५३-५४; –युनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट, कलकत्तामें, ३२५-२६; –यूरोपीय संघकी बैठकमें, ४३४-३७; –राजशाहीकी सार्वजनिक सभामें, ३८५-८६; –लोहागंजमें, ६४; –विद्यार्थियोंके समक्ष, चटगाँवमें, ९३-९४; –विद्यार्थियोंके समक्ष १०३-४; –व्यापारियोंकी सभा, चटगाँवमें, ९४-९५; –शान्तिनिकेतनमें, १८५; –स्त्रियोंकी सभा, कोमिल्लामें, ११०-११; –स्वराज्यदलकी बैठकमें, ४०२, ४०३; –स्वराज्यवादी पार्षदोंके समक्ष, ३६८

भेंट, –'इंग्लिशमैन'के प्रतिनिधिसे, २९४; –एक मित्रसे, १०७-९; –एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे, ३-४, ७१; –जिला अध्यापक संघके प्रतिनिधिसे, १०१; –डॉ० एच० डब्ल्यू० बी० मोरेनोसे, १८६-८९; –दीनाजपुरके जमींदारसे, १४६-४८; –'सर्चलाइट'के प्रतिनिधिसे, २९३; –'स्टेट्समैन'के प्रतिनिधिसे १३, २९१-९२; –हरदयाल नागसे, ८०-८८

वक्तव्य, –एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको, ३४३-४५; –समाचारपत्रोंको, ४७८-७९

सन्देश, –जनताके लिए, १; –फॉरवर्डको, १५९, ४४४,

सम्मति, –दर्शक-पुस्तिकामें, २३२-३३, ३८५; –फादर स्ट्राँगको, २४६-४७

विविध

अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक, ४४१-४२, ४१५-१६; अन्त्यज साधु नन्द, ७२; अन्त्यजोंके सम्बन्धमें, २३९-४०; आयुर्वैदिक चिकित्सा-प्रणाली, २२८-३०; उद्धार कब हो सकता है? ४०९-११; एक अपील, २६४; एक असाधारण मानपत्र, १३२-३५; एक कार्यकर्त्ताकी कठिनाई, ७८-८०; एक खामोश समाजसेवी, ३६३-६४; एक घरेलू प्रकरण, २७०-७३; एक पत्रके बारेमें, २५०-५३; एक सलाह, २२०; कताई सदस्यता, ४२०-२२; कर्नाटकमें खद्दर, ९५; कलकत्ताके मेयर, ३९१-९५; कांग्रेस और राजनीतिक दल, ४७२-७५; कांग्रेसमें बेकारी, ४७५-७७; काठियावाड़का प्रयोग, ३१४; काठियावाड़में खादी, २१९-२०; किसानोंकी पुकार, १६२-६३; कुछ त्रुटियाँ, १६४-६५; कुछ संस्मरण, ३११-१४; कूदनेको तत्पर, १३५-४०; क्या हम तैयार हैं? २६७-७०; खादी प्रतिष्ठान, १९५-९७, ३८३-८४; खेती बनाम खद्दर, ४७७-७८; गंगा-स्वरूप बासन्ती देवी, ३१८-२१; गुरुद्वारा कानून, ३७७; गोरक्षा, १९-२०, ४६-४७; ग्राम-प्रवेश, १८१-८२; चित्तरंजन दास, २७९-८२; चूड़ियोंकी वर्षा, ३४२; टमानी हाल क्या है? ३९०-९१; तीन सवाल, ३०५-६; त्यागका शास्त्र, ३६१-६३; दमनका फल, ४२२-२३; दार्जिलिंगके संस्मरण, ३६९-७६; दुःखद जानकारी, ३५८-६०; देशबन्धु चिरंजीव हों! ३१४-

१८; देशबन्धु जिन्दाबाद!, २७४-७७; देशबन्धु-स्मारक कोष, ३४०-४१; दो प्रजातियाँ नहीं, ३६६-६७; दोष किसका? ३२१-२२; धर्मके नाम अन्धेर, २१२-१४; नम्रताकी आवश्यकता, ३००-३; 'नवजीवन' बन्द करें, ३७९-८२; पतित बहनें, ३०३-४; पहली जुलाई, ३१०-११; पावककी ज्वाला, २८४-८५; प्रश्न-माला, ३३०-३२; प्रश्नोंके उत्तर, ३८६-८७; प्राप्त चन्देकी स्वीकृति, २९०-९१; फिजूलखर्ची, १५५-५९; फिर वही, ४७-५२; बंगालका त्याग, १५१-५२; बंगालके अनुभव, ५४-५९; बंगालके संस्मरण, ३६-४०; बंगालमें, २१५-१८; बंगालमें कताई, १८३; बाढ़-संकट-निवारण, २०४-६; मनोरंजक शिक्षा, ३४८-४९; महान् शोक, २६३; मेरा कर्त्तव्य, २४४-४५; मेरा धर्म, ४३७-४०; मेरी अक्षमता, ३३२-३५; यह तो बलात् संयम है, ३७७-७९; यह पुरुषोंका काम नहीं? २२६-२८; रामनामकी महिमा, १११-१५; राष्ट्रीय शिक्षा, ४११-१२; राष्ट्रीय सेवा और वेतन १६५-६६; वंचनासे भरा भाषण, ४०४-७; वाइकोम, १९२-९५; विविध, ४४३-४४; शंका-निवारण, ३९८-९९; श्रद्धांजलि-सभाके सम्बन्धमें निर्देश, २७७-७८; संरक्षणकी आवश्यकता, २८२-८४; सत्यपर कायम रहो, ३८८-८९; सत्याग्रहियोंका कर्त्तव्य, ३०६-७; समस्याएँ, ३४६-४८; सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, ११६-१८; सुलहका अवसर, ३६५-६६; स्मरणांजलिके लिए निवेदन, २७८; स्वयंसेवकके गुण, २४०-४३; हिन्दुओंको सलाह, २४३।

सांकेतिका

अ

अंग्रेज, २, ३१-३३, ४९, ६९, १९५, २५३, २६६, २७६, २९९, ३५९-६०, ३७२, ३७६, ३८६, ४०६, ४४९, ४५३, ४६१, ४६५, ४८१

अकाली आन्दोलन, ३७७

अखिल बंगाल देशबन्धु स्मारक कोष, ३३६, ३९८, ४१६; –के लिए अपील, ४५६-५७

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, देखिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

अखिल भारतीय खादी बोर्ड, १२०-२१, २२४, ३८४

अखिल भारतीय गोरक्षा परिषद्, १९, ४६, २५४

अखिल भारतीय चरखा संघ, १०६, ४२०-२१, ४६७-६८

अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोष, २७७, २८६-८७, २९० पा० टि०, ३०७-१०, ३२६, ३३६, ३४०-४१, ३४५, ३५०-५१, ३५३-५४, ३८५, ३९१, ३९५, ३९७-९८, ४१४-१७, ४४१-४२, ४६६, ४७२, ४७५-७६

अजमल खाँ, हकीम, ४२, १६६, २२८, २४८

अणे, १७७

अनिल बाबू, ३५५

अन्त्यज, १७, २२, २३९-४०, २४२; –[जों] के उत्थानके लिए कार्य, १८; –के लिए कराचीमें पाठशालाएँ, १७९; देखिए अस्पृश्य भी

अन्सारी, डॉ० मु० अ०, १६७, २४८

अपरिवर्तनवादी, १८३, २५१, ४२१, ४३९

अपर्णा देवी, ११, ४२५

अब्दुल रसूल, ४८२

अब्दुल हकीम, मौलवी, २९०

अय्यर, वी० वी० एस०, २५८

अर्जुन, ५०-५१, ३२८

अर्जुनलाल, १७७

अलवर, ४२३

अली-बन्धु (मुहम्मद अली और शौकत अली), ६४, ६६, ७४, ८९, १००, १०२, १६६-६७, २००, २४८, २८०, ३६४

अष्टाँग आयुर्वेद विद्यालय, ४२, २२८

असहयोग, २, ११, ८१-८२, ८६, ८८, १९९, ३६४, ४०४, ४०६, ४७४-७५, ४८०; –और अहिंसा, ८२, २५२, ३०५; –का आरम्भ, ३१३; –बंगालमें, ८७

असहयोगी, ८५-८६, ८८

अस्पृश्य, ७, १०, १७, ५३, ६९, १००, १२४, १४२, १४९, १७४-७५, १८८, २८५, ३३०-३१, ३९९-४००; देखिए अन्त्यज भी

अस्पृश्यता, ४, ७, ९-१०, १२-१३, १६, १८, ६९, ७४-७५, ७७, ९२, १००, १०३, १०६, १०९, १११, ११३, १४२-४३, १४८, १५३, १६८, १७५, १८५, १९२, २३५, २४६, २८४-८५, २९९, ३३१, ३४७, ३५६, ३८६, ४११, ४८१; –निवारण, १-२, १२, १४, ३२, ४२, ६५-६६, १५६, २७०, ३९८-९९, ४१०

अहिंसा, ३०, ३२, ४२, ४८, ५१-५२, ६८, ७०, ८२, ९०-९२, १३६-३८,

१५५, २००, २१४, २३७, २४३, २४९, २५२, २६६, २७५, ३०२-४, ३१२, ३३४-३५, ३८९, ४२८, ४३३, ४६७, ४८०-८१; –और असहयोग, ८२; –और चरखा, १३९, १४८-४९; –और स्वराज्य, ३७४

आ

आंग्ल-भारतीय, १८६-८९, १९४-९५, २७६, ४२४-२५, ४५८-६५
आजाद, मौलाना अबुल कलाम, ३४४, ४१६, ४३५, ४७८
आनन्द, १२९
आनन्दजी हरिदास, सेठ, ३०८
आनन्दानन्द, स्वामी, ३२४
आयुर्वैदिक पद्धति, २२८-३०
आर्नोल्ड, सर एडविन, ६१
आसर, लक्ष्मीदास, ३८३

इ

(द) इंग्लिशमैन, २९४
इंडिपेंडेंट, ३८७
इस्लाम, १३, ६०, १९३, २२७, ३५६, ३६२, ३६६

ई

ईश्वर, ३१८, ३४९, ३६०, ४५१-५२, ४६५
ईसा मसीह, ६०-६१, २२१, ३६२, ४५३, ४५५; –की शिक्षा, २०९-१०
ईसाई धर्म, १७, १७९, २०९, २२८, २५२, २६६, २८४, ३५६, ३६७, ४४९, ४५१, ४६९
ईस्ट इंडिया कम्पनी, ३३, २२७

उ

उत्तमचन्द वापा, ३२३
उपनिषद्, २१८, ३४९, ४५१
उर्मिलादेवी, २५३, २६०
उस्मान, ३०८

ए

एन्ड्रयूज, सी० एफ०, १८, ५९, ९८, २९३, २९७, ३२२, ३३९, ३६४, ४१६, ४५४

क

कताई, २, ७, ९, १७, २३-२५, ३९-४०, ५८, ६६, ७७, ८१, ८८, ९३, ९६, १०६, ११८, १२०, १२४-२६, १३०-३१, १५२, १५४, १६३-६४, १७०, १७८, १८१, १८३, १८६, १९२, १९५, १९८, २०१-३, २०६, २१६, २१९, २२१, २२४, २२६-२८, २३२-३३, २४२-४३, २४६, २६६-७, २८२-४, २९७, ३०४, ३१३, ३५०, ३५८, ३६९-७०, ४०३, ४११-२, ४१४-५, ४१९-२०, ४२४-६, ४३८, ४४४, ४६६-७, ४७५, ४७८; –और खादी, ३०२-३, ३३८, ४२४, ४३९; –और स्वराज्य, ६९-७०, २३६; –और स्वराज्यवादी, ३९, ८७; –पाठशालाओंमें, २२४, २९७
कताई-मताधिकार (कताई सदस्यता), ७५, १०६, १२१, १६७, १७०, १७३, १८०, १८८, २५८, २६७-९, ३५८, ३७१, ४०२-३, ४२०-२, ४२४-५, ४६३, ४६७, ४७५; –का प्रस्ताव, ?३४; –की शर्त २८२-४, ३८६; –को बरकरार रखना, ३४; –से सम्बन्धित धारा, ४३७-३९
कर्जन, लॉर्ड, २४६
कांग्रेस, देखिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
कांग्रेसी, १९८, २०३, २६७-९, ३८७, ३९३, ४०७-८, ४२१, ४३१, ४४०, ४६९, ४७५-६; –और ग्राम-सेवा १६३
कार, सर ह्यूबर्ट, ४३६
कारनेगी, ४२८
कुण्डू, निशीथनाथ, २०८, ४२०

कुम्भकर्ण, ८८
कुरान, ४५१, ४५७.
कुरैशी, शुएब, ३०८, ४१८-९
कुशारी, जितेन्द्रनाथ, १९०
कृष्ण, भगवान, ४१, ५०. १०३, १३९-४०, २४५, ३१८, ३२९, ४५५
कृष्णदास, २६, १२२, ३२३, ४१९
कृष्णैया, ४४६
केतकर, जी० वी०, ८९
केलकर, एन० सी०, ८९, ३७१
केलप्पन, ४००
कैम्बेल, फ्रेड ई०, ४४८
कोठारी, मणिलाल, २०, १७८
कौंसिल (विधान परिषद्) ५, ८५, ८८, ९१, १०४, १७४, १८७, २६६, ३७३, ३८६-७, ३९१, ४३१; –और राष्ट्रीय कार्यक्रम, २५१; –और स्वराज्यवादी, ८३-८४, २७५; –में प्रवेश, २, २६७, २७५, ३५५, ३८१, ४१८, ४२१, ४३१
कौजलगी, एच० एस०, ९५
क्रेसवेल, १९१

ख

खादी (खद्दर), १-२, ८, ११, १४, १६, २४-६, ३४, ३७, ३९-४१, ५३, ५८, ६७-८, ७४, ७७-८, ८७, ९०, ९४, १०६-७, १०९-१०, ११८-२१, १२४, १२९-३१, १३३, १४१, १४६, १४९, १५१-५२, १५४, १६४, १६९, १७४, १७८, १८१, १८३, १८५-८६, १९४-६, १९८, २०१-२, २१५, २१८, २२१-३, २२६, २३२, २३८, २४२, २५१, २५५, २८२-४, २९७; २९९, ३११, ३५०, ३५८, ३८४-५, ४१०-२, ४१४-५, ४१९-२०, ४४४, ४५५, ४७०-१, ४७६, ४८३; –और कताई, ७, ९, २९५, ३०२-३, ३३८, ३७३, ४०३, ४१०-११, ४१४-५, ४२४, ४३९, ४४१-२, ४६६-७, ४७४, ४८१; –और खेती, ४७७-८; –और चरखा, १०; –और सविनय अवज्ञा, ९०; –का आशय, १५८; –का कार्य, २०८; –का प्रचार, २५५; –काठियावाड़में, २१९-२०; –की सम्भावनाएँ, ५८; –को मताधिकारकी शर्तके कारण पहनना, ४२०-१; –बंगालमें, ३७०; –सिन्ध और कुर्ग में, २०२-३
खादी आन्दोलन, ३९, ८१, १९७
खादी प्रतिष्ठान, ३५, १३१, १४९, १५१, १६४, १९५-७, २३३, २९८, ३३८, ३५३, ३७०, ३८३-४, ४२०; –का चरखा, ४७०
खादी मण्डल, २३
खिलाफत, ४५७
खिलाफत पार्टी, १६५-६६
ख्वाजा, ए० एम०, २४७

ग

गदर, २२७
गांधी, ओता, ३२३
गांधी, कस्तूरबा, ७३, ३२३
गांधी, खुशालचन्द, २०९, २८९, ३२३
गांधी, जमनादास, २८९
गांधी, देवदास, ९९, १२२, २३३, ३२३, ३९९, ४१३
गांधी, नारणदास, १७९, २०८, २८९
गांधी, मगनलाल, ७३, १८४
गांधी, लक्ष्मीदास, १८०
गांधी, हरिलाल, ७३, २७०-३
गिडवानी, ए० टी०, १७६
गिरधारी, १७६
गीता-बीज ८९
गुलनार, १२८, २२२
गैर-स्वराज्यवादी, ४७३

गोखले, गोपाल कृष्ण, ३७, १४९, १७५, १९९
गो-रक्षा, १९-२०; ४६, १४४, २५४, ४२९
गो-रक्षा-मण्डल, १७५
गोस्वामी, तुलसीचन्द्र, २८६

घ

घोष, अरविन्द, ३१६, ३३६
घोष, कालीमोहन, ७१
घोष, कुमारी, ९३
घोष, डॉ० प्रफुल्लचन्द्र, १९६
घोषाल, सत्यमोहन, २८६

च

च० राजगोपालाचारी, १११
चक्रवर्ती, श्यामसुन्दर, ५८, २२२, ३५२, ३७०, ४१६
चटर्जी, बी० सी०, ३६५
चतुर्वेदी, बनारसीदास, ४४५
चरखा, २, ८, ११, १६-७, २४, २७, ३२-४, ३९, ४१, ५३, ६५-७, ७०-१, ७४, ७६-७, ७९, ८१, ८६-८, ९०, ९२-३, १००-१, १०३-५, १०८-१०, ११३, ११८, १२९, १३१, १३३-५, १३९-४०, १४७, १४९, १५२, १५४, १६३-४, १६८-९, १७३-४, १७८, १८१, १८३, १८५, १९२, १९५, १९८, २०३-४, २०६, २१७-९, २२२-३, २२७, २३३, २३५-६, २४३, २४६, २५२-८, २७०, २८३, २८९, २९५, २९९, ३११-२, ३१७, ३३२, ३३८-९, ३५५, ३६५, ३७१, ३७३, ३७९-८२, ३८५, ४१०, ४१२-३, ४१५, ४२५-६, ४३९, ४४४, ४५५, ४६८-७२, ४७८, ४८०, ४८३; –और अहिंसा, १३९, १४८-९; –और खद्दर, ७, ९-१०, ३७१-२, ३७३, ४०३, ४१०-१, ४१४-५, ४४१-२, ४६६, ४८१; –और ब्रह्मचर्य, १४६; –और स्वराज्य, ३२-३; –और स्वराज्यवादी, ८१, ३१७; –खादी प्रतिष्ठानका, १९६; –पाठशालाओंमें, १९२, २२५
चरित्रविजय, ७३
चर्चिल, विंस्टन, २७६
चाँदीवाला, बृजकृष्ण, २६, ७८
चिन्तामणि, सी० वाई०, २६७, २९५, ४०६
चैतन्य, २८५, ३६०
चौधरी, राय यतीन्द्रनाथ, ५८

ज

जयरामदास दौलतराम, २८०
जरथुस्त्र, ४५१
जॉन, सेंट, ४५३
जानकी बहन, २३१
जिन्ना, मुहम्मद अली, २०७, २६७, २९५, ४०४
जीवनलाल, २०
जुगलकिशोर, आचार्य, १७६
जेराजानी, विट्ठलदास, २६
जोगेन, १९८
जोगेन्द्र सिंह, सरदार, २५०-५३
ज्योति प्रसाद, १७०

झ

झाँसीकी रानी, २२७

ट

टेगर्ट, ३४४

ठ

ठाकुर, द्विजेन्द्रनाथ, ५९, २१७
ठाकुर, रवीन्द्रनाथ, १२७, २१८, ४१६; –से गांधीजीकी भेंट, १७७-७८

ड

डागर, २५३

त

तारकनाथ, ४२५
तिलक, बाल गंगाधर, १४४, २८०-८१, २९४, ३१४-८, ४०५, ४४१, ४४४, ४६६
तिलक स्वराज्य कोष, २५४-५, ४५६
तुलसीदास, २२, ११५, ३६०

द

दत्त, अश्विनीकुमार, २४६
दमयन्ती, १०२, ३७८
दशरथ, ३४६
दास, चि० रं०, २-५, १४, २८-३२, ३५-७, ४०, ५६-७, ८०-३, ८७, ९१, १४१, १७४-५, १८२, १९९-२००, २०८, २३६, २५३-४, २६१-६७, २७४-८२, २८६-७, २९१, ३०७, ३०९-१८, ३२३, ३२५-३०, ३३६-४०, ३४९-५१, ३५३-४, ३६१-२, ३६५-६, ३६९-७०, ३७३-६, ३८५-६, ३९०, ३९७-८, ४०१-३, ४०५-८, ४१२-६, ४२०, ४३१, ४३५, ४३७-८, ४४१-२, ४५६-७, ४६४, ४६८, ४७५, ४८१; —और हाथ कताई, ४६९-७०; —की अन्तिम यात्रा, ३४९-५१
दास, श्रीमती (चि० रं०), देखिए वासन्ती देवी
दास, मोना, २५९ पा० टि०, २६१
दास, सतीश रंजन, २८७, २९०
दासगुप्त, सतीशचन्द्र, ५४, ५८, ७८, ८७, ९४, १०७, १२२, १५१-२, १९५, २३६, ३१३, ३७०, ३७३-४, ३८३-४, ४१९
दासगुप्त, हीरेन्द्रनाथ, १९९
देवभाभी, २०९, २८९
देशमुख २६८-९
देसाई, प्रागजी, १७८
देसाई, महादेव, २६, ७२ ८७, ११२, १४१, १८४, २३४, २५२-३, ३७४, ३७६, ३९९
द्रौपदी, १००

ध

धर्म, ४६, ६२, ७५, १७५, १९३-४, २१०, २१३, २२८, २३९, २४२, ३२७, ३३१; —की रक्षा, २१४
धर्मपाल, डॉ० ६०, ६३
धीरा भगत, २४५

न

नटराजन, ६०
नन्द, सन्त, ७२
नन्दिनी, २१८
नरम दलवाले, ३६५, ३८७
नवजीवन, १९, २५, ७३, १५४, २०८, ३२३, ३४७, ३७८-८२, ३९८, ४२७, ४४२
नाग, हरदयाल, १९९, ४१९; —से भेंट, ८०-८
नायडू, डॉ० वरदराजुलु, १७३-४, १७७
नायडू, सरोजिनी, २६२, २६७, ४१६
नायर, के० केलप्पन, २७४, ४४८
निर्मलचन्द्र, १९९, २८६
निषाद, १११
नेपाल बाबू, १२७
नेहरू, जवाहरलाल, १७७, २२४, २४७, २७३, ४१६, ४४२
नेहरू, मोतीलाल, ५, ८१, २४७, २७३ २७५, २८०, ३५२, ३७२, ४०४-६, ४१२-३, ४१६ ४२१, ४३८, ४४१, ४७२-३

नैयर, प्यारेलाल, ३९९
नौरोजी, दादाभाई, १२६, २००, ३५५, ४६६

प

पंजाब कांग्रेस जाँच समिति, २७९
पटेल, डाह्याभाई, ९९, १८४, २३३-४, ३२४, ४०१
पटेल, मणिबहन, ९९, १८४, २३३, ३२४, ४०१
पटेल, यशोदा, १८४
पटेल, वल्लभभाई, २४०, २६१, ४१६
पटेल, विट्ठलभाई, ३९४
परिवर्तनवादी, २५१, ४२१
पारसी, १७, १८७-८, २२८, २५२, २६६, २८४, ३११, ४२९, ४६९
पारेख, देवचन्द, १८४, २१९, २८८-९
पार्वती, १५१, ३७८
पाल, क्रिस्टोदास, ४३२
पिट, डब्ल्यू० एच०, ४००, ४४६-७
पुनैया, ७३
पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, १७५
पेटिट, ४४५
पोप, डॉ० ४५१
प्रताप, बाबू, ३७३
प्रवर्तक संघ, ४१, १९६; —का आदर्श, ४१
प्रह्लाद, ३४६, ३४८
प्रीतम, २८४

फ

फॉरवर्ड, १५९, ३५२, ३७०-१, ४४४
फूकन, २१५, ३६९

ब

बंगाल प्रान्तीय परिषद्, २८
बजाज, जमनालाल, १०८, १७६, २३१, ३२३, ४१६, ४१९, ४२३, ४४२
बनर्जी, काली चरण, ४५०
बनर्जी, गुरुदास, ३०१
बनर्जी, व्योमेश चन्द्र, २५३
बनर्जी, सर सुरेन्द्रनाथ, ११६-८, १२३, १८८, २००, २६७, ३१७, ३७०
बन्दोबस्त कानून, २३
बर्कनहेड, लॉर्ड, ३, ५, ३५, २९३, ३७३, ३७५, ४०२, ४०४-७, ४१२, ४२२, ४३१, ४६४-५, ४७५; —और लॉर्ड रीडिंगके बीच बातचीत, ३८७
बर्फीवाला, कंचनलाल मोतीलाल, २५
बसु, निर्मल कुमार, ४१
बाइबिल, १७९, २०९-१०, ४५१
बादशाह मियाँ, २३५
बालकृष्ण, ३२३
बाल गंगाधर, ३२३
बासन्ती देवी (श्रीमती चि० रं० दास), २३७, २५३, २५९, २७६, २७८, ३१०, ३१३, ३१८-२१, ३२९, ३३६, ३५१, ३६९-७०, ३७५, ३९१, ४०१, ४४१
बिस्वास, सुरेन्द्र, ३८-४०
बिस्वास, सुरेश, ५९
बुद्ध, ६१-३, २९७
बेयर, १९१
बेसेंट, डॉ० एनी०, ३२, २०७, ३७२, ४०५, ४२३, ४६३, ४८१
बैंकर, शंकरलाल घेलाभाई, ३७, १०८, ३४९, ४१९
बोस, राय ए० एन०, २९०
बोस, शरत् चन्द्र, २४९, ४१६
बोस, सत्यानन्द, ४१६, ४७१-२
बोस, सुभाष चन्द्र, १५९, २०५, ३७२; की— रिहाई, ३४
बौद्ध धर्म, ६३, १९३; —और हिन्दू धर्म, ६१-२
ब्रह्मचर्य, ११, १५६, २१४, ३००-३; —और चरखा, १४६

ब्रह्मा, ३३५
ब्रेयर, श्रीमती, २५३

भ

भगवद्गीता, ५०, ८९, २१८, २४४, २८५, ३०७, ३२७-९, ३३५, ३६०, ४०७, ४५१
भरूचा, बी० एफ०, ९५, २६७, ४१६, ४६६
भागवत, २४४, २८५,
भारतीय राष्ट्रमण्डल विधेयक, —की मुख्य व्यवस्थाएँ, ३८७; —पर एनी बेसेंटका वक्तव्य, ४६३-४
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १, ५, ८, ३५, ६९-७१, ७५, ८०, ८२, ८७, १००, १०३, १०६, १३४, १६०-२, १६४-५, १७१, १८८, १९७, २०३, २३५, २४६, २५०, २५५, २५२, २५८, २६५, २६७-९, २७२, २७७, २७९-८०, २९५ २९९-३००, ३०३-५, ३११, ३५७-८, ३८६-८, ३९२-३, ३९५, ४०३, ४०७-८, ४१२-३, ४१८, ४२०-१, ४२५, ४३१-२, ४३७-४०, ४६३, ४६६-७, ४६९, ४७२-४, ४७६, ४८० —का उद्देश्य २९-३० —की अखिल भारतीय समिति १६०-१, १६५, १७१, २५५, २७१, २७३, ३८४, ४०२-३, ४१३-६, ४१८, ४२१-२, ४३८-४०, ४७४
भीष्म, ३४६
भोंसले, २६१, ३२१
भोरलाल, २३६

म

मजूमदार, अम्बिका चरण, १२३
मजूमदार, वसन्त कुमार, १९८
मथुरादास, ३८३
मथुरादास त्रिकमजी, १२९
मनहर, २३१
मनु, ५१; —की क्षत्रियोंके लिए चार साधनोंकी व्यवस्था, ४९
(द) मराठा, २६७
मरे, रेवरेंड ए०, २१०, ४५०
मलान, ४६०
महाभारत, १०२, १३९-४०, ३२७-८
महावीर, ६१
महेन्द्र प्रताप, राजा, २४७
माडले जेल, —से कैदियोंकी रिहाई, ६, ३५
मारवाड़ी अग्रवाल, सम्मेलन, ४२७-९
मॉर्ले, लॉर्ड, ४६०
मालवीय, मदन मोहन, ११७, २०७, २६७, २८०, ३३२-५
मित्र, सत्येन्द्र, १००
मिस्त्रेल, ऑत्वानेत, २४९
मीरा बहन, ४३० पा० टि०
मिलर, डॉ० ४२२
मुखर्जी सतीश चन्द्र, ३७, १४१
मुखर्जी, सर राजेन्द्र, २८७, २९०
मुडीमैन समिति, ३६५; —की अल्पमतके बारेमें रिपोर्ट, ४०४
मुसलमान, ९-१०, १७, ३०, ४६, ६०, ६२, ७७, १०९, १७५, २०२-३, २०६-७, २२८, २३५, २४८, २५२, २७७, २८४, २८९, ३११, ३३२-३, ३४३, ३५६, ३६६, ३८९, ४६२, ४६८-९, ४८२; —और हिन्दू, ४०, ४६, ६८-९, ७७, १०३, १०६, १३०, १५०, १८३, १८५-७, २४६, २८२, ३१७, ३६१-३, ३६६-७, ३८८, ४११, ४६२, ४७९
मुहम्मद अली, २६, १०३, १२५, १२८, १५०, १६७, २५९, २६९, २८०, २९७, ३६१, ४१८
मेहता, कल्याणजी, १५१, १७८-९

मेहता, सर फीरोजशाह, २००, ३९४, ४३७
मँचेस्टर गार्जियन, १४२
मैकमिलन, ९८
मैक्स्विनी, टेरेंस, ४९, ३९३
मोदी, रमणीकलाल, ७३
मोरेनो, डॉ० एच० डब्ल्यू० वी०, १९४-५,

य

यंग इंडिया, ३७, ७१, ७३, १०९, १६५, १९६, २२४, २५८, २६३, २७०, २९५, ३२३, ३३०, ३३३-४, ३५२, ३५६, ३५८, ३६६-७, ३७१, ३७६, ३८२, ४१४, ४१९, ४२७, ४३२, ४६७-८, ४७९
यहूदी, १८७-८, २२८, २५२

र

रघु, ११४
रघुवीर नारायण सिंह, १५४, १७०
रणछोड़ दास, २०२
राजगोपालाचारी, च०, १०८, २९५, २९८, ३९९, ४४६-७
राजेन्द्रनाथ, ३४१
राजेन्द्र प्रसाद, ३५२, ३७४, ४१४
रानडे, महादेव गोविन्द, १९९
रानडे, रमाबाई, ३१८
रानीवाला, २२२
राम, २२, १०२, १११-४, १२९, १५४, ३१८, ३२०, ३२९, ३४६, ३४८
रामजीभाई, १८४
रामदास, ३६०
रामराज्य, २४२
राय, कामिनी, ५८
राय, किरण शेखर, १९९
राय, डॉ० प्र० च० ८, १४, ३७, ५७-८, ६५, ७७, ८५, १४९-५१, १९५-७, २०४, २६५-६, २७९, ३८३, ४१६
राय, प्रिय, ४६९; –का चरखा, ४७०
राय, विधान चन्द्र, २८६, ४१६
राय, सतकौड़ी पति, २६०; ३४०, ३५४, ३६९, ३७३
रावण, ११५, १८२
राष्ट्रवादी, २९४
राष्ट्र-सेवा, –ही धर्म है, ३१५-६
राष्ट्रीय कार्यक्रम, २५१
राष्ट्रीय पाठशालाएँ, १३३, १५२, ४११-१२
राष्ट्रीय शिक्षा, ४११-२
रीडिंग, लॉर्ड, ३२, २९३, ४५५; –और लॉर्ड बर्कनहेडके बीच बातचीत, ३८७
रुखी, ७३, १५१
रुद्र, सुधीर, ३२४
रुद्र, सुशील कुमार, २९३, ३२२ पा० टि०, ३६३-४
रोमाँ रोलाँ, ३३४
रौलट कानून, ३६३

ल

लॉ, सी० सी०, २९०
लाइट ऑफ एशिया, ६१
लाजपत राय, २६७
लॉयड, जॉर्ज, १४७
लिटन, लॉर्ड, ३२

व

वझे, एस० ए०, १९१
वर्ड्सवर्थ, ४३२
वर्णाश्रम, १०, २७१, ४२७; –को समाप्त नहीं करना चाहिए, १८
(द) वर्ल्ड, २२०
वल्लभाचार्य, २८५
वशिष्ठ, ३४०
वसुमती पण्डित, ९८, २३१, २८९, ३११, ३६७

वाटन, सर, ४५०
विधान-परिषद्, देखिए कौंसिल
विलिंग्डन, लॉर्ड, ४५५
विवेकानन्द, ५१
वेंकटप्पैया, कोण्डा, ४३१
वेद, २२, २१८
वेमना, ३३९-४०
वैद्य, २३०
वैष्णव, १३, २३९, २८५

श

शफी, सर मुहम्मद, २६७
शर्मा, ४४६
शास्त्री, वी० एस० श्रीनिवास, २०७, २६७, २९५, ४०४, ४०६
शेक्सपियर, ३२८
शौकत अली, १८, १०२, १२५, १५०, १६३, २६२, ४१६, ४१८, ४५३
श्रवणकुमार, २९६

स

सत्यवती, ३४६
सत्याग्रह, १९३, २१४, ३०३-४, ३३४, ३४६, ३६३, ३७८, ३८०-१, ४०६, ४२३; —और शारीरिक शक्ति, ५१; —तारकेश्वर मन्दिरके विषयमें दिये अदालतके फैसलेके विरुद्ध सत्याग्रह अनुचित, ३०६; —के सम्बन्धमें पेटलादका प्रस्ताव, २२-३
सत्याग्रही, १९८, ३४६, —[स्त्रियां]का कर्त्तव्य, २३-४, ३०६
सप्रू, तेज बहादुर, २६७, २९५, ४०४
सरकार, एन० एन०, २९०
सरकार, नलिनी रंजन, १९९, २८६, ४१६
सरकार, नील रतन, २८७, ४१६
सर्वेंट, २२२, ३११
सविनय अवज्ञा, ३१७, ३६५, ३८७, ४७९-८०; —और खद्दर, ९०
सस्मल, बी० एम०, ८५
साधुराम तुलाराम, ३९८
सावित्री, ३७८
साहा, गोपी मोहन, ४९
सिन्ह, २५२, ४६९
सिजविक, ४६१
सिन्हा, लॉर्ड, २८७
सीता, ३६, १००, ११०, ११५, १२९, १७५, ३२०
सुजाता, २६१, ३१९
सुधन्वा, ३२१
सुधार, ४०६
सुनीति देवी, ४९
सुप्रभा देवी, २९०
सुरेश, डॉ०, १०७-८
सुहरावर्दी, ३७२, ४७९
सूरदास, ११५
सेन, एन० सी०, ३१०
सेनगुप्त, (डॉ०) इन्द्र नारायण, २०५
सेनगुप्त, जे० एम०, ८९, २९४, ३४३-४, ३६८, ३८९, ३९१-४, ४३५-३७, ४७९
सेलिसबरी, लॉर्ड, २११, ४५४
सोराबजी, ४७२
सौराष्ट्र, १११
स्टीफेन, जस्टिस, ४५
स्टेट्समैन, २९१; —के प्रतिनिधिसे भेंट, १-३; —को पत्र, ४८०-१
स्ट्रॉंग, २४६
स्मट्स, १९१
स्वतन्त्रताके सिद्धान्त, ४९
स्वदेशी, २०२, ३८७, ४८१-२
स्वराज्य, ७, १३-४, १७, ३१, ४२, ५४, ६४, ६८, ७१, ७४, ७६, ८०-१, ८४, ९३, ९६, १०२-३, १०५, १२९, १३१, १३४, १३९-४०, १४४, १४७

१७२, १७४-५, १८२, १८६, १९४, १९८, २१६-७, २३५, २४२, २५२, २५६, २६३, २६६-८, २७२, २७७, २९९, ३१०, ३१३, ३१७, ३२६, ३५५, ३७४, ३८०-१, ३८६, ३९६, ४०९-११, ४४२, ४४४, ४५६, ४६६, ४८१; –और अहिंसा, ३१२, ३७४, ४१४-६; –और कताई, ३२-३, ६९-७०, २३६; –और सिपाही, ५१; –की परिभाषा, १४३, २९१-२

स्वराज्यवादी, १, ३, ५-६, ५९, ७०, ८१-७, १०६, १५९, १७४, १८३, १९८-९, २०१, २५१-२, २६७-९, २७५-७, २९१-२, ३१२; –और कताई, ३९, ८१, ८७, ३१७, ३५५, ३६५, ३६८-७१, ३८६-७, ३९२, ४०१-३, ४०५-७, ४१२-३, ४१८, ४२०-२, ४३१-२, ४३५, ४३८-४०, ४६३, ४७२, ४७४, ४७९; –[दियों]के तौर-तरीके, ८५; –के साथ समझौता, २५०

ह

हनुमन्तराव, डॉ०, ४४५

हनुमान, ११५

हरवर्तसिंह, ७०

हरिश्चन्द्र, ३१८

हर्टजोग, १९१

हिन्द स्वराज्य, ४८, १६८, २२८

हिन्दू, १, ६-७, ९-१०, १३-४, १७-८, १९, ३०, ६०, ७२, १०६, १०९, १४३, १४८, १७५, १९२-४, २०३, २०६-७, २१२, २२८, २३५, २५२, २७७, २८४, २९९, ३११, ३२०, ३३०-३, ३४०, ३५६, ३८९, ३९८-९, ४२७-९, ४४९, ४६९, ४८२; –और मुसलमान, ४०, ४६, ६८-९, ७७, १०३, १०६, १३०, १५०, १८३, १८५-७, २४६, २६५-६, २८२, ३१७, ३६१-२, ३६६, ३८८, ४११, ४६२

हिन्दू-धर्म, ७, १०-१, १६, ३०, ६०, ६६, १००, १०६, ११०, १९३-४, २१२, २१४, २३५, ३२०, ३२८, ३३१, ३४३-५, ३५६, ३९८-९, ४२७, ४३३, ४५१; –और बौद्ध-धर्म, ६१-२; –का सार-सत्य, ६५

हिन्दू-मुस्लिम एकता, २, ७, १०, १२, १४, ३२, ४२, ६७-८, ७४-६, १००, १२५, १३०, १४६, १४८, १६७, १९२, २०६, २१७, २३५, २६७, २७०, २७७, ३४६, ३५६, ३८५, ४१०, ४३५, ४८१-२; देखिए मुसलमान और हिन्दू भी

हिन्दू-मुस्लिम तनाव, ३, १०४, ३०८, ३४५, ३७२, ३८८, ४०६

हिरण्यकशिपु, ३४६

हुसैन, फजली, ४०४

हेवर, बिशप, ४५२

हेलैस, डॉ० जे० आर०, १८८